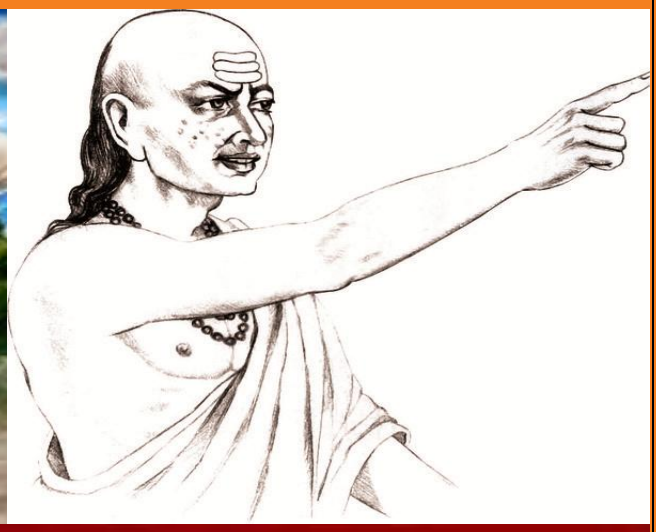
MASA-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा





महाकविशूद्रकप्रणीतं

मृच्छकटिकम्

ललित साहित्य एवं नाटक

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

अध्यक्ष

प्रोफेसर (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

समन्वयक/सदस्य

संयोजक:

डॉ. बसंत जैतली
सहआचार्य (सेवानिवृत्त), संस्कृत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

1. **प्रो. लक्ष्मी शर्मा**
   आचार्य, संस्कृत विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
2. **प्रो. एस.पी. शर्मा**
   प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
   अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)
3. **प्रो. आर.एस. मिश्रा**
   प्रोफेसर, संस्कृत-पालि-प्राकृत विभाग
   लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
4. **डॉ. विश्वनाथ शर्मा**
   व्याख्याता (सेवानिवृत्त)
   राजकीय महाविद्यालय, चिमनपुरा (राज.)
5. **बीना अग्रवाल**
   सह आचार्य, संस्कृत विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
6. **डॉ. सरिता भार्गव**
   व्याख्याता
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
7. **डॉ. रेणु तायल**
   व्याख्याता
   वैदिक कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जयपुर
8. **डॉ. सुषमा सिंघवी**
   भूतपूर्व सहआचार्य, संस्कृत विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
   निदेशक
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केन्द्र-जयपुर

सम्पादन एवं पाठ लेखन (प्रथम संस्करण मई 2009)

सम्पादक

प्रो. हरिराम आचार्य
पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
राजस्थान विश्वद्यिालय, जयपुर

लेखक

1. **डॉ. रामसिंह चौहान (इकाई 1, 2)**
   सह-आचार्य, संस्कृत विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
2. **डॉ. विजेन्द्र कुमार शर्मा (इकाई 3, 4)**
3. **डॉ. हरिनारायण जैमिनी (इकाई 5, 6, 9, 16)**
   संस्कृत विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **डॉ. नीरज शर्मा (इकाई 7, 8)**
   सहायक प्राचार्य
   जीडी कॉलेज, अलवर
5. **डॉ०कपिल गौतम (इकाई 10)** (पाठयक्रम संशोधनोपरांत)
   सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
6. **डॉ. सरिता भार्गव (इकाई 11, 12, 13)**
   व्याख्याता
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
6. **डॉ. कमलेश जोशी (इकाई 14, 15)**
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
7. **डॉ. प्रतिभा सक्सैना (इकाई 17, 22)**
   प्रिंसिपल
   जेडीपीजी कॉलेज, जगतपुरा, जयपुर
8. **डॉ. विश्वनाथ शर्मा (इकाई 18, 19)**
   सहायक प्राचार्य (सेवानिवृत्त)
   चिमनपुरा कॉलेज, जयपुर
9. **डॉ. अनिता गुप्ता (इकाई 20, 21)**
   व्याख्याता
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
10. **डॉ० प्रवीण कुमार कुमार द्विवेदी ((इकाई 23)** (पाठयक्रम संशोधनोपरांत)
    सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
    इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय ,नई दिल्ली

पाठयक्रम संशोधन समिति

अध्यक्ष :
प्रो. एल.आर. गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक :
डॉ० कपिल गौतम
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य :

1. **प्रो० राम नाथ झा,**
   आचार्य, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र,
   जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
2. **प्रो० ओम नाथ बिमली,**
   आचार्य, संस्कृत विभाग,
   दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
3. **प्रो० रामसिंह चौहान,**
   विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **प्रो० राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य**
   विभागाध्यक्ष, वेद विभाग,
   जगद्गु रुरामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय,जयपुर
5. **डॉ० महेश शर्मा,**
   सहायक आचार्य, दर्शन विभाग,
   जगद्गु रुरामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय,जयपुर

संशोधन एवं सम्पादन (संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, जुलाई 2018)

डॉ० कपिल गौतम
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) अशोक शर्मा	**प्रो. एल.आर. गुर्जर**	**डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी**
कुलपति	निदेशक (शैक्षणिक)	निदेशक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी
निदेशक,
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

उत्पादन: जुलाई 2018 ISBN No. : 13/978-81-8496-065-5

सर्वाधिकार सुरक्षित: इस सामग्री के किसी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी' (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
व०म०खु०वि० कोटा के लिए कुलसचिव वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

MASA-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई–1	कालिदास का काल एवं रचनाएँ	1–9
इकाई–2	कालिदास की भाषा शैली, काव्यकला, छन्द एवं अलंकार प्रयोग	10–22
इकाई–3	गीतिकाव्य/दूतकाव्य परम्परा : उद्भव, विकास एवं मेघदूत का स्थान	23–37
इकाई–4	मेघदूत के टीकाकार रस एवं मेघ का मार्ग	38–49
इकाई–5	मेघदूत के पूर्वमेघ के श्लोकों की ससन्दर्भ व्याख्या (व्याकरणात्मक टिप्पणी सहित)	50–77
इकाई–6	मेघदूत के पूर्वमेघ के श्लोकों की ससन्दर्भ व्याख्या (व्याकरणात्मक टिप्पणी सहित)	78–95
इकाई–7	मेघदूत के उत्तरमेघ के प्रमुख अंशों का सप्रसंग अनुवाद एवं सटिप्पण वैशिष्ट्य (श्लोक संख्या 1 से 30 तक)	96–123
इकाई–8	मेघदूत के उत्तरमेघ के प्रमुख अंशों का सप्रसंग अनुवाद एवं सटिप्पण वैशिष्ट्य (श्लोक संख्या 31 से 60 तक)	124–146
इकाई–9	मेघदूत की प्रमुख सूक्तियों की सप्रसंग व्याख्या	147–162
इकाई–10	संस्कृत नाटक : उद्भव एवं विकास	163–171
इकाई–11	नाट्यग्रन्थों के आधार पर रूपकों के प्रकार,संस्कृत रूपकों की विशेषताएँ एवं संस्कृत के प्रमुख नाटककार	172–184
इकाई–12	विशाखदत्त का परिचय–काल, मुद्राराक्षस कथा, कथा का स्त्रोत	185–192
इकाई–13	नाटककार विशाखदत्त : भाषा शैली, नाटकीय विशेषतायें, नाटक की शास्त्रीय विशेषतायें	193–204
इकाई–14	मुद्राराक्षस नाटक, विशाखदत्त का परिचय, मुद्राराक्षस की प्रमुख व्याख्यायें (प्रथम से तीन अंक तक)	205–224
इकाई–15	मुद्राराक्षस नाटक (अङ्क 4 से अङ्क 7 तक) की प्रमुख व्याख्यायें	225–240
इकाई–16	मुद्राराक्षसम् नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण तथा नायकत्व का निर्धारण	241–271
इकाई–17	मुद्राराक्षस की प्रमुख सूक्तियाँ	272–286
इकाई–18	शूद्रक– व्यक्तिनिर्धारण, काल, मृच्छकटिकम् की कथावस्तु एवं समीक्षा	287–309
इकाई–19	मृच्छकटिकम् – अंक 1 से 5 (प्रमुख अंशों की सप्रसंग व्याख्या)	310–341
इकाई–20	मृच्छकटिकम् के प्रमुख अंशों की सप्रसंग व्याख्या (5 से 10 अंक तक)	343–361
इकाई–21	मृच्छकटिकम् – प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण	362–375
इकाई–22	मृच्छकटिकम् की प्रमुख सूक्तियाँ	376–388
इकाई–23	याज्ञवल्क्यस्मृति (व्यवहाराध्याय)	389–412

इकाई–1

कालिदास का काल एवं रचनाएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कालिदास की काल विषयक समस्याएँ

1.3 कालिदास के काल विषयक प्रमुख मत

1.3.1 षष्ठ शताब्दी ई0 का मत एवं समीक्षा

1.3.2 गुप्तकालीन मत एवं समीक्षा

1.3.3 प्रथम शताब्दी ई0 पू0 का मत एवं समीक्षा

1.4 कालिदास की रचनाएँ

1.5 कालिदासीय महाकाव्य

1.6 कालिदासीय नाटक

1.7 कालिदासीय खण्डकाव्य

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.10 सारांश

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई में उपमा सम्राट्, कविकुल शिरोमणि, महाकवि कालिदास के कालविषयक मतों में बारे में जान सकेंगे। कालिदास के समय को लेकर तीन मत विद्वत् वर्ग में प्रचलित हैं। संक्षेप में उन्हीं का विवेचन इस इकाई में किया जायेगा –

1. छठी शताब्दी का मत
2. गुप्तकालीन मत
3. ई0पू0 प्रथम शताब्दी का मत

इस इकाई में इन त्रिविध मतों की समीक्षा की गई है। साथ ही कालिदास की रचनाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। इस इकाई को पढ़कर छात्र कालिदास के समय एवं उनकी रचनाओं के बारे में अवगत हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप कालिदास के काल से सम्बन्धित तीन मतों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इसमें त्रिविध मतों के प्रमाण सहित समीक्षा की गई है तथा साथ ही कालिदास के महाकाव्य, नाटक एवं खण्डकाव्यों की विस्तृत विषयवस्तु का वर्णन किया गया है। इन रचनाओं का आप वृहद् अध्ययन कर सकेंगे।

1.2 कालिदास की कालविषयक समस्याएँ

कालिदास के काल के विषय में प्रामाणिक सामग्री का नितान्त अभाव है। कालिदास ने स्वयं या उनके समकालीन किसी भो लेखक ने उनके विषय में कुछ नहीं लिखा है। उसके समय के विषय में जो मत प्रस्तुत किए गए हैं, व अनुमान पर आधृत हैं।

अधिकांश विद्वान् विक्रमीय संवत् के संस्थापक उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य नामक सम्राट् 57 ई0 पू0 में विद्यमान को कालिदास का आश्रयदाता मानते हैं। पाश्चात्य एवं कतिपय भारतीय विद्वान चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदास का आश्रयदाता मानते हैं।

1.3 कालिदास के सम्बन्ध में कालविषयक प्रमुख मत

कालिदास के काल के संदभ में सर्वप्रथम हमें उनकी पूर्व व अपर समय सीमा पर विचार करना होगा।

कालिदास के काल की पूर्व सीमा–

कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक में शुंगवंशीय पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र को नायक बनाया है। उनका समय 150 ई0पू0 के लगभग है, अतः कालिदास 150 ई0पू0 से पहले नहीं माने जा सकते।

कालिदास के काल की अपर सीमा–

(1) बाण ने हर्षचरित की भ्मिका में कालिदास का उल्लेख किया है। अतः कालिदास का समय 606 ई0 से पूर्व होना चाहिए।

(2) ऐहोल शिलालेख में कवि रविकीर्ति ने अपने आपको कालिदास और भारवि के तुल्य महाकवि बताया है।

(3) 473 ई0 के मन्दसौर के शिलालेख पर कालिदास के ग्रन्थों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। अतः कालिदास 473 ई0 से पूर्व रहे होंगे।

1.3.1 षष्ठ शताब्दी ई0 का मत एवं समीक्षा

डॉ0 फर्ग्यूसन और डॉ0 हार्नली प्रभति विद्वानों के अनुसार कालिदास मालवाधीश यशोधर्मन् के समकालीन थे, जिसने 544 ई0 में शकों को कहरूर के युद्ध में पराजित कर 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की तथा इस विजय के उपलक्ष्य में विक्रम संवत् चलाया। इस संवत् को प्राचीन और चिरस्मरणीय बनाने के लिए उसने उसे 600 वर्ष पूर्व से चलाकर उसका आरम्भ 57 ई0पूर्व में घोषित किया। इस मत के पक्ष में रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में रघु–दिग्विजय में हूणों के वर्णन को उपस्थापित किया जाता है। इसी प्रकार उनके ग्रन्थों में उल्लिखित यवन, पल्लव आदि को भो प्रमाण माना जाता है।

इतिहास विदित है कि कालिदास के आश्रयदाता विक्रमादित्य ने शकों को हराया था इसलिए वे 'शकारि' कहे गये हैं। 'हूणारि' नहीं। दूसरे यशोधर्मन के शिलालेखों में नवीन संवत् के स्थापन का उल्लेख कहीं नहीं है। इसके अतिरिक्त 544 ई0 से पूर्व मालव संवत् 529 तथा विक्रम संवत् 430 के प्रयोग मिलते हैं। डॉ0 फ्लीट के अनुसंधान से यह प्रमाणित हो चुका है कि यशोधर्मन् ने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण नहीं की थी। 473 ई0 में मन्दसौर वाली वत्स भट्टि रचित प्रशस्ति में कालिदास के ऋतुसंहार और मेघदूत के अनेक पद्यों की झलक साफ दिखती है। इन स्थितियां में कालिदास को षष्ठ शतक में मानना नितान्त असंगत है।

गुप्तकाल से पूर्व भो भारत में सुख शान्ति का वातावरण था जिस काल में बहुसंख्यक उत्कृष्ट रचनाएँ हुई हैं। कालिदास सभापंडित होते तो 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की प्रस्तावना में असली नाम छोड़कर केवल उपाधि (विक्रमादित्य) का उल्लेख नहीं करते क्योंकि केवल उपाधि के उल्लेख की परम्परा प्राचीन काल में नहीं थी।

कुमार शब्द राजपुत्र के लिए बहुत पहले से प्रयुक्त होता था। अतः इस आधार पर उन्हें कुमारगुप्त का समकालीन सिद्ध नहीं किया जा सकता। कालिदास और गुप्त सम्राटों की प्रवृत्तियों में कोई समता नहीं थी। कालिदास परम शैव थे जबकि गुप्त सम्राट शुद्ध वैष्णव थे। कालिदास अपनी रचनाओं में शिव का स्तवन एवं वर्णन करते हैं जबकि गुप्त राजाओं ने वैष्णव धर्म प्रचार के लिए अनेक कदम उठाये।

1.3.2 गुप्तकालीन मत एवं मत की समीक्षा

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य– चन्द्रगुप्त द्वितीय ही वस्तुतः प्रथम विक्रमादित्य है, जिसने कालिदास को आश्रय दिया। उसने ही मालव संवत् को विक्रम संवत् के नाम से प्रचलित किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने प्राचीन काल संवत् को विक्रम नाम दिया वह आपत्तिजनक है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के पितामह चन्द्रगुप्त प्रथम ने 320 ई0 में गुप्त संवत् चलाया था वह अपने वंश परम्परागत संवत् को छोड़कर क्यों नया संवत् चलाता। गुप्त राजाओं ने विक्रम संवत् को स्वीकार न करके गुप्त संवत् का ही उल्लेख किया है। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रम संवत् का संस्थापक कहना युक्तिसंगत नहीं है।

कालिदास के ग्रन्थों में जिस सुख शान्ति–युक्त समाज का चित्रण मिलता है, वह इतिहास में गुप्तकाल ही था। गुप्तकालीन राजाओं ने संस्कृत भाषा के अभ्युदय के लिए अनेक प्रयत्न किए एवं संस्कृत कवियों का आदर किया। यह संस्कृत के पुनरुत्थान का समय था कालिदास भो इसी युग में हुए होंगे।

कालिदास ने अपने आश्रयदाता गुप्त राजाओं के स्मृत्यर्थ रघुवंश आदि में बार–बार गुप् धातु का प्रयोग किया है। गुप् धातु का सामान्य रक्षा अर्थ में प्रयोग है। गुप् धातु के साथ रक्ष्, पा और त्रै धातुओं के भो रघवुंश आदि में मिलते हैं। रामायण, महाभारत आदि स्मृति ग्रन्थों में रक्षा अर्थ में गुप् धातु का प्रयोग अति प्रचलित है। अतः गुप् धातु के आधार पर कालिदास को गुप्त राजाओं का आश्रित माना जा सकता है।

कुमारसंभव में 'कुमार' शब्द कुमारगुप्त प्रथम के जन्म के स्मृत्यर्थ प्रयुक्त है। रघुवंश आदि में कुमार शब्द का प्रयोग मिलता है। पुत्र अर्थ में कुमार शब्द का प्रयोग सभो काव्यों और नाटकों में मिलता है। शिव के पुत्र स्कन्द के लिए 'कुमार' शब्द अत्यन्त प्रचलित है उसके लिए कुमारसंभव में कुमार शब्द है। अनेक स्थलों पर चन्द्र शब्द तथा चन्द्रवाचक इन्दु आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है इसी प्रकार समुद्रवाचक शब्द समुद्रगुप्त के सूचक हैं। सभो काव्यों और नाटकों में चन्द्र और समुद्र के वर्णन सामान्यतया मिलते हैं इसके आधार पर चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्त अर्थ निकालना अत्यन्त असंगत है। विक्रमोर्वशीय में विक्रम शब्द चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का सूचक है।

विक्रमोर्वशीय में विक्रम शब्द पुरुरवा के पराक्रम के लिए है। विक्रम शब्द विक्रमादित्य नाम का सूचक हो। इतिहास में चार विक्रमादित्य हुए हैं। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही विक्रम शब्द से लेने का कोई आधार नहीं है। यह युक्ति घातक है। मालविकाग्निमित्रम् की रचना सिद्ध करती है कि कालिदास का समय शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र के समीप है।

हरिषेणकृत प्रयाग–प्रशस्ति में वर्णित समुद्रगुप्त की दिग्विजय को आधार मानकर रघुवंश में रघु की दिग्विजय का वर्णन है। रघु की दिग्विजय का आधार वस्तुतः वाल्मीकि–रामायण, महाभारत और पुराणों में वर्णित दिग्विजय है। समुद्रगुप्त दक्षिण में पाँड्य राजाओं से पराजित हुए थे और रघु ने पाँड्य राजाओं को पराजित किया है अतः पराजित समुद्रगुप्त को विजेता रघु का आदर्श बताना अत्यन्त असंगत है।

कालिदास ने रघुवंश में वंक्षु नदी के तट पर हूणों के होने का उल्लेख किया है। 450 ई0 के लगभग हूण वहाँ पर थे। स्कन्दगुप्त ने उन्हें हराया था। अतः कालिदास का समय 450 ई0 के बाद होना चाहिए।

मेघदूत में कालिदास ने दिङ्नाग का उल्लेख किया है। 400 ई0 के लगभग दिङ्नाग प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक हुआ है। अतः कालिदास का समय 400 ई0 के बाद होना चाहिए। दिङ्नाग बौद्ध दार्शनिक था किन्तु दोनों प्रतिस्पर्धी थे, इसका कोई आधार नहीं है। दिङ्नागानाम् में दिङ्नाग शब्द दिग्गजों के लिए है अतः दिङ्नाग शब्द के आधार पर कोई निष्कष निकालना असंभव है।

कालिदास के ग्रन्थों और अश्वघोष के ग्रन्थों में कई स्थानों पर पर्याप्त साम्य है। अतः कालिदास अश्वघोष के परवर्ती हैं। कालिदास और अश्वघोष के काव्यों की तुलना से ज्ञात होता है कि दोनों के काव्य परस्पर निरपेक्ष नहीं है। दोनों में से किसी एक ने दूसरे से भाव ग्रहण किए हैं कौन किसका ऋणी है यह विचारणीय है। तथापि कालिदास की प्रतिभा की

दृष्टि से कहा जा सकता है कि कालिदास अश्वघोष के ऋणी नहीं है अपितु अश्वघोष ही कालिदास के ऋणी हैं इस आधार पर कालिदास को अश्वघोष के परवर्ती नहीं कहा जा सकता।

1.3.3 प्रथम शताब्दी ई0 का मत एवं समीक्षा

भारतीय परम्परा में यह प्रसिद्धि है कि उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य परम दानी होने के साथ अत्यन्त वीर थे उन्होंने शको को परास्त कर अपनी विजय के उपलक्ष्य में 57 ई0 पू0 के आसपास विक्रमीय संवत् का प्रवर्तन किया। 'कथासरित्सागर' जो प्रथम शताब्दी ई0 की 'बृहत्कथा' पर आधारित है, के अनुसार उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य परमारवंशीय उज्जयिनी नरेश महेन्द्रादित्य के पुत्र थे। इन्हीं विक्रमादित्य ने शकों को पराजित कर वैदिक धर्म का पुनरूत्थान किया था। शिव के भक्त एवं उज्जैन के महाकाल मन्दिर के निर्माता थे। कथासरित्सागर का वृतान्त ऐतिहासिक और प्रामाणिक माना जाता है।

रघुवंश के चतुर्थ एवं षष्ठ सर्ग में पाण्ड्य देश के राजा का वर्णन है। उनकी राजधानी वहाँ उरगपुर बताई गई है जो 'उरियाउर' का संस्कृत नाम है। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार पाण्ड्यों का राज्य प्रथम शती में था, किन्तु चतुर्थ शताब्दी में समाप्त हो चुका था।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय बौद्धों का प्रभाव क्षीण होने से ब्राह्मण धर्म के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ रही थी। यह स्थिति ब्राह्मणवंशी शुंग नरेशों के कुछ ही पीछे की है।

कालिदास की भाषा शैली रामायण और महाभारत की भाषा शैली के बहुत समीप है। कालिदास के काव्यों में बहुत से अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं।

गुप्तकाल में पाणिनीय व्याकरण पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुका था। उस समय अपाणिनीय प्रयोग किसी महाकवि के लिए अक्षम्य था। अतः कालिदास का समय रामायण, महाभारत की रचना के समीप सिद्ध होता है। कालिदास ने वैदिक एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है परमेष्ठी, पेलव, धिषण्य, शाकुन्त, वैदिक त्रिष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

मालविकाग्निमित्रम् में शुंगवंशी राजा पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र को नायक बनाना, उसका भरत–वाक्य और इतिहास ग्रन्थों में अप्राप्त अग्निमित्र विषयक तथ्यों का उल्लेख सिद्ध करता है कि वह अग्निमित्र के अधिक समीप था। कालिदास ने रघुवंश, कुमारसंभव और शाकुन्तल में अनेक स्थानों वैदिक कमकांड का प्रबल समर्थन किया है साथ ही उत्तराधिकार के नियम, विधवा स्त्री को पति की संपति पर अधिकार, चोरी के लिए दण्ड आदि का जो वर्णन किया है वह ई0पू0 में प्रचलित मनु की विधान संहिता से मेल खाता है। उपर्युक्त कारणों से कालिदास को ई0 पू0 प्रथम शताब्दी में मानना उचित है।

1.4 कालिदास की रचनाएँ

(1) उपमा सम्राट्, कविकुलशिरोमणि, सरस्वती के वरद पुत्र, दीपशिखोपाधि कालिदास ने दो प्रसिद्ध महाकाव्यों– कुमारसम्भव और रघुवंश का प्रणयन किया है। कालिदास ने तीन नाटकों की रचना की है। (1) मालविकाग्निमित्रम्, (2) विक्रमोर्वशीयम्, विश्वप्रसिद्ध (3) अभिज्ञानशाकुन्तलम्। महाकवि कालिदास ने दो खण्डकाव्यों की रचना की है– (1) ऋतुसंहार, और (2) मेघदूत।

1.5 कालिदासीय महाकाव्य

कुमारसम्भवम्– कुमारसम्भवम् के 17 सर्गों में शिव पार्वती के विवाह, कुमार–कार्तिकेय के जन्म और तारकासुर के वध का वृतान्त वर्णित है। कुछ लोगों की धारणा है कि इस ग्रन्थ के अष्टम सर्ग में शिव–पार्वती के सम्भोग वर्णन के कारण समकालीन लोगों ने कटु आलोचना की जिसके कारण इस रचना को वहीं रोक देना पड़ा। बाद में किसी कवि ने इस ग्रन्थ को अपूर्ण देखकर नौ सर्गों में कुमार की उत्पत्ति तथा तारक विजय का वर्णन

करके इसे पूर्ण करने का प्रयास किया। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है।

इसके प्रथम सर्ग में हिमालय वर्णन के बाद पार्वती का जन्म, दूसरे में तारकासुर से पीड़ित देवताओं द्वारा ब्रह्मा से प्रार्थना, तीसरे में शंकरजी की तपस्या से विरत रहने के प्रयत्न में कामदेव का दहन, चौथे में पति के निधन से शोकाकुल रति का विलाप, पाँचवें में शिव को वर रूप में प्राप्त करने के लिए पार्वती तपस्या का वर्णन एवं शिव पार्वती संवाद, छठे में सप्तर्षियों द्वारा शिव के लिए हिमालय से उसकी पुत्री की याचना एवं हिमालय की स्वीकृति, सातवें में शिव–पार्वती विवाह, आठवें में दोनों का सुरत लीला वर्णन, नवमें पार्वती के साथ शिव का कैलाश गमन दसवें में कुमार की उत्पत्ति, ग्यारहवें में कुमार की बाल लीला, बारहवें में कुमर कुमार को सेनापति बनाने के लिए शिव का आदेश, तेरहवें में कुमार का सेनापति पद पर अभिषेक, चौदहव में तारकासुर से युद्ध के लिए देव सेना का प्रयाण, पन्द्रहवें में देव और असुरों की सेना के बीच युद्ध आरम्भ, सोलहवें में दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध तथा सत्रहवें में तारकासुर वध वर्णित है।

रघुवंश–कालिदास के काव्यों में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में वागर्थ सम्पृक्त 'रघुवंश' एक उत्कृष्ट महाकाव्य के रूप में बहुमान्य है। कुछ विद्वान् इसे ही कालिदास की अन्तिम सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हैं। इसके 19 सर्गों में दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक रघुकुल के 21 राजाओं का वर्णन है। इस ग्रन्थ के प्रथम दो सर्गों में दिलीप का, तीसरे, चौथे और पाँचवे के आधे भाग में रघु का, पाँचवे के आधे भाग तथा छठे, सातवें और आठवें सर्ग में अज का, नवमें दशरथ का तथा दसवें से पन्द्रहवें में राम का चरित वर्णित है। सोलहवें में कुश तथा सत्रहवें में कुशपुत्र अतिथि का वर्णन है। अठारहवें में निषध तथा नल एवं नभ आदि इक्कीस राजाओं के वर्णन के बाद उन्नीसवां सर्ग अतिशय विलासी राजा अग्निवर्ण के दुःखद अवसान के साथ समाप्त होता है।

1.6 कालिदासीय नाटक

मालविकाग्निमित्रम् – इसके पाँच अंकों में शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र तथा मालविका के प्रणय एवं परिणय का वर्णन है। राजमहिषी धारिणी की परिचारिका, मालविका अपने अप्रतिम लावण्य से राजा के चित्त को आकृष्ट करती है। राजा उससे मिलने के लिए बहुत प्रयास करता है। रानी उन दोनों पर कड़ी नजर रखती है। अन्त में मालविका को राजकुमारी जानने पर रानी उन दोनों का विवाह करा देती है।

रचनाक्रम के अनुसार यह कालिदास का प्रथम नाटक है फिर भी नाट्यकला की दृष्टि से एक अच्छी कृति है। कथानक की विभिन्न घटनाएँ बड़े कौशल से रूपायित हैं। नाटक में काव्य सौन्दर्य भले ही कम हो, पर नाटकीय क्रियाशीलता प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत है। नाटक के संवाद बड़ी चतुराई से रचे गये हैं और प्रेक्षकों की रुचि को बनाये रखते हैं। इसकी भाषा प्रासादित और मनोरम हैं।

विक्रमोर्वशीयम् – यह पाँच अंकों का एक त्रोटक (उपरूपक) है। इसमें राजा पुरुरवा तथा अप्सरा उर्वशी की प्रणयकथा का वर्णन है। पुरुरवा केशी नामक दैत्य से उर्वशी का उद्धार करते हैं। उर्वशी अपने त्राता की प्रेम–बन्दिनी बन जाती है और राजा भी उसके सौन्दर्य पर उन्मत्त हो जाते है। महारानी की अनुमति से दोनों में प्रणय व्यापार होता है। इसी बीच उर्वशी अभिनय के लिए स्वर्ग में बुला ली जाती है। वहाँ अभिनय में लक्ष्मी की भूमिका करती हुई उर्वशी वाग्दान (सगाई) के समय विष्णु के बदले परुरवा का नाम ले लेती है। अतः मुनि भरत से शापित होकर भूतल पर उसे आना पड़ता है। अब वह राजा के साथ रहने लगती है। एक बार राजा से रूठ कर वह गन्धमादन उपवन में चली जाती है। जहाँ वह कार्तिकेय के नियमानुसार लता के रूप में परिणत हो जाती है। राजा उसके विरह में जंगल–जंगल भटकते और विलाप–प्रलाप करते हैं। संगमनीय मणि के प्रभाव से उर्वशी पुनः अपने पूर्व रूप में आ जाती है। दोनों राजधानी लौटते हैं। उर्वशी के गभ से उत्पन्न कुमार को राजा द्वारा देखे जाने पर उर्वशी इन्द्र की आज्ञानुसार स्वर्ग लौटना चाहती है। राजा भी

पुत्र का राज्याभिषेक कर वन में जाने का निश्चय करते हैं। इतने में नारद वहाँ आकर ये सूचित करते हैं कि इन्द्र ने पुरुरवा और उर्वशी को सदा साथ रहने की अनुमति दे दी है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् – यह महाकवि कालिदास का विश्वप्रसिद्ध नाटक है। इसके सात अंकों में शकुन्तला एवं दुष्यन्त के प्रणय, वियोग तथा पुनर्मिलन की कथा वर्णित है। हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त मृगया के क्रम में कण्व मुनि के आश्रम में जाने पर वृक्ष सिंचन करती हुई शकुन्तला को देखकर उसकी ओर आकृष्ट होते हैं वह भो उन पर मुग्ध हो जाती है। दोनों में गान्धर्व विवाह होता है। कुछ समय बाद शकुन्तला को शीघ्र ही बुला लेने का वचन देकर दुष्यन्त स्वनामांकित अंगूठी उसे पहनाते हैं और राजधानी लौट आते हैं।

राजा के विरह में खोयी हुई सी शकुन्तला द्वार पर आए दुर्वासा मुनि का स्वागत नहीं करने के कारण पति द्वारा नहीं पहचाने जाने के शाप का भागी बनती है किन्तु इसका भो पता नहीं होता। शकुन्तला की सखियों की प्रार्थना पर मुनि अभिज्ञान द्वारा पहचानने की बात कहकर अपने शाप में संशोधन करते हैं।

तीर्थयात्रा से लौटने पर मुनि कण्व शकुन्तला को गभवती जानकर उसे पतिगृह भजने का आयोजन करते हैं। शकुन्तला अपने बचपन के सहचर लता, वृक्ष, पशु–पक्षी एवं सखियों से स्नेहपूर्वक विदा होकर हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान करती है। मार्ग में शकुन्तला के हाथ से अंगूठी गिर जाती है। राजदरबार में पहुंचने पर याद दिलाने पर भो राजा उसे नहीं पहचानते हैं। तब विलाप करती हुई शकुन्तला को एक दिव्य ज्योति उठा ले जाती है। महर्षि मारीच के आश्रम में अपनी माता मेनका के साथ वह वियोग के दिन काटती है। इधर एक धीवर को राजा की नामांकित अंगूठी एक मछली के पेट से मिलती है। उस धीवर से प्राप्त अंगूठी को देखते ही राजा को शकुन्तला के साथ अपने प्रणय व्यापार का स्मरण हो आता है, और वे शकुन्तला से मिलने के लिए व्याकुल हो जाते हैं। अन्त में इन्द्र की सहायता कर स्वर्ग से लौटते समय दुष्यन्त का मारीच–आश्रम में अपने पुत्र सर्वदमन और पत्नी शकुन्तला से पुनर्मिलन होता है। वहाँ से वे सभो राजधानी लौटत हैं।

1.7 कालिदासीय खण्डकाव्य

ऋतुसंहार– ऋतुसंहार में छः सर्ग हैं। उसमें ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसंत ऋतुओं का यथाक्रम वर्णन हैं महाकाव्यों तथा नाटकों में भो यथास्थान ऋतुओं का वर्णन आया है। पर संस्कृत काव्य–साहित्य में एकमात्र ऋतुवर्णन पर अन्य ग्रन्थ 'ऋतुसंहार' ही है। एक के बाद दूसरे ऋतु के आगमन से जहाँ प्रकृति के बाह्य रूप में नवीनता या विचित्रता आती है, वहाँ युवक–युवतियों में भो विविध प्रणय–क्रीडाओं तथा शृंगारिक चेष्टाओं का उदय होता है। ऋतुसंहार में प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य और मानवीय प्रणय का कान्त सयोग है। प्रत्येक ऋतु अपनी विशेषताओं से प्रेमियों के हृदय को नाना प्रकार से आन्दोलित करती है।

कालिदास की प्रौढ़ कृतियों की तुलना में 'ऋतुसंहार' का अधिक महत्त्व नहीं है। उसमें कवि का प्रारम्भिक प्रकृति–प्रेम चित्रित है। फिर भो उसमें भावों की नूतनता है। प्रेमियों के हृदय पर प्रकति के प्रभाव का यह उल्लासपूर्ण चित्रण है। तरूण कवि की प्रथम कृति होने के कारण 'ऋतुसंहार' में कालिदास की कविता का सर्वश्रेष्ठ गुण–ध्वनि का एक प्रकार से अभाव है। किन्तु कालिदास की प्रासादिकता सर्वत्र विद्यमान है।

मेघदूत–मेघदूत संस्कृत की गीतिकाव्य–साहित्य का परम उज्वल रत्न है। जिसकी आभा समय के प्रवाह से और भो अधिक भास्वर होती जाती है। इसमें एकसौ इक्कीस पद्यों में कवि ने एक विरही यक्ष की मनोव्यथा का मार्मिक चित्रण किया है। इस छोटे से काव्य के गागर में कवि ने अपनी भावना के सागर को उड़ेल दिया है। इसके दो भाग हैं– पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। कुबेर के शाप के कारण एक वर्ष तक अपनी प्रियतमा से अलग रहने के लिए विवश कोई यक्ष अलका से दूर जाकर रहने लगा। एक दिन आकाश में छाये हुए मेघ को देखकर यक्ष उससे प्रार्थना करता है कि वह मेघ अलकापुरी जाकर उस यक्ष की

प्रियतमा के पास उसका कुशल–संदेश पहुंचा दे। पूर्वमेघ में वह रामगिरि से अलका तक के मार्ग का सरस तथा मनोरम वर्णन करता है एवं उत्तरमेघ में अलकापुरी तथा अपने भवन और अपनी पत्नी की विरह दशा का विवरण देकर अन्त में अपना मधुर संदेश सुनाता है। इस प्रकार पूर्वमेघ में बाह्य प्रकृति का विशद् वर्णन है, तो उत्तर मेघ में अन्तः प्रकृति का रमणीय उद्घाटन है। पूर्वमेघ में कल्पनापक्ष की प्रधानता है तो उत्तरमेघ में भावनापक्ष सहृदय–हृदय संवेध है।

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

कुमार - कुमारसंभव में 'कुमार' शब्द कुमारगुप्त प्रथम के जन्म के स्मृत्यर्थ प्रयुक्त है। रघुवंश आदि में कुमार शब्द का प्रयोग मिलता है। पुत्र अर्थ में कुमार शब्द का प्रयोग सभी काव्यों और नाटकों में मिलता ळें

विक्रम- विक्रमोर्वशीय में विक्रम शब्द पुरुरवा के पराक्रम के लिए है। विक्रम शब्द विक्रमादित्य नाम का सूचक हो। इतिहास में चार विक्रमादित्य हुए हैं।

रघुवंश– कालिदास के काव्यों में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में वागर्थ सम्पृक्त 'रघुवंश' एक उत्कृष्ट महाकाव्य के रूप में बहुमान्य है।

ऋतुसंहार– ऋतुसंहार में छः सर्ग हैं। उसमें ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसंत ऋतुओं का यथाक्रम वर्णन हैं महाकाव्यों तथा नाटकों में भी यथास्थान ऋतुओं का वर्णन आया है।

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कालिदास के काल सम्बन्धी कितने मत प्रचलित हैं ?
   (क) एक (ख) दो
   (ग) तीन (घ) चार
2. कालिदास का प्रामाणिक काल जो सभी विद्वानों को मान्य है कौनसा है?
   (क) प्रथम शताब्दी ई0 पू0 (ख) चतुर्थ शताब्दी
   (ख) षष्ठ शताब्दी (घ) पंचम शताब्दी
3. कुमारसम्भवमहाकाव्य में कितने सर्ग हैं?
   (क) 12 (ख) 14
   (ग) 17 (घ) 19
4. रघुवंशमहाकाव्य में कितने सर्ग हैं?
   (क) 12 (ख) 14
   (ग) 17 (घ) 19
5. मेघदूत किस प्रकार का काव्य है?
   (क) महाकाव्य (ख) खण्डकाव्य
   (ग) गद्यकाव्य (घ) चम्पू काव्य
6. ऋतुसंहार में किसका वर्णन है?
   (क) षड्ऋतुओं का (ख) हिमालय का
   (ग) चित्रकूट का (घ) वीररस का
7. अभिज्ञान शाकुन्तलम् की नायिका है?
   (क) प्रियंवदा (ख) अनसूया
   (ग) गौतमी (घ) शकुन्तला

8. मालविकाग्निमित्रम् में कितने अंक हैं?

(क) 2 (ख) 3

(ग) 4 (घ) 5

9. कालिदास के काल विषयक मतों का प्रतिपादन करते हुए प्रथम शताब्दी ई0 के मत का वर्णन कीजिये।

10. कालिदास की रचनाओं के वर्ण्य विषय को स्पष्ट कीजिये।

बोध प्रश्नोत्तर

1. (ग) तीन
2. (क) प्रथम शताब्दी ई0 पू0
3. (ग) 17
4 (घ) 19
5 (ख) खण्डकाव्य
6 (क) षड्ऋतुओं का
7 (घ) शकुन्तला
8 (घ) पाँच

1.10 सारांश

कविकुलगुरू शिरोमणि, उपमा सम्राट्, सरस्वती के वरद्पुत्र महाकवि कालिदास से सम्बद्ध इस प्रथम इकाई में कालिदास का समय निर्धारण किया गया है तथा साथ ही उसकी रचनाओं पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। कालिदास के समय को लेकर विद्वानों के समुदाय में तीन मत प्रचलित हैं– षष्ठ शताब्दी ई0, चतुर्थ शताब्दी ई0 तथा प्रथम शताब्दी ई0पू0 का मत। अधिकांश विद्वान महाकवि का समय प्रथम शताब्दी ई0पू0 का निर्धारित करते हैं। कालिदास ने दो महाकाव्य लिखे हैं जिनके नाम हैं– कुमारसंभव और रघुवंश। कालिदासकृत तीन नाटक हैं (1) मालविकाग्निमित्रम्, (2) विक्रमोर्वशीयम्, (3) अभिज्ञानशाकुन्तलम। कालिदासकृत दो खण्डकाव्य है– ऋतुसंहार और मेघदूत।

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संस्कृत कविदर्शन– भोलाशंकर व्यास– चौखम्बा विद्याभवन, 2003.
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्– शास्त्री एवं त्रिपाठी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2011.
3. मेघदूत– बाबूराम त्रिपाठी, महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा,1986.
4. मेघदूत– विजेन्द्र कुमार शर्मा, साहित्य भण्डार मेरठ,चतुर्थ संस्करण,1996.
5. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन वाराणसी,1953.
6. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा– पाण्डे एवं व्यास,साहित्य निकेतन,कानपुर, 2001.
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास– वाचस्पति गैरोला– चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1960.

इकाई–2

कालिदास की भाषा शैली, काव्यकला छन्द एवं अलंकार प्रयोग

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 कालिदास का कविरूप में सामान्य परिचय

2.3 कालिदास की भाषा–शैली

2.4 कालिदास की काव्य–कला

2.5 कालिदास द्वारा प्रयुक्त छन्द

2.6 कालिदास का अलंकार प्रयोग

2.6.1 उपमा अलंकार प्रयोग

2.6.2 अर्थान्तरन्यास प्रयोग

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.9 सारांश

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में उपमा सम्राट्, कविकुल गुरूशिरोमणि, महाकवि कालिदास की भाषा शैली, काव्यकला, छन्द एवं अलंकार प्रयोग के बारे में विद्यार्थियों को सम्यक् परिज्ञान कराना ही इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है। इस इकाई को पढ़कर छात्र कविताकामिनी का विलास महाकवि कालिदास की भाषा शैली, उनकी काव्यकला तथा उनके द्वारा प्रयुक्त छन्द एवं अलंकार प्रयोग के बारे में जान सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप कालिदास की भाषा–शैली, उनकी काव्यकला तथा काव्य में उनके द्वारा छन्द एवं अलंकार प्रयोग के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई में कालिदास की भाषा–शैली के बारे में सोदाहरण विस्तृत चर्चा की गई है। कालिदास की काव्यकला का भो सोदाहरण वर्णन किया गय है। इस इकाई में कालिदास क छन्द एवं अलंकार प्रयोग की भो सोदाहरण विवेचना की गई है। इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् छात्र कालिदास की भाषा–शैली, उनकी काव्यकला तथा छन्द एवं अलंकार प्रयोग के बारे में जान सकेंगे।

2.2 कालिदास का कविरूप में सामान्य परिचय

महाकवि कालिदास के विषय में कोई भो प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में, महाकवि बाण के समान अपने जीवन के विषय में कोई सामग्री नहीं दी। कुछ किवदन्तियों के आधार पर कालिदास के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

कालिदास के जन्मस्थान के विषय में भो पर्याप्त मतभद है। काश्मीर के विद्वान् उनको काश्मीरी सिद्ध करते हैं। बंगाल के विद्वान् बंगाली और उज्जैन के विद्वान् उज्जयिनी निवासी।

कालिदास के ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि वे जन्मना ब्राह्मण थे और शिवभक्त थे। अन्य देवों के प्रति भो उनका आदर भाव था। रघुवंश और मेघदूत के वर्णनों से ज्ञात होता है कि उन्होंने भारत की विस्तृत यात्रा की थी।

अपने जीवनकाल में ही उन्हें विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हो गई थी। उन्होंने स्त्री–सौन्दर्य का वर्णन किया है, किन्तु वे कामुकता और विषय–वासनामय जीवन को श्रेयस्कर नहीं मानते। वे शारीरिक सौन्दर्य पर आश्रित प्रेम को वास्तविक प्रेम नहीं मानते, अपितु हार्दिक और तपोमूलक प्रेम को ही प्रेम मानते हैं।

कालिदास की सात रचनाएँ प्रसिद्ध हैं (क) नाटक– (1) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (2) विक्रमोर्वशीयम्, (3) मालविकाग्निमित्रम्, (ख) काव्य ग्रन्थ– (4) रघुवंश, (5) कुमारसंभव, (ग) गीति–काव्य (6) मेघदूत (7) ऋतुसंहार। इनके अतिरिक्त कुछ कृतियाँ भो कालिदास की रचना बताई जाती है (1) कालस्तोत्र, (2) राक्षस काव्य, श्रुतबोध। इकतालीस ग्रन्थ कालिदास की रचना बताये जाते हैं। वस्तुतः उपर्युक्त सात ग्रन्थों को छोड़कर शेष रचनाएँ आद्य कालिदास की न होकर परवर्ती कालिदास उपमान वाले कवियों की रचनाएँ हैं क्योकि भाव, भाषा, शैली, प्रौढ़ता आदि की दृष्टि से न्यून स्तर की है।

कालिदास की सभो रचनाओं को कालक्रम की दृष्टि से इस प्रकार रखा जा सकता हैः (1) ऋतुसंहार, (2) कुमारसंभव, मालविकाग्निमित्रम्, (4) विक्रमोर्वशीयम्, (5) मेघदूत, (6) रघुवंश, (7) अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

2.3 कालिदास की भाषा–शैली

कालिदास ने भाव–सौष्ठव आदि के साथ ही भाषा सौष्ठव, पद–लालित्य एवं प्रांजलता पर भो पूरा ध्यान दिया है। कालिदास की भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि उसकी भाषा रसानुकूल होती है। प्रकरण, प्रसंग, पात्र और वर्ण्य विषय के अनुरूप शब्दावली का चयन मिलता है। कहीं कहीं पर शब्द ध्वनि भाव ध्वनि की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार के पद माधुर्य के कारण उनके काव्यों में संगीतात्मकता और लयात्मकता के दर्शन होते हैं। उदाहरण स्वरूप निम्न श्लोक उद्धृत किए जा सकते हैं।

वाल्मीकि के आश्रम में परित्यक्त जानकी के शोक पर समवेदना प्रकट करते हुए मोरों ने नाचना, भमरों ने कुसुम रसास्वाद, मृर्गियों ने कुश चर्वण छोड़ दिया था।

नृत्यं मयूराः कुसुमानि भृंगा दर्भानुपातान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद् रूदितं वनेऽपि।।

वीररस के निम्न उदाहरण कवि ने अनुकूल पदावली के द्वारा युद्ध चित्र चित्रित किया है।

पत्तिः पदाति रथिनं रथेशस्तुरंगसादी तुरगाधिरूढम्।
यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्।।

उस युद्ध में सम–बलशालियों से समान शक्तिशालियों का संग्राम हुआ। पैदल से पैदल, रथी से रथी, अश्वारोही से अश्वारोही और गजारूढ से गजारूढ़ की भिडन्त हुई। श्रृंगार का भो भाषामूलक सौन्दर्य दृष्टव्य है। मधुयामिनी का रसास्वाद करते हुए दम्पती शिव–पार्वती को कैलाश पर्वत पर शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर ही उनके भाव–विलास को समीरित कर रहा था।

स्वर्वाहिनीवारिविहारचारी रतान्तनारीश्रमशान्तिकारी
तौ पारिजातप्रसवसंगों मरूत सिषेवे गिरिजागिरीशौ।।

इसमें अनुप्रासमूलक भाषासौष्ठव श्रुति सुखद है। कालिदास की भाषा उनके भावों का अनुगमन करती है। अनुप्रास, यमक आदि अनायास उनकी कविता में आते रहते हैं। कालिदास ललित भावों के कवि हैं। उनके काव्यों में कल्पना की उँची उडान, मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति और भाव सौन्दर्य पग–पग पर परिक्षित होता है।

कन्या सुलभ शालीनता और संकोच का सुन्दर वर्णन पार्वती के वर चयन के प्रसंग में मिलता है।

एवंवादिनि देवषौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।।

दम्पती के सुन्दर सम्बन्धों एवं समन्वयात्मक संपर्क की अभिव्यक्ति अज विलाप में परिलक्षित होती है।

कालिदास की सर्वाभिमुखी विश्व साहित्य में उन्हें अद्वितीय महत्त्व प्रदान करती है। संसार में शायद ही कोई ऐसा महान कवि है, जो श्रव्यकाव्य– खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, महाकाव्य तथा दृश्यकाव्य नाटक की रचना में समान रूप से निपुण एवं ख्यातनामा है। उनकी रचनाओं के उत्कृष्टता और लोकप्रियता का प्रधान कारण है– उनकी विलक्षण वर्णन शैली। अपनी इस विलक्षणता के कारण वे नीरस और बहुप्रसिद्ध कथानक को भो अत्यन्त रूचिकर आर मनोमुग्धकारी बना देते हैं।

कालिदास ने अपने सभो काव्य वैदर्भा रीति में लिखे है। आचार्य वामन वैदर्भा रीति को समग्र गुणों से संवलित बताते हैं– 'समग्रगुणा वैदर्भा।' आचार्य विश्वनाथ वैदर्भा का लक्षण इस प्रकार देते हैं–

माधुर्यव्यंजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।
आवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।

अर्थात् माधुर्य व्यंजक– ञ, म, ङ, ण आदि वर्णों से युक्त एवं समासरहित अथवा छोटे समासों से युक्त मनोहर रचना को वैदर्भा रीति युक्त कहते हैं।

इस दृष्टि से विचार करने पर कालिदास की रचनाओं में सर्वत्र ललित एवं मनोहर पदविन्यास के सन्निवेश तथा क्लिष्ट एवं कृत्रिम पदयोजना के परिहार से सहज, सुबोध एवं मनोरम शैली पाठकों के चित्त को आह्लादित कर देती है। दण्डी ने वैदर्भा शैली की सर्वप्रथम उद्भावना कालिदास के काव्य में बतायी है।

भावों के चित्रण में कालिदास की अनूठी शैली की झांकी जगह–जगह हम देखते हैं। अपरिमेय ब्रह्म की तुलना वे समुद्र से करते हैं। समुद्र दश दिशाओं को व्याप्त करके अवस्थित है। वह अलग–अलग समय में विभिन्न अवस्थाओं को ग्रहण करता है। इस कारण उसके रूप एवं परिमाण ज्ञान नहीं कर सकते हैं। इसी भाँति भगवान विष्णु ने भो नाना स्थावर जंगमात्मक रूप धारण कर अपनी महिमा से संपूर्ण जगत को व्याप्त कर लिया है। ज्ञात नहीं होता है कि उसका स्वरूप किस प्रकार का है एवं वह कितना बड़ा है।

तं तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा।।

ललित कोमल एवं सुकुमार भावों को अभिव्यंजना में कालिदास की शैली अनुपम है। इसी कारण महाकवि जयदेव ने प्रसन्नराघव में कालिदास को कविताकामिनी का विलास कहा है। शृंगाररस के दोनों पक्षों–संभोग एवं विप्रलम्भ का जैसा सूक्ष्म एवं मार्मिक तथा मनोरम वर्णन कालिदास ने किया है वैसा अन्य कवियों की रचना में दुर्लभ है। करूण एवं शान्त रस के वर्णन में भो कवि अत्यन्त सफल हुए है। कुमारसम्भव के रतिविलाप तथा रघुवंश के अजविलाप में करूण रस का चित्रण अत्यन्त मार्मिक है।

इन्दुमती के मृत शरीर को देखकर विलाप करते हुए अज कहते हैं। तुम मेरे घर को संभालने वाली गृहिणी थी, परामर्श देने वाली मित्र भो थी, एकान्त की सखी भो थी तुम ही गानविद्या आदि ललित कलाओं में प्रिय शिष्या भो थी। तुम्हीं कहो, तुम्हें छीन कर निष्ठुर विधाता ने मेरा क्या नहीं छीन लिया।

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्।।

वैदर्भा रीति का यह सुन्दर उदाहरण है। वास्तव में वैदर्भा रीति में कालिदास का विशिष्ट स्थान है –

वैदर्भीरीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते।

2.4 कालिदास की काव्यकला

कालिदास का प्रकृति चित्रण– कालिदास की कला का विकास ही प्रकृति चित्रण से आरम्भ होता है, महाकवि कालिदास ने ऋतुओं से मानवों पर पड़ने वाले प्रभावों का तथा उसके परिणामों का वर्णन किया है। प्रकृति का आलम्बन रूप में भो वर्णन किया है। मानव के साथ प्रकृति का समबन्ध है। मानव अपने सुख–दुख का रूप प्रकृति दर्पण में देखता है और प्रकृति भो मानव से संश्लिष्ट है। मानव के सुख में सुख का और उसके दुःख में दुःख का अनुभव करती है। कवि का विश्व प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल, गीतिकाव्य मेघदूत प्रकृति वर्णन के ही काव्य है। शाकुन्तल प्रकृति है। यक्ष और मेघ भो प्रकृति के ही रूप हैं।

कुमारसम्भव का हिमालय वर्णन प्रकृति के आलम्बन रूप के चित्रण का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है और प्रकृति के उद्दीपन रूप के लिए उनका ऋतुसंहार उल्लेखनीय है। कालिदास की दृष्टि में मानवीय सौन्दर्य का मापदण्ड प्रकृति ही है। कवि ने प्रायः सर्वत्र यही मान्यता प्रकट की है कि मानव सौन्दर्य से बढ़कर प्रकृति सौन्दर्य है और मानव सौन्दर्य की अभिवृद्धि प्रकृति–सौन्दर्य से ही होती है। कालिदास ने प्रकृति को कहीं भो मूक एवं निष्प्राण नहीं दिखलाया है, रघुवंश में राजा दिलीप को वन में जयध्वनि करने वाले सेवकों से रहित देखकर पार्श्वस्थ वृक्ष ही पक्षियों की ध्वनियों के व्याज से राजा के लिए जयध्वनि कर रहे थे।

उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः।

वायु से आन्दोलित लताएँ ही राजा के स्वागत के लिए उन पर फूलों की वर्षा कर रही थी।

अवाकिरन् बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः।

यह ठीक है कि शृंगार रस ही कालिदास का सर्वस्व भो है, प्रकृति चित्रण को देखकर यही कहना उचित जान पड़ता है कि महाकवि कालिदास पहले प्रकृति कवि है।

अलंकरण प्रसाधन मानवीय सौन्दर्य का वर्धक होता है और उससे दर्शकों के भावों की उद्दीप्ति होती है। कालिदास की दृष्टि में मानवीय सौन्दर्य के उपकरण प्रकृति से ही प्राप्त होते हैं। उनकी सभो रचनाओं में स्त्रियों के बाह्य अलंकरण प्रकृति से उपलब्ध पत्र पुष्प आदि ही देखे जाते हैं। अलकापुरी की नायिकाएँ हाथों में नीलकमल, अलकों में कुन्द के ताजे पुष्प, मुख पर लोध्र पुष्पों का पराग, कानों में शिरीष कुसुम धारण करती हैं। ये पुष्पाभरण उनके बाह्य सौन्दर्य के साथ–साथ दर्शकों में सरस भावों की उद्दीप्ति करते हैं। वहाँ कल्पवृक्ष स्त्रियोचित सभो प्रसाधन सामग्री रंग–बिरंगे वस्त्र, मधु, लाक्षाराग आदि को उत्पन्न करता है।

संयोगावस्था में जो प्रकृतिगत पदार्थ सुखकर प्रतीत होते हैं वही वियोगावस्था में दुःख कर जान पड़ने लगते हैं। उत्तर मेघ में विरहिणी यक्षिणो के चित्र इसके उदाहरण हैं। विरही यक्ष प्रकृति के विभिन्न उपकरणों में अपनी प्रियतमा के विभिन्न अंगों का दर्शन कर आश्वस्त होता है।

प्रियंगुलताओं पर अपनी प्रियतमा की शरीर यष्टि की, चकित हरिणियों की चितवन पर, दृष्टिक्षेप की, चन्द्रमा पर मुख कान्ति की, मयूरपुच्छ पर केशों की कल्पना कर सुखानुभ्ति करता है।

श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम्।

वस्तुतः कालिदास की प्रकृति में इतनी अधिक संवेदनशीलता है कि न केवल साक्षात प्रत्यक्ष रूप में ही, अपितु स्वप्न में जब अपनी विरहिणी प्रिया को देखकर यक्ष उसके आलिंगन का असफल प्रयास करने लगता है, तब उसकी इस दयनीय दशा को देखकर वन देवियाँ भो अश्रु गिराने लगती हैं।

प्रकृति से उपकृत मानव प्रकृति का भो यथाशक्ति उपकार करता है, रक्ताशोक सुन्दरी स्त्रियों के पाद प्रहार रूप दोहद प्राप्त करके ही विकसित होता है और वकुल वृक्ष कामिनी की मुख मदिरा के गण्डूष को ही प्राप्त कर विकसित होता है।

इससे स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि में प्रकृति और मानव का अन्तः एवं बाह्य दृष्टि से अन्योन्याश्रित
सम्बन्ध है। एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है प्रकृति का इस प्रकार का निरीक्षण जहाँ कालिदास के अविचल प्रकृति प्रेम को दिखलाता है। वहाँ यह कवि को प्रकृति कवि भो सिद्ध करता है।

कालिदास का सौन्दर्य एवं प्रेम चित्रण– कालिदास ने सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को
माध्यम बनाया है वस्तुत सौन्दर्य अनुभ्ति का ही विषय होता है, वाणी का नहीं। अतः इसकी अभिव्यक्ति का सुकुमार साधन प्रकृति से बढ़कर और हो भो क्या सकता था। यही कारण है कि कवि ने सर्वत्र सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिए प्रकृतिगत उपमानों का आश्रय लिया है और यह दिखलाया है कि प्रकृति सौन्दर्य ही वस्तुतः सौन्दर्य है। मानव में जो कुछ सुन्दर है वह प्रकृति की ही देन है। तथाकथित बाह्य प्रसाधन से प्रतीयमान सौन्दर्य सौन्दर्य नहीं कहा जा सकता। प्रकृति सुन्दर व्यक्ति या वस्तु के लिए बाह्य सौन्दर्य प्रसाधनों की आवश्यकता नहीं होती। ''किमिवि हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्'' सहज सौन्दर्य सभो अवस्थाओं में सुन्दर एवं मनोरम लगता है। ''सर्वास्वस्थासु रमणीयत्वमाकृति विशेषाणाम्'' प्रकृति प्रदत्त सौन्दर्य कभो क्षीण नहीं होता जबकि बाह्य प्रसाधन अपना महत्त्व खो देते है। वल्कलधारिणी भो शकुन्तला में प्रकृति ने अद्भत सौन्दर्य का आधार किया था, अतएव दुष्यन्त कहता है ''इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी और इसी मनोज्ञता की पुष्टि करता हुआ वह कहता है ''सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।''

कालिदास ने इसी प्रकार सर्वत्र मानवरूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृतिगत उपमानों को
माध्यम बनाया है। शकुन्तला के सौन्दर्य चित्रण में कवि की ऐसी कल्पनाएँ देखने को मिलती है–

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्।।

शकुन्तला ही नहीं, इन्दुमती, मालविका आदि जिस किसी भो नायिका का जहाँ कहीं भो कवि ने सौन्दर्य चित्रण किया है वहाँ उसके प्राकृतिक सौन्दर्य का ही चित्रण किया है, उसके जितने भो प्रसाधन हैं वे उसे प्रकृति से ही प्राप्त हुए हैं। रूप सौन्दर्य ही आकर्षण का प्रमुख कारण होता है। इसी सौन्दर्य में प्रेम का सूक्ष्म बीज सुरक्षित होता है जो आगे चलकर विशुद्ध प्रेम में पल्लवित एवं विकसित होता है। कालिदास प्रमुखतः श्रृंगार के कवि है और इस श्रृंगार का आलम्बन नारी सौन्दर्य ही है। कालिदास की प्रायः सभो रचनाओं में सौन्दर्य और प्रेम चित्रण की प्रमुखता है। कालिदास का प्रेम चित्रण अन्य कवियों की अपेक्षा उच्चकोटि का है। चंचल इन्द्रियज प्रेम पर उनकी आस्था नहीं है। उनकी दृष्टि में शारीरिक सौन्दर्य ही स्त्रियों का परम गौरव और चरम सौन्दर्य नहीं है और न ही शारीरिक सौन्दर्य सर्वत्र प्रेम का आधार ही हो सकता है। यदि ऐसा होता तो भगवती पार्वती अपने परम सौन्दर्य से भगवान शिव को आकृष्ट कर लेतीं, पर ऐसा नहीं हो सकता। इसलिए कामदेव भस्म कर दिये जाने पर भगवती पार्वती ने मन ही मन अपनी शारीरिक सौन्दर्य की निन्दा की और फिर घोर तपस्या द्वारा अपने रूप को सफल बनाने का प्रयास किया।

कालिदास ने यह बतलाया है कि यद्यपि प्रेम, रूप–सौन्दर्य उद्भत होता है तथापि उसे स्थायित्व तभो प्राप्त होता है जबकि उसके साथ निष्कपट भाव, सच्चरित्र, तप और त्याग की प्रबल भावना हो। कालिदास की दृष्टि से शारीरिक सौन्दर्य की परिणति सच्चे प्रेम में है। काम आदि कर्तव्य से विमुख करने वाला है, तो वह दण्डनीय है। उनकी सभो कृतियाँ स्पष्ट घोषणा करती हैं कि काम कर्तव्य का
विरोध नहीं और यदि कहीं वह ऐसा है तो वह भस्म कर दिया जायेगा।

इतना ही नहीं, कालिदास की दृष्टि में वह प्रेम नहीं जिसमें कोई बंधन नहीं कोई नियम न हो, त्याग न हो और मर्यादा का पालन न हो। उनकी दृष्टि में प्रेम की परिणति दाम्पत्य प्रेम

में होती है। भमरवृत्ति का प्रेम अन्ततोगत्वा दुःख और पश्चाताप का ही कारण बनता है। कालिदास की सभो कृतियों में ऐसे ही आदर्श प्रेम का चित्रण किया गया है।

कालिदास का आदर्श सौन्दर्य कभो गुणविहीन भो नहीं होता। उसकी मान्यता है कि जहाँ सच्चा सौन्दय होगा वहाँ गुण भो अवश्य होगे। ''न तादृशा आकृति–विशेषा गुणविरोधिनी भवन्ति'' कालिदास यह भो मानते हैं कि सच्चे सौन्दर्यशाली की प्रवृत्ति कभो कामुकता या पाप की ओर नहीं होती, उसका उपयोग शील और सदाचार, तथा इसका फल पति–प्रेम प्राप्त करने में होता है। कुमारसम्भव में कवि इसी तथ्य की ओर संकेत करता है–

''यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।''

कालिदास ने भो शृंगार की दोनों अवस्थाओं संयोग और वियोग का वर्णन किया है। उनकी मान्यता है कि यद्यपि– संयोग और वियोग दोनों ही में एक समान रहता है तथापि वह वियोगावस्था में और भो अधिक तीव्र और घनीभ्त हो जाता है। प्रेमी ह्रदयों की परख संयोगावस्था की अपेक्षा वियोगावस्था में ही अधिक स्पष्ट होती है। प्रेम की तीव्रता और गहनता जितनी वियोग में होती है उतनी संयोग में नहीं। यही कारण है कि संयोग की अपेक्षा वियोग का ही अधिक वर्णन किया है। प्रेम का जितना स्पष्ट प्रकाशन वियोग में होता है उतना संयोग में नहीं। इसलिए कालिदास ने कहा है ''सनेहानाहुः किमपि विरहेर्ध्वसिन स्तेत्वाभोगादिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।'' लोग कहते हैं कि दो प्रेमी ह्रदयों के दूर–दूर हो जाने पर कालान्तर में उनमे प्रेम शैथिल्य हो जाता है पर कालिदास की मान्यता है कि ऐसा नहीं अपितु प्रेम वियोगावस्था में प्रियजन के विषय में भोग के अभाव में और अधिक संचित रस से सबल होकर घनीभ्त हो जाता है। भोगावस्था में परिभक्त होकर भले ही वह शिथिल हो जाये पर वियोग में तो वह अभाव के कारण और अधिक बढ़ जाता है।

कालिदास की कृतियों में यह तत्त्व उत्तरोत्तर विकसित हुआ है और इसी विकास क्रम में उनकी रचना में प्रेम के विविध रूपों की अभिव्यंजना हुई है। ऋतुसंहार में प्रेम का वही उदात्त स्वरूप देखने को नहीं मिलता, मेघदूत शाकुन्तल रघुवंश आदि कृतियों में उपलब्ध होता है। ऋतुसंहार में चित्रित प्रेम वस्तुतः वासनात्मक एक एन्द्रिक है। वहाँ शील सौन्दर्य या चरित्र सौन्दर्य या भाव सौन्दर्य को स्थान नहीं मिलता।

मालविकाग्निमित्रम् में यह प्रेम कुछ और अधिक परिष्कृत हो सका है और विक्रमोर्वशीयम् में और भो आगे बढ़कर ह्रदय की भ्मि का भो स्पर्श करता हुआ उपलब्ध होता है। कुमारसम्भव में उसकी परिणति उदात्त, शील सौन्दर्य हेतुक आध्यात्मिक प्रेम के रूप में दिखलाई गई है।

अभिज्ञानशाकुन्लम् में रूप सौन्दर्य नगण्य हो जाता है अतएव शाकुन्तल में दुष्यन्त शकुन्तला को देखकर उसे शुद्धशीला कहता है। स्पष्ट है कि प्रेम के विषय में कालिदास की मान्यता है कि जो प्रेम बाह्य सौन्दर्य पर आधारित होता है वह वासनात्मक एवं क्षणिक होता है किन्तु इस वासना के दूर होने पर शील सौन्दर्य पर आधारित जो प्रेम उत्पन्न होता है।

कालिदास के काव्य की अन्य विशेषताएँ –

काव्य की आत्मा क्या है? आनन्दवर्धनाचार्य ने काव्यात्मा को ध्वनि या व्यंग्यार्थ बतलाया है। कालिदास का भो काव्य–नैपुण्य किसी बात को स्पष्ट शब्दों में कहने की अपेक्षा ध्वनित करने में भो देखा जाता है। उनके काव्य में रस भाव व्यंजना का ही प्राधान्य है।

काव्य के दो प्रमुख पक्ष होते हैं अनुभ्ति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष। इन्हें ही भावपक्ष और कलापक्ष कहा जाता है। इन्हीं से मिलकर उत्तम काव्य की सृष्टि होती है। इन दोनों पक्षों में एक पक्ष निर्बल होता हे तो उत्कृष्ट काव्य रचना नहीं हो सकती। कालिदास में ये दोनों ही पक्ष सबल हैं।

कालिदास प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे और उन्होंने विविध अनुभ्ति क्षेत्रों से काव्योचित अनुभ्तियाँ भो प्राप्त की थीं। उनकी कृतियों में जहाँ गहरी लोकानुभ्ति मिलती है वहाँ दूसरी ओर उनमें सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण भो देखने को मिलता है और सबसे अधिक अनुभ्ति क्षेत्र है। शास्त्रों का अध्ययन जहाँ से उन्होंने अपनी कृतियों के लिए विषय संकेत ग्रहण किये हैं और फिर अपनी प्रतिभा के बल पर उन्हें काव्योचित रूप प्रदान किया है।

गहरी और व्यापक अनुभ्ति के कारण ही कालिदास का कवित्व क्षेत्र इतना व्यापक है कि जिस प्रकार वे श्रव्य काव्य लिखने में सफल हुए हैं उसी प्रकार दृश्य काव्य लिखने में भो।

अपने व्यापक अनुभत्यात्मक ज्ञान के कारण ही महाकवि कालिदास रघुवंश जैसे सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य को लिखने में समर्थ हो सके हैं। इसी प्रकार नाट्यकला में भो वे अद्वितीय मान गये हैं यद्यपि उनकी रचनाओं में श्रृंगार की ही प्रधानता है तथापि महाकाव्य के लिए अपेक्षित अन्य रसों का भो उनकी रचनाओं में सुन्दर परिपाक हुआ है। रघुवंश के दिलीप और सिंह के सम्वाद तथा इन्द्र और रघु के युद्ध वर्णन प्रसंग में वीररस की सुन्दर अभिव्यंजना देखी जा सकतो है।

श्रृंगार रस के क्षेत्र में तो कालिदास अद्वितीय हैं। कालिदास स्त्री हृदय के इतने कुशल पारखी हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने उसके अन्तर में प्रवेश कर मानो उसकी सभो भाव प्रकाशिनी आंगिक चेष्टाओं का ही नहीं, उसकी परिस्थित्यनुकूल परिवर्तित होने वाली सभो मनःस्थितियों का भो सूक्ष्म निरीक्षण कर लिया हो। वे कहते हैं– 'स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभमो हि प्रियेषु, ''आशावन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङंगनानां सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रूणद्धिः संभोगे वा हृदयचितारम्भमास्वादयन्तो प्रायेणते रमणविरहेऽवडगनानां विनोदाः'' कालिदास की स्त्री हृदय विषय निपुणता के ऐसे ही अनेक उदाहरण उनकी रचनाओं से उद्धृत किए जा सकते हैं।

इस प्रकार लोक जीवन की बाह्य और आंतरिक अनुभ्ति के बल पर कालिदास ने विविध रसों एवं भावों की सफल अभिव्यक्ति की है। परम्परागत शास्त्रों के अध्ययन और मनन द्वारा कालिदास ने जो अनुभ्ति प्राप्त की है, उसके भो इनकी रचनाओं में अनेक उदाहरण देखे जाते हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति, आदर्श और धर्म, तप, त्याग आदि के उत्तमोत्तम चित्रण मिलते हैं जो उनकी रचनाओं में ऐसे उदाहरण देखे जा सकते हैं।

''धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता''

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण उनके शास्त्र ज्ञान के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। महाकवि कालिदास ज्योतिष, नीतिशास्त्र आदि अनेक विषयों के पूर्ण ज्ञाता थे।

कवि की लोकदर्शनजन्य अनुभ्ति का परिचय हमें सूक्तियों में देखने को मिलता है। कवि की ये सूक्तियाँ जहाँ उनके अर्थगाम्भोर्य एवं नीतिज्ञता की परिचायक हैं वहाँ इनसे दूसरी ओर कवि के अगाध पांडित्य का उसकी नीति व्यवहार कुशलता का भो परिचय मिलता है। कवि की ये सूक्तियाँ किसी वर्ग विशेष से सम्बद्ध न होकर सभो के लिए समान रूप से उपयोगी हैं। अर्थान्तरन्यास दृष्टान्त आदि अलंकारों का सहारा लेकर लिखी गई सूक्तियाँ मानवीय चेष्टाओं एवं उनके आचार–विचारों को प्रकाशित करने वाली हैं। इनमें कवि की भाषा विषयक समाहार शक्ति एवं व्यंजनापटुता का भो दर्शन होता है। सूक्तियाँ उदारता आदि सद्वृतियों को भो प्रकाशित करती हैं और मानव कल्याणपरक हैं। कुछ सूक्तियाँ यहाँ दृष्टव्य है।

क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधते।
न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।
न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।
प्रसादचिन्हानि पुरः फलानि।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।

इसी प्रकार कालिदास की व्यापक एवं गहरी अनुभ्ति के फलस्वरूप उनकी रचनाओं में विविध रसों एवं भावों तथा मधुर व्यंजनाओं की प्रधानता है इसी की प्रधानता से वे संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।

महाकवि कालिदास के अभिव्यक्ति पक्ष की सबसे बड़ी विशेषता व्यंजनात्मक शैली ही है। व्यंजना के अभाव में उत्तम काव्य हो ही नहीं सकती। इसी व्यंजना के सहारे कालिदास ने

अपनी रचनाओं में अत्यल्प शब्दों में मानवीय भावनाओं के विशाल चित्र प्रस्तुत किए हैं। कुमारसम्भव के उस स्थल पर जहाँ कि देवर्षि नारद पार्वती के पिता हिमालय से उमा और शिव के विवाह के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे और पार्वती जी भो वहीं अपने विवाह के सम्बन्ध में वह वार्तालाप सुनती हुई नीचे मुख किये हुए बैठी थीं, कवि ने उस समय उनके हृदयगत भावों की सुंदर व्यंजना की है ''इति वादिनी देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी। लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।'' यहाँ कवि ने केवल इतना ही कहा है कि पार्वती नीचे मुख किये हुए नील कमल के पत्तों को गिन रही थीं। किन्तु इस कथन से कवि ने उसके स्वाभाविक कन्याजनोचित लज्जा भाव, की शिव के प्रति उनके अगाध प्रेमभाव की तथा अपने हृदय के आनन्दातिरेक के गोपन की प्रवृत्ति की बड़ी ही सुंदर व्यंजना की।

2.5 कालिदास द्वारा प्रयुक्त छन्द

रघुवंश और कुमारसंभव के विश्लेषण से लगता है कि कालिदास को छोटे छन्द अधिक प्रिय थे। बड़े छन्दों का प्रयोग सर्गान्त में किया गया हौ। छोटे छन्दों में भो उपजाति और अनुष्टुप् अतिप्रिय छन्द है।

छन्दोयोजना– छन्दोयोजना भो काव्यार्थ के उत्कष में महत्त्व रखती है। विभिन्न रसों की व्यंजना के लिए भिन्न–भिन्न छन्द उपयुक्त सिद्ध होते हैं। महाकवि क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्ततिलक' में लिखा है–

काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित्।।

अर्थात् काव्य में रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार छन्दों का सोच–समझकर विनियोग करना चाहिए। रीतिग्रन्थ के रचयिताओं ने काव्य दोषों की गणना करते समय 'हतवृत्तता' नामक दोष भो गिनाया है। कालिदास ने छन्दों के प्रयोग में विशेष सतर्कता दिखाई है। 'ऋतुसंहार' में उन्होंने 'उपजाति', 'वसन्ततिलका' तथा 'मालिनी' छन्दों का अधिक प्रयोग किया हौ। 'कुमारसम्भव' में उपजाति, 'मालिनी', 'वसन्ततिलका', 'अनुष्टुप्', 'पुष्पिताग्रा', 'वंशस्थ', 'रथोद्धता', 'शार्दूलविक्रीड़ित', 'हरिणी' तथा ''वैतालीय' छन्दों की योजना की गयी है। 'रघुवंश में 'अनुष्टुप्', 'प्रहर्षिणी', 'उपजाति', 'मालिनी', 'वंशस्थ', 'हरिणी', 'वसन्ततिलका', पुष्पिताग्रा', वैतालीय', 'तोटक', मन्द्राक्रान्ता', द्रुतविलम्बित', 'शालिनी', 'औपच्छन्दसिक', 'रथोद्धता', 'स्वागता', 'मत्तमयूर', 'नाराच' एवं 'प्रहर्षिणी' छन्दों का विनियोग हुआ है। वृत्तों की यह विविधता 'रघुवंश' जैसे महाकाव्य की व्यापक वस्तु के सर्वथा उपयुक्त है।

'मेघदूत' आद्योपान्त 'मन्दाक्रान्ता' में लिखा गया है और वह माधुर्य से ओतप्रोत बन गया है। 'मन्दाक्रान्ता' के प्रयोग का इस काव्य में विशेष कारण है। इसका प्रारम्भ वर्षा ऋतु से होता है। 'वर्षा में मेघ के आगम से साधारण, प्रवासी का पथ भो आर्द्र बन जाता है और उसकी गति मन्थर हो जाती है।' क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्ततिलक' में कहा है कि वर्षा और प्रवास के प्रकरण में 'मन्दाक्रान्ता' विराजती है– 'प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्द्राक्रान्ता विराजते।'

2.6 कालिदास का अलंकार प्रयोग

कालिदास के काव्यों में अलंकार–विधान आयास साध्य न होकर अनायास सिद्ध है। पद–पद पर अनुप्रास, उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास और उत्प्रेक्षाओं के दर्शन होते है। यद्यपि यमक, अतिशयोक्ति, दीपक, व्यतिरेक, प्रतिवस्तूपमा, श्लेष, निदर्शना, एकावली, दृष्टान्त, विरोधाभास, परिणाम आदि अलंकारों के भो सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। तथापि आयास–साध्य होने के कारण कवि ने इनको महत्त्व नहीं दिया है। पांडित्य प्रदर्शक चित्रालंकारों का इनके काव्यों में सर्वथा अभाव है।

कालिदास ने रूपक, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा, विरोध आदि अलंकारों का प्रयोग मनोरम प्रकार से किया है तथापि उसकी उपमाओं की छटा अपना विशेष महत्त्व रखती है। इन उपमाओं का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। भौतिक जगत् के पृथिवी, आकाश, प्रातःसायं, सूर्य, चन्द्र, लता, वृक्ष, पशु, पक्ष, मणिमुक्ता आदि पदार्थ या दृश्य ही नहीं, किन्तु ज्योतिष, व्याकरण तथा दर्शनशास्त्र आदि भो उसके लिए उपमान जुटाने में कोष का काम करते हैं। शास्त्रीय

उपमाएँ यद्यपि साधारण पाठक के लिए रूचिकर तथा सुगम नहीं, तथापि विद्वानों के चित्त में वे कुछ चमत्कार अवश्य उत्पन्न करती हैं। भोतिक पदार्थों तथा दृश्यों पर आधृत उसकी उपमाएँ निःसंदेह बहुत सरल, सुंदर तथा स्वाभाविक है।

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्।।

कुछ उदाहरण देखिए–''गाय रूक जाती है, तो वह भो खड़ा हो जाता, वह चल देती, तो चल पड़ता, गाय बैठ जाती तो वह बैठ जाता और वह जल पीती तो वह भो जल पीने लगता। वह इस प्रकार छाया की तरह उसका अनुसरण करने लगा।'' किसी प्राणी के चेष्टाओं की नकल में छाया से बढ़कर कोई अन्य उपमान नही हो सकता।

इन्दीवरश्यामवपुर्नपोऽसौ एत्वं रोचनागौरशरीरयष्टिः।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु।।

स्वयंवर सभा में पाण्डयराज भो पधारे थे और वह श्यामवर्ण थे। जब इन्दुमती उनके सामने पहुंची तब सखी सुनन्दा उनका परिचय दे अन्त में बोली– ''यह महाराज नील–कमल के समान श्याम हैं और तुम गोरोचना सी गोरी। यदि इनसे विवाह कर लिया तो तुम दोनों की शोभा मेघ और उसमें चमकती बिजली को शोभा की तरह बढ़ जायेगी।'' इस श्लोक में उपमा के साथ मिले मधुर परिहास ने भो आपस में एक दूसरे की शोभा को बढ़ा दिया है। उपमा का आधार साधर्म्य है किन्तु यहाँ वह साधर्म्य भो श्याम और गौर इनके विरोध पर खड़ा है।

स्वयंवर–सभा में विराजमान राजाओं के सामने से चली जा रही इन्दुमती की समता कवि ने उस दीपक की शिखा से की है, जिसे लेकर कोई व्यक्ति रात में राजपथ पर चला जा रहा है। उसका प्रकाश जिस भवन पर पड़ जाता है, वह क्षणभर के लिए जगमगा कर फिर अंधकार में डूब जाता है। इस वर्णन को पढ़ते समय राजकुमारी उज्ज्वल गौर वर्ण तथा राजाओं के आशान्वित और निराश होने का पूरा चित्र एकदम सामने आ जाता है। सहृदयों को यह उपमा इतनी अच्छी लगी कि उन्होंने इसके कारण कवि का उपनाम दीपशिखा रख दिया।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्र मार्गादृ इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।।

इस प्रकार के तथ्य कथन को मनोहर ढंग से कहने की कला में विशेष कुशल हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रथम अंक में अनसूया राजा से पूछती है–आर्य ने किस राजर्षि के कुल को अलंकृत किया है? किस देश की प्रजा को अपने वियोग से विकलकर आर्य यहाँ पधारे हैं। और यह क्या कारण है जिससे आपके सुकुमार शरीर को भो इस तपोवन तक आने का कष्ट करना पडा।

आचार्य कुन्तक इसे वाक्यव्रकता कहकर वक्रोक्ति के अंतर्गत मानता है किन्तु दूसरे आचार्य से इर्यायोक्त अलंकार कहते है। कालिदास इसका इतना पक्षपाती है कि वह आना–जाना, खाना पीना देखना सुनना आदि को भो प्रायः इसी द्वारा प्रकट करता है।

संचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतंगस्य मुनेश्च धेनुः।।

राजा दिलीप तथा नन्दिनी धेनु अपनी मनोहर गति से तपोवन की ओर आने वाले मार्ग को अलंकृत कर रहे थे। अर्थात तपोवन को आ रहे थे। अपने संचार से दिनभर दिगन्तों को पवित्र करती, नवकिसलय सी अरूण सूर्य की आभा ने तथा मुनिजी की उस धेनु ने सांझ होते ही निल की ओर चलने का उपक्रम किया।

कालिदास के काव्यों में उपमा तथा पर्यायोक्त ही नहीं, किन्तु अन्य भो सब प्रधान अलंकार स्थान–स्थान पर पाये जाते हैं

रावणावग्रहक्लानतमिति वागमृतेन सः।
अभिवृष्य मरुत्सस्यं कृष्णमेघस्तिरोदधे।।

इस श्लोक में रावण का अनावृष्टि से, देवताओं का सस्य से, विष्णु का मेघ से तथा उसकी वाणी का जल से अभद प्रतिपादित किया गया है, अतः सांग रूपक है।

2.6.1 उपमा अलंकार प्रयोग

कालिदास के काव्य में सौन्दर्याधायक अलंकारों के प्रयोग में महाकवि कालिदास की विदग्धता विश्वविश्रुत है, किन्तु उपमा के नैपुण्य में तो वे अद्वितीय ही हैं। उनकी उपमानों में रसानुकूलता, संदभ अनुरूपता एवं अभिनव मनोहरता सर्वत्र दर्शनीय है। उनमें लिंग, वचन तथा विभक्ति के व्यतिक्रम का सर्वथा अभाव है। 'रघुवंश' में गोचारण के बाद आश्रम में लौटने पर नन्दिनी के पीछे खड़े राजा दिलीप और आगे स्वागत के लिए सुदक्षिणा के स्थित होने से मालूम पड़ता था कि दिन और रात के बीच सन्ध्या विराजमान हो –

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपमध्यगतेव सन्ध्या।।

यहाँ दिन और रात तथा उनके मध्य स्थित सन्ध्या उपमान हैं और दिलीप एवं सुदक्षिणा तथा उनके बीच शोभायमान नन्दिनी उपमेय हैं। विराजमान होना साधारण धर्म हैं और 'इव' उपमा वाचक शब्द है। इस प्रकार यहाँ मनोहारी पूर्णोपमालंकार है।

कालिदास की उपमाएँ रमणीय होने के साथ वास्तविक भो हैं। स्वयंवर के समय इन्दुमती द्वारा छोड़े जाने से उदास राजागण रात में दीपशिखा के आगे बढ़ जाने से अंधकार में डूबे राज भवन के समान वर्णित है।

शास्त्रीय उपमाएँ भो जहाँ तहाँ दृष्टिगत होती है। ब्राह्म सरोवर से निकलने वाली सरयू नदी की उपमा अव्यक्त से उत्पन्न होने वाली बुद्धि से दी गई है–

ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति।

कहीं–कहीं आध्यात्मिक उपमाएँ भो हैं। नन्दिनी के पीछे चलने वाले दिलीप की तुलना श्रुति का अनुसरण करने वाली स्मृति से दी गई है–

श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में शकुन्तला को पतिगृह भजने के बाद महर्षि कण्व की तुलना किसी की धरोहर लौटा कर चिन्तामुक्त व्यक्ति से की गई है, क्योंकि कन्या तो पराई सम्पत्ति होती है–

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।

उपमान के रूप में नदियों और पहाड़ों को बिल्कुल सटीक रूप में रखते हुए कालिदास की उपमा कुतूहल उत्पन्न कर देती है। ब्रह्मचारी के मुख से शिव की निन्दा सुनकर पार्वती क्रोध से जब अन्यत्र जाने के लिए कदम बढ़ाती है तो सामने शिव को देखकर वह उसी तर न आगे बढ़ पाती है और पीछे हट पाती है, जैसे धारा के बीच में पहाड़ के आ जाने पर नदी न तो आगे बढ़ती है और न पीछे जाती है। यहाँ नदी से पार्वती की तुलना और पहाड़ से शिव की तुलना अत्यन्त ही उपयुक्त हैं –

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टि
र्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपमा के प्रयोग से सचमुच कालिदास काव्य जगत् में अपनी सानी नहीं रखते। अतः 'उपमा कालिदासस्य' यह उक्ति नितान्त संगत है।

महाकवि कालिदास अपनी अनुपम कल्पनाशक्ति के कारण शब्द चित्रों को रूपायित करने में अत्यन्त पटु हैं। वे मानव हृदय की कोमल भावनाओं तथा उसकी उत्सुकता एवं विह्वलता के चित्रण में बहुत ही निपुण है।

2.6.2 अर्थान्तरन्यास प्रयोग

कालिदास की उपमाओं में जो भावाभिव्यक्ति और रस–सौन्दर्य मिलता है उसके समकक्ष ही अर्थान्तरन्यास की ज्ञानधारा भो बहती है। कुछ अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में अत्यन्त प्रचलित हो गए हैं

'अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते।'

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्कः।।

रत्नराशि हिमालय की शोभा को हिम नष्ट नहीं कर सका, जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक छिप जाता है उसी प्रकार गुण–समूह में एक दोष भो छिप जाता है।

इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां
शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्।।

कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध एवं मनोरम अर्थान्तरन्यास निम्नलिखित है–

1. प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।
2. न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।
3. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
4. न रत्नमन्विष्यतिमृग्यते हि तत्
5. मनोरथानामगतिर्न विद्यते
6. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।
7. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नो विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा।
8. मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्
9. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते।

अन्य अलंकारों में उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति रूपक, विरोधाभास, यमक आदि के भो सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में गंगा–यमुना–संगम वर्णन में उत्प्रेक्षाओं की सुन्दर माला अनुपम छटा प्रस्तुत करती है। केवल एक उत्प्रेक्षा उदाहरणार्थ प्रस्तुत है–

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्मांगरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्यागि विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगेः।।

यमुना की तरंगों से संश्लिष्ट गंगा ऐसी शोभित हो रही है, मानो साक्षात् शिव की मूर्ति हो जो एक ओर कृष्ण सर्पों से वेष्टित हो और दूसरी ओर भस्म लेप से अलंकृत दिखलाई पड़ती है।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

वैदर्भी – अर्थात् माधुर्य व्यंजक– ञ, म, ङ, ण आदि वर्णों से युक्त एवं समासरहित अथवा छोटे समासों से युक्त मनोहर रचना को वैदर्भी रीति युक्त कहते हैं।

उपमा – प्रस्फुट सुन्दरं साम्यभुपमेत्यभिधियते ।

प्रस्फुट सुन्दर तथा साम्य को उपमा कहा जाता है ।

अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति – काव्य के दो प्रमुख पक्ष होते हैं अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष। इन्हें ही भावपक्ष और कलापक्ष कहा जाता है। इन्हीं से मिलकर उत्तम काव्य की सृष्टि होती है। इन दोनों पक्षों में एक पक्ष निर्बल होता हे तो उत्कृष्ट काव्य रचना नहीं हो सकती। कालिदास में ये दोनों ही पक्ष सबल हैं।

मन्दाक्रान्ता – 'मेघदूत' आद्योपान्त 'मन्दाक्रान्ता' में लिखा गया है और वह माधुर्य से ओतप्रोत बन गया है। 'मन्दाक्रान्ता' के प्रयोग का इस काव्य में विशेष कारण है। इसका प्रारम्भ वर्षा ऋतु से होता है। 'वर्षा में मेघ के आगम से साधारण, प्रवासी का पथ भी आर्द्र बन जाता है और उसकी गति मन्थर हो जाती है।

अर्थान्तरन्यास – कुछ अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में अत्यन्त प्रचलित हो गए हैं 'अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते।'

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कालिदास किसी रीति के प्रसिद्ध कवि हैं?
   (क) वैदर्भी (ख) गौडी
   (ग) पांचाली (घ) लाटी
2. कविताकामिनी का विलास किसे कहा जाता है?
   (क) भारवि (ख) माघ
   (ग) कालिदास (घ) श्रीहर्ष
3. मेघदूत खण्डकाव्य में प्रयुक्त छन्द कौनसा है?
   (क) मालिनी (ख) वसन्ततिलका
   (ग) मन्दाक्रान्ता (घ) हरिणी
4. गंगा–यमुना संगम वर्णन रघुवंश के किस सर्ग में है?
   (क) एकादश (ख) द्वादश
   (ग) त्रयोदश (घ) चतुर्दश
5. अर्थान्तरस्य विन्यासे.....विशिष्यते? रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये।
6. कालिदास की भाषा एवं शैली पर एक लेख लिखिये।
7. कालिदास की काव्यकला पर एक निबन्ध लिखिये।
8. 'उपमा कालिदासस्य' इस उक्ति की सोदाहरण विवेचना कीजिये।
9. ''अर्थान्तरस्यविन्यासे कालिदासो विशिष्यते'' इस उक्ति की सोदाहरण विवेचना कीजिये।

बोध प्रश्नोत्तर

1. (क) वैदर्भी
2. (ग) कालिदास
3. (ग) मन्द्राक्रान्ता
4. (ग) त्रयोदश
5. कालिदास
6. देखिये इकाई 2.3
7. देखिये इकाई 2.4
8. देखिये इकाई 2.6.1
9. देखिये इकाई 2.6.2

2.9 सारांश

कालिदास की भाषा, शैली, काव्यकला, छन्द, एवं अलंकार प्रयोग नाम से इस इकाई के अन्तर्गत छात्रों को कालिदास की बहुमुखी प्रतिभा से साक्षात्कार कराया जा सकेगा। इस इकाई में कालिदास की भाषा विषयक दृष्टि, शैली विषयक दृष्टि को सोदाहरण विवेचना की गई है। कालिदास की काव्यकला के अन्तर्गत कालिदास की प्रकृति, रस, रीति, गुण तथा

छन्द एवं अलंकार प्रयोग की सोदाहरण चर्चा की गई है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् छात्र कालिदास की बहुमुखी प्रतिभा से परिचय प्राप्त कर सकेंगे तथा साथ ही छात्रों को कालिदास विषयक साहित्य का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संस्कृत कविदर्शन– भोलाशंकर व्यास– चौखम्बा विद्याभवन, 2003.
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्– शास्त्री एवं त्रिपाठी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2011.
3. मेघदूत– बाबूराम त्रिपाठी, महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा, 1986.
4. मेघदूत– विजेन्द्र कुमार शर्मा, साहित्य भण्डार मेरठ,चतुर्थ संस्करण,1996.
5. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन वाराणसी,1953.
6. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा– पाण्डे एवं व्यास,साहित्य निकेतन,कानपुर, 2001.
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास– वाचस्पति गैरोला– चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1960.

इकाई–3

गीतिकाव्य / दूतकाव्य परम्परा : उद्‌भव,विकास एवं मेघदूत का स्थान

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 गीतिकाव्य का अर्थ एवं परिभाषा

- 3.2.1 गीतिकाव्य का अर्थ
- 3.2.2 गीतिकाव्य के प्रमुख तत्त्व
- 3.2.3 कवि हृदय से गीति की उत्पत्ति
- 3.2.4 गीतिकाव्य में भावान्विति

3.3 गीतिकाव्य के प्रमुख भद

- 3.3.1 मुक्तक गीतिकाव्य
- 3.3.2 प्रबन्ध गीतिकाव्य

3.4 गीतिकाव्यों का वर्ण्य विषय

3.5 गीतिकाव्य काव्य की विशेषताएं

- 3.5.1 भावप्रधानता एवं रागात्मकता
- 3.5.2 भाषा सरल एवं सुबोध
- 3.5.3 दीर्घकाय समासों से मुक्ति
- 3.5.4 प्रसाद एवं माधुर्य की प्रधानता
- 3.5.5 शृंगार, करूण एवं शान्त रस की व्यंजना
- 3.5.6 यथार्थता की अभिव्यक्ति
- 3.5.7 प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण
- 3.5.8 नारी सौन्दर्य की मार्मिकता
- 3.5.9 मानवीय भावनाओं का सजीव चित्रण
- 3.5.10 मधुरता एवं सरसता

3.6 गीतिकाव्य / दूतकाव्य परम्परा

- 3.6.1 संस्कृत गीतिकाव्यों के प्रमुख प्रकार
- 3.6.2 स्तोत्रकाव्य परिचय
- 3.6.3 शृंगारकाव्य या दूतकाव्य परिचय
- 3.6.4 दूतकाव्यों का रचनाकाल
- 3.6.5 दूतपरम्परा का वेदों में उल्लेख
- 3.6.6 रामायण महाभारत काल में दूतकाव्य परम्परा
- 3.6.7 बौद्धों की थेर गाथाओं में दूतकाव्य परम्परा
- 3.6.8 पाणिनी के पदों में गीतिकाव्य परम्परा

3.7 गीतिकाव्य उद्‌भव एवं विकास

- 3.7.1 गीतिकाव्यों का उद्‌भव
- 3.7.2 गीतिकाव्यों का विकास

3.8 गीतिकाव्यों में मेघदूत का स्थान

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.11 सारांश

3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में गीतिकाव्य का अर्थ उद्‌भव एवं विकास को स्पष्ट किया गया है। साथ ही गीतिकाव्यों में कालिदास के मेघदूत का क्या स्थान है उसे भो विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत आप जान रहे है कि गीति काव्य की परम्परा कब से प्रारम्भ हुई एवं प्रारम्भ में गीति काव्य का स्वरूप क्या था क्या वास्तव में जो स्वरूप आज मिलता है वही प्रारम्भिक समय में था या वेदों में गीति काव्य से सम्बन्धित जो तथ्य प्राप्त होते है जो तथ्य वर्तमान गीतिकाव्यों के परिप्रेक्ष्य में उचित है या नही गीतिकाव्य के अर्थ परिभाषा आदि को समझने के बाद आप यह भो जान सकेंगे कि गीतिकाव्य का विकास किस परम्परा से क्रमशः हुआ है। साथ ही गीतिकाव्यों की प्रमुख विशेषताए क्या क्या रही है इन्हें भो आप जान सकेंगे। इसके साथ ही प्रारम्भिक गीतिकाव्य कौन कौन से थे एवं उनमें प्रमुख गीतिकाव्य जैसेकि महाकाव्य मेघदूत नामक कालिदास विरचित गीतिकाव्य का क्या स्थान रहा है या मेघदूत को ऐसा क्या है। जिसके कारण वह प्रसिद्ध गीतिकाव्य की संज्ञा पा चुका है।

3.2 गीतिकाव्य का अर्थ एवं परिभाषा

3.2.1 गीतिकाव्य का अर्थ –

अंग्रेजी का एक शब्द है लायर जिसका अर्थ होता है वीणा या बीन इसी अंग्रेजी के शब्द से बना है। लिरिक जिसका अभिप्राय है वीणा का या गायन सम्बन्धी, या गायन रूप की कविता या गीतिकाव्य। अतः स्पष्ट है कि गेय पद की वीणा वाद्य से संगति प्रकट होती है। संस्कृत में गीति शब्द गै धातु से भाव अर्थ में क्तिन् प्रत्यय करने पर बनता है जिसका अर्थ है गीत या गाना महाकवि कालिदास ने गीति शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।

3.2.2 गीतिकाव्य के प्रमुख तत्व –

वर्तमान समय में सामान्यतया गीति का अर्थ गाना समझ लिया जाता है जिसमें साज शृंगार, गायन–वादन की प्रमुखता रहती है वह गीति है। लेकिन साहित्यशास्त्रा में गीति से अभिप्राय रागात्मक भावना को छंदबद्ध रूप में प्रकट करना है। जिस प्रकार से धुएं में अग्नि का होना अनिवार्य है ठीक वैसे ही गीतिकाव्य में रागात्मकता, ध्वन्यात्मकता गेयात्मकता का होना अनिवार्य है।

डॉ. दशरथ ओझा ने गीतिकाव्य को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है –

1. जिस छंदबद्ध रचना में भावातिरेक की धारा इस रूप में प्रवाहित हो कि उसमें स्वर लहरियाँ स्वभावतः तरङ्गायित हों।
2. जिसमें कवि या पात्रा की रागात्मकता उसके व्यक्तित्व के साथ मिलकर आत्म निवेदन के रूप में प्रकट हो।
3. जिसका आयतन इतना ही बडा हो कि उसमें कवि की रागात्मकता का प्रवाह शिथिल न पड़ने पाये।

4. जिसमें घटना वर्णन को गौण किन्तु भावना को उच्चतम आसन प्राप्त हो जिस काव्य में एक लय या एक ही भाव के साथ साथ एक ही निवेदन एक ही रस एवं एक ही परिपाटी हो वह गीतिकाव्य है।

3.2.3 कवि हृदय से गीति की उत्पति –

गीति की आत्मा भावातिरेक है। जब कवि अपने वर्ण्य विषय को रागात्मकता से भावात्मक बना देता है तो वह काव्य गीतिकाव्य का स्परूप ले लेता है। कवि के द्वारा की जाने वाली गीतियों का निर्माण सामान्य परिवेश में नहीं होता है जब कवि का हृदय सुख या दुःख के तीव्र अनुभवों से प्लावित हो जाता है तब वह अपनी हार्दिक भावना को बाह्य अभिव्यक्ति के रूप में परिणत करता है। इस प्रकार से कवि अपनी स्वगम्य अनुभूति को परगम्य (अर्थात् दूसरे को अनुभूत होने वाली) अनुभूति बनाता है। परगम्य बनाने के लिए कवि भावों से युक्त एवं रस युक्त उक्तियों का सहारा लेता है ये उक्तियां ही गीतियाँ कहलाती है।

3.2.4 गीतिकाव्य में भावान्विति –

गीतिकाव्य में भावों को अन्वेषण होने के साथ साथ 'भावान्विति' होनी चाहिए। गीतिकाव्य में किसी भो एक भाव को केन्द्र में स्थित होना चाहिए। काव्य के अन्य भाव इस केन्द्रस्थ भाव की सहायता कर इसे पुष्ट बनाते हैं। गीतिकाव्य के विषय के लिए कवि को बाहर जाने की आवश्यकता नहीं होती है।

अलंकारशास्त्र के अनुसार काव्यमात्रा के लिए रसात्मकता अपेक्षित गुण है लेकिन गीतिकाव्य के लिए तो यह अनिवार्य है। जिस गीतिकाव्य में रसात्मकता का अभाव पाया जाता है वह कदापि गीतिकाव्य की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता है।

3.3 गीतिकाव्य के प्रमुख भेद

3.3.1 मुक्तक गीतिकाव्य –

संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य मुक्तक तथा प्रबन्ध दोनों प्रकार से उपलब्ध होता है

जो काव्य सन्दभ आदि बाह्य उपकरणों से मुक्त होकर स्वयं रसपेशल बाह्य सामग्री की अपेक्षा नहीं होती है। इसमें प्रत्येक श्लोक पूर्णतया स्वतन्त्र होता है। जैसा कि आनन्दवर्धन ने कहा है–

''पूर्वापर निरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तम्''

अर्थात् स्पष्ट है कि मूक्तक काव्य को समझने के लिए पूर्वापर प्रसंग की अपेक्षा नहीं होती है। मुक्तक काव्य के एक ही पद्य या श्लोक में पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। अमरूक अथवा भर्तृहरि के पद्य मुक्तक काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं।

3.3.2 प्रबन्ध गीतिकाव्य –

प्रबन्ध गीतिकाव्य से अभिप्राय है कि जिसका कथानक प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक ही रहता है। जिसका प्रत्येक श्लोक अर्थ का बोध कराने के लिए आगे व पीछे के श्लोकों की अपेक्षा रखता है। रस की पुष्टि के समर्थक आनन्दवर्धन की इस उक्ति को मानते हैं।

''मुक्तकेषु हि प्रबन्धेषु इव रसबन्धनाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते।''

अर्थात् प्रबन्धकाव्यों के समान मुक्तक काव्यों में भो रस के प्रति अनुरक्ति दिखाने वाले कवि लोग देखे जाते हैं। गीतिकाव्यों में कालिदास विरचित मेघदूत एवं जयदेव कृत 'गीतगोविन्द' का प्रमुख स्थान है।

3.4 गीतिकाव्यों का वर्ण्य विषय

गीतिकाव्यों में विशेषकर श्रृंगार, नीति, वैराग्य एवं प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन प्राप्त होते हैं। गीतिकाव्यों में कोमल भावों की अभिव्यक्ति इस प्रकार की हुआ करती है कि रसिक हृदय को अनाभास ही अपनी और आकृष्ट कर लेती है। इन काव्यों में प्रकृति का चित्रण तो इस प्रकार होता है मानो सजीव प्रकृति ही सामने हो। संयोग और वियोग दोनों ही अवस्थाओं में

यह काव्य अपने प्राकृतिक सौन्दर्य से पाठक के रसिक हृदय को प्रफुल्लित एवं विषाद की रेखा को गहरा बना देता है।

3.5 गीतिकाव्य की विशेषताएं

संस्कृत शब्द का परम स्मरणीय अंग गीतिकाव्य है। भावतत्व की प्रधानता इसकी आन्तरिक विशेषता है और गानोचित छन्दों का परिवेश बाह्य विशेषता हैं। ये गीतिकाव्य कुछ मुक्तक शैली में लिखे गये कुछ प्रबन्धात्मक शैली में। कालिदास का ऋतुसंहार जो कि मेघदूत से पूर्व रचना है गीतिकाव्य के उपर्युक्त द्विविध भदों से भिन्न है क्योंकि न तो उसमें एक कथा सूत्र है और न उसका प्रत्येक पद्य मुक्तक ही है। क्योंकि इसके प्रत्येक सर्ग में एक एक ऋतु का वर्णन है अर्थात् यहाँ प्रत्येक सर्ग का पद्य समूह एक निबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया गया है अतः इसे निबन्धात्मक गीतिकाव्य कहा जाता है।

प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य विषय की दृष्टि से मेघदूत के आधार पर लिखे गये हैं। जिन्हें दूतकाव्य या संदेशकाव्य भो कहा जाता है। इसी प्रकार मुक्तक नीति काव्य प्रेम या श्रृंगार, भक्ति या धर्मदर्शन अथवा लोकगीति के विषय को लेकर लिखे गये जिन्हें श्रृंगार मुक्तक, स्तोत्र मुक्तक एवं नीति मुक्तक कहा जाता है। गीतिकाव्य की विशेषताओं को निम्न बिन्दुओं में समावेशित किया जा सकता है।

1. भावप्रधानता एवं रागात्मकता
2. भाषा सरल एवं सुबोध
3. दीर्घकाय समासों से मुक्ति
4. प्रसाद एवं माधुर्य गुण की प्रधानता
5. श्रृंगार करूण एंव शान्त रस की व्यंजना
6. यथार्थता की अभिव्यक्ति
7. प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण
8. नारी–सौन्दर्य की मार्मिकता
9. मानवीय भावनाओं का सजीव चित्रण
10. मधुरता एवं सरसता

3.5.1 भावप्रधानता एवं रागात्मकता –

सुख या दुःख की भावभयी अवस्थाओं का चित्रण ही गीतिकाव्यों का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय होता है दुखात्मक या सुखात्मक भावों की तीव्रतम अनुभ्ति ही गीतिकाव्य को जन्म देती है कवि की इस प्रकार की अनुभ्ति जब तीव्र से तीव्रतम होकर रागात्मकता में परिवर्तित हो जाती है तो वह गीति की संज्ञा को प्राप्त होती है सम्पूर्ण गीतिकाव्य में एक ऐसी ही सुखात्मक या दुखात्मक भावानुभ्ति को सरस मधुर शब्दों में अभिव्यक्त पाकर पाठक भावविभोर हो उठता है इन गीतों में जो संगीतात्मकता होती है वह तो और भो श्रवण सुखद एवं गेय होने के कारण आकषक होती है।

3.5.2 भाषा सरल एवं सुबोध –

गीतिकाव्यों की भाषा सरल एवं सुबोध अर्थात् सरलता से हृदय गम्य होती है क्योंकि इनमें भावों की कोमलता, विचारों की सुसम्बद्धता एवं शिष्टता के साथ साथ निरोक्षण की नवीनता एवं कल्पना की चारूता रहती है। गीतिकाव्य के पद्य अलंकार शास्त्र की रूढ़ियों में बंधकर नहीं चलते है गीतिकार कोई भो मार्मिक भाव या विषय स्वेच्छानुकूल चुनकर अपनी भावनाओं के अनुसार अभिव्यक्त कर सकता है।

3.5.3 दीर्घकाय समासों का अभाव –

किसी भो काव्य में लम्बे लम्बे समास होने पर वह काव्य पाठक के लिए दुर्बोध हो जाता है लेकिन गीतिकाव्यों में ऐसा नहीं पाया जाता है बल्कि गीतिकाव्यों में छोटे–छोटे समास होते हैं जिसके कारण भाषा सरल एवं सुबोध हो जाती है। लम्बे समासों से भाषा में जटिलता

का समावेश हो जाता है। गीतिकाव्य का प्रत्येक पद्य स्वतंत्र होता है छोटे–छोटे शब्दों एवं समासों में निबद्ध होता है।

3.5.4 प्रसाद एवं माधुर्य की प्रधानता –

गीतिकाव्यों में गुणों की प्रधानता देखी जाती है लेकिन प्रसाद एवं माधुर्य गुण का प्राचुर्य देखा जाता है। इनकी प्रधानता के कारण ही गीतिकाव्य सहृदय की रूचि का विषय बन जाते हैं।

3.5.5 शृंगार, करुण एवं शान्त रस की व्यंजना –

गीतिकाव्यों का वर्ण्य विषय प्रमुखतः शृंगार, नीति अथवा धर्म होता है यद्यपि कुछ गीतिकाव्यों में प्रकृति सौन्दर्य और उसके प्रभाव का भो चित्रण देखा जाता है फिर भो चाहे विषय कोई भो हो उसे प्रकृति से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। गीतिकाव्य की धारा में शृंगार प्रधान गीतिकाव्य अधिक लिखे गये। जिनमें स्वभावतः रमजी सौन्दर्य बडी ही स्फुटता मनोज्ञता और सुन्दरता के साथ चित्रित हुआ है। शृंगार की भिन्न–भिन्न कामदशाओं का चित्रण इन काव्यों में मिलता है।

3.5.6 यथार्थ अभिव्यक्ति –

गीतिकाव्यों में कवि यथार्थ अनुभ्ति ही यथार्थ अभिव्यक्ति बनती है। इन काव्यों में प्रेम की अनेक मुद्राओं और भावनाओं के एक अंग का वर्णन करके इनमें अनुपम विभिन्नता, समृद्धि और सूक्ष्मता की सिद्धि की गई है। एक ही पद्य में जब समस्त भावों को समावेशित करने की स्थिति बनती है तो गीतिकाव्य में यथार्थता के समावेश का अवसर बढ़ जाता है।

3.5.7 प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण –

मानव सदैव प्रकृति की गोद में ही पला बढ़ा है अतः प्रकृति ने प्रारम्भ से ही मानव को प्रभावित किया है गीतिकाव्यों में प्रकृति का स्वाभाविक एवं सुन्दर वर्णन पाया जाता है। प्रकृति वर्णन में कवि पर्वतों वनस्पतियों और जीवन जन्तुओं आदि के दृश्य खींचता है। पुष्पों में कमल प्रमुख है तथा पक्षियों में मधुर, घातक, चकोर, कोकिल और चक्रवाक का नाम लिया जाता है।

3.5.8 नारी सौन्दर्य की मार्मिकता –

गीतिकाव्यों में मानवीय सौन्दर्य का मापदण्ड प्रकृति ही है कालिदास के शाकुन्तल में केशर वृक्ष के नीचे खड़ी हुई है शकुन्तला के कारण वह भो लता सनाथ सा प्रतीत होता है क्योंकि शकुन्तला की भजाएं उस लता की कोमल टहनियाँ हैं अवशेब्द की लालिमा किसलय की रक्तिमा है उसके अंग प्रत्यंग पर व्याप्त यौवन ही उसकी कुसम समृद्धि है। गीतिकाव्यों में नारी सौन्दर्य का अप्रतिम रूप देखने को मिलता है।

3.5.9 मानवीय भावनाओं का सजीव चित्रण –

गीतिकाव्य के विषय के लिए कवि अपने से बाहर नहीं जाता है प्रत्युत अपने हृदय के अन्तराल में स्थित स्वीम अनुभ्ति के द्वारा आत्मसात किये गये विषय को अपने व्यक्तित्त्व के रंग में रग कर वह इतनी सुन्दरता से इतने मोहक शब्दों में व्यक्त करता है कि वह उसकी अपनी चीज होती है विशुद्ध तथा परकीयत्व से नितान्त अभिथित। संक्षिप्तता तथा ज्ञेयता उसके अन्य उपलक्षण है कवि को गीति में वर्ण्य विषय के परिवृहण के लिए अवकाश नहीं होता कभो कभो भावना का आवेश इतना क्षणिक होता है कि कवि एक ही पद या पद्य में उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति कर देता है अनुभ्ति तथा अभिव्यक्ति के तारतम्य पर ही काव्य के परिमाण का प्रश्न आधारित रहता है। अतः स्पष्ट है कि गीतिकाव्य वह है जिसमें स्व अनुभ्त भावनाओं का सजीव चित्र उपस्थित होता है।

3.5.10 मधुरता एवं सरसता –

गीतिकाव्यों की प्रसिद्धि का मूल कारण यही विशेषता है क्योंकि इनमें मधुरता एवं सरसता का समावेश इस प्रकार होता है कि सहृदय अपने आनन्द से वंचित नहीं होता है एवं काव्य को अभो से आगे पढ़ने का उत्साह बढ़ता जाता है।

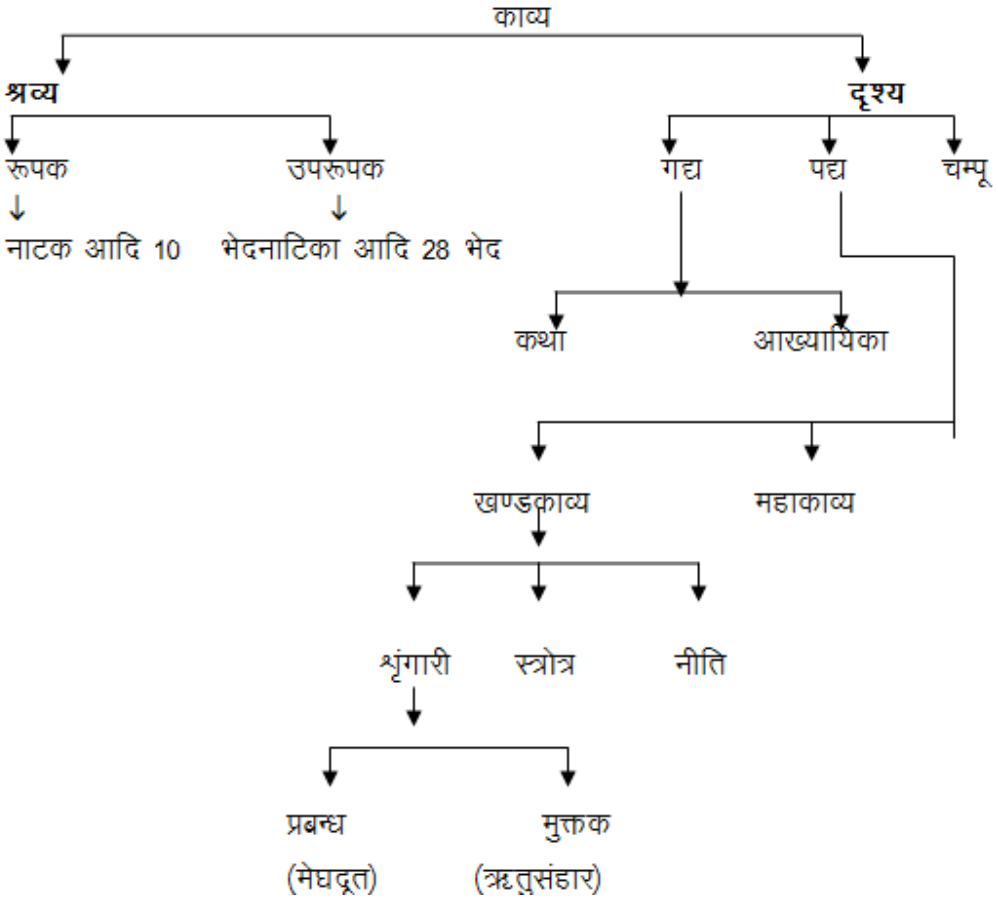
3.6 गीतिकाव्य / दूतकाव्य–परम्परा

3.6.1 संस्कृत काव्यों में नीतिकाव्य –

संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने वाक्यं रसात्मकं काव्यम् अर्थात् रसात्मक वाक्य को काव्य माना है। प्रयोग की दृष्टि से पुनः काव्य के दो भद किये है। –1. श्रव्य काव्य, 2. दृश्य काव्य। श्रव्य काव के पुनः तीन भद किये हैं – 1. गद्य काव्य 2. पद्य काव्य 3. चम्पू काव्य। जो गद्य में लिखा गया हो उसे गद्यकाव्य, जो पद्य में लिखा गया हो तो उसे पद्य काव्य तथा जो गद्य और पद्य दोनों में लिखा गया हो उसे चम्पू काव्य कहते हैं। गद्य काव्य के पुनः कथा और आख्यायिका ये दो भद किये गये है? तथा पद्य के भो दो भद महाकाव्य तथा गीतिकाव्य किये है। गीति–काव्य को ही खण्डकाव्य भो कहते हैं। चम्पू का कोई भद नहीं होता। गीति काव्य के पुनः विषय की दृष्टि से तीन भद किये है – स्त्रोत्रा सम्बन्धी तथा शृंगार सम्बन्धी स्तोत्र, नीति तथा शृंगार सम्बन्धी खण्डकाव्यों के यद्यपि प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूप संस्कृत–सहित्य में मिलते हैं परन्तु स्त्रोत्रा और नीति प्रायः मुक्तक के रूप में अधिक है। शृंगारिक खण्ड काव्यों में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूपो का समान रूप से प्रयोग किया गया है। कालिदास का मेघदूत और बिल्हण का चौर पंचाशिका प्रबन्धात्मक शृंगारिक खण्डकाव्य के तथा ऋतुसंहार और भर्तृहरि का शृंगार शतक मुक्तक शृंगारिक खण्डकाव्य के उदाहरण हैं।

काव्य का जो दूसरा भद दृश्य है उसके भो दो भद किये हैं–रूपक और उपरूपक। रूपक के पुनः नाटक, प्रकरण भाण, डिम, व्यायोग, सभवकार, ईहामृग, अंक बीथी और प्रहसन ये दस भद किये हैं, जबकि उपरूपक को अट्ठारह भदों में बाँटा गया है जो कि निम्न हैं–नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी , सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, बिलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाणिका।

तालिका के माध्यम से इनको और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है–



इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि मेघदूत खण्डकाव्य की श्रेणी में आता है, उसमें भो शृंगारी तथा शृंगारी में भो प्रबन्ध शृंगारी।

1. नाटक प्रकरण, भाण, डिम, व्यायोग, समवकार, ईहामृग, अंग, बीथी, प्रहसन।
2. नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश, भाणिका।

3.6.2 स्तोत्रकाव्य परिचय –

जिन काव्यों में आध्यात्मिक भावना से अभिभ्त होकर भक्तजनों के एकान्तिक हृदयोद्गार अथाह वेग से प्रवाहित होते हैं वे स्तोत्रकाव्य या भक्तिकाव्य कहलाते हैं।

3.6.3 शृंगारकाव्य या दूतकाव्य परिचय –

जिन गीति काव्यों में शृंगार की भावना का प्राधान्य है उन्हें संदेश काव्यों कहा जाता है। आत्म निवेदन की तीव्रानुभ्ति शृंगार काव्यों की विशिष्टता है। संस्कृत में ये शृंगार काव्य कई प्रकार से लिखे गये जिनमें दूत पद्धति के काव्य प्रमुख हैं। इन दूतकाव्यों में प्रेमी अथवा प्रेमिका का किसी दूत के माध्यम से अपने वियुक्त प्रणयी प्रणाम संदेश निवेदित होता है।

3.6.4 दूतकाव्यों का रचनाकाल –

परम्परा में मेघदूत और घटकपर काव्य आरम्भिक कृतियाँ हैं। इन दोनों के रचयिता क्रमशः महाकवि कालिदास और घटकपर कवि हुए इन दोनों काव्यों में किसकी रचना पहले हुई, इस सम्बन्ध में एक निश्चित मत अभो तक तय नहीं हो पाया है धन्वनतरि, क्षपणक अमरसिंह, शंकु, वैतालभट्ट घटकपर और कालिदास, इन सबको विक्रमादित्य की विद्वत्सभा का भ्षण माना गया है इस नामावली में घटकपर को पहले एवं कालिदास को बाद में रखा गया है। किन्तु यह पूर्वापर का यह सम्बन्ध उनकी स्थिति पद कोई भो विश्वसनीय प्रकाश नहीं डालता है। छन्द रचना की दृष्टि से भी कदाचित यह पूर्वापर का क्रम रखा गया है और इसके अतिरिक्त कथचित इसमें भो संदेह है कि 'ज्योतिर्विदाभरण' की उक्त बात ही सर्वथा कल्पित हो फिर भो इन दोनों काव्य ग्रंथों के अध्ययन से इतना निश्चित हो जाता है कि मेघदूत की भावानुभ्ति एवं उसके बाह्य शिल्प पर रामायण का और घटकपर काव्य पर महाभारत का प्रभाव है।

अपने काव्य की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए कवि ने स्वयं अपने काव्य के अन्त में (घटकपर काव्य) लिखा कि यदि कोई कवि मेरे काव्य से उत्तम काव्य की रचना कर देगा तो में घड़े के कपर (टुकडे) पर पानी भर कर ला दूंगा। सम्भवतया इसी घटना या कथन के आधार पर इस काव्य का नामकरण हुआ।

3.6.5 दूतपरम्परा का वेदों में उल्लेख –

मेघदूत जैसे काव्यों को संदेश काव्य या दूत काव्य भो कहा जाता है इसका भो संकेत ऋग्वेद के उस स्थल पर मिलता है जहाँ सरमा नामक एक कुत्ते को सन्देशवाहक के रूप में भजा गया है। वेद मन्त्रों में कोमल भावनाओं की प्रधानता देखो जाती है साथ ही काव्य गत उदाहरण भो प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त सभो तथ्यों से यह निश्चित हो जाता है कि गीतिकाव्य के प्रारम्भिक बीज वेदों में उपलब्ध होते हैं।

3.6.6 रामायण महाभारत काल में दूतकाव्य परम्परा –

वेदों के उपरान्त रामायण महाभारत में भो गीतिकाव्य परम्परा अपने विकसित रूप में देखने को मिलती है। चाहे वह वाल्मीकि का शोकोद्गार हो या हनुमान का संदेशवाहक बनकर सीता के पास जाना हो। महाभारत मे भो दूतकाव्य परम्परा के यथास्थान अंश प्राप्त होते हैं। यथा श्रीकृष्ण का दुर्योधन के पास दूत बनकर जाना आदि।

3.6.7 बौद्धों की थेर गाथाओं में दूतकाव्य परम्परा –

बौद्धों की थेरगाथाओं में दुखवाद की जो तीव्र झलक देखने को मिलती है उसे हम गीतिकाव्यों के समरूप देख सकते हैं। रूपक साहित्य के भो वे कुछ स्थल जो कि रूपक के कथानक से अपना पृथक अस्तित्व रखते हैं और तीव्र अनुभ्ति परिलक्षित होती ह इसी प्रकार संस्कृत महाकाव्यों में कितने ही ऐसे श्लोक प्राप्त होते है जो कवि की भावाभिव्यक्ति के परिचायक हैं। अतः स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य का चयन किया गया बीज इस काल तक आते आते साहित्य की एक स्वतंत्र विद्या का स्थान पा चुका था।

3.6.8 पाणिनि के पदों में गीतिकाव्य परम्परा –

भावमयी अनुभ्ति की है। सुभाषित ग्रन्थों में भो इस परम्परा का निर्वहन देखने को मिलता है यह सब इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि गीतिकाव्य परम्परा अति प्राचीन काल से आरम्भ होकर उत्तरोत्तर विकसित होती रही है और गीतिकाव्य के प्रथम उपलब्ध कवि कालिदास के समय तक स्वतंत्र रूप से अनेक गीतिकाव्य लिखे जा चुके थे। जो आज उपलब्ध नहीं है स्वयं कालिदास का मेघदूत भो इस बात का प्रमाण है कि इसके पूर्व गीतिकाव्य एक स्वतंत्र किया विद्या का रूप ले चुका था।

3.7 गीतिकाव्य उद्भव एवं विकास

3.7.1 गीतिकाव्यों का उद्भव

सर्वप्रथम वेदों में ही रागात्मकता का समावेश पाया गया। ऋग्वेद की ऋचाओं को गाकर ही प्रस्तुत किया जाता था। उषा विषयक ऋचायें विशेषकर गीतात्मक ही हैं सामवेद में भो इसका समावेश पाया जाता है और कई सुन्दर गीत मिलते है अर्थात् कई मंत्र ऐसे है जिन्हें आकर ही प्रस्तुत किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि गीतिकाव्यों का उद्भव वेदों से ही हुआ। जितने वेद प्राचीन है उतने ही गीतिकाव्यों भो प्राचीन है। प्रकृति के अप्रतिम सौन्दर्य को वैदिक कविता में देखा जा सकता है। इस कविता में सामूहिक हर्ष एवं विषाद की अभिव्यंजना की गई है। वैदिक कवि या ऋषि प्रायः गायक थे। वे अपने इष्ट की प्रसन्न करने के लिए गाने की परम्परा को विकसित किया था। देवताओं को भो यह परम्परा अत्यन्त प्रिय थी। इस गायन की परम्परा को ही स्तुतिः साम आदि नाम प्रदान किये गये जैमिनी सूत्र में भो कहा गया हैं।

''गीतिषु समाख्या''

अर्थात् गीति ही साम हैं।

ऋग्वेद के सर्वोत्तम गीत भावुकता की दृष्टि से उषा विषयक हैं वैदिक कवि अपनी उल्लासमयी भाषा में गाता है –

''उषो देव्यर्मत्या विभाहि
चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आत्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा
हिरण्य वर्णा पृथुपाजसो ये।।''

अर्थात् हे प्रकाशमयी उषा तुम सोने के रथ पर चढ़कर अमरजरल बनकर चमको तुम्हारे उदय के समय पक्षिगण सुन्दर रसमय वाणी का उच्चारण करते हैं सुन्दर, शिक्षित पृथुबल से सम्पन्न घोड़े सुवर्ण वर्ण तुम्हें वहन करें।

अतः स्पष्ट है कि उषा के मन्त्र काव्य की दृष्टि से नितान्त सरस सहज तथा भव्य भावना से मण्डित हैं उषा को देखकर प्रत्येक भावुक के हृदय में कोमल भावना का उदय होता है। उषा मानवी के रूप में कवि हृदय के नितान्त पास आती है वह हमारे हृदय में कौतुक या विस्मय के साथ साथ घनिष्ठता भो जाग्रत कर देती है। इसीलिए उषा कभो कुमारी के रूप में कभो गृहिणो के रूप में और कभो माता के रूप में दिखायी पड़ती है।

बौद्ध साहित्य की ''थेरी गाथाओं'' में भो गीतिकाव्य का स्वरूप देखने को मिलता है। इन थेरी गाथाओं में वीतरागी भिक्षु भिक्षुणियों के जीवन की नश्वरता और क्षणभगुरता को अंकित किया गया हैं। इनमें प्राकृतिक सौन्दर्य का भो चित्रण मिलता है करूण रस का विशेष रूप

से समावेश देखा जा सकता है। सामवेद में जहां उदान्त अनुदात्त और स्वरित नामक तीन स्वरों में गीत गाये जाते थे वहाँ अब शनै–शनै संगीत में ताल छेद और वाद का भो समावेश होने लगा। वाल्मीकि रामायण में इसीलिए गय और पाठ्य दोनों प्रकार के अंश दिखाई पड़ते हैं।

ऋग्वेद में सरमा नामक एक कुतिया की पणियों के निकट संदेशवाहक के रूप में भजने का प्रसंग यहाँ स्मरण किये जाने योग्य है रामायण महाभारत और उनके परवर्ती काव्यों में भो इस प्रकार के स्फुट प्रसंग प्रचुर रूप में मिलते हैं कदाचित् वाल्मीकि के शोकोद्गारों में भो यह भावना या अनुभूति गोपित रूप में विद्यमान दिखाई देती है पति वियुक्ता प्रवासिनी सीता के प्रति प्रेणित सम के संदेशवाहक हनुमान, दुर्योधन के प्रति धर्म राज युधिष्ठिर द्वारा प्रेशित श्री कृष्ण और सुन्दरी दमयन्ति के निकट राजा नल द्वारा प्रेषित संदेशवाहक हंस इसी परम्परा के अन्तर्गत गिने जाने वाले पूर्व प्रसंग हैं। इस दिशा में भागवत का 'वेणुगीत' विशेष रूप में उद्चरणीय है, जिसकी रस विभोर कर देने वाली सुन्दर भावना की छाप संस्कृत के गीत ग्रन्थों पद स्पष्टतया अंकित है।

इस प्रकार क्रमशः वेदों से प्रारम्भ गीत परम्परा बौद्धिक संस्कृत साहित्य तक धीरे–धीरे पूर्ण विकास को प्राप्त हुई।

3.7.2 गीतिकाव्यों का विकास –

वैदिक युग से निरन्तर गीतों की रचना होती रही है। ऋग्वेद में ऋचाओं को गायन के रूप में अभिव्यक्त किया जाता था। तो सामवेद गीतों का ही वेद कहा गया। यही परम्परा अथर्ववेद की गीत शैली में मिलती है। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त को पूर्णतया गीतिकाव्य का समरूप है। वेदों की इस गायन परम्परा का विकास इतना हुआ कि रामायण महाभारत और पुराण इतिहास आदि में भो इसका प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। सीता के वियोग में राम का रूदन, दययन्ति का नल के वियोग में विलाप गीति तत्व के प्रसिद्ध उदाहरण देखे जा सकते हैं। महाभारत में भगवतगीता तत्कालीन गीतिकाव्य का एक अन्यतम रूप है। प्रथम सदी ईस्वी के अश्वघोष के महाकाव्यों में गीति तत्व का श्रेष्ठतम रूप है पति के वियोग में पत्नियों का विलाप इन गीतों का प्रधान विषय है।

लक्षण ग्रन्थों या काव्य शास्त्र में 'नीतिकाव्य' जैसी किसी भो विद्या का विवेचन प्राप्त नहीं होता हैं। जिन्हें हम नीतिकाव्य की श्रेणी में रखते हैं इन काव्यों को काव्यशास्त्र अन्य कोहि में रखता है मेघदूत को विश्वनाथ में खण्डकाव्य के उदाहरण के रूप में बताया है।

खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्यैक देशानुसारि च।

इसे संघात भो बताया गया है– ''यथा मेघदूतादिः'' –

यत्र कविरेकमर्थं वृत्तेनैकेन वर्णयति काव्ये।
संघातः स निगदितो वृन्दावन मेघदूतादिः।।

कालिदास ने गेय पद नामक विशिष्ट काव्य का उल्लेख किया है जो वीणा पर गाया जाता है।

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां।
मद्गोत्राकं विरचित पदं गेयमुद्गातु कामा।। मेघ 2.2.26

सूक्ति ग्रन्थों में ई.पू. 700 वर्ष के भगवान पाणिनी के नाम से अनेक पद्य उपलब्ध होते हैं पाणिनी के अलावा सुभगथित ग्रन्थों में अन्य कवियों के नाम से भो कुछ बड़े ही सरस मधुर पद्य

उपलब्ध होते है, इससे ज्ञात होता है कि गीति काव्य परम्परा अति प्राचीन काल से उत्तरोत्तर आगे बढ़ती रही है परन्तु वर्तमान में जो ग्रन्थ उपलब्ध है उसमें कालिदास विरचित मेघदूत एवं ऋतुसंहार ही आदि गीतिकाव्य के रूप में माने जाते हैं।

3.7.3 संस्कृत के प्रमुख गीतिकाव्य एवं उनके रचनाकार –

कालिदास की गीतिकाव्य का जन्मदाता कहा जाये तो अनुपयुक्त न होगा; क्योंकि गीतिकाव्य में प्राचीनतम रचनाएँ ऋतुसंहार और मेघदूत कालिदास की ही हैं। इनके पश्चात् घटकपर का नाम आता है। इनका समय भो 100 ई.पू. माना जाता है। इन्होंने 22 पद्यों के लघु काव्य की रचना की, जिसका नाम भो घटकपर है। इसका कथानक मेघदूत का ठीक उल्टा है, वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में एक विरहिणी पत्नी अपने दूरस्थ पति को सन्देश भजती है। इसके पश्चात् कवि हाल ने इस पर परम्परा को आगे बढ़ाया है। इनका समय प्रथम शताब्दी ई. माना जाता है। इन्होंने गाथा सप्तशती की रचना की है, जिसमें 700 गाथाओं का सग्रंह है। इसके बाद भर्तृहरि ने नीतिशतक, श्रृंगारशतक तथा वैराग्यशतक की रचना की। इनका समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है, तत्पश्चात् अमरुक कृत अमरुकशतक, धोयी कृत पवनदूत, विल्हण कृत चौर पंचाशिका, गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती, जयदेव कृत गीतगोविन्द, वेदान्तदेशिक कृत हंस संदेश, उदण्डकवि कृत कोकिल सन्देश, वामनभट्टबाण कृत हंस सन्देश, चरित्र सुन्दर गणि कृत शील दूत, पण्डित राज जगन्नाथ कृत पीयूषलहरी अथवा गंगालहरी, सुधा लहरी, अमृत लहरी, करुणालहरी, लक्ष्मी लहरी तथा आसफलहरी, रूपगोस्वामी कृत हंसदूत तथा उद्धव सन्देश, पूर्णसरस्वती कृत हंस सन्देश, विष्णुस्त्राता कृत कोक सन्देश, वासुदेव कृत भड़ग सन्देश, विनय पुत्र कृत चन्द्रदूत, विष्णुदास कृत मनोदूत, रामाराय कृत मनोदूत, अम्बूकवि कृत चन्द्रदूत, विक्रमकवि कृत नेमिदूत, अवधूतरामयोगी कृत सिद्धदूत, त्रिवेणी कृत शुक सन्देश, भग सन्देश, मेघविजयकृत मेघदूत समस्या लेख, विनयविजय गणि कृत इन्द्रदूत, श्रीकृष्ण देव सार्वभोम कृत पदांकदूत, नन्दकिशोर चन्द्र कृत शुकदूत, नित्यानन्द शास्त्राी कृत, हनुमद्दूत, शिव प्रसाद भारद्वाज कृत भारत सन्देश डा. भोलाशंकर व्यास कृत दक्षिणानलदूत आदि उल्लेखनीय गीतिकाव्य हैं, इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से कवियों ने गीतिकाव्य की रचना की है और आज भो अनेक गीतिकाव्य रचकर विद्वान् इसके भण्डार की श्रीबुद्धि कर रहे हैं। यद्यपि न सब दूत काव्यों के कवियों का प्रयास श्लाघनीय है, परन्तु फिर भो ये मेघदूत की क्षमता प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं।

संस्कृत–साहित्य में मेघदूत न केवल सर्वप्रथम खण्डकाव्य है, अपितु काव्या की दृष्टि से भो सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य है। संस्कृत–साहित्य में दूत काव्यों की परम्परा मेघदूत के पश्चात् ही प्रारम्भ हुई।

सन्देश ले जाने वाले को दूत कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने दूत क भद निम्न श्लोक में स्पष्ट किये हैं–

निःसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा सन्देशहारकः।
कार्यप्रेष्यस्त्रिधा दूतो दूत्यश्चापि तथा विधाः।।

इसके अनुसार उन्होंने निःसृष्टार्थ, मिताऽर्थ तथा सन्देशहारक ये तीन भद किये हैं। उनमें से जो दोनों का (जिसने भजा और जिसके पास गया) भाव समझ कर सन्देश कहता है और कार्य को सफल करता है उसे निःसृष्टाऽर्थ कहते हैं। यह तीनों में उत्तम होता है। वाल्मीकि रामायण में हनुमान् जी इसी प्रकार के दूत हैं। परिमित बातकर कार्य को सिद्ध करने वाले को मिताऽर्थ कहते हैं। वह मध्यम होता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में मिश्रकेशी मेनका की मिताऽर्थ दूती हैं। भजने वाला जितना कहता है, उतना ही कहने वाले को सन्देशहारक कहते है यह सबसे निकृष्ट माना जाता है; क्योंकि इसमें कल्पना शक्ति का अभाव होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि मेघ को किस श्रेणी में रखा जाये ? उत्तर बड़ा स्पष्ट है, किसी म भो नही; क्योंकि अचेतन पदार्थ न वक्ता की बात सुन सकता है और न बोद्धव्य की बात ही बता सकता है। अचेतन होते हुए भो मेघ का इस रहस्यपूर्ण संसार में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस पृथ्वी पर वर्षा आदि बहुत से कार्य मेघ द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। इसी कारण महाकवि कालिदास ने किसी चेतन व्यक्ति का ग्रहण न करके मेघ को सन्देशवाहक बनाकर अनोखी सूझ–बूझ का परिचय दिया है।

नपे–तुले शब्दों में भाव की विशद व्यंजना कर देना मेघदूत का विशेष गुण है। मेघदूत में मनुष्य की चिर–नवीन विरह–वेदना है। इसमें स्त्री–पुरूष के मधुसिक्त प्रणय की कहानी है

और अपूर्व सौन्दर्य का अंकन है। इसकी शिक्षागर्भित मनमोहिनी कविता पर मोहित होकर आर्यासप्तशतीकार गोवर्धनाचार्य ने अपने उद्‌गार इस प्रकार प्रकट किये हैं–

साकूतमधुरकोमलविलासिनी कण्ठकूजितप्राये।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतिलीला कालिदासोक्तिः।।

अर्थात् शिक्षा–समय में भो आनन्द देने वाली दो ही वस्तुएँ हैं–एक भाव गर्भित, मधुर और कोमल कण्ठकूजित वाली विलासिनी कामिनी की रति लीला और दूसरी उसी के समान भावपूरित
मधुर और कोमलकान्त पदावली वाली कालिदास की कविता'।

अपने गुणों के कारण ही मेघदूत बहुत ही अधिक लोकप्रिय बना। इससे परवर्ती अनेक कवियों ने भाव प्रेरणा ली और इसी के अनुकरण पर अनेकों दूत काव्य लिखे गये और इसके अनेकों अनुवाद तिब्बती, जर्मन आदि अनेक भाषाओं में हुए। इससे प्रभावित होकर एक विदेशी विद्वान् मोनफ्रेच ने विचार प्रकट किये– ''यूरोप में ही क्या विश्व भर के साहित्य में ऐसी कृति खोजने पर भो दूसरी नहीं मिलेगी।'' इससे मेघदूत का महत्त्व या गीतिकाव्य में स्थान स्वतः ही स्पष्ट ही जाता है।

3.8 गीतिकाव्य में मेघदूत का स्थान

लोकप्रियता और प्रसिद्धि की दृष्टि से महाकवि का 'मेघदूत' बडे महत्त्व का है इसी लोकप्रियता के कारण उस पर अनेक टीकाएं लिखी गयी भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी जर्मन तिब्बती और चीनी आदि अनेक विदेशी भाषाओं में भो महाकवि की इस कृति का अनुवाद ही नहीं हुआ वरन् उन भाषाओं में उसके कई संस्करण भो निकल चुके हैं इस विषय में इतना ही कहा जाना यथेष्ट है कि दुनिया कि विभिन्न भाषाओं में अनुदित कृतियों की दृष्टि से बाइबिल और पंचतंत्र के बाद मेघदूत का ही स्थान है।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

रागात्मक	–	राग से युक्त होना जिसमें एक लय होता है।
ध्वन्यात्मकता	–	ध्वनि का समावेश जिसमें हो।
गेयात्मकता जिसमें हो।	–	जिसे गाया जा सके या गाकर प्रस्तुत करने की क्षमता
भावातिरेक	–	भावों का अतिरेक अर्थात् आधिक्य जहाँ हो जाये।
तरंगायित	–	तरड़ों की भांति लहराता।
लिरिक	–	वीणा का या गायन सम्बन्धो।
भावात्मकता	–	भावों से युक्त
प्लावित	–	व्याप्त होना
स्वगम्य	–	स्वयं को अनुभूत होने वाल्रीली
भावान्विति	–	भावों का अन्वय जिसमें हो
विषाद	–	दुःख
आन्तरिक	–	अन्दर के
गानोचित	–	गानों के अनुसार प्रयुक्त होने वाले
लोकगीति	–	लोक में जो प्रचलित हो।
स्तोत्रमुक्तक जाये।	–	जिसमें किसी एक देव को आधार मानकर उपासना की
नीति मुक्तक प्रस्तुत किया जाये।	–	जिसमें नैतिक शिक्षाओं को मुक्त रूप से पथ के रूप में
श्रृंगार मुक्तक है।	–	इसमें मानवीय प्रेम को उदान्त रूप में प्रस्तुत किया जाता
दीर्घकाय	–	लम्बे लम्बे

सुसम्बद्धता	–	व्यवस्थित ढंग
मनोज्ञता	–	मन को भाने वाला
रक्तिमा	–	लालिमा
अप्रतिम	–	अद्वितीय (जो दूसरे में न हो)
परिवृहण	–	विस्तार
गीतिषु	–	गीतियों में
समाख्या	–	साम ही प्रमुख
विभाहि	–	चमको
अमर्त्य	–	जो कभी नष्ट नहीं होता है।
सूनृत	–	अच्छी वाणी
ईरयन्ती	–	उच्चारण या स्तुति
सुयमासो	–	सुशिक्षित
पूर्वापर	–	पूर्व और ऊपर अर्थात् पहले और बाद
निरपेक्षेणापि	–	अपेक्षा से रहित होने पर भी
रसचर्वणा	–	रस का चर्वण अर्थात् रस उत्पन्न करना
अभिनिवेशिनः	–	अनुरक्ति
दृश्यन्ते	–	देखे जाते हैं
घटकपर	–	घड़े का खप्पर
उत्संगे	–	गोद में
मलिननपसने	–	मैले वस्त्रों वाली
निक्षिप्य	–	रखकर
मद्गोत्राडम्	–	मेरे नाम के चिंह्न वाले
विरचितपदम्	–	रचे हुए पद
गेयम्	–	गीत को
उद्गातुकामा	–	उच्च स्वर में गाने की इच्छुक
सूनृत	–	अच्छी वाणी
ईरयन्ती	–	उच्चारण या स्तुति
सुयमासो	–	सुशिक्षित

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइये।

1. गीतिकाव्य अंग्रेजी के किस शब्द से बना है।

   (क) A (ख) A (ग) A (घ) कोई नहीं।

2. गीतिकाव्य का अर्थ दो पंक्ति में स्पष्ट कीजिए।
3. ओझा के अनुसार गीतिकाव्य के किन्ही दो प्रकारों को लिखिए।
4. मुक्तक काव्य किसे कहते है ?
5. प्रबन्ध काव्य किसे कहते है ?

बोध प्रश्न –

1. गीतिकाव्य की किन्हीं पांच विशेषताओं के नाम लिखिए।
2. काव्य के प्रमुख भेदों को स्पष्ट कीजिए।
3. स्तोत्र काव्य किसे कहते हैं ?

4. दूतकाव्य में किसका वर्णन होता है ? दो पंक्ति में स्पष्ट कीजिए।

5. दूतकाव्य की आरम्भिक कृतियाँ कौन सी है? नाम लिखिए।

बोध प्रश्न

11. घटकपर से क्या अभिप्राय है दो पंक्ति में लिखिए।

12. गीतिकाव्य परम्परा का उल्लेख सर्वप्रथम मिलता है –

    (क) रामायण में (ख) महाभारत में

    (ग) वेदों में (घ) उपनिषद् में

13. ''गीतिषु सामाख्या'' से क्या अभिप्राय है ?

14. निम्न श्लोक का अर्थ स्पष्ट कीजिए–

    उषो देवर्मत्या विभाहि
    चन्द्रस्था सूनृता ईरयन्ति।
    आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा
    हिरण्य वर्णा पृथुपाजसो य।।

15. सन्देश ले जाने वाले को क्या कहते है ?

16. सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य कौनसा है ?

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर (क)
2. देखिए उपभाग 3.2.1
3. देखिए उपभाग 3.2.2
4. देखिए उपभाग 3.3.1
5. देखिए उपभाग 3.3.2
6. देखिए उपभाग 3.5
7. देखिए उपभाग 3.6.1
8. देखिए उपभाग 3.6.2
9. देखिए उपभाग 3.6.3
10. देखिए उपभाग 3.6.4
11. देखिए उपभाग 3.6.4
12. उत्तर (ग)
13. देखिए उपभाग 3.7.1
14. देखिए उपभाग 3.7.1
15. देखिए उपभाग 3.8
16. देखिए उपभाग 3.8

3.11 सारांश

इस इकाई में आपने गीतिकाव्य/दूतकाव्य परम्परा, उद्भव एवं विकास का विस्तार से अध्ययन किया है सर्वप्रथम यह स्पष्ट किया गया है कि गीतिकाव्य क्या होता है गीतिकाव्य किन शब्दों से बना है गीति शब्द से बना है गीतिकाव्य। गीति शब्द जैसा कि पूर्व में भी बताया गया है कि संस्कृत की गै धातु से गीति शब्द का निर्माण हुआ है यह धातु भाव अर्थ में प्रयुक्त होती है इस धातु में जब क्तिन् प्रत्यय का संयोग होता है तो गीति शब्द सिद्ध होता है। यदि हम अंग्रेजी या ग्रीक भाषा की बात करें ले उसमें लायर (lyre) जिसे कहते है वही गीतिकाव्य है अर्थात् लायर शब्द गायन से सम्बन्धित हैं।

गीतिकाव्य के शाब्दिक अर्थबोध के साथ ही इस इकाई में यह भी समझाया गया है कि गीतिकाव्य को कौन कौन से प्रमुख तत्त्व होने चाहिए। एक परिभाषा के रूप में हम यह कह सकते है कि जिन काव्यों में महाकाव्य के सभी लक्षण नहीं पाये जाते उन्हें खण्डकाव्य या

गीतिकाव्य कहते हैं अर्थात् यह कहा जा सकता है कि गीतिकाव्य महाकाव्य के किसी एक भाग का अनुसरण तो अवश्य ही करता है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि महाकाव्यों में जिस प्रकार विषय की विविधता होती है उस प्रकार से गीतिकाव्यों मे विषय की विविधता नहीं मिलती है। गीतिकाव्य आकार में भी महाकाव्य से छोटा होता है गीतिकाव्य में प्रायः धार्मिक अथवा नैतिक अथवा श्रृंगारिक एक ही विषय का वर्णन होता है गीतिकाव्य में लालित्य एवं माधुर्य का विशेष पुट होता है। भाव का उद्वेक, तन्मयता तथा भावाभिव्यक्ति की सक्षमता एवं न्यूनता गीतिकाव्य का प्राण है।

भावात्मकता एवं रागात्मकता के अभाव में गीतिकाव्य शून्य सा होता है। जब कार्य किसी विषय को अनुभव करता है या वह भी कहा जा सकता है कि जब कवि मन पीडिया दुखित होता है अथवा अत्यन्त हर्ष की अवस्था में होता है तो वह अपने अनुभव को दूसरों तक पहुंचाने के लिए गीति का सहारा लेता है गीति ही एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो भावों की अभिव्यक्ति का बोध कराने में सक्षम होता है। जैसा कि पूर्व में बताया है कि गीतिकाव्य में किसी एक भाव को केन्द्र में स्थित होना चाहिए।

गीतिकाव्य के मुख्यतः तीन प्रकार बताये गये हैं। स्त्रोत् इनमें किसी एक देव को आधार मानकर उसकी उपासना की जाती है यह भाव प्रधान तथा अनुभूति मूलक गीतिकाव्य है 2. नीति–इनमें नैतिक शिक्षाओं को मुक्तक के रूप में पद्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। 3. श्रृंगारिक– इनमें मानवीय प्रेम का उदस्त रूप प्रस्तुत किया जाता है प्रेमी प्रेमिका के अलौकिक प्रणय का हृदयस्पर्शी एवं मधुर वर्णन ही प्रायः इन काव्यों का उद्देश्य होता है।

इस इकाई के 3.5 भाग में यह भी स्पष्ट किया गया है कि गीतिकाव्य के मूल तत्त्व या उसकी विशेषताएं कौन कौनसी हैं।

इन विशेषताओं में भाव प्रधानता एवं रागात्मकता, भाषा सरल एवं सुबोध, दीर्घकाय समासों से मुक्ति, प्रसाद एवं माधुर्य गुण की प्रधानता, श्रृंगार करूण एवं शान्त रस की व्यंजना, यथार्थ आदि व्यक्ति, प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण, नारी सौन्दर्य की मार्मिकता, मानवीय भावनाओं का सजीव चित्रण, मधुरता एवं सरसता आदि को सम्मिलित किया गया है।

इस इकाई के 3.6.1 भाग में एक तालिका के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि गीतिकाव्य का स्थान काव्य भेदों में कहाँ पर स्थित है।

दूतकाव्य परम्परा में मेघदूत और घटकपर काव्य की स्थिति क्या है एवं इन दूतकाव्यों का रचना काल कब कैसे रहा यह भी स्पष्ट किया गया है। दूतकाव्य परम्परा वेदों से चलकर रामायण महाभारत बौद्धग्रन्थ आदि में अनवरत रूप से कैसे चलती रही है इसका भी इस इकाई में विवेचन किया गया है।

गीतिकाव्य परम्परा के समान ही गीतिकाव्यों का उद्भव एवं विकास भी वेदकाल से कैसे आज तक प्रवाहित होता रहा उसका विवेचन भी इस इकाई में दिया गया है ऋग्वेद से प्राप्त होने वाले गीति सम्बन्धी मंत्रों का उल्लेख भी सरल बोध के लिए किया गया है।

गीतिकाव्यों का विकास किस प्रकार से होता आया है। इसका भी विस्तार से विवेचन दिया गया है। मैकडानल ने भी इन गीतियों के महत्त्व को वेदों में स्वीकारा है यह सर्वविदित ही है कि गीतिकाव्यों के बीज हमें ऋग्वेद में ही प्राप्त हो जाते है।

इस इकाई के अन्तिम भाग में मेघदूत का गीतिकाव्यों में क्या स्थान रहा है इसे स्पष्ट किया गया है। काव्यात्मकता की दृष्टि से मेघदूत सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य है। और दूतकाव्य परम्परा मेघदूत के बाद ही प्रारम्भ हुइ और इस काव्य की यह विशेषता रही है कि इसमें नपे तुले शब्दों में भावों की विस्तार से अभिव्यक्ति की गई है इसमें विरह वेदना को जिस प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है वह अन्यत्रा कहीं भी नही है इन्ही अपने गुणों के कारण मेघदूत सर्वश्रेष्ठ स्थान पा सका है।

अतः स्पष्ट है कि उपरोक्त इकाई को पढ़ने के बाद आप गीतिकाव्य परम्परा उद्भव विकास एवं मेघदूत का स्थान विषय का विस्तार से विवेचन कर सकते हैं।

3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संस्कृत कविदर्शन– भोलाशंकर व्यास– चौखम्बा विद्याभवन, 2003.
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्– शास्त्री एवं त्रिपाठी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2011.
3. मेघदूत– बाबूराम त्रिपाठी, महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा, 1986.
4. मेघदूत– विजेन्द्र कुमार शर्मा, साहित्य भण्डार मेरठ,चतुर्थ संस्करण, 1996.
5. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन वाराणसी,1953
6. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा– पाण्डे एवं व्यास,साहित्य निकेतन,कानपुर,2001
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास– वाचस्पति गैरोला– चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1960.
8. डॉ. श्रीकृष्ण ओझा (लेखक) संस्कृत साहित्य का इतिहास, अभिषेक प्रकाश्न, जयपुर, 2001.
9. डॉ. विश्वनाथ शर्मा (लेखक) संस्कृत साहित्य का इतिहास, आदर्श प्रकाश्न, जयपुर, 1998.

इकाई–4

मेघदूत के टीकाकार रस एवं मेघ का मार्ग

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 मेघदूत के टीकाकार

4.3 मेघदूत में रस

4.4 मेघ का मार्ग

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 सारांश

4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे कि महाकवि कालिदास कृत मेघदूत के उपर किन–किन विद्वानों ने टीकाएं लिखी है एवं मेघदूत में विप्रलम्भ शृंगार का अनुपम दृश्य कवि द्वारा किस प्रकार चित्रित किया गया है साथ ही मेघ को मार्ग पर कवि कैसे सचेतन प्राणी की भांति निर्देशित करता है यह आप जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप मेघदूत के प्रमुख टीकाकारों का अध्ययन करने के साथ–साथ मेघ के मार्ग को सचित्र वर्णन की भांति अध्ययन कर सकेंगे। रामगिरि की पहाड़ियों से मेघ किस प्रकार तिरछा होकर आगे बढ़ता है इसका आप वृहद् अध्ययन इस इकाई में कर सकेंगे।

4.2 मेघदूत के टीकाकार

लोकप्रियता और प्रसिद्धि की दृष्टि से महाकवि का मेघदूत बडे महत्त्व का है इसी लोक प्रियता के कारण उस पर अनेक टीकाएं लिखी गई। इस लोकप्रियता के कारण ही उत्साही लोगों ने मेघदूत में अनेक श्लोक जोड़ दिये हैं जिसके कारण वर्तमान में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कालिदास के मूल मेघदूत में कितने श्लोक थे।

आज जिस प्रकार से मेघदूत की अनेक शाखाएँ मिलती है उससे पाठक को यह जिज्ञासा अवश्य होती है कि कालिदास के मूल मेघदूत का स्वरूप क्या रहा होगा।

मेघदूत का प्राचीनतम अनुवाद 13 वीं शताब्दी में तिब्बती भाषा में किया गया था। जिसकी एक प्रति तंजौर के ग्रन्थ संग्रह में सुरक्षित है इसी अनुवाद के आधार पर 1906 ई. में एक जर्मन विद्वान डॉ. वेख ने मेघदूत का एक अनुवाद जर्मन भाषा में किया। मेघदूत का 'सिंहली' अनुवाद भो प्राचीन है जिसको एक लंकावासी पान वोटे नामक विद्वान ने 1883 ई. में प्रकाशित किया था।

दूतकाव्यों के प्रणयन की परम्परा में जैन कवियों का बडा योगदान रहा है। जैनकवि जिनसेन (814 ई) ने जैन तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र पर चार सर्गों में एक पार्श्वभ्युदय काव्य लिखा।

कश्मीरी टीकाकार वल्लभदेव के अनुसार जो मेघदूत के टीकाकारों में सबसे प्राचीन माना जाता हैं मूल मेघदूत में 111 श्लोक है यद्यपि वल्लभदेव की टीका में 112 श्लोक दिये गये हैं परन्तु वल्लभ देव ने ''अध्वक्लान्त प्रतिमुखगतं सानुमांश्चित्रकूट'' इत्यादि को प्रक्षिप्त माना

है। स्थिर देव की टीका में भो 111 श्लोक ही पाये जाते हैं। दक्षिणावर्त, पूर्ण सरस्वती और परमेश्वर की टीकाओं में केवल 110 श्लोक हैं इन तीनों टीकाकारों ने

गत्युत्कम्पादलक पतितैर्यत्र मन्दार पुष्पैः,
पत्रच्छेदैः कनक कमलैः कणविभ्रंशिभिश्च।

मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिंन्न सूत्रैश्च हारै–
नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्।।(उ. में।।)

इस श्लोक को छोड़ दिया है।

मेघदूत के श्लोकों की सबसे अधिक संख्या जैन लेखकों और टीका कारों ने दी है। विजयसूरी और मेघराज ने श्लोकों की संख्या 127 दी है। जनार्दन लक्ष्मी निवास, सुमति विजय, महिम सिंह गणि और मेघलता में से प्रत्येक ने 126 नेमिदूत, शीलदूत, सारोद्धारिणी दिवाकर उपाध्याय और कनक कीर्तिगण में से प्रत्येक ने 125, सरस्वती तीर्थ और क्षेमहंस गणि में से प्रत्येक ने 124 चरित्र वर्धन ने 122, और जिन सेन 120 श्लोक संख्या दी है।

सिंहली अनुवाद में 118 और तिब्बती अनुवाद में 117 श्लोक पाये जाते हैं मल्लिनाथ ने अपनी प्रसिद्ध टीका संजीवनी में 121 श्लोक दिये है लेकिन उनमें से यदि प्रक्षिप्त स्वीकार किये गये श्लोकों को हटा दिया जाये तो 115 श्लोक रह जाते है।

पूर्वी टीकाकारों में से मकरन्द मिश्र में श्लोकों की संख्या 118 दी हैं; रामनाथ तर्कालंकार ने 111; शाश्वत, सनातन गोस्वामी, कल्याणमल्ल, कवि रत्न चक्रवर्ती और हर गोविंद वाचस्पति में से प्रत्येक ने 115; भगीरथ मिश्र और भरत मालिक में से प्रत्येक ने 114 श्लोक संख्या दी है।

मेघदूत के प्रारम्भिक आलोचनात्मक संस्करणों में से विल्सन ने 116, गिल्ड माइस्टन ने 113, स्टेन्त्सलर ने 112 श्लोक दिये हैं। मैक्डानल ने भो मेघदूत के अपने संस्करण में 111 श्लोक दिये हैं।

डॉ. एस. के. डे. का विचार है कि कालिदास के मूल मेघदूत में सम्भवतः 110 या 111 श्लोक थे और जो श्लोक वल्लभदेव की टीका में नहीं है उसे कालिदास की मौलिक रचना नहीं माना जा सकता। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने पूर्व मेघ 65 और उत्तर मेघ के 11 वें श्लोक की मौलिकता में संदेह प्रकट किया है। जे हेर्टल ने केवल 108 श्लोकों को मौलिक माना है और पूर्वमेघ श्लोक संख्या 7 और की मौलिकता पर भो संदेह प्रकट किया है।

मेघदूत पर लगभग 40 से भो अधिक टीकाएँ उपलब्ध होती है परन्तु उसमें केवल वल्लभ, मल्लिनाथ, सारोद्धारिणी सरस्वती तीर्थ, सुमतिविजय और महिम सिंहानी की टीकाएं अधिक प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त इसका अन्य भारतीय भाषाओं में ही गद्य पद्य में अनुवाद हुआ है जो श्रेष्ठता के कारण विदेशी भाषाओं में प्रसिद्ध है।

यद्यपि मेघदूत का मूलपाठ खोज निकालने के लिए आधुनिक युग में अनेक विद्वानों ने प्रयत्न किया है। लेकिन इन सभो प्रयासों में अर्वाचीनतम तथा प्रशस्यतम प्रयत्न डॉ. एस. के. डे. का रहा है। इसका विस्तृत अध्ययन उनके द्वारा सम्पादित, साहित्य अकादमी दिल्ली से प्रकाशित मेघदूत में देखा जा सकता है।

4.3 मेघदूत में रस

रसात्मक वाक्य को ही काव्य कहते हैं, इसलिए प्रत्येक काव्य का मुख्य उद्देश्य पाठक को किसी रस विशेष का आस्वादन करा देना होता है। मेघदूत एक उत्तम गीतिकाव्य होने के साथ–साथ सर्वोतम प्रकृति काव्य भो है इन सबसे बढ़कर वह एक प्रसिद्ध प्रेम काव्य हैं इसके दूसरे नाम विरह काव्य या शृंगार काव्य भो रखे जा सकते हैं विरह और शृंगार प्रेम के हो स्वरूप हैं इसमें सर्वत्र चेतना चेतनात्मक पदार्थों में प्रेम की झलक दिखाई देने के कारण यह एक प्रेमकाव्य सिद्ध होता है। यहाँ सचेतन जीव ही नहीं अचेतन प्रकृति उपकरणों को भो प्रेममय दिखाया गया है। स्वामी के शाप के प्रभाव से नष्ट गौरव और देवलोक से स्वामी के शाप के प्रभाव से नष्ट गौरव और देवलोक से निर्वासित होकर

रामगिरी पर वास करने वाले किसी प्रिया वियुक्त यक्ष की विरह दशा का चित्रण किया गया है इसमें वियोगी यक्ष यक्षिणी ही नहीं प्रकृति भो यहां प्रेमरस में निमग्न दिखलाई देती हैं प्रेम या श्रृंगार के दोनों ही पक्ष संयोग और वियोग या विप्रलम्भ यहाँ देखे जा सकते हैं। यद्यपि मेघदूत विप्रलम्भ प्रधान श्रृंगार काव्य है। यहां विप्रलम्भ श्रृंगार के आधारभ्त संयोग श्रृंगार की सरलता से कल्पना की जा सकती है।

महाकवि ने प्रकारान्तर से संयोग के भो सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है। यक्षिणी की वियोग अवस्था में भो ऐसा लगता है कि यक्ष भावी संयोग की कल्पनाओं से मनोविनोद कर रहा है। उसकी दूत कल्पनाओं में प्रकृति का भरपूर सहयोग रहता है। विरही यक्ष सहायक प्रकृति में संयोग श्रृंगार के दर्शन करता है एवं अपने विरह से पीडित मन को शान्त करने का प्रयत्न करता है प्रकृति के विभिन्न अंगों में उसे अपनी प्रियतमा के अंग प्रत्यंग दिखाई देते हैं। इन्हीं से वह अपने मन को बहलाने का प्रयत्न करता है। जैसा कि उत्तर मेघ के इस श्लोक में देखने को मिलता है।

श्यामास्वंगं चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी–वीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।। उ.मे. 44

अर्थात् यहाँ सुकुमारता के कारण प्रियंगुलताओं में अपनी प्रिया के शरीर का सादृश्य दिखाया गया है क्योंकि रंग में दोनों में कोई समानता नहीं। यक्ष अपनी गौरी थी और प्रियंगुलता श्यामवर्ण की होती है।

चकित हरिणी प्रेक्षणे – स्त्री के नेत्रों की उपमा मृगी के नेत्रों से दी जाती है। इसीलिए उसे मृगाक्षी, मृगनयनी आदि कहा जाता है यही वाक्यांश उ. मे. के 22 वें श्लोक में भो आया है।

शिखिनां बर्हभारेषु केशान् – मयूर के पंख अत्यन्त कोमल लम्बे और चिकने होते है इसलिए नारी के सुन्दर बालों की उपमा इन्हीं से दी जाती है।

प्रतनुषु नदी वीचिषु भ्विलासात् – स्त्री के भ्भग की समानता नदी की छोटी–छोटी तरंगों से की जाती है।

चण्डि – यहाँ चण्डि पद से यह भाव झलकता है कि मैं तुम्हारे अंगों की समानता अन्य वस्तुओं में देखने का प्रयत्न कर रहा हूँ इसलिए तुम कुपित हो जाओगी किन्तु तुम्हारे कुपित होने की कोई बात नहीं है क्योंकि उन वस्तुओं में किसी में भो तुम्हारी समानता नहीं मिलती है।

मेघदूत के प्रारम्भ में, स्वाधिकारात् प्रमत्त अतएव कुबेर द्वारा अभिशप्त, फलतः प्रियावियुक्त एक यक्ष शाप के 12 महीने व्यतीत करने के लिए अलकापुरी के दूर रामगिरी के आश्रमों में एकान्त में घूम रहा था, तब उसे वर्षाकाल के प्रारम्भ में आश्लिष्टमासु मेघ को देखा देखते ही उसका प्रिया प्रेम उद्दीप्त हो उठा मेघ का प्रथम दर्शन, जब संयोगावस्था प्राप्त सर्वथा सुखी भो मानव के चित को विकृत कर देता है तब प्रेममयी प्रिया से वियुक्त और विवश उस एकाकी यक्ष की मनःस्थिति उस समय कैसे हुई होगी यह तो भक्त भोगी ही जान सकते है।

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्थावृत्ति चेतः।
कण्ठाश्लेष प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।

अर्थात् मेघ के दर्शन होने पर सुखी (व्यक्ति) का भो चित दूसरे प्रकार की वृति वाला (चंचल) हो जाता है, फिर कण्ठ के आलिंगन के इच्छुक जन (प्रिया) के दूर स्थित होने पर तो कहना ही क्या मेघ के दर्शन होने पर विरही पक्ष को अपनी प्रियतमा का स्मरण हो आया उसे स्मरण करके उसके आंसू निकल आये परन्तु फिर भो वह उन आंसूओं को अपन अन्दर ही दबाये रहा क्योंकि वह मेघ के सामने अपनी धीरता नहीं खोना चाहता था।

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने – यह पद ऐसे व्यक्ति की ओर संकेत कर रहा है जो उस यक्ष के कण्ठालिंगन का इच्छुक हो और वह व्यक्ति केवल उसकी प्रिया ही हो सकती है जो उससे

दूर स्थित है 'जने' से अभिप्राय यहा प्रिया से है। निरूपाय यक्ष मेघ के सामने अपनी विवशता पर आंसू बहाता हुआ देर तक खड़ा सोचता रहा कि इस स्थिति में उसे क्या करना चाहिए वह यह जानता ही था कि वह पराधीन वृति है स्वेच्छा से नहीं अपितु पराधीनता वश ही वह अपनी प्रिय से वियुक्त कराया गया है; अतः वह निर्धारित अवधि के पूर्व स्वेच्छा से अपनी प्रिया से मिल नहीं सकता इस प्रकार अपनी विवशता पर सोचते सोचते जब उसका वियोग और तीव्र से उठता है तब यह एक सच्चे प्रेमी की भांति अपना दुख भ्ल जाता है और अपनी विरहिणी प्रिया के विषय में चिन्तित हो उठता है और मन ही मन सोचने लगता है कि पुरूष होते हुए भो जब उसे यह विरह व्यथा इतनी असह्य हो रही है तो उस कोमलांगी अबला की क्या दशा होगी उसका तो जीवन ही संशय आरूढ़ हो गया होगा अतः अब अपनी चिन्ता छोड़कर अपनी प्रिया के प्राणों की रक्षा का कोई उपाय करना ही चाहिए।

इस प्रकार अपनी प्रिया के जीवनालम्बन की इच्छा रखने वाला यक्ष उसके पास संदेश भजने के लिए उत्सुक हो उठता है। संदेश ले जाने के लिए उसे जब कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता तब वह प्रेम विहल एवं कामार्त होकर यह भ्ल जाता है कि अचेतन मेघ जो कि मात्र घूम, ज्योति, सलिल एवं मरूत का मिश्रण मात्र है और वह उसके सन्देश को उसकी प्रिया तक कैसे पहुंचा पायेगा। उत्सुकता के आवेग में वह उसे ही सन्देशवाहक बनाने का निश्चय करता है जैसा कि निम्न सूक्ति से स्पष्ट है –

कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु।

प्रायः अत्यधिक काम पीड़ित व्यक्ति अपना विवेक खो बैठते हैं और उन्हें जड़ चेतन में भो भद प्रतीत नहीं होता। प्रायः कामपीड़ित व्यक्ति विरह के क्षणों में अपनी प्रिया के फोटो, वस्त्र आदि से बातें करते हैं।

इस प्रकार कवि ने यहाँ तक अपने प्रेम काव्य की पृष्ठभ्मि तैयार कर आगे प्रेम के दोनों ही पक्षों का सुन्दर चित्र अंकित किया है। यक्ष मेघ का स्वागत करने के लिए पहले उस कुटज पुष्प अर्पित करता है जब वह जान लेता है कि मेघ मेरे इस स्वागत से आनन्दित है तो वह उसकी प्रशंसा करने में लगता है और कहता है

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां,
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः **पूर्वमेघ–6**

अर्थात् हे मेघ तुमको संसार में प्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक मेघों के वंश में उत्पन्न इन्द्र का इच्छानुसार रूप धारण करने वाले पुरूष के रूप में जानता हूँ।

अतः ऐसे उत्तम जन से मुझ दुखी जन को याचना करना सर्वथा उचित ही है। हे मेघ ! तुम संतप्तों के रक्षक भो हो। इसलिए मेरी प्रिया के संदेश को ले जाओ।

''संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद। प्रियायाः संदेशंमेहर''

यक्ष की इस याचना पर जब मेघ ने कुछ उत्तर नहीं दिया तब यक्ष इसे मौन 'स्वीकृति लक्षणम्' मान लेता है और आश्वस्त हो कर कहता है कि वह मार्ग तुम्हारे लिए बड़ा ही सुगम होगा जहाँ तुम्हें खाने पीने विश्राम करने एवं मनोविनोद के भो अधिकाधिक साधन उपलब्ध होंगे कोई कष्ट न होगा अपितु उत्तमोतम मनोविनोद के दृश्य देखने को मिलेंगे। स्थान–स्थान पर तुम्हारा स्वागत सत्कार होगा।

इसी मार्गनिर्देश प्रसंग में वियोग व्यथित भो यक्ष अपनी संयोगकालीन अनुभ्त रंगरेलियों की भो याद करता है और उन्हें प्रकृति के उपकरणों पर आरोपित कर अपना मन बहलाव भो कर लेता है इस प्रकार कवि ने यहाँ पूर्व मेघ में प्रकारान्तर से प्रेम के संयोग पक्ष का भो चित्र प्रस्तुत कर दिया है। बिना संयोग के विप्रलम्भ की गहराई की सच्ची अनुभ्ति नहीं हो पाती अतः साक्षात् या असाक्षात् रूप में विरह काव्य में भो संयोग का चित्र आवश्यक होता है। इसीलिए ही यक्ष कहता है कि हे मेघ! जब तुम आगे बढोगे तब कृषक वनिताएँ तुम्हें अपने प्रेम भरे नेत्रों से इस प्रकार देखेंगी जैसे मानों तुम्हें पान ही कर जायेंगी। नायिकाओं द्वारा इतनी उत्सुकता से देखा जाना तुम्हारे मनोविनोद का कारण होगा।

यहाँ मेघ को कहता है कि आगे चलकर आम्रकूट पर्वत पर तुम पृथ्वी के स्तन की भांति शोभा को प्राप्त करोगे। इस शोभा को देव दम्पती बड़ी उत्सुकता से देखेंगे। दशार्ण देश की राजधानी विदिशा में तुम कामुकता के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करोगे। क्योंकि वहां तुम वेत्रवती नदी के जल का पान करोगे।

विदिशा के पास ही तुम विश्राम करने के लिए उस नीचैः नाम के पर्वत पर ठहर जाना जो कि अपने शिलागृहों में आने वाली वेश्याओं की अनेकविद्य रति क्रीडाओं की गन्ध को सदा प्रकट करता रहता है अर्थात् इस पर्वत की एकान्त कन्दराओं में यहाँ के नागरिक पण्य स्त्रियों के साथ सदा रति क्रीडा किया करते रहते हैं इस दृश्य से तुम्हारा अच्छा मनोविनोद हो सकेगा। आगे चलकर तुम्हें उज्जयिनी की रमणीयों के चंचल कटाक्षों का आनन्द प्राप्त हो सकेगा।

वस्तुतः यहाँ यक्ष अपनी संयोग कालीन दशाओं का स्मरण और अब इस समय विरहिणी यक्षिणी की दशा पर विचार कर इस प्रकार अपनी प्रेम भावना को व्यक्त कर रहा है।

यक्ष यह सब कहता कहता इतना प्रेम विहल हो जाता है कि उसकी आखों के सामने वहीं अपना संयोगकालीन चित्र दिखलाई पड़ने लगता हैं इसलिए वह कहता है –

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूलः।
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः।।

अर्थात् जहाँ स्त्रियों के सम्भोग की थकान को दूर करने वाला शिप्रा नदी का पवन प्रियतम के मीठे एवं चाटुकारिता भरे बचनों के समान तुम्हारी थकान दूर करेगा।

पूर्व मेघ में अनेक स्थल ऐसे है जहाँ सिद्धांगनाओं पौरांगनाओं अथवा युवतियों की विलासमयी चेष्टाओं का उल्लेख किया गया है।

उत्तर मेघ में यक्षेश्वर की नगरी अलका के वर्णन में भो शृंगार रस के उपादानों का अवलम्बन किया गया है और यक्ष की आत्म दशा निवेदन में तथा यक्ष पत्नी की विरहावस्था में सम्भावित दशा के चित्रण में विप्रलम्भ शृंगार की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। यक्ष की प्रिया को दिये गये संदेश में तथा यक्ष पत्नी की विरह दशा वर्णन में विप्रलम्भ करूण की भावभ्मि में पहुँच गया है। वस्तुतः यक्ष के विरह की इतनी तीव्र अनुभ्ति हुई है कि वह अब यह नहीं चाहता कि जीवन में कभो किसी को प्रिय विरह का ऐसा दुख भोगना पडे इसलिए वह अपने सन्देशवाहक मेघ को भो कहता है।

मा भ्देवं क्षणमापि सखे विद्युता विप्रयोगः।

यक्ष का मेघ से यही अन्तिम कथन है इस प्रकार कवि ने कांता विरह गुरूणा से आरम्भ कर विप्रयोग में ही अपने विरह काव्य की समाप्ति की है अतः मेघदूत आद्योपान्त विप्रलम्भ शृंगार काव्य है। और वियोग की इसमें इतनी तीव्रतम अनुभ्ति है। जिसे पाकर सहृदय प्रेमप्लावित होकर करूणार्द्र हो उठता है। यही कवि का काव्य कौशल है और यही उसके कविता कामिनी विलास होने का प्रमाण है।

4.4 मेघ का मार्ग

मेघदूत के पूर्व भाग में कालिदास ने रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग में पड़ने वाले प्रसिद्ध स्थानों नदियों पर्वतों तथा तीर्थ स्थानों का ऐसा लुभावना चित्रण किया है जिसे सुनकर यक्ष का संदेश ले जाने वाला मेघ ही नहीं वरन् पाठक भो बस तुरन्त प्रस्थान कर देने को उद्यत हो जाये।

अनेक विद्वानों ने कालिदास के भोगोलिक ज्ञान की प्रशंसा की है और उन्होंने कालिदास को इस बात का श्रेय दिया है कि मेघदूत में कालिदास ने मेघ का जो मार्ग बतलाया है वहीं सचमुच मानसूनी हवाओं का मार्ग होता है।

यक्ष रामगिरि के आश्रमों में वास कर रहा था और वहीं से उसने मेघ से उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करने की याचना की। इसी सन्दभ मे वह उसे अलकापुरी का मार्ग भो बतलाया है जहां याक्षिणी निवास करती है।

यक्ष की एक वर्ष का शाप मिला था उस एक वर्ष के 12 मासों में से 8 मास तो यक्ष ने जैसे तैसे व्यतीत किये लेकिन आषाढ मास के प्रथम दिवस में जब यक्ष ने मेघ को देखा जो कि हाथी की तरह शोभायमान हो रहा था। सर्वप्रथम तो यक्ष काफी समय तक चिन्तन करता रहा क्योंकि उसे अपनी प्रियतमा का स्मरण हो रहा था।

आषाढ़ मास के पश्चात् श्रावण मास निकट आ गया तो श्रावण मास विरही प्रेमियों को अत्यधिक दुःख देने वाला होता है। इसीलिए यक्ष भो अपनी प्रियतमा को धैर्य बधाने के लिए सन्देश भजना चाहता है मेघ को क्योंकि रामगिरि से अलकापुरी तक जाना है इस अवस्था में उसे जाने में लगभग एक मास लग जायेगा।

काम पीड़ित व्यक्ति चेतन और जड़ के विषय में स्वभाव से दीन होता है इसीलिए ही यक्ष ने उस मेघ से याचना की अपने कार्य की सिद्धि के लिए यक्ष पहिले तो मेघ की चाटुकारिता के रूप में उसके उत्तम गुणवान परोपकार परायण वंश की प्रशंसा करता है।

यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम विरह पीड़ितो के रक्षक हो और कुबेर के क्रोध से प्रिया से वियुक्त हुए मेरे संदेश को प्रिया के पास ले जाओ। हे मेघ तुम्हें यक्षों के स्वामी कुबेर की अलका नाम वाली नगरी में जाना है वह अलकानगरी के बाहर के उद्यानों एवं महलों से सुशोभित है। उन उद्यानों में शिव के सिर पर स्थित चांदनी से वह नगरी अत्यधिक शोभायमान हो रही है।

हे मेघ ! जब तुम वायु मार्ग से अकाश में चढ़ोगे तो परदेश गये हुए व्यक्तियों की स्त्रियाँ तुमको आश्वस्त होकर देखेंगी क्योंकि लगभग श्रावण मास में मेघ के दिखने पर सभो परदेश गये लोग वापस अपने घरों की ओर लौट आते हैं। मेघ तुम अपनी भाभो को जीवित अवश्य देखोगे क्योंकि आशा का बन्धन प्रेमी ह्रदय को रोके रखता है।

हे मेघ ! वह अनुकूल वायु, तुम्हें धीरे–धीरे प्रेरित कर रहा है अर्थात् तुम्हें आवेग की ओर बढ़ा रहा है तुम्हारे वाम भाग में पपीहों के मधुर शब्द हो रहे है एवं पंक्तिबद्ध बगुलियाँ आपकी आकाश में सेवा करेंगी।

कण–सुख प्रदान करने वाली गर्जना सुनकर मानसरोवर के लिए उत्सुक राजहंस कैलाश पर्वत तक आकाश में तुम्हार साथी होंगे। हे मेघ तुम उस रामगिरी पर्वत से विदा लो। विदा लेने से पहले तुम अपने मार्ग को सुनो उसके बाद मेरे संदेश को सुनना।

हे मेघ ! ऐसा लग रहा है मानो वायु पर्वत की चोटी को लिए जा रहा है तुम यहाँ (रामगिरि) से उत्तर की ओर मुख करके आकाश में उड जाओ।

ह मेघ ! खेती का फल तुम्हारे अधीन है और माल नामक देश जो अभो शीघ्र ही हल से जोता गया है ऐसे माल नामक देश पर वर्षा करने से यह सुगन्धित हो जायेगा इसके पश्चात् तुम पश्चिम की ओर जाना और फिर तीव्र गति वाला होकर उत्तर की ओर ही जाना।

सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारूह्य मालं
किंचित् पश्चात् व्रज लघुगति भूय एवोत्तरेण।। पू.मे. 16

यक्ष कहता है कि इसके बाद ही उत्तर की ओर आम्रकूट पर्वत मिलेगा जिस पर तुम विश्राम कर सकते हो। इस पर्वत के नीचे से उपर चोटी तक पके हुए आम्र बन होंगे और इसकी सबसे ऊंची चोटी पर जब मेघ छा जायेगा तो वह आम्रकूट पृथ्वी नायिका के उठे हुए स्तन के समान प्रतीत होगा। इस पर प्रायः ग्रीष्मकाल में दावाग्नि लग जाती होगी और इसकी तलहटियों के कुंजो में वनचरों की स्त्रियाँ घूमती रहती होंगी। इसके बाद उत्तर की ओर जाते हुए मेघ को विन्ध्य पाद अर्थात् विन्धायचल का दक्षिणी प्रदेश जो सतपुड़ा पर्वत माला के नाम से प्रसिद्ध है, पर फैली हुई रेखा अर्थात् नर्मदा नदी मिलेगी। यह नर्मदा विन्ध्यपाद की ऊंची चट्टानों पर बह रही होगी।

रेवां द्रुक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम्।। पू.मे.19

यक्ष कहता है कि तुम इस नदी से जल भर कर आगे बढ़ना। आगे हरिण जल कणों की वर्षा करने वाले तुम्हारे मार्ग को सूचित करेंगे। आगे आने वाले पर्वतों पर तुम विश्राम करके जब तुम और आगे बढ़ोगे तो दशार्ण प्रदेश में पहुंचोगे। यहाँ के फूले हुए केवड़ो से यहाँ के उपवन पीताभ प्रतीत होगे। यहां के ग्राम मंदिर कौवे आदि के घोंसलों से पूर्ण रहते हैं। पकी हुई जामुनों से यहाँ जामुन वृक्ष सुशोभित रहते हैं। यहां की वेत्रवती या वेतवा नदी के तट पर ही दशार्ण की राजधानी विदिशा है। यहाँ तुम कामुकता के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करोगे क्योंकि तुम वेत्रवती नदी के जल का पान करोगे। वेत्रवती तथा विदिशा पार करके तुम नीचैः नामक पर्वत पर पहुंचोगे।

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतोः।। पू.मे. 26

अर्थात् विश्राम के लिए प्रसिद्ध ''नीचैः'' नामक पर्वत पर ठहरना।

इसके आगे यक्ष कहता है कि 'हे मेघ ! नीचैः गिरि पर कुछ विश्राम कर आगे वन नदी के किनारे तुम पहुंचना। वहाँ तुम जूही की कलियों को सींचते हुए, पुष्प तोडने वाली स्त्रीयों के मुखों को छाया देने से परिचित होकर आगे बढ़ना।

इस प्रकार मेघदूत के 27 वें श्लोक तक मेघ का मार्ग रामगिरि से चल कर उत्तर की ओर ही सीधा बढ़ता गया है, जिससे उसे कहीं दूसरी दिशा की ओर नहीं मुड़ना पड़ा है। इसके बाद यक्ष कहता है कि अब उसे कुछ टेढ़ा मार्ग अपनाना पडेगा जिससे कि वह उज्जयिनी का दर्शन कर सके।

वक्रपन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्संग–प्रणय विमुखो मास्म भूरुज्जयिन्याः।। पू.मे.28

अर्थात उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किये हुए आपका मार्ग यद्यपि टेढ़ा हो जायेगा फिर भो उज्जयिनी के प्रासादों के उर्ध्व भागों के परिचय से परांग मुख मत होना। वहाँ नगर की सुन्दरियों चंचल चितबन वाले नेत्रों का आनन्द अवश्य लेना। यहाँ मेघ को उत्तर दिशा को छोड़कर अब पश्चिम की ओर मुड़ना पड़ेगा क्योंकि उज्जयिनी विशाला राज्य की राजधानी थी व शिप्रा नदी के तट पर स्थित थी।

इसके बाद मेघ को अवंती प्रदेश में प्रवेश करना है।

प्राप्यावन्तीनुदयन कथा कोविदग्रामवृद्धान्।।

अर्थात् जहाँ के ग्रामों के वृद्ध जन उद्यन की कथाओं के जानने वाले हैं। ऐसे अवंती प्रदेश को प्राप्त कर उज्जयिनी नाम की नगरी में जाना, यहाँ इस नगरी में मेघ को महा कालेश्वर महादेव के मन्दिर में सन्ध्या आरती में भाग लेना था। यहां उसे 'गन्धवती' नदी की सुगन्धित वायु के सेवन का भो अवसर मिलेगा।

धूतोघानं कुवलय रजोगन्धिभिर्गन्धवत्या। पू.मे. 36

महाकालेश्वर का मन्दिर व उनका उद्यान गन्धवती नदी के तट पर स्थित है इस नदी में विकसित कमलों एवं युवतियों के इसमें स्नान करते समय धुले हुए अंग राग से इसका जल सुगन्धित था। इसलिए इसे गन्धवती कहा गया है।

इसके बाद उज्जयिनी से सीधे मार्ग पर चलकर मेघ गम्भोरा नदी के तट पर पहुंचता है। यहाँ यक्ष ने स्पष्ट किया है कि गम्भोरा नदी के जल में कुमुद की तरह उज्ज्वल चंचल मछलियों की उछाल रूपी चितवनों को हे मेघ ! तुम धीरता के कारण निष्फल मत करना।

इसके बाद यक्ष कहता है कि जब तुम यहाँ से आगे चलोगे तो तुम्हें चर्मण्वती नदी मिलेगी। यहाँ तुम कार्तिकेय की आराधना करना और रतिदेव की कीर्ति का सम्मान करते हुए झुक जाना। चर्मण्वती (चम्बल) नदी को पार करके मेघ आगे दशपुर में पहुंचता है।

पात्रीकुर्वन् दशपुरवधुनेत्र कौतूहलानाम्। पू.मे. 50

अर्थात् दशपुर की स्त्रियों को नयनों के कौतूहल का पात्र बनाते हुए जाना इसके बाद मेघ ब्रह्मावर्त प्रदेश को पार करता हुआ कुरूक्षेत्र पहुंचता है और सरस्वती नदी के जल का पान

कर अपने को पवित्र बनाता है इसके बाद मेघ कनखल (हरिद्वार के पास) नामक पर्वत के सहारे गगन की ओर जाता है। यक्ष कहता है कि इस प्रकार गंगा नदी पर पहुंच कर पुनः तुम गंगा के उत्पत्ति स्थान हिमालय पर पहुँचना और उसके शृंग पर बैठ कर कुछ क्षण विश्राम करना और वहां यदि दावानल चमरी गायों के बालों को जला रहा हो तो तुम जल वर्षा कर उसे शान्त कर देना।

इसके बाद यक्ष कहता है कि हे मेघ ! यहाँ से तुम हिमालय पर्वत के छोर पर स्थित विशेष स्थानों को देखते हुए मानसरोवर को जाने के लिए हंसो के प्रवेश द्वार क्रौंच रन्ध्र पर पहुँचना। इस रन्ध्र (छिद्र) में मेघ को भो तिरछा एवं लम्बा होकर प्रवेश करना होगा। यहाँ से फिर मेघ को उत्तर की ओर चलकर कैलास पर्वत पर पहुँचना है और इसी कैलास पर्वत के अंग में बसी अलकापुरी को वह देख सकेगा जो कि उसका गन्तव्य स्थान है और जहाँ पर उसे यक्षिणी को सन्देश देना है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

सचेतन	–	सजीव प्राणी
अध्वक्लान्त	–	मार्ग में थकान
यत्र	–	जिस अलका में
कामिनाम्	–	अभिसारिकाओं का
नैशःमार्गः	–	रात्रि का मार्ग
सवितु उदये	–	सूर्य के उदय होने पर
गत्युत्कम्पात	–	गमन के कारण हिलने से
अलकपतितै	–	केशों से गिरे हुये
मन्दार पुष्पैः	–	मन्दार वृक्ष के फूलों से
कणविभ्रंशिभिः	–	कानों से गिरने वाले
पत्रच्छेदै	–	पत्तों के टुकडों से
कनक कमलैः	–	स्वर्ण कमलों से
स्तन परिसरच्छिन्नसूत्रैः	–	स्तन प्रदेश पर टूटे हुये धागों वाले
मुक्ता	–	मोतियों की मालाओं से
हारैः	–	जालै पुष्पादि के हारों से
सूच्यते	–	सूचित होता है
श्यामासु	–	प्रियंगुलताओं में
अंगम्	–	शरीर की
चकित हरिणी प्रेक्षणे	–	चकित हरिणीयों की चितवन में
दृष्टिपातम्	–	चितवन की
शिखिनां	–	मयूरों के
बर्हभारेषु	–	पंखों के समूह में
प्रतनषु	–	हल्की हल्की
नदीवीचिषु	–	नदियों की तरंगों में
भ्रूविलासान्	–	भ्रूभंगों की
हन्त	–	खेद है
चण्डि	–	कोप करने वाली
क्वचिदपि	–	किसी भी
मेघालोके	–	मेघ के दर्शन होने पर
सुखिनःअपि	–	सुखी व्यक्ति का भी
अन्यथावृति	–	दूसरे प्रकार की वृति वाला चंचल
दूरसंस्थे	–	दूर स्थित होने पर
किंपुनः	–	फिर कहना ही क्या
आश्लिष्टमासु	–	पर्वत की चोटी से सने हुए

कामार्ता	–	काम पीडित
चेतनाचेतनेषु	–	चेतन और जड के विषय में
प्रकृतिकृपणाः	–	स्वभाव से दीन
भुवनविदिते	–	संसार में प्रसिद्ध
पुष्करावर्तकानां	–	पुष्कर और आवर्तक (पुराणों के अनुसार प्रलय काल में संहार करने वाले मेघों को पुष्करावर्तक कहते हैं इसी कारण पुष्कर और आवर्तक को मेघ जाति में श्रेष्ठ माना जाता है)
प्रकृति पुरूष	–	प्रधान पुरूष
कामरूपम्	–	इच्छानुसार रूप धारण करने वाला
मघोनः	–	इन्द्र का
संन्तप्तानां	–	पीडितों के
शरणं	–	रक्षक
पयोद	–	मेघ
क्षणमपि	–	क्षणमात्र को भी
ते	–	तुम्हारा
विद्युता	–	बिजली से
विप्रयोगः	–	वियोग
मा भूत	–	न हो
सघः	–	तत्काल
सीरोत्कषण सुरभि	–	हल से जोता जाने के कारण सुगन्धित
लघुगति	–	तीव्र गति वाला
किंचित् पश्चात्	–	कुछ पश्चिम की ओर
आरूह्य	–	चढ़कर या पहुंचकर
उत्तरेण एवं व्रज	–	उत्तर दिशा की ओर ही जाना
मालम् क्षेत्रम्	–	माल नामक प्रदेश पर
रेवाम्	–	रेवा नदी अर्थात नर्मदा नदी को
द्रक्ष्यामि	–	देखोगे
उपलविषमे	–	पत्थरों के कारण ऊंचे नीचे
विन्ध्यपादे	–	विन्ध्याचल की तलहटी में
विशीर्णाम्	–	फैली हुई
वक्र	–	टेढ़ा
पन्थाः	–	मार्ग
प्रस्थितस्य भवतः	–	चले हुए आपका
सौधोत्सड़गप्रणयमुिखः	–	प्रासादों की अट्टालिकाओं के परिचय से पराड. मुख
मा स्म भू	–	मत होना
उदयनकथाकोविद ग्रामवृद्धान वाले	–	उदयन की कथाओं में प्रवीण ग्रामीण वृद्धजनों
प्राप्य	–	पहुंचकर
अवन्तीन	–	अवन्ति प्रदेश में
धूतोधान	–	हिलते हुए उपवनों वाला
गन्धवत्या	–	गन्धवती नामक नदी के
कुवलय रजो गन्धिभि	–	कमलों के पराग की सुगन्धि वाले
दशपुरवधू नेत्रकौतूहलानाम्	–	दशपुर की वधूओं के नेत्रों के कौतूहलों का अर्थात उनके कौतूहलपूर्ण नेत्रों का

पात्रीकुर्वन्	–	पात्र बताते हुए
क्रौंचरन्ध्र	–	क्रोंच पर्वत का छिद्र (पौराणिक प्रसिद्धि के अनुसार जब परशुराम जी भगवान शिव से धतुर्वेद का अध्ययन कर लौट रहे थे तब उन्होने स्कन्द की स्पर्धावश अपने तीक्ष्ण बाण से क्रोंच पर्वत में छिद्र कर दिया था। यह परशुराम की कीर्ति का प्रख्यापक है)

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

1. मेघदूत का सिंहली अनुवाद कब प्रकाशित हुआ ?

   (क) 1993 (ख) 1883 (ग) 1850 (घ) 1970

2. दूतकाव्यों के प्रणयन की परम्परा में सबसे बड़ा योगदान किन का रहा है ?

3. वल्लभदेव की टीका–मेघदूत में कितने श्लोक है।

   (क) 112 (ख) 120 (ग) 111 (घ) 113

4. सिंहली अनुवाद में मेघदूत कितने श्लोक है ?

   (क) 117 (ख) 118 (ग) 120 (घ) 125

5. मेघदूत पर लगभग वर्तमान तक कितनी टीकाएँ उपलब्ध हैं ?

   (क) 15 (ख) 17 (ग) 40 (घ) 27

बोध प्रश्न

6. श्रृंगार के दो पक्ष कौन–कौन से हैं ।

7. निम्न श्लोक का अनुवाद कीजिए–

   श्यामास्वंगं चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं
   वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
   उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी वीचिषु भ्रूविलासान्
   हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।।

8. निम्न सूक्ति का भाव स्पष्ट कीजिए–

   मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्थावृति चेतः।

9. मेघ किन चार चीजों से बनता है ?

10. 'पुष्करावर्त्तकानां' से क्या अभिप्राय है ?

11. निम्न का अभिप्राय स्पष्ट कीजिये–

    ''यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूलः।
    शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः।।

12. मेघ मार्ग के विषय में दस पंक्ति लिखिए।

1. ख
2. देखिए भाग 4.2
3. क
4. ख
5. ग
6. देखिए भाग 4.3

7. देखिए भाग 4.3
8. देखिए भाग 4.3
9. देखिए भाग 4.3
10. देखिए भाग 4.3
11. देखिए भाग 4.3
12. देखिए भाग 4.4

4.7 सारांश

इस इकाई में आपने जाना है कि महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध मेघदूत नामक संदेश काव्य पर कितने विद्वानों ने टीकाएँ प्रस्तुत की है। मेघदूत के मूल भाग में कितने श्लोक थे और कौन–कौन से श्लोक बाद में उत्साही लोगों ने जोड़ दिये। यद्यपि आज मेघदूत पर हिन्दी व अंग्रेजी में अनेक टीकाएं प्राप्त होती हैं लेकिन सभी में श्लोक संख्या एवं उनके क्रम को लेकर एक रूप नहीं मिलता है इसलिए प्रत्येक पाठक एवं उनके क्रम को लेकर एक रूप नहीं मिलता है इसीलिए प्रत्येक पाठक की यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि कालिदास के मूल मेघदूत का क्या स्वरूप रहा होगा। मेघदूत का मूल पाठ खोज निकालने के लिए आधुनिक युग में अनेक विद्वानों ने प्रयत्न किया है। इस दिशा में अर्वाचीनतम तथा प्रशस्यतम प्रयत्न डॉ एस.के.डे का है। मेघदूत की पाण्डुलिपियाँ संसार के सभी प्रसिद्ध पुस्तकालयों में भारतवर्ष के सब भागों में अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी और फ्रांस आदि पाश्चात्य देशों में और नेपाल में मिलती है कुछ पाण्डुलिपियों में मूल पाठ है और कुछ लिपियों में संस्कृत की प्राचीन टीकाएँ भी है इन संस्कृत टीकाओं समेत पाण्डुलिपियों का बड़ा महत्त्व है।

मेघदूत पर उपलब्ध टीकाओं में वल्लभ, मल्लिनाथ, सारोद्धारिणी, सरस्वतीतीर्थ सुमतिविजय और महिम सिंहानी की टीकाएँ प्रसिद्ध है।

इस इकाई के 4.3 भाग में आपने जाना है कि मेघदूत का विप्रलम्भ शृंगार का अनुपम चित्रण किस प्रकार से हुआ है। प्रत्येक काव्य का उद्देश्य पाठक को किसी रस विशेष का आस्वाद करा देना होता है यहां भी मेघदूत में स्वामी के शाप के प्रभाव से नष्ट गौरव और देवलोक से निर्वासित होकर राम गिरि पर वास करने वाले किसी प्रिया वियुक्त यज्ञ की विरह दशा का चित्रण किया गया है जो सामने मेघ को देखकर और अधिक उत्कण्ठित हो जाता है इसलिए वह वर्षा ऋतु में जो कि विरही व्यक्तियों के लिए सबसे अधिक उत्कण्ठा का विषय होती है मेघ द्वारा अपना कुशल निर्देश प्रिया को भेजता है।

उत्तर मेघ में यक्षेश्वर की नगरी अलका के वर्णन में भी शृंगार रस के उपादानों का अवलम्बन किया गया है। और यक्ष को आत्म दशा निवेदन में तथा यक्ष पत्नी की विरहावस्था में सम्भावित दशा के चित्रण में विप्रलम्भ शृंगार की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। यक्ष की प्रिया को दिये गये संदेश में तथा यक्ष पत्नी की विरह दशा वर्णन में विप्रलम्भ करूण की भाव भूमि में पहुँच गया है। मेघदूत में विप्रलम्भ और करूण के अतिरिक्त हास्य और शान्त रस की भी जगह जगह अभिव्यक्ति की गई है।

इस इकाई के 4.4 भाग में आपने मेघ के मार्ग के विषय में जाना। मेघदूत के पूर्वभाग में कालिदास ने रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग में पड़ने वाले प्रसिद्ध स्थानों नदियों पर्वतों तथा तीर्थ स्थानों का ऐसा लुभावना चित्रण किया है। जिसे सुनकर यक्ष का संदेश ले जाने वाला मेघ ही नही अपितु पाठक भी तुरन्त प्रस्थान करने को उद्यत हो उठता है। कालिदास ने मेघदूत के पूर्व मेघ का मार्ग रामगिरि से अलकापुरी तक निश्चित किया है इसमें मेघ को उत्तर मुख होकर उड़ जाने को कहा गया है इसके बाद आम्रकूट, विन्ध्यपाद, दशार्णप्रदेश, नीचैःपर्वत, सरस्वतीनदी कनखल, गंगा, हिमालय, मानसरोवर कैलाश आदि स्थानों से होते हुए मेघ अलका पुरी पहुँचता है इस मार्ग का कालिदास ने प्रकृति के साथ समन्वय कर जो अलौकिकता प्रदान की है वह अनूठी है।

4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. विजेन्द्र कुमार शर्मा (सम्पादक) मेघदूतम्, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1996.
2. डॉ. बाबूराम त्रिपाठी (सम्पादक) मेघदूतम्, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1986.
3. डॉ. एस. के. डे. (सम्पादक) मेघदूतम्, साहित्य अकादमी, न्यू दिल्ली, 1986.
4. वाचस्पति गैरोला (सम्पादक) संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 1960.

इकाई 5

मेघदूत के पूर्वमेघ के श्लोकों की ससन्दर्भ व्याख्या व्याकरणात्मक टिप्पणी सहित

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 प्रमुख श्लोक ससन्दभ व्याख्या सहित
5.3 पारिभाषिक शब्दावली
5.4 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.5 सारांश
5.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे कि महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत के पूर्वमेघ में संख्या 1 से 32 तक के श्लोकों में कौन कौन से प्रमुख श्लोक हैं । उन श्लोकों इस इकाई में ससन्दभ व्याख्या की गई है तथा इन श्लोकों की संस्कृत व्याख्या उनका संस्कृत सरलार्थ आदि आपकी सहातार्थ प्रस्तुत किया गया है । साथ ही श्लोकों में आये हुए कठिन शब्दार्थों को भो यथा स्थान स्पष्ट कर दिया गया है । व्याकरणात्मक टिप्पणियों का भो यथा स्थान वर्णन किया गया है । साथ ही श्लोकों में आये हुए प्राचीन भोगोलिक शब्दों को वर्तमान भोगोलिक विस्तार के अनुसार बताया गया है। अर्थात् वे प्राचीन स्थान वर्तमान में कहाँ स्थित हो सकते है । इस बात का भो उचित वर्णन किया है

5.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास द्वारा रचित मेघदूत गीतिकाव्यों का चूड़ामणि है । महाकवि की परिपक्व कला, कल्पना की ऊँची उड़ान, परिष्कृत माधुरी भरी भाषा, विषय की धारावाहिक गति एवं गीति की एकतानता का यह ऐसा अद्भत् नमूना है जिसकी टक्कर का विश्वभर में दूसरा कोई काव्य नही है। इसी कारण विद्वत् समाज सदियों से ''मेघे माघे गतं वयः'' कहता आ रहा है ।

मेघदूत 'मन्दाक्रान्ता ' छन्द में लिखा हुआ है । काव्य में 121 पद्य हैं । इसमें कुबेर के शाप से प्रिया वियुक्त हुए यक्ष के व्यथित हृदय की वेदना भरी कहानी है । हृदय को द्रवित कर देने वाली ''विप्रलम्भ'' की एक करूण गीतिका है । यह काव्य दो भागों में विभाजित है –पूर्वमेघ और उत्तर मेघ ।

कालिदास के इस काव्य का कोई पौरारिणक तथा ऐतिहासिक आधार नही है यह काव्य तो नितांत कल्पना प्रसूत हैं किन्तु इसी काव्य द्वारा कालिदास को दूतकाव्यों की परम्परा चलाने का श्रेय दिया जाता है । विद्वत समाज तो यहाँ तक कहता है कि यदि कालिदास ''रघुवंश '' और ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' नही भो लिखते तो भो केवल ''मेघदूत'' के आधार पर विश्व इन्हे प्रकाण्ड महाकवियों में गिनता ।

मेघदूत का भारत में ही नही अपितु विदेशों में भो गहरा प्रभाव पड़ा है । यथा –जर्मन विद्वान श्वेट्ज ने मेघदूत का जर्मन गद्य में और प्रो. मैक्समूलर ने जर्मन पद्य में अनुवाद किया । अमेरिका के आर्थर राइड़र ने अंग्रेजी में मेघदूत का पद्यानुवाद किया है । मेघदूत पर वर्तमान में 40 से ज्यादा टीकाएँ हैं । जो इसकी लोकप्रियता को सिद्ध करती है ।

टीकाकारों में मल्लिनाथ ही सुप्रसिद्ध हैं । इस ग्रन्थ के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ना तो ऐसा ग्रन्थ भ्तकाल मे लिखा गया था और ना ही अब भविष्य काल में लिखा जाएगा (न भ्तो न भविष्यति)

प्रस्तुत इकाई में महाकवि के मेघदूत के पूर्व मेघ के प्रमुख श्लोकों की व्याख्या प्रस्तुत की गई उन सभो सूक्तियों के भाव विस्तार को पर्याप्त विस्तारित किया गया है । प्रत्येक श्लोक

को व्याकरणात्मक रचना के साथ मानवीय भावनाओं के स्तर पर भो विस्तार पूर्वक समझाया गया है और महाकवि के इस अद्भत् खण्डकाव्य के अध्ययन में यह आपकी रूचि उत्पन्न करते हैं ।

5.2 प्रमुख श्लोक ससन्दर्भ व्याख्या सहित

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – महाकवि कालिदास, अपने इस मेघदूत नामक खण्ड़ काव्य में, इस काव्य के नायक विरही यक्ष का परिचय देते हुए कहते हैं ।

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।। 1।।

अन्वय – स्वाधिकरात् प्रमत्त : कान्ताविरहगुरुणा वर्षभोग्येण भर्तुः शापेन अस्तंगमितमहिमा कश्चित् यक्षः जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु स्निग्धच्छायातरुषु रामगिर्याश्रमेषु वसति चक्रं।

शब्दार्थ – स्वाधिकारत् अपने अधिकार से अर्थात् अपने लिए निर्धारित किये गये कर्त्तव्य के पालन से, प्रमत्तः असावधान, प्रमादी, उपेक्षा करने वाला । कान्ताविरहगुरुणा पत्नी के वियोग के कारण , गुरु अर्थात् असहनीय । वर्षभोग्येण एक वर्ष में भोगे जाने योग्य, अर्थात् एक वर्ष की अवधि तक भोगे जाने वाले । भर्तुः स्वामी के अर्थात् यक्षाधिपति कुबेर के । शापेन शाप से अर्थात् क्रोधवश दण्ड़रूप शाप के द्वारा अस्तंगमितमहिमा जिसकी दिव्य शक्ति और उच्च पद का गौरव नष्ट हो गया है अर्थात् लुप्त दिव्यशक्ति और उच्च पद गौरव वाला, कश्चित् कोई यक्षः–अज्ञातनामा, 'यक्ष'नामक दवयोनिविशेष का कोई व्यक्ति । जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु जनक की पुत्री सीता के स्नान से पवित्र हुए जलों वाले। स्निग्धच्छायातरुषु सघन छाया युक्त वृक्षों वाले । रामगिर्याश्रमेषु रामगिरि नामक पर्वत के वनाश्रमों में। वसतिम् निवास स्थान । चक्रं बनाया अर्थात् निवास किया ।

अनुवाद – अपने अधिकार अर्थात् नियोग या कतव्य पालन से असावधान (फलतः) अपनी प्रिय पत्नी के वियोग के कारण असहनीय (और) एक वर्ष पर्यन्त भोगने योग्य, अपने स्वामी यक्षाधिपति कुबेर के शाप से जिसकी दिव्य शक्ति और उच्च पद प्रतिष्ठा नष्ट हो गई थी (ऐसा) कोई (अज्ञातनामा) यक्ष, जनक–पुत्री सीता के स्नान करने से पवित्र हुए जल से युक्त, (एवं) सघन छाया वाले वृक्षों से युक्त, रामगिरि नामक पर्वत के वनाश्रमों में निवास करता था ।

संस्कृत व्याख्या – स्वाधिकारात् आत्मनियोगात् , प्रमत्तः असावधानः कान्तायाः विरहेण गुरुस्तेन कान्ताविरहगुरुणा पत्नीवियोगासह्येन, वर्षभोग्येण सम्वत्सरभोगयोग्येन भर्तुः स्वामिनः कुबेरस्य, शापेन, अस्तंगमितः महिमा यस्य सः अस्तंगमितमहिमा विनाशितदिव्यसामर्थ्यगौरवः, कश्चित् आज्ञातनामा यक्षः देवयोनिविशेष, जनकतनयायाः स्नानेन पुण्यानि उदकानि येषान्तेषु–जनकतनयास्नानपुण्यादकेषु जनकपुत्रीस्नानपवित्री कृतजलेषुः, स्निग्धच्छायातरुषु निविड़च्छायावृक्षेषु, रामगिर्याश्रमेषु, रामगिरिनामकपर्वततपोवनेषु, वसतिम् निवासस्थानम् चक्रे कृतवान् ।

संस्कृत सरलार्थ – आत्मनियोगेऽलपण्धानः, फलतः वर्षभोगयोग्येन स्वपत्नीविरहदुस्तरेण शापेन, स्वस्वामिना कुबेरेण शप्तः निरस्तसमस्तानुरूपसामर्थ्यः कश्चित् यक्षः तेषु रामगिरिनामकपर्वततपोवनेषु स्वनिवासं कृतवान् यत्र वृक्षाः सघनच्छायासमन्विता आसन् , जलानि च यत्र सीताकृतस्नानेन पवित्राणि आसन ।

समास विग्रहादि – स्वस्य अधिकारः (नियोगः) मस्मात्–स्वाधिकारात् (तत्पुरूष) कान्तयाः विरहेण गुरुस्तेन कान्ताविरहगुरुणा (तत्पुरूष) वर्षं भोग्यस्तेन–वर्षभोग्येण तनयायः स्नानैः पुण्यानि उदकानि येषान्तेषु (बहुब्रीहि) छायाप्रधानाः तरवः छायातरवः

(मध्यमपदलोकिकमधारयमासः) स्निग्धा : छायातरवः येषु तेषु स्निग्धच्छायातरुषु (बहुब्रीहि) रामनामको गिरिः रामगिरिः तस्य आश्रममास्तेषुरामगिर्याश्रमेषु (तत्पुरूष)

व्याकरणादिः – अधिक्रियेऽस्मिन्निति अधिकारः, अधि +कृञ् +घञ्, वृद्धि –अधिकारः यहाँ अधिकार शब्द का सामान्यः प्रचलित अर्थ में प्रयोग नहीं है , अपितु यहाँ इसका अर्थ–नियोग है अर्थात् वह कतव्य जो किसी व्यक्ति को सौंपा गया है– वह उसका अधिकार है, उसके द्वारा अवश्य पालनीय है। किसी नियोग में नियुक्त व्यक्ति को अपना कतव्य अवश्य पालन करना पड़ता है अन्यथा वह दण्ड़नीय होता है प्रमत्तः के योग में ''जुगुत्साविरामेत्यादिवार्तिक के अनुसार 'अधिकारात्' में पंचमी विभक्ति है । प्रमाद का अर्थ है अनवधानता ''प्रमादोऽनवधानता'' ।

''कान्ताविरहगुरुणा'' में गुरु शब्द का यहाँ, अर्थ दुस्तर, असह्य, दुर्बल आदि हैं यद्यपि गुरु शब्द के, वृहस्पति, श्रेष्ठ, पिता, गुरू, आदि अनेक अर्थ है । वर्षभोग्येन यहाँ भज्धातु से ण्यत् प्रत्यय उकार को ओ गुण, ज् को ग होकर 'भोग्य , शब्द बना है । वर्षभोग्यः –वर्षभोग्यः यहाँ 'कालाध्वनारत्यन्तसंयोग' से वर्षम् में द्वितीया विभक्ति होगी और 'अत्यन्तसंयोंगे च' से समास होकर 'कुमति च' सूत्र से नकार का णकार होगा। 'अस्तङ्गमितमहिमा' में अस्तम्' यह मकारान्त अव्यय है, उसका गमित के साथ द्वितीयेत्यादि सूत्र में द्वितीय , इस योगविभाग द्वारा समास होगा । गमितः में गम् धातु से णिच (इ) और क्त, प्रत्यय है, महिमा शब्द में महत् शब्द से इमनिच् (इमन्) प्रत्यय है,

यहाँ महिमा का अर्थ है – दिव्यशक्ति जो कि यक्ष जैसी देवयोनि में उत्पन्न जीवों को प्राप्त होती है जिससे कि वे सुदूर स्थान पर अनायास और अविलम्ब जा सकते हैं , दूर की बात भो सुन सकते और देख सकते हैं और दूर स्थित दुर्लभ जन से भो मिल सकते हैं। साथ ही महिमा का अर्थ यहाँ पदप्रतिष्ठा भो है यह यक्ष कुबेर ने पुष्पोद्यान के संरक्षक के प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त था।

शापवश उसके ये दोनों ही महत्त्व नष्ट हो गये । अतएव वह अलकापुरी से सुदूर स्थित रामगिरि पर रहता था और अपनी प्रिया के पास नहीं जा सकता था , उसका सभो सामर्थ्य नष्ट हो चुका था इसलिए वह आकाशगामी मेघ से अलकापुरी जाने की प्रार्थना करता है । भर्तुः –में भ धातु से तृच् प्रत्यय, षष्ठी एक वचन है शापे– में शप् धातु से धा् प्रत्यय तृ. एक वचन है। यक्षः–विद्याधर, अप्सरस्, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व , किन्नर, पिशाच् गृह् , यक्ष सिद्ध आदि देवयोनियाँ हैं , इन्ही में से यक्ष एक देवयोनि विशेष का जीव है । वसतिम्–यहाँ वस् धातु से ' वहिर्वस्यर्तिभ्याश्च' से ओणादिक अति प्रत्यय है चक्रे–कृ धातु से आत्मनेपद लिट् प्रथम पु. एक वचन का रूप है ।

विशेष –

इस श्लोक में प्रवास रूप विप्रलम्भ श्रृंगार रस है । यक्ष से लिए प्रयुक्त ' अस्तङ. गमितमहिमा' यह विशेषण साभिप्राय है, क्योंकि अपनी दिव्य शक्ति के नष्ट हो जाने के कारण ही वह अपनी पत्नी से मिलने नहीं जा सकता अतएव परिकर अलंकार है । 'स्वाधिकारात् प्रमत्तः' में शाप का कारण बतलाया गया है , अतएव यहाँ पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है ।

इस श्लोक में 'मन्दाक्रान्ता' नामक छन्द है जिसका लक्षण –'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मोभनौतु गयुग्मम् '' अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में मगण भगण नगण, तगण,तगण तथा अन्त में दो गुरू वर्णों के क्रम से 16 वर्ण हों तथा 4, 6 , 7 वर्णो पर यति हो वह मन्दाक्रान्ता छन्द कहा जाता है। यथा –

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गु. गु.
ऽ ऽ ऽ	ऽ । ।	। । ।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ

कश्चित्का , न्ताविर ह गुरु, णास्वाधि , कारात् , प्र म त्तः

इस प्रकार इसकी अन्य पंक्तियों में भो देखा जा सकता है, मन्दाक्रान्ता नामक छन्द सम वर्णिक छन्द है, अतः इसके चारों चरणों में एक समान अर्थात् प्रथम के समान ही गणों का विधान है ।

इस काव्य में सर्वत्र इसी छन्द का प्रयोग किया गया है , अतएव प्रत्येक श्लोक के विशेष में इसका उल्लेख नहीं किया जायेगा।

टिप्पणी – सभो काव्यों और नाटकों में कवि परम्परानुसार आदि में नमस्क्रियात्मक आशीर्वादात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण देखा जाता है , इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए कवि ने इसश्लोक में वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण किया है और कथावस्तु का आरम्भ कर दिया है और यदि मांगलिक शब्द प्रयोग ही देखना है तो 'प्रजापति वाचक' कश्चित् पद के 'क' को देखा जा सकता है ।

इस खण्ड़–काव्य का नाम 'मेघदूत' है , जिसका अर्थ –वह काव्य जिसमें मेघ का दूत के रूप में वर्णन किया गया है –मेघ एव दूतः मेघदूतः तमधिकृत्य कृतं काव्यम् मेघदूतम् अथवा मेघोदूतः यस्मिन् काव्ये तत् ।

कवि ने 'रामगिर्याश्रमेषु वसतिं चक्रे' में आश्रमेषु में बहुवचन का प्रयोग यह दिखलाने के लिए किया है कि विरही होने के कारण यक्ष निश्चिन्त होकर किसी एक स्थान पर नहीं ठहरता था, अपितु वह रामगिरि के विभिन्न आश्रमों में उद्विग्नतावश घूमता रहता था।

रामगिरि नामक पर्वत की भोगोलिक स्थिति के विषय में अब तक विद्वानों ने अनेक अनुसन्धान किये हैं पर उनमें मतैक्य नहीं पाया जाता है । जिससे मेघदूत के अनेक टीकाकारों ने , प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ का अनुसरण करते हुए, रामगिरि को चित्रकूट पर्वत ही मानकर सन्तोष कर लिया है, क्योंकि मल्लिनाथ ने रामगिरि को चित्रकूट का ही पर्यायवाची शब्द मानकर 'रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु' इत्यादि लिखा है ।

किन्तु मेघदूत में यक्ष ने मेघ को रामगिरि से अलकापुरी तक के जिस मार्ग का निर्देश किया है उससे रामगिरि को चित्रकूट मानने की बात संगत नहीं होती। यक्ष कहता है कि तुम इस स्थान से अर्थात् रामगिरि से उत्तर की ओर मुख करके आकाश–मार्ग में आगे बढ़ जाओ। स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ.मुखःखम् इसके बाद उसका मार्ग मालवा क्षेत्र से होता हुआ रेवा तो पार कर दशार्ण देश तक उत्तर की ही ओर बढ़ता जाता है।

अतः रामगिरि की स्थिति निश्चयतः चित्रकूट से भिन्न कोई अन्य पर्वत रहा होगा। पर फिर इसकी स्थिति कहाँ थी ? इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने इसकी स्थिति रामगढ की पहाड़ियों के बीच जो कि छोटा नागपुर के समीप में है, बतलाई थी, किन्तु यदि मेघ यहाँ से उत्तर की ओर चलता है तो आम्रकूट, दशार्ण, विदिशा आदि उसक मार्ग में नहीं पड़ेंगे, जहाँ होकर ही यक्ष द्वारा उसका मार्ग निर्धारित किया गया है, अपितु वे पश्चिम की ओर छूट जायेगा। इस बीच कहीं मेघ के वक्र होने का भो कोई निर्देश मेघदूत में नही मिलता। अतः रामगढ की पहाड़ियों में भो रामगिरि की स्थिति संगत नहीं होती। अतः विद्वानां ने रामगिरि को रामटेक पहाड़ी से जो कि नागपुर से उत्तर पूर्व में कुछ मील की दूरी पर स्थित है, अभिन्न माना है।

अर्थात् आज का रामटेक ही उस रामगिरि नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ से मेघ का उत्तरी मार्ग भो काव्यानुसार ठीक बन जाता है और यहाँ सीता, राम, लक्ष्मण की मूर्तियां वाले अनेक मन्दिर भो हैं, यहाँ एक छोटा सरोवर भो है जहाँ जनकतनया भगवती सीता ने स्नान कर उसे पवित्र बना दिया होगा। आज भो यह स्थान एक तीर्थ–स्थल माना जाता है और यहाँ गेरू के रंग की लाल चट्टानें भो देखी जाती हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि विरह–पीड़ित यक्ष इस पर्वतीय गेरू से अपनी प्रियतमा का चित्र बनाता हो, ''त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम् '' अतः रामटेक को ही रामगिरि मानना युक्ति, संगत है।

कवि ने 'कश्चित् यक्षः ' ही बतलाया है । यक्ष का नामतः निर्देश नहीं किया है , विद्वानों ने यद्यपि नाम न ग्रहण करने के अन्य भो कारण बतलाये हैं जैसे शप्त व्यक्ति का मंगल समय नाम नहीं ग्रहण करना चाहिये आदि । किन्तु नाम न ग्रहण करने का मुख्य कारण सम्भवतः यह था कि इस काव्य का कथानक प्रख्यात या पुराण–वर्णित, निश्चित कथानक नहीं है अपितु यह केवल कवि–कल्पना प्रसूत कथानक है जिस कथानक के द्वारा कवि ने या तो स्वयं अपनी ही अनुभत विरह–भावनाओं को अथवा सामान्य विरही जनों की भावनाओं को ही अभिव्यक्त किया है, और इस काव्य को अर्थात् मेघ सन्देश काव्य को लिखते समय कवि के

मन में रामकथा के उस भाग का विशेष प्रभाव रहा है जहाँ राम, हनुमान को अपना सन्देश लेकर सोता के पास भजते हैं ।

कान्ता शब्द कम् धातु से क्त प्रत्यय तदनन्तर टाप् प्रत्यय करके निष्पन्न होता हैं, विद्वानों की सम्मति है कि कवि ने यक्ष की अपनी पत्नी में विशेष आसक्ति दिखलाने के लिये ही इस शब्द का विशेष अर्थ में प्रयोग किया है।

इस श्लोक का 'अस्तङ.गमित महिमा' पद विशेष महत्त्व का है । कुबेर के शाप से यक्ष की सम्पूर्ण दिव्यशक्ति नष्ट हो गई थी, फलतः वह अलक्ष्य रूप में भो अपनी पत्नी से नहीं मिल सकता था और असह्य विरह –वेदना से पीड़ित था जिसकी कुछ शान्ति के उद्देश्य से ही वह मेघ को अलकापुरी भजना चाहता था एवं अनेक प्रकार के उपाय किया करता था । वस्तुतः मेघदूत का सम्पूर्ण कथानक यक्ष की दिव्यशक्ति विनाश पर ही आधृत है, कवि ने इसी एक आधार पर सम्पूर्ण कथानक की कल्पना की है और यक्ष का सामान्य विरही की भाँति चित्रण किया है।

अन्यथा यक्ष जैसे दिव्य सामर्थ्य विशिष्ट विरही के लिये यह कथानक संगत न होता । देवयोनिविशेष यक्ष एक स्थान पर बैठ कर ही सुदूरस्थित घटनाओं को और बातों को देख सुन सकने का अद्भत सामर्थ्य रखते हैं ।

ये यक्ष, कुबेर के सेवक, उनके पुष्पोद्यानों एवं कोषगृहों का रक्षा करने वाले बतलाये गये हैं । धनाधिपति कुबेर को कवि ने इसलिए 'यक्षेश्वर ' कहा है ''गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्'' । यक्ष कुवेर के सेवक हैं, सही, पर ये लोकपूजित हैं और दिव्यशक्ति सम्पन्न हैं , यक्ष की व्युत्पत्ति है– यक्ष्यते पूज्यत इति यक्षः । ये परम सुन्दर भो होते हैं जैसा कि इस व्युत्पत्ति से ज्ञात होता है– इःकामःतस्य अक्षिणी व अक्षणी यस्य स यक्षः । अतएव यक्षकन्यायें देवों द्वारा अभिलषित होती हैं । पर राज–राजकुवेर में इन्हें भो शाप देने की शक्ति होती है ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूव मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक द्वारा कवि ने वर्षाकालारम्भ में यक्ष द्वारा देखे जाने वाले, पर्वत शिखरों का स्पर्श करने वाले मेघ का वर्णन किया है :–

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ।।

अन्वय – तस्मिन् अद्रौ अबलाविप्रयुक्तः कनकवलयभशरिक्तप्रकोष्ठः कामी स कतिचित् मासान् नीत्वा आषाढस्य प्रथमदिवसे आशिलष्टसानुम् वप्रक्रीडापरिणतगज–प्रेक्षणीयम्, मेघम् ददर्श ।

शब्दार्थ– तस्मिन् अद्रौ उस रामगिरि नामक पर्वत पर । अबलाविप्रयुक्तः पत्नी से विरहित हुए । कनकवलयभशरिक्तप्रकोष्ठः (विरह जन्य कृशतावश) स्वर्ण कंकण के गिर जाने से शून्य कलाई वाले । कामी स कामसक्त उस यक्ष ने । कतिचित् कुछ। मासान् महीनों को । नीत्वा बिता करके। आषाढस्य आषाढ नामक महीने के । प्रथम दिवसे प्रथम दिन अर्थात् आषाढ मास की प्रतिपदा तिथि के दिन । आश्लिष्टसानुम् पर्वत शिखर पर चिपटे हुए अर्थात् पर्वत की चोटी का स्पर्श करने वाले । वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम् वप्रक्रीड़ा म तिरछे होकर दन्त प्रहार करने वाले हाथी के समान दिखलाई पड़ने योग्य (वप्रक्रीड़ा ,वह क्रीड़ा या खेल कहा जाता है, जिसमें कोई गज या सांड आदि पशु , किसी मिट्टी के टीले या पर्वतीय शिला पर स्वभावतः कुछ तिरछे होकर अपने दाँतो या सींगों से बार –बार प्रहार करके उसे गिराने का प्रयास करता है, यह इन पशुओं की स्वभाविक क्रीड़ा होती है । वे अकारण ही खेल में मदमस्त होकर प्रवृत्त होते हैं।) मेघम् ददर्श मेघ को देखा।

अनुवाद– उस रामगिरि नामक पर्वत पर, पत्नी से वियुक्त हुए (अतएव विरह जन्य कृशतावश) स्वर्णवलय के गिर जाने से शून्य कलाई वाल, कामाशक्त उस यक्ष ने, कुछ महीनों को बिताकर आषाढ़ मास के प्रथम दिन अर्थात् प्रतिपदा के दिन, पर्वत शिखर पर चिपटे हुए (एवम्) वप्रक्रीडा में तिरछे दन्त प्रहार करने वाले गज के समान दर्शनीय, मेघ को देखा ।

संस्कृत व्याख्या – तस्मिन् अद्रौ पूर्वोक्ते रामगिरिनामके पर्वते, अबलाविप्रयुक्तः पत्नीविरहितः, कनकवलयस्य भशेन रिक्तः प्रकोष्ठः यस्य स – कनकवलयभशरिक्तप्रकोष्ठः स्वर्णवलयनिपातशून्यमणिबन्धः, कामी कामपरवशः स यक्षः, कतिचित् मासान् कतिपयान् मासान्, नीत्वा गमयित्वा, आषाढ़स्य प्रथम दिवसे आषाढ़नामकस्य मासस्य प्रथम दिने, आश्लिष्टसानुम् आलिग्डि.तपर्वतशिखरं, वप्रक्रीडासु परिणतः यः गजः तमिव प्रेक्षणीयम्– वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम् उत्खातकेलितिर्यग्दन्त प्रहारगजदर्शनीयं, मेघं ददर्श दृष्टवान् ।

संस्कृत सरलार्थ– पत्नीवियुक्तः स कामी यक्षः यस्य प्रकोष्ठः विरहकृशतावशात् कनककंकणपातेन रिक्तः असीत् तस्मिन्, तस्मिन् रामगिरिपर्वते कथञ्चित् कतिपयान् मासान् गमयित्वा आषाढ़मासस्य प्रथमदिवसे आलिग्ड़ितपर्वतशिखरं मेघं ददर्श, यः व प्रक्रीडासक्तगजवत् दर्शनीयः आसीत् ।

समास विग्रहादि – अबलया विप्रयुक्तः – अबलाविप्रयुक्तः (तत्पु.0) कनक–वलय भशरिक्तप्रकोष्ठः–कनकस्य वलयस्य भशेन रिक्तः प्रकोष्ठः यस्य स – कनकवलय भशरिक्तप्रकोष्ठः (बहुब्रीहि)। आश्लिष्टं सानु येन स तम् – अ श्लिष्टसानुम्ः (बहुब्रीहि) कामोऽस्यास्तीति कामी । वप्रक्रीडापरिणमगजप्रेक्षणीयम् ।

व्याकरणादि – विप्रयुक्तः – वि+प्र पूर्वक युज् धातु से क्त प्रत्यय, कामी–काम शब्द से मत्वर्थीय इनि प्रत्यय, आश्लिष्टः–आ+श्लिष् धातु स क्त प्रत्यय, प्रेक्षणीयः– प्र+ईक्ष् धातु से अनीयर् प्रत्यय, ददर्श – दृश् धातु से परस्मैपद लिट् प्र0 पु0 एकवचन ।

विशेष – 'वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम् में लुप्तोपमालंकार है, क्योंकि यहाँ उपमा वाचक शब्द इव आदि का प्रयोग नहीं है। विप्रलम्भ शृंगार रस तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है जिसका लक्षण पूर्व श्लोक में लिखा जा चुका है।

टिप्पणी – कतिचित् मासान् नीत्वा' कह कर कवि ने यह नहीं बतलाया है कि अब तक यक्ष वहाँ रामगिरि पर कितने महीने बिता चुका था पर उत्तरमेघ के 50 वें श्लोक 'शेषान् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ' से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह अब तक आठ मास बिता चुका था और केवल चार मास शेष रह गये थे । शाप की विमुक्ति कार्तिक–कृष्ण एकादशी को होनी थी जिसके लिए कवि ने स्वयं कहा है 'शापान्तो मे भजगशयनादुत्थिते शाड्र्गपाणौ' अर्थात् देवोत्थान एकादशी को मेरे शाप का अन्त होगा।

कवि ने अबला और कामी इन दो पदों के प्रयोग से यह अभिव्यक्त किया है कि यक्ष तो अत्यधिक काम संतप्त था और उसकी पत्नी अबला, निर्बला, विवशा थी जो कि शाप वश उसके पास तक तो नहीं आ सकती थी किन्तु यह जानकर कि यक्ष उसके विरह में अत्यधिक काम पिड़ित है उसे और भो अधिक संताप हो रहा था पर वह विवश थी।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – आश्लिष्टसानु मेघ को देखकर यक्ष देर तक चिन्ता– निमग्न बना रहा इसी बात को इस श्लोक में बतलाया गया हैं–

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतौः
अन्तर्वाष्पश्चिरमनुचरो राजरास्य दध्यौ ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।। 3

अन्वयः – राजराजस्य अनुचरः अन्तर्वाष्पः (सन्) कौतुकाधनहेतोः तस्य पुरः कथम् अपि स्थित्वा चिरं दध्यौ । मेघालोके सुखिनः अपि चेतः अन्यथा वृत्ति (जायते) क जने दूरसंस्थे (सति) किम् पुनः ।

शब्दार्थ – राजरास्य यक्षराज कुबेर का, अनुचरः सेवक अर्थात् यक्ष, अन्तर्वाष्पः भोतर ही आँसुओं को रोक लेने वाला (सन् – होकर), कौतुकाधानहेतोः अभिलाषा की उत्पत्ति के करण रूप, तस्य उस मेघ के, पुरः सामने, कथमपि किसी भो प्रकार, जैसे –तैसे, स्थित्वा ठहर कर या खडा होकर, चिरम् देर तक, दध्यौ ध्यान करता या सोचता रहा । मेघालोके मेघों के देखने पर, सुखिनः सुखी जन का, अर्थात् जो प्रियजन वियोग से रहित होने से सुखी व्यक्ति है। अपि भो , चेतः चित्त, अन्यथा वृत्ति विकारयुक्त अथवा और ही प्रकार का (जायते हो जाता है), कण्ठाश्लेषप्रणयिनिजन कण्ठ के आलिंगन को उत्सुक व्यक्ति के, दूरसंस्थे (सति) दूर रहने पर, किम् पुनः फिर क्या कहना ।

अनुवाद – यक्षेश्वर कुवेर का सेवक यक्ष, आँखों के भोतर ही आँसुओं को रोके हुए (प्रिय–विषयक) अभिलाषा की उत्पत्ति के कारण रूप उस मेघ के आगे किसी भो प्रकार खड़ा होकर देर तक अपनी प्रिया के विषय में सोचता रहा । (ऐसा क्यों न हो क्योंकि जब) मेघों को देखने पर (प्रियजनों से युक्त अतएव सुखी भो जन का चित् और ही प्रकार का हो जाता है अर्थात् विकारयुक्त हो जाता है । तो फिर ऐसे जन के विषय में तो) कहना ही क्या ? जिसके गले का आलिंगन करने के लिये उत्सुक प्रियजन दूरी पर स्थित हो, अर्थात् वह विरही हो ।

संस्कृत व्याख्या – राज्ञां राजा राजराजः तस्य राजराजस्य धनाधिपस्य कुबेरस्य अनुचरः सेवकः यक्ष इत्यर्थः अन्तर्गता वाष्पा यस्य सः अन्तर्वाष्पः वाष्पो नेत्रजलोष्मणोः अन्तः स्तम्भिताश्रुः सन्,
कौतुकस्याधानस्य हेतुः तस्य कौतुकाधानहेतौः अभिलाषोत्पत्तिकारणस्य तस्य मेघस्य पुरः अग्रे कथमपि येन केन प्रकारेण स्थित्वा स्थितिं विधाय चिरं बहुकालं दध्यौ ध्याननिमग्नोऽतिष्ठत् मेघालोके जलददर्शने सुखिनः प्रियजन संगतस्य अपि जनस्य चेतः चितं, अन्यथावृति अन्यथाभ्ततव्यापारं विकृतं वा (भवति) कण्ठस्याश्लेषे प्रणयी तस्मिन् कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने कण्ठालिङ्गनोत्सुके जने दूरसंस्थे दूरवर्तिनि सति किम् पुनः किं कथनीयं किमुत वक्तव्यमित्यर्थ : ।

संस्कृत सरलार्थ – कुबेरसेवको यक्षो विरहजन्यानि अश्रूणि संस्तम्भ्य कामोत्पादकस्य तस्य मेघस्याग्रे कथमपि स्थित्वा चिरं स्वप्रियायावियोगदशाविषये चिन्तयन् अतिष्ठत् । तस्येदं चिन्तनं स्वाभाविकमेवासीत्, यतः मेघदर्शने तु यदा स्वप्रियासंगतस्यापि सुखिनो जनस्य चेतो विकृतिं याति तदा तस्य विरहिणी जनस्य विषये तु किं वक्तव्यं यस्य मिलनोत्सुकः प्रियजनो दूरदेशवर्ती स्यात् । मेघालोके वियोगिनो जनस्य दशा तु वर्णनातीतैव भवतीति भावः ।

समास विग्रहादि – राज्ञां राजा तस्य राजराजस्य (तत्षु) अनु चरतीति अनुचरः, अन्तर्गता वाष्पा यस्य सः अन्तर्वाष्पः बहुब्रीहि कौतुकस्य आधानं तस्य हेतुः तस्य कौतुकाधानहेतोः (तत्पु.) मेघस्य आलोकस्तस्मिन्–मेघालोके (तत्पु.) सुखमस्यास्तीति सुखी तस्य सुखिनः। अन्यथाभ्ता वृत्तिः व्यापारो यस्य तत् अन्यथावृति (बहुब्रीहि) कण्ठस्य आश्लेषे प्रणयी तस्मिन् कण्ठाश्लेषप्रणयिनि (तत्पु.) दूतं संस्था स्थितिः यस्य स दूरसंस्थः –तस्मिन् दूरसंस्थे (बहुब्रीहि)

व्याकरणादि – विश्वकोश के अनुसार राजा शब्द का प्रयोग यक्ष के लिये भो होता हैं 'राजा, प्रभो, नृपे, चन्द्रे, यक्षे इत्यादि' अतः राज्ञां यक्षाणां राजा राजराजः तस्य राजराजस्य,। यहाँ तत्पुरूष समास के बाद 'राजाहः सखिभ्यष्टच् – से टच् प्रत्यय होने पर अन् इस टि का लोप होकर 'राजाराजः ' रूप बनेगा – राजराजः शब्द कुबेर के लिये प्रयुक्त होता है। राजराजोधनाधिपः राजा शब्द राज् दीप्तौ धातु से निष्पन्न होता है । यक्ष सौन्दर्यशालो होने के कारण ही राजा कहलाते होंगे। अनुचरः–अनु – चर ,
धातु से ट प्रत्यय , स्थित्वा स्था धातु से त्वा प्रत्यय आकार को इकार , दध्यौ –ध्यै चिन्तायां धातु से परस्मैपद लिट् प्र.पु. एक वचन , सुखिनः– सुख शब्द से मत्वर्थीय इन प्रत्यय, षष्ठी एक वचन, दूरसंस्थै –इस पद में बहुबोहि समास होने से उपसर्जन भ्त संस्था पद के आकार हो ह्रस्व होकर संस्थः बन जाता है । आश्लेष आ+श्लिष् से धञ् प्रत्यय है ।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है , क्योंकि श्लोक के पूर्वार्द्ध में जो यक्ष की स्वाभाविक विरह दशा का विशेष रूप में वर्णन किया गया है अर्थात् उसे विरहकाल में अतिकामोद्दीपक मेघ के सामने खड़ा होकर अपनी प्रिया के विषय में चिन्ता करते दिखलाया गया है । इस विशेषार्थ का समर्थन होने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है । इसी प्रकार 'किं पुनः दूरसंस्थे' में अर्थापत्ति अलंकार है । और मन्दाक्रान्ता छन्द है । मेघ शृंगार रस का उद्दीपन विभाव होता है अतः यहाँ विप्रलम्भ शृंगार रस है।

टिप्पणी – 'कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने ' इत्यादि पदों द्वारा यद्यपि सामान्य तथ्य का ही निरूपण किया गया है, तथापि यहाँ कवि का संकेत या अभिप्रायय यक्ष की पत्नी से ही क्योंकि वही दूरवर्तिनी भो है और कण्ठाश्लेष प्रणयिनी भो है ।

'दध्यौ' क्रिया सकमक है अतः सन्देह होता है कि यक्ष ने किस बात का ध्यान किया । अतः प्रसंगानुसार यह कल्पना की जा सकती है कि उसने अपनी प्रिया की बात ही सोची होगी कि इस असह्य कामोद्दीपक समय में वियोगिनी प्रिया किस प्रकार अपने प्राणों की रक्षा कर रही होगी । अथवा कुछ टीकाकारों की मान्यता यह है कि यक्ष ने मेघ के सामने खड़े होकर यह सोचा होगा कि वह अपने अभिप्राय को अर्थात् प्रिया के सन्देश ले जाने की बात को मेघ से कहे या न कहे, ऐसा करना उचित होगा या नहीं ।

'कौतुकाधानहेतोः' में वस्तुतः कौतुक का अर्थ है – काम –विषयिणी उत्कण्ठा वर्षा का आरम्भ होने पर इसी उत्कण्ठावश प्रवासी अपने घरों को लौट आते हैं, इसी लिए मेघ को कौतुकाधान का कारण बताया गया है । कौतुकाधान हेतु होने के कारण ही वह मेघ के सामने बड़ी कठिनता से खड़ा हो सकता था। एक तो वह विरही होने के कारण प्रिया से मिलने को उत्कण्ठित था ही, दूसरी ओर मेघ ने उसकी इस उत्कण्ठा को और भो बढ़ा दिया था । अतः उसका मेघ के सामने खड़ा रहना कठिन हो रहा था । कवि ने इसी उददेश्य से 'कथमपि' शब्द का प्रयोग किया है ।

यक्ष अन्तर्वाष्प इसलिए था क्योंकि अपनी वियुक्ता प्रिया के विषय में अहर्निश सोचता रहता था, दुःखी रहता था अतः आँसुओं का आना स्वाभाविक ही था, साथ ही उसे यह भो ज्ञात था कि जब आठ महीने काट ही लिए तो शेष चार महीने और भो कट जायेंगे । अतः उसने निकलते हुए आँसुओं को रोक रखा था ।

चिरम् पद से कवि का तात्पर्य यह है कि जब उसने देर तक सोचकर अपनी मनः स्थिति को तथा भावों के प्रवाह को स्थिर कर लिया और यह निश्चय कर लिया कि मुझे अपना अभिप्राय मेघ से कहना हि उचित है तभो उसने मेघ से कहा । इतनी बातों को सोचने में देर लगना स्वाभाविक ही था ।

सन्दर्भ –प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से
उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – अचेतन मेघ से सन्देश ले जाने की प्रार्थना करना कहाँ तक उचित है ? इसी बात को श्लोक में बताया गया है –

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपात क्व मेघ :
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।।5

अन्वयः – धूमज्योतिः सलिलमरुताम् सन्निपातः मेघ : क्व, पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः सन्देशार्थाः क्व, इति औत्युक्यात् अपरिगणयन् गृह् यकः तम् ययाचे , हि कामार्ताः चेतनाचेतनेषु प्रकृतिकृपणाः (भवन्ति)

शब्दार्थ – धूमज्योतिःसलिलमरुताम् धुआँ, अग्नि, जल, वायु का, सन्निपातः संघटन या समूह, क्व कहाँ, पटुकरणैः कुशल इन्द्रियों वाले अर्थात् बुद्धिमान् जनों के द्वारा, करण शब्द का अर्थ यहाँ इन्द्रिय है और पटु का अर्थ कार्य कुशल है। (मनोयोग से इन्द्रियों द्वारा दृष्ट श्रुत वस्तु ही बुद्धि द्वारा गृहीत होती है । अतः इन्द्रियाँ ही बुद्धि के साधन होते हैं, इनका

कार्य कुशल होना आवश्यक है।) प्राणिभिः जीवधारियों के द्वारा, प्रापणीयाः पहुँचाये जाने योग्य, सन्देशार्थः सन्देश विषय , क्व कहाँ, इति इस तथ्य को औत्सुक्यात् उत्सुकता के कारण अर्थात् प्रिया के जीवन रक्षण की अत्यधिक उत्सुकतावश, अपरिगणयन् न गिनता हुआ, उपेक्षा करता हुआ, गुह्यकः यक्ष ने, तम् उस मेघ से, ययाचे प्रार्थना की, हि क्योंकि, कामार्ताः काम पीड़ितजन , चेतनाचेतनेषु चेतन और अचेतन अर्थात् जड़ चेतन के विषय में, प्रकृतिकृपणाः स्वभाव से दुर्बल या दीन (भवन्ति होते हैं)

अनुवाद – धुआँ, अग्नि, जल और वायु का समुदाय अथवा संघात रूप (अचेतन) मेघ कहाँ ? और कार्यकुशल इन्द्रियों वाले बुद्धिमान प्राणियों द्वारा पहुँचाये जाने योग्य सन्देश के विषय कहाँ ? अर्थात् दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है , अचेतन मेघ द्वारा सन्देश की बातें नही पहुँचाई जा सकतीं । (फिर भी) उत्सुकतावश इस तथ्य की उपेक्षा करते हुए यक्ष ने उस मेघ से प्रार्थना की, क्योंकि काम पीड़ित जन चेतन और अचेतन सभी के विषय में स्वभाव से ही दीन होते हैं (अर्थात् उन्हें चेतनाचेतन का ध्यान नहीं रहता।)

विशेषः – प्रस्तुत श्लोक के प्रथम दो चरणों में मेघ और सन्देश इन दोनों परस्पर विरूप या विषम पदार्थों की संघटना की गई है । अतः यहाँ विषमालंकार है । प्रस्तुत श्लोक के चतुर्थ चरण में एक लोक सामान्य तथ्य द्वारा पूर्व पंक्तियों में कथित बात का समर्थन किया गया है, अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलकार भी है और मन्दाक्रान्ता छन्द है ।

संस्कृत व्याख्या – धूमश्च ज्योतिश्च सलिलञ्च मरुच्चेति तेषाम्–धूमज्योतिः सलिलमरुताम्, धूमाग्निजलवायूनाम्, सन्निपातः समुदायरूपः मेघःपयोदः क्व कुत्र, पटूनि करणानि येषान्ते तैः पटुकरणैः समर्थेन्द्रियैः प्राणिभिः सचेतनैः जनैः प्रापणीयाः नेतव्याः भवन्ति, तथ्यमिदमविचारयन्नेव प्रियाप्राणरक्षणाय अत्युत्कण्ठावशात् यक्षस्तं मेघं स्वसन्देशवहनाय प्रार्थितवान्, मदनातुरा हि स्वभावतश्चेतनाचेतनयोर्विचारशून्य भवन्ति ।

समास विग्रहादि – धूमश्च ज्योतिश्च, सलिलञ्च मरुच्चेति तेषाम् (द्वन्द्व) –धूमज्योतिःसलिलमरुताम् , पटूनि करणानि येषान्ते तैः पटुकरणैः (बहुब्रीहि), संदिश्यन्ते कथ्यन्ते इति सन्देशाः तेषाम् अर्थाः अथवा सन्देशाष्वतेऽर्था–सन्देशार्थाः , प्राणाः सन्ति येषान्ते तैः प्राणिभिः प्रापयितुं योग्याः प्रापणीयाः , कामेन आर्ताः कामार्ताः (तत्पु.) चेतनाश्च अचेतनाश्चेति चेतनाचेतनाः तेषु चेतनाचतनेषुः, (द्वन्द्व) प्रकृत्या कृपणाः प्रकृतिकृपणाः (तत्पु.) उत्सुकस्यभावः औत्सुक्यम् तस्मात् –औत्सुक्यात् ।

व्याकरणादि – सन्निपातः सम्+ति+पत्+घञ् प्रत्यय, उपधा वृद्धि प्राण शब्द से इनि प्रत्यय तृ. बहुवचन –प्राणिभिः प्राणी तु चेतनो जन्मी, आर्ता आ+ {+क्त प्रत्यय

सन्देश – सम् +दिश्+घञ्, प्रापणीयाः – प्र+आप्+णिच् ततः अनीयर् इकार लोप , उत्सुक शब्द से ष्यञ् प्रत्यय, आदि स्वर को वृद्धि – औत्सुक्यम् पंचमी एकवचन , अपरिगणयन् –परि+गण्+णिच् (इ) +शत् + परिगणन् नञ् + परिगणयन् –अपरिगणयन् प्रथमा एकवचन । ययाचे – याच् धातु के लिट् आत्मने पद प्र. पु. एक वचन ।

टिप्पणी – गुह्यकः – शब्द की व्युपत्ति दो प्रकार से की गई है , 1–गुह्यं कं सुखं यस्य स, अथवा गूहति रक्षति निधिम् स गुह्यकः वस्तुतः गुह्यकः यक्ष का ही पर्यायवाची शब्द है । ''विद्याधरोऽप्सरो यक्ष रक्षो गन्धर्वकिन्नराः, पिशाचो गुह्यकः सिद्ध'' यह कोशवचन है । यक्ष या गुह्यकः कुबेर के नीधि रक्षक होते हैं । अतएव इन यक्षों को गुह्यकः भी कहा जाता है कुछ टीकाकारों ने गुहायां भवः गुह्यकः स एव गुह्यकः इस व्युत्पत्ति द्वारा गुह्यकः का अर्थ गुहानिवासी किया है , पर गुह्यकः वस्तुतः एक देवयोनि ही है और यक्ष का पर्यायवाची हैं । प्रकृतिकृपणाः का अर्थ कुछ टीकाकारों ने प्रकृत्या कृपणः विवेककहीनाः किया है जो कि प्रसंगानुकूल उचित प्रतीत होता है । क्योंकि यक्ष चेतनाचेतन के विषय में विवेक करने में असमर्थ था । अतएव वह मेघ से प्रार्थना करता है । कोई विवेकशील ऐसा नही करता । उसकी विवेककहीनता का कारण है, उसकी प्रियाप्राणरक्षणार्थ अत्युत्सुकता । किसी विषय की अत्युत्कण्ठा या कामोत्कण्ठा व्यक्ति को विवेकहीन बना देती है । अतएव मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी अत्युत्कण्ठावश लतावृक्षादि से सीता का पता पूछते है–रे रे वृक्षाः पर्वतस्था गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना इत्यादि ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – अपनी याचना का कारण बतलाता हुआ यक्ष मेघ की शक्ति का वर्णन करता है –

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां ,
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं ,
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।। 6

अन्वय – (हे मेघ? अहम्) त्वाम् भवनविदिते पुष्करावर्तकानाम् वंशे जातम्, मघोनः कामरूपम् प्रकृतिपुरुषम्, तेन विधिवशात् दूरबन्धुः अहम् त्वयि अर्थित्वम् गतः (अस्मि) अधिगुणे मोघा (अपि) याञ्चा वरम् (किन्तु) अधमे लब्धकामा (अपि) न (वरम्)।

शब्दार्थ – (हे मेघ ! अहम् हे मेघ ! मैं) भवनविदिते लोकों में प्रसिद्ध , पुष्करावर्तकानाम पुष्कर और आवर्तक नामक मेघों के, वंशे वंश में, जातम् उत्पन्न हुए , मघोनः इन्द्र के, कामरूप अपनी इच्छा के अनुकूल रूप धारण करने वाले, प्रकृतिपुरूषम् प्रधान सेवक, जानामि जानता हूँ, तेन इसलिये, विधिवशात् भाग्यवश,दूरबन्धुः जिसका प्रियजन दूरवर्ती है, (ऐसा) अहम् मैं यक्ष, त्वयि तुम्हारे विषय में, अर्थित्वम् याचकत्व को, गतः प्राप्त हुआ हूँ, अधिगुणे उच्च गुण वाले व्यक्ति के विषय में, मोघा निष्फल (भो) याञचा याचना या प्रार्थना, वरम् अच्छी (होती है), अधमे नीच व्यक्ति के विषय में, लब्धकामा सफलाभिलाषा वाली (भो), न वरम् अच्छी नहीं होती।

अनुवाद – (हे मेघ !) मैं तुमको लोकों में विख्यात पुष्कर और आवर्तक नामक मेघों के कुल में उत्पन्न हुआ (एवं) इन्द्र का, इच्छानुसार रूपधारी प्रधान सेवक जानता हूँ । इसीलिये दैवयोग से जिसका प्रियजन दूरवर्ती है ऐसा मैं तुम्हारे विषय में याचकता को प्राप्त हुआ हूँ । क्योंकि उच्चगुण वाले व्यक्ति के विषय में निष्फल याचना भो अच्छी होती है, (किन्तु) अधमजन के विषय में सफल मनोरथ वाली भो याचना अच्छी नहीं होती ।

विशेषः – प्रस्तुत श्लोक की चतुर्थ पंक्ति में वर्णित एक लोक –सामान्य तथ्य के द्वारा, पूर्वोक्त यक्ष की याचना के औचित्य रूप विशेष बात समर्थन किया गया है, अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। मल्लिनाथ ने यहाँ अर्थान्तरन्यास से अनुप्राणित प्रेयः प्रियतराख्यानम् स्वार्थ सिद्धि के लिए किसी की प्रशंसा करने में यह अलंकार होता है और वह प्रशंसा इस श्लोक में यक्ष द्वारा की गई है । मन्दाक्रान्ता छन्द है ।

संस्कृत सरलार्थ – (हे मेघ ! अहं) त्वं प्रलयकालिकपुष्करावर्तकाभिधानमेघानां विख्याते कुले जातोऽसि अपि च देवराजस्येन्द्रस्य स्वेच्छाधीनरूपधारी प्रधानसेवकोऽसि, अनेनैव हेतुना दैवयोगद् भार्याविप्रकृष्टोऽहं संप्रति सत्कुलजं गुणवन्तं त्वां प्रार्थये । यतः गुणवति पुरुषे निष्फला सत्यपि याचन वरम् भवति किन्तु अधमजने सफला भ्त्वापीयं न वरम् ।

समासविग्रहादि – भवनेषु विदितस्तस्मिन्–भवनविदिते (तत्पुरूष) पुष्कराश्च आवर्तकाश्च तेषाम्–पुष्करावर्तकानाम् (द्वन्द्व), प्रकृतिश्च असौ पुरूष तम् प्रकृतिपुरूषम् (कमधा.) अथवा प्रकृतिषु पुरूषः प्रधानभ्तस्तम् (तत्पुरू.) कामेन रूपाणि यस्य तम् कामरूपम् (बहुब्रीहि) विधेः दैवस्य वशः आधीन तस्मात् –विधिवशात् (तत्पु.) अर्थयतेऽसौ अर्थी तस्य भाव अर्थित्वम् अधिका गुणाः यस्य स तस्मिन्–अधिगुणे (बहुब्रीहि) लब्धः कामः यस्या सा लब्धकामा (बहुब्रीहि)

व्याकरणादि – जातम्–जनी प्रादुर्भावे + क्त प्रत्यय, धातु के नकार को आकार द्वि. एकवचन । भवनेषु विदिते – यहाँ विदिते में भ्तार्थ में क्त प्रत्यय है, वर्तमान में नहीं । यदि वर्तमान मे क्त प्रत्यय माना जायेगा तो भवन में षष्ठी विभक्ति माननी पडेगी 'क्तस्य चं वर्तमाने' इस सूत्र के नियमानुसार और फिर 'क्तेन पूजायाम् इस निषेध से समास भो नही हो सकेगा । मह्यते पूज्यते असौ मघवा इसी का षष्ठी एकवचन का रूप मघोनः है , मतुप् प्रत्ययान्त मघवत् शब्द का नहीं । अर्थित्वम् – अर्थ शब्द से इनि–इन् अर्थिन , त्व प्रत्यय , गत–गम्+क्त मकार (लोप) याञ्चा – याच् धातु से नङ. प्रत्यय, टापू तेन – यहाँ हेतु में

तृतीया, विधिवशात् – में हेतु मे पंचमी विभक्ति है, त्वयि आदि सप्तम्यन्त पदों में विषयम्य–सप्तमी है ।

टिप्पणी – पुष्करावर्तकानाम् पुष्कर और आवर्तक दोनों ही प्रलयकाल में घोर वर्षा करने वाले मेघों के नाम हैं ।

मघोनः कामरूपं प्रकृतिपुरुषम् –इन्द्र को वृष्टि का देवता भो माना जाता है । अतएव पुष्करादि वर्षणशील मेघ उनके सेवक माने जाते हैं इनमें स्वेच्छानुसार शरीर धारण करने की शक्ति होती है । अतएव ये दुर्गादि में भो प्रवेश कर सकते हैं और इन्द्र के प्रधान सहायक भो होते हैं ।

अर्थित्वम् – का अर्थ है –माँग या प्रार्थना ।

कालिदास के इस श्लोक से भाव साम्य रखने वाला यह श्लोकार्द्ध श्री सुधीर कुमार गुप्त द्वारा अपनी टीका में 'हंसदूत' से उद्धृत किया गया है।

अतोऽहं दुःखार्ता शरणमबला त्वां गतवती
न भिक्षा सत्पक्षे व्रजति हि कदाचिद् विफलताम् ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि अलकापुरी को जाते हुए उसे पथिक जनेां की वियोगिनी पत्नियाँ , इस आशा से आश्वस्त होकर देखेंगी कि अब मेघकाल में उनके प्रियजन घर लौटेंगे –

त्वामारुढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः,
प्रेक्षिष्यन्ते पथिक वनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः ।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां,
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनेा यः पराधीनवृत्तिः ।।

अन्वय – पवनपदवीम् आरुढ़म् त्वाम् पथिकवनिताः प्रत्ययात् आश्वसत्यः अुद्गृहीतालकान्ताः (सत्यः) प्रेक्षिष्यन्ते, त्वयि सन्नद्धे सति विरहविधुराम् जायाम् कः उपेक्षेत, अन्यः अपि यः जनः अहम् इव पराधीनवृत्तिः न स्यात् ।

शब्दार्थ – पवनपदवीम्–वायु के मार्ग अर्थात् आकाश पर , आरुढ़म् चढ़े हुए अथवा स्थित , त्वाम् तुमको अर्थात् मेघ को, पथिकवनिताः यात्रियों की पत्नियाँ अर्थात् प्रोषितभर्तृकायें, प्रत्ययात् विश्वास से अर्थात् अपने पतियों के अपने पास वापस लौटने के विश्वास से, आश्वसत्यः धैर्य धारण करती हुई, उद्गृहीतालकान्ताः (सत्यः) सिर के बालों (अलकी) के अग्रभागों को उठाकर ऊपर की ओर अर्थात् पीछे की ओर करने वाली (होकर) तात्पर्य यह है कि अपनी अलकों को ऊपर करके जिससे कि मेघों को आसानी से स्पष्ट देख सकें, प्रक्षिष्यन्ते देखेंगी । अन्यः अपिः य जनः दूसरा भो जो कोई व्यक्ति, त्वयि सन्न) तुम्हारे आकाश पर घिर आने पर अर्थात् जबकि तुम (मेघ) आकाश पर घिरे होंगे, विरहविधुराम् जायाम् विरह से व्याकुल पत्नी को, कः उपेक्षेत कौन उपेक्षा कर सकता है अहम् मेरे समान,

पराधीनवृत्तिः परवश जीवन वाल, न स्यात् न हो ।

अनुवाद – आकाश पर उमड़े हुए तुमको, यात्रियों की पत्नियाँ (प्रिय आगमन के) विश्वास से धैर्य धारण करती हुई, अलकों के अग्रभागों को ऊपर उठाये हुए देखेगी। तुम्हारे (आकाश पर) उमड़े हुए होने पर, विरह–व्याकुल पत्नी की कौन उपेक्षा कर सकता है (यदि) मेरे ही समान कोई दूसरा भो व्यक्ति, पराधीन जीवन वाला न हो अर्थात् जो मेरे समान पराधीन न होगा वह कभो भो वियोगिनी पत्नी की उपेक्षा न कर सकेगा ।

विशेष–प्रस्तुत श्लोक मे उत्तरार्द्ध में वर्णित लोक सामान्य तथ्य के द्वारा पूर्वार्द्धगत विशेष बात का समर्थन किया गया है अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है और मन्दाक्रान्ता छन्द है ।

संस्कृत व्याख्या – पवनस्य पदवी ताम्– पवनपदवीम् आकाशमार्गम् आरुढ़म् अधिष्ठितम् त्वां मेघम् पथिक वनिताः पथिकपत्न्यः प्रोषितभर्तृका इत्यर्थ : प्रत्ययात् प्रियागमनविश्वासान् आश्वसत्यः धैर्यमासादयन्त्यः उद्गृहीता अलकानामन्ता याभिस्ताः –उद्गृहीतालकान्ता (मेघमालेकयितुं) उन्नमितालकाग्रभागाः (सत्यः) प्रेक्षिष्यन्ते विलोकयिष्यन्ते । त्वयि मेघे सन्नद्धे समागते सति विरहविधुरां वियोगव्याकुलितां जायां पत्नीं कः उपेक्षेत उपेक्ष्य तान्नोपेयात् न कोऽपीत्यर्थः, अन्यः यद्व्यतिरिक्तः अपि यो जनः अहम् इव पराधीनवृत्तिः परायत्तजीवनको न स्यात् न भवेत्, स्ववशजीविको न कोऽप्युपेक्षेतेति भावः।

संस्कृत सरलार्थ – यक्षः कथयति – हे पयोद! आकाशाधिष्ठितं त्वां प्रोषित–भर्तृकाः स्वायालकान्तमुद्गृह्य 'वर्यर्तुकालमुदवीक्ष्य भर्तारोऽस्माकमवश्यमधुना समेष्यन्तीति ' आश्वस्ता भत्वा परमौत्युक्येन विलोकयिष्यन्ति, परजीविकमेकं मामेव परित्यज्य त्वयि आकाशमारुढ़े सति कोऽन्यो विरहातुरां स्वप्रियां न समुपेयान् सर्व एवोपेयादित्यर्थः ।

समास विग्रह – पुनातीति पवनः पवनस्य पदवी ताम् –पवनपदवीम् (तत्पु.) पन्थानं गच्छन्ति ते पथिकाः पथिकानां वनिताः – पथिकविनताः (तत्पु.) अलकानामन्ताः अलकाकान्ता उद्गृहीता अलकान्ताः याभिस्ताः – उद्गृहीतालकान्ताः (बहुब्रीहि) विरहेन विधुरा ताम् –विरहविधुराम् (तत्पु.) पराधीना वृत्तिर्यस्य स पराधीनवृत्तिः (बहुब्रीहि)

व्याकरणदि – आरूढम् –आ+रुह+क्त प्रत्यय द्वितीयैक–वचन, पथिक–पथः ष्कन् सूत्र से यहाँ ष्कन् प्रत्यय है , आश्वसत्यः आ+श्वस् शतृ+ङाप् प्रथमा बहु.विधुरा अर्थात् जो पति के कार्यभार से अथवा पति रूप कार्यभार से रहित हो, उपेक्षेत–उप+ईक्ष् विधिलिङ् प्रथम पु. एकवचन, प्रक्षिष्यन्ते – प्र+ईक्ष् लृट प्र. पु. बहुवचन

टिप्पणी – पवनपदवीम् में पदवी शब्द का अर्थ मार्ग है पवन मार्ग आकाश होता है । अतः पवन पदवी का अर्थ आकाश है। अलका –वियोगिनी स्त्रियाँ, धर्मशास्त्रानुसार शरीर संस्कार, केश बाँधना, सम्मार्जन, परगृहगमन, हास्य आदि नही करतीं; अतएव वियोग में उनके केश खुले होने के कारण उनकी आँखो पर आ जाते हैं अतएव वे मेघ को देखने के लिए अलकों को ऊपर कर लेती थीं ' वनिता – सामान्यतः वनिता का अर्थ स्त्री ही होता है पर यहा अमरकोश के अनुसार प्रसंगतः इसका अर्थकामिनी या कामुक स्त्री है; वियोगिनी होने के कारण ये कामिनी ही थी वनिता जनितात्यर्थानुरागायाम्' आश्वसत्यः– कुछ पुस्तकों मे आश्वसन्त्यः भो पाठ है पर यह व्याकरण नियमानुसार अशुद्ध है निरंकुशाः कवयःकह कर इसे शुद्ध मानने का प्रयास नही करना चाहिए सन्नद्ध –शब्द का अर्थ होता है – तैयार , इससे कवि का तात्पर्य है मेघ उस समय गर्जन, तर्जन, विद्युत, जल आदि अपनी सभो सामग्री के साथ तैयार था। जाया– यह शब्द भो यहाँ यक्ष की कामुकता प्रकट करने के लिए प्रयुक्त हुआ है।

सन्दभ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – यक्ष कहता ह कि जब तुम अलकापुरी पहुँचोगे तब वहाँ तुमको मेरी पतिव्रता पत्नी जीवित ही मिलेगी तुम्हारा जाना निरर्थक न होगा –

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी –
मव्यापन्ना–मविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्,
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।। 9

अन्वय – (हे मेघ) दिवसगणनातत्पराम् (अतएव) अव्यापन्न ताम् एक पत्नीम् भातृजायाम् च अविहतगति (त्वम्) अवश्यम् द्रक्ष्यसि, हि आशाबन्धः अंगनानां कुसुमसृशम् सद्यः पाति प्रणयि हृदयम् प्रायशः रुणद्धि।

शब्दार्थ – दिवसगणनातत्पराम् – अवशिष्ट दिनो की गणना में लगी हुई (अतएव) अव्यापन्नाम् – न मरी हुई , अपितु शापानन्तर मेरी प्राप्ति की आशा में जीवित, एकपत्नीम्

– पतिव्रता , ताम् – उस , भातृजायाम् – भातृ पत्नी अर्थात् भाभो को, अविहतगति – अबाधगति वाले, अवश्यम् – अवश्य ही , द्रक्ष्यसि –देखेंगे , आशाबन्धः – आशारूपी बन्धन, अंगनानाम् – स्त्रियों के , कुसुमसदृश, –पुष्प के समान, विप्रयोगे – वियोगकाल मे , सद्यः पाति – शीघ्र ही टूट पडने वाले या नष्ट हो जाने वाले , प्रणयि – प्रेममय, हृदयम् – हृदय को , प्रायशः– प्रायः, रुणद्धि – रोक लेता है अर्थात् नष्ट होने से बचा लेता है।

अनुवाद – (यक्ष कहता है हे मेघ !) (शाप के शेष बचे) दिनों की गणना में लगी हुई, अतएव जीवित, उस पतिव्रता भातृ जाया (भाभो) को निर्बाधगति वाले तुम अवश्य देखोगे , क्योंकि आशारूपी बन्धन , स्त्रियों के पुष्पसदृश (अतिकोमल) (और) वियोग काल में शीघ्र ही नष्ट होने वाले प्रेममय हृदय को प्रायः रोक लेता है अर्थात् नष्ट होने से बचा लेता है।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक के 'आशबन्धः' पद मे रूपक अलंकार है और 'कुसुमसदृश ' मे उपमालंकार है, तथा श्लोक के उत्तरार्द्ध में वर्णित लोक सामान्य तथ्य द्वारा पूर्वार्धगत विशेष बात का समर्थन किया गया है , अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है मन्दाकान्ता छन्द है।

संस्कृत व्याख्या – दिवसगणनातत्पराम् , शापावशिष्टदिनसंख्यानासक्ताम् – प्रोषितस्य मत्प्रियस्येयन्ति दिनानि व्यतीतानि इयन्तो दिवसा अवशिष्टा इति गणनासंलग्नामित्यर्थ, (अतएव) अव्यपत्राम् अत्यक्ताप्राणम् – शापा नरन्तरं मद्गमनाशया जीवन धारयन्ती मित्यर्थः, एक पतिर्यस्याः सा एकपत्नी ताम् – एकपत्नीम् पतिव्रताम्– मद्विरहे–नान्यासक्तामित्यर्थः । ताम् भातृजायाम् – भातुर्मे जायाम् ताम् मत्प्रियाम् (त्वम्) अविहता गतिर्यस्य सः अविहतगतिः अविच्छिन्नगतिः सन् अवश्यम् निश्चितम् द्रक्ष्यसि अवलोकयिष्यसि, निर्बाधगतित्वात् त्वया सा भातृवन्निः शंक दर्शनीया भविष्यतीत्यर्थः हि यतः आशा एव बन्धः आशेबन्धः आशरूपवन्धम् अङ्.ग्नानाम् स्त्रीणां कुसुमसदृशम् पुष्पतुल्यम् (अतिकोमलम्) अतएव विप्रयोगे विरहे, सद्यः पाति–सद्यः पतनशीलम्, प्रणयि प्रेमयुक्तम् हृदयम् प्रायशः रुणद्धि, प्रतिवध्नाति विनाशान्निवारयतीत्यर्थः।

संस्कृत सरलार्थ – यक्षः कथयति हे मेघ ! अलकापुरीं प्राप्य त्वम् शापस्यावशिष्टदिनसंख्यानासक्ताम् अतएवं जीवनं धारयन्तीं तां पतिव्रतां भातुर्मे जायां मत्प्रियां निर्वाधगतित्वादवश्यं द्रक्ष्यसि, अनेनैवाशावन्धेनता जीवन न त्यजन्ति।

समास विग्रहादि – दिवसगणनातत्पराम् – दिवसानां गणना दिवसगणना तस्यां तत्परा ताम् – दिवसगणनातत्पराम् (तत्पु.) न विहता अविहता, अविहतागतिर्यस्य स अविहतगतिः (बहु) एकः पतिर्यस्याः सा ताम् एकपत्नीम ् (बहुब्रीहि) भातुः जाया भातृजायाताम् – भातृजायाम्, न व्यापन्ना अव्यापन्ना, आशा एकबन्धः आशबन्धः कुसुमेन सदृशम – कुसुमसदृशम्, सद्य पतितुं शीलमस्य तत् – सद्यः पाति, प्रणयः अस्ति अस्यतत् अस्य तत् प्रणयि।

व्याकरणदि – अविहतगतिः – वि + हन् + क्त प्रत्यय्, धातु के नकार का लोप, न विहता अविहता (नञ् समास) अविहता, गति – गत् + क्तिन् प्रत्यय, मकार लोप, अव्यापन्नाम् – वि + अ+ पद+ क्त प्रव्यय धात के 'द' तथा प्रत्यय के 'त' का रदाभ्याम् –सूत्र से नकार आदेश स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् (आ) प्रत्यय, व्यापन्ना अव्यापन्न द्वितीयैक वचन, तत्पराम् वचन, सद्यः पाति – णिनि प्रत्यय धातु की उपधा अकार को वृद्धि , रुध धातु से लट् की प्रथम पुरुष एकवचन।

टिप्पणी – दिवसगणनातत्पराम् – पर स यह अभिप्राय है कि वह यक्षपत्नी, दिनों की गणना में सदा तत्पर रहती है अर्थात् वह गणना करती रहती है कि प्रवासी मेरे पति के शाप के अब तक कितने दिन बीत चुके हैं और कितने अवशिष्ट हैं इस प्रकार की गणना में आसक्तचित्ता रहने के कारण वह अपने वियोग के अपने वियोग के दिनों को काट लेती है उसे आशा है कि शेष दिनों के बीत जाने पर मेरा प्रिय अवश्य मिलेगा , इसी आशा से वह जीवित है ।

एक पत्नीम् – इससे कवि का तात्पर्य है कि वह यक्ष पत्नी पतिव्रता है अतएव वह यद्यपि असह्य विरह के दिनों अतिदुःख से काटती है फिर भो अन्य पुरुषासक्त नही है, भातृजाया– से कवि का तात्पर्य है कि मुझ बड़े भाई की पत्नी होने के कारण जो कि मातृवत् होती है ,

मेघ को उससे पास जाने में और बात करने में कोई संकोच न होगा , आशावन्धः – से कवि का तात्पर्य है कि जैसे अतिकोमल ओर सद्यः पतनशील नायिका के हृदय को भो विनष्ट होने से आशारूपबन्धन रोके रहता है। इसी आशाबन्धन में फँसा हुआ व्यक्ति अपने जीवन के दिन काटता रहता है ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि अब तुम अपने इस प्रिय मित्र रामगिरि पर्वत से विदा लेकर अलकापुरी को प्रस्थान करो –

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुंगमालिंग्य शैलं,
वन्द्यैः पुंसां रघुपतितदैरंकितं मेखलासु।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य,
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम्।। 12

अन्वय – पुंसाम् वन्द्यैः रघुपतिपदैः मेखलाषु अङ्क्तम् प्रियसखीम् अमुम तुंगम् शैलम् आलिंग्य य आपृच्छस्व, काले काले भवतः संयोगम् एत्य चिरविरहजम् उष्णम् वाष्पम् मुञ्चतः यस्य स्नहव्यक्तिः भवति।

शब्दार्थ – पुंसाम् वन्द्यै – मानवों के द्वारा पूजनीय , रघुपतिदैः – श्री राम चन्द्र के चरणों से, मेखलासु – पर्वतीय ढलानों पर, अंकितम – चिह्नित, प्रियसखीम् – प्रियमित्र, अमुम – इस तुंगम् – ऊँचे , शैलम् – पर्वत को, आलिंग्य – आलिंगन करके, आपृच्छस्व – विदा लो, काले काले – समय – समय पर अर्थात् वर्षा ऋतु में, भवतः – आपके, संयोगम् –सम्पर्क को, एत्य –प्राप्त करके ,चिरविरहजम् – लम्बे या दीर्घ कालीनी विरह से उत्पन्न , वाष्पम्–भाप को, मुञ्चतः –छोडने वाले, यस्य – जिस पर्वत की, स्नेहाभिव्यक्ति – प्रेम की प्रकटता, भवति – होती है।

अनुवाद – मानवों द्वारा पूजनीय श्री रामचन्द्र के चरणों से पर्वतीय ढ़लानों पर चिह्नित (अपने) प्रियमित्र इस ऊँचे पर्वत रामगिरी का आलिंगन कर विदाई लो, समय –समय पर अर्थात प्रत्येक वर्षाकाल मे आपके (मेघ) सम्पर्क को प्राप्तकर दीर्घकालीन विरह से उत्पन्न गरम भाप को छोडने वाले जिसपर्वत की प्रेम प्रकटता होती है अर्थात् जो कि भाप को छोडकर अपने प्रेम को प्रकट करता है ।

संस्कृत व्याख्या – पुंसाम् मानवानाम् वन्द्यैः पूजनीयैः रघुपतिपदैः श्री राम चन्द्र चरणैः मेखलासु अद्रिकटकेषु मध्यप्रदेशेषु वा अंकितम् चिह्नितम् प्रियसखम् प्रियमित्रम् अमुम इमम् तुंगम उन्नतम् शैलम् पर्वतम् आलिंग्य आश्लेषं विधाय आपृच्छस्व' यामि इति आमन्त्रणेन सभाजय, काले–काले प्रतिवर्षा कालम् भवतः (मेघस्य) तव संयोगम् सम्पर्कम् एत्य प्राप्य चिरविरहजम् दीर्घकालिकवियोगोद्भवम् उष्णम् अशीतलम् वाष्पम् उष्माणम् अश्रु च मुञ्चतः विसृजतः यस्य रामगिरिनामकस्य पर्वतस्य स्नेहव्यक्तिः प्रेमा विर्भावः भवति जायते।

संस्कृत सरलार्थ – लोकपूज्यश्रीरामचन्द्रचरणन्यासचर्चितकटिबन्धनं प्रतिवर्षाकालंम् तव संयोग चिरवियोगजं प्रेमाभिव्यक्तिजनकं वाष्प विसृजन्तं च प्रियमित्रमुन्नतमिमं रामगिरिपवर्त संश्लिष्य गमनायानुज्ञां पृच्छ।

समासविग्रहादि – प्रियश्चासौ सखा इति प्रियसखस्तम् –प्रियसखम् (कमधा) वन्दितुं योगयानि वन्द्यानि तैः रघुपतेः पदानि तैः रघुपतिपदै (तत्पु.) स्नेहस्य व्यक्तिः स्नेहव्यक्तिः (तत्पुरूष) चिंर विरहः तस्मात् जातस्तम् – चिरविरहजम् (तत्पु.)

व्याकरणादि – आपृच्छस्व – आ+ प्रच्छ् धातु स आत्मनेपद लोट् लकार मध्यम् पुरूष एकवचन ,यहाँ आड्. के योग मे प्रच्छ् धात से'आङिनुप्रच्छ्ययोरूपसंख्यानम् से आत्मने पद हुआ है , प्रियसखम् ' प्रियसचासौ सखा' इस विग्रह मे कमधारय समासोत्तर ' राजाहःसखिभ्यष्टच् से समासान्त टच् प्रत्यय है अतएव इकारलोप होकर, यह अकारान्त शब्द बन गया है, अमुम् – अदस् पु द्वितीयैक वचन , आलिड.ग्य –आ+ लिगि + क्त्वा और सोपसर्ग होने से क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश, वन्द्यैः – वदिधातु से ण्यत् प्रत्यय ,

तृतीयाबहुवचन, अडि.कतम् – अकि धातु से क्त प्रत्यय इट् ,संयोग – सम् + युज् +घञ् प्रत्यय, एत्य –आ + इण गतौ धातु से क्तवा और क्त्वा के स्थान मे ल्यप् , अ+ इ– गुण ए , चिरवरहजम् जातम् इस अर्थ मे जनी प्रादुर्भावे धातु से ड प्रत्यय, धातु की टि (अन) का लोप , मुञ्जतः – मुच् +शतृ (अत्)नुमागम, षष्ठ्येक वचन, व्यक्तिः – वि + अञ्ज् क्तिन् अकारलोप।

टिप्पणी – प्रियसखम् इस पद द्वारा मेघ और पर्वत का मैत्रीभाव बतलाया है, सूर्य और कमल, चन्द्र और सागर, मेघ और पर्वत, मेघ और मयूर तथा वायु और अग्नि में स्वाभाविक मैत्री होती है

वन्द्यैः –वन्द्यै रघुपतिपदैः अडि.कतम् तुग्ड.मम् प्रियसखम् इन पदों से कवि ने पर्वत की पवित्रता उच्चता और सखित्व को प्रकट कर यह बतलाया है कि वह आदरास्पद है अतः मेघ को जाते समय उससे मिलकर विदा लेना उचित है।

चिरविरहजम् वाष्पम् – चिरकाल बाद मिलने वाले मित्रों का प्रेम के आँसू बहाना स्वभाविक होता है मेघ जब चिरकाल बाद पर्वत से मिलता है तो वह वर्षा रूपी आँसू बहाता है, दो मित्रों मिलने पर आँसू तो बहाते है साथ ही दीर्घ निः श्वास भो छोड़ते हैं जो कि सन्तप्त हृदय से निकलने के कारण स्वभावतः उष्ण होता है, पर्वत जो कि ग्रीष्मकाल में अतिसन्तप्त रहता है मेघ की छाया एवं उसके जल को प्राप्त कर वाष्प छोड़ने लगता है, यह स्वाभाविक ही है कि जब गरम पदार्थ पर जल गिरता है तो वाष्प निकलता है वस्तुत कवि नें यहाँ वाष्प शब्द का प्रयोग कर यह द्योतित किया है कि अपने प्रिय मित्र को पाकर मेघ से नेत्र जल और पर्वत से वाष्प निकलने लगा था, वाष्प के दोनो ही अर्थ – अश्रु और भाप यहाँ सार्थक हो जाते है ।

कवि ने यहाँ मेघ को आँसू बहाता और पर्वत को निःश्वास छोडता बताकर मानव के समान व्यवहार का निर्देश कर मानवीकरण किया है।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है– पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – यक्ष मेघ से कहता है कि वह सबसे पहले उत्तर दिशा की ओर उड़े और मार्ग की बाधाओं को दूर करता हुआ आगे बढ़ता जाये –

अद्रेः श्रृङ्.गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभिः,
दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्.–मुखः,
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ।।14

अन्वय– पवनः अद्रेः श्रृङग्न् किंस्वित् इति उन्मुखीभिः मुग्धसिद्धाङ्.ग्नाभिः चकितचकितम् दृष्टोत्साहः (सन्) सरसनिचुलात् अस्मात्! स्थानात् पथि दिङ.ग्नागानाम् स्थूलहस्तावलेपान् परिहरन् उदङ्मुखः सन् खम् उत्पत।

शब्दार्थ – पवनः – वायु , अद्रेःश्रृङग्म – पर्वत के शिखर को, हरति – लिये जा रहा है , किंस्वित् – क्या , इति – इस आशंका से , उन्मुखीभिः – उपर की ओर मुख उठाने वाली , मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः – भोली भाली सिद्धों की स्त्रियों के द्वारा, चकितचकितम् परम आश्चर्य पूर्वक, दृष्टोत्साहः – जिसका उत्साह देखा गया है सरसनिचुलात – गीले स्थल वेतसों वाले , अस्मात् स्थानात् – इस स्थान से , पथि – मार्ग में , दिङ्नागानाम् दिग्गजों के स्थूल – हस्तावलेपान् – मोटी –मोटी सूँड़ो के प्रहारों को , परिहरन् –दूर करते हुए अर्थात बचाते हुए , उदङ्मुखः सन् – उत्तर दिशा की ओर मुख वाले होकर, खम् आकाश को, उत्पत – उड जाओ ।

अनुवाद – क्या वायु पर्वत के शिखर को (उड़ाये) लिये जा रहा है ? इस आशंका से ऊपर की ओर मुख उठाए हुए भोली–भाली सिद्धों की स्त्रियों द्वारा परमाश्चर्यपूर्वक जिस तुम्हारा उत्साह देखा गया है, (ऐसे तुम) गीले स्थल वेतसों वाले इस स्थान से मार्ग में दिग्गजों की

मोटी –मोटी सूँड़ों के प्रहारों को बचाते हुए, उत्तर की ओर मुख करके आकाश पर उड़ जाओ।

संस्कृत व्याख्या – पवनः वायुः अद्रेः रामगिरिनामकस्य पर्वतस्य श्रङ.ग्म् शिखरम् हरति आकाशमार्गेण नयति, किंस्वित् इति वितर्के अर्थात अनया शङ्.कया उन्मुखीभिः उर्ध्वाननाभिः मुग्धाश्च ताः सिद्धानामङ.ग्ना ताभिः मुग्धसिद्धांगनाभिः मुग्धदेववनिताभिः चकितचकितम् साश्चर्य यथा स्यात्तथा दृष्टोत्साहः समवलोकितगमनोद्योगः सन, सरसाः जलार्द्राः, पल्लवपुष्पफलान्विताश्च निचुला हिञ्जलाख्यास्तरवो यत्र तस्मात् सरसनिचुलात् निचुलस्तु निचोलेसयाद्धिञ्जलाख्यमहीरूह' इति मेदिनीकारः ,अस्मात् आर्द्रस्थलवेतसात् स्थानात् प्रदेशात् पथि आकाशमार्गे दिङनागानाम् स्थूलाश्च ते हस्तास्तेषामवलेषास्तान् स्थूलह। स्तावलेपान् पीवकराक्षेपान् दिग्गजानाम् स्थूलाश्च ते हस्तास्तेषामवलेषास्तान् – स्थूलहस्तावजलेपान् परिहरन् दूरी कुर्वन् उदङ्मुखः उत्तरदिग्विभागाभिमुखः सन् खम् आकाशम् उत्पत उड्डीयस्व।

संस्कृत सरलार्थ – आकाशमार्गेण गच्छन्तं त्वामवलोक्य कि वायुः शिखरिशिखरं नयतीत्याशंक्य उर्ध्वाननाः सुन्दरसिद्धरमण्यः साश्चर्य त्वामवलोकयिष्यन्ति, तासामवलोकनेन वर्धितोत्साहस्त्वं पथि दिग्गजानां पीवरकराक्षेपान् परिहनन् दूरोकुर्वन् जलार्द्रस्थ लवेतसशलिनाऽस्मात् रामगिरि–पर्वतप्रदेशादुत्तराभिमुखः सन् आकाशमार्गेणोड्डीयस्व।

समास विग्रहादि – पुनाति लोकान् इति पवन्:, उत्रतानि मुखानि यासां ताः ताभिः–उन्मुखीभिः (बहुब्रीही) दृष्टः उत्साहः यस्य स–दृष्टोत्साह (बहुब्रीही), मुग्धाः मूढाः सुन्दर्यो वा मुग्ध सुन्दरमूढयोः इत्यमरः सिद्धानां देवयोनिविशेषाणाम् अङग्नाः रमण्यः सिद्धाड.ग्ना मुगधसिद्धाड.ग्नाः ताभिः– मुरधसिद्धाड.ग्नाभि (कम तत्पु) चकित निचुलाः हिञ्जलाख्यवृक्षाः यस्मिन् तस्मात् सरस – निचुलात् (बहुब्रीही) दिशाम् नागा दिड. नागास्तेषाम्–दिङ्.नागानाम्, स्थूलाश्च ते हस्ताः तेषाम् अवलेपास्तान् – स्थूल– हस्तावलेपान् (तत्पु.) उदड. मुखं यस्य स – उदड.मुखः (बहुब्रीहि)।

व्याकरणादि – दृष्ट – दृश् धातु से क्त प्रत्यय, श् को ष् और त् को ष्टुत्वेन ट् आदेश, उत्साहः – उत् + सह+ घञ् वृद्धि, चकितचकितम् –यहाँ ' प्रकार अर्थ में प्रकारे गुणवचनस्य से चकित शब्द को द्वित्व और पूर्व शब्द की विभक्ति को लोप होता है, उन्मुखीभिः – यहाँ 'स्वाङ्.गाच्चोपसर्जनादसं योगोपधात् ' सूत्र से ङीष् प्रत्यय है उत्पत – उत् + पत् धातु से लोट् म. पु. एकवचन, परिहरन – परि + हृ+ शतृ प्र. एकवचन, खम् – उत्पत क्रिया का कम होने के कारण यहा द्वितीया विभक्ति है।

टिप्पणी – अद्रेः शृङ्गम् – से तात्पर्य हैं यह प्रतीत होता है कि मेघ का आकार बहुत बडा था इसीलिये मुग्ध सिद्धाडगनाओं को वह पर्वत शिखर सा जान पडता था, किंस्वित् – यह विकल्प वितर्क बोधक अव्यय है, दृष्टोत्साहः – से तात्पर्य है कि सिद्धाङ्गनाये मेघ के गमनोत्साह को देखेंगी । वस्तुतः यहाँ कवि का तात्पर्य यह है कि सिद्धाङ्गनायें उसे जाते हुए आश्चर्य पूर्वक देखेंगी तो मेघ का गमनोत्साह और भो अधिक बढ जायेगा क्योंकि यह स्वाभाविक है कि जब पराक्रमी व्यक्ति का पराक्रम या उत्साह स्त्रियों द्वारा आश्चर्य देखा जाता है तो उसका उत्साह दुगुना हो जाता है, यदि ऐसा न माना जाय तो सिद्धाङ्गनाओं द्वारा उसके उत्साह दर्शन मात्र से कोई विशेष तात्पर्य नही निकलता है सिद्धाड.ग्नायें – यक्ष, राक्षस्,सिद्ध ये सब देवयोनियाँ या देव जातियाँ हैं जो कैलास पर्वत के वनों में निवास करती हैं अतः उड़ते हुए मेघ को देखना उनके लिए स्वाभाविक ही है । सिध् धातु से क्त प्रत्यय होकर सिद्ध शब्द निष्पन्न होता है । ये सिद्ध इसीलिए कहे जाते है क्योंकि उन्हे अणिमा महिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं प्राचीन साहित्य के अनुसार इनका निवास सूर्य और पृथिवी के बीच बताया जाता है, दिङ्.नाग–ये आठ माने जाते हैं । ऐरावत, पुण्डरीक, वामन , कुमुद ,अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभोम और सुप्रतीक, इनके आकार एवं सूँडे सामान्य हाथियों की अपेक्षा बड़े होते हैं। निचुल–शब्द का प्रयोग कवि विशेष और स्थल वेतस दोनों ही अर्थों में होता है इसलिए सम्भवतः मलिनाथ ने एक नवीन अर्थ की कल्पना की है 'बानीरे कवि भदे स्यान्निचुलः स्थल वेतसे' शब्दार्णव और मेदिनीकार के अनुसार निचुल का प्रयोग हिञ्जल नामक वृक्ष के अर्थ में भो होता है दिङ्.नाग – इसके दिग्गज

और दिङ्नागाचार्य अर्थ प्रसिद्ध है, यहाँ इसका बहुवचन में प्रयोग आदरार्थ से किया गया है।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है– पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – मेघ को जाने के लिए प्रोत्साहित करता हुआ यक्ष कहता है कि जब तुम आगे बढोगे तो पुरोदृश्यमान इन्द्र धनुष के विविध रंगो से तुम्हारा वर्ण और भो सुन्दर लगेगा –

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्
वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य
श्येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते,
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ।। 15

अन्वय – रत्नछायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यम् आखण्डलस्य एतत् धनुः खण्डम् पुरस्तात् वल्मीकाग्रात् प्रभवति, येन ते श्यामम् वपुः स्फुरितरूचिना वर्हेण गोपवेषस्य विष्णोः (श्यामं वपुः) इव अतितराम् कान्तिम् आपत्स्यते।

शब्दार्थ – रत्नच्छायाव्यतिकरः इव रत्नों की कान्तियों के मिश्रण के समान अर्थात् मानो जिसमें अनेक रंगों के रत्नों की चमक मिली हुई हो, एतत् यह, आखण्डलस्य इन्द्र का धनुःखण्डम् इन्द्र धनुष् का टुकड़ा, पुरस्तात् सामने या आगे, वल्मीकाग्रात् बाँबी के अग्रभाग से (वामी, उस मिट्टी क टीले को कहते है जो कि प्रायः चींटियों द्वारा बनाया जाता है और कालान्तर मे वह बहुत बड़ा टीला हो जाता है और उसमें सर्प आदि रहने लगते है।), प्रभवति प्रकट हो रहा है येन जिससे अर्थात् इन्द् धनुष के खण्ड से, ते श्यामं वपुः तुम्हारा साँवला शरीर, स्फुरितरुचिना चमकती हुई कान्ति वाले, वर्हेण मयूर पंख से (पंख से यहाँ तात्पर्य है मोर पंख का अग्रभाग जो कि कुछ चौड़ा और कई रंगो से चमकीला होता है), गोपवेषस्य विष्णो ग्वाले का रूप धारण करने वाले विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण का (भगवान कृष्ण मयूर पंख के मुकुट को धारण करते थे और उनका शरीर भो श्यामवर्ण का मेघ जैसा ही था अतएव वे घनश्याम भो कहे जाते है) (श्यामं वपुः) श्याम वर्ण का शरीर, इव समान, कान्तिम् कान्ति, शोभा या चमक को, आपत्स्यते प्राप्त करेगा, अतितराम बहुत अधिक।

अनुवाद – रत्नों की कान्तियों के सम्मिश्रण के समान, दर्शनोय, इन्द्र का यह (सामने दिखलाई पडने वाला) धनुष खण्ड वामी के अग्रभाग से सामने निकल रहा है, जिससे तुम्हारा साँवला शरीर, चमकती हुई कान्तियों वाले मोर पंख से गोप वेषधारी विष्णु अर्थात श्री कृष्ण की भांति बहुत अधिक शोभा प्राप्त करेगा अर्थात् जिस प्रकार मोर पंख के विविध रंगों की चमक से श्रीकृष्ण का श्याम शरीर और अधिक शोभा को प्राप्त करता है उसी प्रकार सप्त रंगी इन्द्रधनुष् से तुम्हारा भो श्याम शरीर और अधिक शोभा को प्राप्त करेगा।

संस्कृत व्याख्या – रत्नानाम् छायाः रत्नच्छायाः तासाम् व्यतिकरः रत्नच्छाया व्यतिकरः (छाया सूर्य प्रिया कान्तिः इत्यमरः) पद्मरागवैदूर्यादिमणिकान्तिसमिश्रणम् इव यथा, प्रेक्ष्यम् दर्शनीयम् आाखण्डलस्य इन्द्रस्य एतत् पुरोदृश्यमानम् (वामलूरश्च नाकुश्च वलमीकं पुंनपु इत्यमरः) प्रभवति आविभवति, येन धनुः खण्डेन ते श्यामं वपुः तव श्यामवर्ण शरीरम् रूपम् वा, स्फुरिता रुचिः यस्य तेन स्फुरितरुचिना देदीप्यमनदीप्तिकेन वर्हेण पिच्छेन (पिच्छवर्हे नपुंसके इत्यमरः) गोपस्य वेषो यस्य तस्यगोपवेषस्य गोपवेषधरिण : विष्णो : वासुदेवस्य श्री कृष्णस्य (श्यामं वपुः) इव अतितराम् अत्यधिक कान्तिम् आपत्स्यते लप्स्यते।

संस्कृत –सरलार्थ – पद्मरागादिमणिकान्तिमिश्रणमिव वर्णनीयमतत् पुरतो वामलूरविवरादिन्द्रधनुः शकलमाविभवित , अनेन तत्प्रभासम्पर्कात् तव श्यामं रूपं तथै वातिशोभां लप्स्यते यथा देदीप्यमानदीप्तिमता पिच्छेन वर्हिवर्हावतंसस्य श्री कृष्णस्य श्यामं वपुंरतितरां शोभाम्धत्ते ।

समास विग्रहादि – रत्नानां पद्मरागवैदूर्यादिमणीनां छायाः कान्तयः तासांः व्यतिकरः रत्नच्छायाव्यतिकरः (तत्पु) प्रक्षितुं योग्यं प्रेक्ष्यम् , धनुषः खण्डम् – धनुः खण्डम् ,

वल्मीकस्याग्रात – वल्मीकाग्रात, स्फुरिता देदीप्यमाना रुचिः दीप्तिः यस्य तेन स्फुरितरूचिना गोपस्य वेष यस्य गोपवेषस्य (बहु.)।

व्याकरणादि – प्रेक्ष्यम् – प्र+ईक्ष+ण्यत् (य) गुण आखण्डलः – आखण्ड यति भदयति इति गोपः – गो +पा+क प्रत्यय धातु के आकार का लोप । अतितराम् –अति से तरप् प्रत्यय टाप , आपत्स्यते – आ पत् धातु से लृट प्रथम पु. एकवचन, प्रभवति – प्र+ भ् + लट् – प्रभवति इसके योग मे 'भवः प्रभवः' से वाल्मीकाग्रात् मे अपादाने पञ्चमी है । ते तव का वैकल्पिक रूप है।

टिप्पणी – रत्नच्छायाव्यतिकरः – यहाँ कुछ टीकाकर की सम्मति के अनुसार रत्नच्छायव्यतिकरः होना चाहिए, क्योंकि व्याकरण के अनुसार रत्नानां छाया विग्रह करने पर रत्नच्छायम् रूप बनेगा रत्नच्छाया नही किन्तु , उनकी यह सम्मति तभो ठीक है जब कि छाया शब्द को एक वचन मे रखा जाय , जैसे इश्रूणा श्राया श्रुच्छाचम् होता है , पर यदि इसका विग्रह – रत्नानां छाया बहुवचानान्त से किया जायेगा जैसा कि यहाँ कवि को प्रसंगानुसार अभिप्राय है तो रत्नच्छाया ही रूप बनेगा , इस प्रकार रत्नच्छाया प्रयोग भो ठीक है ।

वाल्मीकाग्रात – ऐसा प्रसिद्ध है कि इन्द्र धनुष वल्मोक में रहने वाले नाग की मणि से उत्पन्न होता है, अतएव इस लोक–प्रसिद्धि के अनुसार ही कवि ने यहाँ इन्द्र धनुष को वल्मीकाग्र से निकलता हुआ बतलाया है। 'वलते रंवृणोति अनेन तत् वल्मीकम्' वल्मीक शब्द की यह व्युत्पत्ति बतलाई गई हैं।

वस्तुतः वल्मीकी चींटियों द्वारा बनाये गये मिटटो के टीले के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र को जो गोत्रभित् अर्थात् पर्वतपक्षच्छेदक कहा जाता है अतएव इन्द्र वस्तुतः मेघभदक होता हैं अतएव वर्षा होती है । वैदिक ग्रन्थों में पर्वत, मेघ का ही पर्यायवाची शब्द हैं गोप–शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार गोपालक कृष्ण के लिये गोप शब्द का प्रयोग हुआ है।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि पुनः उत्तर की ओर जाते है तुमको आम्रकूट नामक पर्वत मिलेगा –

'त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना,
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय,
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः।। 17

अन्वय – आसारप्रशमितवनोपप्लवम् त्वाम् आम्रकूटःसानुमान् साधु मूर्ध्ना द्रध्यति, क्षुद्रः अपि संश्रयाय मित्रे प्राप्ते प्रथमसुकृतापेक्षयाविमुखः न भवति यः तथा उच्चेः (सः) किंपुनः।

शब्दार्थ– आसारप्रशमितवनोपप्लवम मूसलाधार वर्षा से वन की अग्नि (दावानल) को शान्त कर चुकने वाले, अध्वश्रमप्ररिगतम् मार्ग की थकान से युक्त अर्थात यात्रा से थके हुए, त्वाम् तुम (मेघ) को, आम्रकूटः सानुमान् आम्रकूट नाम का पर्वत (एक आम्रकूट नाम का पर्वत जिसके शिखरों पर आम्र के वृक्ष प्रायः देखे जाते हैं, इसी को कुछ विद्वानों ने अमरकण्टक बतलाया है), साधु भली प्रकार, मूर्ध्ना वक्ष्यति शिर से अर्थात् अपने शिखरों पर धारण करेगा। क्षुद्रःअपि तुच्छ भो व्यक्ति, सश्रंयाय आश्रय प्राप्त करने के लिए, मित्र प्राप्ते मित्र के आने पर, प्रथमसुकृतापेक्षया पहले किये गये सत्कम (उपकार) की अपेक्षा से अर्थात् प्रथम किये गये उपकार के विचार से, विमुखः मुखमोड़ लेने वाला या विपरीत, न भवति नहीं होता है, यः तथा उच्चैः जो वैसा अर्थात् पर्वत के समान ऊँचा या श्रेष्ठ जन (हो), सः किं पुनः उसके विषय में कहना ही क्या ?

अनुवाद – मूसलाधार वर्षा से वन की अग्नि को अर्थात् दावानल को शान्त कर चुकने वाले (एवं) मार्ग की थकान से युक्त अर्थात् श्रान्त–थके हुए, तुमको आम्रकूट नामक पर्वत अपने

शिखरों पर भली–भाति धारण करेगा। (उसके द्वारा अपने साथ) पहले किये गए उपकार की उपक्षा या विचार से, विमुख नही होता अर्थात् उसका अतिथि सत्कार अवश्य करता है। फिर उस व्यक्ति के विषय में तो कहना ही क्या, जो कि पर्वत के साथ उच्च अर्थात् श्रेष्ठ समृद्धिमान् है।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में पूर्वार्धगत विशेष तथ्य का, उतरार्द्धगत लोक –सामान्य तथ्य से समर्थन किया गया है, अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है तथा 'कि पुनर्यस्त थोच्चैः' में अर्थापति अलंकार है। मन्दाकान्ता नामक छन्द है।

संस्कृत व्याख्या – आसारेण प्रशमितः वनस्य उपप्लवः येन सः तम् –आसार–प्रशमितवनोपप्लवम्

धारासम्पातविनाशितदावानलम धारासम्पात आसारःइत्यमरः (एवम्) अध्वनः श्रमस्तेन परिगतस्तम्–

अध्वश्रमपरिगतम् मार्गश्रमश्रान्तम् त्वाम् मेघम् आम्रकूटः सानुमान् एतत्रामकः पर्वतः साधु, सम्यक् मूर्ध्ना शिरसा वक्ष्यति धारयिष्यति, (तथा हि) क्षुद्रः दरिद्रः नीचस्वभावोऽपि (जन्तु) संश्रयाय आश्रयप्राप्तये मित्रे सुहृदि प्राप्ते समागते (सति) प्रथम यम् सुकृतं तस्य अपेक्षा तथा प्रथमसुकृतापेक्षया पूर्वकृतोपकारविचारदृष्ट्या विमुखः पराङ्ः सेवाविमुखो वा न भवति न जायते, यः तथा तेनप्रकारेण उच्चैः उन्नतः श्रेष्ठ समृद्धिमान् वा (स आम्रकूट) किं पुनः विमुखो भविष्यतीति न वक्तव्यमित्यर्थः।

संस्कृत सरलार्थ – धारावृष्टिविनाशितवनाग्निं मार्गश्रमव्याप्तं त्वाम् आम्रकूटोऽचलः स्वशिखरेषु धारयिष्यति, तथा हि आश्रयार्थमुपागतं स्वमित्रं पूर्वकृतोपकारपर्यालोचनया दरिद्रो नीचस्वभावोऽपि न कश्चिज्जन : उपेक्षितुंक्षमते किं पुन स्तथाविधः समुन्नतः समृद्धिशाली आम्रकूटो नाम पर्वतः।

समासविग्रहादि – आसारप्रशमितवनोपप्लवम् – आसारेण प्रशमितः वनस्य उपप्लवः येन यम् (बहुब्रीहि) अध्वनः श्रमः तेन परिगतस्तम् – अध्वश्रमपरिगतम् (तत्पु.) प्रथम च यत् सुकृतम् तस्य अपेक्षा तया– प्रथमसुकृतापेक्षया (तत्पुरूष) आम्राः कुटेषु यस्य स आम्रकूटः अथवा आम्रणां कूटः राशि यत्र स आम्रकूटः, सानवः सन्ति अस्य स सानुमान्।

व्याकरणादि – प्रशमित – प्र+शम्+णिच्+ क्त +इट् णि लोप, उपप्लवः –उप+अप् उकार को ओगुण अवादेश, परिगतम् – परिपूर्वक गम् धातु के क्त प्रत्यय, संश्रयाय – सम् +श्रि +अच (अ) इकार को ए गुण आयादेश चतुथ्यैक वचन , प्राप्ते –प्र+आप् क्त+प्रत्यय सप्तम्येक वचन, वक्ष्यति –वह धातु से लृट लकार प्र. पु. एकवचन, मूर्ध्ना – मूर्धन शब्द से तृतीयेक वचन, सनुमान् – सानु शिखर, सानु शब्द से मुतप् प्रत्यय प्रथमैक वचन, आम्रकूटः – कूट शब्द का अर्थ शिखर है – कूटोऽस्त्रा शिखरं शृंगाम् इत्यमरः' और कूट शब्द का अर्थ किया जा सकता है ।

टिप्पणी – कवि ने इस श्लोक के द्वारा यह सूचित किया है कि यदि प्रथम पड़ाव पर तुम्हें इस प्रकार अतिथि सत्कार मिलेगा तो आगे भो तुम्हारे कार्य की सिद्धि होगी ।

आम्रकूट की स्थिति के विषय में विल्सन की मान्यता है कि आधुनिक अमरकण्टक ही आम्रकूट है, जो विन्ध्याचल का पूर्वीभाग है जहाँ से नर्मदा आदि नदियाँ निकलती हैं और जहाँ आम्रवन पाये जाते हैं और इसके शिखरों पर भो विशाल रसाल वृक्ष होते हैं ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – यक्ष, मेघ से कहता है कि आम्रकूट पर्वत से आगे बढ़ोगे तब तुम नर्मदा नदी को देखोग–

स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं,
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां,
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ।। 19

अन्वय – वनचरवधूभक्तकुञ्जे तस्मिन मुहुर्तम् स्थित्वा तीयोत्सर्गद्रुततरगतिः (सन्) तत्परम् वर्त्म तीर्णः (त्वम्) उपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णम् रेवाम् गजस्य अंगे भक्तिच्छेदैः विरचिताम् भृतिम् इव द्रक्ष्यसि।

शब्दार्थ – वनचरवधूभक्तकुञ्जे वनचरों द्वारा जिसके कुञ्जों का उपभोग किया गया है (ऐसे), तस्मिन् उस आम्रकूट पर्वत पर, मुहुर्तम् दो घड़ी तक (लगभग 47 मिनट), स्थित्वा ठहर कर , तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः जल बरसने से और अधिक तेज चाल वाले (होकर), तत्परम् उसके बाद अर्थात् आगे के, वर्त्म मार्ग को, तीर्णः पार कर के, (तुम) उपलविषमें पत्थरों के कारण ऊँचे नीचे, विन्ध्यपादे विन्ध्याचल की तलहटी में, विशीर्णाम फैली हुई, रेवाम् रेवा अर्थात् नर्मदा नदी को, गजस्य अंगे हाथी के शरीर पर, भक्तच्छेदैः रेखाओं की विचित्र बनावटों से, विरचिताम् बनाई गई अर्थात् की गई, भृतिम् सजावट, इक के समान, द्रक्ष्यसि देखोगे ।

अनुवाद – वनचरों की स्त्रियों के द्वारा जिसके कुञ्जों का उपभोग किया गया है, (ऐसे) इस आम्रकूट नामक पर्वत पर दो घड़ी तक ठहर कर (तथा वहाँ) जल वर्षा करने से और अधिक (हल्का होने से) तेज चाल वाले होकर (तुम) उस पर्वत के आगे का मार्ग पार करके , पत्थरों के कारण ऊँची –नीची विन्ध्याचल की तहहटी में फैली हुई रेवा नदी को, हाथी के शरीर पर रचनाओं की विचित्र रेखाओं द्वारा बनाई गई सजावट के समान देखोगें।

संस्कृत व्याख्या – वनचराणां वधूभिः भक्ता कुञ्जा यस्य तस्मिन्–वनचरवधू भक्तकुञ्जे वनवासिस्त्री–जनपरिभक्तलतागृहे , तस्मिन आम्रकूटनामके पर्वते मुहुर्त घटिकाद्वयं यावत् स्थित्वा विन्ध्स्य, तोयस्य उत्सर्गेण द्रुततरा गतिः यस्य सः –तोयोत्सर्गद्रुतरगतिः जलवर्षणमर्तव्रतरगमनशीलः (सन्) तत्परम् आम्रकूटपर्वतादग्रगामि वर्त्म मार्गम् तीर्णः समलिक्रान्ताः (त्वम्) उपलविषमें प्रस्तरबुर्लङ्ध्ये विन्ध्यपादे विन्ध्याचल प्रत्यन्तपर्वते , विशीर्णाम विविधधाराभिः समन्ततः रेवाम् नर्मदाख्यां नदीम् गजस्य हस्तिनः अंगेशरीरे , भक्तिच्छेदैः रचनाविशेष रेखाभङ्गिभिः विरचिताम् विनिमिताम् भृतिम् श्रृगारविशेषम् इव यथा द्रक्ष्यसि अवलोकयिष्यसि ।

संस्कृत सरलार्थः – यक्षः कथयति – हे जलद ! आम्रकूटाचलस्य वनेचरस्त्रीजन भक्ते निकुञ्जे मुहुर्तमात्रमेव श्रममपनीय जलवर्षणोपलब्धतिक्षिप्रगमनः समन्ततः प्रसूतां रेवाख्या नदीं गजस्याङगे रचनाविशेष कृताम भृतिमिव भतिमिव विलाकयिष्यसि ।

समासविग्रहादि – वने चरन्तीति वनचराः तेषां वध्वः ताभिः भक्तानि कुञ्जानि यस्य स ततिमन् –वनचरवधूभक्तकुञ्जे (बहु.) 'कुञ्जनिकुञ्जौ वा क्लीवे लतादि पिहितोदरे' इत्यमरः । तोयस्य उत्सर्गः तेन द्रुततरा गतिर्यस्य सः –तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः (बहुब्रीहि) तस्मात्परं त्परम् (तत्पु.) उपलैः विषमस्तस्मिन्–उपलविषमें (तत्पु.) विन्ध्यस्य पादस्तस्मिन् –विन्ध्यपादे (पादाः प्रत्यन्त पर्वताः इत्यमरः) भक्तीनां छेदास्तैः – भक्तिच्छेदैः।

व्याकरणादि – वने चरन्तीति वनचराः वा 'तत्पुरूषे कृति बहुलम् ' में बहुलग्रहण से विकल्पतः लोप होता है अतः वनेचर और वनेचर दोनों ही रूप होते हैं । भक्तः –भज+क्त प्रत्यय जकार को गकार और ग् का क् होकर भक्त बनता है स्थित्वा –स्था +क्त्वा , धातु के आकार को इ, उपसर्ग – उत्+सृज् घञ् (अ) ऋकार को अर् गुण, जकार को गकार , गतिः –गम्+क्तिन, मकार लोप तीर्णः –तृ +क्त प्रत्यय , धातु के ऋकार को अर् गुण , जकार को गकार , क को ग होकर भक्त बनता है क्तिन् , मकार लोप तीर्णः –तृ +क्त प्रत्यय धातु के ऋकार को इर् दीर्घ , प्रत्यय के तकार को नकार और णत्व । द्रक्ष्यति – दृश–लृट म. पु. एकवचन , विशीर्णाम्–वि+शृ+क्त प्रत्यय कार को इर् दीर्घ, तकार को नकार , और ण्त्व, द्वि. एकवचन स्त्रीलिंग । भक्ति–भज्+क्तिन् , छेदैः –छिदिर +घञ् (अ) गुण, विरचिताम् –वि+रच्+क्त+इट् स्त्रीलिंग द्वि. एकवचन , भृतिम् –भ् क्तिन् दि. एकवचन ।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में विन्ध्याचल का उपमान गज और विन्ध्यपाद को उपमान गज को अंक तथा रेवा का उपमान भृति है, इस प्रकार यहाँ उपमालंकार है साथ ही कवि ने यहाँ विन्ध्य और रेवा नदी के बीच नायक नायिका के व्यवहार को, समारोपण भो किया है अतः

समासोक्ति अलंकार भो है । इन अलंकारों के सहारे कवि ने अनुपम संश्लिष्ट प्रकृति–चित्रण किया है।

टिप्पणी – वनचरवधू आदि विशेषण पद से कवि का अभिप्राय यह बताना है कि ऐसे निकुञ्ज मेघ ने नेत्रों के लिए आनन्दप्रद होंगे, रेवा का गजङ्ग पर भ्ति बताने का भो तात्पर्य यही है । क्योंकि कोई वहीं ठहरने या विश्राम करने की इच्छा करता जहाँ उसके लिये नेत्र सुखद दृश्य हों । मुहुर्तम् –इस पद से कवि का अभिप्राय है कि मेघ को वहाँ अल्पकाल तक ही ठहरना चाहिए । अन्यथा उसके अपने सन्देश वहन रूप कार्य में बिलम्ब होगा । यहाँ 'कालाध्वनोः सूत्र से द्वितीया विभक्ति है । मुहुर्त शब्द का अर्थ–अल्पकाल या दो घड़ी का समय होता है । मुहूर्तं घटिकाद्वयम् अथवा मुहूर्तमल्पकाले स्याद्घटिकाद्वितयेऽपि च'' विन्ध्यपादे विशीर्णाम् रेवाम् से कवि का संकेत उस कामुका नायिका से है जो स्वेच्छापूत्यर्थ अपने प्रियतम के चरणों पर लेटी हुई है । यह पद विन्ध्य और रेवा के बीच नायक नायिका व्यवहार का संकेत करता है । भक्ति शब्द का अर्थ है एक विशेष प्रकार की सजावट या शृंगार की रचना जो कि शरीर के किसी अंग विशेष पर कुछ रंग–विरंगे विचित्र रेखाओं के द्वारा बनाई जाती है । भ्ति का अर्थ –हाथी का शृंगार ही है '' भ्तिर्मातङ्गशरीरे ''

रेवा – इसका दूसरा नाम नर्मदा नदी भो है , जो कि विन्ध्यगिरि से निकलती है और गंगा के समान पवित्र नदी मानी जानी है अमरकोशकार ने इसका दूसरा नाम सोमोद्भवा और मेकलकन्यका भो दिया है 'रेवा तु नर्मदा सोमोद्भव मेकलकन्यका''

इस नदी का 'नर्म+दा 'यह नाम प्राचीन सुख समृद्धि समन्वित वदिक सभ्यता की ओर संकेत करता है। इसका दूसरा नाम सोमोद्भवा यह संकेत करता है कि किसी समय इस नदी के किनारों के पास सामलतायें अधिक उत्पन्न होती थीं । इस प्रकार इस पवित्र नदी के तटों पर न केवल सुख समृद्धिशाली सभ्य पुरूषों का ही निवास था अपितु यहाँ ऋषियों के आश्रम भो रहे होंगे और यज्ञादि भो होते होंगे। इस नदी के विन्ध्य के एक भाग आम्रकूट से निकलने के कारण ही सम्भवतः इसका तीसरा नाम मेकलकन्यका पड़ा होगा।

विन्ध्य – विन्ध्यगिरि एक विशाल पर्वत है जो कि उत्तर भारत को दक्षिण से पृथक करता है और सात कुल पर्वतों मे से एक है मध्यदेश की दक्षिण सीमा है ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – यक्ष, मेघ से कहता है कि जलवर्षण के बाद जब तुम रिक्त हो जाओं तब नर्मदा से पुनः जल भर लेना, जिससे कि तुम भारी हो जाओं और वायु तुम्हें इधर उधर न उड़ा सके और तुम अपने निश्चित मार्ग पर चलते हुए आगे बढ़ते जाओ।

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि–
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।
अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां ,
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ।। 20

अन्वय – वान्तवृष्टिः (त्वम्) तिक्तैः वनगजमदैः वासितम् जम्बू कुञ्जप्रतिहतरयम् तस्याः तोयम् आदाय गच्छेः, घन ! अनिलः अन्तः सारम त्वाम् तुलयितुम् न शक्ष्यति, हि रिक्तः सर्वः लघुः भवति, पूर्णया गौरवाय (भवति)।

शब्दार्थ – वान्तवृष्टिःवर्षा कर चुकने वाले (वान्त का अर्थ है उगला) वृष्टि वर्षावर्षा को उगल देने वाले, अर्थात् वर्षा कर चुकने वाले, तिक्तःसुगन्धित और तीक्ष्ण, अन्नवमदैःजंगली हाथियों के मदों से,
वासितम्सुगन्धित किये हुए, जम्बू कुञ्जप्रतिहतरयम्जामुन के कुञ्जों में रुके हुए वेग वाले, तस्याःउस रेवा के, तोयम्जल को, आदायलेकर, गच्छैःजाना, घनहे मेघ !, अनिलःवायु, अन्तःसारम्सारम्अपने भोतर जलरूप बल को धारण करने वाले, त्वाम्तुमको (मेघ को), तुलयितुमतोलने के लिये अर्थात् इधर–उधर उड़ाकर ले जाने के लिए , न शक्ष्यतिन समर्थ

होगा, हिक्योंकि , रिक्तः सर्वःखाली सब कोई, लघुः भवतिहल्का होता है, पूर्णतयापूर्ण या भरा हुआ होना, गौरवाय भवतिभारीपन के लिए होता है।

अनुवाद – वर्षा कर चुकने वाले (तुम) तीक्ष्ण और सुगन्धित, वन्य गजों के मदों के द्वारा सुगन्धित किये गये । (तथा) जामुन के कुञ्जों में रुके हुये वेग वाले , उस रेवा के जल को लेकर (भरकर) जाना (जिससे कि) हे मेघ ! वायु (अपने) भोतर जलरूप बल धारण करने वाले तुमको (इधर उधर) उड़ाने के लिये समर्थ न होगा, क्योंकि खाली सब कोई हल्का होता है (किन्तु) पूर्ण होना भारीपन के लिए होता है ।

विशेष– प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है जिससे कवि ने ''रिक्तः सर्वो भवतीत्यादि पंक्ति द्वारा एक लोक सामान्य तथ्य का निर्देश किया है । वह मेघ से कहता है कि तुम खाली होने पर रेवा से जल अवश्य भरकर और भारी बनकर आगे चलना अन्यथा खाली होने से हल्के होने के कारण वायु तुमको उधर–उधर उड़ा कर पथभष्ट कर देगा । खाली पदार्थ या व्यक्ति को कोई भो उठा सकता था उड़ा सकता है , तथा उसे अपने लक्ष्य से भष्ट कर सकता है । अतः भारी या सम्पन्न होना कार्य –सिद्धि के लिए आवश्यक है । दोनों दीन –हीन व्यक्ति के साथ कोई भो कैसा भो व्यवहार कर सकता है पर सम्पन्न व्यक्ति के साथ उसे सोच समझ कर के व्यवहार करना पड़ेगा ।

संस्कृत व्याख्या – वान्ता वृष्टिर्येन वान्तवृष्टिः उद्गीर्णवर्षः (त्वम्) तिक्तैः सुगन्धिभिः तिक्तरसवद्भिश्च, वनगजानां मदैः–वनगजमदैः वन्यहस्तिमदजलैः वासितम् सुरभितम् (तथा) जम्बूना, वनगजानां मदैः –वनगजमदैः वन्यहस्तिमदजलैः वासितम् सुरभितम् (तथा) जम्बूना कुञ्जैः प्रतिहतः रयः यस्य तत् –जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम् जम्बूपादपसमूहस्खलितवेगम् तस्याः रेवायाः तोयम् जलम् आदाय गृहीत्वा गच्छेः यायाः हे घन जलद! अनिलः वायुः अन्तः सारम् अन्तर्नीरवलम् त्वाम् मेघम् तेलयितुम् उत्थाप्य इतस्ततश्चालयितुम् न शक्ष्यति नहि समर्थः भविष्यति , हि यतः रिक्तः अन्तः सारहीनः सर्वः एव लघुः लाघवयुक्तः भवति जायते , पूर्णता पूर्णत्वं गौरवाय गरिम्णे (भवति)।

संस्कृत सरलार्थ – हे जलद ! कृतवष्टिस्त्वं रेवायाः करिमदजलसुरभितं जम्बू कुञ्जप्रतिरुवेगं जलमादाय व्रज, येन प्राप्तान्तर्जलरूपगौरव त्वामकाकाशावायुरितस्ततश्चालयितुन् प्रभविष्यति यतः सर्वोऽपि रिक्तो लघुत्वं भजते पूर्णस्तु गुरूत्वमावहति ।

समासविग्रहादि – वान्ता वृष्टिः येन स–वान्तवृष्टिः (बहुब्रीहि) वनस्य गजानां मदैः वनगजमदैः (तत्पु.) जम्बूना कुञ्जाः तैः प्रतिहतः रयः यस्य तत् ,तत्–जम्बू कुञ्जप्रतिहतरयम् (बहुब्रीहि) अन्तः सारः यस्य स तम् – अन्तःसारम् (बहुब्रीहि)।

व्याकरणादि – वान्त –वम्+क्त प्रत्यय , धातु की उपधा की दीर्घ, दृष्टि :– वृष्+क्तिन्, वासितम् –वस्+णिच् , धातु की उपधा को वृद्धि , क्त प्रत्यय इट् इकार का लोप , तुलयितुम –तुला शब्द से
नामधातु तुलम् से तुमुन् प्रत्यय और इट्, शक्ष्यति –शक् लृट् प्र.पु. एकवचन ।

टिप्पणी – मल्लिनाथ के अनुसार इस श्लोक में एक यह अर्थ भो ध्वनित होता है कि जब मनुष्य को उदरवायु का प्रकोप होता है तब वह वमन करता है आर उसके बाद हल्का तिक्त और कसैले जल का पान करता है जिससे कि पुनः उदरवायु का प्रकोप नहीं होता । जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम् पद से कवि ने यह सूचित किया है कि जम्बू वृक्षों से टकराने से जल हल्का और कषैला होकर वमन के बाद उदरवायु की शुद्धि के लिए आरोग्यप्रद होता हैं तिक्त शब्द का अर्थ 'तिक्तौ रसे सुगन्धौ च' इस कोश के अनुसार तिक्त रस और सुगन्धितै च ' इस कोश के अनुसार तिक्त रस और सुगन्धित है ! मदजल कटु तथा सुरभित होता है।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि उज्जयिनी जाते हुए तुम निर्विन्ध्या नदी पर पहुँचकर रसानुभव प्राप्त करोगे।

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चोगुणायाः,
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
निर्विन्ध्याया पथि भव रसाभ्यन्तरं संनिपत्य ,
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ।। 29

अन्वय – वीचिक्षोमभस्तनितविहग्रश्रणिकाञ्चीगुणायाः स्खलितसुभगं संसर्पन्त्याः दर्शितावर्तनाभः निर्विन्ध्यायाः पथि संनिपत्य रसाभ्यन्तरः भव, हि स्त्रीणाम् प्रियेषु विभमः आद्यम् प्रणयवचनम् ।

शब्दार्थ – वीचिश्रोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः तरंगो के क्षोभ अर्थात लहरों की हलचल के कारण शब्द करने वाले पक्षियों की पंक्ति रूपी करधनी की लड़ी वाली (वीचि तरंगे, क्षोभ उठाना गिरना, स्तनित कूजन, विहगश्रेणि पक्षियो की पंक्ति , काञ् ची करधनी, गुण लडी) स्खलितसुभगम् संसर्पन्तयाः स्सखलित अर्थात् स्खलन लड़खडाने के कारण सुन्दरतापूर्वक या सुन्दर रूप में (ढालू और पथरीले ऊँचे नीचे बहाव के कारण लडखडाती हुई गति से सुन्दर रूप मे या मस्त चाल मे झूमती हुई, संसर्पन्त्या बहती हुई, दर्शितावर्तनारभः भवर रूप नाभि दिखालाने वाली, निर्विन्ध्याः निर्विन्ध्या नाम की नदी के, पथि मार्ग मे या जल प्रवाह में, संनिपत्य पड़कर या चाव से मिलकर , रसाभ्यन्तरः – अपने भोतर जल रखने वाला अथवा आनन्दानुभाव करन वाले, भव बनो, हि क्योंकि, स्त्रीणाम् कामिनियों का , प्रियेषु प्रियजनों के विषयों में, विभमः विलास या हाव भाव प्रदर्शन, आद्यं प्रणयवचनम् प्रथम प्रीति वचन अथवा रति प्रार्थना वचन (होता) है।

अनुवाद – लहरों की हलचल से शब्द करने वाले पक्षियों की पंक्ति रूपी करधनी की लड़ी वाली (अर्थात् जो निर्विन्ध्या रूपिणी नायिका तरंगो के विंक्षोभ के कारण शब्दायमान पक्षिपंक्ति रूपी करधनी की लड़ी को धारण किये हुए है) चाल के लड़खड़ाने के कारण सुन्दरतापूर्वक बहती हुई (अर्थात् ढालू और पथरीले ऊँचे नीचे बहाव के कारण निर्विन्ध्या नदी सुन्दरतापूर्वक बह रही थी जैसे कोई नायिका मद वश धीरे – धीरे मस्त चाल से झूमती हुई चलती है) और भवर रूप नाभि को दिखलाने वाली (अर्थात् मानो निर्विन्ध्या नायिका भवररूप अपनी नाभि को रतिकामनावाश दिखला रही हो) निर्विन्ध्या नदी के मार्ग मे अर्थात् जल प्रवाह में पड़कर अर्थात् उससे बड़े चाव मिलकर अपने में जल भर लेने वाले अर्थात् आनन्द रस का अनुभव करने वाले बनो, क्योंकि नायिकाओं का अपने प्रियजनों के प्रति हाव भाव प्रदर्शन ही प्रथम रति प्रार्थना वाक्य होता है।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में कवि ने मेघ को नायक और निर्विन्ध्या नदी को नायिका के रूप में वर्णित किया है। तरंग विक्षोभवश शब्दायमान पक्षि ही उसकी बजती हुई करधनी है । स्खलित प्रवाह ही उसका मस्त चाल से चलना है और भवरों का उठना ही उसका नाभि प्रदर्शन है । इस प्रकार के हाव भावों का प्रदर्शन कर वह मानो रति प्रार्थना कर रही है। अतः मेघ स कहा जा रहा है कि अपने अंग प्रदर्शनादि द्वारा हाव भाव दिखलाने वाली उस निर्विन्ध्या नायिका से मिलकर तुम रति सुख लाभ करना । हाव भाव का प्रदर्शन ही स्त्रियों का रतिप्रार्थना वचन होता है वे मुख से नही कहती । रस शब्द का अर्थ, जल एवं श्रृंगार रस है अतः यक्ष मेघ से जल भरन को तथा श्रृंगार रसानुभव के लिए कहता है।

इस प्रकार यहाँ एक देश विवर्ति सांगरूपक अलंकार है, क्योंकि यहाँ पर विहग–श्रेणि पर काञ्चीगुण का और आवर्त पर नाभि का आरोप तो शब्दतः किया गया है पर निर्विन्ध्या पर नायिकात्व का आरोप अर्थात् किया गया है । रस शब्द श्लिष्ट है अतः श्लेष अलंकार भो हैं । स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनम् इत्यादि पंक्ति में वर्णित एक लोक सामान्य सिद्धांत से पूर्व की तीन पंक्तियो में वर्णित विशेष तथ्य का समर्थन किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार भो है और इन तीनों का परस्पर अंगाङ्गीभाव होने से संकर अलंकार है ।

संस्कृत व्याख्या – वीचीनां क्षोभण स्तनिता ये विहगाः तेषां श्रेणिः एव काञ्चीगुणःयस्यास्तस्यवीचिक्षोभस्त– नितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः तरंगसंचलनमुखरहंस–पंक्तिमेखलागुणायः स्खलितसुभग संसर्पन्त्याः स्खलनसुन्दर

यथास्यात्तथा प्रवहन्त्याः गच्छ–न्तयाश्च , दर्शितः आवर्त एव नाभिर्यया सा तस्याः – दर्शितावर्तनाभः प्रकटितसलिलभ–मनाभः निर्विन्ध्यायाः एतन्नामिकायाः विन्ध्योद्भवायाः सरितः पथि मार्गे जलप्रवाहे इत्यर्थ संगम्य रयाभ्यन्तरः जलाभान्तरः अन्यत्र शृंड्ारसाभ्यनतरग्ड भव तस्याः निर्विन्ध्यानायिकायाः रस– मनुभवेत्यर्थः । हि यतः स्त्रीणाम् कामिनीनाम् प्रियेषु स्वा–प्रियतमविषयें विभमः विलास एंव आद्यम् प्रथमम् प्रयणयवचनम् रतिप्रार्थनावाक्यम् (भवति) कामिन्यः स्वभावादेव विलासैरेव स्वरागप्रकाशनं कुर्वन्ति नतु कण्ठतः कथयन्ति इतिभावः।

संस्कृत सरलार्थ – यक्ष कथयति हे जलद ! उज्जयिन्या मध्ये मार्गस्थिताया निर्विन्ध्यायाः सरितः अनरागिण्याः कामिन्या इव श्रृग्ड्ाररसोपभोगं कुर्वन् सन् प्रयाहि , कामिनीनां स्वप्रियतमविषये विलासप्रदर्शनमेव प्रणयनिवेदनं भवति।

समास विग्रहादि – वीचीनाम् क्षोभः तेन स्तनिताः च येविहगाः तेषां श्रेणिः सा एव काञ्चीगुणः यस्याः सा तस्याः वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः स्खलितेन सुभगं यथा स्यात्था स्खलितसुभगम् दर्शितः आवर्त एव नाभिः ययाः सा तस्याः दर्शितावर्तनाभः , विन्ध्यात् निष्क्रान्ता निर्विन्ध्या तस्यः निर्विन्ध्यायः रस अभ्यतरे यस्य स रसाभ्यन्तरः प्रणयस्य वचनम प्रणयवचनम् । आदौ भवम् आद्यम् ।

व्याकरणादि – क्षोभ – क्षुभ+ घञ् प्रत्यय गुण–क्षोभ : स्तनितः – स्तन + क्त , इट् ,स्खलित – स्खल् + क्त ,इट्, दर्शित – णिजन्त दृश् + क्त इट् संन्निपत्य – सम् + नि+ पत् त्वा, समास –ल्यप् ,आदि + यत आद्यम् प्र+नी+ अच्– प्रणय, वच् +ल्युट् अन– वचनम् सम् + सृप् धातु + शतृ +ड़ीप् नुम् षष्ठयेक वचन – संसर्पन्त्याः आवर्त – स्यादवर्तोऽम्भसां भमः कोषः । भवः भ् धातु – लोट् म. पु. एकवचन, निर्विन्ध्या – निष्क्रान्ता विन्ध्यात् इस विग्रह मे यहाँ' निरादयः क्रान्ताद्यर्थ पञ्चम्या' से प्रादि समास है पर ' द्विगुप्राप्तात्रालमित्यादि ' से निषेध होने के कारण परवल्लिड.गता नही है अर्थात् पर शब्द के पुल्लिंग होने से यहाँ तत्पुरूष समास में भो पुल्लिंग न होकर स्त्रीलिंग ही हुआ है ।

टिप्पणी – विभमः प्रणयवचनम् –कामिनी का स्वभाव होता है कि वह रति–सुख प्राप्ति के लिए अपने प्रियतम से कण्ठतः कुछ नही कहती अपितु अपने हाव भाव प्रदर्शन द्वारा ही अपनी इच्छा को प्रकट करती है उसके इन संकेतो से ही उसका अन्तर्गत मन लक्षित हो जाता है । इन हाव भावो में सुन्दर अंगों का प्रदर्शन भो होता है जैसे नाभि – प्रदर्शन, कणकण्डूयन, स्निग्धदृष्टि, स्खलितगति, वालालिंङ्गन केश विवरण आदि। प्रस्तुत प्रसंग में निर्विन्ध्या नायिका का नाभि – प्रदर्शन स्खलितगमन, आदि विलास – प्रदर्शन है जो कि राग को उद्दीप्त करने के लिए है।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग यक्ष मेघ से कहता है कि अवन्ति प्रदेश में पहुँच कर, स्वर्ग के एक खण्ड के समान शोभाशालिनी उज्जयिनी नगरी में जाना।

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् ,
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानाम् ,
शेषैः पुण्यैर्ह्रतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ।। 31

अन्वय – उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् अवन्तीन् प्रात्य, पूर्वेद्दिष्टाम् श्रीविशालाम् विशालाम् पुरीम् अनुसर (या) सुचरितफले स्वल्पीभ्ते (सति) गाम् गतानाम् स्वर्गिणाम् शेषैः ह्रतम् दिवः एकम् कान्तिमत् खण्डम् इव (अस्ति)।

शब्दार्थ – उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् उदयन की कथाओं में प्रवीण ग्रामीण वृद्ध जनों वाले , अवन्तीन् अवन्ति प्रदेश में, प्राप्य पहुँचकर, पूर्वोद्दिष्टाम् पहले बताई गई, श्रीविशालाम् सम्पतिपरिपूर्णा, विशालाम् , पुरीम् उज्जयिनी नगरी को, अनुसर जाना, (या –जो कि नगरी) सुचरितफले पुण्य के फल के, स्वल्पीभ्ते कम हो जाने पर, गाम्

पृथिवी पर, गतानाम् गये हुए, स्वर्गिणाम् स्वर्गवासियों, एकम् एक, कान्तिमत् उज्जवल, खण्डम् अंश या भाग, इव के समान है।

अनुवाद – उदयन की कथाओं में प्रवीण ग्रामवृद्धों वाले अवन्ति प्रदेश में पहुँच कर, पहले बताई गई सम्पति – परिपूर्ण उज्जयिनी नगरी को जाना जो कि नगरी मानो पुण्य फल के क्षीण होन पर पृथिवी पर गये स्वर्गवासीजनों के अवशिष्ट पुण्यों से (पृथिवी पर) लाया स्वर्ग का एक उज्जवल खण्ड के समान है।

विशेष – पृथिवी पर पुण्य करने वाले लोग मरने पर पुण्य फल भोगने के लिए स्वर्ग जाते हैं । वहाँ वे तब तक रहते हैं जब तक उनका पुण्य शेष रहता है । पुण्य क्षीण होने पर वे पुनः कुछ अवशिष्ट बचे हुए पुण्यों के बल से मर्त्य लोक में आकर सुख प्राप्त करते हैं । उज्जयिनी इतनी वैभवशाली है कि वह स्वर्ग का ही एक भाग प्रतीत होती है । अतः कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो स्वर्गवासी जन अवशिष्ट पुण्यों के बल से पृथिवी पर लौटते समय मिलकर एक स्वर्ग का खण्ड ही पृथिवी पर लेते आये हैं इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षांलंकार है ।

संस्कृत व्याख्या – उदयनस्य कथासु कोविदाः ग्रामवृद्धा येषु तान् – उदयनकथा कोविदग्रामवृद्धान् उदयनोपख्यान्–प्रवीणग्रामवृद्धजनान् अवन्तीन् एतत्रामकान् जनपदान् प्राप्य आसाद्य पूर्वोद्दिष्टाम् पूर्ववर्णिताम् श्रीविशालाम् समृद्धिमती विशालां पुरीम् उज्जयिनीं नगरी, अनुसार प्रयहि (या नगर), सुचरितफले पुण्यफले स्वल्पीभ्ते अत्यल्पावशिष्टे गाम् पृथिवीम् गतानाम् प्रत्यागतानाम् स्वर्गिणाम् स्वर्गनिवासिजनानाम् शैषैः भक्ताशिष्टेः पुण्यैः सुकृतैः ह्तम् समाह्त्यानीतम् दिवः स्वर्गस्य एकम् कान्तिमत् समुज्जवलम खण्डम् शकलम् इव (अस्ति)।

संस्कृत सरलार्थ – यक्ष कथयति – हे जलद ! एतदनन्तरं त्वं, प्राचीननृपोदयनकथाप्रवचनप्रवीणग्रामवृद्धा–
ध्युषितान् अवन्तिदेशानासाद्य पूर्वचर्चितां समृद्धि मतिमुज्जयिनीमनु याहिः, या नगरी भवमागतानां स्वर्गवासिजनानामवशिष्ट पुण्यैरानीतं स्वर्गस्यैकं खण्डमिव वर्तते।

समास विग्रह – उदयनकथाकोविदग्रामवृ)ान् – उदयनस्य कथासु को विदा ग्रामेषु वृ)ाः येषु तान् (बहुब्रीहि) पूर्वोद्दिष्टाम् – पूर्व मुदिदष्टा ताम् (तत्पु.) श्रीविशालाम् – क्षिया विशाला ताम् , सुचरित फले – सुचरितस्य फलं तस्मिन् , न स्वल्पम् अस्वल्पम् स्वल्पं भ्तं तस्मिन् (गति तत्पुरुष) स्वर्गिणाम् – स्वर्गः अस्त्येषामिति स्वर्गिण तेषाम् ,कान्तिमत् – कान्तिः अस्ति अस्येति कान्तिमत् ।

व्याकरणादि – प्राप्य – प्र + आप् + त्वा – ल्यप् , उद्दिष्टाम् – उत् + दिश् क्त टाप् द्वितीयैकवचन अनुसर – प्रनु + सृ धातु से लोट म.पु. एक वचन, कान्तिम् – कान्ति शब्द से मतुप (मत्) प्रत्यय, ह्तम् – ह्न + क्त, स्वर्गिणाम् – स्वर्ग शब्द से इनि (इन्) प्रत्यय , षष्ठी बहुवचन, स्वल्पीभ्ते – स्वलप, च्वि, + भ्त , अकार को ई सप्तम्येकवचन ।

टिप्पणी – अवन्तीन् – अवन्ती प्रदेश किसी समय मालवा के पूर्वभाग में दक्षिण में नर्मदा तक तथा उत्तर में चम्बल तक फैला हुआ था देश वासी होने के कारण इसमें बहुवचन का प्रयोग हुआ है । उदयन कथा – उदयन की पत्नी वासवदत्ता उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की पुत्री थी, यह बडा कलाविद् राजा था इसकी कथायें लोकप्रसिद्ध थी । महाकवि भास ने इसकी कथा पर ही अपने एक नाटक की रचना की है स्वप्नवासवदत्तम् । उज्जयिनी का ही दूसरा नाम विशाला था क्योंकि इनमें अनेक उत्तम भवन थे।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – उज्जयिनी वर्णन प्रसंग में कवि शिप्रानदी के अंगानुकूल वायु का प्रार्थना चाटुकार प्रियतम के रूप में वर्णन करता हुआ कहता है ।

दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानाम्,
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः,

शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ।। 32

अन्वय – यत्र प्रत्यूषेषु सारसानाम् पटु मदकलम् कूजितम् दीर्घीकुर्वन्, स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः अगांनुकूलः शिप्रावातः प्रार्थनाचाटुकारः प्रियतम इव स्त्रीणाम् सुरतग्लानिम् हरति ।

शब्दार्थ – यत्रजहाँ पर अर्थात् उज्जयिनी में , प्रत्यूषेषुप्रातः काल, सार – सानाम् सारस नाम के पक्षियों के, पटु प्रस्फुट या तीव्र , मदकलम् मद से व्यक्त और मधुर, कूजितम् कूजन या ध्वनि को , दीर्घीकुर्वन् और अधिक तीव्र करता हुआ, बढाया हुआ, स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः खिले हुए कमलों की सुगन्धित के संसर्ग से सुगन्धित, अङ्. गानुकूलः शरीरावयवों के लिए सुखकर , शिप्रावातः शिप्रा नामक नदी का वायु, प्रार्थनाचाटुकारः पुनः रतियाचना के लिए चापलूसी करने वाले प्रियतम के समान, स्त्रीणाम् स्त्रियों की, सुरतिग्लानिम् रतिजन्य खिन्नता को, हरति दूर करता है ।

अनुवाद – जहाँ उज्जयिनी नगरी में प्रातः काल सरसों के तीव्र एवं मद से अव्यक्त मधुर कूजन को और अधिक बढाता हुआ खिले हुए कमलों की सुगन्धि के संसर्ग से सुगन्धित, शरीरावयवों को सुखकर शिप्रा नदी का वायु रति प्रार्थना में चापलूसी करने वाले प्रियतम की भाँति स्त्रियों की रतिजन्य खिन्नता को दूर करता है ।

विशेष – प्रस्तुत शलोक में शिप्रावात को प्रार्थना चाटुकार प्रियतम के रूप म सम्भावित किया गया है अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

संस्कृत व्याख्या –यत्र उज्जयिन्याम् प्रत्यूषेषु अहर्मुरवेषु (प्रत्यूषोऽघ्हमुखं कल्यम् इत्मरः) पटु प्रस्फुटम् तीव्रम् वा, मदेन कलम् मदकलम् मदाव्यक्त मधुरम् सारसानाम् एतन्नामकानाम् पक्षिविशेषाणाम् कूजितम् रूतम् कूजनम् वा दीर्घीकुर्वन् तीव्रतरं कुर्वन् विसतारयन् वा, स्फुटितानां कमलानाम् आमोदेन सह या मैत्री तया कषायः–स्फुटित – कमलामोदमैत्रीकषायः विकसितकमलपुष्पसुगन्धिसंपर्कसुरभिः (रागद्रव्यो कषायोघ्स्त्री निर्यासे सौरभ रसे–इति कोष) अङ्गानुकूलः शरीरावयवसुखकरः शिप्रावातः शिप्रेतिनामिकायाः तत्रत्यायाः कस्याश्चित् नद्याः वायुः प्रार्थनायां चाटुकरोतीति प्रार्थनाचाटुकारः सुरतयाचनाप्रियवचनप्रयोक्ता प्रियतमः वल्लभः इव यथा स्त्रीणाम् कामिनीनाम् पूर्वरतिजन्यखिन्तामपनयति तामुज्जयिनीं पुरीं याहि।

सस्कृत सरलार्थ – यक्षः कथयति यत्र नगर्या नित्यमहर्मुरवेषु प्रभातेषु विकसित् कमलपरिमलसुरभिः शिप्रावायुः प्रियतम इव पुनः रतिप्रार्थना चाटूक्तिभिः कामिनी – नाम् पूर्व रतिजन्यखिन्नतामपनयति तामुज्जयिनीं पुरीं याहि ।

समास विग्रह – दीर्घीकुर्वन् – न दीर्घम् अदीर्घम. अदीर्घ दीर्घ कुर्वन्निति दीर्घीकुर्वन् (गतितत्पु.) मदकलम् –मदेन कलम् मदकलम् (तत्पु.) स्फुटितकमलामोद–मैत्रीकषायः– स्फुटितानि च यानि कमलानि तेषाम् यः आमोदः तेन या मैत्री तया कषायः (तत्पु.) शिप्रावातः – शिप्रायाः वातः (तत्पु.) प्रार्थना चाटुकारः–प्रार्थनायां चाटु करोतीति प्रार्थनाचाटुकारः (उपपद तत्पु.) सुरतिग्लानिम् – सुरतस्य ग्लानिस्ताम् (तत्पु.)।

व्याकरणादि – दीर्घीकुर्वन् – दीर्घ + च्वि, अकार को ई , कृ + शतृ – कुर्वन, चाटुकारः – चाटु + कृ धातु से अण् प्रत्यय, ऋकार को आर् वृद्धि सुरत– सु+ रम् + क्त+ धातु के मकार का लोप , कुजितम् – कूज् भावे क्त इट् , स्फुटित– स्फुट विकसने + क्त, इट।

टिप्पणी – दीर्घीकुर्वन्निति – इस वाक्य द्वारा कवि ने प्रियतम की चाटुकारिता की तीव्रता एवं मधुरता की प्रतीति कराई है। मैत्री – इसका यहाँ अर्थ है – संपर्क या संसर्ग है । जिससे शिप्रावात का सुगन्धित होना बतलाया गया है । अगांनुकूल – वायु द्वारा शरीर का संस्पर्श कर सुखप्रद होता है, इससे कवि ने गाढालिङ्ग द्वारा , शरीर – संवाहन द्वारा शरीर – संवाहन एवं उससे रति श्रम परिहार की ओर संकेत किया है । सुरतश्रान्त स्त्रियाँ प्रियतम के गात्रसंवाहन से पूर्वरतिश्रम या रतिखिन्नता को भ्ल जाती हैं । शिप्रा – इस नाम की एक नदी है जिसके तट पर उज्जयिनी बसी हुई थी । शिप्रावातः से कवि ने वायु का शीतल होना बतलाया हैं। प्रार्थनाचाटुकार : – पुनः रतियाचना करता हुआ प्रियतम चाटूक्तियों से, पूर्वरतिखिन्नता को भलाकर पुनः रति के लिए स्त्रियों का अनुनय करता है ।

5.3 पारिभाषिक शब्दावली

'मन्दाक्रान्ता' – इस श्लोक में 'मन्दाक्रान्ता' नामक छन्द है जिसका लक्षण –'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मोभनौतु गयुग्मम् '' अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में मगण भगण नगण, तगण,तगण तथा अन्त में दो गुरू वर्णों के क्रम से 16 वर्ण हों तथा 4, 6 , 7 वर्णो पर यति हो वह मन्दाक्रान्ता छन्द कहा जाता है।

'**मेघदूत'** – इस खण्ड़–काव्य का नाम 'मेघदूत' है , जिसका अर्थ –वह काव्य जिसमें मेघ का दूत के रूप में वर्णन किया गया है –मेघ एव दूतः मेघदूतः तमधिकृत्य कृतं काव्यम् मेघदूतम् अथवा मेघोदूतः यस्मिन् काव्ये तत् ।

रामगिरि – नामक पर्वत की भौगोलिक स्थिति के विषय में अब तक विद्वानों ने अनेक अनुसन्धान किये हैं पर उनमे मतैक्य नहीं पाया जाता है । जिससे मेघदूत के अनेक टीकाकारों ने , प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ का अनुसरण करते हुए, रामगिरि को चित्रकूट पर्वत ही मानकर सन्तोष कर लिया है, क्योंकि मल्लिनाथ ने रामगिरि को चित्रकूट का ही पर्यायवाची शब्द मानकर 'रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु' इत्यादि लिखा है ।

'यक्षेश्वर – धनाधिपति कुबेर को कवि ने इसलिए 'यक्षेश्वर ' कहा है ''गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्'' । यक्ष कुवेर के सेवक हैं, सही, पर ये लोकपूजित हैं और दिव्यशक्ति सम्पन्न हैं , यक्ष की व्युत्पत्ति है– यक्ष्यते पूज्यत इति यक्षः ।

कौतुक – का अर्थ है – काम –विषयिणी उत्कण्ठा वर्षा का आरम्भ होने पर इसी उत्कण्ठावश प्रवासी अपने घरों को लौट आते हैं, इसी लिए मेघ को कौतुकाधान का कारण बताया गया है ।

रेवा – इसका दूसरा नाम नर्मदा नदी भी है, जो की विन्ध्यागिरी से निकलती है और गंगा के समान पवित्र मानी जाती है अमर को शकार ने इसका दूसरा नाम सोमोद्भवा और मेकलकन्यका भी दिया गया है 'रेवा तू नर्मदा सोमोद्भव मेकलकन्यका

5.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कश्चित् कान्ता .....रामगिर्याश्रमेषु
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
2. तस्य स्थित्वा ..... किं पुनर्दूरसंस्थे
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
3. धूम ज्योतिः .....चेतनाचेतनेषु
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
4. जातं वंशे .....लब्धकामा
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
5. त्वामारुढ़ं .....पराधीनवृत्तिः ।।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
6. तां चावश्यं.....रुणद्धि ।।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
7. आपृच्छस्व .....वाष्पमुष्णम्
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
8. अद्रेः शृंगम .....स्थूलहस्तावलेपान् ।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
9. स्थित्वा.....गजस्य ।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।

10. तस्यास्तिक्तै..... गौरवाय ।

प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 5.2 का श्लोक संख्या 1 देखें ।
2. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 5.2 का श्लोक संख्या 2 देखें ।
3. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 5.2 का श्लोक संख्या 3 देखें ।
4. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 5.2 का श्लोक संख्या 4 देखें ।
5. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 5.2 का श्लोक संख्या 5 देखें ।
6. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 5.2 का श्लोक संख्या 6 देखें ।
7. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 5.2 का श्लोक संख्या 7 देखें ।
8. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 5.2 का श्लोक संख्या 8 देखें ।
9. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 5.2 का श्लोक सख्या 9 देखें ।
10. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 5.2 का श्लोक संख्या 10 देखें ।

5.5 सारांश

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने महाकवि कालिदास के ग्रन्थ मेघदूत के प्रमुख श्लोकों की विस्तृत व्याख्या का अध्ययन किया है । इन श्लोकों की व्याख्या द्वारा यह तथ्य भी उद्घाटित हुआ है कि य श्लोक किस प्रकार मानव ह्रदय की सूक्ष्मतम भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं

इन श्लोकों के कला पक्ष और भाव पक्ष को भी व्याख्यायित किया गया है जिससे तत्सम्बन्धि ज्ञान भी आपको प्राप्त हुआ है साथ ही इन श्लोकों द्वारा ऐसे तथ्य भी ध्वनित हुए हैं जिनसे पता चलता है कि क्यों वास्तव में महाकवि कालिदास और उनका यह छोटा सा खण्डकाव्य (श्लोकों की संख्या मात्र के आधार पर) विश्व साहित्य जगत और अखिल विद्वत् समाज में अमर पद को प्राप्त कर गए हैं।

5.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मेघदूत– विजेन्द्र कुमार शर्मा, साहित्य भण्डार मेरठ,चतुर्थ संस्करण, 1996.
2. डॉ. एस के डे (सम्पादक) मेघदूत साहित्य अकादमी, न्यू देहली, 1986.
3. वाचस्पति गेरोला (सम्पादक) संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1960.
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी – मेघदूत एक पुरानी कहानी (प्रथम संस्करण),राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1980.

इकाई 6

मेघदूत के पूर्वमेघ के श्लोकों की ससन्दर्भ व्याख्या व्याकरणात्मक टिप्पणी सहित

इकाई की रूपरेखा –

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 प्रमुख श्लोक ससन्दभ व्याख्या सहित
6.3 पारिभाषिक शब्दावली
6.4 अभ्यासार्थ प्रश्न
6.5 सारांश
6.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.0 उद्देश्य –

इस इकाई में आप जान सकेंगे कि महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत के पूर्वमेघ में संख्या 1 से 32 तक के श्लोकों में कौन–कौन से प्रमुख श्लोक है । उन श्लोकों इस इकाई में ससन्दभ व्याख्या की गई है तथा इन श्लोकों की संस्कृत व्याख्या इनका संस्कृत सरलार्थ आदि आपकी सहातार्थ प्रस्तुत किया गया है । साथ ही श्लोकों में आये हुए कठिन शब्दार्थों को भो यथा स्थान स्पष्ट कर दिया गया है । व्याकरणात्मक टिप्पणियों का भो यथा स्थान वर्णन किया गया है । साथ ही श्लोकों में आये हुए प्राचीन भोगोलिक शब्दों को वर्तमान भोगोलिक विस्तार के अनुसार बताया गया है। अर्थात् वे प्राचीन स्थान वर्तमान में कहाँ स्थित हो सकते है। इस बात का भो उचित वर्णन किया है।

6.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास द्वारा रचित मेघदूत गीतिकाव्यों का चूड़ामणि है । महाकवि की परिपक्व कला, कल्पना की ऊँची इड़ान, परिष्कृत माधुरी भरी भाषा, विषय की धारावाहिक गति एवं गीति की एकतानता का यह ऐसा अद्भद् नमूना है । जिसकी टक्कर का विश्वभर में दूसरा कोई काव्य नही है । इसी कारण विद्वत् समाज सदियों से ''मेघे माघे गतं वयः'' कहता आ रहा है । मेघदूत 'मन्दाक्रान्ता ' छन्द में लिखा हुआ ह । काव्य में 121 पद्य है । इसमें कुबेर के शाप से प्रिया वियुक्त हुए यक्ष के व्यथित हृदय की वेदना भरी कहानी है । हृदय को द्रवित कर देने वाली ''विप्रलम्भ '' की एक करूण गीतिका है । यह काव्य दो भागों में विभाजित है –पूर्वमेंघ और उत्तर मेघ ।

कालिदास के इस काव्य का कोई पौरारिणक तथा ऐतिहासिक आधार नही है यह काव्य तो नितांत कल्पना प्रसूत है किन्तु इसी काव्य द्वारा कालिदास को दूतकाव्यों की परम्परा चलाने का श्रेय दिया जाता है । विद्वत् समाज तो यहाँ तक कहता है कि यदि कालिदास ''रघुवंश '' और ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' नही भो लिखते तो भो केवल ''मेघदूत'' के आधार पर विश्व इन्हें प्रकाण्ड महाकवियों में गिनता ।

मेघदूत का भारत में ही नही अपितु विदेशों में भो गहरा प्रभाव पड़ा है । यथा –जर्मन विद्वान श्वेट्ज ने मेघदूत का जर्मन गद्य में और प्रो. मैक्समूलर ने जर्मन पद्य में अनुवाद किया । अमेंरिका के आर्थर राइड़र ने अंग्रेजी में मेघदूत का पद्यानुवाद किया है । मेघदूत पर वर्तमान में 40 से ज्यादा टीकाएँ है । जो इसकी लोकप्रियता को सिद्ध करती है ।

टीकाकारों में मल्लिनाथ ही सुप्रसि) है । इस ग्रन्थ के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ना तो ऐसा ग्रन्थ भ्तकाल में लिखा गया था और ना ही अब भविष्य काल में लिखा जाएगा। (न भ्तो न भविष्यति)

प्रस्तुत इकाई में महाकवि के मेघदूत के पूर्व मेघ के प्रमुख श्लोकों की व्याख्या प्रस्तुत की गई इन सभो सूक्तियों के भाव विस्तार को पर्याप्त विस्तारित किया गया है । प्रत्येक श्लोक को व्याकरणात्मक रचना के साथ मानवीय भावनाओं के स्तर पर भो विस्तार पूर्वक

समझाया गया है और महाकवि के इस अद्भद् खण्डकाव्य के अध्ययन में यह आपकी रूचि उत्पन्न करते है।

6.2. प्रमुख श्लोक ससन्दर्भ व्याख्या सहित

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है– पूर्व मेघ और इत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

प्रसंग – उज्जयिनी के महाकाल शिव के मन्दिर का उल्लेख कर यक्ष, मेघ से वहाँ जाने के लिए कहता है ।

'' भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या –
स्तोयक्रीड़ानिरतयुवतिस्नातिक्तैर्मरुद्भिः ।। 36

अन्वय – भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरम् वीक्ष्यमाणः (सन्) त्रिभवनगुरोः चण्डीश्वरस्य पुण्यम् धाम यायाः कुवलयरजोगन्धिभिः तोयक्रीडानिरतयुवतीस्नानतिक्तैः गन्धवत्याः मरूद्भिः धूतोद्यानम् (अस्ति)।

शब्दार्थ – भर्तुः = स्वामी के, कण्ठच्छविः = कण्ठकी कॉन्ति वाले , इति = इसलिए , गणै = शिव सेवकों द्वारा, सादरम् = आदरपूर्वक, वीक्ष्यमाणः = देखे जाते हुए, (तुम को) त्रिभवनगुरोः = त्रिलोक के स्वामी, चण्डीश्वरस्य = पार्वती पति महाकाल शिव के, पुण्यं धाम = पवित्र स्थान अर्थात मन्दिर में , यायाः = जाना चाहिये (यत् –जो कि मन्दिर), कुवलरजोगन्धिभिः = कमलों के पराग की सुगन्धि वाले , तोय = सुगन्धित , गन्धवत्याः = गन्धवती नामक नदी के, मरुद्भि = पवनों से , धूतोद्यानम् = हिलते हुए उपवनों वाला।

अनुवाद – (हमारे) स्वामी शिव भो कण्ठच्छवि के समान कान्ति वाले (तुम हो) ऐसा सोच करके (शिवजी के) गणों के द्वारा सादर देखे जाते हुए (तुमको) त्रिभवन के अधिपति पार्वतीश्वर शिवजी के पवित्र मन्दिर में जाना चाहिए (जो कि मन्दिर) कमल पराग की सुगन्धि वाले (तथा) जलक्रीड़ा संलग्न युवतियों के स्नान (के सुगन्धित द्रव्यों से) सुगन्धित गन्धवती नामक नदी के पवनों द्वारा हिलते हुए उपवनों वाला (है)।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में प्रसिद्ध उपमान मेघ की उपमेय के रूप में कल्पना की गई है अतः प्रतीपालंकार है।

संस्कृत व्याख्या – भर्तुः स्वस्वामिनः नीलकण्ठस्य शिवस्य कण्ठच्छविः कण्ठकान्तिः इति अस्माद्धेतोः गणैः प्रमथैः सादरम् ससम्मानम् वीक्ष्यमाणः निरीक्ष्यमाणः (सन–त्वम्) त्रिभबनगुरो : त्रैलोक्याधिपस्य चण्ड़ीशवरस्य महाकालस्य शिवस्य पुण्यं पवित्रं धाम स्थानम् मन्दिरमिति यावत् यायाः गच्छे (यन्ममन्दिरम्) कुवलयरजोगन्धिभोः स्नानेन तिक्तः तोयक्रिड़ानिरतयुवतीस्नानतिक्तैः जलविहारासक्ततरूणीस्नानीयद्रव्यसुगन्धितैः गन्धवत्याः एतत्रामिकायाः तत्रत्यायाः कस्यश्चित्रद्याः मरूद्भिः वातै : धूतोद्यानम् आन्दोलितोपवनम् (अस्ति)।

संस्कृत सरलार्थ – यक्षः कथयति मेघ! तदनु त्वं विशालायां स्थित पवित्रं श्रो महाकालमन्दिरं गच्छेः, यत्र शिवगणस्त्वां स्वस्वामिनः नीलकण्ठस्य कण्ठच्छविधारकत्वात् ससम्मानं वीक्षिष्यन्ते , तत्रत्यं महाकालमन्दिरं सदैव कमलपरागसुगन्धिमद्भिः एवं जल विहार रासयुक्तयुवतिजन स्नानीयसुगन्धिमच्चूणैसुरभितैः गन्धवत्याः समीरैः प्रकम्पिताराम। तिष्ठति ।

समास विग्रहादि – कठस्य इव छविर्यस्य स कण्ठच्छविः (बहुब्री.) त्रयाणाः भवनानं समाहारः त्रिभवनम् तस्य गुरुः तस्य त्रिभवनगुरोः (तत्पु.) चण्ड्याः ईश्वरस्तस्य चन्ड़ीश्वरस्य, कुवलयानां रजसां गन्धः विद्यते एषमितिकुवलयरजोगन्धिनः, तैः कुवलयरजोगन्धिभिः तोये क्रीड़ासु निरताः याः युवतयः तासांः स्नानेन तिक्तैः तोयक्रीड़ानिरतयुवतीस्नानतिक्तैः धूतानि उद्यानानि यस्य तत् धूतोद्यानम्।

व्याकरणादि – भर्तु – भ + तृच् , षष्ठ्येक वचन, वीक्ष्यमाणः – वि+ ईक्ष् , कमणि यक् (य)शानच् (आन्) मुक्, णत्व,। यायाः – या धातु से वि. लिङ् म. पु. एकवचन । गन्धः

अस्या अस्ति इति गन्धवती तस्याः गन्धवत्याः गन्धशब्दात् मतुप मस्य वकारादेश, धूत – धू + क्त । त्रिभवनम् – त्रयाणां भवनानां समाहार इति विग्रहे 'तद्धितार्थ' इत्यादिना समासः ।

टिप्पणी – विषपान के कारण शिवजी का कण्ठ नीला है । अतः वे नीलकण्ठ या कण्ठेकाल कहे जाते है । शिवजी के कण्ठ के समान मेघ भो श्यामवर्ण का है, अतः शिवगणों के लिए वह 'भर्तु' कण्ठच्छविः है। फलतः शिव गण इसे अपने उपास्य स्वामी के सदृश जानकर इसे सम्मानित करेंगे।

गण शब्द का अर्थ यहाँ प्रमथ या शिवगण है क्योंकि 'गणस्तु गणनायां स्याद् गणेशे प्रमथे चये'– यह कोश है। महाकालेश्वर के मन्दिर के होने से विशाल नगरी न केवल एक पवित्र तीर्थस्थान है अपितु वह एक विलास स्थान भो है जैसा कि अन्तिम दो पंक्तियो में दिखलाया गया है ।

स्नान – यह लाक्षणिक प्रयोग है स्नान की स्नानीय द्रव्य में लक्षणा है और यहाँ करण में ल्युट है। तिक्तैः – इसका अर्थ यहाँ कटु न होकर सुगन्ध है ' कटुतिक्तकषायास्तु सौरभ च प्रकीर्तिताः – कोश । सुगन्धि के अतिशय को सूचित करने के लिए ही यहाँ मरूद्भिः के दो विशेषण दिये गये है ।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – महाकालेश्वर मन्दिर में जाकर मेघ को क्या करना है, इसी बात को प्रस्तुत श्लोक में बतलाया गया है –

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले,
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन् संध्यावलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ।।37

अन्वय – जलधर! अन्यस्मिन् काले अपि महाकालम् आसाद्य ते स्थातव्यम् यावत् भानुः नयनविषयम् अत्येति। शूलिनः श्लाघनीयाम् संध्यावलिपटहताम् कुर्वन् आमन्द्राणम् गर्जितानाम् अविकलम् फलम् लप्स्यसे ।

शब्दार्थ – जलधर = हे मेघ! अन्यस्मिन् काले अपि = दूसरे समय में भो अर्थात् संध्याकाल के अतिरिक्त अन्य समय में आसाद्य = महाकाल नामक मन्दिर में पहुँच कर, ते = तुमको, स्थातव्यम् = ठहरना चाहिए, यावत् = जब तक कि सूर्य दृष्टि पथ से ओझल होता है अर्थात् सन्ध्याकाल तक, शूलिनः = शिवजी की, श्लाघनीयम् = प्रशंसनीय, संध्यावलिपटहताम् =
संध्याकालीन पूजा में नगाड़े की क्रिया को, आमन्द्राणाम् गर्जितानाम् = गम्भोर गर्जनों के, अविकलम् फलम् = सम्पूर्ण फल को, लप्स्यसे = प्राप्त करोगे।

अनुवाद – यक्ष कहता है कि तुम कदाचित् संध्याकाल से अतिरिक्त अन्य किसी समय महाकाल मन्दिर में पहुँचो तो तुम वहाँ तब तक ठहरे रहना जब तक कि सूर्यास्त न हो जाये। इस प्रकार शिवजी गर्जना का सम्पूर्ण फल पा जाओगे । अर्थात् यदि तुम संध्याकालीन आरती के समय नगाड़े की ध्वनी का काम करोगे तो तुम्हें अपने गम्भोर गर्जनों का पूर्ण फल प्राप्त होगा।

विशेष – यहाँ यह बतलाया गया है कि शिवजी की संध्याकालीन आरती के समय मेघ का गर्जन नगाड़े की ध्वनि की पूर्ति कर सकेगा फलतः मेघ का गर्जना सार्थक होगा इस प्रकार यहाँ पूर्वार्द्ध वाक्य के प्रति उत्तरार्ध वाक्य को कारण माना गया है । फलतः यहाँ वाक्यार्थ हेतुक ' काव्यलिंग अलंकार ' है ।

संस्कृत व्याख्या – जलधर ! हे मेघ ! अन्यस्मिन् संध्यातिरिक्ते अपि कालेसमये महाकालम् महाकालेश्वरमन्दिरम् आसाद्य प्राप्य ते त्वयेत्यर्थः (तावत्) स्थातव्यम् याव्रत् यावता कालेन भानुः सूर्यः नयनविषयम् दृष्टिपथम् अत्येति अतिक्रामति अर्थात् सूर्योऽस्तं याति, संध्याकालपर्यन्तं स्थातव्यमित्याशयः । शूलिनः शिवस्य श्लाघनीयां प्रशस्यां संध्यावलिपटहताम्

संध्याकालीनपूजापटहध्वनिक्रयाम् कुर्वनः सम्पादयन् (त्वम्) आमन्द्राणाम् गम्भीराणाम् गर्जितानाम् गर्जतानाम् अविकलम् सम्पूर्णम् फलम् लप्स्यसे अवाप्स्यसि ।

संस्कृत सरलार्थ – यक्षः कथयति – हे मेघ! संध्यातिरिक्ताकालेऽपि महाकालमन्दिरं प्राप्तश्चेत्वं संध्याकालपर्यन्तं प्रतीक्षस्व, यतः शिवस्य संध्यापूजासमये त्वं स्वकीयेन गम्भीरगर्जनेन शिवपूजाकालीनपटहभावं लब्ध्वा गर्जनसाफल्यं यास्यासि ।

समास विग्रहादि – धरतीतिधरः जलस्यधरः जलधरः तत्सम्बोधने हे जलधर! नयनयो : विषयस्तम् नयनविषयम्। शूलमस्यास्तीति शूली तस्य शूलिनः। पटहस्य भावः कम वा पटहता, संध्यायां या वलिः तस्यां पहटताम् संध्यावलिपटहताम् ।

व्याकरणादि – आसाद्य – आ+ ण्यन्त सद् ! कत्वा – ल्यप् इकार लोप, स्थातव्यम् – स्था + तव्यत्, ते – युष्मद् षष्ठयेकवचन, यहाँ स्थातव्यम् के योग में कृत्यानां कतरि वा सूत्र से कर्ता अर्थ में तृतीया – त्वया के स्थान पर षष्ठी विभक्ति है षष्ठ्येक वचन, श्लाघनीयाम् – श्लाघ् + अनीयर – टाप् , लप्स्यसे – लभ धातु से लृट म.पु. एकवचन, कुर्वन – कृ + शतृ (अत्) उ, गुण गर्जितानाम् – गर्ज् भावे षष्ठी बहुवचन।

टिप्पणी – जलधर – इस शब्द के प्रयोग द्वारा कवि ने मेघ के वृहदाकार एवं घोर गर्जन सामर्थ्य ओर संकेत किया है । मेंघों की घोर गर्जना नंगाड़े की ध्वनी की समता करने वाली होती है । ये नंगाड़े पूजा आरती के समय मन्दिरों में बजाये जाते हैं।

महाकाल – शब्द का प्रयोग उज्जयिनी के शिवजी के मन्दिर एवं इसमें स्थापित शिवमूर्ति , दोनों के लिए होता है। यह उज्जयिनी महाकाल या महाकालेश्वर द्वादश ज्योर्तिलिगों में से एक है।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है । प्रसंग महाकाल मन्दिर में मेघ के अन्य कार्य को बतलाता हुआ यक्ष कहता है।

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः,
सांध्यं तेजं प्रतिनवजनपापुष्परक्तं दधानः।
नृत्तारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां,
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या।। 39

अन्वय – पश्चात् प्रतिनवजपपुष्परक्तम् सान्ध्यम् तेजः दधानः उच्चैः भजतरूतनम् मण्ड़ेलेन अभिलीनः भवान्या शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टिभक्तिः नृत्तारम्भ पशुपति आद्रेनागाजिनेच्छाम् हर।

शब्दार्थ – पश्चात् = बाद में अर्थात संध्याकालीन पूजा के उपरान्त, प्रतिनवजपापुष्परक्तम् = प्रत्यग्र जपा पुष्प के समान लाल वर्ण के, सान्ध्यम् = संध्याकालीन, तेज = कान्ति को, दधानः – धारण करते हुये, उच्चै भजतरुवनम् = व्याप्त किये हुये, भवान्या = पार्वती के द्वारा, शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम् = शान्त होने जाने से निश्चल नेत्र पूर्वक नृत्तारभ्भ = ताण्ड़वनृत्त के आरम्भ काल में , पशुपत्ते = शिवजी की, आर्द्रनागाजिनेच्छाम् = गीले अर्थात् रक्त से गीले गज चर्म को (धारण करने की) इच्छा को, हर = दूर करता है ।

अनुवाद – संध्याकालिन शिव पूजा के उपरान्त जपा के प्रत्यग्र पुष्प के समान लालवर्ण के संन्याकालिन तेज को धारण करते हुए (तथा शिवाजी की) उन्नत (उपर को उठाई गई) भजाओं रूपी वृक्षों के वन को मण्ड़लाकार रूप में आवृत्त करते हुए (और फलतः) पार्वती के द्वारा (गजजिनादि दर्शन जन्य) घबराहट के शांत होने से निश्चल दृष्टि पूर्वक जिस तुम्हारी भक्ति को देखा गया है। (ऐसे तुम) ताण्ड़व नृत्य के आरम्भ काल में शिवजी की (रक्त से) गीले गजचर्म (के धारण करने की) इच्छा को दूर करना ।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में ' प्रतिनवजापापुष्परक्तम्' में उपमालंकार ह और 'भजतरुवनम्' में रूपकालंकार तथा संध्याकालीन तेज को मेघ द्वारा धारण करने की कल्पना में निदर्शनालंकार है। इस प्रकार यहाँ ये तीनों अलंकार परस्पर निरपेक्ष है। अतः संसृष्टि भो है ।

सन्दर्भ –
प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्वप्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है।
प्रसंग – यक्ष मेघ से कहता है कि इस प्रकार वह उज्जयिनी में रात्रि व्यतीत कर प्रातः काल फिर आगे को प्रस्थान कर –
''तां कस्याञ्चिद् भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदाभ्युपेतार्थकृत्याः'' ।।41
अन्वय – चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः भवान् सुप्तपारावतायाम् कस्याञ्चि भवनवलभो तां रात्रिम नीत्वा सूर्ये दृष्टे पुनः अपि अध्वशेषम् वाहयेत्, सुहृदात् अभ्युपेतार्थत्वाः न मन्दायन्तें खलु।
शब्दार्थ – चिरविलसनात् = देर तक चमकने के कारण और विलास करने के कारण, खिन्नविद्युत्कलत्रः = थकी हुई बिजली रूपी पत्नी वाले भवान् = आप, सुप्तपारावतायाम् = सोये हुये कबूतरों वाली, कस्याञ्चित् = किसी, भवनवलभो = प्रासाद की अट्टालिका पर, ताम रात्रिम् नीत्वा = इस रात्रि को बिताकर, सूर्ये दृष्टे = सूर्य के दिखाई देने पर, पुनरपि = फिर भो , अध्वशेषम् = मार्ग के शेष भाग को, वाहयेत् = पूरा करना, खलु = निश्चय ही, सुहृदाम् = मित्रों के, अभ्युपेतार्थ कृत्याः = प्रयोजन सिद्धि के कार्यभार को स्वीकार कर लेने वाले पुरुष, न मन्दायन्ते = सुस्त नहीं पड़ते।
अनुवाद – देर तक चमकने के कारण, थकी हुई बिजली रूपी पत्नी वाले आप, सोये हुये कबूतरों वाली किसी प्रसाद की अट्टालिका पर इस रात्रि को व्यतीत कर, सूर्य के दिखाई देने पर फिर भो मार्ग के शेष भाग को पूरा करना निश्चय ही मित्रों की प्रयोजन सिद्धि के कार्य भार को स्वीकार कर लेने वाले जन सुस्त नहीं पड़तें अर्थात् स्वीकृत कार्य को अवश्य पूरा करते हैं।
विशेष – प्रस्तुत श्लोक के 'चिरविलसनात् पद में विलसन पद श्लिष्ट हैं, इसके दो अर्थ है, बिजली के पक्ष में चमकना और बिजली रूपी पत्नी के पक्ष में विलास करना अतः श्लेष का चमत्कार है और 'खिन्नविद्युत्कलत्रः पद में रूपक अलंकार है तथा चतुर्थ पंक्ति में वर्णित लोक सामान्यार्थ से पूर्वगत विशेष तथ्य का समर्थ किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार भो है।
संस्कृत व्याख्या – चिरं विलसनं तस्मात् चिरविलसनात् चिरस्फुरणात् विलासाच्च, खिन्ने विद्युदेव कलत्रं यस्य स खिन्नविद्युत्कलत्रः परिश्रान्तविद्युत्पत्नीकः भवान् मेघः सुप्ताः पारावताः यस्यां तस्याम् सुप्तपारावताया विविक्तायामित्यर्थः कस्याञ्चिद् भवनवलभो भवनाट्टालिकोपरिभागे ताम् रात्रि निशाम नीत्वा व्यतीतां कृत्वा सूर्ये भानौ दृष्टे दृष्टिपथमागते सति पुनरपि अध्वनः शेषस्तम् अध्वशेषम् मार्गवशिष्टभागम् वाहयेत् पारं कुर्यात् (यतः)खलु निश्चयः सुहृदाम् मित्राणम् अभ्युपेता अर्थस्य कृत्यानि यैस्ते अभ्युपेतार्थकृत्याः अंगीकृतप्रयोजनसिद्धक्रियाः (जनाः) न मन्दायन्ते नहि शिशिला भवन्ति।
संस्कृत सरलार्थ – यक्षः कथयति – हे जलद्! तत्राज्जायिन्यां कस्मिंश्चिद् गृहाच्छादनोपिरभागे चिरविलसनाच्छान्तविद्युत्पत्नीकस्त्वं तां निशां नीत्वां सूर्योदय एवं पुनः अंगीकृतमित्रकार्यत्वात्, अवशिष्टमार्गस्यातिक्रमणं विधेहि ।
समासविग्रहादि – चिरविलसनात् – चिरं हे जलद! तत्रोज्जयिन्यां कस्मिंश्चिद् गृहाच्छादनोपिरभागे चिरविलसनाच्छान्तविद्युत्पत्नीकस्त्वं तां निशां नीत्वां सूर्योदय एव पुनः, अंगीकृतमित्रकार्यत्वात्, अवशिष्टमार्गस्यातिक्रमण विधेहि ।
समास विग्रहादि – चिरविलसनात् – चिरं विलिसनं तस्मात् । खिन्त्रविद्युत्कलत्रः – खिन्नं विद्युदेव कलत्रं यस्य सः। सप्तपारावतसयाम् – सुप्ताः पारावता यस्यां तस्याम् (पारावतः कलरवः कपोतः इत्यमरः) भवनवलभो– भवनस्य वलभिः तस्याम् (आच्छादनं स्याद्वलभो गृहाणाम्)

अध्वशेषम् – अध्वनः शेषस्तम्, अभ्युपेतार्थकृत्याः अर्थस्य (प्रयोजनस्य) कृत्यानि (क्रिया) अर्थकृत्यानि अभ्युपेतानि (अग्डीकृताः) अर्थकृत्यानि यैस्तै ।

व्याकरणादि – विलसनात् –वि+लस्+ल्युट्, यु को अन, पञ्चम्येक व. खिन्न –खिद्+क्त , त और द् की नकारादेश , सुप्त – स्वप्+क्त, धातु के व को उ सम्प्रसारण , वाहयेत् –ण्यन्त वह धातु के विधिलिंग प्र. पु. एकवचन , अभ्युपेत – अभि+उप+इण् धातु +क्त , कृत्या – कृञ् धातु से क्वच् (य) तुक् (त्) टाप् (आ) मन्दायन्ते –मन्दा भवन्तीत्यर्थे मन्दाशब्दात् क्यपि निष्पन्नत् धातोः लट् प्र. पु. बहु.।

टिप्पणी – विद्युत्कलत्र – बिजलो को मेघ का कलत्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह इसकी चिरसहचरी होती है ।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि हे मेघ तुम देवगिरि पर पहुँचकर वहाँ स्थित स्कन्द–देव की गंगाजल से आर्द्र पुष्पों से पूजा करना –

'' तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा,
पुष्पासारैः स्नपयतु भवाव्योमगंगाजलार्द्रैः।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना
मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः''।। 46

अन्वय– तत्र नियतवसतिम् स्कन्दम् भवान् पुष्पमेघीकृतात्मा (सन्) व्योमंगगा–जलार्द्रैः पुष्पासारैः स्नपयतु, तत् हि वासवीनाम् चूनाम् रक्षाहेतोः नवशशिभता हुतव–हमुखे सम्भ्तम् अत्यादित्यम् तेजः (अस्ति)।

शब्दार्थ– तत्र = वहाँ देवगिरी पर, नियतवसतिम् = नित्य निवास करने वाले, सकन्दम् = शिवपुत्र स्वामिकार्तिकेय को, भवान् = आप, पुष्पमेघीकृतात्मां = पुष्पों के मेघ का रूप बनाये हुए अर्थात् अपने को पुष्प मेघ बनाये हुए, व्योमंगगालाद्रैः = आकाशगंगा के जल से गीले, पुष्पासारः = पुष्पों की धारा वृष्टियों से, स्नपयतु = स्नान कराइये, तत् हि = क्योंकि वह, वासवीनाम् चसूनाम् = नवीन चन्द्र को धारण करने वाले (शिवजी के) द्वारा, हुतवहमुखे = अग्नि के मुख में, सम्भ्तम् = सञ्चित किया हुआ, अत्यादि–त्यम् = सूर्य से भो अत्युत्कृष्ट, तेजः = तेज (अस्ति–है)।

अनुवाद– वहाँ देवगिरि पर नित्य निवास करने वाले (शिवपुत्र) स्वामिकार्ति–केय को आप , पुष्पों के मेघ का रूप बनाये हुए आकाश गंगा के जल से गीले पुष्पों की धारा वृष्टियों से स्नान कराइये, क्योंकि वह इन्द्र की सेनाओं की रक्षा के लिए नवीन चन्द्र को धारण करने वाले (शिवजी क) द्वारा अग्नि के मुख से सञ्चित किया हुआ सूर्य से भो अत्युत्कृष्ट तेज है।

संस्कृत व्याख्या– तत्र देवगिरौ नियतवसतिम् नित्यसन्निहितम् स्कन्दम् स्वामि– कार्तिकेयम् भवान् पुष्पमेघीकृतात्मा पुष्पवर्षणशीलमेघीकृतशरीरः कामरूपत्वादितिभावः व्योमगंगाजलार्द्रैः आकाशगंगासलिलक्लिन्नः पुष्पासारैः पुष्पाधारासमपातैः स्नपयतु अभि–षिञ्चतु, (धारा सम्पात आसारः इत्यमरः) भवान् स्वयमेव स्नपयतु एतेन स्वयंकृत–पूजाया उत्तमत्व गम्यते। तत स्कन्दः हि, वासवस्य अमूः वासव्यः तासां वासवीनाम् इन्द्रसम्बन्धिनीनाम् चमूनाम् सेनानाम् रक्षाहेतोः रक्षायाः कारणात् नवशशिभता नव–चन्द्रधारिणा भगवता चन्द्रशेखरेण, वहतीति वहः हुतस्य वहः हुतवहः अग्निः तस्यमुखे हुतवहमुखे अग्निमुखे सम्भतम् आदित्यमतिक्रान्तम् अत्यादित्य सूर्यतिक्रमणकरि तेजः ओजः (अस्ति) तत्तेजः शिवस्यैव मूर्त्यन्तरमिति हेतोः पूज्यमित्याशयः।

संस्कृत सरलार्थ– यक्षः कथयति– हे जलद्! तत्र देवगिरीवासवसैन्यरक्षार्थ नित्यनिवासिनमग्निमुखनिक्षिपतशिवतेजः स्वरूपं स्कन्ददेवम्, पुष्पमेघीकृतात्मा भवान् आकाशगंगाजलक्त्रि।ः पुष्पधारासम्पातैरभिषिञ्चतु।

समास विग्रहादि– नियता वसतिर्यस्य तम्– नियतवसतिम् पुष्पांणा मेघः पुष्पमेघः अपुष्पमेघः पुष्पमेघः सप्तद्यमानः कृतः आत्मा यस्य स पुष्पेघीकृतात्मा, व्योम्नि गंगा तस्याः जलेन आर्द्राः तैः– व्योमगंगाजलाद्रैः, पुष्पाणा मासारास्तैः पुष्पासारैः रक्षायाः हेतुः तस्मात्– रक्षाहेतो, नवश्चासौ शशी तं विर्भात इति नवशशिभृत् तेन– नवशशिभृता, वहतीति वहः हुतस्य वहः हुतवहः तस्य मुखं तस्मिन् हुतवहमुखे, आदित्यमतिकान्तमत्यादित्यम् वासवस्य इमा वास्व्यस्तासाम् वासवीनाम्।

व्याकरणादि – पुष्पमेघीकृत– पुष्पमेघ शब्द से कृत योगे च्वि, घ के आकार को 'ई' स्नपयतु–णिजन्त स्न। (स्नापय्) धातु से लोट् प्र0 पु0 एक वचन, वासवीनाम् वासवस्येमा इत्यर्थे तस्येदमिति, अण् प्रत्ययः स्त्रीत्वविवक्षायाम् ङीप् (ई) वासवी–षष्ठी बहुवचन, रक्षाहेतोःअत्र षष्ठी हेतुप्रयोगे इति षष्ठी। नवशशिभता–नवशशि+भ धातु से क्लिप्, इसका लोप, तुक् (त्) का आगाम्– भत् तृतीयकवचन, हुत– हु क्त, वह – बहतीत्यर्थे पचाद्यच्– वहः। सम्भतम् – सभ + भ+ क्त, तत्– यहाँ तत् इस सर्वनाम का प्रयोग स्कन्द के लिये किया है जो कि पुल्लिग है– अतः इसे पुल्लिग सर्वनाम होना चाहिए था न कि नपुंसकलिंग – तत्, मल्लिनाथ ने इसका समाधान करते हुए लिखा है, विधेयप्राधान्यान्नपुंसक निर्देशः पर इस कथन में बीच उद्देश्य का ही प्राधान्य माना जाता है विधेय का नही (अतप्रव) 'देवः प्रमाणम् जैसे वाक्य उपलब्ध होते है। अत्यादित्यम्– आदित्यमतिक्रान्तमित्यर्थे अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीया से यहाँ प्रादि तत्पुरुष समास है।

टिप्पणी – पौराणिक कथानुसार तारकासुर के वध के लिये देवों की प्रार्थना पर शिवजी के तेज को जब पार्वती जी धारण न कर सकी तब इन्होंने इसे अग्नि में रख दिया, अग्नि ने गंगा में और गंगा ने इसे छः कत्तिकाओं के उदर में रख दिया, इन्होने भो इसे वहन न कर सकने के कारण शरकण्ड वन में रख दिया, वहाँ वह तेज पुत्र रूप में परिणत हुआ, छः कत्तिकाओं ने इसका पालन किया, अतएवं इनका नाम कार्तिकेय, शरजन्मा, षण्मातुर आदि हुआ पुराणों में स्कन्द की उत्पत्ति विषयक भिन्न–भिन्न कथायें है, इन्हीं में एक कथा है कि शिवजी के स्कन्द तेज को अग्नि ने स्वंय धारण किया जिससे इनका नाम स्कन्द पड़ा अतएवं इन्हें 'पावकि' भो कहा जाता है । देवसेनापति होने के कारण स्वामिकार्तिकेय सेनानी आदि भो कहा हैं। देव प्रार्थना पर स्कन्ददेव तारकासुर के वध के वाद देवगिरी पर नित्य वास करने लगे हैं।

पुष्पमेघ– मेघइन्द्र का स्वेच्छानुकुल शरीर धारण करने वाला सेवक है, काम–रूपं मघोनः अतएवं इसमें अपने को पुष्प रूप में परिणत करने की भो क्षमता है।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

प्रसंग– यक्ष, मेघ से कहता है कि तुम इसके बाद भगवान् स्कन्ददेव की प्रसन्नता के लिये इनके वाहन मयूर को अपनी गर्जनों से नचाना–

ज्योतिर्लेखावयि गलितं यस्य बर्हं भवानी,
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति।
धौतापाङ्गंहरशणिरुचा पावकेस्तन्मयूरं,
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः।। 47

अन्वय – यस्य ज्योतिर्लेखावलयिगलितम् वर्हम् भवानी पुत्रप्रेम्णा कुवलयदल–प्रापि कर्णे करोति, हरशशिरूचा धौतापाङ्ग पावकेः तम् मयूरम् पश्चात् आद्रिग्रहण– गुरूभिः गर्जितः नर्तयेभ।

शब्दार्थ– यस्य = जिस स्कन्द के मयूर के, ज्योतिर्लेखावलायि = कान्ति की रेखाओं के मण्डल से युक्त, गलितम् = गिरे हुए, वर्हम् = मयूर पंख को, भवानी = पार्वती, पुत्रप्रेम्णा = पुत्र के प्रेम से, कुवलयदलप्रापि = कमल पत्र का संयोग कराने के रूप में अथवा कमल पत्र के धारण करने योग्य, कर्णे = कान पर, करोति = धारण करती हैं, हरशिरूचा = शिवजी के सिर पर स्थित; चन्द्र की कान्ति से, धौतापाडाम = धुले हुये (उज्ज्वल) नेत्रों की कोर

वाले, पावकेः = स्कन्द देव के, तुम इस कार्तिकेय के वाहन, मयूरम् = मयूर को, पश्चात् = बाद में अर्थात स्कन्ददेव पर पुष्पवर्षा बाद, गुरूभिःआद्रिग्रहण = पर्वत द्वारा ग्रहण किये जाने से अर्थात पर्वतीय गुफाओं में प्रविष्ट होने से, बढ़े हुए, गर्जितः = गर्जनों से, नर्तयेथाः = नचाना।

अनुवाद– जिस स्कन्ददेव के मयुर के, कान्तिरेखाओं के मण्डल से युक्त गिरे हुए मयुरपंख को, पर्वती, पुत्रप्रेम के कारण, कमल पत्र धारण करने योग्य (अपने) कान पर धारण करती है, शिवजी के (मस्तक पर स्थित)चन्द्र की क्रान्ति से उज्जवल नेत्रों की कोर वाली स्कन्ददेव के इस मयूर को, स्कन्ददेव पर पुष्पवर्षा के बाद, पर्वतीय गुफाओं में प्रविष्ट होने के कारण बढ़े हुये (अपने) गर्जनों से नचाना।

संस्कृत व्याख्या – यस्स स्कन्दमयुरस्य, ज्योतिषां लेखानां वलयं यस्यास्तीति ज्योतिर्लेखावीलैयि तेजोराजिमण्डलयुक्तम् गलितं पतितम् बर्हम् मयुरपिच्छम् भवानी पार्वती पुत्रप्रेम्नेहेन कुवलयदलप्रापि कमनपत्रभाजि अथवा कमलदलधारणार्हे कर्णे श्रवणे करोति धारयति, हरशशिरूचा– शिवशिरः स्थितचनन्द्रकान्त्या धौतापाङ्गम् धवलितनेत्रान्तम् (आपाग्डौ नेत्रयोरन्तौ इत्यमरः) पावकस्यापत्यं अद्रिग्रहणगुरूभिः देवगिरिगुहासं क्रमणमहत्तरैः गर्जितैः गर्जनैः नर्तयेथाः नृत्यं कारय ।

संस्कृत सरलार्थ– यक्षः कथयति– हे जलद ! तत्र देवगिरि नित्यं निवासिनः स्कन्ददेवस्य वाहनभतं तं मयुरम्, यस्य पतितं, पिच्छ भवानी पुत्रस्नेहेन स्वकर्णे धारयति, कन्दरासंक्रमणदीर्घैः स्वगर्जनैः नर्तयेथाः।

समाज विग्रहादि– ज्योतिषा लेखाः ज्योतिर्लेखाः तासा वलयं तद् अस्यास्ति इति ज्योतिर्लेखावलयि, पुत्रस्य प्रेम तेन पुत्रप्रेम्णा, कुवलयस्य दलं तत् प्राप्नोति यथा स्यात्तथा कुवलयदलप्रापि (उपपद तत्पुरूष) क्रिसयाविशेषणम् अथवा कुवलयदलं प्राप्नोतीत स्मिन् कुवलदलप्रापि कणविशेषणं सप्तम्यन्तं पदम् । हरस्य शशी तस्य रूक् तया – हरशशिरूचा, धौतौ अपाग्डौ यस्य स– तम् धौतापाग्डम् , अद्रेः, ग्रहणं तेन गरूभिः अद्रिग्रहणगुरूभिः, पावकस्यापत्यं पुमान् पावकिः तस्य पावकेः।

व्याकरणादि– भवानी–भव+आनुक् ङीप्, पावकिः पावक शब्द से 'अत इञ्' इञ्' प्रत्यय, कुवलदलप्रापि– कुवलयदल +प्र + आप् णिनि, अथवा कुवलयदल +प्र +आप् धातु से क्विप् प्रत्यय इसका सर्वापहारी लोप, सप्तमी एकवचन, नर्तयेथाः– णिजन्त नृत् (नर्तय्) से आत्मनेपदे विधि लिड्. म0पु0 एक वचन, वलसि – वलय +इन् वलयिन् नंपुसकलिग्ङ्गद्वितीयैक वचन , गर्जितैः गजै, भावे क्त।

टिप्पणी – ज्योतिर्लेखा – चमकती हुई प्रकाश रेखायें, मयुर पुच्छ के अग्रभाग पर रंग – बिरंगी चमकीली रेखायें होती हैं और यह गोल भो होती है। गर्जितम्–अपने आप गिरा हुआ, मयूर पिच्छ अपने आप गिर पड़ते है । यदि पार्वती जी उत्सुकता वश इसे खींचकर निकालती तो इसे कष्ट होता । प्रापि के स्थान पर (क्षेपि) भो पाठ मिलता है जिसका अर्थ है, कमल पत्र को तिरस्कृत करने वाले और तब यह वर्हम का विशेषण ही माना जायेगा । क्वचित् ' स्पर्धि ' भो पाठ है और इसका अर्थ है, कमल पत्र से स्पर्धा करने वाले, धौतापाग्ङ –मयूर को शुक्लापाग्ङ – शतेतनेत्रान्त वाले कहा जाता है, पर यहाँ जब शिवजी पुत्र प्रेम से इसे सस्नेह दृष्टि से देखते है तब इनके चन्द्र के किरणों से इसके अपांग और अधिक स्वच्छ हो जाते है, पावकेः – अग्नि से उत्पन्न होने के कारण स्कन्द का अपर नाम पावकि भो है । नर्तयेथाः यहाँ णिजन्त नृत् धातु हो जाती है।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग– यक्ष कहता है कि तुम इस प्रकार स्कन्ददेव की सेवा करके आगे चर्मण्वती (चम्बल) नदी पर पहुँचना –

''आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा ,
सिद्धद्वन्द्वैः जलकणभयाद् वीणिभीर्मुक्तमार्गः ।

व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ।। 48

अन्वय – एवम् शरवणभवम् देवम् आरध्य वीणिभिः सिद्धद्वन्द्वैः जलकणभयात् मुक्तमार्गः उल्लग्ङिघिताध्वा सुरभितयालभ्भजाम् भवि स्रोतोभ्र्ल्या परिणताम् रन्तिदेवस्य कीर्तिम् मानयिष्यन् व्यालम्वेथाः।

शब्दार्थ – एवम् = इन, शरवणभवम् = शरकण्डों के वन में उत्पन्त्र होने वाले, देवम् = देव स्कन्द की, आराध्य सेवा करके, वीणिभिः = वीणाधारी, सिद्धद्वन्द्वैः = सिद्वों के, उल्लङ्घिताध्वा = मार्ग को पारकर चुकने वाले, (तुम) सुरभितनयालभ्भजाम् = सुरभितनया – गौ, गायों के आलभ्भ (बलि) से उत्पन्न हुई, भवि = पृथिवी पर स्रोतोमूर्ल्या = जल प्रवाह के रूप में अर्थात् नदी के रूप में, परिणताम् = परिवर्तित हुई, रन्तिदेवस्य = इस नाम के एक प्राचीन राजा की, कीर्तिम् = कीर्ति को, मानयिष्यन् = सम्मानित करते हुए, व्यालम्बेयाः = झुक जाना या नीचे को लटक जाना।

अनुवाद – शरकण्डों के वन में उत्पन्त्र होने वाले इन (पूर्वोक्त) देव अर्थात् स्वामिकार्त्तिकेय की आराधना करके, वीणाधारी सिद्धों के जोड़ों द्वारा जल के कणों के भय से जिस तुम्हारा मार्ग छोड़ दिया गया है, और जिस (तुमने) कुछ मार्ग तय कर लिया है (ऐसे तुम) गायों की बलि से उत्पन्न, (और) पृथिवी पर जलप्रवाह अर्थात् नदी के रूप में, परिणत हुई, राजा रन्तिदेव की कीर्ति को, सम्मानित करते हुए, (उसके प्रति) झुक जाना ।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में कीर्ति और नदी में यद्यपि कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि दोनों में अभद की कल्पना की गई है अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलङ्ककार है ।

संस्कृत व्याख्या – एवम् पूर्वोक्तम् शरद्णभवम् बालतृणवनोद्भवम् (शरोवाणे वाणतृणे–कोशः) शरजन्मा शरजन्मा षडाननः इत्यमरः; देवम् स्कन्दम् आराध्य उपास्य वीणिभिः वीणावद्भिः सिद्धद्वन्द्वैः सिद्वमिथुनैः जलकणभयात् जलकण त्रासात् मुक्तमार्गः त्यक्तवर्त्मा सन् उल्लङ्घिताध्वः अतिक्रान्तमार्गः सुरभितनयालभ्भजाम् गोसंज्ञपनजाताम् भवि भ्मौ स्त्रोतोमूर्ल्या प्रवाहरूपेण परिणताम् रूपविशेषमापन्नाम् रन्तिदेवस्य एतन्नमकस्य प्राचीनस्य दशपुरपतेः महाराजस्य कीर्तिम् चर्मण्वत्याख्यां नदीमित्यर्थः मानयिष्यन् सत्कारयिष्यन् व्यालम्बेथाः आनतो भव ।

संस्कृत सरलार्थ – यक्षः कथयति– हे जलद् ! इत्थं पूर्ववर्णितं स्कन्ददेवं समाराध्य स्वाभिकार्तिकेय सेवार्थ मागतै र्वीणावद्भिः सिद्धमिथुनैस्त्वज्जलकण भयत्त्रस्तैः परिरत्यक्तमार्गः कञ्चिमार्गमतिक्रम्य गवालभ्भोद्भवां भवि प्रवाहरूपेण परिणतां रन्तिदेवस्य मूर्तिमतों कीर्तिम् चर्मण्वती–नदीं सत्कारयिष्यन् आनतो भव।

समास विग्रहादि – शराणाम् वनम् शरवणम् तस्मिन् भवः जन्म यस्य स तम् शरवणभवम् व्यधिकरणबहुब्रीहि। वीणाः सन्त्येषा मिति वीणिनस्तैः वीणाभिः, सिद्धानां द्वन्द्वैः सिद्धन्द्वैः, जलस्य कणेभ्यः भयं तस्मात् जलकणभयात् जलकणभयात् मुक्तः मार्गः यस्य मुक्त मार्गः, उल्लङ्घितः अध्वा येन स उल्लङ्घिताध्वा सुरभः (कामधेनोः) तनयाः तासां आलम्भः तस्मात् जाता इति ताम्–सुरभितनयालम्भजाम् स्रोतसः मूर्तिः तया स्रोतोमूर्त्या ।

व्याकरणादि – शरवण – यहाँ शराणाम् वनम् इस प्रकार विग्रह करने पर शर शब्द से आगे वन शब्द के नकार को 'प्रतिनिरन्तः शर–इत्यादि से णकार होता है । इनि प्रत्यय आकार का लोप होकर वीणिन् शब्द से ब्रीह्यादित्वात् इनि प्रत्यय आकार का लोप होकर वीणिन् शब्द से तृतीया बहुवचन, उल्लङ्घित–उत्+जन+ड प्रत्यय, डित्वात् अन् इस टि का लोप, स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् (आ)द्वितीयैक वचन, परिणताम् – परि+नम्+क्त, मकार लोप् नकार लोप् नकार को णत्व, स्त्रीत्वे टाप् (आ) द्वि. एकवचन। व्यालम्बेथाः वि+आ+लवि (लम्व) आत्मनेपद विधिलिंग म. पु. एकवचन, मुक्त मुच् +क्त, मार्गः मृज+घञ् , वृद्धि।

टिप्पणी – गवालम्भ का प्रचलित अर्थ तो गोवध ही है पर वस्तुतः गवालम्भ नामक यज्ञ में गोवध नहीं किया जाता था, अतः यहाँ इसका तात्पर्य यज्ञ में छोड़े गये संकल्प जलों से है। रन्तिदेव, जैसा कि पुराणों में इनके विषय में उल्लेख है, एक महान् धार्मिक वीर यज्ञशील प्रजापालक राजा थे, जैसा कि इनके नाम से भो ज्ञात होता है। 'रन्तिः रमणं देवानां यस्मिन् स रन्तिदेवः' अर्थात् विद्वान् और देवता जिसमें रुचि लेते हों। इस प्रकार देवादृत रन्तिदेव

द्वारा गोवध की कल्पना निराधार हैं। सुरभितनयालम्भ से उत्पन्न चर्मण्वती का भो यही तात्पर्य है । यहाँ चर्म का अर्थ चरति गच्छति येन तत् चर्म है अर्थात् जिससे जाता या कीर्ति प्राप्त करता है वह चर्म हैं। इस प्रकार चर्मण्वती, रन्तिदेव की कीर्ति की परिचायिका है यह रन्तिदेव दशपुर के राजा थे और बहुत बड़े यज्ञकर्ता थे । कुछ विद्वानों ने 'सुरभित नयाः' का अर्थ सुरभित+नय भो माना हैं उनके अनुसार सुरभिता नया येषां सुरभितनयाः विशिष्ट नीतिज्ञाः तेषाम् आलम्भः स्वीकारः प्राप्तिर्वा तस्माजाता, इसके प्रतीत होता है कि राजा रन्तिदेव विशिष्ट नीतिज्ञ जनों का आदर करने वाला और इनके योग से युद्ध तथा यज्ञादि विशिष्ट कम करने वाला था। उसी के प्रयास से यह उसकी कीर्तिरूपिणी नदी उत्पन्न हुई थीं कुछ विद्वानों ने एक अन्य अर्थ की भो कल्पना की है। प्रसंगानुसार यह अर्थ भो उचित है सुरभिः पृथिवी, तस्याः तनया पुत्री कृषिः तदर्थम् आलम्भः यज्ञः तस्माज्जाता, कृषियज्ञ से उत्पन्न सम्भव है राजा के यज्ञमय शासन काल में चम्बल प्रदेश शस्यश्यामल हो। इस प्रकार इसके कई अर्थों की कल्पना की गई है।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि तुम कुरुक्षेत्र में पहुँचकर सरस्वती नदी का जल पीना जिससे तुम अन्तः शुद्ध हो सको –

''हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्.गली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामधिगममपां सौम्य सारस्वतीना–
मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः''।। 52

अन्वय – बन्धुप्रीत्या समरविमुखः लाङ्गली, अभितरसाम् रेवतीलोचनाक्ङ्ाम् हालाम् हित्वा याः सिषेवे, तासाम् सारस्वतीनाम् अपाम् अधिगमम् कृत्वा,सौम्य! त्वम् अन्तः शुद्धः भविता, वर्णमात्रणे कृष्णः (स्थास्यसि)।

शब्दार्थ – बन्धुप्रीत्या = बन्धुओं – कौरवों – पाण्ड़वो –के स्नेह से, समर –विमुखः = युद्ध से पराङ्मुख (होकर), लाङ्गली = हल को धारण करने वाले अर्थात् बलराम जी, अभिमतरसाम् = अभिष्ट स्वाद वाली, रेवतीलोचनाक्ड़ां = रेवती के नेत्रों के चिह्न (प्रतिबिम्ब) वाली, हालाम् = मदिरा को, हित्वा = छोड़कर, या जिन जलों का सिषेवे हे वर्णमात्रेण = केवल रंग मात्रसे, कृष्णः = कृष्ण वर्ण के (रहोगे)।

अनुवाद – बन्धुजनों के स्नेह के कारण युद्ध से विमुख (रहोगे)।

अनुवाद – बन्धुवों के स्नेह के कारण युद्ध से विमुख (होकर) हल को अस्त्र रूप में धारण करने वाले बलराम जी ने, अभोष्ट स्वाद वाली (तथा) रेवती के नेत्रों के चिह्न से युक्त, मदिरा को छोड़कर जिन जलों का सेवन किया था उन सरस्वती नदी के जलों को प्राप्त कर या सेवन कर, हे सौम्य! तुम भो अन्तः करण से शुद्ध हो जाओगे, केवल अपने रंग मात्र से काले रहोगे।

संस्कृत व्याख्या – बन्धूनां प्रीतिस्तया बन्धुप्रीत्या कुरुपाङ्रवबन्धुप्रेम्णा समरात् विमुखः समरविमुखः युद्धपराङ्मुखः लाङ्गली लाङ्गलास्त्रधारी बलरामः अभितरः सम् अभोष्टस्वादाम् रेवतीलोचनाग्ङ्ाम् रेवतीनेत्रचिह्नाम् हालाम् मदिराम् हित्वा परित्यज्य याः अपः सिषेवे सेवितवान् पीतवानित्यर्थः तासाम् सारस्वतीनाम् सरस्वती सम्बन्धिनीनाम् अपाम् जलानाम् अधिगमं कृत्वा सेवनं विधाय पीत्वेत्यर्थः सौम्य हे सुभग! त्वमपि मेघोऽपिः अन्तः शुद्धः पूतान्तः करणः भविता भविष्यसीत्यर्थः वर्णमात्रेण केवलं वर्णेनैव कृष्णः श्यामः न तु पापेनेत्यर्थः (स्थास्यसि)।

संस्कृत सरलार्थ – यक्षः कथयति – हे जलद! कौरवपाण्ड़वयौः समान –प्रेमभावेन् महाभारतयुद्धविमुखो बलरामः अतिप्रियामपि मदिरां विहाय यस्याः सरस्वत्याः नद्याः जलानि पीतवान् तस्याः सरितः जलानि पीत्वा त्वमपि शुद्धान्तः करणो भविष्यसि एवं बाह्यवर्णमात्रेण श्यामः सन्नपि त्वं हृदयेन शुद्धो भविष्यसि।

समासविग्रहादि – बन्धुनां प्रतिस्तया बन्धुप्रीक्ष्य, लाङ्लमस्यास्तीति लाङ्गली, अभिमतः रसः यस्यास्ताम् अभिमतरसाम्, रेवत्याः लोचने एवं अंग चिह्नम् यस्याः ताम् रेवतीलोचनाअंगाम्, सरस्वत्याः इमाः तासाम्–सारस्वतीनाम्, वर्ण एव वर्णमात्रम् तेन वर्णमात्रेण।

व्याकरणादि – लाङ्गलादि–लाङ्गल शब्द से इनि प्रत्यय, अभिमत +मन्+क्त नकार लोप्, हित्वा –ओहाक् त्यागे–हा+त्वा आकार को (इ) सारस्वतीनाम् –सरस्वती +अण् वृद्धि, ङीप् (ई) षष्ठी बहुवचन, आपाम्–स्त्रीलिंग उप् शब्द से षष्ठी बहुवचन का रूप सिषेवे–सेव् धातु लिट् आत्मनेपद प्र.पु. एकवचन वर्णमात्रेण –वर्ण+मात्रच् सौम्य –सोम +ट्यण् (सोमाट्ट, यण्) अधिमम् –अधि+गम्+अप् (अ)।

टिप्पणी – हाला–यह प्राकृत शब्द है पर 'अभियुक्त' देशभाषापदम्' के अनुसार संस्कृत साहित्य में भो यह प्रयुक्त होने लगा है ''सुरा हलिप्रिया हाला'' प्रेमभाव के कारण देख बलराम जी को देती थी अतएवं वह उनके नेत्रों से प्रतिबिम्बित हो जाती थी। इस अभिमत रस वाली भो मदिरा को छोड़कर सरस्वती के जल को सेवन करने का कारण यह था कि बलराम जी ने नैमिषारण्य में सूत का वध किया था। उनके प्रायश्चित के लिए उन्हें सरस्वती तट पर वास करना और नदी के पवित्र जल को सेवन करना पड़ा था। इस जल के पान से वे ब्रह्महत्या के पाप से छूटकर शुद्धान्तः करण हो गये थे। सरस्वती नदी अब कुरुक्षेत्र दृष्टिगत नहीं होती। विद्वानो की मान्यता है कि मरुभ्मि से लुप्त होकर प्रयाग में गंगा यमुना से मिल गई है ।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि तुम्हारे पहुँचने पर यदि वहाँ वनाग्नि लगी हो तो तुम वर्षा करके बुझा देना –

'' तं चेद् वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा,
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः ।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तामानाम् ''।। 56

अन्वय – वायौ सरति, सरलस्कन्धसंघट्टाजन्मा उल्काक्षापितचमरीवालाभारः दवाग्निः तम् वाधेत् चेत्, एनम् वारिधारासहस्रैः अलम् शमयितुम् अर्हसि, हि उत्तमानाम् सम्पदः आपन्नर्तिप्रशमनफलाः (भवन्ति)।

शब्दार्थ – वायौ सरति = वायु के चलने पर, सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा = चीड़ के वृक्षों के तनों के संघर्षण से उत्पन्न होने वाला, उल्काक्षपितचमरीवालभारः = ज्वालाओं से चमरी गायों के बाल समूह को जला देने वाला, दवाग्निः = वन का अग्नि अर्थात दावानल, तम् = उस पर्वत को, इसको अर्थात् वनाग्नि को, वारिधारासहस्रैः = असंख्य जलधाराओं से, अलम् = पर्याप्त में, शमयितुम् = शान्त करने के फल वाली (होती हैं) अर्थात् श्रेष्ठ जनों की सम्पत्तियों का फल दुःखित जनों को शान्त करना ही होता है।

अनुवाद – वायु के चलने पर, चीड़ के वृक्षों के तनों के संघर्ष से उत्पन्न होने वाला (तथा) ज्वालाओं से चमरी गायों के बाल–समूह को जला देने वाला दावानल यदि इस हिमालय को पीड़ित करे तो (तुम) इस दावानल को असंख्य जला धाराओं से पर्याप्त रूप में शान्त करने के फल वाली (वाली है) अर्थात् उत्तम जनों की सम्पत्तियों का फल दुःखी जनों की पीड़ा शान्त करना होता ह।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक की अन्तिम पंक्ति में वर्णित लोक सामान्य तथ्य से पूर्व वर्णित कि शेष बात का समर्थन किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या – वायौ पवने सरति प्रवहति स्कन्धानाम् संघट्अेन जन्म यस्य स सरलस्कन्धर्मघट्टजन्मा– देवदारुविशेषप्रकाण्डसंघर्षणोत्पन्नः (अस्त्री) प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधेवस्तरोः इत्यमरः)। उल्काभिः क्षिपतः चमरीणा वालानां भारः येन स उल्काक्षपितचमरीवालभारः बह्निकणसमूहदग्धारण्यमृगीपुच्छकेश प्रचयः, दव एव अग्नि : दवाग्नि

वनवह्निः (वने च वनवह्नी च दवो दाव इतीष्यते–कोशः तं हिमालयपर्वतम् बाधेन् पीड्येत चेत् यदि (वर्हि त्वम्) एनम् दवाग्निम् वारिधारासहस्रैः असंख्यजलधाराभिः अलम् पर्याप्तरूपेण शमयितुम् निर्वापयितुम् अर्हसि योग्योऽसि, हियतः उत्तमानाम् सम्पदः सम्पत्तयः आपन्ननाम् आर्तेः प्रशमनमेव फलं यासां तांः आपन्नर्तिप्रशमनफलाः दुखितजनपीड़ानिवारणप्रयोजनाः (भवन्ति)।

संस्कृत सरलार्थ – यक्षः कथयति हे जलद! यदि तत्र वायुसंचलनप्रवर्धितः सरलाख्यवृक्षप्रकाण्डसंघर्षोद्भवः स्फुलिंगनिर्दग्धारण्यगवीपुच्छकेशमूहो दवाग्नि हिमालयं पीड्येत् तर्हि त्वं जलधाराभिस्तं निर्वापय यतो हि सज्जनसम्पत्त्यः दुखितार्तिनिवारणप्रयोजना भवन्ति।

समासादि – सरलानां स्कन्धाना संघट्टेन जन्म यस्य स–सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा, उल्काभिः क्षपितः चमरीणां वालानां भारः येन स–उल्काक्षपित–चमरीवालभारः, वारिणः धारणां सहस्रैः–वारधिरा सहस्रैः, आपन्नानाम् आर्तेः प्रशमनमेव फलं यासाताः ताः आपन्नर्तिप्रशमनफलाः।

व्याकरणदि – सरित–सृ+शतृ (अत्) अप्तम्येकवचन, सघट्ट –सम+घट्ट+घञ् (अ) क्षपित+णिच्+क्त, इट् –शमम्+तुमुन्, आपन्न–आ+पद्+क्त, नकारादेश, अर्ति –आ + ऋ + क्तिन्, प्रशमन+प्र+शम्+ल्युट् सम्पदः–सम्+पद्+क्विप्।

टिप्पणी : चमरी एक प्रकार का हरिण होता है जिसे अरण्यगवी भो कहते हैं इसके पूँछ के बालों से चंवर बनाये जाते हैं ये बाल कोमल और शीघ्र आग पकड़ लेने वाले होते है। ये प्रायः हिमालय पर पाये जाते है।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि यदि शरभ तुम्हारे मार्ग का उल्लंघन करें तो तुम ओलों की वृष्टि से उन्हें भगा देना–

''ये संरम्भोत्पतनभसाः स्वांगभङ्गाय तस्मिन्,
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।
तान् कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ।। 57

अन्वय – तस्मिन् संरम्भोत्पतनरभसाः ये शरभाः मूत्ताध्वानं भवन्तम् सपदि स्वाङ्गाय लङ्घयेयुः, ताम् तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् कुर्वीथाः, निष्फलारम्भयत्नाः के वा परिभवपदम् न स्युः।

शब्दार्थ – तस्मिन् = उस हिमालय पर्वत पर, संरम्भोत्पतनरभसाः = क्रोध के कारण उछलने में वेगयुक्त, शरभाः = पर्वतीय जन्तु विशेष, मुक्ताध्वानम् = मार्ग छोड़ चुकने वाले, भवन्तम् = आपको, सपदि = शीघ्र ही, स्वाङ्गभङ्गाय = अपने अंगों को तोड़ने के लिए, लङ्घयेयुः = उल्लंघन करें, तान् = उन शरभों को, तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् = घनघोर ओलों की वर्षा को गिराने के तितर–बितर, कुर्वीयाः = कर देना, निष्फलारम्भयत्नाः = निष्फला कर्मों में प्रयत्न करने वाले, के वा अन्य कौन लोग, परिभवपदम् न स्युः–तिरस्कार का विषय या पद अथवा पात्र नहीं होते, अर्थात् अवश्य होते हैं।

अनुवाद – उस हिमालय पर्वत पर क्रोध के कारण उछलने में वेगयुक्त पर्वतीय जन्तु विशेष, मार्ग छोड़ चुकने वाले आपको (यदि) शीघ्र ही अपने अंगो को तोड़ने के लिए उल्लङ्घित करें (तो तुम) उनको घनघोर ओलों की वृष्टि गिराने से तितर–बितर कर देने में निष्फल कार्यों में प्रयत्न करने वाले कौन लोग तिरस्कार के पात्र नहीं, अर्थात् ऐसे सभो तिरस्कृत होते हैं।

विशेष – यहाँ अन्तिम पंक्ति में वर्णित सामान्य तथ्य से पूर्वात्त विशेष बात के समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या – तस्मिन् हिमाद्रौ, संरम्भण उत्पतने रभसः येषान्तेसंरम्भोत्पतनरभसाः कोधोत्प्लवनवेगाः (रभसो वेगहर्षयोंः इत्यमरः) संरम्भः संभमें कोपे –कोशः ये शरभाः अष्टापदमृगविशेषाः (शरभः शलभ चाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे–कोशः) मुक्तः अध्वा येन तम्

–मुक्ताध्वानम् –
मुक्ताध्वानम् परित्यक्तशरभोत्पतनमार्गम् भगवन्तम् मेघम् सपदि शीघ्रमेव स्वाङ्गभग्डाया निजशरीनाशाय (दूरतोऽपि स्थितस्य त्यक्तन्मार्गमस्यापि भवतो लंघनस्य स्वाग्डभग्ड़ातिरिक्तस्य फलस्याभसववदित्यर्थः) लङ्घयेयुः अतिक्रमेयुः (सम्भावनायामत्र लिङ्लकारः) तान् शरभान् तुमुलानां करकाणां वृष्टिः तस्याः पातेन एवकीर्णान् अवकीर्णान्– तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् संकुलवर्षोपलवृष्टिपातविक्षिप्तान् (वर्षोत्पलस्तु करका इत्यमरः – करकेति शब्दस्य पुल्लिंग चापि पाठः ''करकस्तु करङ्के स्यादाक्रोशे च कमण्डलौ, पक्षिभदे करे चापि करका च घनोपले –इति विश्वप्रकाशवचनात् वर्षोपलस्तु कारका करकोऽपि च दृश्यते'', अतः करकाणाम् आसमन्तात् वृष्टिरिति विग्रहोऽपि सम्भवति।) कुर्वीथाः कुरुष्वेत्यर्थः अत्र विध्यर्थे लिङ्, क्षुद्रोऽपि अधिक्षेप्ता सद्य एवं प्रति क्षेप्तव्यो भवतीति भावः तथाहि आरभ्यन्ते इति आरम्भाः तेषु यत्नः सः निष्फलः यषाम्–निष्फलारम्भयत्ना निरर्थककर्मोद्योगाः के वा जनाः परिभवपदम् तिरस्करपात्रम् न स्युः न भवेयुः।

संस्कृत सरलार्थ – यक्षः कथयति – हे जलद ! यदि तत्र हिमलाये शरभोत्पतनमार्ग हित्वा दूरतो गामिनमपि त्वां लिड्.धितुं शरभाः प्रयत्नं कुर्यः तर्हि तान् संकुल करकावृष्ट्या विक्षिप्तान कुरुष्व, सर्व। एवं निरर्थककार्योद्योगिनः परिभवमवाप्नुवन्ति।

समासादि – संरम्भण उत्पतनम् रभसः येषान्ते–संरम्भोत्पतनरभसाः, मुक्तः अध्वा येन तम्– मुक्ताध्वानम् , स्वानि च तानि अंगानि तेषां भङ्गः तस्मै– स्वांगभगाय, तुमुलाश्च याः करकाः तासाम् वृष्टिः अथवा तुमुलाश्च ये करकाः तेषाम् आ–समन्तात् वृष्टिः तस्या पातः तेन अवकीर्णाः तान्– तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्, निष्फलाश्च ये आरम्भा (आरभ्यन्त इत्यारम्भा कार्याणि) निष्फलारम्भाः तेषु यत्नः येषान्ते –निष्फलारम्भयत्नाः, परिभवस्य पदम् परिभ्वपदम्।

व्याकरणादि – संरम्भ = सम्र+रभ+घञ् (अ) उत्पतन–उत्+पत्+ल्युट, लङ्घयेयुः – लघि धातु विधिलिंग प्र. पु. बहुवचन, पात –पत्+घञ् (अ) अवकीर्ण–अव+ कृ विक्षेपे+क्त, इरः दीर्घ, त को न, कुर्वीथाः–कृ धातु विधि लिङ् आत्मने पदे म. पु. एकवचन, के परिभवपदं स्युः – यहाँ पद शब्द के नियतलिंगवाची होने के कारण तथा जाति म प्रयुक्त होने के कारण एक वचन नपुंसकलिंग है । यद्यपि इसका उद्देश्य पद पुल्लिग बहुवचन है , '' गुणाः पूजास्थानम् भवन्ति, वेदाः प्रमाणम् ' की तरह यहाँ भो 'पदम्' का प्रयोग है । परिभव–परि+भ्+अप् (अ)। मुक्त –मुच् +क्त , वृष्टि –वृष्+क्तिन् , स्युः – अस् विधिलि.प्र.पु. बहु. यत्न–यती प्रयत्ने यत् +नङ. प्रत्यय।

टिप्पणी – शरभ शब्द के विद्वानों ने कई अर्थ किये है यद्यपि ये इनकी कल्पना पा आधृत है। मल्लिनाथ ने इसका अर्थ ''अष्टापद मृगविशेष ' किया है –देखिये मेघदूत –डॉ. सुधीर कुमार गुप्त–सम्पादित ।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि तुम वहाँ हिमालय की शिला पर व्यक्त शिव चरण –चिह्नों की प्रदक्षिणा करना –

''तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः,
शश्वत्सिद्धैरुपचितवलिं भक्तिनम्रः परीयाः।
यस्मिन् दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
संकल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः।।58

अन्वय – तत्र दृषदि 'व्यक्तम् शश्वत् सिद्धैः उपचितवलिम् अर्धेन्दुमौलेः चरणन्यासम् भक्तिनम्रः परीयाः, यस्मिन् दृष्टे उद्धूतपापाः श्रद्दधानाः करणविगमात्ऊर्ध्वम् स्थिरगणपदप्राप्तये संकल्पन्ते।

शब्दार्थ – तत्र = हिमालय पर्वत पर, दृषदि = शिला पर, व्यक्तम् = प्रकट, शश्वत् = निरन्तर, सिद्धैः = योगियों द्वारा, उपचितवलिम् = वलि (पूजा) प्राप्त करने वाले, अर्धेन्दुमौलेः = मस्तक पर अर्धचन्द्र को धारण करने वाले अर्थात् शिवजी के, चरणन्यासम् = चरणों के

चिह्न को, भक्तिनम्रः = भक्ति से अवनत होकर, परीयाः = प्रदक्षिणा करना, यस्मिन् दृष्टे = जिसके दर्शन करने पर, उद्धूतपापाः = नष्ट हुए पापों वाले, श्रद्दधानाः = श्रद्धालु जन, करणविगम्तात् = शरीरत्याग के, ऊर्ध्वम = उपरान्त, स्थिरगणपदप्राप्तये = गणों के शाश्वत पद की प्राप्ति के लिए, संकल्पन्ते = समर्थ होते हैं ।

अनुवाद – वहाँ हिमालय पर, शिला पर प्रकट, निरन्तर योगियों द्वारा पूजा प्राप्त करने वाले, अर्धचन्द्रधारी शिवजी के चरण चिह्न की, भक्ति से अवनत होकर प्रदशिक्षणा करना, जिसके दर्शन करने पर, नष्ट हुए पापों वाले श्रद्धालु जन शरीर त्याग के उपरान्त गणों के शाश्वत पद की प्राप्ति के लिए समर्थ होते है।

संस्कृत व्याख्या – तत्र हिमालये दृषदि (कस्यांञ्चित्) शिलायाम् व्यक्तम् प्रकटम्, शाश्वत निरन्तरम् सिद्धैः योगिभिः (सिद्धि र्निष्पत्तियोगयोः कोशः) उपचितवलिम् रचितपूजाविधिम् (वलिः पूजापहारयोः– कोशः) अर्धश्चासै इन्दुः अर्धेन्द्रुः स मौलो यस्य–अर्धेन्दुमोलेः चन्द्रार्धधारिणः शिवस्य चरणन्यासम् पादविन्यासम् भक्तिनम्रः पूज्यानुरागावनतः सन् परीयाः प्रदक्षिणां कुरु, यस्मिन् चरणन्यासे दृष्टे विगमः तस्मात्– करणविगमात् शरीरत्यागात् ऊर्ध्वम् अनन्तरम् (करणं साधकतम् क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि–इत्यमरः) स्थिरं गणानां पदस्य प्राप्तिः तस्यै–स्थिरगणपदप्राप्तये शाश्वतप्रमथादिगणपदोपलब्धये (गणाः प्रमथसंख्यौघाः–कोशः) संकल्पन्ते–समर्थः भवन्ति।

संस्कृत सरलार्थ – यक्ष कथयति–जलद! हिमाद्रौ शिलोपरिप्रकटं योगिरचितपूजाविधिम् शिवस्य चरणन्यासं भक्तिभावनया प्रदक्षिणीकुरुष्व, यस्यात्लोकनान्निर्धूतकल्मषा विश्वस्ता जनाः शरीरत्यागादन्तरं शाश्वतं गणपदमवाप्नुवन्ति।

समासादि – उपचितः वलिर्यस्य तम्–उपचितवलिम्, अर्धश्चासौ इन्दुः अर्धेन्दुः स मौलौ यस्य तस्य–अर्धेन्दुमौलेः चरणयोः न्यासस्तम्–चरणन्यासम्, भक्त्या नम्रः भक्तिनम्रः, उद्धूतानि पापानि येषान्ते उ)तपापाः, करणस्व विगमः तस्मात् करणविगमात्, स्थिरम् यत् गणानां पदम् तस्य प्राप्तिस्तस्यै–स्थिरगणपदप्राप्यते।

व्याकरण – परीयाः–परि+इण् गतौ धातु से विधिलिंग म. पु. एकवचन, श्रद्दधानाः ''श्रन्दरोरुपसर्गवद्वृद्धिक्तव्या '' इति ऋत् पूर्वात् धा धातोः शानच् धातोः द्वित्वादिकार्यम् प्रथमा बहुवचन्, संकल्पन्ते– सम्+क्लृप् (कल्प) धातु से लट् प्र. बहु. यहाँ 'संकल्पन्ते' के योग में नमः स्वस्ति–सूत्र द्वारा 'स्थिरगणपदप्राप्तये' में चतुर्थी विभक्ति है, क्योंकि क्लृप का अर्थ पर्याप्त वाचक अलम् अर्थ है अर्थात् यहाँ संकल्पन्ते' का अर्थ समर्थ होना है अतएवं अलम् अर्थवाचक होने से यहाँ इसके योग में चतुर्थी विभक्ति हैं। भाष्यकार ने 'अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्' कहाँ है। भक्ति –भज्+क्तिन्, करणम् क्रियतेऽनेनेति–कृ ल्युट, विगमः –वि+गम् +अथ , प्राप्तिः प्र+आप् –क्तिन्, उद्धूत –उत्+धू+क्त।

टिप्पणी – हिमालय की किसी शिला पर भगवान् शिव के चरण चिह्न विद्यमान हैं जो कि श्रद्धालुजनों को सिद्धिदायक हैं। प्रमथादि शिवजी के गण अर्थात् नित्य अमर सेवक हैं। चरणन्यास के दर्शन के इसी गण पद की प्राप्ति होती है अर्थात् अमर या मुक्तिपद प्राप्त होता हैं।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि वहाँ तुम्हारा गर्जन शिव संगीत का पूरक बन जायेगा –

''शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमार्णाः,
संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ।
निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत् कन्दरेषु ध्वनिः स्यात् ,
संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ''।। 59

अन्वय – अनिलैः पूर्यमाणाः कीचकाः मधुरम् शब्दायन्ते, संरक्तभिः किन्नरीभिः त्रिपुरविजयः गीयते, कन्देरषु ते निर्ह्रादः चेत् मुरजे ध्वनिः इव स्यात् तत्र पशुपतेः संगीतार्थ ननु समग्रः भावी।

शब्दार्थ – अनिलैः = हवाओं से, पूर्यमाणाः = भरे जाते हुए, कीचकाः = कीचक नामक विशेष प्रकार के बाँस (कीचक के बाँस कहे जाते हैं जो वायु से भरकर बजते है) मधुरम् = मधुरतापूर्वक, शब्दायन्ते = शब्द करते है। संरक्ताभिः = अनुरक्तः, किन्नरीभिः = किन्नरियों के द्वारा (किन्नर देवताओं का ही एक भद है, किन्नरों की स्त्रियाँ किन्नरी कही जाती हैं, किन्नर और गन्धर्व संगीत में विशेष निपुण माने जाते हैं, त्रिपुरविजयः = त्रिपुर पर शिव विजय का वृत्तान्त, गीयते = गाया जाता है, कन्दरेषु = कन्दराओं में, ते = तुम्हारा, निर्ह्रादः = गर्जन, चेत = यदि, मुरजे ध्वनिः इव स्यात् = नगाड़े पर ध्वनि के समान हो, (तो) तत्र = वहाँ (चरणन्यास के पास), पशुपतेः = शिवजी का, संगीतार्थः = संगीत सामग्री, ननु = निश्चयत, समग्र = पूरी, भावी = हो जायेगी ।

अनुवाद – हवाओं से पूरित होते हुए कीचक मधुर शब्द करते है, (और) अनुरक्त हुई किन्नरियों के द्वारा त्रिपुर पर शिव–विजय का वृत्तान्त गाया जाता हैं, (ऐसे)अवसर पर कन्दराओं में तुम्हारा गर्जन यदि नगाड़े पर ध्वनि से समान हो जाये (तो) वहाँ चरणन्यास के समीप, शिवजी की संगीत सामग्री निश्चयतः पूरी हो जायेगी।

विशेष – यहाँ 'मुरज इव' में उपमालंकार हैं।

संस्कृत व्याख्या – अनिलैः वायुभिः पूर्यमाणाः पूरिताः क्रियमाणाः कीचकाः वेणविशेषाः (वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्यनिलोद्धताः –कोशः, कीचको दैत्य–भदे स्याच्छुष्कवंशे द्रुमान्तरे–इत्यानि) मधुरम् श्रुतिमूर्ख यथास्यातथा शब्दायन्ते शब्द कुर्वन्ति स्वनन्तीत्यर्थः, अनेन संगीते वेणुपाद्यवादनमुक्तम्) संरक्तभिः अनुरक्तभिः सरक्तकण्ठीभिरित्याषयः किन्नरस्त्रीभिः त्रिपुरविजयः त्रिपुरस्य विजयगानं गीयते, कन्दरेषु दरीयु (दरी तु कन्दरो वास्ते इत्यमरः) ते तव मेंघस्य निर्ह्राद निर्घोषा मुरजे वाद्यविशेष ध्वनिः शब्द इव मुरजध्वनि–रिवेत्यर्थः स्यात् भवेत् चेत् यदि (तर्हि) तत्र चरणन्यास समीपे पशुपतेः शिवस्य, संगीतम् (सम्यग्गीतम् तदेवार्थः संगीतार्थः संगीतसामग्री ननु निश्चितरूपेण भावी भविष्यति।)

संस्कृत सरलार्थ– यक्ष कथयति – हे जलद! तत्र वायुभिरापूर्यमाणाः कीचका मधुरं स्वनन्ति, अनुरक्ताः किन्नरस्त्रिश्च त्रिपुरविजयस्य गानं कुर्वन्ति, तत्र कन्दरेषु प्रतिध्वनिस्ते विर्घोषों यदि मुरजध्वनिदिव स्यात्तर्हि शिवसंगीतार्थः परिपूर्णो भविष्यति।

समास विग्रहादि – त्रयाणां पुराणां समाहारः त्रिपुरम् तस्य विजयः –त्रिपुरविजयः, संगीतस्य अर्थः संगीतार्थः। अग्रेण सहितः समग्रं।

व्याकरणादि – पूर्यमाणाः –पृ+कमवाच्ये शानच् यक् , मुक् प्र. बहु. शब्दायन्ते –शब्दवैरेत्यादिना करणे क्यङ् लट् प्र.पु. बहुवचन , संरक्तभिः – सम्+रञ्ज +क्त (त) टाप् (आ) तृ. बहुवचन , गीयते –गै (गा) भाव कम. आत्मने पद यक् लट् प्र. पु. एकवचन , भावी–भ् धातु से णिनि प्रत्यय, ऊकार को वृद्धि आवादेश, अत्र ' भविष्यति गम्मादयः इति भविष्यदर्थे णिनिः । त्रिपुरम् – अत्र 'भविष्यति गम्मादयः इति भविष्यदर्थे णिनिः । त्रिपुरम् – अत्र ' तद्धितार्थोत्तर पद–इति द्विगु समासः।

टिप्पणी – संरक्ताभिः के स्थान पर 'संसक्ताभिः भो पाठान्तर है इसका अर्थ है मिलकर गाने वाली यही पाठ यहाँ पर अधिक उचित है। त्रिपुर –पुराणानुसार त्रिपुर एक राक्षस का नाम था, और ये आकाश अन्तरिक्ष और पृथिवी पर राक्षसों के लिये मयासुर द्वारा निर्मित तीन नगर भो थे।

सन्दर्भ –

प्रस्तुत पद्य महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

प्रसंग – यक्ष कहता है कि इसके बाद कैलास पर्वत पर पहुँचना –

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः,
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खम्,
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः।। 61

अन्वय – ऊर्ध्व च गत्वा दशमुख भजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः त्रिदशवनितादर्पणस्य कैलाशस्य अतिथिः स्याः, यः कुमुदविशदैः श्रृंग्ङोच्छ्रायैः खम् वितत्य प्रतिदिनम् राशिभ्तः त्र्यम्वकस्य अट्टहासः इव स्थितः।

शब्दार्थ – ऊर्ध्व च गत्वा = और ऊपर को णकार अर्थात् क्रौञ्चविल से निकलने के बाद ऊपर की ओर जाकर, दशमुखभजोच्छ्वासितप्रस्तथसन्धेः।

अनुवाद – ऊपर को जाकर, रावण की भजाओं द्वारा ढ़ीले किये गये शिखरों के जोडोले देवों की स्त्रियों के दर्पण रूप कैलास पर्वत के अतिथि होना, जो कि पर्वत (अपने) कुमुदों के समान श्वेत शिखरों की ऊँचाइयों से आकाश को व्याप्त कर (इस प्रकार) स्थित है कि मानो वह प्रतिदिन एकत्रित हुआ शिवजी का अट्टहास हो।

विशेष– काव्य में हास्य का रगं श्वेत माना जाता है। श्वेत ऊँचे फैले हुए पर्वतोय शिखर ऐसे प्रतीत होते है कि मानो वे शिवजी के अट्टहास हो। इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है, 'कुमुदविशदैः ' में उपमालंकार है, इन दोनों अलंकारों का परस्पर उग्डाग्ड्ीभाव होने से संकर है।

संस्कृत व्याख्या – ऊर्ध्व–उपरि च गत्वा, दशमुखस्य भजैः उच्छ्वासिताः प्रस्थानां सन्धयः यस्य तस्य– दशमुखभजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः रावणबाहुविश्लेषितशिखर–सन्धेः, त्रिदशांना वनिताः तांसा दर्पणस्य– त्रिदशवनितादर्पणस्य देवाग्डनादर्पणभ्तस्य (हिमाद्रेः स्फटिकमयत्वाद् विम्वग्राहित्वेनेयमुक्तिः) कैलासस्य शिवनिवा स्थानभ्तस्य एतन्नमकस्य पर्वतस्य अतिथिः स्याः भवेः , यः कैलासः कुमुदानीव विशदैः कुमुदविशदैः कुमुदपुष्पधवलैः श्रृङ्गानामुच्छायैः श्रृंगोच्छायैः शिखरोन्नत्वैः खम् आकाशम् वितत्य व्याप्त, प्रतिदिनम् दिने दिने राशीभ्तः पुञ्जीभ्तः त्र्यम्वकस्य त्रिलोचनस्य शिवस्य अट्टहासः अतिहास इव स्थितः सुशोभमानः अस्ति।

संस्कृत सरलार्थ– यक्षः कथयति – हे जलद! क्रौञ्चविलान्निसृत्य त्वं रावण–भजविघटितसानुसन्धेः सुरवधूदर्पणरूपिणः कैलासपर्वतस्यातिथिभव, यः स्वकीयैरून्नत–विशदशिखरैः पुञ्जीभ्तः शिवाट्टहास इव वर्तते ।

समासविग्रहादि – दश मुखानि यस्य स दशमुखस्तस्य भजैः उच्छ्वासिताः प्रस्थांना सन्धयः यस्य तस्य – दशमुखभजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः, तिस्त्रः दशा येषान्ते त्रिदशाः तेषां वनिताः तासाम् दर्पणस्य – त्रिदशवनितादर्पणस्य, कुमुदानि इव विशदाः कैः – कुमुदविशदैः (उपमित तत्पु0) अरशिः राशिः भ्त इति राशीभ्तः गति – (तत्पुरूष) त्रीणि अम्बकानि यस्य तस्य –त्र्यम्वकस्य, अट्टश्चासौ हासः – अट्टहासः, न विद्यते तिथीः यस्य स अतिथीः, दिने दिने इति प्रतिदिनम् (अव्ययीभाव)।

व्याकरण–उच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः – उत् +श्वस् +णि्च् श्वासि क्त, इट्, इकार लोप् वः एक प0, सन्धेः – सम् + धा + कि. आकार लोप, षष्ठ्येकव0 स्याः–अस् + विधिलिंग म0 पु0 एक व0, वितत्व– वि + तन् + क्त्वा+ ल्यप् , स्थितः– स्था + क्त अकार को इकार, राशी भ्तः राशि + च्वि, दीर्घ भ् + क्त,

टिप्पणी– उच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः – पुराणों तथा रामायण के अनुसार यह माना जाता है कि किसी समय रावण ने कैलास पर्वत का जड़ से ही उखाड़ लिया था जिससे इसकी हिमाच्छादित ऊँची फैली चोटियाँ विघटित हो गई थी। इस समय सभो जीवों एवं पार्वतीजी को भयभोत देखकर शिवजी ने अपने अँगुठे से इसे दबाकर स्थिर कर दिया था और रावण की स्तुति से प्रसन्न होकर इसे छोड़ दिया था।

6.3 पारिभाषिक शब्दावली

स्नान – यह लाक्षणिक प्रयोग है स्नान की स्नानीय द्रव्य में लक्षणा है और यहाँ करण में ल्युट है। तिक्तैः – इसका अर्थ यहाँ कटु न होकर सुगन्ध है ' कटुतिक्तकषायास्तु सौरभे च प्रकीर्तिताः – कोश ।

विद्युत्कलत्र – बिजली को मेघ का कलत्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह इसकी चिरसहचरी होती है ।

पुष्पमेघ– मेघइन्द्र का स्वेच्छानुकुल शरीर धारण करने वाला सेवक है, काम–रूपं मघोनः अतएवं इसमें अपने को पुष्प रूप में परिणत करने की भी क्षमता है।

ज्योतिर्लेखा – चमकती हुई प्रकाश रेखायें, मयुर पुच्छ के अग्रभाग पर रंग – बिरंगी चमकीली रेखायें होती हैं और यह गोल भी होती है।

गवालम्भ – का प्रचलित अर्थ तो गोवध ही है पर वस्तुतः गवालम्भ नामक यज्ञ में गोवध नहीं किया जाता था, अतः यहाँ इसका तात्पर्य यज्ञ में छोड़े गये संकल्प जलों से है।

हाला – यह प्राकृत शब्द है पर 'अभियुक्त' देशभाषापदम्' के अनुसार संस्कृत साहित्य में भी यह प्रयुक्त होने लगा है ''सुरा हलिप्रिया हाला'' प्रेमभाव के कारण देख बलराम जी को देती थी अतएवं वह उनके नेत्रों से प्रतिबिम्बित हो जाती थी।

किन्नर – देवताओं का ही एक भेद है, किन्नरों की स्त्रियाँ किन्नरी कही जाती हैं, किन्नर और गन्धर्व संगीत में विशेष निपुण माने जाते हैं,

6.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भर्तुः .....मरुद्भिः
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
2. पश्चादुच्चै.....भक्तिर्भवान्या ।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
3. तां.....पेतार्थकृत्या ।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
4. तत्र स्कन्दं .....ता) तेजः
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
5. ज्योतिर्लेखा.....नतयेथाः ।।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
6. आराध्यैनं.....कीर्तिम्
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
7. हित्वा.....कृष्णः ।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
8. तं चेद् वायौ.....ह्यतामानाम् ।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
9. ये संरम्भोत्पतनभसाः .....आरम्भयत्ना : ।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।
10. तत्र व्यक्तं.....श्रद्दधानाः
    प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ।

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 6.2 का श्लोक संख्या 1 देखें ।
2. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 6.2 का श्लोक संख्या 2 देखें ।
3. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 6.2 का श्लोक संख्या 3 देखें ।
4. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 6.2 का श्लोक संख्या 4 देखें ।
5. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 6.2 का श्लोक संख्या 5 देखें ।
6. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 6.2 का श्लोक संख्या 6 देखें ।
7. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 6.2 का श्लोक सख्या 7 देखें ।
8. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 6.2 का श्लोक संख्या 8 देखें ।
9. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 6.2 का श्लोक संख्या 9 देखें ।
10. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 6.2 का श्लोक संख्या 10 देखें ।

6.5 सारांश

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने महाकवि कालिदास के ग्रन्थ मेघदूत के प्रमुख श्लोकों की विस्तृत व्याख्या का अध्ययन किया है । इन श्लोकों की व्याख्या द्वारा यह तथ्य भी उद्घाति हुआ है कि ये श्लोक किस प्रकार मानव ह्रदय की सूक्ष्मतम भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते है।

इन श्लोकों के कला पक्ष और भाव पक्ष को भी व्याख्यायित किया गया है जिससे तत्सम्बन्धि ज्ञान भी आपको प्राप्त हुआ है साथ ही इन श्लोकों द्वारा ऐसे तथ्य भी ध्वनित हुए है जिनसे पता चलता है कि क्यों वास्तव में महाकवि कालिदास और इनका यह छोटा सा खण्डकाव्य (श्लोकों की संख्या मात्र के आधार पर) विश्व साहित्य जगत् और अखिल विद्वत् समाज में अमर पद को प्राप्त कर गए है ।

6.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मेघदूत– विजेन्द्र कुमार शर्मा, साहित्य भण्डार मेरठ,चतुर्थ संस्करण,1996.
2. डॉ. एस के डे (सम्पादक) मेघदूत साहित्य अकादमी, न्यू देहली,1986.
3. वाचस्पति गेरोला (सम्पादक) संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी,1960.
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी – मेघदूत एक पुरानी कहानी (प्रथम संस्करण),राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली,1980.

इकाई – 7

मेघदूत के उत्तरमेघ के प्रमुख अंशों का सप्रसंग अनुवाद एवं सटिप्पण वैशिष्ट्य (श्लोक संख्या 1 से 30 तक)

इकाई की रूपरेखा –

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 प्रमुख श्लोक ससन्दभ व्याख्या

7.3 पारिभाषिक शब्दावली

7.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.5 सारांश

7.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे कि महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्वप्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत के उत्तरमेघ में संख्या 1 से 30 के श्लोकों में कौन–कौन से प्रमुख श्लोक हैं। इन श्लोकों की इस इकाई में ससंदभ व्याख्या की गई है। श्लोकों में आए हुए कठिन शब्दार्थों को भो यथास्थान स्पष्ट कर दिया गया है। व्याकरणात्मक टिप्पणियों व अन्य विशेषताओं का भो यथास्थान वर्णन किया गया है।

7.1 प्रस्तावना

मेघदूत महाकवि कालिदास द्वारा रचित प्रसिद्ध गीतिकाव्य है। मेघदूत 'मन्दाक्रान्ता' छन्द में लिखा हुआ है। इसमें कुबेर के शाप से प्रिया वियुक्त यक्ष के व्यथित हृदय की कथा है। यह हृदय को द्रवित कर देने वाली ''विप्रलम्भ शृंगार'' की अद्वितीय करुण गीतिका है।

कालिदास के इस काव्य का कोई पौराणिक तथा ऐतिहासिक आधार नहीं है। यह काव्य नितान्त कल्पना प्रसूत हैं किन्तु इसी काव्य को दूतकाव्यों की परम्परा को चलाने का श्रेय दिया जाता है। मेघदूत के टीकाकरों में मल्लिनाथ ही सुप्रसिद्ध हैं।

प्रस्तुत इकाई में महाकवि के मेघदूत में उत्तरमेघ के प्रमुख श्लोकों की व्याख्या प्रस्तुत की गई तथा सभो सूक्तियों का विस्तार किया गया है। प्रत्येक श्लोक को व्यकरणात्मक रचना के साथ शब्दार्थ तथा भावना के स्तर पर समझाया गया है।

7.2 प्रमुख श्लोक ससंदर्भ व्याख्या

(1) **प्रसंग**– विरह–व्याकुल यक्ष ने संदेशवाहक मेघ को अलका तक का मार्ग बताया। अब वह अलका के वैभव–विलास संपन्न भवनों का वर्णन प्रस्तुत कर रहा है। इस श्लोक में अलका का सा॥द्मय मेघ से वर्णित है– □

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निधगम्भीरघोषम्।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रसादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः॥

अन्वय- यत्र ललितवनिताः सचित्राः संगीताय प्रहतमुरजाः मणिमयभुवः अभ्रंलिहाग्राः प्रसादाः विद्युत्वन्तं सेन्द्रचापं स्निग्धगम्भीरघोषं अंतस्तोयं तुङ्गं त्वां तैः तैः विशेषैः तुलयितुं अलं (सन्ति)

शब्दार्थ- (हे मेघ) यत्र- जहां (अलकापुरी में), ललितवनिताः- सुंदर स्त्रियों से युक्त, सचित्राः - विभिन्न चित्रों से युक्त, संगीताय-संगीत के लिए, प्रहतमुरजाः बजाये गये मृदंगों वाले, मणियमभुवः - मणिजटित फर्श वाले, अभ्रंलिहाग्राः -गगनचुम्बी शिखरों वाले, प्रसादाः -महल, विद्युत्वन्तं -बिजली धारण करने वाले, सेन्द्रचापं- इंद्र धनुष से युक्त, स्निग्धगम्भीर घाषम्- मधुर एवं गम्भीर गर्जना वाले, अंतस्तोयं- अपने अंदर जल को धारण करने वाले, तुङ्गं- ऊँचे, त्वाम्-तुमसे, तैःतैः- उन उन, विशेषैः विशेष गुणों से, तुलयितुं- समानता करने में, अलम्- समर्थ है)

अनुवाद- हे मेघ जिस अलकानगरी में विलासपूर्ण हाव भावों से युक्त सुंदर स्त्रियों वाले विभिन्न चित्रों से चित्रित, संगीत के लिए बजाये गये मृदंगों वाले, मणिमण्डित फर्शों वाले, गगनचुम्बी शिखरों एवं महल, बिजली को धारण करने वाले, इंद्रधनुष से युक्त, कर्णप्रिय एवं गम्भीर ध्वनि वाले, अपने भीतर जल को धारण करने वाले तथा ऊँचे तुम्हारे साथ उन-उन गुणों को कारण (बराबरी) समता करने में समर्थ हैं।

अलंकार- छन्द योजना - प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है। लक्षण है- ''मन्दाक्रान्तारम्बुधि रसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।'' उपमानोपमेय में क्रिया, गुण की समानता होने के कारण उपमालंकार है। लक्षण है- 'साधर्म्यमुपमाभेदे'

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

विद्युद्वन्तम्-विद्युत्+मतुप् , तम्।

विद्युत् - वि +द्युत+ क्विप् ।

प्रहत - प्र+हन् +क्त

तुलयितुम -तुल्+णिच्+तुमुन् ।

समासः-

ललितवनिताः- ललिता वनिताः येषु ते(बहुव्रीहि समास)

सेन्द्रचापम्ः- इन्द्रस्य चापम्ः (ष. त.)

प्रहतरमुरजाः -प्रहताः मुरजा : येषु ते (बहुव्रीहि समास)

कोष - आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम् (अमरकोषः)। मुरजा तु मृदङ्गे स्यात् ढक्कामुरजयोरपि (शब्दार्णवः)। प्रासादो देवभूभूजाम् (अमरकोशः) अलंभूषणपर्याप्ति-शक्तिवरणवाचकम् (अमरकोषः)।

विशेष टिप्पणी - प्रस्तुत श्लोक में मेघ की अलका के साथ तुलना की गई हैं। मेघ में सतरंगी इन्द्रधनुष है तो अलकानगरी में भी महल सतरंगी चित्रों से चित्रित है। अलका नगरी में नृत्य, संगीत, वाद्य के स्वर शब्दायमान होते है तो मेघ भी मधुर तथा गम्भीर आवाज से शोभायमान होता है। इसी

प्रकार स्त्रियों के हस्त,पाद, भू कटाक्षादि की चंचलता की समानता बिजली की चंचलता के साथ ही की गई है।

(2) प्रसंग- यक्ष मेघ से अलका नगरी की स्त्रियों के सौन्दर्य का वर्णन करता है-

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्रं नीपं वधूनाम्॥

शब्दार्थ- यत्र- जिस अलकानगरी में, वधूनाम-अंगनाओं के, हस्ते- हाथ में, लीलाकमलम्- खेलने के लिए कमल, अलके- केशों में, बालकुन्दानुविद्धं- नवीन कुन्द पुष्पो से गुम्फित, आनने- मुख पर, लोध्रप्रसवरजसा- लोध्र पुष्पों के रज से, पाण्डुतां- श्वेतता को, नीता- प्राप्त, श्रीः शोभा, चूडापाशे- केशों के जूडे में, नवकुरबकं-नये कुरबक पुष्पों को, कर्णे- कानों में, चारु- रमणीय, शिरीष- शिरीष पुष्प, सीमन्ते- सिर के केशों के मध्य भाग में (मांग में), त्वदुपगमजंनीपम्- मेघों के आगमन पर उत्पन्न, कदम्ब-पुष्प, अस्ति- विद्यमान है।

अनुवाद- हे मेघ। जिस अलकानगरी में अंगनाओं के हाथ में खेलने के लिए कमल, केशों में नवीन कुन्द-पुष्पों का गुच्छा, मुख पर लोध्र पुष्पों के रज से श्वेतता को प्राप्त शोभा, केशों के जूडे में नये कुरबक पुष्प, कानों में शिरीष पुष्प तथा मांग के मेघां के आगमन से उत्पन्न कदम्ब पुष्प विद्यमान रहता है।

अलंकार-छन्द योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छंद है-

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

नीता- नी+क्त+टाप्।

प्रसवः- प्रसूयते इति- प्र+सू+ अप्, धातु के ऊ को गुण , अव्-प्रसवः

पाण्डुताम्- पाण्डु+तल्+टाप्, द्वि.एक.

समास-

लीलाकमलम् - लीलायै इदम् कमलम्(च.त.)

बालकुन्दानुविद्धम् - बालाः कुन्दाः बाल कुन्दाः (कर्मधारय)

चूडापाशे - चूडानां पाशः तस्मिन् (ष.त.)

नवकुरबकं - नवं च तद् कुरबकं (कर्मधारय)

सीमन्ते - सीम्नः अन्तः सीमन्तः (ष.त.)

त्वदुपगमजम् - तव उपगमः त्वदुपगमः (ष.त.)

कोषः- प्रसवस्तु फले पुष्पे वृक्षाणां गर्भमोचने (विश्वः)। सीमन्त स्त्रियाँ मस्तमकेशवीथ्यामुदाहृतम् (शब्दार्णवः)। परागः सुमनोरजः (अमरकोशः) स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणी:- प्रस्तुत श्लोक में छह ऋतुओं में उत्पन्न पुष्पों का वर्णन किया गया है। कमल के द्वारा शरद ऋतु का, कुन्द के द्वारा हेमंत ऋतु का, लोध्र द्वारा शिशिर ऋतु का, कुरबक द्वारा बसंत ऋतु का, शिरीष द्वारा ग्रीष्म ऋतु का तथा कदम्ब द्वारा वर्षा ऋतु का दृष्टांत प्राप्त होता है। ये छह ऋतुएं अलकानगरी में सदा विद्यमान रहती हैं।

(3) प्रसंग- यक्ष मेघ को अलका नगरी के सौन्दर्य के विषय में बता रहा है-

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपाः नित्युपष्पाः।
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः॥
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापाः।
नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः॥

अन्वय- यत्र पादपाः नित्यपुष्पाः (अतएव) उन्मत्तभ्रमरमुखराः नलिन्यः नित्यद्धाः (अतएव) हंसश्रेणीरचितरशनाः, भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापाः, (अतएव) केकोत्कण्ठा, प्रदोषाः नित्यज्योत्स्ना (अतएव) प्रतिहततमावृत्तिरम्याः॥

शब्दार्थ- यत्र- जहाँ, पादपाः -पेड़, नित्यपुष्पाः-सर्वदा फूलों सहित (अतएव) उन्मतभ्रमरमुखराः- मदमय भंवरों से गुंजित, नलिन्यः कमल-नाल, नित्यपद्मा- हमेशा कमलयुक्त (अतएव) हंसश्रेणीरचितरशनाः- हंसों की कतारों से निर्मित करधनी वाली, भवनशिखिनो- गृह के मोर, नित्यभस्त्कलापाः- सदा चमत्कृत पंखो वाले, (अतएव) केकोत्कण्ठाः- कहने के लिए गर्दन को उठाये रखने वाले, प्रदोषाः- रात्रियाँ अंधकार के नित्य ज्योत्स्ना- सदा प्रकाशमयी, प्रतिहृततमोवृत्तिरम्याः सुंदर दिखाई देती है। (भवन्ति-होत है)

अनुवाद- जहाँ अलकानगरी में तरु सर्वदा कुसुममय एवं मदमस्त भौंरों से गुंजित (है), कमल-नाल हमेशा कमलयुक्त तथा हंसों की कतारों से निर्मित करधनी वाले (है)गृहों के मयूर पंखों वाले (और) शब्द करने के लिए गर्दन को ऊपर उठाये रखने वाले है। निशा सदा प्रकाशमयी उज्ज्वल तथा अंधकार दूर होने के कारण सुंदर होती हैं। अर्थात् अलका नगरी में सदा पेड़ों पर फूल, भवनों पर मोर सदा चमत्कृत पंखों से युक्त होते हैं। अलकानगरी सदा चांद की चांदनी से प्रकाश से युक्त होती है।

समास-

उन्मत्तभ्रमर मुखराः- उन्मत्ताश्च ते भ्रमराः उन्मत्त भ्रमराः (कर्मधारयः)

नित्य पुष्पाः- नित्यानि पुष्पाणि येषां ते (बहुव्रीह)

हंसश्रेणीः- हंसानां श्रेष्यः (ष.त.)

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मंदाक्रान्ता छंद है तथा 'श्रेणीरचितरशनाः' इस पद में हंस श्रेणी में नायिका भाव होने पर एकदेश विवर्ती रूपक अलंकार है तथा पादपों के वैशिष्ट्य का वर्णन होने के कारण परिसंख्या अलंकार है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

उन्मत्तः- उद्+मद्+क्तः

पादपाः- पाद+पा+क

रचिताः- रच्+क्त-प्रत्यय, इट् आगम

नलिन्यः- नल+इनि प्रत्यय- नलिन्+ डीप्, प्रथमा बहु.

कोष- वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः (अमरकोषः)। केका वाणी मयूरस्य (अमरकोषः)। प्रदोषों रजनी मुखम् (अमरकोषः)

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में अलका नगरी की शोभा का वर्णन किया गया है। अलकानगरी में सदा वृक्ष फूलों से तथा, रात्रियाँ चांदनी से युक्त होते हैं।

(4) प्रसंग- यक्ष कहता है कि अलका में दुःख का कोई भी कारण विद्यमान नहीं है-

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै,
नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्ट संयोगसाध्यात्।
नाप्यन्यस्मात् प्रणयकलहाद् विप्रयोगोपपत्ति,
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति॥

अन्वय-

यत्र वित्तेशानां आनन्दोत्थं नयन सलिलम्, अन्यैः निमित्तैः न, इष्ट संयोग साध्यात् कुसुमशरजात् अन्यः तापः न, प्रणयकलहात् अन्यस्मात् विप्रयोगोपपत्तिः न, यौवनाद् अन्यत् वयोनास्ति खलु।

शब्दार्थ- यत्र- जहाँ अलका नगरी में, वित्तेशानां- धन के स्वामी (यक्षों) को, आनन्दोत्थं-हर्ष के कारण उत्पन्न, नयन सलिलम्-अश्रु, अन्यैः- अपर, निमित्तैः- कारण (हेतु) से, न - नहीं (अस्ति-है), इष्टसंयोग सांध्यात्- प्रियतम मिलाप से वरित करने वाले, कुसुमशरजात्- कामदेव के शरों (तीरों) से निर्मित, अन्यः अपर, तापः- दुःख, न - नहीं (अस्ति-है), प्रणयकलहात्- प्रियतम से लडाई होने पर, अन्यस्मात्-अन्य हेतु से, विप्रयोगोपपत्तिः- वियोग प्राप्ति, न- नहीं, यौवनाद्- युवावस्था से, अन्यद्- दूसरी, वयो- अवस्था (दशा), नास्ति- नहीं है, खलु- निश्चय ही।

अनुवाद- जहाँ अलकानगरी में धन के स्वामी यक्षों के अश्रु हर्ष के कारण ही उत्पन्न होते हैं, अन्य किसी हेतु से नहीं। प्रियतम के मिलाप से निवृत्त कर देने पर कामदेव के वाणों से निर्मित (वासना रूपी) दुःख के अतिरिक्त अन्य कोई और दुःख नहीं है, प्रियतम से लड़ाई होने के अतिरिक्त अन्य हेतु से वियोग प्राप्त नहीं होता है तथा युवावस्था से अतिरिक्त और कोई अवस्था स्थिति नहीं होती है अर्थात् अलकानगरी में यक्षों को आसू आनन्द के कारण ही आते हैं अन्य और कोई कारण नहीं है। वहाँ प्रियतम से कलह होने पर तथा प्रियतम के मिलाप से दूर कर देने पर ही वियोग प्राप्त होता है अन्य और कोई कारण से नहीं। वहाँ अलकानगरी में कोई अन्य अवस्था न होकर केवल यौवनावस्था ही होती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

उपपत्तिः उप+पद् धातु से क्तिन् प्रत्यय।

समास-

नयनयोसलिलम्- नयनयोः सलिलम् (ष.त.)

कुसुमशरजात्- कुसुमानि एव शरा यस्य स कुसुमशरः कामदेवः (बहुव्रीहि)

इष्टसंयोग साध्यात्- इष्टस्य संयोगः (ष.त.)

प्रणयकलहात्- प्रणयस्य कलहः(ष.त.)

विप्रयोगोपपत्तिः- विप्रयोगस्य उपपत्तिः (ष.त.)

वित्तेशानाम्- वित्तानाम् ईशः (ष.त.) तेषाम्

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मंदाक्रान्ता छंद है तथा आंसू वियोग आदि का वर्णन करके एक का निषेध करने के कारण परिसंख्या अलंकार है।

लक्षण- 'परिसंख्या ध्यैकमन्यस्मिन् वस्तुयन्त्रणम्'

कोष- वित्ताविधपः कुबेरः स्यात् प्रभौ धनिक यक्षयोः (शब्दार्णवः)। निमित्तं हेतुलक्ष्मयोः (अमरकोषः)

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में अलकानगरी के लोगों के दुःख का कारण कामजन्य ही बताया गया है। अन्य कोई और दुःख नहीं है। अर्थात अलकानगरी में सर्वत्र सुख संपन्नता ही व्याप्त है, दुःख का कण भी नहीं है। कामदेव जन्य पीड़ा ही वहां के लोगों के लिए दुःखदायी है, अन्य कोई और पीडा नहीं है। कामदेव के पाँच बाणों के नाम है-

'अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका।
नीलोत्पलं च पञ्चैते पंचबाणस्य सायकाः।'

यक्षों में सदा युवावस्था ही होती है। वे कभी-भी वृद्ध नहीं होते हैं अतः यक्ष देवयोनि विशेष हैं।

(5) प्रसंग-प्रस्तुत श्लोक में यक्ष मेघ से अलका निवासी यक्षों के विलासयुक्त जीवन की झांकी प्रस्तुत करता है कि-

यस्यां यक्षाःसितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छाया कुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः।
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु॥

अन्वय- यस्याम् उत्तमस्त्रीसहायाः यक्षाः सितमणिमयानि ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि हर्म्यस्थलानि एत्य त्वद्गंभीरध्वनिषु पुष्करेषु शनकैः आहतेषु कल्पवृक्षप्रसतूम् रतिफलं मधु आसेवन्ते।

शब्दार्थ- यस्याम्- जिस अलकानगरी में, उत्तमस्त्रीसहायाः- रमणीय स्त्रियों के साथ, यक्षाः- यक्षलोग, सितमणिमयानि- चंद्रमयी मणि अथवा स्फटिकमणि से युक्त, ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि-ग्रह नक्षत्रों के बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूपी कुसुमों से युक्त, हर्म्यस्थलानि- प्रासादों के शिखरों पर, एत्य-जाकर, त्वद्गम्भीर ध्वनिषु- तुम्हारे गम्भीर नाद वाले, पुष्करेषु- पुष्कर नामक वाद्य यंत्रों के, शनकैः- शनैः-शनैः, आहतेषु- बजाये जाने पर, कल्पवृक्ष प्रसूतम्- कल्पवृक्ष जनित, रतिफलं- रतिफल को, मधु- मद्य का, आसेवन्ते- सेवन करते हैं।

अनुवाद- जिस अलका नगरी में रमणीय स्त्रियों के साथ यक्ष लोग चंद्रमयी मणि से युक्त होकर ग्रह नक्षत्रों के प्रतिबिम्ब रूपी कुसुमों से युक्त होने पर, प्रसादों के शिखरों पर जाकर, तुम्हारे गंभीर नाद वाले पुष्कर नामक वाद्य यंत्रों के शनैः-शनैः बजाये जाने पर, कल्पवृक्ष जनित रतिफल नामक मद्यपान का सेवन करते हैं। अर्थात् अलकानगरी में यक्ष लोग अपनी रमणीय स्त्रियों के साथ मिलकर अपने-अपने भवनों के शिखरों पर जाकर मेघों के नाद वाले पुष्कर नामक वाद्य यंत्र को धीरे-धीरे बजाने पर कल्पवृक्ष जनित रतिफल नामक मदिरा का सेवन करते हैं। अलका नगरी मं यक्ष लोग अपनी स्त्रियों के साथ आनन्दपूर्वक मदिरा पान करते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

एत्य- आ उपसर्ग +इण् धातु+ क्त्वा को ल्यप्, तुक् आगम

प्रसूतम्- प्र+षू+क्त

आहतेषु- आ+हन्+क्त, स. बहु.

समास-

सितमणिमयानि- सिताः मणयः (कर्म धारय) तेषां विकाराः

हर्म्यस्थलानि- हर्म्याणां स्थालानि (ष.त.)

ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि- ज्योतिषां छायाः (ष.त.)

उत्तमस्त्रीसहायाः- उत्तमाः स्त्रियः सहायाः येषां ते(बहु.)

कल्पवृक्ष प्रसूतम्- कल्पवृक्षात् प्रसूतम तत् (ष.त.)

त्वद्गम्भीर ध्वनिषु- गम्भीरश्चाऽसौ ध्वनिः (कर्म धारय)

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छंद है तथा 'ज्योतिश्छाया कुसुमरचितानि' पद में कुसुम का छाया (प्रतिबिम्ब) पर आरोप होने के कारण रूपक अलंकार है।

लक्षण है-'तद्रूपकमभेदो यः उपामानोपमेययोः'। 'त्वद्गम्भीर ध्वनिषु' में उपमान वाचक ध्वनि का लोप होने के कारण लुप्तोपमा अलंकार है।

कोष- कुबेररस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड् गुह्यकेश्वरः (अमर कोशः) पुष्करः करिहस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखे जले (अमर कोशः)।

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में अलकानगरी की भव्य शोभा का वर्णन किया गया है। अलकानगरी में प्रसादों के शिखर चंद्रमयी मणि युक्त है। वहाँ पर यक्ष लोग अपनी स्त्रियों के साथ मिलकर पुष्कर नामक वाद्य यंत्र के बजाये जाने पर कल्पवृक्ष जनित रतिफल नामक मदिरा का पान करते हैं।

(6) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में पत्नी के विरह से व्याकुल यक्ष मेघ से अलकापुरी की समृद्धि का वर्णन करता हुआ उन यक्ष कुमारियों के विषय में बता रहा है जिनकी कामना देवता भी करते हैं-

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना रुणद्धि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः॥

अन्वय- यत्र अमरप्रार्थिताः कन्याः मन्दाकिन्या सलिलशिशिरैः मरुद्भिः सेव्यमानाः अनुतटरुहां मन्दाराणां छायया वारितोष्णाः कनकसिकता मुष्टिनिक्षेपगूढैः अन्वेष्टव्यैः मणिभिः संक्रीडन्ते।

शब्दार्थ- यत्र-जिस अलकानगरी में, अमरप्रार्थिताः-सुरों द्वारा वाञ्छित, कन्याः- यक्ष कुमारियाँ, मन्दाकिन्या-आकाश गंगा के, सलिलशिशिरैः-वारि से शीतल, मरुद्भिः- हवा के द्वारा, सेव्यमानाः- सेवित, अनुतटरुहां- तटों पर उत्पन्न, मन्दाराणां- मन्दार विटपों की, छायया-छाया से, वारितोष्णाः- दूर की गई (रोकी गई) धूप वाली, कनकसिकता-स्वर्ण बालू को, मुष्टि निक्षेपगूढैः-हाथ की मुट्टी में रखी गई, अन्वेष्टव्यैः- तलाश किए जाने वाली, मणिभिः-मणियों से, संक्रीडन्ते- क्रीडा करती है।

अनुवाद- जिस अलकानगरी में देवताओं द्वारा वांछित यक्ष कुमारियाँ आकाशगंगा के जल से शीतल हवा के द्वारा सेवित हुई तथा तटों द्वारा उत्पन्न मन्दार तरु की छाया से प्रशमित की गई धूप वाली, स्वर्ण बालू की मुट्ठी में रखने पर अतएव तलाश किए जाने वाली मणियों के साथ क्रीडा करती हैं। अर्थात् अलकानगरी की समृद्धि का वर्णन करते हुए कहा कि यक्ष कन्यायें गंगा के जल से शीतल हवा द्वारा सेवित होने पर तटों पर उत्पन्न मन्दार तरु की छाया से रोकी गई धूप तथा स्वर्ण रेत को अपनी मुटठी में छिपाने पर तथा तलाश किए जाने वाली मणियों के साथ खेलती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

प्रार्थिताः - प्र+अर्थ+ णिच्+ क्त (कर्मणि)

सेव्यमाना - सेव्+यक्+मुक्+शानच्

वारिताः - वृ+ णिच्+ क्त।

अन्वेष्टव्यैः - अनु+इष्+तव्यत्(पुल्लिंग)

समासः-

सलिल शिशिरैः - सलिलेन शिशिरैः (तृ.त.)

अनुतटरुहाम् - तटेषु इति अनुतटम् (अव्ययी भाव)

वारितोष्णाः - वारितः उष्णः यासां ताः (बहु.)

कनकसिकता मुष्टि निक्षेपगूढैः - कनकस्य सिकताः (ष.त.) तासु मुष्टिभिः निक्षेपः **(तृ.त.)**

अमर प्रार्थिताः - अमरैः प्रार्थिताः (तृ.त.)

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा अलौकिक शोभा का वर्णन करने के कारण उदात्त अलंकार है।

कोष- कन्या कुमारिकानार्यः (विश्वः)। कुमारिभिः कृता क्रीडा नाम्ना गुप्तमणिः स्मृता। रासक्रीडा गुप्तमणिर्गुप्तकेलिस्तुलायनम्। पिच्छकन्दुक दण्डाद्यैः स्मृता दैशिककेलयः (शब्दार्णवः)। मंदारः पारिजात को देवतरुश्च (अमर कोशः)। मन्दाकिनी वियद्गंगा स्वर्न दी सुरदीर्घिका (अमर कोशः)

विशेष टिप्पणी- इस श्लोक में अलकानगरी की भव्य संपन्नता का वर्णन किया गया है। अलकानगरी में हमेशा मंदाकिनी के जल से युक्त हवा का ही संचार होता है।

(7) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में कवि प्रियतम और प्रियतमाओं की मधुर क्रीडा का वर्णन कर रहा है-

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणाम्,
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्।
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः॥

अन्वय- यत्र अनिभृतकरेषु प्रियेषु नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं क्षौमं रागात् आक्षिपत्सु ह्रीमूढानां, बिम्बाधराणां चूर्णमुष्टिः अर्चिस्तुंगान् रत्नप्रदीपान् अभिमुखं प्राप्य अपि विफल प्रेरणा भवति।

शब्दार्थ- यत्र- जहाँ अलका में, अनिभृतकरेषु- चंचल हाथों वाले, प्रियेषु- प्रियतमों के द्वारा, नीवीबन्धोच्छ्वसित शिथिलम्- नीवीबंधन को शिथिल कर देने पर ढीले हो जाने पर, क्षौमं- वस्त्र को, रागात्- प्रेम के कारण, आक्षिपत्सु- दूर कर देने पर, ह्रीमूढानां- लज्जा के कारण विमूढ हुई, बिम्बाधराणां- बिम्बफल के समान ओष्ठों वाली, चूर्णमुष्टिः- चूर्ण की मुट्ठी, अर्चिस्तुंगान्- किरणों से उच्च प्रकाशमयी, रत्न दीपान्-रत्न दीपकों को, अभिमुख- समक्ष, प्राप्य-प्राप्तकर, अपि-भी, विफल प्रेरणा- निष्फल गति वाला, भवति-हो जाता है।

अनुवाद- जहाँ अलकानगरी में चंचल हाथों वाले प्रियतमों के द्वारा नीवीबंधन को शिथिल कर देने पर ढीले हो गए वस्त्र को प्रेम के कारण दूर कर देने पर लज्जा से विमूढ हुई, बिम्बफल के समान ओष्ठों वाली, उन चूर्ण सुन्दरियों की मुठ्ठी से किरणों से उच्च प्रकाशमय रत्नदीपकों को समक्ष प्राप्त कर भी निष्फल गति वाला हो जाता है। अर्थात् अलकानगरी में चंचल हाथों वाले, प्रियतमों के द्वारा गांठ को ढीला कर देने पर शिथिल हुए वस्त्र को प्रेम के कारण दूर कर देने पर लज्जा से विमूढ हुई, बिम्बफल के समान ओष्ठों वाली, वह प्रिया चूर्ण की मुटठी से किरणों से उच्च प्रकाशमय रत्नदीपों को सामने प्राप्त करके भी निष्फल गति वाली हो जाती है। कुंकुमादि चूर्ण की मुट्ठी उन रत्नों पर फेंक कर भी उनके प्रकाश को कम करने में असफल हो जाती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

उच्छ्वसितम्- उद्+श्वस्+क्त प्रत्यय

आक्षिपत्सु- आ+क्षिप्+ लट् के स्थान शतृ आक्षिपत्, स..बहु.

प्राप्य- प्र+आप्+ ल्यप्

मूढा- मुह्+क्त+टाप्

समास-

नीवीबन्धोच्छवसित शिथिलम्-नीवीबन्धोच्छवसितेन शिथिलम् (तृ.त.)

बिम्बाधराणाम्- बिम्बम् इव अधरः यासां (बहुव्रीहि)

विफलप्रेरणा- विफला प्रेरणा यस्याः (बहुव्रीहि)

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छन्द है तथा 'बिम्बा धराणाम्' में इव का लोप होने के कारण लुप्तोपमा अलंकार है।

कोष- नीवी परिपणे ग्रंथौ स्त्रीणां जघन वाससि (विश्वः)। बिम्बं फले बिम्बिकायाः प्रतिबिम्बे च मण्डले (विश्वः)। विशेषा कामिनी कान्ता भीरुर्बिम्बाधरांगना (शब्दार्णवः)। अर्चिर्मयूरशिखयोः (विश्वः)। मन्दाक्षं स्त्रीत्रपा क्रीडा लज्जा सा (अमरकोशः)

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में अलकावासी नायक-नायिकाओं की काम क्रीडा का वर्णन किया जा रहा है।

(8) प्रसंग - मेघ अलका के भवनों में बने भित्तिचित्रों को मेघवर्षा से मिटाये जाने का वर्णन करता है-

नेत्रा नीताः सततगतिना यद् विमानाग्रभूमी
रालेख्यानां स्वजलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः ।

शंकास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गैः
धूमोद्गारानुकृति निपुणाः जर्जरा : निष्पतन्ति ।।

अन्वय- नेत्रा सततगतिना यद् विमानाग्रभूमी : नीता त्वादृशाः जलमुचः आलेख्यानां स्वजलकणिकादोषमुत्पाद्य शंकास्पृष्टा इव धूमोद्गारानुकृति निपुणाः सद्यः जर्जरा : जालमार्गैः निष्पतन्ति।

शब्दार्थ- नेत्रा - ले जाने वाले (नायक के द्वारा), सततगतिना= निरन्तर प्रवाहमान (पवन) के द्वारा, यद् -जिस अलकानगरी के, विमानाग्रभूमीः- मकानों के उच्च शिखरों पर, नीताः- प्राप्त हुये, त्वादृशाः- तुम्हारे समान, जलमुचः- मेघ, आलेख्यानां- चित्रों में, स्वजलकणिकादोषमुत्पाद्य - अपने जल की बूदों से जनित विकार को उत्पन्न करके ,शंका स्पृष्टा इव - भयभीत हुए से, धूमोद्गारानुकृति- धुएँ के निर्गम होने का अनुचरण करने में, निपुणः= कुशल , सद्यः- त्वरित ही, जर्जराः - छिन्न भिन्न होकर,जालमार्गैः- गवाक्षों के छेदों से, निष्पतन्ति= बाहर आ जाते है।

अनुवाद- प्रेरक निरन्तर प्रवाहमय पवन के द्वारा अलकानगरी के उँचे प्रासादों की छतों पर पहुँच कर वहां बने हुये चित्रों, आलेखों में अपने जल की बूंदों से जनित विकार को उत्पन्न करके, भयभीत हुए से, धुएँ के निर्गम होने का अनुसरण करने में कुशल, तुम्हारे समान मेघ त्वरित ही छिन्न-भिन्न होकर गवाक्षों के छेदों से बाहर आ जाते हैं। अर्थात् अलकानगरी के बहुमंजिला भवनों-प्रसादों की दीवारों पर आलेखित चित्रों को अपने जल की बूदों से मेघ छिन्न - भिन्न करके गवाक्षों के छेदों से बाहर निकल जाते है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

नत्रा-नी+तृच्, तृ. एक.

नीताः- नी+क्त, तृ. एक.

आलेख्यानाम्- आ+लिख्+ण्यत्, ष. बहु.

उत्पाद्य- उत्+पद्+णिच्+ल्यप्

स्पृष्ट- स्पृश्+क्त

जलमुचः- जल+मुच्+क्विप्

अनुकृतिः- अनु+कृ+क्तिन्

निष्पतन्ति- निस्+पत्+लट् ल. , प्र.पु.बहुव,

समास -

सततगतिना-सततं गतिर्यस्य सः सततगतिः तेन (बहुव्रीहि)

यद्विमानाग्रभूमी-विमानानि अग्राभूमिः अग्रभूमिः (कर्मधारक)

शंकास्पृष्टाः-शंकया स्पृष्टाः (तृ. त.)

जलमुचः-जल मुञ्चन्ति इति (उपपद समास)

जालमार्गैः-जालानां मार्गैः (ष. त.)

धूमोद्गारनुकृति निपुणाः-घूमस्य उद्गार : (ष. त.)

छन्द- अंलकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है तथा इव का प्रयोग होने के उत्पेक्षा अंलकार है।

लक्षण है:- 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्'

कोष:- चित्रे लिखितरूपाढ्यं स्यादालेख्यं तु यत्नत: (शब्दार्णव:)। शंका वितर्क भययो: (शब्दार्णव:)। सद्य: सपदि तक्षो (अमरकोश:)

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में अलकानगरी के मकानों की दीवारों पर चित्रित चित्रों का वर्णन करके हुए उस नगर की शोभा संपन्नता का वर्णन किया गया है।

(9) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष अलका की अभिसारिकाओं का वर्णन करता है-

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पै:,
पत्रच्छेदै:, कनककमलै: कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजालै:, स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै
नैंशो मार्ग: सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्॥

अन्वय- यत्र कामिनीनां नैशोमार्ग: सवितु: उदये गति उत्कम्पात् अलकपतितै: मन्दारपुष्पै: कर्णविभ्रंशिभि: पत्रच्छेदै: कनककमलै: च स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रै: मुक्ताजालै: हारै: च सूच्यते।

शब्दार्थ- यत्र- जिस अलकानगरी में, कामिनीनां- प्रेमिकाओं का, नैशोमार्ग:- निशा का मार्ग, सवितु:- भानु के, उदये- उदय होने पर, गत्युत्कम्पाद-चलायमान होने के कारण कंपित, अलक- बालों से, पतितै:- अलग हुए, मन्दार पुष्पै:- मन्दार के कुसुमों से, कर्णविभ्रंशिभि:- कर्ण से भ्रष्ट हुए, पत्रच्छेदै:- पत्तों के खंडों से, च- और, स्तनपरिसरछिन्नसूत्रै:- स्तन प्रदेश पर छिन्न भिन्न हुए तंतु वाले, मुक्ताजालै:- मोतियों के समूह वाले, हारै:- हार से, सूच्यते-ज्ञात होता है।

अनुवाद- जिस अलकानगरी में प्रेमिकाओं का रात्रि कालीन पथ, सूर्य के उदित होने पर गति के कारण कंपन से बालों से अलग हुए मन्दार के कुसुमों से, कर्ण से भ्रष्ट हुए पत्तों के खंडो से और कानों से गिरे हुये स्वर्ण कमल से, स्तन प्रदेश पर छिन्न भिन्न हुए तंतु वाले मोतियों के समूह वाले हारों से ज्ञात होता है। अर्थात् रात में अपने प्रियतम के समीप जाने वाली प्रेमिकाओं का रात में गमन पथ, सबसे छिपकर जाने की शीघ्रता, सूर्योदय होने पर शीघ्रता से चलने के कारण कंपन से बालों से पृथक हुए मन्दार के प्रसूनों से, कानों से गिरे हुए पत्तों के खंडों से तथा कानों से गिरे स्वर्णकमलों से स्तन प्रदेश पर टूटे हुए तंतु वाले मोतियों के हार से ही ज्ञात होती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

कर्णविभ्रंशिभि:- कर्ण+भ्यस् उपपद+वि+भ्रंश् धातु+ णिनि प्रत्यय- तृ. बहु.

नैश:- निशा+ अण्, आदि वृद्धि, आलोप

सूच्यते- सूच् धातु से कर्म में लट्, प्र. एक.

कामिनीनाम्-काम+ इनि, कामिनी+डीप्- ष. बहु.

समास-

अलकपतितै:- अलकेभ्य: पतितानि तै: (प.त.)

मन्दार पुष्पै:- मन्दारस्य पुष्पानि तै: (पष.त.)

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है। प्रेमिका के रात्रिकालीन माग का अनुमान करने के कारण अनुमान अलंकार है तथा मार्ग की सूचना देने के लिए अनेक साधनों का वर्णन होने से समुच्चय अलंकार है।

कोष- अलकाश्चूर्णकुन्तलाः (अमरकोशः) स्वर्ण सुवर्ण कनकम् (अमरकोशः)

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में अभिसारिकाओं के प्रियतम मिलन जाने का तथा सब की दृष्टि से बचाकर घर को शीघ्रता से जाने का वर्णन है।

(10) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष अलका स्थित कल्पवृक्ष के महत्त्व को बता रहा है-

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः॥

अन्वय- यस्यां चित्रं वासः, नयनयोः विभ्रमादेशदक्षंमधु किसलयैः सह पुष्पोद्भेदं भूषणानां विकल्पान् चरणकमलन्यासयोग्यं लाक्षारागं च सकलं अबलामण्डनं एकः कल्पवृक्षः सूते। **शब्दार्थ**- यस्यां- जिस अलकानगरी में, चित्रं- नानावर्णी, वासः- वसन, नयनयोः- आँखों में, विभ्रमादेशदक्षममधु- भाव-भंगिमा का देने में कुशल मद्य, किसलयैः- पत्तों के , सह- साथ, पुष्पोद्भेदं- कुसुमों के पल्लवित होने पर, भूषणानां- आभूषणों के, विकल्पान्- नानागत, चरण- कमलन्यासयोग्यं- पैरों में लगाने योग्य, लाक्षारागम्-महावर, च- तथा, सकलं- इन सम्पूर्ण, अबलामण्डनं- नारियों के अलंकरण स्वरूप, एकःकल्पवृक्षः- एकमात्र कल्पवृक्ष ही, सूते-प्रदान करता है।

अनुवाद- जिस अलकनगरी में नानावर्णी वस्त्र, आँखों में भाव-भंगिमा उपदेश देने में कुशल मदिरा, नवीन पत्तों के साथ पुष्पों के पल्लवित होने पर अनेक आभूषण पैरों मे लगाने योग्य महावर इस प्रकार नारियों के अलंकरण स्वरूप में सब सामग्री एक मात्र कल्पवृक्ष ही प्रदान देता ह। अर्थात् नाना प्रकार के कपडे, आँखों में भाव लाने वाली मदिरा, आभूषण, पैरों में लगाई गई मेहंदी, ये सब प्रसाधन सामग्री कल्पवृक्ष ही प्रदान करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

उद्भेदः- उत्+भिद्+ घञ् (भाव अर्थ में)

विकल्पान्- वि+क्लृप्+ घञ्

न्यास- नि+ अस्+घञ् , उपधावृद्धि, यण्

मण्डन- मण्ड्+ल्युट्, यु को अन

सूते- षूङ्. अभिषवे से लट्-लकार, प्र. एक.

समास-

विभ्रमादेशदक्षम्-विभ्रमाणाम् आदेशः (ष.त.)

पुष्पोद्भेदम्-पुष्पाणाम् उद्भेदः तम्(ष.त.)

अबलामण्डनम्- अबलानां मण्डनम्(ष.त.)

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा वासादि के वर्णन में सूते इस एक ही क्रिया में कर्मत्वेन अन्वय के कारण ही तुल्ययोगिता अलंकार है। 'चरण कमल न्यास योग्यम्' इस पद में लुप्तोपमा अलंकार है।

कोष- मधु मद्ये पुष्परसे (अमर कोश:)

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में नारियों की प्रसाधन सामग्री उपलब्ध कराने में कल्पवृक्ष को ही हेतु माना है। इसी कल्पवृक्ष के द्वारा ही नाना प्रकार के वस्त्र, कुसुम, मेहंदी आदि प्राप्त होते हैं।

(11) प्रसंग- यक्ष मेघ का अपने आवास की पहिचान बताता हुआ कहता है-

तत्रागारं धनपति गृहानुत्तरेणास्मदीयम्
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।
यस्योपान्ते कृतकतनय: कान्तया वर्द्धितो मे
हस्तप्रायस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्ष:॥

अन्वय- तत्र धनपति गृहात् उत्तरेण अस्मदीयं आगारं सुरपति धनुश्चारुणा तोरणेन दूरात् लक्ष्यम्। यस्य उपान्ते मे कान्तया वर्द्धित: कृतकतनयो हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्ष: (अस्ति)।

शब्दार्थ- तत्र- वहाँ अलकानगरी में, धनपित गृहात्- धनपति (कुबेर) के घर से, उत्तरेण- उत्तर दिशा में, अस्मदीयं- मेरा, आगारं- मकान, सुरपति-शचीपति (इन्द्र)के, धनुश्चारुणा- धनुष के समान सुंदर, तोरणेन-तोरण से, दूरात्- दूर से ही, लक्ष्यम्- लक्षित होने वाला, यस्य- जिस मकान के, उपान्ते- निकट, मे कान्तया-मेरी प्रेमिका यक्षिणी द्वारा, वर्द्धित:- पालन किया गया, कृतकतनयो- पुत्र बनाया हुआ, हस्त प्राप्यस्तवक नमितो- हाथों से प्राप्य, कुसुमों के गुच्छों से झुका हुआ, बालमन्दारवृक्ष:- बालमन्दार वृक्ष (अस्ति-है)

अनुवाद- वहाँ अलकानगरी में , धनपति के गृह से उत्तर दिशा में मेरा मकान शचीपति (इन्द्र)के धनुष के समान सुन्दर तोरण से दूरसे ही लक्षित हो वाला है। जिस मकान के निकट मेरी प्रेमिका यक्षिणी द्वारा पालित पुत्र बनाया हुआ हस्तों से प्राप्य कुसुमों के गुच्छे से नत बाल मन्दार वृक्ष है। अर्थात् यक्ष द्वारा अपने घर का वर्णन करते हुए कहा है कि मेरा मकान धनपति कुबेर के घर से उत्तर दिशा में है, इस मकान के निकट मेरी प्रेमिका यक्षिणी द्वारा पाला गया तथा पुत्र बनाया हुआ बाल मन्दार वृक्ष भी है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

अस्मदीयम्- अस्मद्+छ (ईय)

उत्तरेण- उत्तर+ एनप्

लक्ष्यम्- लक्ष्य+ण्यत्

वर्धित:- वृध्+णिच्+इट्+ क्त

प्राप्य:- प्र+आप्+ण्यत्

नमित:- नम्+ णिच्+ क्त

समास-

धनपित गृहात्- धनानां पति: (ष.त.)

सुरपतिधनुश्चारुणां- सुराणां पतिः (ष.त.) तस्य धनुः (ष.त.) तद्इव चारु (कर्मधारय)

कृतकतनयः- कृत एव कृतकः कृतकश्चासौ तनयश्चेति कृतकतनयः (कर्मधारय)

छन्द-अलंकार- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छंद तथा 'सुरपतिधुनश्चारुणा' पद में इव लुप्त होने के कारण लुप्तोपमा अलंकार है,।

कोष- तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम् (अमरकोशः)। निशांत वस्त्य-सदनं भवनागार मंदिरम् (अमरकोशः)। स्याद्गुच्छस्तु स्तबकः (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष द्वारा अपने घर का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

(12) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष अपने घर की वावडी के विषय में बता रहा है।

वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा,
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यासन्ति व्यवपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः॥

अन्वय- अस्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा स्निग्धवैदूर्यनालैः हैमैः विकचकमलैः छन्ना वापी च। यस्याः तोये कृतवसतयः हंसाः त्वां प्रेक्ष्य अपि व्यपगतशुचः सन्निकृष्टं मानसं न आध्यासन्ति।

शब्दार्थ- अस्मिन्-इस भवन में, मरकत शिलाबद्ध सोपान मार्गा- मरकत(हीरेपन्ने) के पत्थरों से निर्मित सीढी मार्ग वाली, स्निग्धवैदूर्यनालैः -चिकने बिल्लौर अथवा नीलम से निर्मित नाल वाले, हैमैः- कनकमयी, विकचकमलैः-विकसित कमलों से, छन्ना- आवृत्त, वापी च- और तडाग (अस्ति-है), यस्याः- जिस बावडी के, तोये- जल में, कृतवसतयः- रहने योग्य, हंसाः- हंस, त्वां- तुम मेघ को, प्रेक्ष्य अपि- देख करके भी, यपगतशुचः- शोक से मुक्त, सन्निकृष्टं- निकट में स्थित, मानसं- मानसरोवर को, न अध्यासन्ति-जाने क लिए उत्साहित नहीं होते हैं ।

अनुवाद- मेरे इस भवन में पन्ने (मरकत) के पत्थरों से निर्मित सीढ़ी के राह (पथ) वाली और चिकने बिल्लौर अथवा नीलम से निर्मित नाल वाले, खिले हुये स्वर्ण-कमलों से आवृत्त एक वावडी (तडाग) विद्यमान है, जिस तडाग के पानी में रहने वाले हंस तुम मेघ को देख करके भी, शोक मुक्त होकर निकट में स्थित मानसरोवर को जाने के लिए उत्साहित नहीं होते हैं। अर्थात मेरे इस तडाग का जल मानसवोर के जल से भी शुद्ध तथा निर्मल है। अर्थात् वर्षाकाल में जल के गंदा होने से हंस मानसरोवर चले जाते है किन्तु यक्ष भवन की बावडी के हंसों को इसकी चिन्ता नहीं है।

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा मेघ के दिखाई रूप कारण के होने पर हंसों का गमन रूप फल के अभाव के कारण विशेषोक्ति अलंकार है।

लक्षण है:- 'विशेषोक्ति खण्डेषु कारणेषु फलावचः-'

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

हैमैः- हेमन्+ अण्

छन्ना- छद्+क्त+टाप्

मानसम्- मनस्+अण्

संनिकृष्टं- सं+नि+कृष्+क्त

समासः-

मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा- मरकतशिलाभिः बद्धः सोपानमार्गः यस्याः सा (बहु.)

विकचकमलैः- विकचानि कमलानि तैः (कर्मधारय)

व्यपगत शुचः- व्यपगता शुक् येषां ते (बहु.)

कोष- आरोहणं स्यात् सोपानम् (अमरकोशः)। वापी तु दीर्घिका (मन्युशोकौः)। अमरकोशः तु शुक् स्त्रियाम्(अमरकोशः)। समीपे निकटासन्नसन्निकृष्टसनीऽवत् (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष द्वारा अपने गृह की भव्यता तथा सरोवर की भव्यता का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

(13) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष मेघ को अपने घर के चिह्न के संबंध मं बतला रहा है-

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टन-प्रेक्षणीयः।
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे! चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि॥

अन्वय- तस्यः तीरे पेशलैः इन्द्रनीलैः रचित शिखरः कनक कदली वेष्टन प्रेक्षणीयः क्रीडाशैलः अस्ति। हे सखे! उपान्त स्फुरित तडित त्वां प्रेक्ष्य भद्गेहिन्याः प्रियः इति कातरेण चेतसा तमेव स्मरामि।

शब्दार्थ- तस्याः- उस तडाग के, तीरे- तट पर, पेशलैः- रमणीय, इन्द्रनीलैः- इन्द्र नील मणियों से, रचितशिखरः- बने हुए शिखरों वाला, कनककदलीवेष्टन प्रेक्षणीयः- स्वर्णमयी कदलियों के घेरे में दर्शनीय, क्रीडाशैलः- क्रीडा पर्वत, है। उपान्त स्फुरितडित-तटों पर दैदीप्यमान बिजली वाला, त्वां- तुम को, प्रेक्ष्य-देखकर, मद्गेहिन्या प्रिय- मेरी यक्षिणी का प्रिय, इति-इस हेतु से, कातरेण- उद्विग्न, चेतसा-चित्त से, तमेव- उसी क्रीडापर्व्रत को, स्मरामि-याद करता हूँ।

अनुवाद- उस तडाग के तट पर रमणीय इन्द्रनील मणियों से निर्मित शिखरों वाला, तथा स्वर्णमयी कदलियों के घेरे में दर्शनीय क्रीडापर्वत विद्यमान है। हे सखा!तटों पर दैदीप्यमान बिजली से युक्त तुम मेरी यक्षिणी के प्रिय उसी क्रीडापवर्त के समान हो-इस हेतु से तुम्हे देखकर में उद्विग्न चित्त से उसी पर्वत को याद करता हूँ। अर्थात् मेरे मकान के समीप एक सुंदर तडाग है जिसके तट पर रमणीय इंद्रनील मणियों से बने हुए शिखरों वाला तथा स्वर्णमयी कदलियों के घेरे दर्शनीय क्रीडा पर्वत है। तडाग के तट पर तुम मेघ को बिजली से युक्त देखकर, उसी क्रीडापर्वत को उद्विग्न मन से स्मरण करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

प्रेक्षणीयः- प्र+ईक्ष्+ अनीयर्

गेहिनी- गेह+इनि+ङीष्

प्रेक्ष्य-प्र+ईक्ष+ल्यप्

चेतसा- चेतस्(नपुं.) तृ.एक.

स्मरामि- स्मृ+लट्, उत्तम. एक.

समास-

रचितशिखरः- रचितानि शिखराणि यस्य सः(बहु.)

क्रीडाशैलः- क्रीडायाः शैलः (ष.त.)

कनककदलीवेष्टन प्रेक्षणीयः- कनकस्य कदल्याः(ष.त.) तासा वेष्टनं (ष.त.) तेन प्रेक्षणीयः

उपांतस्फुरिततडितम्- उपान्तेषु स्फुरिताः तडितः यस्या (बहु.)

छंद-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छन्द है तथा मेघ का इन्द्रनील तथा बिजली का कनककदली के साथ समानता होने के कारण स्मरण अलंकार ह।

लक्षण :-'सदृशाऽनुभवाद्वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते'।

कोष- चारौ दक्षे च पेशलः (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणीः- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष द्वारा मेघ को अपने घर की पहचान बताई गई है।

(14) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष अपने घर के समीपस्थ अशोक तथा वकुल वृक्ष का वर्णन करता है-

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य।
एकःसख्यास्तव सह मया वामपदाभिलाषी
कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः॥

अन्वय- अत्र कुरवकवृत्तेः माधवीमण्डपस्य प्रत्यासन्नौ चलकिसलयः रक्ताशोकः कान्तः केसरश्च(स्तः)। एकः मया सह तव सख्याः वामपादाऽभिलाषी, अन्यो दोहदच्छद्मना, अस्याः वदन मदिरां कांक्षति।

शब्दार्थ- अत्र- इस क्रीडा पर्वत पर, कुरवकवृत्तेः- कुरवक वृक्ष के बावरण (बाड़) वाला, माधवी-मण्डपस्य- वासंतीलता के कुञ्ज के, प्रत्यासन्नौ- समीप में, चलकिसलयः- चण्चल पत्तों वाला, रक्ताशोकः लाल अशोक, कांतः- कमनीय, के सरश्च तथा वकुल वृक्ष(स्तः-है)। एकः-उन दोनों में एक (अशोक वृक्ष), मया सह-मेरे साथ, तव-तुम्हारी, सख्याःसखी(यक्षिणी) के, वामपदाऽभिलाषी-वाम पैर के प्रहार को प्राप्त करने के अभिलाषी, अन्यो- और दूसरा (वकुल वृक्ष), दोहच्छद्मना-दोहद के बहाने से, अस्याः- मेरी प्रियतमा की, वदन मदिरां-मुख में प्राप्त मदिरा की, कांक्षति- इच्छा रखता है।

अनुवाद- इस क्रीडा पर्वत पर कुरवक से आवृत्त माधवीलता के कुंज के समीप में चंचल पत्तों वाला लाल अशोक है तथा कमनीय मौलसिरी का तरु है। उन दोनों में से एक अशोक वृक्ष प्रिया के वाम पैर के वार को प्राप्त करने का अभिलाषी है तथा दूसरा वकुल वृक्ष दोहद के बहाने से मेरी प्रियतमा यक्षिणी की मुख में प्राप्त मदिरा की इच्छा रखता है। अर्थात् उस क्रीडापर्वत पर अशोक वृक्ष तथा वकुल वृक्ष ये दोनों स्थित है। अशोक वृक्ष बांये पैर के प्रहार को प्राप्त करने का तथा वकुल वृक्ष दोहद के बहाने से मेरी यक्षिणी की मुख की मदिरा की इच्छा रखता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

प्रत्यासन्नौ- प्रति+आ+सद्+क्त (प्र.द्वि.)

माधवी- मधु+अण्+ङीप्

अभिलाषी- अभि+लष्+णिनि

कांक्षति- काङ्क्ष्+लट्+प्र. एक.

समास-

रक्ताशोकः- रक्तश्चासौ अशोकः इति (कर्म धारय)

चलकिसलयः- चलानि किसलयानि यस्य सः (बहु.)

वामपादाभिलाषी- वामश्चासौ पादश्चेति वामपादः (कर्म धारय)

वदन मदिरा- वदनस्य मदिरा तां (ष.त.)

दोहदच्छद्मना- दोहदस्य छद्म दोहदच्छद्म तेन (ष.त.)

छन्द-अलंकार योजना- इस श्लोक में मन्दाक्रान्ता छंद है। प्रस्तुत श्लोक में सहोक्ति अलंकार है।

लक्षण है-'सहोक्ति सहभावश्चेद् भासते जनरञ्जनः। दिगन्तमगमद्यस्य कीर्तिः प्रत्यर्थिभिः सह॥'

कोष- अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासंती माधवीलता (अमरकोशः)। केसरो वकुलो वंजुलश्च(अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष द्वारा अपने घर के समीप स्थित क्रीडापर्वत के ऊपर स्थित अशोक-वकुल वृक्ष की विशेषताओं का वर्णन किया जा रहा है।

(15) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष अपने घर की पहचान बताते हुए रक्ताशोक तथा बकुल वृक्ष के मध्य बने हुए स्थान पर बैठने वाले मयूर का वर्णन कर रहा है।

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि
र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः
तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्धाः॥

अन्वय- तन्मध्ये च अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः मणिभिः मूले बद्ध स्फटिकफलका कांचनी वासयष्टिः (अस्ति)। शिञ्जावलयसुभगैः तालैः मे कान्तया नर्तितो वः सुहृत् नीलकण्ठो दिवसविगमे याम् अध्यास्ते।

शब्दार्थ- तन्मध्ये- उन दोनों वृक्षों के बीच में, अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः- नये बांसो के सदृश शोभायुक्त, मणिभिः- मणियों द्वारा, मूले- जड़ में, बद्ध- बांधी गई, स्फटिकफलका- स्फटिक के फलक वाली, काञ्चनी-स्वर्णमय, वासयष्टिः- निवासदण्ड (अस्ति-है)। शिञ्जावलय सुभगैः- झनकने वाले कंगनों से रमणीय, तालैः- तालियों से, मे- मेरी, कान्तया- यक्षिणी (प्रिया) के द्वारा, नर्तितो- नृत्य कराया गया, वः- आपका, सुहृत्- सखा, नीलकण्ठो,-नीलकण्ठ नाम पक्षी, दिवसविगमे- सांयकाल में, याम्- जिसपर, अध्यास्ते बैठता है।

अनुवाद- अशोक-बकुल तरु के बीच में नये बांसों के सदृश शोभामयी मणियों द्वारा जड में बांधी गई तथा स्फटिक के फलक वाली कञ्चनमयी निवास योग्य यष्टि है जिस पर झनकने वाले कंगनों से रमणीय तालियों द्वारा मेरी प्रियतमा के द्वारा नृत्य कराया गया आपका मित्र मयूर नामक पक्षी सांयकाल में बैठता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

काञ्चनी- कञ्चन+ अण्+ ङोप्

बद्धा- बन्ध्+क्त+टाप्

शिञ्जा- शिञ्ज्+अङ्+ टाप्

नर्तितः नृत्+णिच्= नर्ति+ क्त

अध्यास्ते- अधि+आस् धातु, लट् प्र. एक.

समास-

स्फटिकफलका- स्फटिकं फलकं यस्याः सा (बहु.)

काञ्चनी- काञ्चनस्य विकारः (ष.त.)

वासयष्टिः- वासाय यष्टिः (च.त.)

अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः- न अति प्रौढाः अनति प्रौढाः (नञ् समास)

छन्द-अलंकार योजना-

प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छंद है तथा ऐश्वर्य का वर्णन करने के कारण उदात्त तथा 'अनतिप्रौढवंश प्रकाशैः' में इव का लोप होने के कारण लुप्तोपमा अलंकार है। उदात्त अलंकार का लक्षण-'तदुदात्तं भवेद्यत्र, समृद्धं वस्तु वर्ण्यते'

कोष- भूषणानां तु शिञ्जितम् (अमरकोशः)। शिञ्जा भूषण ध्वनिः। मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भजङ्गभुक(अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष द्वारा अपने गृह के निकट स्थित वृक्षों का शोभा तथा उनमें बैठने वाले मयूर का वर्णन किया गया है।

(16) प्रंसग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष अपने भवन की पहचान बता रहा है कि पूर्वोक्त लक्षणों से तथा प्रस्तुत लक्षणों से आप मेरे भवन को अवश्य पहचान लेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है-

एभिः साधो! हृदयनिहितैर्लक्षणैलक्षयेथाः,

द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शंखपद्मौ च दृष्ट्वा।

क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं,

सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥

अन्वय- हे साधो! हृदयनिहितैः एभिः लक्षणैः द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शंख पद्मौ च दृष्ट्वा नूनं अधुना मद् वियोगेन क्षामच्छायं भवनं लक्षयेथाः। सूर्यापाये कमलं स्वां अभिख्यां न पुष्यति खलु।

शब्दार्थः - हे साधो - सज्जन! हृदयनिहितैः - चित्त में स्थित, एभिः लक्षणैः- इन पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त, द्वारोपान्ते- दरवाजे के दोनों ओर, लिखितवपुषौ- अंकित आकृतिवाले, शंखपद्मौ- शंख और पद्म को, दृष्ट्वा- देखकर, नूनं -निःसन्देह, अधुना- अब, मद्वियोगेन- मेरे वियोग के कारण, क्षामच्छायं -कृश छाया वाले, भवन- भवन (गृह) को, लक्षयेथाः- पहचान लेना। सूर्यापाये- सूर्यास्त हो जाने पर, कमलं- अरविन्द को, स्वां-अपनी, अभिख्याम्-शोभा को, खलु न पुष्यति- निश्चय ही धारण नहीं करता है।

अनुवाद- हे दक्ष मेघ! चित्त में स्थित इन पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त तथा दरवाजे के दोनों ओर अंकित आकृति वाले शंख-पद्म को देखकर निःसंदेह ही अब मेरे वियोग से कृश शोभा वाले भवन को पहचान लेना। क्योंकि सूर्यास्त हो जाने पर अरविंद अपनी शोभा को धारण नहीं करता है। अर्थात् यक्ष द्वारा बताए गए इन पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त तथा शंख पद्म की आकृति को देखकर निश्चय ही तुम मरे घर को पहचान जाओगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

एभिः- इदम् का तृतीया बहुवचन

निहितम्- नि+धा+क्त (दधातेर्हिः से धा को हि आदेश)

लक्षणैः- लक्ष्+ल्युट्, यु को अन, णत्व

लक्षयेथाः- लक्ष्+ णिच्= लक्षि, विधिलिङ्., म. एक.

वियोगः- वि+युज्+घञ् (चजोः कु द्यिण्यतोः) से ज् को ग्

समासः-

हृदय निहितैः- हृदये निहितानि तैः (स.त.)

द्वारोपान्ते- द्वारस्य उपान्ते (ष.त.)

लिखितवपुषौ- लिखिते वपुषी ययोः तौ (बहु.)

क्षामच्छायम्- क्षामा कांतिः यस्य(बहु.)

मद्वियोगेन- मम वियोगः (ष.त.)

छन्द-अलंकार- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा इसमें वर्णित वस्तु में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने के कारण दृष्टान्त अलंकार है।

लक्षण- 'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बिनम्'।

कोषः- साधुः समर्थो निपुणो वा (काशिका)। निधिर्ना रोवधिर्भेदाः पद्न शंखादयोः निधेः (अमरकोशः)। अभिख्या नामशोभयोः (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणीः- प्रस्तुत श्लोक में तोरण, वापी, मंदार, क्रीडा पर्वत, अशोक, वकुल इत्यादि लक्षणों से युक्त यक्ष के भवनों की पहचान बताई गई है, जिससे मेघ उस यक्ष के घर को पहचान सके।

(17) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष अपनी प्रिया की शारीरिक-रचना एवं सौन्दर्य के विषय में बता रहा है ताकि मेघ को उसकी पहचान करने में भ्रम न हो-

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

अन्वय- तत्र या तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी मध्ये क्षामा चकितहरिणाी प्रेक्षणा निम्ननाभिः श्रोणीभारात् अलसगमना स्तनाभ्याम् स्तोकनम्रा युवति विषये धातुः आद्या सृष्टिः इव स्यात्।

शब्दार्थ- तत्र- वहाँ अलकानगरी में, या- जो, तन्वी- कृशांगी, श्यामा- युवती, शिखरिदशना- नुकीले अथवा पक्कदाडिम बीजों के समान दांतो वाली, पक्वबिम्बाधरोष्ठी- परिपक्व बिम्ब फल के सदृश ओष्ठ वाली, मध्ये-कमर में, क्षामा- कृश, चकितहरिणी,- भयभीत हुई हरिणी के सदृश, प्रेक्षणा- नयनों वाली, निम्ननाभिः- गम्भीर नाभि वाली, श्रोणीभारात्- नितम्बों के बोझ से, अलसगमना-धीरे-धीरे चलने वाली, स्तनाभ्याम्- स्तनों से, स्तोकनम्रा-नत हुई सी, युवति विषये- युवतियों की रचना के विषय में, धातुः -ब्रह्मा की, आद्या- सर्वप्रथम, सृष्टिः- रचना के, इव-सदृश, स्यात्- हो।

अनुवाद- वहाँ अलकानगरी में जो कृशांगी युवती, पैने रदन वाली, परिपक्व बिम्बफल के सदृश ओष्ठ वाली, कमर में कृश, भयभीत हरिणी के सदृश नयनों वाली, गम्भीर नाभि वाली, नितंबों के बोझ के कारण शनैः शनैः चलने वाली, स्तनों से नत हुई सी, युवतियों के विषय में ब्रह्मा की सर्वप्रथम रचना के सदृश है। अर्थात् कृशांगी युवती, नुकीले दांतों वाली, परिपक्व बिम्ब फल के सदृश ओष्ठ वाली, पतली कमर वाली, भयभीत हरिणी के सदृश नेत्रों वाली, गम्भीर नाभिवाली, नितंबों के बोझ के कारण धीरे-धीरे चलने वाली, स्तनों के कारण नत हुई सी, इन सब विशेषताओं से युक्त युवती को तुम मेरी प्रिया समझना।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

तन्वीः- तनु+ङीष् (वातो गुणवचनात् सूत्र से) यण्, प्र. एक.

प्रेक्षण- प्र+ईक्ष्+ ल्युट्

स्यात्- अस्+विधि लिङ्. प्र. एक.

सृष्टि- सृज्+क्तिन्

आद्या- आदि+ यत्+ टाप्

समासः-

शिखरिदशना- शिखराणि सन्ति एषाम् इति शिखरिणः (मत्व. तद्वित), शिखरिणः दशनाः यस्याः सा (बहु.)

पक्वबिम्बाधरोष्ठी- पक्व बिम्बम् इव अधरौष्ठः यस्याःसा (बहु.)

चकितहरिणीप्रेक्षणा- चकिता च असौ हरिणी (कर्मधारय)

निम्ननाभिः- निम्ना नाभिः यस्याः सा (बहु.)

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा 'पक्वबिम्बाधरोष्ठी' तथा 'चकितहरिणो' प्रेक्षणा में उपमान का लोप होने के कारण लुप्तोपमा अलंकार 'सृष्टिराद्येव धातुः' से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

लक्षणः- 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्'

कोष- 'श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु' (अमर कोशः)। शिखरं शैलवृक्षाग्रकक्षापुलककोटिषु (विश्वः)। पक्वदाडिमबीजाभं माणिक्यं शिखरं विदुः (चिंतामणिकारः)

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा ब्रह्मा की सर्वप्रथम रचना युवति के रूप में यक्ष पत्नी का वर्णन सर्वांग सुंदरी नारी के रूप में चित्रित किया है।

(18) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष अपनी प्रिया की क्षीणता के विषय में बता रहा है-

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्।।

अन्वय- मयि सहचरे दूरीभूते चक्रवाकीं इव एकां परिमितकथां तां मे द्वितीये जीवितं जानीथाः। गुरुषु एषु दिवसेषु गच्छत्सु गाढोत्कण्ठां बालां शिशिमथितां पद्मिनीं वा अन्यरूपां जातां मन्ये।

शब्दार्थ- मयि- मुझ, सहचरे- साथी यक्ष के, दूरीभूते- निकट न रहने पर, चक्रवाकी इव-चकवी के सदृश, एकां- अकेली, परिमित कथाम्-कम बोलने वाली, तां-उस मेरी यक्षिणी को, मे-मेरा, द्वितीय- दूसरा, जीवितं-जीवन, जानीथाः- मानना चाहिए। गुरुषु- लम्बे, एषु-इन, दिवसेषु-विरह के दिनों का, गच्छत्सु- समाप्त हो जाने पर, गाढोत्कण्ठा- प्रगाढ विरह से युक्त, बालां- युवती को, शिशिरमथितां- ठंड से पीडित, पद्मिनी-कमलिनी के, वा- सदृश, अन्यरूपां- अन्य रूप वाली, जातां- हो जाने वाली, मन्ये-मानता हूँ।

अनुवाद- मुझ साथी यक्ष के निकट न रहने पर चकवी के सदृश अकेली कम बोलने वाली उस मेरी यक्षिणी को मेरा दूसरा जीवन ही मानना चाहिए। लम्बे इन विरह के दिनों की समाप्ति पर प्रगाढ विरह से युक्त युवती ठंड से पीडित कमलिनी के सदृश अन्य रूप वाली हो जाती है, ऐसा मैं मानता हूँ। अर्थात् उस यक्षिणी को, जो मेरे विरह के कारण चकवी के सदृश कम बोलने वाली है, मेरा दूसरा जीवन समझना चाहिए। विरह की वेदना के समाप्त हो जाने पर युवती को शीत से पीडित कमलिनी के सदृश, पूर्वोक्तवर्णित आकृति से भिन्न रूप वाली ही मानता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

जानीथाः- ज्ञा+(विधि. म. पु. एक.)

परिमित- परि+मा+क्त+टाप्

सहचरे- सह+चर्+ट (स.एक.)

गच्छत्सु- गम्+शतृ+स.बहु.

जाताम्- जन्+क्त+टाप् द्वि. एक.

मन्ये- मन्+लट्+ल.पु.एक.

मथिताम्- मन्थ्+क्त+टाप्

पद्मिनीम्- पद्म+इनि+ङीप् (द्वि.एक.)

समास-

परिमितकथाम्-स्वल्पा वाक् यस्याः सा (बहु.)

गाठोत्कण्ठाम्- गाढा उत्कण्ठा यस्याः सा (बहु.)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा अपनी प्रिया को दूसरा प्राण बतलाकर भेद में अभेद वर्णित होने के कारण अतिशयोक्ति अलंकार है। 'चक्रवाकीम्' इव पद्मिनीं 'वान्यरूपाम्' में उपमा अलंकार है।

कोषः- रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या, संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः।

विशेष टिप्पणी:- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष द्वारा यक्षिणी की विरह वेदना का वर्णन किया गया है।

(19) प्रसंग- यक्ष अपनी प्रिया की पहचान बताता हुआ कहता है-

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
हस्तन्यस्यत् मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति॥

अन्वयः- नूनम् तस्याः प्रियायाः प्रबिलरुदितोच्छूननेत्रम् निःश्वासानां अशिशिर तया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् हस्तन्यस्तत्र लम्बालकत्वात् असकलव्यक्ति त्वदनुसरणक्लिष्ट कान्तेः इन्दोः दैन्य बिभर्ति।

शब्दार्थ- नूनम्- निःसंदेह, तस्याः- उस, प्रियायाः- प्रियतमा का, प्रबिलरूदितोच्छूननेत्रम्- अत्यधिक रुदन करने से सूजी नयनों वाला, निःश्वासनां- निःश्वासों के, अशिशिरतया-अत्यधिक उष्ण होने के कारण, भिन्नवर्णाधरोष्ठम्-अशोभामय ओष्ठ वाला, हस्तन्यस्तम्-हस्त पर स्थित, लम्बालकत्वात्- लम्बे बालों के कारण, असकलव्यक्ति-पूर्णतया न दृष्ट होने वाला, त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः - तुझ मेघ के अनुसरण के कारण मलिन कांति वाला, इन्दोः-चन्द्रमा की, दैन्यं- दीनता को, बिभर्ति-धारण करता है।

अनुवाद- निःसंदेह उस प्रियतमा का अत्यधिक रुदन के कारण सूजे हुई नयनों वाली, निःश्वासों के अत्यधिक उष्ण होने के कारण अशोभामय ओष्ठ वाली, हथेली पर स्थित लम्बे बालों के कारण पूर्णतया न दृष्ट होने वाला प्रिया का मुख तुझ मेघ के अनुसरण के कारण मलिन कांति वाले चन्द्रमा की दीनता को ग्रहण करता है। ऐसा मैं समझता हूँ। अर्थात् वह प्रियतमा मेरे वियोग के कारण अत्यधिक रुदन के कारण सूजी हुई नयनों वाली, निःश्वासों के अत्यधिक उष्ण होने के कारण कान्तिहीन ओष्ठ वाली, हस्त पर स्थित लम्बे वालों के कारण पूर्णतया न दिखाई देने वाली चन्द्रमा की दीनता को ही ग्रहण करती है। ऐसा मैं समझता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

रुदितः- रुद्+क्त

उच्छून- उत्+ शिव+क्त

न्यस्तम्- नि+अस्+क्त

व्यक्ति- वि+अञ्ज्+क्तिन्

समासः-

प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम्- प्रबलं च तत् रुदितम् (कर्मधारय), तेन उच्छूने नेत्रे यस्य तत् (बहु.)

अशिशिरतया- न शिशिराः (नञ् त.)

हस्तन्यस्तम् - हस्ते न्यस्तम्(स.त.)

असकलव्यक्ति- असकला व्यक्तिर्यस्य तत् (बहु.)

लम्बालकत्वात्- लम्बाः अलकाः यस्मिन् तत् (बहु.)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्राता छंद है तथा प्रस्तुत पद्य में निदर्शना तथा पुनरुक्तवदाभास अलंकार है। निदर्शना का लक्षणः- 'सम्भवन् वस्तुसंबंधोऽसम्भवन् वाऽपि यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत्सा निदर्शना'

कोषः- नूनं तर्केऽर्थनिश्यचे (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणीः- प्रस्तुत श्लोक में यक्षिणी की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है।

(20) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष कह रहा है- हे मेघ! प्रथमवार दर्शन में मेरी प्रिया तुम्हें मेरे विषयक कार्य में व्यस्त दिखाई देगी।

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा,
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां,
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि? रसिके! त्वं हि तस्य प्रियेति॥

अन्वय- सा वलिव्याकुला वा विरहतनुभावगम्यं मत्सादृश्यं लिखन्ती वा मधुरवचनां पञ्जरस्थां सारिकाम् रसिके ! भर्तुः स्मरसि कच्चित् हि त्वं तस्य प्रिया ऽति पृच्छन्ती वा ते आलोके पुरा निपतति।

शब्दार्थ- सा- वह प्रियतमा, वलिव्याकुला- नित्यदेवताओं की पूजा में व्यस्त, वा- अथवा, विरहतनुभावगम्यं- वियोग से कृश होने के कारण विचारणीय, मत्सादृश्यं- मरे चित्र को, लिखन्ती- चित्रित करती हुई, वा- अथवा, मधुर वचनां- मधुर वचनों वाली, पञ्जरस्थां- पिंजरे में स्थित, सारिकाम्- कोयल को, रसिके- हे रसीली! , भर्तुः- पति को, स्मरसि- याद करती हो, कच्चित्- क्या? हि- क्योंकि, त्वं- तुम, तस्य-अपने पति की, प्रिया- अत्यन्त प्रिय थी, इति- इस प्रकार से, पृच्छन्ती- प्रश्न करती हुई, वा-अथवा, तुम्हारी, आलोके-दृष्टि में, पुरा- जल्दी ही, निपतति- आ जाएगी।

अनुवाद- वह प्रियतमा नित्यदेव पूजा में व्यस्त, अथवा वियोग से कृश होने के कारण विचारणीय, मेरे चित्र को चित्रित करती हुई अथवा मधुर वचनों वाली पिंजरे में स्थित कोयल को-हे रसीली। क्या तुम अपने पति को याद करती हो, क्योंकि तुम तो उसकी अत्यन्त प्रिय हो, पूछती हुई वह तुम्हारी मेघ की दृष्टि में शीघ्र ही आ जाएंगी। अर्थात् तुम्हारे द्वारा मेरी यक्षिणी को दैनिक कार्यों में व्यस्त देखा जायेगा। वह देवों की पूजा में व्यस्त, वियोग से कृश होने के कारण विचारणीय , मेरे चित्र को चित्रित करती हुई दिखाई पडेगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

आलोके- आ+लोक+घञ्, स. एक.

निपपति- नि+पत्+लट्, प्र. एक.

सादृश्यम्- सदृश+ ष्यञ्

लिखन्ती- लिख्+लट् के स्थान पर शतृ +ङीप्

समास-

वलिव्याकुला- वलिषु व्याकुला (स.त.)

विरह तनुः विरहेण तनु (तृ.त.)

भावगम्यम्- भावेन बोध्यम् (तृ.त.)

मधुरवचनाम्- मधुराणि वचनानि यस्याः ताम् (बहु.)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छन्द है। इसमें दीपक अलंकार है।

लक्षण :- 'जाति-क्रिया-गुणद्रव्य-वाचिनैकत्र वर्तिना सर्ववाक्योपकारश्चेत् तमाहुर्दीपकं बुधाः।'

कोषः- अक्षय्य कोशे आलेख्येऽपि च सादृश्यम् (यादवः)। कच्चित् कामप्रवेदने (अमरकोशः)। उपमायां विकल्पे वा (अमरकोशः)। स्यात् प्रबंधे पुरातीते निकटगामिके पुरा (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणीः-

प्रस्तुत श्लोक में विरहिणी यक्षिणी के दैनिक कर्मों की चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। अपने प्रियतम के वियोग में प्रोषित-भर्तृका स्त्रियाँ विनोद के चार साधनों का उपयोग करती हैं- वे हैः-

'वियोगे योगे वा प्रियतम सदृशानुभवनम्, ततश्चित्रं कर्म स्वप्नसमये दर्शनमपि।
तदऽगस्पृष्टानामुपगतवतां स्पर्शनमपि प्रतीकारो ऽनंगव्यथित मनसा कोऽपि गदितः॥'

(21) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष अपनी विरहिणी प्रिया के मनोविनोद का वर्णन कर रहा है-

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य। निक्षिप्य वीणाम्
मद्गोत्रांकं विरचितपदं गेयमुद्गातु कामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचित्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥

अन्वय - सौम्य मलिनवसने उत्संगे वीणा निक्षिप्य मद्गोत्रांकं विरचितपदं गेयं उद्गातुकामा नयन सलिलैः आर्द्रां तन्त्रीं सारयित्वा भूयः भूयः स्वयं कृतां अपि मूर्च्छनां विस्मरन्ती वा।

शब्दार्थ- सौम्य - हे सभ्यमेघ! ,मलिनवसने -गंदे कपडों वाली , उत्संगे -गोद में ,वीणां -वीणा को, निक्षिप्य -धारण करके, मद्गोत्रांकं-मेरे नाम से अंकित, विरचितपदं -निर्मित पदयुक्त,गेयं -गाने योग्य गीत को, उद्गातुकामा -उच्च स्वर में गायन को उत्कण्ठित, नयनसलिलैः -अश्रुओं से, आर्द्रा -नम, तन्त्रीं - वीणा को, सारयित्वा - साफ करके, भूयः-भूयः -पुनः -पुनः, स्वयं -अपने आप, कृता - निर्मित किए गये, मूर्च्छनां - स्वरों के आरोह - अवरोह के क्रम को, विस्मरन्ती -याद न करती हुई सी (आलोके ते निपतति -तुम्हारी नजर में आएगी) इन पूर्व श्लोकस्थ पद से वाक्यार्थ पूर्ण होगा।

अनुवाद- हे सभ्य मेघ! मलिनवस्त्रों वाली गोद में वीणा को धारण करके मेरे नाम से अंकित निर्मित पद युक्त गायन योग्य गीत को उच्च स्वर में, उत्कण्ठित अश्रुओं सें नम वीणा को साफ करके पुनः अपने आप निर्मित किए गये स्वरों के आरोह-अवरोह क्रम को याद न करती हुई सी तुम्हारे सामने आ जाएगी। अर्थात् हे मेघ! तुम्हारी नजर में मैले वसनों वाली गोद में वीणा को रखकर, मेरे नाम से चिंहित निर्मित पद युक्त गायन योग्य गीत को उच्च स्वर में गायन को उत्कण्ठित, अश्रुओं से नम वीणा को हाथ स साफ करके अपने द्वारा निर्मित किए गये आरोह-अवरोह के क्रम को भूलती हुई सी मेरी प्रियतमा आएगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

उत्संगे-उत्+सञ्ज्+घञ, स. एक.

निक्षिप्य- नि+क्षिप्+ल्यप्

उद्गातुम्- उद्+गै+तुमुन्

कृताम्- कृ+क्त+टाप्

समास-

मलिनवसने -मलिनं वसनं यस्य तत् (बहु.)

मद्गोत्राङ्क - मम गोत्र मद्गोत्रम् (ष.त.)

विरचितपदं - विरचितानि पदानि यस्य तत् (बहुव्रीहि)

नयन सालिलैः - नयनयोः सलिलानि (ष.त.)

छन्द-अंलकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है तथा समान बल वाले में चतुरतापूर्ण विरोध होने से विकल्प अलंकार है।

लक्षण है:- 'विकल्पस्तुल्य बलयोर्विरोधश्चातुरीयुतः'

कोषः- गोत्रं नाम्नि कुलेऽपि च(अमरकोशः)। आलोको दर्शनोद्योतौ (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणीः-

प्रस्तुत श्लोक में यक्षिणी की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है। स्वामी के परदेश गमन करने पर पतिव्रता स्त्रियों द्वारा मलिन वस्त्र धारण करना चाहिए ऐसा शास्त्र वचन है। इन सबके आधार पर यक्षिणी पतिव्रता स्त्री सूचित हो रही है।

(22) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष विरहविधुरा यक्षिणी के विरहविनोद का वर्णन कर रहा है-

शेषान् मासान्विरहदिवस स्थापित स्यावधेर्वा,
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः
मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती,
प्रायेणैते रमणविरहेष्वंङ्गनानां विनोदाः॥

अन्वय- वा विरहिदिवसस्थापितस्य अवधेः शेषान् मासान् देहलीदत्तपुष्पैः गणनया भुवि विन्यस्यन्ती वा हृदयनिहितारम्भं मत्सङ्गं आस्वादयन्ती (आलोके ते पुरा निपतति) प्रायेण अंङ्गनानां रमणविरहेषु एते विनोदाः।

शब्दार्थ- वा- अथवा, विरहिदिवसस्थापितस्य-वियोग के दिवस से ही निश्चित की गई, अवधेः- अवधि के, शेषान्- शेष, मासान्- महीनों को, देहलीदत्तपुष्पैः- द्वार पर स्थित कुसुमों से, गणनया- गिनती के द्वारा, भुवि-धरा पर, विन्यस्यन्ती- महीनों की गिनती करती हुई, वा- अथवा, हृदयनिहितारम्भम्- हृदय में स्थित, मत्संगम्- मेरे साथ की हुई रति-क्रीडा का, आस्वादयन्ती- आस्वादन करती हुई, आलोके ते निपतति-तुम्हारी दृष्टि में आ जाएगी, प्रायेण-प्रायः अङ्गनानाम्- वनिताओं के, रमणविरहेषु-प्रियतम से विरह होने पर, एते विनोदाः- ये मनोरंजन के साधन है।

अनुवादः- अथवा वियोग के दिवस से ही निश्चित की गई अवधि के शेष महीनों को द्वार पर स्थित कुसुमों से गिनती के द्वारा धरा पर महीनों की गणना करती हुई अथवा हृदय में स्थित मेरे साथ हुई रति-क्रीडा का आस्वादन करती हुई तुम्हारे दृष्टि में आ जाएगी, क्योंकि प्रायः वनिताओं के प्रियतम से विरह होने पर ये मनोरंजन के लिए हेतु होते हैं। अर्थात् मेरी प्रियतमा यक्षिणी मेरे बिना विरह के दिनों को देहली पर कुसुमों को रखकर शेष विरह के महीनों की गणना करती हुई अथवा मेरे साथ बिताए समय

का स्मरण करती हुई तुम्हारे समक्ष आएगी, क्योंकि रमणियों के लिए ये सब मनोरंजन के लिए हेतु होते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

शेषान्-शिष्+घञ् द्वि. बहु.

स्थापितः- स्था (पुक्)+णिच्+ क्त

अवधेः- अव+धा+कि, ष. एक.

विन्यस्यन्ती- वि, नि+अस्+शतृ+डीप्, प्र.एक.

सम्भोगम्-सम्+भुज्+घञ्, पु.द्वि.एक.

विनोदाः वि+नुद्+घञ् प्र. बहु.

आस्वादयंती- आ+स्वद्+णिच्+शतृ+ डीप्, प्र. एक.

समासः-

विरहदिवसस्थापितस्य- विरहस्य दिवसः (ष.त.)

देहलीदत्त पुष्पैः- देहल्यां दत्तानि (स.त.)

हृदयनिहितारम्भम्- हृदय निहिते (स.त.)

रमणविरहेषु- रमणस्या विरहाः तेषु (स.त.)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा सामान्य का विशेष कथन से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है। लक्षण है:- 'सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्यैणेतरेण वा'।

कोषः- गृहावग्रहणी देहली (अमरकोशः)।

विशेष-टिप्पणीः- प्रस्तुत पद्य में यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन किया गया है। इस पद्य में यक्षिणी की संकल्पावस्था का वर्णन किया गया है। 'संकल्पो नाथ विषये मनोरथ उदाहृतः'।

(23) प्रसंग- यक्ष संभावित विरह व्यथा की कल्पना करके यक्षिणी का वर्णन कर रहा है-

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वाम्
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या,
तामेवोष्णै-र्विरह महतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्।।

अन्वय- आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वाम्, प्राचीमूले कलामात्र शेषां हिमांशोः तनुं इव या रात्रिः मया सार्धं इच्छारतैः क्षण इव नीता विरहमहतीं। तां एव उष्णैः अश्रुभिः यापयन्ती (पश्य)

शब्दार्थ- आधिक्षामां- मनोव्यथा के कारण कृशकाय वाली, विरहशयने- विरह शय्या पर, सन्निषण्णैकपार्श्वाम्- पास में स्थित एक पार्श्ववाली, प्राचीमूले- पूर्व दिशा में, कलामात्रशेषां- कला से शेष, हिमांशोः- चन्द्रमा की , तनुम्इव- मूर्ति के सदृश, या-जो, रात्रि-रात, मया सार्धं- मेरे साथ, इच्छारतैः इच्छा से कृत रति कार्यों द्वारा, क्षण इव- क्षण भर में, नीता-व्यतीत हो जाया करती थी, तां एव- उसी, उष्णै-उष्णैः, अश्रुभिः- अश्रुओं से, यापयन्ती- व्यतीत करती हुई (पश्य-देखना)।

अनुवाद- मनोव्यथा के कारण कृशकाय वाली, विरहशय्या पर पास मं स्थित एक पार्श्ववाली पूर्व दिशा के मूल में केवल कलामात्र से शेष चन्द्रमूर्ति मूर्ति के सदृश जो रात मेरे साथ इच्छा से कृत रति के द्वारा क्षण भर में व्यतीत हो जाया करती थी, उसी को उष्ण आँसुओं से व्यतीत करती हुई देखोगे। अर्थात् मानसिक व्यथा के कारण क्षीणकांति वाली, विरह शय्या पर पास में स्थित एक बगल ही लेटी हुई पूर्व दिशा के मूल में केवल मात्र कला से शेष हुए रजनीश के मूर्ति के समान मेरे साथ इच्छा से किये गये सम्भोग को याद करती हुई रात्रि व्यतीत करती है, ऐसी मरी प्रियतमा को तुम देखोगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

क्षामा-क्षै+क्त+ टाप्

सन्निषण्णम्- सम्+नि+ सद्+क्त

प्राची- प्र+अण्च्+क्विप्+ङीप्

नीता- नी + क्त + टाप्

समास-

आधिक्षामाम्- आधिनाक्षामा(तृ.त.)

विरहशयनम्- विरहे शयनम् (स.त.)

सन्निषण्णैकपार्श्वाम्-सन्निषण्णम् एकं पार्श्व यस्याः (बहु.)

इच्छारतैः- इच्छाकृतानि रतानि, तैः (मध्यमपदलोपी समास)

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छंद है तथा 'हिमांशोः कलामात्र शेषाम् तनुमिव' में इव प्रयोग होने के कारण उपमा अलंकार है।

कोष- पुंस्याधिर्मानसी व्यथा (अमरकोशः)। हिमांशुश्चंद्रमाश्चंद्रः (अमरकोशः)। स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः। (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणी-प्रस्तुत श्लोक में यक्षिणी की मनोव्यथा का वर्णन किया गया है।

7.3 पारिभाषिक शब्दावली

पाँच बाणों - कामदेव जन्य पीड़ा ही वहां के लोगों के लिए दुःखदायी है, अन्य कोई और पीडा नहीं है। कामदेव के पाँच बाणों के नाम है

अलकानगरी - में प्रसादों के शिखर चंद्रमयी मणि युक्त है। वहाँ पर यक्ष लोग अपनी स्त्रियों के साथ मिलकर पुष्कर नामक वाद्य यंत्र के बजाये जाने पर कल्पवृक्ष जनित रतिफल नामक मदिरा का पान करते हैं।

कल्पवृक्ष - अलकनगरी में नानावर्णी वस्त्र, आँखों में भाव-भंगिमा उपदेश देने में कुशल मदिरा, नवीन पत्तों के साथ पुष्पों के पल्लवित होने पर अनेक आभूषण पैरों मे लगाने योग्य महावर इस प्रकार नारियों के अलंकरण स्वरूप में सब सामग्री एक मात्र कल्पवृक्ष ही प्रदान देता है।

मौलसिरी - क्रीडा पर्वत पर कुरवक से आवृत्त माधवीलता के कुंज के समीप में चंचल पत्तों वाला लाल अशोक है तथा कमनीय मौलसिरी का तरु है।

7.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. यत्र.....प्रदोषाः
   प्रस्तुत श्लोक की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
2. आनन्दोत्थं.....यौवनादन्यस्ति।
   प्रस्तुत श्लोक की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
3. वासश्चित्रं.....कल्पवृक्षः।
   प्रस्तुत श्लोक की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
4. एभिः साधोः.....स्वाभिख्याम्।

प्रस्तुत श्लोक की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

5. तन्वी श्यामा.....सृष्टिराद्येव धातुः।
   प्रस्तुत श्लोक की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
6. तां जानीथाः .....वान्यरूपाम्।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
7. आलोके ते.....प्रियेति।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
8. उत्संगे.....विस्मरन्ती।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

बोध प्रश्नोत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 7.2 का संबद्ध श्लोक 3 देखें।
2. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 7.2 का संबद्ध श्लोक 4 देखें।
3. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 7.2 का संबद्ध श्लोक 10 देखें।
4. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 7.2 का संबद्ध श्लोक 16 देखें।
5. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 7.2 का संबद्ध श्लोक 17 देखें।
6. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 7.2 का संबद्ध श्लोक 18 देखें।
7. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 7.2 का संबद्ध श्लोक 20 देखें।
8. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 7.2 का संबद्ध श्लोक 21 देखें।

7.5 सारांश

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने महाकवि कालिदास के ग्रन्थ मेघदूत के प्रमुख श्लोकों की विस्तृत व्याख्या का अध्ययन किया है। इन श्लोकों की व्याख्या द्वारा यह तथ्य भी उद्घादित हुआ है कि ये श्लोक किस प्रकार मानव हृदय की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

7.6 संदर्भ गंथ सूची

1. Works of Kalidasa- C.r. Devadhar : Moti Lal Banarasidas Delhi,2002.
2. मेघदूत– संपा. आचार्य शेषराज शर्मा, रेग्मी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,1954.
3. मेघदूतम्– संपा. डॉ. बिजेन्द्र शर्मा, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1996.
4. मेघदूत– संपा. डॉ. अर्कनाथ चौधरी, जगदीश संस्कृत प्रकाशन, जयपुर 1992.
5. कालिदास परिशीलन–संपा. प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 1956.
6. कालिदास की समीक्षा परम्परा– संपा. प्रो. राधावल्लभ, त्रिपाठी, हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 2013.

इकाई – 8

मेघदूत के उत्तरमेघ के प्रमुख अंशों का सप्रसंग अनुवाद एवं सटिप्पण वैशिष्ट्य (श्लोक संख्या 31 से 60 तक)

इकाई की रूप रेखा –

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 प्रमुख श्लोक ससन्दभ व्याख्या
8.3 पारिभाषिक शब्दावली
8.4 अभ्यासार्थ प्रश्न
8.5 सारांश
8.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे कि महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्वप्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत के उत्तरमेघ में संख्या 1 से 30 के श्लोकों में कौन–कौन से प्रमुख श्लोक हैं। इन श्लोकों की इस इकाई में ससंदभ व्याख्या की गई है। श्लोकों में आए हुए कठिन शब्दार्थों को भो यथास्थान स्पष्ट कर दिया गया है। व्याकरणात्मक टिप्पणियों व अन्य विशेषताओं का भो यथास्थान वर्णन किया गया है।

8.1 प्रस्तावना

मेघदूत महाकवि कालिदास द्वारा रचित प्रसिद्ध गीतिकाव्य है। मेघदूत 'मन्दाक्रान्ता' छन्द में लिखा हुआ है। इसमें कुबेर के शाप से प्रिया वियुक्त यक्ष के व्यथित हृदय की कथा है। यह हृदय को द्रवित कर देने वाली ''विप्रलम्भ शृंगार'' की अद्वितीय करुण गीतिका है।

कालिदास के इस काव्य का कोई पौराणिक तथा ऐतिहासिक आधार नहीं है। यह काव्य नितान्त कल्पना प्रसूत हैं किन्तु इसी काव्य को दूतकाव्यों की परम्परा को चलाने का श्रेय दिया जाता है। मेघदूत के टीकाकरों में मल्लिनाथ ही सुप्रसिद्ध हैं।

प्रस्तुत इकाई में महाकवि के मेघदूत में उत्तरमेघ के प्रमुख श्लोकों की व्याख्या प्रस्तुत की गई तथा सभो सूक्तियों का विस्तार किया गया है। प्रत्येक श्लोक को व्यकरणात्मक रचना के साथ शब्दार्थ तथा भावना के स्तर पर समझाया गया है।

8.2 प्रमुख श्लोक ससंदर्भ व्याख्या

(1) **प्रसंग**– यक्ष यक्षिणी की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण कर रहा है –

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीम्।
शुद्धस्नानात् परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।
मत्सम्भोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा
माकांक्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम्॥

अन्वय– शुद्धस्नानात् परुषं आगण्डलम्बं अलकं अधरकिसलयक्लेशिना निःश्वासेन नूनं विक्षिपन्तीं स्वप्नजोऽपि मत्सम्भोगः कथं उपनयेत् इति नयनसलिलोत्पीडरुद्धवकाशां निद्रां आकांक्षन्तीम्(तां. पश्य)

शब्दार्थ - शुद्ध स्नानात्- तैलादिरहित स्नान के कारण, परुषं- कठोर, आगण्डलम्बं-गालों तक लटकते हुए, अलकं- बालों को, अधर किसलयक्लेशिना-किसलय सदृश होठों को पीडित कर देने वाले, नि:श्वासेन-नि:श्वास के द्वारा, नूनं- नि:संदेह, विक्षिपन्तीं-चलायमान, स्वप्नजोऽपि स्वप्नजनित, मत्सम्भोग:-मेरे साथ सम्भोग को , कथं- किसी भी पकार, उपनयेत्-प्राप्त हो जाये, इति- इस प्रकार से, नयसलिलोत्पीडरुद्धवकाशां- नयनों के अश्रुओं की धारा से अवरुद्ध स्थान वाली, निद्रां-नींद की , आकांक्षन्तीम्- कामना करती हुई (तां पश्य-उसको देखोगे)

अनुवाद- तैलादि रहित स्नान के कारण कठोर गालों तक लटकते हुए बालों को किसलय सदृश होठों को पीडित कर देने वाले नि:श्वास के द्वारा नि:संदेह चलायमान स्वप्न जनित मेरे साथ सम्भोग को किसी प्रकार प्राप्त हो जाये-इस प्रकार से नयनों से अश्रुओं की धारा से अवरुद्ध स्थान वाली नींद की कामना करती हुई उस मेरी प्रियतमा को देखोगे। अर्थात् विरह के कारण तैलादि रहित स्नान करने के कारण कठोर, नि:संदेह गालों तक लटकते हुए बालों को किसलय सदृश होठों को पीडित कर देनेवाले गरम सांस से हिलाती हुई, स्वप्नावस्था में मेरे साथ रति सुख प्राप्त हो जाये, ऐसा करके नेत्राश्रुओं की धारा को रोकते हुए नींद की कामना करती हुई वह मेरी प्रियतमा तुम्हें दिखेगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी:-

नि:श्वासेन- निस्+श्वस्+घञ्, तृ. एक.

विक्षिपन्तीं- वि+क्षिप्+शतृ+ ङीप् (नुमागम) द्वि.एक.

संभोग:- सम्+भुज्+घञ्

उपनयेत्- उप+नी धातु, विधिलिङ. प्र. एक.

आकांक्षन्तीम्- आ+कांक्ष्+ शतृ+ ङीप् (नुमागम्) द्वि.एक.

समास:-

अधरकिसलयक्लेशिना- अधरौ किसलयौ इव इति अधर किसलयौ (उपमित-समास)

शुद्धस्नानात्- शुद्ध च तत् स्नानम् (कर्म)

नयनसलिलोत्पीऽरुद्धावकाशम्- नयनसलिलोत्पीडेन रुद्ध: अवकाश: यस्या: (बहु.)

छन्द-अलंकार योजना:- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा अधर किसलयक्लेशिना पद में लुप्तोपमा अलंकार है।

कोष:- ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ (अमरकोश:)। पल्लवोऽस्त्री किसलयम् (अमरकोश:)।

विशेष टिप्पणी:- प्रस्तुत श्लोक में प्रोषित- भर्तृकाओं द्वारा तैलआदि के प्रयोग का निषेध बताया गया है। प्रस्तुत श्लोक में यक्षिणी की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है।

(2) प्रसंग- यक्ष कहता है कि हे मेघ! मेरे विरह में प्रिया ने तब से दुबारा चोटी नहीं गूंथी होगी। अत: उलझी हुई चोटी को हाथ से अलग करती हुई प्रिया के दर्शन होंगे-

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकत्सारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण॥

अन्वय- आद्ये विरहदिवसे दाम हित्वा या शिखा बद्धा शापस्य अन्ते विगलितशुचा मया उद्वेष्टनीयाम् स्पर्शक्लिष्टाम् कठिनविषमाम् एकवेणीम् ताम् अयमितनखेन करेण गण्डाभोगात् असकृत सारयन्तीम्। पश्य।

शब्दार्थ- आद्ये-सर्वप्रथम, विरहदिवसे-वियोग के दिनों में, दाम हित्वा-कुसुम माला को त्याग करके, या- जो, शिखा- वेणी, बद्धा- गूंथी गई थी, शापस्य-शाप के, अंते-समाप्ति पर, विगलित शुचा-दु:खसे हीन, मया- मेरे द्वारा, उद्वेष्टनीयाम्-खोली जाने वाली, स्पर्शक्लिष्टाम्-स्पर्श करने पर कष्टदायी, कठिन विषमाम्-कठोर तथा उलझी हुई, एकवेणीम्-एक चोटी को, ताम्-उस, अयमितनखेन-बिना कटे नख वाला, करेण-हस्त से, गण्डाभोगात्- कपोल स्थल पर, असकृत-पौन: पुन्येन, सारयान्तीम्-दूर करती हुई (पश्य-देखोगे)।

अनुवाद- सर्वप्रथम वियोग के दिनों में कुसुम माला को त्याग करके गूंथी हुई थी, उस वेणी को शाप के समाप्ति पर दु:ख से हीन तथा मेरे द्वारा खोली जाने वाली, स्पर्श करने पर कष्टदायी, कठोर तथा उलझी हुई एक चोटी को बढे नख वाले हाथ से कपोल स्थल पर बार-बार दूर करती हुई उस मेरी प्रियतमा को देखोगे। अर्थात् विरह दिनों में कुसुम माला को त्याग कर गूंथी हुई जो वेणी शाप की समाप्ति पर मेरे द्वारा खोली जाने वाली है तथा स्पर्श करने पर दु:खदायी कठोर एवं उलझी हुई उस एक वेणी को बढे नख वाले हाथों से गाल पर बार-बार दूर करती हुई मेरी उस प्रियतमा को देखोगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी:-

बद्धा- बन्ध्+क्त+टाप्

हित्वा- हा+क्त्वा

शाप्- शप्+घञ्

उद्वेष्टनीयाम्- उत्+वेष्ट+अनीयर+टाप् द्वि.एक.

क्लिष्टा- क्लिश+क्त+टाप्

अयमित- नञ्+यम्+इट्+क्त

सारयन्तीम्- सृ+णिच्+शतृ+ ङीप्, द्वि.एक.

समास:-

विरहदिवसे- विरहस्य दिवस: (ष.त.)

अयमितनखेन- न यमिता: अयमिता: (नञ् समास)

गण्डाभोगात्- गण्डयो: आभोग: तस्मात् (ष.त.)

छन्द-अलंकार योजना:- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है। स्वाभाविक स्थिति का वर्णन होने के कारण स्वाभावोक्ति अलंकार है।

कोष:- वेणी नदीभेदे कचोच्चये (अमरकोश:)। गण्डौ कपोलौ (अमरकोश:)। पुनर्भव: कररुह: नख: (अमरकोश:)।

विशेष टिप्पणी:- प्रस्तुत श्लोक में, प्रेषित-भर्तृकाओं द्वारा पति के परदेश चले जाने पर बालों की एक वेणी बना ली जाती थी तथा उस वेणी को अपने पति के वापस आ जाने पर खुलवाती थी, परम्परा का वर्णन किया गया है।

(3) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष यक्षिणी की विरह दशा का वर्णन कर रहा है-

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती,
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यम्।
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा॥

अन्वय- अबला संन्यस्ताभरणं असकृद् दुःखदुःखेन शय्योत्सङ्गे निहितं पेशलं गात्रं धारयन्ती सा त्वाम् अपि नवजलमयं अस्त्रं अवश्यं मोचयिष्यति। प्रायः आर्द्रान्तरामा सर्वः करुणावृत्तिः भवति।

शब्दार्थ- अबला- कृशकायवाली, सन्यस्ताभरणं- त्यागे हुए आभूषणों वाली, असकृद्-बार-बार, दुःखदुःखेन- अत्यधिक गम से, शय्योत्संगे- शय्या के मध्य में, निहितं- स्थापित, पेशलं- अत्यन्त मृदु, गात्रं-देह को, धारयन्ती-वहन करती हुई, सा- वह, त्वाम् अपि-तुम्हारे मेघ के भी, नवजलमयं- नवीन वारि रूप, अस्त्रम्- अश्रुको, अवश्यं- निश्चित ही, मोचयिष्यति-मुक्त कर देगी। प्रायः- प्रायः, आर्द्रान्तरात्मा-मृदुल हृदय वाला, सर्वः-सभी, करुणावृत्तिः- सदयस्वभाव वाला, भवति- होता है।

अनुवाद- कृशकाया वाली, त्यागे हुए आभूषणों वाली, बारम्बार अत्यधिक शोक से शय्या के मध्य में स्थापित अत्यन्त मृदु देह को वहन करती हुई वह यक्षिणी तुम्हारे मेघ के भी नवीन वारि रूप अश्रु को निश्चित ही मुक्त कर देगी। प्रायः (क्योंकि) मृदुल हृदय वाले सभी मनुष्य सदय स्वभाव वाले होते है। अर्थात् पतली, आभूषणों को त्यागे हुए, बार-बार अत्यधिक शोक से शय्या के मध्य में स्थापित अत्यन्त मृदु देह को वहन करती हुई वह मेरी प्रियतमा तुम मेघ को नवीन जल रूपी आँसुओं से मुक्त कर देगी। क्योंकि कोमल हृदय वाले व्यक्ति दयालु स्वभाव के ही होते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी:-

संन्यस्तम्- सम्+नि+अस्+क्त

धारयन्ती- धृ+णिच्+शतृ+ ङीप् (नुमागम)

मोचयिष्यति- मुच्+णिच्- मोचि+ लृट्, प्र.एक.

समास-

सन्यस्ताभरणम्- सन्यस्तानि आभूषणानि येन (बहु.)

अबला- अविद्यमानं बलं यस्याः सा (बहु.)

असकृत- न सकृत् (नञ् समास)

करुणावृत्तिः- करुणानां वृत्तिः यस्य सः (बहु.)

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा सामान्य कथन का विशेष कथन से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

कोषः- गात्रं वपुः संहनमम् (अमरकोशः)। स्त्री योषिदबला (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास द्वारा यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन किया गया है। कालिदास द्वारा कामदशाओं का इस श्लोक में वर्णन किया गया है।

(4) प्रसंग- मेघ को यक्ष कह रहा है कि जब तुम मेरा संदेश लेकर मेरी प्रिया के पास तक पहुँचोगे, उसी समय शुभ शकुन सूचक उसका बायाँ नेत्र स्फुरित होने लगेगा-

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरंजनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति॥

अन्वय- अलकैः रुद्धाऽपाङ्गप्रसरम् अञ्जन स्नेहशून्यं मधुनः प्रत्यादेशात् अपि विस्मृतभ्रूविलासं त्वयि आसन्ने (सति) उपरिस्पन्दि मृगाक्ष्याः नयनं मीनक्षोभात् चलकुवलयश्रीतुलाम् एष्यति इति शङ्के।

शब्दार्थ- अलकैः- बालों के द्वारा, रूद्धाऽपाङ्गप्रसरम्-अवरुद्ध किए गए नयन - प्रान्त की गति वाला, अञ्जनस्नेहशून्यं -काजल की स्निग्धता से रहित, मधुनः-मद्य को, प्रत्यादेशात् -निराकरण कर देने से, अपि -भी, विस्मृतभ्रूविलासं -विस्मृत किये भौहों की भंगिमा वाला, त्वयि- तुम मेघ के, आसन्ने - निकट होने पर, उपरि स्पन्दि - ऊपर के भाग में स्फुरित, मृगाक्ष्याः- मृगनयनीका, नयनं- नयन, मीनक्षोभात्,- मछलियों के गतिमान होने से, चलकुवलयश्रीतुलाम्- चलायमान कमल की शोभा की समानता को, एष्यति- प्राप्त कर लेगा, इति शंके- ऐसा मैं मानता हूँ।

अनुवाद- बालों के द्वारा अवरुद्ध किए गए नयनों के प्रान्त की गति वाला, काजल की स्निग्धता से रहित मद्य का निराकरण कर देने से विस्मृत हुए भौहों की भंगिमा वाला, तुम मेघ के निकट आने पर ऊपर के भाग में स्फुरित मृगनयनी यक्षिणी का नयन, मछलियों के गतिमान होने से चलायमान कमल की शोभा की समानता को प्राप्त कर लेगा ऐसा मैं मानता हूँ। अर्थात् बालों के द्वारा अवरुद्ध किए गए नयनों के प्रान्त की गति वाला, काजल की स्निग्धता से रहित मदिरा के त्याग कर देने से विस्मृत हुए भौहों की भंगिमा वाला, तुम्हारे मेघ के समीप आ जाने पर ऊपर के भाग में स्फुरित मृगनयनी यक्षिणी का नेत्र मछलियों के गतिमान होने से चलायमान कमल की शोभा समान फडकने लगेगा। यह मिलन का शुभ शकुन होगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

रुद्धः - रुध्+क्त

प्रत्यादेशात् - प्रति+आ+दिश्+घञ् प्रत्यय, पं. एक.

आसन्ने - आ+सद्+क्त (रदाभ्यां से द् व त को न) स. एक.

शंके - शंक्+ लट्, उत्तम पुरुष एकवचन

मृगाक्ष्याः - मृगाक्ष+ङीप्, ष. एक.

एष्यति - इण्धातु, लृट् लकार, प्र. एक.

समास-

रुद्धापाङ्गप्रसरम्- रुद्धः अपाङ्गयोः प्रसरः यस्यः (बहु.स.)

अञ्जनस्नेह शून्यम्- अञ्जनस्नेहेन शून्यः (तृ.त.)

विस्मृतभ्रूविलासम्- भ्रुवोः विलासः भ्रूविलासः (ष.त.)

मृगाक्ष्याः- मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः(बहु.)

मीनक्षोभान्- मीनानां क्षोभः तस्मात् (ष.त.)

छन्द-अलंकार योजना- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छन्द ह तथा नेत्र की शोभा को चञ्चल कमल की शोभा के समान बताने के कारण उपमा अलंकार है।

कोष- अपाङ्गौ नेत्र योरन्तौ (अमर कोशः)। प्रत्यादेशो निराकृतिः (अमर कोशः)। मधु मद्ये पुष्परसे (अमर कोशः)।

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत पद्य में महाकवि कालिदास द्वारा तत्कालीन परिवेश के अनुसार प्रवास पर गए पति की स्त्री के लिए केश-प्रसाधन , काजल, मद्यपान आदि का निषेध वर्णित किया गया है।

(5) प्रसंग- अब यक्ष मेघ से कह रहा है कि सम्भवतः उसकी (मेरी प्रिया की) आँख लग गई हो। अतः उसकी नींद खुलने तक उसकी प्रतीक्षा कर लेना क्योंकि शायद स्वप्न में ही उसके प्रियतम (मेरा) का मिलन हो जाये-

तस्मिन् काले जलद! यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचित्
सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम्॥

अन्वय- हे जलद ! तस्मिन् काले सा लब्धनिद्रासुखा स्यात् यदि, एनाम् अन्वास्य स्तनितविमुखः (सन्) याममात्रं सहस्व। अस्याः प्रणयिनि मयि कथचित् स्वप्नलब्धे (सति) गाढोपगूढं सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि मा भूत्।

शब्दार्थ- हे जलद ! हे बादल, तस्मिन् काले- उस समय में , सा- वह, यक्षिणी, लब्धनिद्रासुखा- निद्रा सुख को प्राप्त कर चुकी, स्यात्-हो, यदि अगर, एनाम्- तुम, अन्वास्य- पीछे बैठकर (स्थान ग्रहण करके), स्तनितविमुखः- गर्जना से हीन होकर, याममात्रं- याम मात्र तक, सहस्व- प्रतीक्षा करना, अस्याः- इस यक्षिणी का, प्रणयिनि मयि-मुझ प्रेमी के, कथंचित्= किसी भी प्रकार, स्वप्नलब्धे- सपने में मिलने पर, गाढोपगूढं-प्रगाढ आलिंगन से युक्त, सद्यः-शीघ्र ही, कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि-गले से अलग हुई भुजा रूपी लताओं के बंधन, माभूत- शिथिल न हो जाए।

अनुवाद- हे बादल! तुम्हारे वर्षाकाल में उपस्थित होने पर वह यक्षिणी अगर निद्रासुख को प्राप्त कर चुकी हो तो तुम उसके पीछे स्थान ग्रहण करके गर्जना से हीन होकर याम मात्र तक प्रतीक्षा करना। क्योंकि इस यक्षिणी का मुझ प्रेमी यक्ष के किसी भी प्रकार से सपने में मिलने पर प्रगाढ आलिंगन से युक्त शीघ्र ही गले से अलग हुई भुजारूपी लताओं के बंधन शिथिल न हो जाए। अर्थात् तुम्हारे उपस्थित होने पर वह यक्षिणी के निद्रा से जाग जाने पर उसके पीछे स्थान ग्रहण करके गर्जना से हीन होकर याम तक प्रतीक्षा करना, क्योंकि यक्षिणी के द्वारा सपने में अपने प्रेमी यक्ष के मिलने पर प्रगाढ आलिंगन से युक्त शीघ्र ही गले से अलग हुई भुजारूपी लताओं के बंधन शिथिल न हो जाए।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

जलद - जलम्+दा+क प्रत्यय (उपपद समास)

लब्धम् - लभ्+क्त

स्यात् –अस् धातु+ विधि लिङ्. प्र. एक.

अन्वास्य – अनु+आस्+ल्यप्

सहस्व – सह् धातु, लोट् लकार म.एक.

माभूत – माङ्. उपपद, भू धातु से लुङ्.लकार

प्रणयिनि – प्रणय+इनि प्रत्यय

गाढम् – गाह+क्त

समासः-

लब्धनिद्रासुखा – लब्धं निद्रासुखं यया सा (बहु.)

स्तनित विमुखः – स्तनितात् विमुखः (प.त.)

स्वप्नलब्धे – स्वप्ने लब्धः (स.त.)

गाढोपगूढम् – गाढं च तत् उपगूढम् (कर्म. समास)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मंदाक्रांता छंद है तथा 'भुजलता' में रूपक अलंकार है। 'याममात्रं सहस्व' उत्तरार्द्ध कथन में हेतु होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है।

कोषः- द्वौ याम प्रहरौ समौ (अमरकोशः)। बाढं बाढदृदानि च (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणीः- विरहिणी यक्षिणी के निद्रा से जाग जाने पर ही मेघ को कुछ प्रहर प्रतीक्षा करके ही गर्जन करने को इंगित किया गया है। यक्ष के द्वारा मेघ को क्षण भर प्रतीक्षा करने के लिए इसीलिए कहा गया है क्योंकि यक्ष की पत्नी पद्मिनी स्त्री है और पद्मिनी की नींद एक प्रहर तक ही होती है:-

'पद्मिनी यामनिद्रा च द्विप्रहरा च चित्रिणी
हस्तिनी यामत्रितया घोरनिद्रा च शंखिनी'।

(6) प्रसंग- 'कहीं मेघ का जगाने का तरीका अनुचित न हो' इस आशंका से यक्ष मेघ को पहले ही समझा रहा है कि तुम जलकणों से ठण्डी वायु के स्पर्श से तथा अपने मन्द मन्द गर्जन रूप वचनों से उसको जगाना।

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम्।
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः॥

अन्वय- (हे मेघ !) तां स्वजलकणिकाशीतलेन अनिलेन उत्थाप्य अभिनवैः मालतीनां जालकैः समं प्रत्याश्वस्तां त्वत्सनाथे गवाक्षे स्तिमितनयनां मानिनों विद्युद्गर्भो धीरः (सन्) स्तनित वचनैः वक्तुं प्रक्रमेथाः।

शब्दार्थ- (हे मेघ !), तां- उस यक्षिणी को, स्वजलकणिकाशीतलेन- अपने वारि बिंदुओं से शीतल, अनिलेन- हवा के द्वारा, उत्थाप्य- उठाकर, अभिनवैः- नवीन, मालतीनां= मालती की, जालकैः- कलिकागुच्छ के, समम्-साथ, प्रत्याश्वस्तां- सुस्थित, त्वत्सनाथे- तुझ मेघ से युक्त, गवाक्षे- झरोखे पर, स्तिमितनयनां- निश्चल नयनों वाली, मानिनीं- मनस्विनी को, विद्युतद्गर्भः- अपने में विद्युत को

समाहित किए हुए, धीरः सन्- धैर्यशाली होते हुए, स्तनित वचनैः- गर्जन रूपी वाक्यों को, वक्तुं- कहने के लिए, प्रक्रमेथाः- तैयार होना।

अनुवाद- हे मेघ ! उस यक्षिणी को अपने जल बिन्दुओं से शीतल हवा के द्वारा जगाकर मालती की नवीन कलिका समूह के साथ सुस्थित हुई तथा तुझ मेघ से युक्त झरोखे पर निश्चल नयनों वाली मनस्विनी के साथ, अपने में विद्युत को समाहित किए हुए धैर्यशाली होते हुए गर्जन रूपी वाक्यों को कहने के लिए तैयार होना। अर्थात् तुम्हारे द्वारा अपने वारि बिन्दुओं से शीतल हवा के द्वारा उस यक्षिणी को जगाकर मालती की नई कलिकाओं के साथ पसन्नचित तथा तुम मेघ से युक्त झरोखे पर निश्चल नेत्रों वाली मनस्विनी के साथ, अपने में विद्युत को समाहित कर धैर्यशाली होकर गर्जन रूपी वचनों को कहने के लिए तैयार होना।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

उत्थाप्य - उद्+स्था धातु+ णिच् (पुमागम), उद्+स्थापि+क्त्वा

प्रत्याश्वस्तां- प्रति+आ+श्वस् धातु से क्त प्रत्यय+टाप् उपसर्ग के इ को यण्, द्वि.एक.।

स्तिमितम्- स्तिम्+क्त

वक्तुम् - ब्रू (वच्)+तुमुन्

मानिनीम् - मान+इनि+ङीप् द्वि.एक.

प्रक्रमेथाः- प्र+क्रम्+ विधिलिङ्. म.एक.

समासः-

स्वजलकणिकाशीतलेन - स्वस्य जलम् स्वजलम् (ष.त.)

विद्युद्गर्भः - विद्युत् गर्भः यस्य सः (बहु.)

स्तिमितनयनाम् - स्तिमिते नयने यस्याः (बहु.)

त्वत्सनाथे - त्वया सनाथः (तृ.त.)

गवाक्षे - गवाम् अक्षि इव (ष.त.)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छंद है तथा 'स्तनितवचनैः' में स्तनित वचन पर आरोपित कर संदेश सुनाने के लिए उपयोग करने पर परिणाम अलंकार होता है।

कोषः- सुमना मालती जातिः। साकं सत्रा समं सह। क्षारको जालकं क्लीबे कलिका कोरक : पुमान् अमरकोश)। सनाथं प्रभुमित्याहुः सहिते चित्ततापिनि (शब्दार्णवः)। गर्भोऽपवारकेऽन्तः स्थे कुक्षिस्थे चार्भकेमतः (शब्दार्णवः)।

विशेष टिप्पणीः- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष द्वारा यक्षिणी को दिए गए संदेश को धीरे-धीरे मेघ को सुनाने के लिए कहा गया है।

(7) प्रसंग- मेघ द्वारा ले जाये गये संदेश को उसकी प्रिया कितनी उत्सुकता पूर्वक श्रवण करेगी इस बात की कल्पना करता हुआ यक्ष कह रहा है कि-

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैव।

श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य! सीमन्तिनीनां
कान्तोदंतः सुहृदुपगतः संगमात्किञ्चिदूनः॥

अन्वय- इति आख्याते मैथिली पवनतनयम् इव सा उन्मुखी उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया (सती) त्वाम् वीक्ष्य संभाव्य च अस्मात् परम् अवहिता (सती) श्रोष्यति एव। हे सौम्य! सीमन्तिनीनां सुहृदुपगतः कान्तोदंतः संगमात् किञ्चिदूनः।

शब्दार्थ- इति आख्यते- इस प्रकार कहने पर, मैथिली इव- जानकी के समान, पवनतनयम्-हनुमान के प्रति, सा- वह, उन्मुखी- ऊपर की ओर मुंह करके, उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया- औत्सुक्य से विकसित चित्त वाली होती हुई, त्वाम्- तुम मेघ को, वीक्ष्य-देखकर, संभाव्य च- तथा सम्मान कर, अस्मात्- इस संदेश को, परम् अवहिता-सचेत होकर, श्रोष्यतिएव- सुनेगी, हे सौम्य- हे सौम्य ! सीमन्तिनीनां- वनिताओं को, सुहृदुपगतः- मित्र के द्वारा लाये गये, कान्तोदन्तः- प्रियतम के संदेश, संगमात्- प्रियतम से संगम में, किञ्चिदूनः- कुछ ही कम होता है।

अनुवाद- इस प्रकार कहने पर हनुमान के प्रति जानकी के समान वह मेरी प्रिया ऊपर की ओर मुंह करके, औत्सुक्य से विकसित चित्त वाली होती हुई तुम मेघ को देखकर तथा सम्मान करके मेरे इस संदेश को सचेत होकर सुनेगी, क्योंकि हे सौम्य! वनिताओं के लिए मित्र के द्वारा लाए गए प्रियतम के संदेश प्रियतम से संगम में कुछ काल ही रह गया है, ऐसा मानती है। अर्थात् तुम्हारे द्वारा 'पति का मित्र हूँ', इस प्रकार कहने पर वह तुम्हारे प्रति देखकर तथा सम्मान करके मेरे संदेश को सावधान होकर सुनेगी, क्योंकि स्त्रियों को पति के मित्र द्वारा लाए गए प्रियतम के संदेश का आशय को सुनकर प्रियतम से संगम में कुछ समय ही रह गया है अभिमान्य होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

आख्याते	-	आ+ख्या+क्त, स.एक.
मैथिली	-	मिथिला+अण्, मैथिल+अण्+डीप्
सम्भाव्य	-	सम+भू+णिच्- संभावित से क्त्वा को ल्यप्
अवहिता	-	अव+धा धातु+क्त प्रत्यय+टाप्
सौम्य	-	सोम+ट्यण् (सोमाट्टयण) आदि वृद्धि

समासः-

उन्मुखी	-	उद्गतं मुखं यस्याः (बहु.)
उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया	-	उत्कण्ठया उच्छ्वसितं हृदयं यस्याः (बहुव्रीहि समास)
कान्तोदन्तः	-	कान्तस्य उदन्तः (ष.त.)
सुहृदुपनतः	-	सुहृदा उपनतः (तृ.त.)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है तथा सामान्य कथन का विशेष कथन से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है तथा 'मैथिलीवोन्मुखी सा' इस वाक्य में उपमा अलंकार है।

कोष- नारी सीमन्तिनी वधूः (अमरकोशः)। वार्ता प्रवृत्ति वृत्तांतः उदन्तः स्यात्(अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणी- प्रस्तुत पद्य में महाकवि कालिदास के द्वारा विहिणी स्त्रियों की दशा का वर्णन किया गया है।

(8) प्रसंग- अब यक्ष मेघ से कहा रहा है कि अपना परिचय देने के बाद तुम मेरी प्रिया को मेरी कुशलता के विषय में कहना तथा उसकी कुशलता को पूछना-

तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।
अव्यापन्नः कुशलमबले! पृच्छति त्वां वियुक्तः''
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव॥

अन्वय- हे आयुष्मन् ! मम वचनात् आत्मन उपकर्तुम् च ताम् एवं ब्रूयाः- हे अबले ! तव सहचरः रामगिर्याश्रमस्थः अव्यापन्नः वियुक्तः(सन्) त्वाम् कुशलं पृच्छति। सुलभविपदां प्राणिनाम् एतद् एव पूर्वाभाष्यम्।

शब्दार्थः- हे आयुष्मन्- हे दीर्घजीवी (मेघ)!, मम वचनात्- मेरे वचनों से, आत्मन-अपने, उपकर्तुम्- कृतार्थता के लिए, ताम्-उस मेरी प्रिया को, एवं- इस प्रकार, ब्रूयाः कहना, हे अबले-हे विवश नारी ! तव सहचरः- तुम्हारा पति, रामगिर्याश्रमस्थः- रामगिरि के आश्रम में स्थित, अव्यापन्नः- मृत नहीं है, वियुक्तः- वियुक्त हुआ, त्वाम्-तेरी, कुशलं पृच्छति- कुशलता को पूछ रहा है, क्योंकि सुलभविपदां-अनायास ही विपत्ति प्राप्त, प्राणिनाम्- प्राणियों से, एतद् एवं पूर्वाभाष्यम् यही कुशलता अवश्य पूछनी चाहिए।

अनुवाद- हे दीर्घजीवी मेघ ! मेरे वचनों से और अपनी कृतार्थता के लिए उस मेरी प्रिया को इस प्रकार कहना- हे विवश नारी। तुम्हारा पति रामगिरि के आश्रम में स्थित जीवित है, वियुक्त हुआ तेरी कुशलता को पूछ रहा है, क्योंकि अनयास ही संकट प्राप्त प्राणियों से कुशलता अवश्य पूछनी चाहिए अर्थात् उस रामगिरि के आश्रम में स्थित तुम्हारा पति जीवित है तथा तुमसे वियुक्त हुआ वह तुमसे कुशलता पूछ रहा है, क्योंकि संकट ग्रस्त प्राणियों से सबसे पहले उनकी कुशल क्षेम पूछनी चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

उपकर्तुम्	-	उप+कृ+ तुमुन्
सहचर	-	सह+चर+ट प्रत्यय
व्यापन्नः	-	वि+ आ उपसर्ग+ पद्+क्त प्रत्यय (रदाभ्यां से द् एवं त को न, वि के इ को यण्)
पृच्छति	-	प्रच्छ्+लट् प्र. एक.
वियुक्तः	-	वि+ युज्+क्त प्रत्यय

समासः-

रामगिर्याश्रमस्थः	-	रामगिरेः आश्रमाः रामगिर्याश्रमाः (ष.त.)
अव्यापन्नः	-	न व्यापन्नः (नञ् समास)
पूर्वाभाष्यम्	-	पूर्वम् आभाष्यम् (द्वि.त.)
सुलभ विपदाम्	-	सुलभाः विपदः येषां (बहु.)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मंदाक्रांता छंद है तथा सामान्य कथन का विशेष कथन से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

विशेष टिप्पणीः- प्रस्तुत श्लोक में विपत्ति प्राप्त मनुष्य से सबसे पहले कुशलक्षेम पूछनी चाहिए, इस बात को संकेतित किया है। आयुष्मन् शब्द प्रशंसा अर्थ में माना जाता है।

(9) **प्रसंग**- यक्ष अपनी प्रिया के लिये संदेश देता है कि तुम्हारा सहचर (यक्ष) भले ही तुमसे दूर निवास कर रहा है किन्तु तुम्हारी वियोगावस्था की समस्त कल्पना वह अपने शरीर के परितवर्तनों से कर ही लेता है-

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्त्रेणास्त्रद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः॥

अन्वय- दूरवर्ती वैरिणा विधिना रुद्धमार्गः (तवसहचरः) तनुना गाढतप्तेन साऽस्त्रेण उत्कण्ठितेन समधिकतरोच्छ्वासिना अङ्गेन प्रतनु तप्तम् अस्त्रद्रुतम् अविरतोत्कण्ठम् उष्णोच्छ्वासम् अङ्गं तैः संकल्पैः विशति।

शब्दार्थः- हे सुंदरी, दूरवर्ती-सुदूर देश में स्थित, वैरिणा-शत्रु, विधिना- विधाता के द्वारा, रुद्धमार्गः- अवरुद्ध किए गए मार्ग वाले, तवसहचरः- तुम्हारा साथी यक्ष, तनुना-कृश, गाढतप्तेन- अत्यधिक दुःखी, साऽस्त्रेण- अश्रुयुक्त, उत्कण्ठितेन-विरहवेदना से युक्त, समधिकतरोच्छ्वासिना-दीर्घनिःश्वास के द्वारा, अंङ्गे- शरीर के द्वारा, प्रतनु तप्तम्- निर्बल अत्यन्त दुःखी, अश्रुद्रुतम्- अश्रु से परिपूर्ण, अविरतोत्कण्ठम्- निरंतर वेदना से युक्त, उष्णोच्छ्वासम्-तीक्ष्ण निःश्वास वाले, अङ्गम्- शरीर को, तैः संकल्पैः- अपने अनुभवों के साथ , विशति- प्रवेश करता है।

अनुवाद- हे सुंदरी! सुदूर देश में स्थित तुम्हारा साथी शत्रु विधाता के द्वारा अवरुद्ध किए मार्ग वाला दुर्बल, अत्यन्त दुःखी, अश्रु युक्त, विरह वेदना युक्त, दीर्घ निःश्वास के द्वारा शरीर से निर्बल, अत्यन्त संतप्त, अश्रु से तरबतर, निरंतर वेदना से युक्त, तीक्ष्ण निःश्वास वाले शरीर में अपने अनुभवों के साथ प्रवेश करता है। अर्थात् शत्रु विधाता के द्वारा रोके गए मार्ग वाला, सुदूर देश में स्थित तुम्हारा साथी, दुर्बल, अत्यन्त दुःख, अश्रुयुक्त, विरहवेदना युक्त, दीर्घश्वास के द्वारा शरीर से दुर्बल, अत्यन्त संतप्त, आंसु से गीला, निरन्तर वेदना से युक्त होकर, तीक्ष्ण निःश्वास वाले शरीर में अपने मनोरथों के साथ ही प्रवेश करता है अर्थात् वह यक्ष अपनी विरह वेदना से अत्यन्त दुःखी है।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

उत्कण्ठितेन	-	उत्कण्ठा+इतच्
दूरवर्ती	-	दूर डि.+ वृत्+ णिनि प्रत्यय
विधिना	-	वि+धा+कि- विधिः, तृ.एक.
रुद्धः	-	रुध्+क्त

समासः-

अश्रुद्रुतम्	-	अश्रुभिः द्रुतम् (तृ.त.)

अविरता – न विरता अविरता (नञ् समास)

उष्णोच्छवासम् – उष्णा: उच्छ्वासा: यस्य: (बहुव्रीहि)

रुद्धमार्ग: – रुद्ध: मार्ग: यस्य स: (बहुव्रीहि)

छन्द-अलंकार योजना:- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा दो परस्पर योग्य वस्तुओं का अनुरूप वर्णन करने के लिए कारण सम अलंकार है।

लक्षण:- 'समं स्यादानुरुप्येण श्लाघा या योग्यवस्तुनो:।'

कोष:- अश्रु नेत्राम्बु रोदनं चास्त्रमश्रु च (अमर कोश)। तिग्मं तीव्रं खरं तीक्ष्ण चण्डमुष्णं समंस्मृतम् (हलायुध:)।

विशेष टिप्पणी:- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष की विरह वेदना का वर्णन किया गया है

(10) प्रसंग- अपनी प्रिया को संदेश देते हुये यक्ष कहता है कि मैं अपनी प्रिया का सौन्दर्य प्रकृति को विभिन्न वस्तुओं में अलग अलग तो देखता हूँ किन्तु सामूहिक रूप से वह एक जगह देखने को नहीं मिलता।

श्यामास्वङ्.गं, चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छायां शशिनि, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्,
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि! सादृश्यमस्ति॥

अन्वय- (हे प्रिये) श्यामासु अङ्गं, चकितहरिणीप्रेक्षणे दष्टिपातं, शशिनि वक्त्रच्छायां शिखिनां बर्हभारेषु केशान्, प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान् उत्पश्यामि। हन्त! हे चण्डि क्वचिदपि एकस्मिन् (वस्तुनि) ते सादृश्यं न अस्ति।

शब्दार्थ- (हे प्रिये!), श्यामासु- फलिनी लताओं में, अंग- देह को, चकित हरिणीप्रेक्षणे- व्याकुल मृगी की चितवन में, दृष्टिपातं- दृष्टि निक्षेप, शशिनि-सुधाकर में, वक्त्रच्छायां- मुख कांति की, शिखिनां-मयूरों के, बर्हभारेषु-पंख समूहों में, केशान्- बालों की, प्रतनुषु=कृश, नदीवीचिषु- सरिता की तरंगों में, भ्रूविलासान्- भूविलासों की, उत्पश्यामि-सम्भावना करता हूँ। हंत! हाय! हे चण्डि- हे मानिनि, क्वचिदपि- किसी भी, एकस्मिन्- केवल एक वस्तु में, ते- तुम्हारी, सादृश्यं न अस्ति- समानता नहीं है।

अनुवाद- हे प्रिये ! फलिनी लताओं में देह की, चकित मृगी की चितवन में दृष्टि निक्षेप की, चन्द्रमा में तुम्हारी मुख शोभा की, मयूरों के पंखों में तुम्हारे बालों की, तथा कृश सरिता की तरंगों में तुम्हारे भ्रूविलासों की सम्भावना करता हूँ। हाय ! हे सौभाग्य शालिनी! किसी भी एक वस्तु में तुम्हारी साम्य नहीं हैं। अर्थात् प्रियंगुलताओं में शरीर की, व्याकुल हरिणी की आँखों में चितवन की, चंद्रमा में मुखकांति की, मयूरों के पंखों में बालों की, सरिता की लहरों में भ्रूविलासों की तुलना करता हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी:-

प्रेक्षणम् - प्र+ईक्ष्+ल्युट,

शशिनि -शश + इनि, स.एक.

उत्पश्यामि - उद्+दृश्+लट्, उत्तम.एक.

समासः-

चकितहरिणी प्रेक्षणे - चकित चासौ हरिणी चकित हरिणी (कर्म.)

दृष्टिपातम् - दृष्टेः पातः तम् (ष. त.)

वक्त्रच्छायाम् - वक्त्रस्य छाया तां (ष. त.)

पतनुषु - प्रकृष्टेन तनवः तेषु (प्रादिमास)

नदीवीचिषु - नद्याः वीचयः तासु (ष.त.)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा शरीर सुकुमारता का स्मरण होने के कारण स्मरण अलंकार है।

लक्षणः- 'सदृशानुभवाद् वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते।'

कोषः-श्यामा तु महिलाह्वया। लता गोवंदनी गुन्द्रा प्रियंगुः फलिनी फलिनी फली (अमरकोशः)। हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः (अमरकोशः)। चण्डस्त्वत्यंतकोपनः(अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणीः-

विरही जन के मनोरंजन के चार साधनों में प्रिय जन सादृश्य का अनुभव भी माना है-

'' विरहीजन चायोगे प्रियजनसदृशानुभवनं
ततश्चित्रं कर्म स्वप्नसमये दर्शनमपि।
तदंगस्पृष्टानामुपगतवतां दर्शनमपि
प्रतीकारोऽनंगव्यथितमनसां कोऽपि गदितः।''

(11) प्रसंग- यक्ष संदेश देता है कि उस मेरी प्रिया को बताना कि तुम्हारा प्रेमी प्रणय में रूठी हुई तुम्हारा चित्र गेरू आदि से बनाकर जैसे ही अपना चित्र (तुम्हारे पैरों पर गिरता हुआ) बनाना चाहता है, उसी समय आँखों में आये हुए आँसू उसे ऐसा करने से रोक देते हैं।

त्वामालिख्य प्रयणकुपितां धातुरागैः शिलाया-

मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥

अन्वयः- (हे प्रिय!) प्रणयकुपितां त्वां धातुरागैः शिलायाम् आलिख्य आत्मानं ते चरणपतितं कर्तुम् यावत् इच्छामि, तावत् मुहुः उपचितैः अस्त्रैः मे दृष्टिः आलुप्यते। क्रूरः कृतांतः तस्मिन् अपि नौ संङ्गमं न सहते।

शब्दार्थ- हे प्रिये! प्रणयकुपिता- अत्यधिक प्रेम के कारण क्रोधावस्था से युक्त, त्वां- तुम्हारी प्रतिकृति को, धातुरागैः- गेरू आदि रंगने वाले द्रव्यों से, शिलायाम्- शिलापट्ट पर, आलिख्य- अंकित करके, आत्मानं- अपने को, ते-तुम्हारे, चरणपतितं- चरणों पर गिरा हुआ, कर्तुं-अंकित करना, यावत्इच्छामि- ज्यों ही इच्छा करता हूँ। तावत्-त्यों ही, मुहुः पुनः उपचितैः- छलक आए, अस्त्रैः- अश्रुओं से, मे दृष्टिः- मेरी दृष्टि, आलुप्यते- आच्छादित कर दी जाती है। क्रूरःकृतान्तः- निर्दयी विधाता, तस्मिन् अपि- उस चित्र में भी, नौ- हमारे, संङ्गमं- मिलन को, न सहते- सहन नहीं करता है।

अनुवादः- हे प्रिय! अत्यधिक प्रेम के कारण क्रोधावस्था से युक्त तुम्हारी प्रतिकृति को गेरू आदि रंग द्रव्यों से शिलापट्ट पर अंकित करके अपने को तुम्हारे चरणों पर गिरा हुआ ज्यों ही अंकित करना चाहता हूँ त्यों ही बार-बार छलक आए अश्रु से मेरी नजर आच्छादित कर दी जाती है। निर्दयी विधाता के द्वारा उस चित्र में भी हमारा मिलन सहन नहीं किया जाता है। अर्थात् यक्ष द्वारा अत्यधिक प्रेम के कारण क्रोधावस्था से युक्त यक्षिणी के चित्र को गेरू आदि रंगने वाले द्रव्यों से पत्थर पर अंकित करके ज्यों ही बनाना चाहता है, वैसे ही बार-बार आंसू आने से उसकी दृष्टि आच्छादित कर दी जाती है। निर्दयी विधाता उस चित्र में भी मानो उनके मिलन को सहन नहीं करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

प्रणयः - प्र+नी+अच्

कुपिता - कुप्+क्त+टाप्

रागः - रञ्ज+घञ्,

इच्छामि - इष् धातु से लट् लकार, उत्तम पुरुष एक.

उपचितैः - उप+चि+क्त, तृ. बहु.।

समासः-

प्रणय कुपिताम् - प्रणयेन कुपिता, (तृ.त.)

चरणपतितम् - चरणयोः पतितः (स.त.)

कृतान्तः - कृतस्य कर्मणः अन्तः (ष.त.)

द-अलंकर योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा अर्थापत्ति अलंकार है।

लक्षणः- 'दण्डापूपिकया ऽन्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते।'

कोषः- धातुर्वातादि-शब्दादि-गैरिकादिष्वजादिषु (यादवः)। चित्रादि-रञ्जकद्रव्ये लाक्षादौ प्रणयेच्छयोः। सारंगादौ च रागः स्यादारुण्ये रञ्जनेपुमान् (शब्दार्णवः)। नृशंसो घातुकः क्रूरः (अमरकोशः)। कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवकुशल कर्मसु (अमरकोशः।)

विशेष टिप्पणीः- प्रस्तुत पद्य में विरही की पीडा का अपूर्व चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

(12) प्रसंग- अपनी सन्तप्त दशा के विषय में संदेश देते हुये यक्ष कहता है कि जब कभी मैं स्वप्नावस्था में तुमसे मिलने के लिए हाथों को फैलाता हूँ तब वनदेवता भी रोने लगते हैं-

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति॥

अन्वय- हे प्रिये! स्वप्नदर्शनेषु मया कथमपि लब्धायाः ते निर्दयाश्लेषहेतोः आकाशप्रणिहितभुजम् माम् पश्यन्तीनाम् स्थलीदेवतानाम् मुक्तास्थूलाः अश्रुलेशाः तरूकिसलयेषु बहुशो न पतन्ति (इति) न खलु।

शब्दार्थः- हे प्रिये! स्वप्नसंदर्शनेषु- स्वप्नमय ज्ञान में, मया-मुझ यक्ष के द्वारा, कथमपि-किसी भी प्रकार से, लब्धायाः- प्राप्त हुई, ते- तुम्हारे, निर्दयाश्लेषहेतोः-प्रगाढ आलिंगन के कारण,

आकाशप्रणिहितभुजम्–आकाश में प्रसार हुई भुजा वाले, माम्– मुझ को, पश्यन्तीनाम्– देखती हुई, स्थलीदेवतानाम्– वनदेवियों के, मुक्तास्थूलाः– मोतियों के समान स्थूल, अश्रुलेशाः– आसूं की बूंदे, तरूकिसलयेषु–वृक्षों के पल्लवों पर, बहुशो–बहुलता से, न पतन्ति– नहीं गिरती है

अनुवादः– हे प्रिये! स्वप्नमय ज्ञान में मुझ यक्ष के द्वारा किसी भी प्रकार से प्राप्त हुई तुम्हारे प्रगाढ आलिंगन के कारण आकाश में प्रसारित भुजा वाले मुझ को देखती हुई वनदेवियों के मोतियों के समान स्थूल आंसू की बूंदे तरू के पल्लवों पर बहुलता से नहीं गिरती है। अवश्य ही गिरती है। अर्थात् स्वप्नकालीन ज्ञान में मेरे द्वारा किसी तरह से प्राप्त हुई तुम्हारे प्रगाढ आलिंगन के कारण आकाश में प्रसारित भुजा वाले मुझ यक्ष को देखती हुई वनदेवियों के मोतियों के समान स्थूल आंसू की बूंदे तरू के पल्लवों पर बहुलता से नहीं गिरती है, ऐसा नहीं है। पत्तों पर मोटी ओस की बूंदे मानो वनदेवी के आंसू है।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः–

प्रणिहितः	–	प्र+नि उपसर्ग पूर्वक धा+क्त
आश्लेषः	–	आ+श्लिष्+घञ्
लब्धायाः	–	लभ+क्त+टाप्–लब्धा, ष.एक.
स्वप्नः	–	स्वप्+नन्

समासः–

आकाश प्रणिहित भुजम्	–	आकाशेप्रणिहितौ भुजौ यस्य (बहु.)
निर्दयाश्लेषहेतोः	–	निर्गतादया यस्मात् सः निर्दयः (बहु.)
स्वप्नसंदर्शनेषु	–	स्वप्ने संदर्शनानि, तेषु (सुप्सुपा समास)
मुक्तास्थूलाः	–	मुक्ता इव स्थूलाः (उपमित समास)
अश्रुलेशाः	–	अश्रुणां लेशाः (ष.त.)

छन्द–अलंकार योजनाः– प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा इव का लोप होने के कारण लुप्तोपमा अलंकार है।

कोषः– स्वप्नः सुप्तस्य विज्ञानम् (विश्वः)। दर्शनं समये शास्त्र दृष्टो स्वप्नेऽक्षि संविदि (शब्दार्णवः)।

विशेष टिप्पणीः यक्ष मेघ को प्रिया के सपने में मिलने की वार्ता कह रहा है।

(13) प्रसंग– यक्ष अपनी विरह अनुभूति की तीव्रता का वर्णन कर रहा है–

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा,
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।
इत्थं चेतश्चटुलनयने ! दुर्लभप्रार्थनं मे,
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद् वियोगव्यथाभिः॥

अन्वय– (हे चटुलनयने!) दीर्घयामा त्रियामा क्षण इव कथं संक्षिप्येत? अहरपि सर्वावस्थासु कथं मन्दमन्दातपं स्यात्? हे चटुलनयने ! इत्थं दुर्लभ प्रार्थनं मे चेतः गाढोष्माभिः त्वत् वियोगव्यथाभिः अशरणं कृतम्।

शब्दार्थ- हे चटुल नयने!- हे चञ्चल नयनों वाली प्रिये!, दीर्घयामा- दीर्घ प्रहरों वाली, त्रियामा- रात, क्षण इव- पल के सदृश, कथं- किस प्रकार, संक्षिप्येत्- लघु हो जाए, अहरपि- दिन भी, सर्वावस्थासु- सकल स्थितियों में, कथं- कैसे, मन्दमन्दातपं- अत्यन्त न्यून संताप वाला, स्यात्- हो जाये?, इत्थं- इस प्रकार, दुर्लभ-अप्राप्य , प्रार्थनं- मनोरथों वाला, मे- मेरा, चेतः- मन, गाढोष्माभिः अत्यन्त संताप देने वाली, त्वत्- तुम्हारी, वियोग व्यथाभिः- विरह वेदना से, अशरणं- अनाथ, कृतम्- बना दिया गया है।

अनुवाद- हे चंचल नयनों वाली प्रिये! दीर्घ प्रहरों वाली रात पल के समान कैसे लघु हो जाये तथा दिन भी सकल स्थितियों में कैसे अत्यन्त न्यून संताप वाला कैसे हो जाये? इस प्रकार अप्राप्य मनोरथों वाला मेरा मन अत्यन्त संताप वाली तुम्हारी विरह वेदना से अनाथ बना दिया गया है। अर्थात् दीर्घ प्रहरों वाली रात पल के समान तथा दिवस भी सकल स्थितियों में अत्यन्त न्यून संताप वाला कैसे हो सकता है? इस प्रकार अप्राप्य मनोरथों वाला मेरा मन अत्यंत संताप वाली तुम्हारी विरह वेदना से असहाय बना दिया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

संक्षिप्येत	-	सम्+क्षिप्+विधिलिङ्. प्र. एक.
कृतम्	-	कृ+क्त

समासः-

दीर्घयामा	-	दीर्घाः यामाः यस्यां सा (बहु.)
त्रियामा	-	त्रयो यामाः यस्याम् (बहु.)
सर्वावस्थासु	-	सर्वाश्च ताःअवस्थाः तासु (कर्मधारय)
चटुलनयने	-	चटुले नयने यस्याः सा (बहुव्रीहि)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मंदाक्रांता छंद है तथा परिकर अलंकार है।

लक्षणः-'उक्तिर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः'

कोषः-शरणं गृहरक्षित्रोः (अमरकोशः)निशा निशीथिनी रात्रि स्त्रियाम् क्षणदा क्षपाः (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणीः- प्रस्तुत पद्य में यक्ष द्वारा विरही जन की व्यथा का वर्णन किया गया है। अपनी वेदना के द्वारा यक्षिणी को अपना संदेश भी सुना रहा है।

(14) प्रसंग- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष प्रिया को सान्त्वना देता हुआ कहता है-

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि! त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तम् सुखमुपनतं दुःखमेकांततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥

अन्वय- ननु! बहु विगणयन् आत्मानं आत्मना एव अवलम्बे। तत् कल्याणि। त्वमपि नितरां कातरत्वं मा गमः। कस्य अत्यन्तं सुखं एकान्ततो दुःखं उपनतम्? दशा चक्रनमिक्रमेण नीचैः उपरि च गच्छति।

शब्दार्थ- बहु विगणयन्- अत्यधिक विचार करते हुए, आत्मानं आत्मना एव-स्वयं को स्वयं ही, अवलम्बे- धारण करता हूँ। तत ् कल्याणि- हे कल्याणकारिणि! त्वमपि- तुम भी, नितरां-अत्यंत,

कातरत्वं-दु:खी, मा गम:-मत होना, कस्य- किस मनुष्य को, अत्यन्तं सुखं- अत्यन्त सुख, एकांततो- निरंतर, दु:खं उपनतम्- दु:ख ही मिला है ? दशा-स्थिति, चक्रनेमिक्रमेण- पहिये की परिधि के क्रम से, नीचै:- निम्न, उपरि-ऊपर, च गच्छति- प्रवर्तित होती रहती है।

अनुवाद- हे प्रिये ! अत्यधिक विचार करते हुए स्वयं को स्वयं के द्वारा ही धारण करता हूँ। अत: हे कल्याणकारिणि ! तुम भी अत्यन्त संताप युक्त मत होना। जीवन में किस व्यक्ति को अत्यन्त सुख या दु:ख मिला है, क्योंकि जीवन की स्थिति पहिये की परिधि के क्रम के समान नीचे ऊपर होती रहती है। अर्थात् हे प्रिये! मैं अत्यधिक विचार करते हुए अपने को अपने में ही धारण करता हूँ। हे कल्याणकारिणि! तुम भी अधिक दु:खी मत होना। जीवन में किस व्यक्ति को निन्तर दु:ख या निरन्तर सुख प्राप्त होता है। क्योंकिजीवन की स्थिति पहिये की परिधि के क्रम के समान नीचे ऊपर होती रहती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी:-

विगणयन्	-	वि+गणि (णिच्)+लट् को शतृ, प्र. एक.
अवलम्बे	-	अव+लम्ब्+लट्, उत्तम पुरुष एकवचन
कातरत्वं	-	कु+तृ+अच्, कु को 'का' आदेश कातर+त्व

समास:-

चक्रनेमिक्रमेण - चक्रस्य नेमि: चक्रनेमि: (ष.त.)

छन्द-अलंकार योजना:- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रान्ता छंद है तथा सामान्य कथन का विशेष कथन से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

कोष:- प्रश्नावधारणानुज्ञानऽनुनयाऽऽमन्त्रणे ननु (अमरकोश:)। चक्रं रथांङ्ग तस्यान्ते नेमि: स्त्री स्यात् प्रधि: पुमान् (अमरकोश:)। क्रम: शक्तौ परिपाटयाम् (विश्व:)।

विशेष टिप्पणी:- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष द्वारा अपनी स्थिति का वर्णन करके तथा उसे सुनकर यक्षिणी घबरा न जाए, इस प्रकार विचार करते हुए उस यक्षिणी को सान्त्वना देते हुए अपनी विरह के बाद की स्थिति का वर्णन किया गया है।

(15) प्रसंग- यक्ष शापांत का काल निकट बताते हुये तथा उसे सहज भाव से यापित करने के लिए कह रहा है-

शापांतो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।
पश्चादावां विरहगणितं तं तमात्माभिलाषं,
निर्वेक्ष्याव: परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु॥

अन्वय- (हे प्रिये) शार्ङ्गपाणौ भुजगशयनात् उत्थिते मे शापांत: (भविष्यति) शेषान् चतुरो मासान् लोचने मीलयित्वा गमय। पश्चात् आवां विरहगणितं तं तं आत्मभिलाषं परिणतशरत् चन्द्रिकासु क्षपासु निर्वेक्ष्याव:।

शब्दार्थ:- शार्ङ्गपाणौ- भगवान विष्णु के, भुजंगशयनात्- शेषनाग रूपी शय्या से, उत्थिते- जागृत होने पर, मे शापांत:- मेरे शाप का अन्त (भविष्यति होगा), शेषान्-शेष, चतुरो मासान्- चार मास को,

लोचने-नयनों को, मीलयित्वा-बंद करके, गमय-व्यतीत करो। पश्चात्- इसके बाद में, आवां- हम दोनों, विरहगणितं- विरह काल में गणना किये गये, तं तं- उस-उस, आत्मभिलाषं- अपने मनोरथ का, परिणतशरत् चन्द्रिकासु- शरद् ऋतु की पूर्ण चांदनी वाली, क्षपासु- रात्रियों में निर्वेक्ष्यावः-भोग करेंगे।

अनुवार- हे प्रिये! भगवान विष्णु के शेषनाग रूपी शय्या से जागृत हो जाने पर मेरे शाप का अंत हो जाएगा तथा शेष चार मास को नयनों को बंद करके ही व्यतीत कर देंगे। इसके बाद हम दोनों विरह काल में गणना किये गये उस-उस अपने मनोरथ को शरद् ऋतु की चांदनी रातों में प्राप्त करेंगे। अर्थात् भगवान विष्णु के शेषनाग रूपी शय्या से जाग जाने पर मेरे शाप का अंत हो जायेगा। तथा शेष चार मास आँखे बंद करके व्यतीत हो जायेंगे। फिर इसके बाद हम दोनों विरह काल में गणना की गई उन-उन अपने मनोरथों का शरत्ऋतु की चांदनीयुक्त रातों में भोग करेंगे।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

उत्थिते	-	उद्+स्था+क्त, स.एक.
गमय	-	गम्+णिच्, लोट्, म. एक.
मीलयित्वा	-	मील+क्त्वा
निर्वेक्ष्यावः	-	निर्+विश्+लृट्, उत्तम पुरुष द्विवचन

समासः-

शापांतः	-	शापस्य अंतः (ष.त.)
भुजंगशयनात्	-	भुजगः एव शयनम् (कर्मधारय)
विरहगणितम्	-	विरहे गणितम् (स.त.)
आत्माभिलाषः	-	आत्मनोः अभिलाषः (ष.त.)
परिणतशरच्चन्द्रिकासु	-	परिणताः शरच्चन्द्रिकाः यासां (बहु.)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा शाप के अंत के बाद मन की इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए कहने पर उदात्त अलंकार है।

लक्षणः-'लोकातिशयसम्पत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते

यद्वापि प्रस्तुतस्यांङ्गं महतां चरितं भवेत्'

कोषः- निर्वेशो भृतिभोगयोः (अमरकोशः)। त्रियामा क्षणदा क्षपा रात्रिः (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणीः- प्रस्तुत श्लोक में देव उत्थापनी एकादशी को विष्णु भगवान के जागने पर शाप का अन्त तथा इसके बाद अपनी मनः स्थिति का वर्णन यक्ष द्वारा किया गया है।

(16) प्रसंग- यक्ष अपने संदेश देने के पश्चात् कहता है कि हे प्रिये! मेरे प्रति अविश्वास मत करना। हम लोगों का प्रेम, विरह में भोग न होने के कारण प्रतिदिन बढ रहा है-

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा,
मा कौलीनादसितनयने! मय्यविश्वसिनी भूः।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगात्
इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति॥

अन्वय- हे असितनयने! एतस्मात् अभिज्ञानदानात् मां कुशलिनं विदित्वा कौलीनात् मयि अविश्वसिनी मा भूः। स्नेहान् विरहे किमपि ध्वंसिनः आहुः। तु ते अभोगात् इष्टे वस्तुनि उपचित रसाः (सन्तः) प्रेमराशी भवन्ति।

शब्दार्थः- हे असितनयने-हे कृष्ण नेत्रों वाली, एतस्मात्- इस , अभिज्ञानदानात्- जानने योग्य चिह्न देने से, मां कुशलिनं- मेरी कुशलता, विदित्वा-जानकर, कौलीनात्-जनप्रवाद के कारण, मयि- मुझ यक्ष के विषय में, अविश्वसिनी-अविश्वास से युक्त, मा भूः-मत होना। स्नेहान्- प्रीति को , विरहे- विरह काल में, किमपि-कुछ लोग, ध्वंसिनः आहुः- नष्ट हो जाने वाली कहते। तु- तो, ते-वह प्रीति, अभोगात्= भोग के अभाव से, इष्टे-इच्छित, वस्तुनि-विषय में, उपचित रसाः- प्रवृद्ध रसवाली होकर, प्रेमराशी भवन्ति-स्नेह की निधि हो जाती है।

अनुवाद- हे कृष्ण नेत्रों वाली प्रिये! इस जानने योग्य चिह्न देने से मेरी कुशलता को जानकर जनप्रवाद के कारण मुझ यक्ष के विषय में अविश्वास से युक्त मत होना। कुछ लोग विरह काल में प्रीति को नष्ट हो जाने वाली कहते है, किन्तु वह प्रीति भोग के अभाव से इच्छित विषय में प्रवृद्ध रस वाले स्नेह की निधि हो जाती है। अर्थात् मेरी कुशलता को जानकार भी तुम्हारे द्वारा लोकप्रवाद से अविश्वासी नहीं होना चाहिए, क्योंकि विरह काल में मनुष्य द्वारा प्रीति को नष्ट माना जाता है किन्तु वह प्रीति तो भोग के अभाव में इच्छित विषय में प्रवृद्ध रस वाले स्नेह की निधि हो जाती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

कुशलिनम्	-	कुशल+ इनि, द्वि. एक.
अभिज्ञानम्	-	अभि+ज्ञा+ल्युट् (यु को अन्)
विदित्वा	-	विद्+क्त्वा
कौलीनात्	-	कुल+ ख प्रत्यय, ख को ईन- कुलीन+अण्- कौलीन, प.एक.
आहुः	-	ब्रू धातु, लट् लकार प्र. बहु.(ब्रू को आह आदेश, झि को उस्)

समासः-

अभिज्ञान दानात्	-	अभिज्ञानस्य दानम् (ष.त.)
असितनयने	-	असिते नयने यस्याः (बहुव्रीहि)
अविश्वासिनी	-	न विश्वासिनी(नञ् समास)
उपचितरसाः	-	उपचिताः रसाः येषु (बहुव्रीहि)
प्रेमराशीभवन्ति	-	प्रेम्णां राशयः (ष.त.)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा सामान्य कथन का समर्थन विशेष कथन से करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

कोषः- स्यात् कौलीनं लोकवादे युद्धे पश्वहिपक्षिणाम् (अमरकोशः)। रसे गन्धे रसः स्वादे तिक्तादौ विषरागयोः (विश्वः)।

विशेष टिप्पणीः- प्रस्तुत पद्य में यक्ष द्वारा यक्षिणी को अपनी कुशलता का समाचार देकर अविश्वासी न होने के लिए कहता है।

(17) प्रसंग- यक्ष मेघ से कहता है कि आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है, ऐसा मुझे विश्वास है, इस प्रकार प्रश्नपूर्वक अपनी बात कहता है-

कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे,
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव॥

अन्वयः- हे सौम्य ! इदं में बन्धुकृत्यं त्वया व्यवसितम् कच्चित्। पत्यादेशात् भवतः धीरतां न खंलु कल्पयामि। याचितः (सन्) निःशब्दः अपि चातकेभ्यः जलं प्रदिशसि। हि सता प्रणयिषु ईप्सितार्थ क्रिया एव प्रत्युक्तम्।

अन्वयः- हे सौम्य! - हे सरल स्वभाव वाले, इन्द- इस में - मेरा, बंधुकृत्यं- मित्र के द्वारा कृत कार्य, त्वया- तुम्हारे द्वारा, व्यवसितम्- निश्चित कर लिया गया है, कच्चित्- क्या, प्रत्यादेशात्- करुंगा' इस प्रकार उत्तर देने से, भवतः- तुम मेघ की, धीरतां- गम्भीरता को, खलु न कल्पयामि- समर्थन नहीं करता है, याचितः- याचना करने पर, निःशब्दः- शब्द किये बिना, अपि- भी, चातकेभ्यः- चातकों को, जलं-पानी, प्रदिशसि- प्रदान करते हो, हि- क्योंकि, सतां- सज्जन का, प्रणयिषु- प्रार्थीजनों के विषय में, ईप्सितार्थक्रिया एव- इच्छित कार्य का समापन ही, प्रत्युक्तम्- प्रत्युत्तर हुआ करता है।

अनुवाद- हे सरल स्वभाव वाले मेघ! क्या तुमने इस बन्धुकृत्य (मित्र कर्त्तव्य) का निश्चय कर लिया है। 'करूंगा' इस प्रकार का तुम्हारा उत्तर तुम्हारी गम्भीरता का समर्थन नहीं करता है। (तुम्हारे महान आचरण के अनुकूल नहीं है।) याचना करने पर तुम बिना शब्द किये हुये भी चातको को जल प्रदान करते हो क्यों कि सज्जनों का प्रार्थीजनों के विषय में अभीष्ट कार्य का सम्पादन ही प्रत्युत्तर होता है। अर्थात् मेघ के द्वारा मित्र के कार्य का सम्पादन करने के लिए निश्चय ही कर लेने पर उसका प्रत्युत्तर गम्भीरता का समर्थन नहीं करता है। मेघ याचना करने पर बिना उत्तर दिये ही चातकों को जल प्रदान करता है। क्योंकि सज्जन पुरुषों का प्रार्थीजनों के लिए इच्छित कार्य का सम्पादन ही उत्तर हुआ करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

प्रत्यादेशात्	-	प्रति+आ+दिश्+घञ्, प.एक.
धीरताम्	-	धीर+त+टाप्, द्वि.एक.
कल्पयामि	-	कृप्+णिच्+लट्, उ.एक.
याचितः	-	याच्+क्त (इडागम)
प्रत्युक्तम्	-	प्रति+वच्+क्त
प्रणयिषु	-	प्रणय+इनि, स. बहु.
सताम्	-	अस्+शतृ, ष.बहु.

समासः-

बन्धुकृत्यम्	-	बन्धोः कृत्यम् (ष.त.)
निःशब्दः	-	निर्गतः शब्दः यस्यात् (बहुव्रीहि)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा सामान्य कथन का विशेष कथन से समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

कोषः- कच्चित् कामप्रवेदने (अमरकोशः)। उक्तिराभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वचः (शब्दार्णवः)।

विशेष टिप्पणीः-प्रस्तुत श्लोक में मेघ द्वारा अपने कार्य के सम्पादन के लिए निश्चय किया गया है।

(18) प्रसंग- अंत में यक्ष मेघ को अपने करणीय कार्य को करने की प्रार्थना के साथ ही उसे (मेघ को अपनी पत्नी विद्युत् से वियोग न होवे) इस मंगलकामना के साथ विदाई दे रहा है।

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे,
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या।
इष्टान् देशान् विचर जलद ! प्रावृषा सम्भृतश्री,
मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः॥

अन्वय- हे जलद ! सौहार्दात् वा, विधुर इति वा, मयि अनुक्रोशबुद्धया वा अनुचितप्रार्थनावर्तिनः मे एतत् प्रियं कृत्वा प्रावृषा सम्भृतश्रीः (सन्)इष्टान् देशान् विचर। क्षणं अपि ते विद्युता विप्रयोगः एवं मा भूत्।

शब्दार्थः- हे जलद- हे मेघ, सौहार्दात् वा- प्रेम के कारण अथवा, विधुर इति वा-विरही होने के कारण, मयि- मुझ पर, अनुक्रोश बुद्धया वा- अथवा करुणा के कारण, अनुचित प्रार्थना वर्तिनः- अनुचित रूप से याचना करने वाले, मे- मेरे, एतत्= इस, प्रियं कृत्वा-प्रिय कार्य को पूर्ण करके, प्रावृषा-बरसात से, सम्भृतश्रीः-प्रवृद्ध शोभा वाले, इष्टान्- इच्छित, देशान्-प्रदेशों में, विचर- घूमना। क्षणं अपि- क्षणभर के लिए भी, ते-तुम्हारा, विद्युता-बिजली के साथ, विप्रयोगः- वियोग, एवं मा भूत- इस प्रकार नहीं होवे।

अनुवादः- हे वारिद! प्रेम के कारण अथवा विरही हाने के कारण, मुझ पर करुणा भाव से अनुचित प्रार्थना करने वाले मेरे इस प्रिय कार्य को पूर्ण करके बरसात से प्रवृद्ध शोभा वाले होकर इच्छित प्रदेशों में घूमना। तथा क्षण भर के लिए भी तुम्हारा बिजली के साथ मेरे समान वियोग न हो। अर्थात् हे मेघ! तुम यक्ष के प्रेम के कारण यक्ष की याचना को पूर्ण करके बरसात से प्रवृद्ध शोभा वाले होकर इच्छित प्रदेशों में घूमना तथा क्षण भर के लिए भी बिजली के साथ तुम्हारा वियोग न हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः-

सौहार्दात्	-	सुहृद्+अण्
विधुरः	-	विधुर्+अ
अनुक्रोश	-	अनु+क्रुश्+घञ्
विचर	-	वि उपसर्गपूर्वक चर् धातु, अकर्मक
संभृता	-	सम्+भृ+क्त+टाप्
विप्रयोगः	-	वि+प्र+युज्+घञ् (ज् को कुत्व ग्)

समासः-

अनुचित प्रार्थनावर्तिनः	-	अनुचिता प्रार्थना (कर्मधारय)
विधुरः	-	विगता धूः यस्य सः (बहुव्रीहि)

अनुक्रोश बुद्धया – अनुक्रोशस्य बुद्धिः (ष.त.)

संभृतश्रीः – संभृता श्रीः यस्य सः (बहुव्रीहि)

छन्द-अलंकार योजनाः- प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा लिंगसाम्य के कारण मेघ पर नायक व्यवहार का तथा विद्युत् पर नायिका के व्यवहार का आरोप होने के कारण समासोक्ति अलंकार है।

लक्षणः- 'समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणैः

व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः।'

कोषः- विधुरं तु प्रविश्लेषे (अमरकोशः)। स्त्रियं प्रावृट् स्त्रियां भूम्नि वर्षाः(अमरकोशः)। कृपा दयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशः (अमरकोशः)।

विशेष टिप्पणीः- प्रस्तुत श्लोक में यक्ष द्वारा मेघ से संदेश कार्य पूर्ण करने पर लिए कहता है तथा उस यक्षिणी की मंगल कामना की गई है।

8.3 पारिभाषिक शब्दावली

पद्मिनी स्त्री – यक्ष के द्वारा मेघ को क्षण भर प्रतीक्षा करने के लिए इसीलिए कहा गया है क्योंकि यक्ष की पत्नी पद्मिनी स्त्री है

आयुष्मन् – प्रस्तुत श्लोक में विपत्ति प्राप्त मनुष्य से सबसे पहले कुशलक्षेम पूछनी चाहिए, इस बात को संकेतित किया है। आयुष्मन् शब्द प्रशसा अर्थ में माना जाता है।

धातुरागैः- गेरू आदि रंगने वाले द्रव्यों से

उदात्त अलंकार – प्रस्तुत श्लोक में मन्दाक्रांता छंद है तथा शाप के अंत के बाद मन की इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए कहने पर उदात्त अलंकार है।

8.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सा.....न्तरात्मा।
   प्रस्तुत श्लोक की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
2. तस्मिन् काले.....गाढोपगूढम्।
   प्रस्तुत श्लोक की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
3. इत्यादख्याते.....किंचिदूनः।
   प्रस्तुत श्लोक की सदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
4. श्यामास्वङ्गं.....सादृश्यमस्ति।
   प्रस्तुत श्लोक की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
5. नन्वात्मानं.....चक्रनेमिक्रमेण।
   प्रस्तुत श्लोक की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
6. शापान्तो .....क्षपासु।
   प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
7. एतस्मान्मां.....भवन्ति।

प्रस्तुत श्लोक की पठित अंशों के आधार पर संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

बोध प्रश्नोत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 8.2 का संबद्ध श्लोक 3 देखें।
2. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 8.2 का संबद्ध श्लोक 5 देखें।
3. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 8.2 का संबद्ध श्लोक 7 देखें।
4. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 8.2 का संबद्ध श्लोक 10 देखें।
5. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 8.2 का संबद्ध श्लोक 14 देखें।
6. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 8.2 का संबद्ध श्लोक 15 देखें।
7. इस प्रश्न के उत्तर के लिए 8.2 का संबद्ध श्लोक 16 देखें।

8.5 सारांश

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने महाकवि कालिदास के ग्रन्थ मेघदूत के प्रमुख श्लोकों की विस्तृत व्याख्या का अध्ययन किया है। इन श्लोकों की व्याख्या द्वारा यह तथ्य भी उद्घादित हुआ है कि ये श्लोक किस प्रकार मानव हृदय की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

8.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Works of Kalidasa- C.r. Devadhar : Moti Lal Banarasidas Delhi,2002.
2. मेघदूत– संपा. आचार्य शेषराज शर्मा, रेग्मी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,1954.
3. मेघदूतम्– संपा. डॉ. बिजेन्द्र शर्मा, साहित्य भण्डार, मेरठ,1996.
4. मेघदूत– संपा. डॉ. अर्कनाथ चौधरी, जगदीश संस्कृत प्रकाशन, जयपुर 1992.
5. कालिदास परिशीलन–संपा. प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 1956.।
6. कालिदास की समीक्षा परम्परा– संपा. प्रो. राधावल्लभ, त्रिपाठी, हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर 2013.

इकाई – 9

मेघदूत की प्रमुख सूक्तियों की सप्रसंग व्याख्या

ईकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 मेघदूत की प्रमुख सूक्तियाँ

9.2.1 मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः ।
कण्ठाश्लेष प्रणायिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।।

9.2.2 कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।

9.2.3 याञ्चा मेघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।

9.2.4 आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यः पाति प्रणयिह्रदयं विप्रयोगे रुणाद्धि ।

9.2.5 न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय,
प्राप्ते मित्रे भवति विमुख : किं पुनर्यस्तथोच्चैः ।।

9.2.6 रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ।

9.2.7 स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभमो हि प्रियेषु ।

9.2.8 मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या : ।

9.2.9 आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ।

9.2.10 के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्ना ।

9.2.11 सूर्याऽपाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ।

9.2.12 प्रायः सर्वो भवति करूणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ।

9.2.13 कान्तोदन्तः सुह्रदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः ।

9.2.14 कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा ,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।।

9.2.15 स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा ।
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा : प्रेमराशी भवन्ति ।

9.2.16 प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ।

9.3 पारिभाषिक शब्दावली

9.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.5 सारांश

9.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेगें कि उपमा सम्राट महाकवि कालिदास द्वारा रचित खण्डकाव्य मेघदूत में कौन – कौन सी सूक्तियों का प्रयोग हुआ है । तथा इन सूक्तियों का महाकवि ने किन सन्दर्भों में प्रयोग किया है । ये समस्त सूक्तियाँ लोक में किस प्रकार प्रचलित रही हैं एवम् इन सूक्तियों ने महाकवि के काव्य को कैसे सरसता प्रदान की है। इन सूक्तियों की

व्याख्या के साथ ही उनके कलापक्ष और भाव पक्ष पर भो पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला गया है और आप इस सम्बन्ध में भो ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास द्वारा रचित मेघदूत गीतिकाव्यों का चूड़ामणि है । महाकवि की परिपक्व कला, कल्पना की ऊँची उड़ान, परिष्कृत माधरी भरी भाषा, विषय की धारावाहिक गति एवं गीति की एकतानता का यह ऐसा अद्भद् नमूना है। जिसकी टक्कर का विश्वभर में दूसरा कोई काव्य नही है । इसी कारण विद्वत् समाज सदियों से ''मेंघे माघे गतं वयः '' कहता आ रहा है ।

मेंघदूत 'मन्दाक्रान्ता ' छन्द में लिखा हुआ ह । काव्य में 121 पद्य है । इसमें कुबेर के शाप से प्रिया वियुक्त हुए यक्ष के व्यथित ह्रदय की वेदना भरी कहानी है । ह्रदय को द्रवित कर देने वाली ''विप्रलम्भ'' की एक करूण गीतिका है । यह काव्य दो भागों में विभाजित है –पूर्वमेघ और उत्तर मेघ ।

कालिदास के इस काव्य का कोई पौराणिक तथा ऐतिहासिक आधार नही है यह काव्य तो नितांत कल्पना प्रसूत है किन्तु इसी काव्य द्वारा कालिदास को दूतकाव्यों की परम्परा चलाने का श्रेय दिया जाता है । विद्वत समाज तो यहाँ तक कहता है कि यदि कालिदास ''रघुवंश '' और ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' नही भो लिखते तो भो कवल ''मेघदूत'' के आधार पर विश्व इन्हे प्रकाण्ड महाकवियों में गिनता ।

मेघदूत का भारत में ही नही अपितु विदेशों में भो गहरा प्रभाव पड़ा है । यथा –जर्मन विद्वान श्वेट्ज ने मेघदूत का जर्मन गद्य में और प्रौ. मैक्समूलर ने जर्मन पद्य में अनुवाद किया । अमेरिका के आर्थर राइड़र ने अंग्रेजी में मेंघदूत का पद्यानुवाद किया है । मेंघदूत पर वर्तमान में 40 से ज्यादा टीकाएँ हैं । जो इसकी लोकप्रियता को सिद्ध करती हैं ।

टीकाकारों में मल्लिनाथ ही सुप्रसिद्ध है । इस ग्रन्थ के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ना तो ऐसा ग्रन्थ भ्तकाल में लिखा गया था और ना ही अब भविष्य काल में लिखा जाएगा न भ्तो न भविष्यति

प्रस्तुत इकाई में महाकवि ने विरही यक्ष के मुख से कौनसी सूक्तियाँ कहलवायी है उन सभो सूक्तियों के भाव विस्तार को पर्याप्त विस्तारित किया गया है । प्रत्येक सूक्ति के भाव को विस्तार पूर्वक समझाया गया है और महाकवि के इस अद्भद् खण्डकाव्य के अध्ययन में यह आपकी रूचि उत्पन्न करती है ।

9.2 मेघदूत की प्रमुख सूक्तियों की सप्रसंग व्याख्या

9.2.1 मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्तिचेतः ।
कण्ठाश्लेषप्रणायिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।।

प्रसंग – प्रस्तुत सूक्ति सरस्वती के वरद् पत्र, महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत के पूर्व मेघ से उद्धृत है । मेघदूत में दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि द्वारा नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्यथित हुए यक्ष की मार्मिक दशा का वर्णन किया गया है।

सन्दर्भ – वर्षा ऋतु में पर्वत शिखर का आलिंगन करते हुए मेघ को देखकर यक्ष दीर्घ काल तक अपनी नवविवाहिता पत्नी के लिए चिन्तामग्न हो गया । उसी सन्दभ में यह सूक्ति कथित है –

व्याख्या – मेघ का दर्शन होने पर सुखी व्यक्ति का चित्त भो विकारित हो जाता है । फिर कण्ठ के आलिंगन करने के इच्छुक व्यक्ति के दूर स्थित होने पर तो कहना ही क्या है। अर्थात् वर्षा ऋतु में जब जल भरे मेंघ का दर्शन होता है तो जिस व्यक्ति की पत्नी अथवा

प्रेयसी उसके पास होती है । वह व्यक्ति भो विकृत चित्त वाला तथा काम भाव से पीड़ित हो जाता है और अपनी पत्नी का संयोग प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जाता है।

ऐसी तु में जिस व्यक्ति की पत्नी या प्रेमिका उसके गले लगकर उसका आलिंगन करना चाहती है और वह उससे दूर स्थित होने के कारण यह कर नही पा रहा है। उस प्रेमी या पति की क्या दशा होगी उसका तो वर्णन ही नही किया जा सकता है ।

कहने का अर्थ यह है कि वर्षा कालारम्भ का समय बडा ही उद्दीपक होता है और ऐसे उद्दीपक समय में जल भरे मेघ का दर्शन होने पर जो सुखी व्यक्ति है अर्थात् जिनकी प्रिया उनके पास ही स्थित है उन लोगों का चित्त भो विकार भाव को प्राप्त हो जाता है अथवा काम भाव से पीडित हो जाता है ।

फिर विरही तो विरही ही है तथा दूर देश में जहाँ पर चिटठी पत्री भो पहुँचना दुर्लभ है , उस स्थान पर उसकी प्रिया एकान्त अवस्था में वास कर रही है । वह प्रिया जो ऐसे वर्षाकाल में उस यक्ष के गले लगकर उसका आलिंगन करना चाहती है तथा दूर स्थित होने के कारण वह ऐसा करने में समर्थ नहो हो रही है । उस प्रेमी पति की क्या दशा होगी उसका तो वर्णन ही नही किया जा सकता है । यह तो केवल वही व्यक्ति जान सकता है जो स्वयं भक्तभोगी है।

भावपक्ष –

1. कण्ठाश्लेष प्रणयिनि – यह पदावली सामान्य तथ्य का चित्रण करती है किन्तु साथ ही कवि ने दूर स्थित तथा आलिंगन हेतु उत्सुक यक्ष की पत्नी का ही विशेष संकेत किया है ।
2. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा – सारोद्धारिणी के अनुसार '' अन्यथावृत्ति का अर्थ 'अस्वस्थ्यम् या प्रचलोत्कलिकाकुलम् '' इस प्रकार है इसके लिए ऋतुसंहार का निम्न पद्य दृष्टव्य है –

ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जरस्तड़ितपताकेाऽशनिशब्दमर्दनः ।
समागतो राजवदुद्धतद्युतिर्घनागमः कामिनप्रियः प्रिये । ।

हे प्रियः ! जिसके जल भरे मेघ ही मतवाले हाथी है, विद्युत् ही जिसकी पताका है, बज्र के भो शब्द को अभिभ्त कर देने वाली, कामी पुरुषों को प्रिय उद्धत कान्ति वाली वर्षा ऋतु राजा के समान आ गई है।

कलापक्ष –

मेघालोके – मेघस्य आलोकः तस्मिन् (षष्ठी तत्तपुरूष) अन्यथावृत्ति : अन्यथाभ्ता वृत्तिः व्यापारो यस्य, तत् (बहुब्रीहि) कण्ठाश्लेषप्रणयिनि–कण्ठस्य आश्लेषः (षष्ठी तत्तपुरूष), कण्ठाश्लेषे प्रणयी, तस्मिन् सप्तमी (तत्पुरूष) । सुखिनः – सुखम् अस्ति अस्य (अत इनिठनौ से इनि प्रत्यय) इति सुखी, तस्य सुखिनः (षष्ठी एकवचन)

रस –अलंकार – छन्द–

मेंघ श्रृंगार रस का उद्दीपक है अतएवं पद्य में विप्रलम्भ श्रृंगार रस है । मन्दाक्रान्ता छन्द है। किं पुनर्दूरसंस्थे' में अर्थापत्ति अलंकार है ।

कोष –

चित्त तु चेतो ह्रदयं स्वान्तं ह्रन्मानसं मनः (अमरकेाषः) आलेाको दर्शनोद्यतौ (अमरः)।

9.2.2 कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।

प्रसंग –

प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

सन्दर्भ –

सन्देश धारण करना और ले जाना चेतन सत्ता का धर्म है । किन्तु अचेतन मेघ सन्देशवाहक कैसे हो सकता है इसी जिज्ञासा का समाधान करते हुए उपरोक्त सूक्ति उद्धृत है ।

व्याख्या –

निश्चित ही काम से पीड़ित व्यक्ति चेतन और जड़ के विषय में स्वभाव से ही दीन होते हैं अर्थात् काम से सन्तप्त व्यक्ति निश्चित ही अपना विवेक खो देता है । वह यह भो नही देखता है कि जो कार्य वह कर रहा है वह तार्किक है अथवा नही । यक्ष भो धुंआ, अग्नि, वायु, जल के समूह मेघ से अपना सन्देश ले जाने की प्रार्थना करता है । किन्तु उसकी विरह वेदना इतनी अधिक है कि उसे यह भो नही सूझता कि यह अचेतन मेघ मेरा संदेश वाहक कैसे हो सकता है।

वास्तव में यह लोकसामान्य तथ्य है कि कामातुर जन जड़ चेतन में भद नही देख कर सभो के सामने दीन वचनों से याचना करने लगता है । यक्ष को भो यह सब सोचने की फुर्सत नही थी वह कामनाओं से कातर था, औत्सुक्य से अति था 'आरत के चित्त रहै न चेतु '' वह होश में नही था ।

ऐसा प्रायः देखा गया है कि प्रेम वियोग की पीड़ा से लोग व्यथित् होते हैं , वे चेतन –अचेतन, बड़े –छोटे सबके सामने दयनीय होकर , कृपण होकर उपस्थित होते है । मानो हर आदमी उसके साथ सहानुभ्ति दिखाएगा ही । हर ईंट पत्थर उसकी सहायता कर ही देगा ।

वास्तव में प्रेम दशा में व्यथित व्यक्ति संसार के प्रत्येक जड़ चेतन के भोतर किसी अन्तर्विलीन विराट चेतना का संधान पा जाता है। इसी विराट चेतना का संधान यक्ष ने भो प्राप्त कर लिया है । अब चाहे उस यक्ष को 'पागल' कहें अथवा ''प्रकृति कृपण'' कहें किन्तु उस यक्ष ने जगत के भोतर निरन्तर स्पन्दित होने वाली विराट् चेतना को पहचान लिया था।

भावपक्ष –

1. वास्तव में यक्ष की विवेक शून्यता का कारण उसकी वल्लभा की प्राण रक्षा करना है । साहित्य जगत में अन्यत्र भो ऐसे उदाहरण प्राप्त हो जाते है जब काव्य का नायक प्रिया के वियोग में विवेक शून्य हो गया।

   उदाहरणार्थ – वाल्मीकि के राम भो सीताहरण के बाद ऐसी ही परिस्थिति में लता और वृक्षादिकों से सीता का पता पूछते हैं लोक में भो ऐसे दृष्टान्त उपलब्ध है। लोकदृष्टान्त को अभिनव रूप देकर प्रस्तुत करना ही वस्तुत महाकवि का वैशिष्टय है।

2. महाकवि द्वारा एक अचेतन मेंघ द्वारा संदेश भिजवाना काव्यजगत की एक अपूर्वकल्पना है । कवि को यह भो आभास था कि सहृदय, अचेतन मेंघ द्वारा संदेश ले जाने की इस अभिनव कल्पना को कैसे ह्रदयंगम करेंगे । अतः इस दोष के परिहार हेतु प्रस्तुत सूक्ति दी गई है । मदनातुर यक्ष विवेक शून्य हो चुका है और विवेक शून्यता जड़ चेतन का भद नही देखती है ।

कलापक्ष –

कामार्ता – कामेन आर्ताः , तृतीया तत्पुरुष.,प्रकृति कृपणाः– प्रकृत्या कृपणाः

(तृतीया तत्पुरुष) चेतनाचेतनेषु – चेतनाश्च अचेतनाश्च इति चेतनाचेतनाः, : तेषु (द्वन्द्व समास)

9.2.3 याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमें लब्धकामा ।

प्रसंग – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत के पूर्वमेघ से उद्धृत है। ग्रन्थ के दो भाग है– पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में कहाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है ।

सन्दर्भ – यक्ष मेघ से अपनी प्रार्थना का कारण निवेदन करते हुए उसकी स्तुति कर रहा है। उसी सन्दभ में यह सूक्ति प्रस्तुत की गई है ।

व्याख्या – श्रेष्ठ व्यक्ति से की गई प्रार्थना निष्फल होने पर भो अच्छी है किन्तु गुणहीन व्यक्ति से की गई प्रार्थना सफल होने पर भो अच्छी नही होती है अर्थात् गुणी व्यक्ति प्रार्थना का मोल अवश्य समझता है । चाहे उसके पास उस प्रार्थना की पूर्ति हेतु आवश्यक साधन हो या नही हो किन्तु गुणहीन व्यक्ति प्रार्थना की कीमत समझने के स्थान पर उससे होने वाले हानि–लाभ को देखते हुए ही प्रार्थना करने वाले की मदद करता है ।

याचकों की प्रार्थना पूरी नही कर पाने के दर्द से महाकवि माघ ने अपने प्राणों को भो त्याग दिया था । वास्तव में श्रेष्ठ दाता ऐसा ही होता है । वह याचक की प्रत्येक इच्छा पर अपना सर्वस्व लुटाने की चाह रखता है । ऐसे दाता से की गई प्रार्थना यदि असफल भो हो जाए तो भो याचक का हृदय भग्न नही होता है । वास्तव में महत्त्व दाता का होता है दान का नही । महत्त्व की बात यह नही कि क्या मिला, महत्त्व की बात यह है कि जो मिल रहा है वह किससे मिल रहा है ।

इसी महत्त्व को देखते हुए भगवान श्री कृष्ण दुर्योधन के 56 भोगों का त्याग कर देते हैं और विदुर जी के घर केले के छिलकों को भो ग्रहण कर लेते है । किन्तु गुणहीन अधम व्यक्ति यदि याचक की प्रार्थना पूरी कर भो दे तो भो अच्छा नही होता है क्योंकि प्रथम तो गुणहीन व्यक्ति प्रार्थना का मोल समझने के स्थान पर उसकी पूर्ति से भविष्य में होने वाले लाभ–हानि का व्यापारी की भाँति आकलन करता है ।

द्वितीय – प्रार्थना की पूर्ति की बात का ढिंढोरा सम्पूर्ण लोक में पीट देता है । यक्ष भो मेंघ से यही कह रहा है कि चाह तुम मेंरी प्रार्थना ठुकरा दो तो भो मैं विचलित नही होऊँगा क्योंकि श्रेष्ठ से की गई असफल याचना , अधम से की गई सफल याचना से अच्छी होती है ।

भावपक्ष –

इसी सूक्ति से समानार्थी विचार रखती हुई सूक्ति का प्रतिपादन महाकवि भारवि ने ''किरातार्जुनीयम्'' महाकाव्य में किया है– समुन्नयन् भ्तिमनार्यसंगमाद् ,वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः ''

1. अर्थात् यदि मनुष्य को दुष्टों की संगति से ऐश्वर्य की प्राप्ति हो उससे अच्छा होगा की मनुष्य महात्माओं या महान् लोगो से दुश्मनी कर ले क्योंकि ये दुष्ट अपने पराये की पहचान नहीं रखते है और किसी स्थान पर इन दुष्टों का हित इनके मित्रों के हितों से टकरा गया तो ये दुष्ट उस मित्र को भो धोखा देने में संकोच नही करेगें ।

   इसके विपरीत सज्जन लोग मित्रों से दुश्मनी होने पर भो उनका अहित नहीं करते है । यही दुष्टों और सज्जनों का अन्तर है ।

2. हिन्दी में दुष्टों की दुष्टता को व्यक्त करने के लिए कहा गया है '' अधजल गगरी छलकत जाय '' ।

कलापक्ष –

अधिगुणे–अधिकाः गुणाः यस्मिन्, सः अधिगुणः, तस्मिन् अधिगुणे (बहुब्रीहि) । याञ्चा –याच् से नड. प्रत्यय, श्चुत्व, स्त्रीत्वार्थ में टाप् । लब्धकामा –लब्धः कामः यस्यां , (सा बहुब्रीहि) ।

9.2.4 आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्.गनानां ।
सद्यःपाति प्रणयिह्रदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।।

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत के पूर्व मेघ से उद्धृत है । ग्रन्थ में दो भाग है –पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

प्रसंग – यक्ष मेंघ को कहता है कि अलकागमन के बाद से मेंरे लौटने के दिनों को गिनने में लगी हुई मेंरी पत्नी को तुम अवश्य ही जीवित देखोगे और तुम्हारा वहां जाना व्यर्थ नही होगा। इसी प्रसंग में प्रस्तुत सूक्ति उद्धृत की गई है।

व्याख्या – आशारूपी बन्धन स्त्रियों के अत्यन्त कोमल तथा पति के विरह में टूट जाने वाले प्रेम भरे ह्रदय को प्रायः टूटने से रोक लेता है अर्थात् आशा का बन्धन विरहिणी स्त्रियों का मज़बूत सहारा होता है यद्यपि स्त्रियों का ह्रदय अत्यन्त कोमल होता है । तथा वह विरहाग्नि को न सह सकने वाला होता है किन्तु यह वियोग कुछ ही दिनों का है इसके बाद हमारे प्रियतम हमें मिल जायेंगे और उनके साथ फिर पहले के समान विहार होगा तथा राग–रंग की बातें होंगी।

यही पुनर्मिलन की आशा का बन्धन अति कोमल और सद्यः पतनशील नायिका के फूल के समान अति कोमल ह्रदय को जो प्रतिक्षण बिखर जाने की स्थिति में रहता है उसे बिखर जाने से रोके रहता है। वास्तव में आशा का बन्धन बड़ा ही कठोर होता है ।इसी आशा बन्धन में फंसा हुआ व्यक्ति अपने जीवन के दिन काटता रहता है।

फिर यक्ष– पत्नि की आशा कोई मामूली आशा नही है वह तो पतिव्रता के परम पवित्र– विश्वास से लालित है। संझौति के समय दीपक को प्रथम लौ के साथ वह प्रकाशित होती है , प्रदोष काल में भगवती तुलसी को निवेदित आरात्रिक प्रदीप के साथ नित्य उद्दीप्त होती है । और प्रत्युष काल के उदीयमान नवभास्कर की रागा रुण ज्योति –रश्मियाँ नित्य दृढ़ निबद्ध होती रहती है।

उसकी एक –एक क्रिया में प्रिय के कल्याण की मंगल भावना है । प्रत्येक धड़कन में प्रिय के सकुशलन आगमन की दिव्य प्रार्थना है ,प्रत्येक निश्वास में व्याकुल यह विनिवेदन है –हे भगवान , वे जहाँ हों , वहीं उनका मंगल हो ,पतिव्रता का आशाबन्ध दुर्बल नही होता है । उसमें आत्मदान का तेज होता है ,कठोर संयम की दृढ़ता होती है ओर अनन्यगामी प्रेम का बज्रलेप होता है ।

भावपक्ष –

इसी सूक्ति की समानार्थी निम्न सूक्तियाँ दृष्टव्य है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में ''गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति '' अर्थात् आशा का बन्धन वियोग के भारी दुःख को सहन करने की क्षमता प्रदान करता है ।

2. कुसुममयबन्धनं ह्रदयम् – विक्रम . – 1 (6)
3. आशातन्तुर्न च प्रणयिनाऽत्यन्तमुच्छेदनीयः –मालती . 92(6)
4. शक्यं खल्वाशाबन्धेनात्मानं धारयितुम्– विक्रम . 3 (6)

कलापक्ष –

आशाबन्धः – बध्यतेऽनेन इति बन्धः बन्धनम् आशा एव बन्धः आशाबन्धः (कर्ता) कुसुममदृशं –कुसुमेन सदृशम् (तृतीया. तत्पुरुष) अङ्गनानां प्रशस्तानि अङ्गानि यस्या, इस अर्थ में

अङ्ग से न प्रत्यय, टाप् अङ्गना (षष्ठी बहुब्रीहि) सद्यः पाति – सद्यः पतितुं शीलमस्य इस अर्थ में सद्यस् उपपद +पत्+णिनि प्रत्यय (हृदय का विशेषण) रूणद्धि–रुधिर आवरणे से लट् प्रथम पुरुष एकवचन ।

9.2.5 न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय, प्राप्ते मित्रे भवति विमुख : किं पुनर्यस्तथोच्चैः ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेंघदूत के पूर्व मेंघ से उद्धृत है । ग्रन्थ में दो भाग है –पूर्व मेघ मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरह दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

प्रसंग – यक्ष मेघ को अलकापुरी का मार्ग बताते हुए कह रहा है कि उत्तर दिशा में आम्रकूट नामक पर्वत तुम्हारा स्वागत करेगा । इसी प्रसंग में प्रस्तुत सूक्ति उदृधृत की गई है ।

व्याख्या – तुच्छ व्यक्ति या दरिद्र व्यक्ति भो आश्रय प्राप्त करने के लिए मित्र के आने पर मित्र के द्वारा पूर्व में किए गए उपकार को याद कर विमुख नही होता है फिर जो आम्रकूट इतना श्रेष्ठ है वह आपके द्वारा पूर्व में कीये हुए वनाग्निशमन रूप उपकार को देखते हुए आपकी सेवा से विमुख कैसे होगा ? अर्थात् कदापि नही होगा।

अर्थात् यदि कोई अत्यन्त दरिद्र है अथवा तुच्छ व्यक्ति है।वह भो अपने मित्र द्वारा सहायता माँगने पर उसकी यथासाध्य और यथाशक्ति सहायता अवश्य करता है। फिर आम्रकूट पर्वत तो अत्यन्त विशाल और श्रेष्ठ है तथा उसकी वनाग्नि को पूर्व में मेंघ द्वारा शान्त भो किया गया है। ऐसे में वह आम्रकूट अपने मित्र के इस उपकार को याद करके जब वह विश्राम हेतु आएगा तो उसकी सहायता अवश्य करेगा।

कलापक्ष –

प्रथमसुकृतापेक्षया . प्रथमं सुकृंत प्रथमसुकृतम् प्रथमसुकृतस्य अपेक्षया (कमधारय एंव षष्ठी तत्पुरुष) ,संश्रयाय . सम् +श्रि धातु से अच् प्रत्यय, गुण, अय (चतुर्थी एकवचन)

कोष–

क्षुद्रो दरिद्रः कृपणे नृशंसे (यादवः) । अथ मित्रं सखा सुहृत् (अमरकोषः) ।

भावपक्ष–

प्रस्तुत सूक्ति लोकसामान्य तथ्य का निरुपण करती है संसार में नीच और दरिद्र व्यक्ति भो अपने मित्र की सहायता अवश्य करता है । फिर मेघ ने तो वर्षा द्वारा आम्रकूट की वन की आग को शान्त किया है । अतः मेघ द्वारा निवास हेतु आने पर वह आम्रकूट उसका अवश्य ही स्वागत करेगा ।

9.2.6 रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य जगत् के विश्व प्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत के पूर्व भाग से उदधृत है। ग्रन्थ में दो भाग है, पूर्व मेघ 2. उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि द्वारा अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया है ।

प्रसंग – यक्ष मेंघ से कह रहा है कि वर्षा के बाद खाली होने पर तुम नर्मदा नदी से पुनः जल ग्रहण कर लेना जिससे भारी बने हुए तुम्हे पवन हिला नही सके और तुम निश्चित मार्ग पर ही चलते जाओ । इसी प्रसंग में प्रस्तुत सूक्ति को उदधृत किया गया है ।

व्याख्या – अन्तर्बल से हीन ;खालीद्ध सभो व्यक्ति हल्के होते है किन्तु पूर्णता रखना गौरव के लिए होता है। अर्थात् लोक में यदि कोई व्यक्ति अन्दर से रिक्त है अर्थात् उसमें कोई

योग्यता नही है तो सभो लोग उस व्यक्ति को हल्के से लेते है । और वह कही भो यथोचित सम्मान प्राप्त नही कर पाता है। किन्तु यदि व्यक्ति अन्दर से भरा हुआ है और पर्याप्त योग्यता रखता है तो वह लोक में यथोचित आदर सम्मान प्राप्त करता है । मेंघ भो यदि खाली रह कर यात्रा करेगा तो वायु उसे उडा कर कहीं और ही ले जाएगी किन्तु यदि वह नर्मदा से जल लेकर भरा रहेगा तो वायु उसे उसके निश्चित मार्ग से डिगा नही सकेगी ।

कलापक्ष–

भवति–भ् धातु , लट लकार ,प्रथम पुरुष एकवचन ।

गौरवाय – चतुर्थी विभक्ति एकवचन ।

भावपक्ष –

प्रस्तुत सूक्ति द्वारा महाकवि ने लोक में प्रचलित सामान्य तथ्य का प्रकटीकरण किया है । यह लोक नियम है कि योग्यता विहीन व्यक्ति की सभो अवहेलना करते है किन्तु जो योग्यता से पूर्ण होता है उसकी उपेक्षा कोई नही करता है ।

9.2.7 स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्व प्रसिद्ध खण्ड काव्य मेघदूत के पूर्व भाग से उद्धृत है । ग्रन्थ में दो भाग है –पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि कालिदास द्वारा अपनी नवविवाहित पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया है ।

प्रसंग – उज्जयनी जाते हुए मार्ग में निर्विन्ध्या नदी रूपी नायिका की मदमस्त अवस्था के उपभोग से तुम रसास्वाद प्राप्त करोगे । इसी सन्दभ में प्रस्तुत सूक्ति वर्णित है ।

व्याख्या – निश्चित ही रमणियों का अपने प्रियतम व्यक्ति के प्रति हाव –भाव दिखलाना ही प्रथम याचना का वचन (प्रेम वचन) होता है । अर्थात् यह सर्वविदित तथ्य है कि रमणियाँ कभो भो नायक के प्रति अपने प्रम को शब्दों से प्रगट नही करती है वे नायक के प्रति अपने प्रेम को कटाक्षपात ,भ् विलास ,हाव भाव आदि से ही प्रदर्शित करती है तथा उनका यह कार्य लज्जाशील प्रकृति के कारण सर्वथा उचित भो है।

भावपक्ष –

प्रस्तुत सूक्ति स्त्रियों के लज्जाशील स्वभाव को श्रेष्ठ रूप से प्रदर्शित करती है लोक में स्त्रियाँ अपने प्रेम को कभो कह कर प्रगट नही करती हैं वे ऐसे हाव भाव प्रदर्शित करती हैं कि प्रेमी पर वह प्रेम स्वतः ही प्रगट हो जाता है ।

कला कक्ष –

प्रणयवचंन – प्रणयस्य वचनं षष्ठी तत्पुरुष स्त्रीणाम् –षष्ठी बहुवचन

विभमो –वि उपसर्ग ,हि –निश्चितार्थक अव्यय, प्रयेषु– सप्तमी बहुवचन ।

9.2.8 मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या : ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्व प्रसिद्ध खण्ड काव्य मेघदूत के पूर्व भाग से उद्धृत है । ग्रन्थ में दो भाग है –पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि द्धारा अपनो नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया है ।

प्रसंग – देर तक चमकने के कारण और सम्भोग के कारण थकी हुई विद्युत् पत्नी वाला मेघ किसी महल की अट्टालिका में रात्री व्यतीत करे । इसी सन्दभ में प्रस्तुत सूक्ति वर्णित है।

व्याख्या – क्योंकि मित्रों के प्रयोजन सिद्धिरूपी कार्य को पूर्ण करने की स्वीकृति दे चुके लोग उस कार्य को पूर्ण करने में निश्चय ही शिथिल नही होते हैं । अर्थात यदि कोई व्यक्ति अपने मित्र के कार्य को पूर्ण करने का भार स्वीकार कर लेता है तो उसके पश्चात वह उस कार्य में शिथिलता नही करता है और उस कार्य को पूर्ण करके ही दम लेता है । मेंघ को भो अलकापुरी तक जाना है और कहीं ऐसा ना हो की वह राग रंग में डूब जाए और कार्य अपूर्ण ही रह जाए । अतः यह सूक्ति उसे अपने कार्य का बोध करा रही है।

कला पक्ष – मन्दायन्ते– मन्दा भवन्ति , इस अर्थ में मन्द :+क्यष् लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् से क्यष् ।आत्मनेपद प्रथम पु. बहु. सुहृदाम–सु–शोभनं हृदयं यस्य, सः सुहृतः (बहु.) सुहृदय के हृदय का सुहृददुहृदौ मित्रामित्रयोः से हृत आदेश ।ष.बहु. । अभ्युपेतार्थकृत्याः –अर्थस्य – प्रयोजनस्य कृत्यानि अर्थकृत्यानि (षतत्पु.) । अभ्युपेतानि अर्थकृत्यानि यैः ते,(बहु.)

भाव पक्ष –

महाकवि ने प्रस्तुत सूक्ति से यक्ष द्वारा मेंघ को अपना मित्र बनाकर कार्य को अवश्य पूर्ण करने का संकेत दे दिया है ।

9.2.9 आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्व प्रसिद्ध खण्ड काव्य मेघदूत के पूर्व भाग से उद्धृत है। ग्रन्थ में दो भाग हैं । पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि द्वारा अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया है ।

प्रसंग – महाकवि कह रहे है कि हिमालय पर देवदारू के वृक्ष की शाखाओं की रगड़ से उत्पन्न ज्वाला यदि हिमालय को पीड़ित करे तो मेंघ अपनी धारा से उस वनाग्नि को शान्त कर दे । इसी प्रसंग में यह सूक्ति प्रस्तुत है।

व्याख्या – क्योकि श्रेष्ठों की सम्पत्तियाँ विपत्तिग्रस्त लोगों की पीड़ा को हरण करने के फलों वाली होती हैं। अर्थात् उत्तम लोगो के पास जो सम्पत्ति होती है वह केवल उनके स्वयं के उपभोग हेतु ही नही होती है अपितु उस सम्पत्ति की सार्थकता तो इस में है कि वह संसार के दुख से पीड़ित लोगों के दुखों का शमन करने में काम आ सके । मेघ के पास भो जल रूपी अथाह सम्पत्ति है और उसका उपयोग मेघ द्वारा हिमालय की दावाग्नि को शान्त करने में किया जाना चाहिए । क्योकि दावाग्नि से वन प्रदेश में रहने वाले निरीह प्राणियों को मरणान्तक पीड़ा हो रही होगी और मेघ जल–सम्पत्ति की वर्षा से उन प्राणियों की पीड़ा का हरण ही करेगा।

भावपक्ष – प्रस्तुत सूक्ति इसी लोकसामान्य तथ्य का भाव विस्तार करती है कि श्रेष्ठ पुरुषों की सम्पत्तियाँ हमेंशा पीड़ित लोगो के कष्टों को दूर करने के काम में आती हैं इसी में सम्पत्ति की सार्थकता है।

कलापक्ष – आपन्नार्तिप्रशमनफला–आर्ते प्रशमनम् आर्तिप्रशमनम् । आपन्नानाम् आर्तिप्रशमनम् आपन्नार्तिप्रशमनम् (ष.तत्पु.) आपन्नार्तिप्रशमनं फलं यस्याः ताः (बहु.) आपन्नार्तिः– आ+पद्+क्त आपन्न, आ+ऋ+क्तिन् आर्तिः , आपन्ना+आर्ति आपन्नार्तिः

9.2.10 के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्व प्रसिद्ध खण्ड काव्य मेघदूत के पूर्व भाग से उद्धरित है । ग्रन्थ में दो भाग है– पूर्वमेघ और उत्तर मेघ तथा ग्रन्थ में महाकवि द्वारा अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया है ।

प्रसंग – क्रोधपूर्वक और वेग से उछलकर यदि शरभों का समूह मेघ का मार्ग रोकता है तो मेघ ओलों की वर्षा से उनके इस कार्य को निष्फल कर दे ।

व्याख्या – निरर्थक कार्यो में प्रयत्न करने वाला कौन व्यक्ति तिरस्कार का पात्र नही बनता है अर्थात् लोक में यदि मनुष्य उचित कार्य का चुनाव करक तत्पश्चात् उसमें श्रम करे तो वह अवश्य ही सफलता प्राप्त कर सकता है किन्तु यदि कार्य का चुनाव ही सही नही है तो उस कार्य में श्रम करने से कोई भो लाभ प्राप्त नही होता है जैसे शरभों का समूह मेंघ पर आक्रमण करके व्यर्थ ही परिश्रम करता है । उसे उस परिश्रम से कोई भो लाभ प्राप्त नही होता है । उल्टा उसकी हानि होने की ही सम्भावना अधिक है । क्योकि यदि मेंघ उस पर ओलों की वर्षा कर देगा तो इसमें उसे हानि ही उठानी पडेग़ी ।

भावपक्ष – यह लोक विदित है कि जो व्यक्ति अनुचित कार्य में परिश्रम करता है वह , तिरस्कृत हो जाता है । अतः सदा उचित कार्यों में ही श्रम करना चाहिए । यही संदेश प्रस्तुत सूक्ति द्वारा ध्वनित हो रहा है ।

कलापक्ष – निष्फलारम्भयत्नाः निष्फलकार्योपक्रमा (आरभ्यन्ते इति आरभ्याः कार्याणि, कार्येषु यत्नः उद्योगः। निष्फलआरम्भ यत्नः येषां ते), के वाजनाः परिभवपदम्तिरस्कारपात्रषं न स्युन भवेयुः, परिभवपदम् – परि+भ्+अप्परिभवः तिरस्कारः, अनादरो , वा, परिभवस्य पदम् (षष्ठी तत्पुरूष)। निष्फलारम्भयत्नाः –फलात् निर्गता : निष्फलाः (निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या से पञ्चमी तत्पुरूष निष्फलाश्च आरम्भाः निष्फलारम्भाः , तेषु यत्नः कमधारय के बाद सम्तमी तत्पु.।)

9.2.11 सूर्याघ्पाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामाभिख्याम् ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्व प्रसिद्ध खण्ड काव्य मेघदूत के उत्तर मेघ से उद्धृत है । ग्रन्थ में दो भाग है – पूर्व मेघ तथा उत्तर मेघ। तथा ग्रन्थ में महाकवि द्वारा अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया है ।

प्रसंग – अविस्मरणीय तथा उद्भत चिन्हों से चिन्हित मेंरे महल को तुम अवश्य जान जाओगे। इसी प्रसंग में प्रस्तुत सूक्ति कही गयी है ।

व्याख्या – क्योंकि सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल अपनी शोभा को बनाये नही रख पाता है। यह निश्चित है। अर्थात् यक्ष अब महलों में निवास नही करता है । वह कुबेर के शाप के कारण रामगिरि आश्रम में निवास करता है। यद्यपि यक्ष के महलों पर कमल , शंख आदि मांगलिक चित्र बने हुए है तथापि वह भवन अपनी शेभा को खो चुका है । क्योकि यक्ष से ही उसका महल शोभा सम्पन्न था। और अब वही यक्ष उस महल में निवास नही करता है। अर्थात जिस प्रकार सांयकाल में सूर्य के प्रकाश के बिना कमल अपनी शोभा खो देता है। वैसे ही यक्ष के भवन भो उसके बिना शोभाविहीन हो चुके हैं।

भावपक्ष– गृहपति के बिना उसका घर कभो शोभासम्पन्न नहीं हो सकता है । जैसे कमल की श्शोभा सूर्य पर निभर है । और बिना सूर्य प्रकाश के कमल शोभा प्राप्त नही करता है यही बात प्रस्तुत सूक्ति से ध्वनित हो रही है ।

कलापक्ष – सूर्यापायो – सूर्यस्य अपायः, तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरूष) अपायः – अप+इ+धञ पुष्यति पुष +लट् प्रथम पुरूष एकवचन (दिवादिभ्यः श्यन) । अभिख्याम् –अभिख्यायते इति, इस अर्थ में अभि+ख्या प्रकथने से अड्. प्रत्यय +टाप्, द्वितीया एकवचन ।

कोष – अभिख्या नामशोभयोः (अमरकोशः)।

9.2.12 प्रायः सर्वो भवति करूणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।

सन्दर्भ : – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्व प्रसिद्ध खण्ड महाकाव्य मेघदूत के उत्तर भाग से उद्धृत हैं । ग्रन्थ में दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि द्वारा अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया।

प्रसंग – आभ्षणों को त्यागने वाली, अत्यन्त दुखपूर्वक शयन करती हुई तथा कोमल शरीर को धारण करती हुई वह दुर्बल यक्षिणी कोमल ह्रदय वाले तुम्हे भो रुला देगी । प्रस्तुत सूक्ति इसी प्रसंग में उद्धृत की गई है।

व्याख्या – क्योंकि प्रायः कोमल ह्रदय वाले सभो लोग दयालु स्वभाव के होते हैं अर्थात् जब मेंघ अलकापुरी जाएगा और यक्ष के महलों में जाकर जब उसकी स्त्री को देखेगा जो कि यक्ष के विरह में अत्यन्त कृशकाय हो चुकी है तथा बडी मुश्किल से अपने प्रियतम के दर्शन हेतु प्राणों को धारण किए हुए है तो उसकी दशा देखकर मेघ भो अपने आँसू नही रोक पाएगा और जो दूसरे व्यक्ति की दुखी अवस्था देखकर आँसू बहाता है वह निश्चित ही कोमल ह्रदय वाला है तथा अत्यन्त दयालु स्वभाव का है क्योकि दयालु लोग ही दूसरे के दुख को देखकर दुखी होते हैं अन्यथा लोक में तो दूसरे के दुख पर तो हंसने का चलन है।

भाव पक्ष – प्रस्तुत सूक्ति म मेंघ की अन्तः करण कोमलता को प्रदर्शित किया गया है और बताया है कि जो दूसरे के दुख में दुखी हो ऐसा कोमल ह्रदय वाला प्राणी दयालु स्वभाव वाला होता है । मेंघ भो जल भरा होने से आद्रान्तरात्मा है अतएव दयालु स्वभाव का है ।

कला पक्ष – करुणावृत्ति :– करूणांना वृत्तिः यस्य , सः ;व्यधिकरण बहु.द्ध । वा – करूणामयी वृत्तिः यस्य सः बहु.।) आद्रान्तरात्मा – आर्दः अन्तरात्मा यस्य सः बहुः।) अथवा–आर्द्रःक्लिन्नः अन्तरात्मा अभ्यन्तरं, यस्य सः ।

9.2.13 कान्तोदन्तः सुह्रदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्वप्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूतम् के उत्तर मेघ से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग है – पूर्व मेघ 2 उत्तर मेघ। काव्य में महाकवि द्वारा अपनी नवविवाहिता पत्नी के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया है।

प्रसंग – यक्ष '' अविधवे' इस कथन को कहने के पश्चात वह कहता है कि वह यक्षिणी मेघ की ओर उन्मुख हो जायेगी । जैसे सीता जी हनुमान जी की ओर उन्मुख हो गई थी। इसी के वर्णन प्रसंग में यह सूक्ति प्रस्तुत की गई है।

व्याख्या – स्त्रियों के लिए पति के मित्र द्वारा लाया गया पतिविषयक सन्देश पति के साथ संगम मिलन से कुछ ही कम होता है अर्थात् जब किसी स्त्री का पति दूर रहता है तो वह स्त्री उसके विरह में एक– एक दिन बडी कठिनाई से व्यतीत करती है और निरन्तर उसे ही याद करती रहती है ऐसे में जब कोई व्यक्ति उसके पति का सन्देश लेकर उस स्त्री तक पहुँचता है तो वह क्षण उस स्त्री के लिए अत्यन्त आह्लाद्कारी होता है और उस समय वह स्त्री ऐसा महसूस करती है कि मानो उसका अपने पति से ही मिलन हो गया है इस प्रकार वह उस सन्देश से थोड़े समय के लिए और प्राण धारण करने में समर्थ हो जाती है ।

यक्षिणी भो जब मेंघ भो जब मेंघ को देखेगी और उसे यह पता चलेगा कि वह उसके पति द्वारा प्रेषित है तथा उसके पति का ही सन्देश लेकर आया है तो वह अत्यन्त प्रसन्न होगी तथा उसकी विरह वेदना थोड़ी कम हो जायेगी ।

भावपक्ष – प्रस्तुत सूक्ति में इस लोक सामान्य तथ्य का निरूपण किया गया है कि विरहावस्था में स्त्री क लिए उसके पति के सन्देश का भो अत्यन्त महत्व है तथा वह सन्देश उसे उसके पति के साथ मिलन के समान सुखदायी होता है साथ ही सूक्ति के पूर्व पक्ष में हनुमान जी और माता सीता का कथन कर यक्षिणी को सीता के समान पतिव्रता बताया है तथा मेंघ को दूत के अनुकूल गुणों वाला भो बताया है ।

कलापक्ष – कान्तोदन्त : कान्तस्य उदन्त (ष.तत्पु.), सुहृदुपनतः सुहृदा उपनतः (तृ. तत्पु.) सु.शोभनं, हृदयं यस्य, सः (बहु.) हृदय को हृत निपातन् । उपनतः – उप+नम्+क्त । संगमात् –सम् +गम्+अप संगम का पंचमी एकवचन ।

कोष– वार्ता प्रर्वृतिवृत्तान्त : उदन्त : स्यात् (अमरकोष :)

9.2.14 कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेंकान्ततो वा , नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।।

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्वप्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत से उद्धृत है । ग्रन्थ में दो भाग ह –पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । ग्रन्थ में महाकवि द्वारा अपनी नवविवाहिता स्त्री के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया है ।

प्रसंग – यक्ष की दुर्दशा को सुनकर यक्षिणी भयभोत नही हो क्योंकि सुख दुख तो चक्र के समान अपनी गति से ही चलते रहते है । इसी के वर्णन प्रसंग में प्रस्तुत सूक्ति का आगमन हुआ है ।

व्याख्या – क्योंकि जीवन में किसे निरन्तर सुख या निरन्तर दुख ही मिला है । जीवन की दशा तो पहिए के किनारे के समान कभो ऊपर और कभो नीचे जाती ही रहती है अर्थात् यक्ष अपनी स्त्री को धैर्य धारण करवाने के लिए कह रहा है कि इस त्रिलोक में ऐसा कोई भो नही है जिसे निरन्तर ही सुख मिलता रहा है अथवा जो हमेंशा ही दुखी रहा है । चाहे वह देव , दानव अथवा मनुष्य कोई भो हो वह एकान्तिक रूप से न तो सुखी रहता है और न ही दुखी । जीवन पहिए के समान है जिसका एक भाग अभो ऊपर है तो थोडी देर बाद वह भाग नीचे चला जाता है।

इसी प्रकार जीवन में सुख दुःख की स्थिति है । कोई थोडे समय के लिए सुखी होता है और थोडे समय के लिए दुःखी होता है तथा यह क्रम निरन्तर जीवन पर्यन्त चलता ही रहता है। यक्षिणी को भो धैर्य रखना चाहिए क्योंकि अभो उसके दुःख के दिन है किन्तु सुख की प्राप्ति भो उसे अवश्य ही होगी । यह भो निश्चित है ।

भावपक्ष – प्रस्तुत सूक्ति द्वारा संसार में व्याप्त अति सामान्य तथ्य का उद्घाटन किया गया है कि सुख और दुःख का आवागमन् चक्र के किनारों के समान है। ये तो आते और जाते रहते हैं। यक्षिणी अभो दुखी है किन्तु यह निश्चत है कि वह शीघ्र ही पति सुख की प्राप्ति से सुखी होने वाली है।

अतः सूक्ति द्वारा यक्षिणी को प्राप्त होने वाले अवश्यम्भावी सुख का संकेत है । साथ ही यह भो संकेत है कि उसका शाप अब बस समाप्त होने ही वाला है।

कलापक्ष – उपनतम् – उप+नम+क्त । कस्य में '' कतृ कमणो : कृति '' से षष्ठी । एकान्ततः –एकान्तेन इति, प्रकृत्यादिभ्यः से तृतीया एवं तृतीयान्त से सार्वविभक्तिक तसिल्–प्रत्यय । अव्यय पद । चक्रनेमिक्रमेंण –चक्रस्य नेमिः चक्रनेमिः ष.तत्पु.ऋ चक्रनेम्या : क्रम : तेन ष.तत्पुऋ

कोष : – चक्रं रथाङ्गं तस्यान्ते नेमि : स्त्रो स्यात् प्रधिपुमान् (अमरकोषः) क्रमः शक्तौ परिपाट्याम् (विश्वः)

9.2.15 स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा : प्रेमराशी भवन्ति ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्वप्रसिद्ध खण्डकाव्य मेघदूत के उत्तर मेघ से उद्धृत है । ग्रन्थ के दो भाग हैं – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ। ग्रन्थ में महाकवि द्वारा अपनी नवविवाहिता स्त्री के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया है ।

प्रसंग – यक्ष की पहचान सुनकर और उसकी कुशलता को जानकर यक्षिणी लोक प्रवादों पर (अफवाह) पर विश्वास नही करे इसी का यहां वर्णन है और इसी प्रसंग में प्रस्तुत सूक्ति उद्धृत की गई है ।

व्याख्या – यक्ष यक्षिणी से कह रहा है कि लोग स्नेह को विरह काल में नष्ट होने वाला मानते है । किन्तु वह स्नेह तो वियोग के कारण भोग के अभाव में अभोष्ट वस्तु के विषय में रससमृद्ध होकर प्रेम की राशि बन जाता है अर्थात् वियोग के समय में संचित प्रेम और अधिक घनीभ्त हो जाता है आशय यह है कि दीर्घ काल के विरह में लोग यही सोचते है कि या तो प्रेमो मर चुका है अथवा कोई अन्य सुन्दर स्त्री उसके जीवन में आ चुकी है इसी कारण वह लौटकर अपनी प्रेमिका के पास नही आ रहा है किन्तु इसके विपरीत वियोग काल में तो स्नेह और अधिक वृद्वि को प्राप्त होता है । वियोग काल में प्रेमी नित नई कल्पनाएँ करता है कि जब वह अपनी प्रेमिका स मिलेगा तो '' ऐसा होगा '' या ''वैसा होगा'' इस तरह निरन्तर संचित प्रेम राशी के रूप में एकत्रित हो जाता है ।

भावपक्ष – सामान्यतः लोग वियोग में प्रेम को नष्ट मान लेते हैं किन्तु यक्ष मानता है कि जब अभिलाषित वस्तु का अभाव होता है तो उस वस्तु में प्रीति बढ़ती जाती है ओर वह प्रीति धीरे धीरे रससमृद्ध होकर प्रेमपुंज बन जाती है ।

1. इस सूक्ति में प्रेम और स्नेह पदों का प्रयोग है दोनो समानार्थक है किन्तु दोनो के अर्थ में अवस्था भद के कारण सामान्य भद हो जाता है
2. अभोष्ट वस्तु के लिए आकृष्ट होकर चेष्टा करना स्नेह है और अभोष्ट वस्तु के बिना न रह पाना , अभोष्ट के वियोग को न सह पाना ही प्रेम है ।
3. संयोग की सात अवस्थाएँ मानी गई है । जिनमें से स्नेह और प्रेम भो दो अवस्थाएँ हैं।

कलापक्ष – ध्वंसिन : – ध्वंस अस्ति अस्य , इस अर्थ में ध्वंस +इनि प्रथमा बहुवचन अथवा ध्वंस +णिनि प्रत्यय । आहुः –ब्रु धातु से लट् लकार प्रथम पु. बहु. में ब्रु को आहु आदेश एवं झि को उस् ब्रुवः पंचानानामादित आहो ब्रुवः ऋ उपचितसाः –उपचिता : रसः येषु ते बहु. ऋ उप+ चि + क्त उपचितः प्रेमराशी भवन्ति –प्रेम्णां राशयः प्रेमराशयः ष.तत्पु.ऋ अप्रेमराशयः प्रेमराशयों भवन्ति , इस अभ्ततद् भाव अर्थ में प्रेमराशी+च्विप्रत्यय+भ् से लट् लकार , प्रथम पु. बहु. का रूप । च्वि का लोप । इ का दीर्घ

9.2.16 प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ।

सन्दर्भ – प्रस्तुत सूक्ति अनामिका महाकवि कालिदास द्वारा रचित संस्कृत साहित्य के विश्वप्रसिद्ध खण्ड काव्य मेघदूत के उत्तर मेघ से उदधृत् है । ग्रन्थ में दो भाग है – पूर्व मेघ और उत्तर मेघ । काव्य में महाकवि द्वारा अपनी नवविवाहिता स्त्री के विरह में व्याकुल यक्ष की विरहावस्था का मार्मिक चित्रण किया गया है ।

प्रसंग – प्रार्थना करने पर मेघ चातकों हेतु बिना कुछ कहे ही जल दे देता है । अतः आप मुझ यक्ष का कार्य भो अवश्य सिद्व करेंगे । इसी के वर्णन प्रसंग में प्रस्तुत सूक्ति का आगमन हुआ है।

व्याख्या – अतः यह ठीक ही कहा गया है कि सज्जनों का प्रार्थी जनों के अभोष्ट कार्य को पूर्ण कर देना ही याचकों के प्रति उत्तर हुआ करता है । अर्थात् सज्जनों से जब कोई व्यक्ति अपने किसी इच्छित कार्य को पूर्ण करने की प्रार्थना करता है तो सज्जन पुरूष उस व्यक्ति को कोई प्रति उत्तर नही देते है अपितु वे उसके अभोष्ट कार्य को सिद्व कर देते हैं और यही उनका उत्तर होता है । मेघ भो यक्ष के कथन पर मौन रहता है तो यक्ष उसके मौन को 'मनाही ' ना समझ कर उसके मौन को कार्य पूर्ण करने की स्वीकृति मानता है ।

भावपक्ष – सज्जनों के विषय में प्रसिद्व है –''क्रिया केवलमुत्तरम्

1. जो कहता है किन्तु करता नही वो दुर्जन होता है । किन्तु जो कहता नही केवल करके दिखाता है वह सज्जन है । कहा भो है – नीचो वदति न कुरूते न वदति सुजनः करोत्येव ।

2. मेघ के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह शरद में गरजता है बरसता नही है और वर्षा ऋतु में बिना गर्जन किए बरसता है '' गर्जति शरदि न वर्षति , वर्षति निःस्वनो मेघः ।

वर्षा ऋतु है अतएव मेघ गर्जन भो नही कर रहा है वह चुप है यक्ष उसको तूष्णीभाव मानकर 'मौनं स्वीकृति लक्षणम् ' के न्याय से यह प्रकट करता है कि मेघ मेंरा कार्य अवश्य करेगा ।

कलापक्ष – प्रत्युक्तम् –प्रति +वच्+क्त, (धातु के व् को सम्प्रसारण 'उ' यण) , प्रणयिषु – प्रणयः अस्ति अस्मिन् इस अर्थ में प्रणय +इनि, (स.बहु.) सताम् – अस् +शत्, धातु के अ का लोप कर 'सत्' शब्द का (ष.बहु.) इप्सितार्थक्रियैव– ईप्सितार्थक्रिया + एव । ईप्सितः – आप्तुमिच्छति –इस अर्थ में आप् +सन् प्रत्यय 'आप्ज्ञपत्रच्धामीत् ' से धातु के 'आ' को ''ई'' । 'प्स' को द्वित्व , अभ्यास को लाप ईप्स +क्त प्रत्यय , इट् । ईप्सितश्चासौ अर्थः ईप्सितार्थ : (कमधारय) ईप्सितार्थस्य क्रिया ईप्सितार्थ क्रिया (ष.तत्पु.)

9.3 पारिभाषिक शब्दावली

कण्ठाश्लेष प्रणयिनि – यह पदावली सामान्य तथ्य का चित्रण करती है किन्तु साथ ही कवि ने दूर स्थित तथा आलिंगन हेतु उत्सुक यक्ष की पत्नी का ही विशेष संकेत किया है ।

अन्यथावृत्ति – अन्यथावृत्ति का अर्थ 'अस्वस्थ्यम् या प्रचलोत्कलिकाकुलम्

कामार्ता – कामेन आर्ताः । कामातुर जन जड़ चेतन में भेद नही देख कर सभी के सामने दीन वचनों से याचना करने लगता है ।

अङ्गना – अङ्गनानां प्रशस्तानि अङ्गानि यस्या, इस अर्थ में ं अङ्ग से न प्रत्यय, टाप् अङ्गना (षष्ठी बहुब्रीहि)

सुहृदाम – सु–शोभनं हृदयं यस्य, सः सुहृतः (बहु.) सुहृदय के हृदय का सुहृददुहृदौ मित्रामित्रयोः से हृत आदेश ।ष.बहु. ।

9.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मेघदूत पर टीकाएँ प्राप्त होती है –

   1. 50 2. 30 3. 40 4. 60

2. मेघदूत का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किसने किया –

   1. मैक्समूलर ने 2. शिलर ने 3. बुन्ट ने 4. आर्थर राइडर ने

3. मेघदूत का जर्मन पद्य में अनुवाद किया –

   1. मैक्समूलर 2. शिलर 3. कोबे 4.. राइडर

4. मेघदूत पर किसकी टीका प्रसिद्व है –

   1. निरुक्तकार की 2. शिलर की 3. मल्लिनाथ की 4 श्वेट्ज की

5. मेघदूत में किस छन्द का प्रयोग हुआ है –

   1. वसन्ततिलका 2. मन्दाक्रान्ता 3. अनुष्टुप 4. स्रग्धरा

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मेघालोके.....किं पुनर्दूसंस्थे सूक्ति का ससन्दर्भ भाव विस्तार कीजिए।
2. 'कामार्ता हि.....चेतनाचेतनेषु' सूक्ति की सन्दर्भ व्याख्या कीजिए ।
3. 'याञ्चा मोघा .....लब्धकामा' सूक्ति की व्याख्या करते हुए इसके भाव पक्ष को भी स्पष्ट करें ।
4. ''आशाबन्धः.....रुणद्धि' सूक्ति की ससन्दर्भ व्याख्या करते हुए इसके कला पक्ष को भी स्पष्ट करें ।
5. 'कालिदास सूक्ति प्रयोग की दृष्टि से अद्वितीय हैं ' इस कथन की समीक्षा पठित सूक्तियों के आधार पर कीजिए ।
6. 'कालिदास की सूक्तियाँ मानव के अन्तर्मन की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है ' कथन की समीक्षा कीजिए।
7. 'कालिदास मानव ह्रदय की भावनाओं के अदभुत चितेरे थे ' कथन की सूक्तियों के आधार पर व्याख्या कीजिए।
8. 'न क्षुद्रोऽपि.....पुनर्यस्तथोच्चैः'' सूक्ति की व्याख्या कीजिए ।
9. रिक्तः .....गौरवाय' इस सूक्ति का भाव विस्तार करो ।
10. 'सूर्याऽपाये न .....स्वामभिख्याम् 'सूक्ति की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए ।

बोधप्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ उत्तर

प्रशन 1 (3)

प्रश्न 2 (4)

प्रश्न 3 (1)

प्रश्न 4 (3)

प्रश्न 5 (2)

निबन्धात्मक उत्तर

प्रश्न 1 इस प्रश्न के उत्तर के लिए इकाई 9.2 में से सूक्ति एक की व्याख्या देखें ।

प्रश्न 2 इस प्रश्न के उत्तर के लिए इकाई 9.2 में से सूक्ति 2 की व्याख्या दृष्टव्य है।

प्रश्न 3 इस प्रश्न के उत्तर के लिए इकाई 9.2 में से सूक्ति 4 की व्याख्या दृष्टव्य है।

प्रश्न 4 इस प्रश्न के उत्तर के लिए इकाई 9.2 में से सम्पूर्ण सूक्तियों की व्याख्या दृष्टव्य है।

प्रश्न 5 इस प्रश्न के उत्तर के लिए इकाई 9.2 में से सम्पूर्ण सूक्तियों की व्याख्या दृष्टव्य है।

प्रश्न 6 इस प्रश्न के उत्तर के लिए इकाई 9.2 में से सम्पूर्ण सूक्तियों की व्याख्या दृष्टव्य है।

प्रश्न 7 इस प्रश्न के उत्तर के लिए इकाई 9.2 में से सम्पूर्ण सूक्तियों की व्याख्या दृष्टव्य है।

प्रश्न 8 इस प्रश्न के उत्तर के लिए इकाई 9.2 में से सूक्ति 5 की व्याख्या दृष्टव्य है।

प्रश्न 9 इस प्रश्न के उत्तर के लिए इकाई 9.2 में से सूक्ति 6 की व्याख्या दृष्टव्य है।

प्रश्न 10 इस प्रश्न के उत्तर के लिए इकाई 9.2 में से सूक्ति 11 की व्याख्या दृष्टव्य है।

9.5 सारांश

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने महाकवि कालिदास के ग्रन्थ मेघदूत की सूक्तियों की विस्तृत व्याख्या का अध्ययन किया है । इन सूक्तियों की व्याख्या द्वारा यह तथ्य भी उद्घाटित हुआ है कि ये सूक्तियाँ किस प्रकार मानव हृदय की सूक्ष्मतम भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है।

इन सूक्तियों के कला पक्ष और भाव पक्ष को भो व्याख्यायित किया गया है जिससे तत्सम्बन्धि ज्ञान भी आपको प्राप्त हुआ है साथ ही इन सूक्तियों द्वारा ऐसे तथ्य भी ध्वनित हुए है जिनसे पता चलता है कि क्यों वास्तव में महाकवि कालिदास और उनका यह छोटा सा खण्डकाव्य विश्व साहित्य जगत और आखिल विद्वत् समाज में अमर पद को प्राप्त कर गए है ।

9.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मेघदूत– विजेन्द्र कुमार शर्मा, साहित्य भण्डार मेरठ,चतुर्थ संस्करण,1996.
2. डॉ. एस के डे (सम्पादक) मेघदूत साहित्य अकादमी, न्यू देहली,1986.
3. वाचस्पति गेरोला (सम्पादक) संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी,1960.
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी – मेघदूत एक पुरानी कहानी (प्रथम संस्करण),राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली,1980.

इकाई 10

संस्कृत नाटक: उद्भव एवं विकास

इकाई की रुपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 संस्कृत काव्य में नाटक का स्थान

10.2.1 काव्य का लक्षण

10.2.2 काव्य के भेद एवं नाटक का उन भेदों में स्थान

10.3 संस्कृत नाटक के उद्भव सम्बन्धी सिद्धान्त

10.3.1 भारतीय मत

10.3.2 पाश्चात्य मत

10.4 संस्कृत नाटक का विकास

10.5 नाटक : परिभाषा एवं प्रकार

10.6 पारिभाषिक शब्दावली

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.8 सारांश

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

हम एम० ए० पूर्वार्द्ध संस्कृत के प्रश्नपत्र ललित साहित्य एवं नाटक (MASA-02) की इकाई संस्कृत नाटक का उद्भव एवं विकास का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद हम निम्नलिखित तथ्यों का ज्ञान कर पायेंगें –

- काव्य किसे कहते है ? काव्य के बाह्य एवं आभ्यन्तर स्वरूप के आधार पर कितने भेद है ?
- संस्कृत काव्य में नाटक का क्या स्थान है ?
- संस्कृत नाटक की उत्पत्ति से सम्बन्धित कौन कौन से मत हैं ?
- संस्कृत नाटक किस प्रकार विकास को प्राप्त हुआ है ?
- नाटक किसे कहते है एवं इसके कितने प्रकार एवं उपप्रकार है ?

10.1 प्रस्तावना

साहित्य के सभी प्रकारों में रूपक या नाट्य श्रेष्ठ माना गया है। इसकी रचना को कवित्व की अन्तिम सीमा कहा जाता है- नाटकान्तं कवित्वम् । कारण यह है कि यह चित्रपट के समान अनेक विशिष्टताओं से युक्त है। इतनी विशिष्टताएँ अन्य काव्यभेदों में नहीं होती। रूपक में गद्य-पद्य दोनों का मिश्रण तो रहता ही है, इसे सुनने के अरिक्त देखा भी जाता है। श्रव्य की अपेक्षा 'दृश्य' का अधिक सघन प्रभाव होता है। भारतीय रूपकों का उद्देश्य केवल उपदेश देना, संवादों के द्वारा किसी घटना-क्रम का निरूपण करना या विषय की स्थापना मात्र नहीं है। अपितु अभिनय के भिन्न प्रकारों से सामाजिक को रसास्वाद कराना इसका महत उद्देश्य है। प्रस्तुत इकाई में में हम संस्कृत काव्य में

नाटक का क्या स्थान है ? किस प्रकार नाटक संस्कृत में पूर्ण रूप में अस्तित्व में आया है ? संस्कृत नाटक का उद्भव कैसे हुआ ? नाटक के कितने प्रकार है ? इत्यादि का अध्ययन करने जा रहे है।

10.2 संस्कृत काव्य में नाटक का स्थान

10.2.1 काव्य का लक्षण

'काव्य का क्या स्वरूप है' इस विषय को लेकर प्रारंभिक काल से **18**वीं शती तक पर्याप्त विचार किया गया। विविध आचार्यों ने पर्याप्त विचारपूर्वक काव्य लक्षणों का प्रतिपादन किया। इस काव्य-लक्षण विषयक विचार को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1. शब्द व अर्थ का साहित्य काव्य - भामह, वामन, रुद्रट मम्मटादि।
2. शब्दमात्र ही काव्य - दण्डी, पण्डितराज जगन्नाथ, जयदेव।
3. शब्द व अर्थ के स्थान पर देकर रसमात्र की ही काव्यता - भोज, विश्वनाथादि।

1. शब्द व अर्थ का साहित्य काव्य

अधिकांश आचार्यों द्वारा शब्द-अर्थ दोनों में काव्यत्व स्वीकार किया गया। निम्नलिखित में सर्वाधिक प्राचीन एवं संक्षिप्त काव्यलक्षण भामह का है। इस सौह प्रमुख आचार्यों द्वारा प्रदत्त काव्य-लक्षण इस प्रकार है -

- भामह - शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्। (**काव्यालङ्कार सूत्रम् 1.16)**
- वामन - काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते। (**काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति 2,9)**
- रुद्रट - शब्दार्थौ काव्यम्। (**काव्यालङ्कार 2.9)**
- आनन्दवर्धन - सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम्। (**ध्वन्यालोकः 1.1 वृत्ति**)
- मम्मट - तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि। (**काव्यप्रकाश 1.8)**
- कुन्तक -शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
- बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि। (**वक्रोक्तिजीवितम् 1.1)**
- हेमचन्द्र - अदौषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम्। (**वाग्भट पृ. 18)**
- विद्यानाथ - गुणालङ्कारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ काव्यम्। (**प्रतापरुद्रीयम् पृ. 42)**
- विद्याधर - वपुरस्य तत्र विबुधैरात्माभ्यधायि ध्वनिः। (**एकावली पृ. 1.13)** '

2. शब्दमात्र ही काव्य

दण्डी, जयदेव एवं पण्डितराज जगन्नाथ ने शब्द की ही काव्यनिष्ठता स्वीकार की है। आचार्य दण्डी ने 'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' काव्यलक्षण प्रस्तुत किया है। इष्ट अर्थात् मनोरम अर्थ से युक्त पदावली-शब्दसमूह काव्य का शरीर है। पण्डितराज प्रदत्त काव्यलक्षण इस प्रकार है -

'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'

अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है। जिस अर्थ के ज्ञान से लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति होती है वह रमणीय है। आचार्य जयदेव भी काव्य की शब्द निष्ठता स्वीकार करते हैं। उनके द्वारा प्रदत्त काव्य लक्षण द्रष्टव्य है **:-**

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालङ्काररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक्।।

अर्थात् दोष रहिता, लक्षण (अक्षरसहित आदि) सहिता, पांचाली - आदि रीतियुक्ता, श्लेषादिगुणसहिता, अलङ्कार, रस एवं अनेक वृत्तियों से युक्त वाणी काव्य कही जाती है। इस प्रकार जयदेव ने भी काव्य की शब्दनिष्ठता ही स्वीकार की है।

3. शब्द व अर्थ के स्थान पर देकर रसमात्र की ही काव्यता

आचार्य विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहकर रसात्मक वाक्य की ही काव्यता स्वीकार की है। यद्यपि वाक्य का लक्षण जो विश्वनाथ ने प्रस्तुत किया है उससे उनकी भी शब्द की काव्यनिष्ठता ही सिद्ध होती है।

वाक्यं स्याद्योग्यताकाङ्क्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः।

अर्थात् योग्यता, आकांक्षा एवं आसत्तियुक्त पदसमूह वाक्य कहलाता है। इस प्रकार पदसमूह वाक्य है एवं रसयुक्त वाक्य काव्य है। इस प्रकार रसवत् की ही काव्यता मानी गई है।

काव्य लक्षणों का पर्याप्त विचार करने पर निष्कर्ष यही निकलता है कि शब्द व अर्थ दोनों के युगल की काव्यता ही अधिकांश आचार्यों को अभीष्ट है। जिन आचार्यों ने काव्य की शब्दनिष्ठता मानी है, उन्होंने भी प्रकारान्तर से लक्षण में अर्थ का समावेश कर दिया है। यही कारण है कि मम्मट का लक्षण सर्वाधिक परिष्कृत लक्षण के रूप में विद्वानों में आदृत है।

10.2.2 काव्य के भेद एवं नाटक उन भेदों में स्थान

काव्यभेद निर्णय अलङ्कार शास्त्र का आवश्यक अंग है। अलङ्कार शास्त्र के आचार्यों द्वारा अपने अपने मतानुसार काव्यभेद प्रस्तुत किए गए हैं। काव्य भेद के मुख्य आधार दो रहे -

1. काव्य के बाह्य रूप के आधार पर
2. काव्य के आन्तरिक स्वरूप के आधार पर

1. काव्य के बाह्य रूप के आधार पर

इस आधार पर काव्य को दो भागों में विभाजित किया गया है -

दृश्य काव्य - जो अभिनेय है अर्थात् जिनका अभिनय किया जाता है। दृश्य काव्य का अपर पर्याय है रूपक। आचार्य धनंजय ने रूपक, रूप एवं नाट्य तीनों ही शब्दों का प्रयोग दृश्य काव्य के लिये किया है :

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्।।

श्रव्यकाव्य –

श्रव्य काव्य केवल श्रवणयोग्य होता है। पद्य, गद्य, एवं मिश्र भेद से श्रव्य काव्य का त्रिविध विभाजन किया गया है।

पद्य -

छन्दोबद्ध पद को पद्य कहा जाता है।

इसके त्रिविध भेद है। **1.** महाकाव्य, **2.** खण्डकाव्य **3.** कोष।

गद्य

विश्वनाथ ने गद्य को चार प्रकार का माना है - मुक्तक, वृत्तगन्धि उत्कलिकाप्राय, चूर्णक। मुक्तक समासरहित होता है, वृत्तगन्धि में पद्य के अंश भी होते हैं, उत्कलिकाप्राय दीर्घसमास युक्त होता है तथा चूर्णक अल्पसमास युक्त होता है। गद्यकाव्य का कथा एवं आख्यायिका के रूप में द्विविध रूप में भी विभाजन किया गया है।

2. काव्य के आन्तरिक स्वरूप के आधार पर

ध्वनि सिद्धान्त के उदय होने के पश्चात् काव्य विभाजन में ध्वनि केन्द्र बिन्दु बना। ध्वनिवादी आचार्यों द्वारा ध्वनि (व्यङ्ग्यार्थ) की प्रधानता-अप्रधानता के आधार पर काव्य का त्रिविध विभाजन किया - ध्वनिकाव्य, गुणीभूत व्यङ्ग्य एवं चित्रकाव्य।

ध्वनिकाव्य – वह काव्य जिसमें ध्वनि का प्रयोग आधिक्य से किया गया हो।

गुणीभूत- वह काव्य जिसमें ध्वनि का प्रयोग शब्द की अपेक्षा गौण हो।

चित्रकाव्य – वह काव्य जिसमें केवल शब्दालंकार एवं अर्थालंकार का ही प्रयोग किया गया हो।

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि नाटक संस्कृत काव्य के दृश्य काव्य के अन्तर्गत आता है। जो दृश्य काव्य की एकमात्र विधा है।

10.3 संस्कृत नाटक के उद्भव सम्बन्धी सिद्धान्त

10.3.1 भारतीय मत

1. दैवीय उत्पत्ति का सिद्धान्त

नाटक के उद्भव अथवा उत्पत्ति के सम्बन्ध में सबसे प्राचीन मत नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में उपलब्ध होता है। त्रेतायुग में वैवष्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में सभी देवता एकत्र होकर ब्रह्मा के पास गये तथा विशेष क्रीडनीयक के निर्माण की प्रार्थना की:-

"क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्''

ब्रह्मा जी ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करके योग स्थिति में स्थित होकर चार वेदों का स्मरण किया तथा यह संकल्प किया कि मैं ऐसे पांचवें वेद की रचना करता हुँ जो धर्मानुकूल, यश एवं उद्देश्य सहित होगा। इस प्रकार नाट्यवेद का निर्माण उन्होंने चारों वेदों के अंगों से किया। पाठ्य को उन्होंने ऋग्वेद से, गीतों को सामवेद से, अभिनयों को यजुर्वेद से तथा रसों को अथर्ववेद से ग्रहण किया -

"जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसान् आथर्वणादपि।।''

यह नाट्यवेद पंचम वेद के नाम से विख्यात हुआ। इसमें शिव ने ताण्डव, पार्वती ने लास्य तथा विष्णु ने चार वृत्तियों का समावेश किया। ब्रह्मा के आदेश से देवताओं के कुशल अभियन्ता विश्वकर्मा ने रंगमंच का निर्माण किया। इन्द्रध्वज पर्व के शुभ अवसर पर प्रशिक्षित नर नारियों ने त्रिपुरदाह तथा समुद्र मंथन नामक नाटकों का प्रदर्शन किया।

समीक्षा - नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक की उत्पत्ति की संक्षिप्त कथा यही है, परन्तु **20** वीं शताब्दी का पाठक इस कथा का विश्वास करेगा तो पौराणिक नहीं तो मध्यकालीन अवश्य कहलायेगा। विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हो सकते कि नाटक का उद्भव मात्र ब्रह्मा के संकल्प से अल्पकाल में हो गया। नाट्यषास्त्र में जिन विस्तृत, सूक्ष्म, जटिल एवं सर्वांगीण सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है, उनके विकास में सहस्त्राब्दियों की नहीं तो शताब्दियों की आवश्यकता अवश्य हुई होगी।

2. वैदिक संवाद - सूक्तवाद –

भारतीय साहित्य में प्रायः सभी बातों का मूल वेदों में खोजने की प्रवृत्ति रही है तथा यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि वेद भारतीय साहित्य की प्राचीनतम निधि है। यही कारण है कि मनीषियों ने भारतीय नाटक का उद्गम भी ऋग्वेद में खोजने की चेष्टा की है। ऋग्वेद में अनेकानेक संवादात्मक सूक्त हैं। जैसे - इन्द्र - मरुत संवाद, पुरुरवा - उर्वषी संवाद, यम-यमी संवाद, अगस्त्य - लोपामुद्रा संवाद

आदि। मैक्समूलर ने इन्हीं संवादों को नाटक का मूल उत्स माना है। इस मत का समर्थन लेवी, श्रोएडर तथा हर्टेल ने भी किया है।

समीक्षा - यह मत वस्तुतः अपने आप में अधूरा है। क्योंकि नाटक का संवाद ही एक मात्र भाग नहीं होता। प्रोफेसर कीथ उक्त मत से सहमत नहीं हैं।

10.3.2 पाश्चात्य मत

3. वीर पूजावाद

इस मत के प्रमुख समर्थक डॉ० रिजवे हैं। उनकी मान्यता है कि जिस प्रकार ग्रीक देश में नाटक का जन्म दिवंगत वीरों के प्रति किये गये सम्मान के परिणाम स्वरूप हुआ, उसी प्रकार भारत वर्ष में भी नाटक की उत्पत्ति वीर पूजा से हुई। रामलीला तथा कृष्णलीला इसी प्रकार की भावनाओं के परिणाम हैं। डॉ० वचनदेव कुमार ने वीर पूजावाद के स्थान पर मृतक पूजावाद शब्दों का प्रयोग किया है।

समीक्षा:- इस मत में कोई विशेष बल नहीं है। यहाँ तक कि इस मत को बहुत से पाश्चात्य विद्वान् भी नहीं मानते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि राम और कृष्ण आदि की पूजा के पीछे मृतात्माओं के प्रति सम्मान व्यक्त करने की भावना भी अधिकांश विद्धानों के द्वारा मान्य नहीं है। क्योंकि राम व कृष्ण की पूजा इसलिए की जाती है कि भगवान् के चरित्र का स्मरण व श्रवण कर हमें सुख, शन्ति तथा मुक्ति प्राप्त हो।

4. नृत्यवाद

मैक्डोनल की मान्यता है कि नट् धातु से ही नट तथा नाटक शब्द बने हैं। नट् धातु संस्कृत की नृत् धातु का ही देशी रूप है। सामूहिक नृत्यों से ही नाटक की उत्पत्ति हुई। ऐसा उनका विचार है। बाद में हाव-भाव अंग संचालन तथा गीत आदि भी जोड दिये गये तथा इन सबकी नाटक संज्ञा हुई।

समीक्षा - नट् और नृत् अलग-अलग धातुएँ हैं जिनके रूप क्रमशः नाट्य, नृत्य बनते हैं। साथ ही नाट्यषास्त्रीय ग्रन्थों में नाट्य, नृत्य तथा नृत् शब्दों की जो व्याख्या की गई है वह पूर्ण रूपेण पृथक्-पृथक् है। अतः 'नाच' को 'नाटक' का पूर्व रूप मानना उचित नहीं है। प्रो० सीताराम चतुर्वेदी की मान्यता है कि केवल नाच और संवाद से नाटक नहीं बनता। नाटक में सात्विक, वाचिक, आंगिक तथा आहार्य चारों प्रकार के अभिनयों से रससृष्टि होना आवश्यक है।

5. पुत्तलिका नृत्यवाद –

इस मत के समर्थक हैं जर्मन विद्वान् डॉ० पिशेल। उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि कठपुतली नाच संस्कृत नाटक का स्रोत है तथा उसका मूल स्थान भारत है। जहाँ से वह विश्व भर में फैला है। अपने मत के समर्थन में डॉ० पिशेल ने महाभारत, कथा सरित्सागर तथा बाल रामायण आदि ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है जिसमें पुत्तलिकानृत्य के संकेत प्राप्त होते हैं। डॉ० पिशेल संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त सूत्रधार का सम्बन्ध पुत्तलिका नृत्य से स्थापित करते हैं। उनका कथन है कि पुत्तलियों को डोरे से पकडकर नचाया जाता है। क्योंकि भारतीय नाटकों की उत्पत्ति पुत्तलियों के नृत्य से हुई। इसलिए कथा के सूत्र पकडने वालों को नाटक में सूत्रधार कहा गया-'सूत्रं धारयति इति सूत्रधारः''। पिशेल के मतानुसार विदूषक के उद्गम का श्रेय कठपुतली के नाच को है।

समीक्षा - पाष्चात्य विद्वान रिजवे ने यह कहकर उक्त मत का खण्डन किया है कि सूत्रधार डोरे पकडने के कारण नहीं अपितु नाटक की कथावस्तु को संक्षेप में वर्णित करने के लिए कहा है।

6. छाया नाटकवाद

डॉ० कोनों ने छाया नाटकों से नाटकों के उद्भव को प्रस्तावित किया। इसको डॉ० पिशेल तथा डॉ० ल्यूडर्स ने समर्थित किया। छायानाटकों में पर्दे के भीतर से अभिनेताओं का अभिनय दिखाया जाता था। संस्कृत में इस प्रकार का नाटक 'दूतांगद'' था। लेकिन केवल एक मात्र यही छाया नाटक है। इसके आधार पर विशाल संस्कृत नाटकों का मूल इसे मानना विद्वत्ता के प्रतिकूल है।

समीक्षा - विचारकों ने इस मत को भ्रान्तिपूर्ण बतलाया है। डॉ कीथ का तो स्पष्टतया कथन है कि यह सिद्धान्त महाभाष्य के एक प्रसंग के अद्ध अर्थ पर आधारित है। और यह भी न भूलना चाहिए कि इस सिद्धान्त के पक्षपात को भी रूपकों की सत्ता छाया नाटक के जन्म से पूर्व स्वीकार करनी होगी। साथ ही इसमें एक सबसे बडी त्रुटि यह भी है कि इसके आधार पर रूपकों के गद्य-पद्य मिश्रण और संस्कृत प्राकृत के प्रयोग का कोई कारण नहीं बतालाया जा सकता।

8. मे-पोलवाद

कतिपय पाश्चात्य विद्धानों का विचार है कि नाटकों की उत्पत्ति 'मे पोल' नृत्य से हुई। भारतीय विद्वानों में श्री हरिप्रसाद शास्त्री भी नाट्यषास्त्र में वर्णित इन्द्रध्वज उत्सव के अवसर पर हुए प्रथम नाट्य प्रयोग से प्रेरणा प्राप्त कर पहली मई को यूरोप में होने वाले 'मे-पोल' उत्सव से साम्य बैठाते हुए नाटक की उत्पत्ति मानते हैं। 'मे-पोल' में किसी एक युवती को अलंकृत कर एक स्तम्भ गाडकर उसके चारों ओर नृत्यादि किया जाता था। श्री शास्त्री के मतानुसार निर्जीव शिशिर के अन्त में बसन्तोत्सव को मनाने के लिए किये जाने वाले प्रदर्शनों से नाट्योत्पत्ति हुई है।

समीक्षा - दोनों उत्सवों में उद्देश्य, भाव अथवा रूढि किसी का भी साम्य नहीं है। पाश्चात्य देशों का मे-पोल नृत्य बसन्तागम के आधार पर होता था तो भारतवर्ष में इन्द्रध्वज वर्षान्त के समय। अतः ''कहीं की ईट कहीं का रोड़ा'' जोड़ना उचित नहीं।

9. यवनिकावाद

इस मत के अनुसार भारतीय नाटकों का उद्भव सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् ग्रीक नाटकों के प्रभाव से हुआ। इसका एक प्रमाण यह भी है कि संस्कृत नाटकों में पर्दे का प्रयोग होता है और पर्दे को 'यवनिका' कहते हैं। यह 'यवनिका' शब्द 'यवन' से बना है। ऐसा कुछ विद्वान मानते हैं। इस मत के समर्थक वेबर महोदय है। उनकी मान्यता है कि भारतीयों ने यूनानियों से सम्पर्क काल में यह विद्या सीखी। डेनिस विद्वान ई-वान्द्रे भी इस मत के समर्थक हैं। उन्होंने इसका समर्थन प्राचीन भारतीय नाटकीय और मिनेण्डर कालीन यूनानी कामदियों में साम्य दिखलाते हुए किया है। प्रोलॉग और प्रस्तावना का साम्य भी इस और इंगित करता है।

समीक्षा – प्रो० सिल्वा लेवी की मान्यता है कि वेबर की इस प्रकार की मान्यता सर्वथा अनुचित है। क्योंकि यूनान में खुला रंगमंच था तथा वहॉ पर्दे का प्रयोग होता ही नहीं था। अतः जहॉ पर्दे न हों वहॉ उसका सम्बन्ध जोडना उचित नहीं। साथ ही यूनानी नाटकों एवं भारतीय नाटकों में अनेक असमानताएँ होने के कारण भारतीय नाटक का यूनानी नाटक से उद्भव मानना उचित प्रतीत नहीं होता।

10. लोक-स्वांगवाद

प्रो० हिलब्रैण्ट तथा स्टेनकोनों का कथन है कि भारतवर्ष में पहले स्वांग अधिक जनप्रिय थे। इन्हीं स्वांगों में रामायण - महाभारत की कथाओं का संयोजन कर नाटकों का विकास किया गया।

समीक्षा - यह मत भी विद्वानों को मान्य नहीं हो सका। डॉ० कीथ ने इस मत का प्रबल विरोध किया।

11. प्रकृतिवाद

डॉ०कीथ की मान्यता है कि प्राकृतिक परिवर्तनों को मूर्त रूप में परिवर्तन करने से नाटकों की उत्पत्ति हुई। उन्होंने अपने कथन का आधार महाभाष्य में उल्लिखित 'कंस वध' नामक नाटक को बनाया है। जिसमें पात्र रक्तमुख एवं कृष्णमुख होकर अभिनय करते हैं। डॉ कीथ के अनुसार इस नाटक का उद्देष्य हेमन्त ऋतु पर बसन्त ऋतु की विजय दिखलाना है। कृष्ण की विजय प्रकृति के भीतर विलास करने वाली जीवनी शक्ति का प्रतीक है।

समीक्षा - परन्तु इस मत की भी वही गति हुई जो अन्य मतों की हुई थी अर्थात् यह भी विद्वानों को स्वीकृत नहीं हुआ।

विश्लेषण - उक्त सभी मतों का अनुशीलन करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृत नाटकों के उद्भव के सम्बन्ध में किसी भी एक वाद विशेष या मत को ही प्रमुखता प्रदान करना उचित न होगा, क्योंकि उनके विकास में तो शनैः शनैः सभी तत्व सहायक रहे हैं। डॉ वचनदेव कुमार की मान्यता है कि ''प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में नृत्यागीतों का प्रचलन रहा है। उनमें कथा-संवाद तथा अभिनय के सामंजस्य से क्रमषः नाटक विकसित हुए। भारत के प्राचीन से प्राचीन साहित्य में नाटक एवं उसके अभिनय के उल्लेख से यह धारणा पुष्ट होती है कि नाटकों की उत्पत्ति सर्वप्रथम भारत में ही हुई। इसमें नृत्य, गीत-पुरा-कथा एवं संवादों का सहयोग है।''प्रो०हसंराज अग्रवाल के शब्दों में ''यह रूपक का विकास मानों एक सजीव शरीर था जिसके रूप में बार-बार परिवर्तन हुए जिसको जो मिला उसी को हडप लिया तथा फिर भी अपना स्वरूप अक्षुण्ण कर रखा।''

10.4 संस्कृत नाटक का विकास

संस्कृत नाट्य साहित्य का विकास क्रमशः वैदिककाल से ही प्रारंभ हो गया थां इस संदर्भ में प्रो इन्द्रपाल सिंह ''इन्द्र'' का कथन उल्लेखनीय है - वेदों में ऐसे संकेत अवश्य मिलते हैं जिनसे वैदिककाल में नाट्कों की स्थिति सिद्ध होती है। ऋग्वेद के सूक्तों में सोमविक्रय के समय होने वाले अभिनय का पता चलता है। महाव्रत स्त्रोत के अवसर पर कुमारियाँ नृत्य गान के साथ अग्नि की परिक्रमा करती थी। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता के तीसवें अध्याय की छठी कण्डिका में ''षैलूश'' शब्द आया है, जिसका अर्थ है-अभिनेता। कहा जाता है कि एक सूत को नृत्य के लिए ओर शैलूष को गाने के लिये नियुक्त किया जाना चाहिये। सामवेद के स्त्रोत रागबद्ध हैं ही जिससे ज्ञात होता है कि वैदिक युग में संगीत पूर्ण विकासावस्था में था। संगीत के अलावा नृत्य तथा वाद्य के भी संकेत प्राप्त होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक युग में वे सभी उपादान प्रचुर मात्रा में पाये जाते थे जो नाटक के विकास के लिए अपेक्षित हैं।

वेदों के पश्चात् रामायण एवं महाभारत में भी नाटक के संकेत प्राप्त होते हैं। महाभारत में ''रामायण नाटक'' तथा ''कौबेर रंगाभिसार'' नामक नाटकों के नाम आये हैं। महाभारत के विराट पर्व में रंगशाला तथा नट का प्रयोग है। रामायण में भी ''नट'', ''नाटक'' ''रंग'' तथा नर्तक का अनेक स्थानों पर उल्लेख प्राप्त होता है। पाणिनि ने भी ''अष्टाध्यायी'' में पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ' द्वारा नाटकों की पूर्व रचना का आभास दिया है।

चतुर्थ शती ई०पूर्व के कौटिल्यीय ''अर्थशास्त्र'' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नट, नर्तक, गायक, वादक, प्लवक, कुषीलव, सौमित्र तथा चारण आदि नाटकादि करके अपना जीवकोपार्जन करते थे। बौद्ध ग्रन्थों में ''विनय पिटक'' के ''चुल्लवग्ग'' में एक कथा है कि अष्वजित तथा पुनर्वसु अभिनय देखने के पष्चात् नर्तकी के साथ प्रेमालाप कर रहे थे तो उन्हें महास्थविर ने विहार से तत्काल निश्कासित कर दिया था। अतएव इस समय में भी नाट्यकला भारतव्यापी हो गई थी।

पतञ्जलि ने ''महाभाष्य'' में ''कंसवध'' तथा ''बलिवध'' दो नाटकों का नामोल्लेख किया है। महाभाष्य में ''रसिको नटः'' पद सिद्ध करता है कि पतंजलि के समय रस सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान था। उक्त विवरण से सिद्ध होता है कि नाटकों की उत्पत्ति भारत में हुई तथा वह वैदिक काल से ही क्रमशः विकसित होता हुआ अपने उन्नत स्वरूप को प्राप्त हुआ। वर्तमान में उपलब्ध जो रूपक हैं, उनमें नाटककार भास विरचित रूपक सबसे प्राचीन हैं-ऐसी अधिकांश विद्वानों की मान्यता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि भास संस्कृत नाट्य साहित्य के आद्य नाटककार हैं।

10.5 नाटक : परिभाषा एवं प्रकार

साहित्य के सभी प्रकारों में रूपक या नाट्य श्रेष्ठ माना गया है। इसकी रचना को कवित्व की अन्तिम सीमा कहा जाता है- नाटकान्तं कवित्वम्। वामन ने काव्यालंकारसूत्र में **(1/3/30)** कहा है- सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेय:।काव्य को संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने दृश्य और श्रव्य के रूप में दो वर्गो में रखा है। दृश्यकाव्य के दो भेद हैं- रूपक तथा उपरूपक। रूपक दस और उपरूपक अठारह प्रकार के होते हैं। रूपकों का एक प्रमुख भेद 'नाटक' है जो अपने अर्थ का विस्तार करके सामान्यत: बहुत व्यापक अर्थ में प्रचलित है, यद्यपि संस्कृत में यह एक सीमित अर्थ- परिधि में आता है। इस प्रसंग में धनञ्जय ने नाट्य, रूप और रूपक - इन तीन शब्दों का प्रयोग किया है । नाट्य में चार प्रकार के अभिनयों द्वारा काव्य में उपनिबद्ध पात्रों की अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है - अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् - (दशरूपक प्रथम प्रकाश)। चक्षुग्राह्य होने से इसे रूप भी कहते हैं - रूपं दृश्य-तयोच्यते' । इसी प्रकार नाटक के पात्रों रामादि का नट पर आरोप होने से इसे रूपक भी कहा जाता है - 'रूपकं तत्समारोपात्।' 'नट् अवस्पन्दने' धातु से नाट्य शब्द निष्पन्न हुआ है। इसमें वाक्यार्थरूप वाचिक अभिनय तथा सात्विक अभिनय की प्रधानता होती है अतः मुख्यतः यह रसाश्रय होता है। दृशरूपकम् के प्रणेता धनञ्जय ने रूपक के दस एवं उपरूपक के अठारह भेद किये गये हैं-

नाटकं सप्रकरणं भाण: प्रहसनं डिम:।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।। (**दशरूपक** 1/8)

रूपक के दस भेद

1.नाटक 2.प्रकरण 3.भाण 4. व्यायोग 5. समवकार 6. डिम 7. ईहामृग 8. अंक 9.वीथी 10. प्रहसन

उप रूपक के 18 भेद

1	नाटिका	**8**	काव्य	**15**	दुर्मल्ली
2	त्रोटक	**9**	प्रेङ्खण	**16**	प्रकरणिका
3	गोष्ठी	**10**	रासक	**17**	हल्लीश
4	सट्टक	**11**	संलापक	**18**	भाणिका
5	नाट्य रासक	**12**	श्रीगदित		
6	प्रस्थान	**13**	शिल्पक		
7	उल्लाप्य	**14**	विलासिका		

10.6 पारिभाषिक शब्दावली

नाटक - चार प्रकार के अभिनयों द्वारा काव्य में उपनिबद्ध पात्रों की अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है – अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् ।

रूपक- इसी प्रकार नाटक के पात्रों रामादि का नट पर आरोप होने से नाटक को रूपक भी कहा जाता है - 'रूपकं तत्समारोपात्।'

वाक्य – आकांक्षा योग्यता सन्निधि से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहते है।

षैलूश - शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता के तीसवें अध्याय की छठी कण्डिका में ''षैलूश'' शब्द आया है, जिसका अर्थ है-अभिनेता। कहा जाता है कि एक सूत को नृत्य के लिए ओर शैलूष को गाने के लिये नियुक्त किया जाना चाहिये।

यवनिका - संस्कृत नाटकों में पर्दे का प्रयोग होता है और पर्दे को 'यवनिका' कहते हैं।

सूत्रधार - कथा के सूत्र पकडने वालों को नाटक में सूत्रधार कहा गया-'सूत्रं धारयति इति सूत्रधारः''। मे-पोल -में किसी एक युवती को अलंकृत कर एक स्तम्भ गाडकर उसके चारों ओर नृत्यादि किया जाता था।

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. काव्य किसे कहते है ? इसके विविध भेदों के नाम लिखिए ?
2. संस्कृत नाटक के विकास को उल्लेखित किजिए ?
3. मे पोल वाद क्या है ? समझाइये ?
4. नाटक के दस भेदों के नाम लिखिए ? किसी एक भेद को समझाइये ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. काव्य के विविध लक्षणों को प्रदर्शित करते हुए विभिन्न आचायों द्वारा दिये लक्षणों की परीक्षा किजिए ?
2. नाटक किसे कहते है ? रूपक तथा उपरूपकों के विविध प्रकारों का वर्णन किजिए ?
3. नाटक की उत्पत्ति के विविध सिद्धान्तों का वर्णन किजिए ?
4. संस्कृत नाटकों की वर्तमान प्रासंगिकता पर लेख लिखिए ?

10.8 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने सर्वप्रथम संस्कृत काव्य में नाटक के स्थान का ज्ञान प्राप्त किया। इसके पश्चात् काव्य के लक्षण के तीन सम्प्रदाय का अध्ययन किया। इसी के साथ काव्य के विविध भेदों का अवबोध किया। नाटक की उत्पत्ति के विविध सिद्धान्तों तथा संस्कृत नाटकों के क्रमिक विकास का अध्ययन किया। अन्त में नाटक की परिभाषा तथा नाटक के प्रकार एवं उप प्रकार का अध्ययन किया।

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, उमाशंकर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2014
2. नन्दी, सागर, नाटकरत्नलक्षणकोशः,चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2003.
3. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा एवं दशरूपक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2007.
4. व्यास, भोलाशंकर, दशरूपकम्, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2004.
5. Chakyar, M. M. ,NATYAKALPADHRUM, Sangeet Natak Akademi, New Delhi, 1996.
6. Varma, K. M.. NATYA NRTTA AND NRTYA - THEIR MEANING AND RELATION. Bombay: Oriental Organization, 1995.

इकाई 11

नाट्यग्रन्थों के आधार पर रूपकों के प्रकार,संस्कृत रूपकों की विशेषताएँ एवं संस्कृत के प्रमुख नाटककार

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 रूपक परिभाषा

11.3 रूपकों के प्रकार

11.4 संस्कृत रूपकों की विशेषताएँ

11.5 संस्कृत के प्रमुख नाटककार

11.6 पारिभाषिक शब्दावली

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.8 सारांश

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.0 उद्देश्य

एम. ए. संस्कृत पूवार्द्ध के प्रश्न–पत्र द्वितीय ललित साहित्य एवं नाटक के पाठ्यक्रम में इकाई दस के अन्तर्गत रूपकों के प्रकार, संस्कृत रूपकों की विशेषताएँ एवं संस्कृत के प्रमुख नाटककारों का आपको अध्ययन करना है। इसके अध्ययन के उपरान्त आप–

- रूपक शब्द का तात्पर्य सम्यक् रूप से समझ सकेगें।
- विभिन्न नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित रूपकों के प्रकारों से परिचित हो जाऐंगें।
- संस्कृत रूपकों की विशेषताओं का ज्ञान आपको हो जाएगा।
- संस्कृत साहित्य के प्रमुख नाट्यकारों के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं संस्कृत वाङ्मय में उनके योगदान को आप जान सकेगें।

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं में से नाट्यविधा से परिचय प्राप्त कर रहे है।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।। सा.द. 6/1

वाङ्मय के दो भद है (1) दृश्य काव्य (2) श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्य पठन, पाठन, श्रवण द्वारा सहृदयों क हृदय को आकृष्ट करता है। जबकि दृश्य काव्य नेत्रों के माध्यम से दर्शको के हृदय का स्पर्श करता है।

संस्कृत में दृश्यकाव्य के लिए 'रूपक' शब्द प्रयुक्त होता है। यहाँ अभिनय की अवस्था में नट तथा नटी पर नाटक के पात्रों का आरोप होने से यह रूपक है।

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र वह आकर ग्रन्थ है जिसमें नाटको के समस्त तत्त्वों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इन्होंने नाटक को 'लोकवृत्तानुकरणं नाट्यं' एवं 'लोकोपदेशजननं' तथा ''विश्रान्तिजननं'' कहा है।

महाकवि कालिदास ने नाटक को चाक्षुषक्रतुं कहकर इसकी महत्ता को इस प्रकार सिद्ध किया है।

नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम्

इसके अतिरिक्त काव्येषु नाटकं रम्यं एवं नाटकान्तं कवित्वं इत्यादि उक्तियाँ काव्य में नाटक की श्रेष्ठता को स्वतः उजागर करती है।

प्रस्तुत इकाई में रूपकों की परिभाषा, रूपको के प्रकार, संस्कृत रूपको की विशेषताएँ एवं संस्कृत के प्रमुख नाट्ककार यथा भास, शूद्रक, कालिदास, विशाखदत्त, हर्ष, भवभ्ति, भट्टनारायण, इत्यादि के विषय में आप जानकारी प्राप्त करेंगे।

11.2 रूपक की परिभाषा

रूप शब्द मूलतः नेत्रों के विषय का द्योतन करता है, इसीलिए दृश्यकाव्य के लिए प्रयुक्त जातिवाचक नाम रूप या रूपक है। दशरूपककार के अनुसार ''रूपं दृश्यतयोच्यते'' – ''तदेवं नाट्यं दृश्यमानतया रूपमित्युच्यते नीलादिरूपवत्'' जैसे नीले पीले इत्यादि रंगों को हम अपनी आँखों से देखते है उसी प्रकार नाट्य को भो रंगमंच पर देखते है इसलिए वह रूप है।

नाट्यदर्पणकार रूप का निर्वचन करते हुए कहते है– ''रूप्यन्ते अभिनीयन्ते इति रूपाणि नाटकादीनि'' रूपित अर्थात् अभिनीत होने के कारण नाटकादि को रूप माने है।

नाट्य दर्पणकार का यह मत मान्य नहीं है क्योंकि नाट्य केवल दृश्य ही नहीं है भरतमुनि नाटक को ''दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्'' कहकर इसे दृश्य एवं श्रव्य दोनों कहा है।

नाटक के पर्यायवाची के रूप में रूपक शब्द अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित है। रूपक अलंकार में उपमेयभ्त मुख पर उपमानभ्त चन्द्र का आरोप किया जाता है ;तद्रूपकमभदो य उपमानोपमेययोः–उपमानोपमेंययोः यः अभदः अभदारोपः तत् रूपकमित्यर्थःद्ध उसी प्रकार नाट्य में नट पर राम आदि अनुकार्य पात्रों की अवस्था का आरोप किया जाता है। रूपकं तत्समारोपात् –नटे रामाद्यावस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्रूपकं मुख चन्द्रादिवत् इसी अभदारोप के कारण ही अनुकार्य तथा नट में तादात्म्य प्रतिपत्ति होती है। इसी कारण नाट्य को रूपक नाम से अभिहित किया जाता है। नाट्य के लिए रूपक शब्द का प्रयोग प्रायः सभो नाट्य शास्त्रियों द्वारा किया गया है। यथा –

दृश्यं तत्राभिनेयं

तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।	साहित्यदर्पण 6/1
त्रिंशद्रूपकभदाश्च प्रकाश्यन्तेऽत्र लक्षणैः।	भाव प्रकाशन 8 अधिकार।
तत्र रूपकेषूत्कृष्टत्वाद् बहुगुणाकीर्णत्वाच्च।	नाटक लक्षण रत्नकोश।
सन्दभषु दशरूपकं श्रेयं।	वामन काव्यालंकार सूत्रवृत्ति। 1/3–30

11.3 रूपकों के प्रकार

आचार्य भरत ने रूपक प्रकार के सम्बन्ध में कहा है–

सर्वेषामेव काव्यानां मातृका वृत्तयः स्मृताः।
आभ्यो विनिःसृतं चेतद्दशरूपं प्रयोगतः।। ना. शा. 18/4

भरत के अनुसार चारों वृत्तियाँ समस्त काव्यों की मातृ का है एवं यह दशरूप प्रयोग इन्हीं से निकले है ये अभिनेय काव्य बन्ध के दस भद इस प्रकार है

नाटकं सप्रकरणमङ्को व्यायोग एव च।
भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः।।
ईहामृगश्च विज्ञेयो दशमो नाट्यलक्षणे।। ना. शा. 18/2.3

नाटक, प्रकरण, अङ्क, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम, ईहामृग भरतमतानुसार रूपक के ये दस भद हैं। इनमें से नाटक तथा प्रकरण सर्ववृत्तिनिष्पन्न है जबकि अन्य वृत्तिन्यून है। वीथ्यादि आठ अंगों में कैशिकी वृत्ति नहीं होती है। (ना. शा. 18/7–8)

इन दशरूपों के अतिरिक्त भरतमुनि ने 'नाटिका' का भो उल्लेख किया है जो कि प्रकरण तथा नाटको से उत्पन्न है।

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र ने रूपक के 12 भद बताए हैं। वे है–

नाटकं सप्रकरणं च नाटिका प्रकरण्यथ।
व्यायोगः समवकारः भाणः प्रहसनं डिम।।
अङ्क ईहामृगो वीथी चत्वारः सर्ववृत्तयः। नाट्यदर्पण 1/3–4
त्रिवृत्तयः परे त्वष्टौ कैशिकी–परिवर्जनात्।।

नाटक, प्रकरण, नाटिका, प्रकरणी, व्यायोग, समवकार भाण, प्रहसन, डिम, अंक, ईहामृग एवं वीथी (नाट्यदर्पण 1/2–4) भरत के बताए।। भदों में प्रकरणी का जोड़कर 12 भद किए है। परन्तु नाट्य दर्पण में प्रकरणी का कोई उद्धरण नहीं दिया है।

दशरूपककार धनञ्जय ने स्पकों के भदक तत्त्वों का उल्लेख करते हुए कहा है– वस्तु नेता रसस्तेषां भदकः।

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्।। द.रू. 1/8

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृग इति।। द. रू. 1/8–9

प्रतापरूद्रीयकार विद्यानाथ ने भो इसी भद को माना है वस्तुनेतृरसस्तेषां रूपकाणां हि भद काः (प्रतापरूद्रीय नाटक प्रकरण 3)

धनंजय ने भरत के समान नाटिका का भो उल्लेख किया है लक्ष्यते नाटिकाऽप्यत्र संकीर्णाऽन्यनिवृत्तये। रूपकों के संकीर्ण भदों में नाटिका का परिगणन किया गया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने रूपकों के दशभद के साथ ही 18 उपरूपकों का भो उल्लेख किया है–

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सदृकं नाट्यरासकम्
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च। सा.द. 6/4–5

इसमें नाटिका, प्रकरणी एवं भाण से समान 6 नृत्यभदों को भो रूपकों की मान्यता दे दी है।

शारदातनय ने भावप्रकाशन के आठवें अध्याय में रूपकों की संख्या तीस मानी है। इनमें से दस रसाश्रययूत नाटक प्रकरण आदि है शेष 20 तोटक, नाटिका, प्रेक्षक सट्टक आदि भावात्मक है।

शृंगारप्रकाशकार भोजराज ने अध्याय 20 में दृश्यकाव्य के बीस भद गिनाये है।

काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र ने अष्टम अध्याय में काव्य के दो भद किए है– 'प्रेक्ष्यं श्रव्यं च' प्रेक्ष्य एवं श्रव्य प्रेक्ष्य के दो भद है – पाठ्यं गेयं च। पाठ्य के अन्तर्गत रूपकों के भद है– पाठ्यं नाटकप्रकरणनाटिका समवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकाङ्क प्रहसन भाण वीथीसदृकादि इसमें इन्होंने 'सट्टक' एवं नाटिका को भो जोड़ते हुए 12 भद माने है।

सारांशतः रूपकों के प्रकार दो प्रकार से है–

(1) वृत्ति चतुष्टय (2) वस्तु–नेता–रस। परवर्ती आचार्यों ने रस को ही रूपकों का भदक आधार स्वीकार किया है। रूपको के भद इस प्रकार है नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, उत्सृष्टिकांक ;अंकद्ध तथा ईहामृग। इनके अतिरिक्त नाटिका, प्रकरणी, त्रोटक तथा सट्टक को भो विभिन्न आचार्यों ने रूपक भदों में गिना है।

इनके अतिरिक्त विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में 'महानाटक' नामक नई विधा का भो लक्षण दिया है।

एतदेव यदा सर्वेः पताकास्थानकैर्युतम्।

अंकैश्च दशभिर्धीराः महानाटकमूचिरे।।

यथा बालरामायणम् **सा. द. 6/223–24**

वर्तमान में इन रूपक–प्रकारो में से नाटिका, प्रहसन, सदृक, भाण, नाटक रूप ही सर्वाधिक प्राप्त होते हैं। रूपकों के इन प्रकारों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से दिया जा सकता है।

1. नाटक

नाटक की कथावस्तु प्रख्यात (ऐतिहासिक या पौराणिक) होनी चाहिए। नायक धीरोदात्त होना चाहिए। नाटक में संध्यङ्गो सहित पाँचों संधियों का विधान होता है। तथा अंकों की संख्या पाँच से 10 तक होती है। चारो वृत्तियाँ (कैशिकी, आरभटी, सात्त्वती एवं भारती) होती है। मुख्य रस वीर या श्रृंगार तथा अन्य सभो रस अङ्गी होते हैं। यथा अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उत्तररामचरितम्, मुदाराक्षस, वेणीसंहार इत्यादि।

प्रकरण –

प्रकरण की कथावस्तु कवि कल्पित होती है। प्रकरण का नायक ब्राह्मण, मंत्री या वैश्य में से कोई भो हो सकता है। नायिका कुल स्त्री या गणिका कोई भो हो सकती है। 5 से 10 तक अंक हो सकते है। नायक धीर प्रशान्त होता है। पाँचों संधियाँ एवं वत्ति कैशिकी होती है। श्रृंगार रस प्रमुख होते है। यथा मृच्छकटिकम्, मन्दारमरन्दचम्पू प्रकरण इत्यादि।

भाण –

वस्तु कल्पित होती है। विट, धूर्त, वेश्या आदि का चरित्र वर्णित होता है। मुख तथा निर्वहण
संधि होती है। एक अंक होता है। अधिकतर भारती या कैशिकी वृत्ति, मुख्यतः श्रृंगार एवं वीर रस। भाण का पात्र 'ब्रवीषि' यह कहकर उत्तर प्रत्युत्तर करता जाता है। लास्य के दस अंगों का प्रयोग होता है। सामाजिक रीति रिवाज, कुरीतियों तथा दोषों का पर्दाफाश करने के लिए साहित्यिक अस्त्र है। मदन – संजीवन भाण इत्यादि।

प्रहसन –

प्रहसन की कथा वस्तु कविकल्पित एवं अधम प्रकृति के नायक से सम्बद्ध होती है। एक ही अंक होता है। मुख तथा निर्वहण संधि एवं लास्य के दस अंगों से युक्त होता है। अंगी रस हास्य रस होता है।

डिम –

इसकी कथावस्तु इतिहास–प्रसिद्ध होती है। इसमें कैशिकी के अतिरिक्त शेष सभो वृत्तियाँ होती है। इसके नेता उद्धत स्वभाव वाले देवता, गन्धर्व, यक्ष राक्षस, भ्तप्रेत पिशाच आदि होते हैं । इसमें शान्त, हास्य एवं श्रृंगार के अतिरिक्त शेष छः रस होते हैं । प्रधान रस रौद्र होता है। मुख, प्रतिमुख, गभ एवं निर्वहण चार संधियाँ होती हैं। चार दिनों से सम्बन्धित चार अंक होते है यथा त्रिपुरदाह–

व्यायोग –

व्यायोग की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है। नायक इतिहास प्रसिद्ध तथा धीरोद्धत होता है। व्यायोग में नायिका नहीं होती। एक दिन के वृत्तान्त वाला यहाँ एक ही अंक होता है। इसमें कैशिकी वृत्ति के अतिरिक्त अन्य वृत्तियाँ तथा मुख प्रतिमुख व निर्वहण संधि होती ह। हास्य, शृंगार तथा शान्त रस के अतिरिक्त अन्य छः रस होते हैं। यथा जामदग्न्यजय तथा सौगन्धिकाहरण।

समवकार –

समवकार में बारह प्रधान पात्र अथवा नायक होते हैं। (ये देव तथा असुर से सम्बद्ध हो सकते है।) प्रख्यात विषय वस्तु होती है। इसमें वीर रस की प्रधानता होती है और अन्य रस इसको पुष्ट करते है। इसमें विमर्श को छोड़कर अन्य संधियाँ तथा कैशिकी के अतिरिक्त अन्य वृत्तियाँ होती है। इसमें तीन प्रकार के कपट (स्वभाविक, दैविक तथा कृत्रिम) तीन प्रकार के विद्रव (चेतनकृत, अचेतनकृत, उभयकृत) तथा तीन प्रकार के शृंगार (धर्म, अर्थ तथा काम शृगार) होते है। यथा समुद्रमन्थन।

वीथी –

वीथी कल्पित कथा युक्त एकांकी है। अन्य रसों का किंचित् स्पर्श रहते हुए भो शृंगार रस की ही प्रधानता होती है। मुख तथा निर्वहण संधि होती है। इसमें एक या दो पात्र होते हैं जो आकाश भाषित के माध्यम से उत्तर प्रत्युत्तर करते है। यथा बकुल–वीथी, मालविका तथा इन्द्रलेखा इत्यादि।

उत्सृष्टिकांक अथवा अंक –

अंक नायक रूपक–भद की कथावस्तु प्रख्यात अथवा कल्पित कोई भो हो सकती है। इसमें स्त्रियों के विलास आदि का वर्णन रहता है। इसमें करुण रस की प्रधानता होती है किन्तु दुखान्त कभो नहीं होता। इसका नायक प्राकृत पुरुष होता है। जय पराजय आदि का इसमें वर्णन होता है। युद्ध केवल वाणी द्वारा (वाग्यु) होता है। भारती वृत्ति होती है। एकांकी होता है तथा मुख एवं निर्वहण संधि होती है। यथा – शर्मिष्ठा–ययाति।

ईहामृग –

ईहामृग की कथावस्तु मिश्रित होती है। चार अंक होते ह। वस्तु कल्पित होती है। नायक एवं प्रतिनायक इतिहास प्रसिद्ध देवता तथा मनुष्य होते हैं। धीरोद्धत प्रकृति के होते है। सम्पूर्ण कथावस्तु की गतिशीलता दिव्यनायिका की प्राप्ति के लिए होती है। गभ एवं विमर्श से रहित तीन संधियाँ।

नाटिका –

नाटक तथा प्रकरण का मिश्रण रहता है। वस्तु कविकल्पित होती है। नायक धीरललित प्रकृति का होता है। प्रधान रस शृंगार होता है। चार अंक होते है। स्त्रीपात्रों की बहुलता होती है। यथा रत्नावली, प्रियदर्शिका, कमसुन्दरी, विद्वत्शालभजिका।

11.4 संस्कृत रूपकों की विशेषताएँ

(1) संस्कृत नाटक प्रायः सुखान्त ही होते हैं। इनका अन्त सदा ही शोभन घटनाओं से, मैत्री से तथा विरोध के उपशमन से होता है।

(2) परिमाण की दृष्टि से संस्कृत नाटक विस्तृत होते हैं। संस्कृत नाटकों में प्रायः पाँच से दस अंक तक होते हैं।

(3) संस्कृत नाटकों में संस्कृत के साथ प्राकृत भाषाओं का मिश्रण पाया जाता है। नायक एवं उच्च वर्गीय पात्र संस्कृत का प्रयोग करते है। जबकि स्त्रियाँ एवं निम्न वर्गीय पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जाता है।

(4) नाटकों की कथावस्तु काल्पनिक न होकर रामायण, महाभारत, पुराण एवं बृहत्कथा इत्यादि के कथानकों पर आधारित होती है।

(5) नाटक में गद्य–पद्य का सम्मिश्रण संस्कृत नाटकों की अनूठी विशेषता है। यहाँ कथोपकथन गद्य में एवं प्रकृतिवर्णन, नीति, सुभाषित इत्यादि के लिए पद्य का प्रयोग किया जाता है।

(6) संस्कृत नाटक 'अंकों' में विभक्त किए गए है। प्रत्येक अंक के अन्त में सभी पात्रों का रंगमंच से चला जाना आवश्यक होता है। अगले अंक के कथानक को जोड़ने के लिए प्रवेशक अथवा विष्कंभक का प्रयोग किया जाता है।

(7) संस्कृत नाटको में विदूषक का पात्र भी विशेष होता है। यह नाटक में केवल हास्य के उत्पादन के लिए ही नहीं होता है अपितु यह नायक का मित्र होता है एवं समय–समय पर नायक को उचित परामर्श देकर उसकी सहायता भी करता है।

(8) संस्कृत नाटकों की अभिनेयता को सुगम बनाने की दृष्टि से यहाँ अभिनय सम्बन्धी संकेत भी यथास्थान दिए जाते है यथा जनान्तिकम्, अपवारितम्, सरोषम्, विहस्य, आकाशे इत्यादि।

(9) संस्कृत नाटक प्रायः आदर्शवादी होते है। इनका लक्ष्य है लोकरजन के साथ–साथ समाज में नैतिकता एवं उच्च आदर्शो की स्थापना करना।

(10) संस्कृत नाटक प्रायः प्रेक्षागृह अथवा नाट्यमण्डपों में ही किन्हीं विशेष अवसरों पर यथा पर्व, उत्सव, राज्यभिषेक, विवाह पर प्रदर्शित किए जाते थे।

(11) संस्कृत नाटको में प्रायः वर्णन बाहुल्य के कारण कथा प्रवाह में तीव्रता नहीं है यहाँ गति पर बल नहीं दिया गया है।

(12) संस्कृत नाटकों में अन्वितित्रय का अभाव पाया जाता है। स्थानान्विति, (सभी घटनाएँ एक ही स्थान पर हो) कालान्विति (समग्र घटनाएँ एक ही दिन में हो) कार्यान्विति (समस्त घटनाओं का एक ही उद्देश्य हो) में से केवल कार्यान्विति ही संस्कृत नाटकों में पायी जाती है।

(13) डॉ. डे के अनुसार संस्कृत नाटकों की प्रकृति भावुक अधिक है। यहाँ के नाटककार प्रथमतः कवि है बाद में नाटककार।

(14) संस्कृत नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी रसमयता तथा रसजनकता। सहृदय के हृदय का आह्लाद अर्थात् सहृदय के हृदय में रसानुभ्ति जगाना ही नाटक का चरम लक्ष्य है।

(15) संस्कृत रूपकों का एक विशेष पात्र है कंचुकी जो अन्तःपुर का द्वारपाल होता है। अन्तःपुर में प्रवेश के लिए इसकी अनुमति आवश्यक होती है। यह वृद्ध ब्राह्मण या क्लीव होता है।

(16) नाटकीय अभिनय की दृष्टि से संस्कृत क अधिकांश नाटक रंगमंच पर सफल तथा अभिनीत नहीं किये जा सकते। इस दृष्टि से कई नाटकों को पाठ्य नाटकों की श्रेणी में रखना पड़ता है।

इनके अतिरिक्त संस्कृत रूपको में धार्मिक भावनाओं की प्रतिष्ठा अलौकिकता, आकाशभाषित, भाग्यवाद, आश्रम के साथ–साथ राज–प्रासाद गृह कानन प्रकृति चित्रण भी उस समय के भावात्मक तथा ऐश्वर्यात्मक वातावरण का भान कराते है।

11.5 संस्कृत के प्रमुख–नाटककार

भास

महाकवि भास संस्कृत–रूपककारों में सम्भवतः प्राचीनतम है। सन् 1912 से पूर्व कालिदास, बाण, वाक्पतिराज, राजशेखर, जयदेव इत्यादि संस्कृत कवियों ने भास की प्रशंसा तो बहुत की थी किन्तु भास के नाम से कोई ग्रन्थ उपलब्ध न था। 1912 में ही गणपतिशास्त्री ने

भास के 13 नाटकों की शृंखला जारी की। इन नाटको के अन्तः साक्ष्य तथा बहिर साक्ष्यों के आधार पर भास का समय ई. पू. चतुर्थ तथा पंचम शताब्दी माना जा सकता है।

भास की उपलब्ध रचनाओं को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1.	उदयनकथा मूलक	–	प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्
2.	रामायण मूलक	–	प्रतिमानाटक, अभिषेकनाटक
3.	महाभारतमूलक	–	ऊरुभङ्ग, दूतवाक्य, पञ्चरात्र, दूतघटोत्कच, कणभार, मध्यमव्यायोग तथा बालचरितम्
4.	लोककथामूलक	–	अविमारक तथा चारूदत्त

भास के रूपकों की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी अभिनेयता भास का कवित्व सदा नाटकीयता का सहायक बना है। भास के कवित्वपूर्ण पद्य नाटकीय घटनाचक्र को गति प्रदान करने वाले हैं।

मध्यम व्यायोग, दूतघटोत्कच, ऊरूभग, दूतवाक्य, कणभार में एक अंक वाले होने से एकांकी को गए है।

भास के संवादो की भाषा सरल, दीर्घ समास रहित, अल्प अलंकारो से समन्वित, प्रवाहपूर्ण है।

भास ने अपने रूपको की प्रकृति के अनुसार ही नायकों को चित्रित किया है। पात्रों के चित्रांकन में कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है। पात्रो के साथ दर्शकों का तादात्म्य सहज ही हो जाता है।

भास के रूपको में मुख्यतः शृंगार, वीर व करूण रस अङ्गीरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। स्वप्नवासवदत्तम् में शृंगार, ऊरूभङ्ग तथा मध्यम व्यायोग में वीररस, प्रतिमा तथा कणभारम् में करूण रस अङ्गीरूप में उपलब्ध है।

नाटकीय दृष्टि से समस्त रूपकों का व्यवस्थित तथा सुसंगठित होना, सरल, सरस भावों की अभिव्यक्ति तथा रङ्गमञ्च की उपयुक्तता की दृष्टि से मास के रूपक संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है।

शूद्रक

संस्कृत के नाट्य साहित्य में मृच्छकटिक ही एक अकेला ऐसा नाटक है, जिसमें एक साथ प्रणय–कथात्मक प्रकरण, धूर्तसंकुल भाण, तथा राजनीतिक नाटक का वातावरण दिखाई देता है। तत्कालीन मध्यम वर्ग के समाज की सामाजिक स्थिति को यहाँ पूर्णतः प्रतिबिम्बित किया गया है। (भोला शंकर व्यास)

मृच्छकटिक एक दस अंकों का प्रकरण है। इसमें चारुदत्त एवं गणिका वसन्त सेना के प्रणय का सरस चित्रण किया गया है। इसमें दो कथा साथ–साथ चलती है प्रथम भाग में चारुदत्त एवं वसन्त सेना का प्रणय चित्रण है दूसरे भाग में आर्यक की राजप्राप्ति के प्रयास का चित्रण है।

'मृच्छकटिक' के रचयिता कवि शूद्रक के जन्म स्थान, काल इत्यादि के विषय में विद्वानो में मतभद रहा है। कुछ इन्हें कालिदास का पूववर्ती एवं भास के पश्चात्वर्ती मानते हुए ई. पू. प्रथम शताब्दी मानते हैं एवं कुछ विद्वान नाटक में वर्जित सामाजिक राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति के आधार पर इनका समय ईसा की पाँचवीं शताब्दी या छठी शताब्दी के पूर्वाद्ध की रचना कहते हैं।

इस नाटक की सर्वप्रमुख विशेषता है इसम प्रचलित संस्कृत नायक सरणि राजा देवता के स्थान पर एक सामान्य ब्राह्मण को नायक बनाया गया है। यही संस्कृत का एक मात्र यथार्थवादी नाटक है। यहाँ चोर, जुआरी, बदमाश, राजनीति षड़यन्त्री, भिक्षु, विट, चेट, राजसेवक, पुलिस कमचारी, बेकार जन, गणिकाओं के विस्तृत समाज का यर्थाथ चित्रण किया है।

नाटक का नामकरण प्रकरण की एक घटना पर आधारित है। चारुदत्त का पुत्र मिट्टी की गाड़ी से खेलने से इन्कार कर देता है। वह पड़ौसी के बच्चे के समान सोने की गाड़ी से खेलना चाहता है। रोते–रोते रदनिका के साथ वसन्त सेना के पास जाता है। वह अपने स्वर्णिम आभ्षण दे देती है। बाद में वह आभ्षण विदूषक के पास से पकड़े जाते है और चारुदत्त के द्वारा सुवर्ण के लिए वसन्त सेना की हत्या किए जाना सिद्ध हो जाता है।

नाटकीय संविधान की दृष्टि से घटनाक्रम में सर्वत्र गत्यात्मकता बनी हुई है। सामाजिको में कौतुहल वृत्ति सर्वत्र बनी रहतो है।

शूद्रक की रचना शैली अत्यन्त सरल है। बड़े–बड़े छन्दों का अत्यल्प प्रयोग किया है। मुख्य रस श्रृंगार है करूण, भयानक, अद्भत, बीभत्स और हास्य रस अंगीरूप में है।

कथोपकथन एवं अभिनेयता की दृष्टि से यह सफल नाटक है।

मृच्छकटिक के टीकाकार पृथ्वीघर के अनुसार इस नाटक में शौरसेनी, प्राच्या, मागधी, शकारी, चाण्डाली तथा उक्की इन सात प्राकृतों का प्रयोग मिलता है।

संस्कृत साहित्य में यही एक ऐसा नाटक है जिसे सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सार्वभोम कहा जा सकता है।

कालिदास

कविकुलगुरु कालिदास की सात कृतियों में से तीन नाटक है। वे एक सफल नाटककार ह। उनके कवित्व के भार से नाटकीय कथावस्तु कहीं भो आक्रान्त नहीं हुई है। उनके नाटकों में गत्यात्मकता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। कालिदास का काल, जन्म स्थान सभो विवादास्पद है।

अधिकांश भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान् इसी मत के समर्थक है कि कालिदास ई.पू. प्रथम शताब्दी में मालव नरेश शकारि विक्रमादित्व्य की राजसभा के सदस्य थे। इनके तीन नाटक है–

(1) मालविकाग्निमित्रम् :– इस नाटक में शुंगवंशीय नृप अग्निमित्र तथा रानी की परिचारिका मालविका की प्रणय कथा निबद्ध है। कथानक ऐतिहासिक है।

(2) विक्रमोर्वशीयम् :– यह पौराणिक नाटक है। इसका विषय पुरूरवा एवं उर्वशी का विख्यात प्रेमाख्यान है। पुरूरवा केशी नामक दैत्य से उर्वशी की रक्षा करता है इसमें परस्पर प्रेमोद्भव हो जाता है मध्यान्तर में वियोग एवं अन्ततः मिलन के साथ नाटक समाप्त होता है।

(3) अभिज्ञानशाकुन्तलम् :– ''काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'' यह नाटक संस्कृत साहित्य में नहीं अपितु विश्व साहित्य में भो अद्वितीय है। 1789 में ही सर विलियम जोन्स ने इसका आंग्ल भाषा में अनुवाद कर विश्व को इसके सौन्दर्य से परिचित कराया था। इस नाटक में 7 अंक है। जिसमें इक्ष्वाकु वंशीय राजा दुष्यन्त एवं महर्षि कण्व पालिता दुहिता शकन्तला की प्रणय कथा वर्णित है। शकुन्तला का उपाख्यान महाभारत से लिया गया है। जिसमें कवि ने अनेक परिवर्तन कर सरस एवं हृदयग्राह्य बना दिया है। कण्व)षि की तीर्थयात्रा, अंगूठी की घटना, दुर्वासा शाप इत्यादि घटनाओं से नाटक में कुतूहल आद्योपान्त बना हुआ है। नाटक का अंगीरस श्रृंगार ही है।

कालिदास के रूपकों के कथानकों की घटनायें परस्पर सम्बद्ध तथा सोद्देश्य भो है। प्रत्येक घटना का कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य है। कथानक के विकास के लिए संक्षिप्त काव्यात्मक वर्जन भो दिये है। वे कहीं भो वैरस्य की स्थिति उत्पन्ना नहीं करते। कालिदास के तीनों रूपक श्रृंगार प्रधान है। जिनमें संयोग तथा विप्रलम्भ दोनों रूप मिलते है।

इनके काव्यों में तत्कालीन युग चेतना मूर्त रूप में प्राप्त होती है। मनोरंजन के साथ उपदेश का मंजुल समन्वय उनके नाटकों के औदात्य के निदर्शन है। कालिदास की शैली वैदर्भीरिति वाली है ''वैदर्भा रीति सन्दभ कालीदासो विशिष्यते'' उनकी सुन्दर उपमा के लिए कहा है।

''उपमा कालिदासस्य'' इसी एक ऐसी ही श्रेष्ठ उपमा के लिए उन्हें ''दीपशिखा कालिदास'' भो कहा जाता है।

प्रकृति चित्रण उनके नाटकों में अद्वितीय है अभिज्ञानशाकुन्तलम् एवं मेघदूतम् कवि के प्रकृति प्रेम के अनुपम उदाहरण है। सर्वत्र प्रकृति का मानवीकरण देखा जा सकता है।

रंगमंच की दृष्टि से भो कालिदास के ये नाटक श्रेष्ठ बन पड़े हैं । कथावस्तु की गत्यात्मकता न तो अतिशय प्रकृति वर्णन द्वारा और न ही अनावश्यक कृत्रिम पाण्डित्य प्रदर्शन द्वारा अवरूद्ध हुई है। सामाजिक की उत्सुकता नाटक में आद्योपान्त बनी ही रहती है। कवि उसे उभारने के लिए समयानुकूल नई वस्तु योजना करता है। संवाद छोटे व प्रसंगानुकूल है।

इस भाँति कालिदास के ये रूपक भावप्रधान होने के कारण एक आदर्शवादी वातावरण के सृजक है। फिर भो यथार्थवाद से अछूते नहीं है। नाट्यकला की दृष्टि से ये रूपक सर्वश्रेष्ठ कहे जा सकते हैं ।

भवभूति

भवभ्ति मूलतः कवि है। भावपक्ष की अपूर्व तरलता के कारण इन्हें कालिदास के समकक्ष रखा जा सकता है। भोलाशंकर व्यास इन्हें विशुद्ध नाटककार नहीं मानते इनके नाटकों को वे गीतिनाट्य के अन्तर्गत रखते है

भवभ्ति के जीवनवृत्त, काल इत्यादि के विषय में नाटक को प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि भवभ्ति काश्यप गोत्र के तैत्तिरीय शाखाध्यायी ब्राह्मणों के परिवार में उत्पन्न हुए थे इन्हें 'श्रीकण्ठ' की उपाधि प्राप्त थी तथा इनका समय 750 ई. के लगभग माना जाता है।

भवभ्ति के तीन नाटक प्राप्त है– (1) मालती माधव, (2) महावीरचरितम् (3) उत्तररामचरितम्।

मालतीमाधवम् एक प्रकरण है शेष दो राम कथा पर आधारित नाटक है। इनमें से भो भवभ्ति की कीर्ति पताका को दिगादिगन्त फहराने का श्रेय उत्तरामचरितम् को प्राप्त है।

मालतीमाधवम् –यह दस अंको का प्रकरण है विदभराज मंत्री के पुत्र माधव एवं पद्मावत नरेश पुत्री मालती के प्रणय कथा तथा अनेको विघ्नोपरान्त दोनो के विवाह का इस प्रकरण में वर्णन है। श्रृंगार रस की प्रधानता है।

महावीरचरतिम् – यह सात अंको का नाटक है। जिसमें रामायण के बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की कथा का प्रदर्शन किया गया है। वीर रस प्रधान इस नाटक में राम का चरित्र लोकोत्तर शक्ति सम्पन्न भगवान् के रूप में न होकर वीरता से सम्पन्न आदर्श पुरूष के रूप में हुआ है इसीलिए इसका नाम महावीरचरितम् है।

उत्तररामचरितम् – सात अंको का यह नाटक भवभ्ति की सर्वोत्तम कृति है। इसमें कवि के कवित्व व नाट्यकौशल का अद्भत सामंजस्य है। करूणरस प्रधान इस नाटक की कथावस्तु राम के राज्यभिषेक के उपरान्त सीता निर्वासन से प्रारम्भ होकर अश्वबोध यज्ञ के समय सीता–राम के पुनर्मिलन के साथ समाप्त होती है। नाटक में करूण रस की प्रधानता है। करूणरस की वर्णन के कारण भवभ्ति कालिदास से श्रेष्ठ माने गए है ''उत्तरेरामचरिते भवभ्तिर्विशिष्यते''। इसमें भवभ्ति की तीन महत्त्वपूर्ण कल्पनाओं से यह नाटक अतिविशिष्ट है चित्रदर्शन, छायाङ्क, गभनाटक।

'एको रसः करूण एव' की मान्यता वाले भवभ्ति ने संस्कृत नाट्य साहित्य की प्रचलित सरणि के विपरीत करूण रस को नाटक का अङ्गीरस करूण को बनाकर एक अभिनव मार्ग का निर्माण किया।

संयोग, विप्रलम्भ श्रृंगार तथा करूण के वर्णन में तो वे निपुण है ही साथ ही वीर, रौद्र तथा वीभत्स को भो वे कुशलता से चित्रित करते है। 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' की उपाधि प्राप्त उनके व्यक्तित्व में वैदिग्ध्य एवं पाण्डित्य का मणिकांचन संयोग प्राप्त होता है।

भवभ्ति प्रकृति के कोमल तथा रौद्र दोनो ही प्रकार के रूपों के वर्णन में सिहस्त है।

भवभ्ति के वर्णनों में गौड़ी तथा वैदर्भी का मञ्जुल समन्वय प्राप्त होता है। शिखरिणी भवभ्ति का सर्वाधिक प्रिय छन्द है।

भट्टनारायण

भट्टनारायण की नाट्यकृति वेणीसंहार में नाट्यशास्त्र की नियमावली का पूर्ण परिपालन किया गया है। नाट्यशास्त्रीय आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में पदे–पदे वेणीसंहार के उद्धरण दिए है। अर्थप्रकृतियों, अवस्थाओं एवं संधियों का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अन्तः तथा बाह्य साक्ष्य के आधार पर नाटककार भट्टनारायण का समय सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना गया है। 'क्षितीशवंशावलीचरितम्' के अनुसार ये कान्यकुब्ज निवासी शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्ना सारस्वत ब्राह्मण थे।

''वेण्याः संहारः'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार इस नाटक में द्रौपदी के वेणीसंहार की कथा है।

छः अंकों में निबद्ध इस नाटक की कथा महाभारत की 'भोम प्रतिज्ञा' नामक आख्यान से ली गई है। जिसमें नाटकीय सौंदर्य की दृष्टि से कवि द्वारा अनेक परिवर्तन किए गए है जिससे नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण नाटक बन गया है।

राजसभा में दुःशासन द्वारा अपमानित द्रौपदी ने यह प्रतिज्ञा की थी वह तब तक अपनी वेणी खुली रखेगी जब तक अपमान का बदला न ल लिया जायेगा।

नाटक के प्रारम्भ में पता चलता है कि वनवास की शर्तों को पूरी कर लौटे पाण्डवों की ओर से पाँच गाँवों की संधि प्रस्ताव लेकर कृष्ण दुर्योधन हस्तिनापुर गए है इससे भोम व द्रौपदी क्रोधित होते हैं, यही भोम प्रतिज्ञा करते है कि वे दुर्योधन की जंघा को गदा से तोड़ेगें व उनके रक्तरंजित हाथों से द्रौपदी की वेणी को बांधेगे। श्रीकृष्ण असफल प्रयत्न लौटते है इससे रूष्ट होकर युधिष्ठिर युद्ध की घोषणा कर देते है। अन्त में दुर्योधन व भोम का गदा युद्ध होता है वहाँ वे दुर्योधन की जघा को तोड़कर द्रौपदी की वेणी संवारते है व द्रौपदी प्रसन्ना हो वेणी बांधती है।

भारतीय नाट्यशास्त्र इसका नायक युधिष्ठर को मानता है जबकि पाश्चात्य नाट्यशास्त्री इसे दुःखान्त नाटक मानकर इसका नायक दुर्योधन को बताते है।

नाटक का अंगीरस वीर है जबकि इसमें श्रृंगार, करूण व वीररस की अभिव्यंजना प्राप्त हुई है

नाटकीय संविधान व रंगमंच की दृष्टि से नाटक में गत्यात्मकता का अभाव है। नाट्य शास्त्रीय नियमों का पूर्ण परिपालन, लम्बे–लम्बे कथा प्रसंग, युद्धों का अनावश्यक वर्जन रसबोध में बाधक है। कथावस्तु की नाटकीय गत्यात्मकता के शिथिल होने पर भो इसका चरित्र चित्रण सुन्दर है।

भट्टनारायण की शैली आलंकारिक है। समासान्त पदों का चयन, गम्भोर ध्वनि वाले शब्दों का निर्वाह कर वे 'ओज' गुण की व्यंजन करते है। किन्तु इस तरह की उदात्त गौड़ी शैली नाटक के लिए अनुपयुक्त होती है।

वेणीसंहार नाटक में भरत मुनि के 'दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्' अनुसार दृश्य व श्रव्य दोनों के ही गुण देखे जा सकते है। यद्यपि दृश्य काव्य की कसौटी पर यह उतना खरा नहीं है। किन्तु काव्य की दृष्टि से यह नाटक सुन्दर बन पड़ा है।

नाट्यकार हर्षवर्धन

नाट्यकार हर्षवर्धन का व्यक्तित्व इतिहास के पृष्ठों में सुस्पष्ट है। बाणभट्ट के 'हर्षचरितम्' तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरण में हर्षवर्धन के व्यक्तित्व तथा कृतित्व कवि व राजा हर्षवर्धन का राजकाल 606 ई. से 648 ई. तक सर्वमान्य है।

हर्षवर्धन की तीन रूपक कृतियाँ प्रसिद्ध है– प्रियदर्शिका तथा रत्नावली, ये दो नाटिकाएँ और नागानन्द नाटक।

प्रियदर्शिका – यह चार अंकों की नाटिका है। इसमें वत्सराज उदयन तथा आरण्यिका (प्रियदर्शिका) की प्रणयकथा निबद्ध है।

रत्नावली – यह भो चार अंकों की नाटिका है। इसमें राजा उदयन तथा सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली (सागरिका) के प्रणय तथा विवाह की कथा है। इस नाटिका में नाट्य के नियमों का पालन पूरी तरह से किया गया है। दशरूपक तथा साहित्यदर्पण में रत्नावली को ही आधार बनाकर नाटकीय वस्तु के तत्तत विभागों की समीक्षा की गई है। अतः इस कृति का शास्त्रीय महत्त्व है।

नागानन्द – इस नाटक का कथानक बौद्ध जातको से लिया गया है। नायक जीमूतवाहन है जो गरूड़ से सर्पों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि भो दे देता है। उसे अपना जीवन प्रिय नहीं है उसे प्रिय है दूसरों का हित चिन्तन, तथा विश्व का मंगल।

हर्ष की काव्यप्रतिभा निःसंदेह प्रथम कोटि की है। इनकी काव्य शैली सरल, सुबोध तथा वैदर्भी–परिष्कृत है। वर्णन में स्वभाविक और विशदता का संगम है। यद्यपि यहाँ उत्प्रेक्षा बाहुल्य है फिर भो सर्वत्र प्रसाद गुण व्याप्त है।

संस्कृत साहित्य को हर्ष ने एक नई परम्परा दी है वह है नाटिकाओ ंकी परम्परा। रंगमंच की दृष्टि से हर्ष की नाटिकाएँ कथानक की दृष्टि से संक्षिप्त होने के कारण अभिनेय है। मञ्चीय व्यवस्था में भो कोई जटिल संविधान नहीं दिखाई देता है। हर्ष के संवाद छोटे, मार्मिक तथा प्रभावोत्पादक है। जिनसे अभिनय में सहायता मिलती है।

केवल नाटकीय परम्परा के लिए ही नहीं अपितु नाटकीय गुणो की दृष्टि से भो हर्ष की रचनाएँ संस्कृत साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखती है।

11.6 पारिभाषिक शब्दावली

रूप – रूप शब्द मूलतः नेत्रों के विषय का द्योतन करता है, इसीलिए दृश्यकाव्य के लिए प्रयुक्त जातिवाचक नाम रूप या रूपक है।

रूपकं तत्समारोपात् –नटे रामाद्यावस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्रूपकं मुख चन्द्रादिवत् इसी अभेदारोप के कारण ही अनुकार्य तथा नट में तादात्म्य प्रतिपत्ति होती है। इसी कारण नाट्य को रूपक नाम से अभिहित किया जाता है।

पाठ्यं – पाठ्यं नाटकप्रकरणनाटिका समवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकाङ्क प्रहसन भाण वीथीसदृक़ादि इसमें इन्होंने 'सट्टक' एवं नाटिका को भी जोड़ते हुए 12 भेद माने है।

नाटक– नाटक की कथावस्तु प्रख्यात (ऐतिहासिक या पौराणिक) होनी चाहिए। नायक धीरोदात्त होना चाहिए। नाटक में संध्यङ्गो सहित पाँचों संधियों का विधान होता है। तथा अंकों की संख्या पाँच से 10 तक होती है। चारो वृत्तियाँ (कैशिकी, आरभटी, सात्त्वती एवं भारती) होती है। मुख्य रस वीर या शृंगार तथा अन्य सभी रस अङ्गी होते हैं।

प्रकरण – प्रकरण की कथावस्तु कवि कल्पित होती है। प्रकरण का नायक ब्राह्मण, मंत्री या वैश्य में से कोई भी हो सकता है। नायिका कुल स्त्री या गणिका कोई भी हो सकती है। 5 से 10 तक अंक हो सकते है।

डिम – इसकी कथावस्तु इतिहास–प्रसिद्ध होती है। इसमें कैशिकी के अतिरिक्त शेष सभी वृत्तियाँ होती है। इसके नेता उद्धत स्वभाव वाले देवता, गन्धर्व, यक्ष राक्षस, भूतप्रेत पिशाच आदि होते हैं ।

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

1. लघूत्तरात्मक

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त संक्षेप में दीजिए–

1. रूपक की परिभाषा दीजिए।
2. रूपक के दस भेदों का नामोल्लेख कीजिए।
3. रूपक के दस भेदों का विभाजक तत्त्व बताइये।
4. भाण के दो प्रमुख तत्त्व बताइसे।
5. संस्कृत रूपकों की दो विशेषताएँ बताइये।
6. कालिदास की नाट्य कृतियों का उल्लेख कीजिये।
7. संस्कृत के प्रमुख नाट्यकारों का नामोल्लेख कोजिये।
8. भवभूति का समय बताइये।
9. हर्ष की नाटिकाओं का नामोल्लेख कीजिये।
10. नाटिका को परिभाषित कीजिये।

विस्तृत प्रश्न

1. रूपक के दस प्रकारों पर एक लेख लिखिए।
2. संस्कृत नाट्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. 'काव्येषु नाटकं रम्यं' पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिये।
4. संस्कृत के प्रमुख नाट्यकारों की रचनाओं पर सारगर्भित लेख लिखिये।
5. 'रूपक–प्रकार' पर विभिन्न नाट्यशास्त्रियों के मतों का विश्लेषण करें।

लघु प्रश्नों के उत्तर

1. 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपकं दृश्यतयोच्यते'
2. नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, वीथी, व्यायोग, समवकार, अंक ईहामृग, डिम।
3. वस्तु नेता रसस्तेषां भदेकः।
4. एकांकी, एक ही पात्र, आकाश भाषित का प्रयोग
5. संस्कृत देखें 11.4
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्।
7. भास, शूद्रक, कालिदास, विशाखदत्त, भट्टनारायण, भवभूति।
8. देखें 11.5
9. प्रियदर्शिका, रत्नावली।
10. देखें 11.3

अभ्यास के उत्तर

1. देखें 11.3
2. देखें 11.4
3. देखें 11.4
4. देखें 11.5
5. देखें 11.3

11.8 सारांश

इस इकाई में हमने नाटक के दस प्रमुख भेदों का ज्ञान प्राप्त किया । संस्कृत रूपकों की प्रमुख विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त किया । काव्य के प्रमुख भेदों को जाना । संस्कृत साहित्य के प्रमुख नाट्यकार्ों के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं संस्कृत वाङ्मय में उनके योगदान को जाना ।

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी दशरूपकम्,डॉ. भोला शंकर व्यास, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2003.
2. नाट्यशास्त्र पं. बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्यायचौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2005.
3. नाट्यशास्त्र,पं. केदारनाथ,भारतीय विद्याभवन, नई दिल्ली, 2002.
4. महाकवि भास एक अध्ययन,पं. बलदेव उपाध्याय,चौखम्भा विद्यामाला, वाराणसी,1964.
5. संस्कृत कविदर्शन– भोलाशंकर व्यास– चौखम्बा विद्याभवन, 2003.
6. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन वाराणसी,1953.

इकाई – 12

विशाखदत्त का परिचय–काल मुद्राराक्षसः कथा, कथा का स्त्रोत

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 विशाखदत्त – सामान्य परिचय
12.3 विशाखदत्त का काल
12.4 नाटक का नामकरण
12.5 नाटक का सामान्य परिचय एवं नाटक की कथावस्तु
12.6 नाटक की कथावस्तु का मूलस्रोत
12.7 पारिभाषिक शब्दावली
12.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
12.9 सारांश
12.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.0 उद्देश्य

एम.ए. पूर्वार्द्ध संस्कृत के द्वितीय प्रश्नपत्र ललित साहित्य एवं नाटक की इकाई ग्यारह के अन्तर्गत संस्कृत के प्रख्यात नाटककार विशाखदत्त के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का एवं विश्वविख्यात नाटक मुद्राराक्षस की कथा एवं उसके मूलस्रोत का वर्णन किया गया है। इसके अध्ययन के उपरान्त आप

1) नाटककार विशाखदत्त के बहुमुखी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होंगे।
2) विशाखदत्त के काल–विषयक विभिन्न मत–मतान्तरों के विश्लेषण के उपरान्त उनके काल का निर्धारण कर सकेंगे।
3) संस्कृत साहित्य के यथार्थवादी एवं राजनीतिक पृष्ठभ्मि के अद्वितीय नाटक मुद्राराक्षस की सम्पूर्ण कथा को जानेंगे।
4) कूटनीतिक षड्यन्त्रों से परिपूर्ण, इस कथा के उद्गम स्रोत को भो जान सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नामक नाटक का अद्वितीय स्थान है। इसमें नाट्य शास्त्रीय समस्त नियमों का परिपालन करते हुए भो अभिनेयता का पूर्ण ध्यान रखा गया है। विशाखदत्त ने इस नाटक में श्रृंगार के रोमानी पथ का त्याग कर राजनीति की कठोर उतार–चढ़ाव वाली पद्धति को अपनाया है। भाव पक्ष के स्थान पर विचार पक्ष को प्रमुखता दी है। कृत्रिम शैली के आडम्बर के स्थान पर यहां सर्वत्र वैदर्भी रीति, प्रसाद एवं ओज गुण व्याप्त है मुद्राराक्षस में प्रारम्भ से अन्त तक गत्यात्मकता बनी रहती है, दर्शकों म भावी घटनाओं के प्रति उत्सुकता बनी ही रहती है। दर्शक अन्त तक चाणक्य के बौद्धिक खेल में उलझा रहता है। नाटक के अन्त में ही समस्त गुत्थियाँ सुलझती हैं और दर्शक मंत्र मुग्ध रह जाता है। यह जानकर कि बिना रक्तपात या क्रान्ति के चाणक्य ने केवल अपनी बुद्धि कौशल से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है यही इस नाटक की अद्वितीयता है।

12.2 विशाखदत्त : सामान्य परिचय

यो मुद्रया राक्षसकीर्तिहारी स्वज्ञानमुद्रार्जितराक्षसश्रीः।
विज्ञानभानुर्नयवर्त्मदक्षो विशाखदत्तः प्रथते पृथिव्याम्।। (कपिलदेव द्विवेदी)

संस्कृत साहित्य में नाटककार विशाखदत्त की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाने वाला नाटक है 'मुद्राराक्षस'।

मुद्राराक्षस की प्रस्तावना से नाटककार के विषय में कुछ ज्ञात होता है अथ सामन्तवटेश्वरदत्तपौत्रस्य महाराजपदभाक् पृथुसूनोः कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिः मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यं ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है विशाखदत्त के पिता महाराज पृथु एवं पितामह सामन्तवटेश्वरदत्त थे।

कुछ संस्करणों में पिता का नाम भास्करदत्त भो प्राप्त होता है। प्रस्तावना में 'सामन्त' शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि इनके पिता या पितामह किसी चक्रवर्ती सम्राट के सामन्त पद पर आसीन थे। इसीलिए विशाखदत्त के राजनीतिक वातावरण का परिपाक 'मुद्राराक्षसम्' में देखा जा सकता है।

विशाखदत्त का शास्त्रीय ज्ञान

मुद्राराक्षस की कथावस्तु राजनीति प्रधान होने के कारण विशाखदत्त को अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, नाटकीय व्यापारों का सूक्ष्म ज्ञान होना आवश्यक था। नाटककार के गम्भोर उत्तरदायित्व का निर्वहन कितना दुरुह है उन्होंने नाटक के चतुर्थ अंक में राक्षस के मुख से कहलाया है।

कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छ –
न्बीजानां गर्भितानां फलमतिगहनं गूढमुदभेदयंश्च।। मु. रा. 4/3

भरत द्वारा निर्दिष्ट नाट्यशास्त्रीय नियमों का परिफलन मुद्राराक्षस में सम्यक् रूप से किया गया है इससे विशाखदत्त का नाट्यशास्त्रीय ज्ञान परिलक्षित होता है।

अर्थशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों यथा कृत्य, सिद्धि, षाड्गुण्य, उपाय, द्रव्य, अद्रव्य, परिगणन, अनुग्रह, विग्रह तीन प्रकार की सिद्धियों का उल्लेख प्राप्त होता है। (राजायत्तां, सचिवायत्ताम्, उभयायत्ताञ्चेति) इन सबसे विशाखदत्त के राजनीति एवं राजनीति शास्त्र में पारङ्गत होना ज्ञात होता है।

विशाखदत्त ज्योतिषशास्त्र एवं गणितशास्त्र के भो पारंगत थे। इसका ज्ञान हमें ''कृतश्रमोस्मि चतुःषष्टियङ्गे ज्योतिः शास्त्रे'' तथा ''रक्षत्येनं बुधत्येनं बुधयोगः'' इत्यादि वक्तव्यों से होता है।

'दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति' द्वारा यह पता चलता है कि वे पुरुषार्थवादी थे।

बौद्ध दर्शन (5/2, 4/18) न्यायदर्शन (5/10) से उनके भारतीय दर्शन के गूढ़ ज्ञान के परिचय प्राप्त होता है।

इस प्रकार विशाखदत्त न केवल एक श्रेष्ठ नाटककार थे अपितु भारतीय दर्शन, गणित, ज्योतिष, राजनीति के भो प्रकाण्ड पण्डित थे। राजवंश से सम्बद्ध होने के कारण विशाखदत्त को राजनीति का प्रत्यक्ष एवं व्यवहारिक ज्ञान तो था ही साथ ही उन्होंने अर्थशास्त्र का भो गहन अध्ययन किया था। शत्रुपक्ष में फूट डालना, विषप्रयोग, शत्रुनाश के विविध उपाय, कूटलेख आदि की परिकल्पनाएँ अर्थशास्त्र तथा व्यवहारिक राजनीति का परिचय के कारण ही विशाखदत्त नाटक में प्रस्तुत कर सके।

विशाखदत्त का कृतित्व

'मुद्राराक्षस' के अतिरिक्त विशाखदत्त की दो अन्य कृतियों का भो उल्लेख प्राप्त होता है।

(1) देवीचन्द्रगुप्त

इसका कथानक भो राजनीतिक है। इसमें गुप्तवंशीय रामगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा ध्रुव देवी की कथा है। कायर एवं अयोग्य राजा रामगुप्त प्रबल शकराज के मांगने पर अपनी पत्नी ध्रुव देवी उसे देना स्वीकार कर लेता है। चन्द्रगुप्त अपने छल से ध्रुव देवी के वेष में जाता है एवं शकराज को मार डालता है एवं ध्रुवदेवी से विवाह भो कर लेता है यह नाटक अभो तक पूर्ण रूपेण प्राप्य नहीं है।

(2) **अभिसारिकावञ्चितम्**

इसका उल्लेख 'अभिनव – भारती' के 22वें अध्याय में तथा श्रृंगार प्रकाश के 12वें प्रकाश में उपलब्ध होता है। यह नाटक वत्सराज उदयन के जीवन से सम्बद्ध है। किन्तु यह भो अभो तक प्राप्त नहीं है।

इनके अतिरिक्त प्रो. ध्रुव ने 'सदुक्तिकर्णामृत' में उपलब्ध एक श्लोक के आधार पर 'राघवानन्द' नामक नाटक को भो विशाखदत्त प्रणीत सिद्ध करने का प्रयत्न किया है किन्तु यह नाटक भो उपलब्ध नहीं है।

12.3 विशाखदत्त का काल

किसी भो कवि का समय दो आधारों पर जाना जा सकता है।

(1) अन्तः साक्ष्य ;अर्थात् कवि ने स्वयं अपने बारे में क्या लिखा है।

(2) बहिः साक्ष्य अर्थात् कवि के समकालीन अथवा परवर्ती विद्वानों ने उसके सम्बन्ध में क्या लिखा है।

विशाखदत्त ने स्वयं के जीवन, काल इत्यादि के विषय में नाटक की प्रस्तावना में एक पंक्ति के अतिरिक्त कुछ भो नहीं लिखा है।

म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः।
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।। मु. रा. भरत वाक्य

अन्तः साक्ष्य में नाटक के भरत वाक्य में आए पार्थिवश्चन्द्र गुप्तः से विद्वान इनके स्थितिकाल के विषय में कुछ संकेत प्राप्त करते हैं। मुद्राराक्षस की कुछ पाण्डु लिपियों में पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः के स्थान पर 'पार्थिवोऽन्तिवर्मा', पार्थिवोदन्तिवर्मा, पार्थिवोरन्तिवर्मा पाठ भो प्राप्त होता है।

भारतीय इतिहास में रन्तिवर्मा नामक किसी राजा का उल्लेख प्राप्त नहीं है अतः यह पाठ अग्राह्य है।

पल्लव नरेश दन्तिवर्मा (720 ई.) के समय म्लेच्छों का आक्रमण दक्षिण में नहीं हुआ था। ये शैव राजा थे जबकि भरत वाक्य में राजा की विष्णु से तुलना है अतः यह भो अग्राह्य है।

'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा' नामक पाठ के आधार पर कुछ विद्वान विशाखदत्त को मौखरिनरेश अवन्तिवर्मा (855–63) का समकालीन मानने के पक्ष में है।

इन्होंने हूणों को परास्त किया था अतः इनके साथ म्लेच्छैः का सम्बन्ध सही बैठ जाता है। इस आधार पर प्रो. तैलङ्ग इनका समय 7वीं या 8वीं शताब्दी मानते है।

'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' नामक पाठ ही अधिक प्रमाणित जान पड़ता है। भारतीय इतिहास में तीन चन्द्रगुप्त का उल्लेख प्राप्त होता है–

1. चन्द्रगुप्त मौय (मौर्य साम्राज्य की स्थापना करने वाले जो कि नाटक के स्वयं प्रमुख पात्र है।)
2. मगध के गुप्त साम्राज्य की स्थापना करने वाले चन्द्रगुप्त प्रथम
3. विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने वाले असीम शक्तिशाली चन्द्रगुप्त द्वितीय। (375 ई. से 413 ई. तक)

इनमें से प्रथम दो चन्द्र गुप्त तो विशाखदत्त के आश्रयदाता हो ही नहीं सकते क्योंकि प्रथम तो स्वयं नाटक के पात्र है और द्वितीय चन्द्रगुप्त के बारे में इतिहास में उनके द्वारा म्लेच्छों को पराजित करने का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही विशाखदत्त का आश्रयदाता मानना अधिक प्रमाणित है।

1. चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों का उच्छेद किया था। (म्लेच्छैरूद्वेप्यमानः)
2. मुद्राराक्षस में आ शैलेन्द्रात् (3/19) में हिमालय से दक्षिण समुद्र तक साम्राज्य की कामना की है। यही बात चन्द्रगुप्त के मेहरौली लौहस्तम्भ से प्रमाणित होती है।
3. विशाखदत्त रचित 'देवीचन्द्रगुप्त' नाटक की कथावस्तु इस मत का समर्थन करती है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय से संबद्ध रहा है।
4. नाटक की राजनीतिक कल्पनाएँ भो चतुर्थ अथवा पंचम शताब्दी की परिस्थितियाँ की ही द्योतक है।

5. विंटरनित्स का कथन है विशाखदत्त नाटक की संरचना तथा शैली की दृष्टि से भास के चारूदत्त एवं प्रतिज्ञायौगन्धरायण आर शूद्रक के मृच्छकटिकम् से अधिक निकट है।

6. चन्द्रगुप्त द्वितीय का विष्णु भक्त होना तथा राजधानी कुसुमपुर होना भो यह सिद्ध करता है कि विशाखदत्त चन्द्रगुप्त द्वितीय के ही समकालीन रहे होगें।

भरत वाक्य में आए 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' के आधार पर सर्वप्रथम डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल ने विशाखदत्त का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय से स्थापित किया। प्रो. हिलेब्राँ, स्पेयर, टॉनी, आर. एस. पंडित इत्यादि भो विद्वान् भो इससे सहमत है। इस आधार पर विशाखदत्त का समय 400ई. के लगभग मानते हैं ।

बहिःसाक्ष्य के आधार पर भो उपर्युक्त समय की ही पुष्टि होती है।

श्री भोज रचित सरस्वती–कण्ठाभरण में जिसका समय 11वीं शताब्वदी है में मुद्राराक्षस के दो पद्य (1/22 (मु.रा.) स.क. 3/87) (मु.रा. 3/21 तथा सरस्वती 1/68) प्राप्त होते हैं ।

इसी प्रकार 10वीं शताब्दी के धनंजय ने अपने ग्रन्थ दशरूपक में मुद्राराक्षस का संकेत किया है। 'तत्र बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्' (दशरूपक 1/68 के बाद) और भो ''मन्त्रशक्त्या यथा मुद्राराक्षसे राक्षस सहायादीनां चाणक्येन स्वबुद्धया भदनम्'' (दशरूपक 2/55 के नीचे)।

मुद्राराक्षस का घटनास्थल पाटलिपुत्र है। मुद्राराक्षस में इसका वर्णन गौरवशाली नगर के रूप में किया गया है। इसे ही कुसुमपुर या पुष्पपुर भो कहा गया है। चीनी यात्री फाह्यान 399 से 411 ई. तक भारत की यात्रा की इन्होंने पाटलिपुत्र का मगध की राजधानी के रूप में वर्णन किया है।

इसके अनन्तर चीनी यात्री ह्वेनसांग 646–699 के मध्य भारत आया था। उसने पाटलिपुत्र का वर्णन भग्नावशेष के रूप में किया है।

इससे स्पष्ट है कि छटी अथवा सप्रम शताब्दी में पाटलिपुत्र की अवस्था वह नहीं थी जो मुद्राराक्षस में प्राप्त होती है।

इन ऐतिहासिक साक्ष्यों से भो स्प्ष्ट हो जाता है कि मुद्राराक्षस की रचना चतुर्थ शताब्दी के अन्त अथवा पंचम शताब्दी के आरम्भ में हुई होगी। इसी आधार पर विशाखदत्त का काल भो यही मानना होगा।

12.4 नाटक का नामकरण

विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य में अपनी अनूढी विशेषताओं के कारण अद्वितीय है। राजनीति घटना प्रधान इस नाटक में मंत्री राक्षस का यह प्रयत्न है कि किस प्रकार चन्द्रगुप्त को गद्दी से हटाया जाये। किन्तु कूटनीतिज्ञ चाणक्य के प्रयत्नों के फलस्वरूप राक्षस अपना अभोष्ट पूरा न कर सका। चाणक्य चन्द्रगुप्त का शुभचिन्तक था। उसकी हार्दिक अभिलाषा थी कि राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाऊँ। उसने गुप्तचरों के द्वारा राक्षस की राजकीय मुद्रा (मोहर) प्राप्त कर ली तथा उस मोहर को लगा–लगाकर राक्षस के समर्थकों को जाली पत्र भजे। परिणामतः राक्षस का सहायकों के साथ मतभद हो गया। राक्षस के प्रिय मित्र चन्दनदास को राक्षस के परिवार को छिपा कर रखने के उद्देश्य से चन्द्रगुप्त की आज्ञानुसार फांसी पर चढाया जा रहा है। राक्षस उसको बचाने का प्रयत्न करता है। चाणक्य कहता है यदि राक्षस चन्द्रगुप्त का मंत्री बनना स्वीकार कर ले तो उसके मित्र को फांसी से बचाया जा सकता है। राक्षस के पास कोई विकल्प न था वह अन्ततः आत्मसमर्पण कर देता है व चन्द्रगुप्त का मंत्रीपद स्वीकार कर लेता है।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि चाणक्य की सफलता का एक मात्र साधन 'राक्षस की मुद्रा' ही थी। इसी आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है। 'मुद्राराक्षस' अर्थात् मुद्रया परिगृहीतः राक्षसः तदधिकृत्य कृतः ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्।

12.5 नाटक का सामान्य परिचय एवं नाटक की कथावस्तु

नाटक में चाणक्य का प्रमुख लक्ष्य है। महानन्द के अमात्य राक्षस को चन्द्रगुप्त की अमात्य बनाना। वहीं राक्षस नन्द का स्वामीभक्त अमात्य है उसका उद्देश्य है नन्दवंश की पुनर्स्थापना एवं नन्दवंशीय किसी व्यक्ति को मलयक्तु को पाटलिपुत्र का सम्राट बनाना। इसी लक्ष्य को केन्द्र बिन्दु बनाकर इस नाटक में समस्त कूटनीतिक मंत्रणाएँ, षड़यन्त्र, दावपेंच खेले जाते है।

मुद्राराक्षस सात अंकों का मौर्यकाल से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटक है। चाणक्य नन्दवंश का समूल नाश कर चुका है। पाटलिपुत्र पर चन्द्रगुप्त का साम्राज्य है। नन्दवंश का समर्थक पर्वतेश्वर भो चाणक्य की कूटनीति के कारण तपोवन जा चुका है और वहाँ राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने के लिए भजी गई विषकन्या द्वारा उसका वध किया जा चुका है। प्रजा में यह अपवाद फैला दिया गया है कि राक्षस ने ही पर्वतेश्वर को मरवाया है। चाणक्य के विश्वस्त गुप्तचर भागुरायण द्वारा पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकतु को यह विश्वास दिलाकर कि राक्षस ने ही उसके पिता को मरवाया है पाटलिपुत्र से भगवा दिया है। राक्षस की गतिविधियों को जानने के लिए विभिन्न गुप्तचरों की नियुक्ति की जा चुकी है। इनसे पता चलता है कि कुसुमपुर में राक्षस के तीन विश्वासपात्र हैं – 1. क्षपणक जीव सिद्धि (जो वस्तुतः चाणक्य का ही गुप्तचर है) 2. कायस्थ शकटदास 3. मणिकार श्रेष्ठी चन्दनदास (जिसके घर राक्षस ने अपने परिवार को रखा है) चन्दनदास के घर से चाणक्य के गुप्तचार निपुणक को राक्षस के नाम से अंकित एक मुद्रा प्राप्त होती है जिसे वह चाणक्य को सोंप देता है। अंगूठी पाकर राक्षस कहता है ''ननु राक्षस एव अस्मदंगुलिप्रणयी संवृत्तः''।

चाणक्य शकटदास से एक कूट लेख लिखवाकर उसे मुद्रा से अंकित है कर देता है। यही मुद्रा अन्ततः राक्षस के पराजय का कारण बनती है और इसी घटना के आधार पर नाटक का नाककरण भो मुद्राराक्षस (मुद्रया परिगृहीतः राक्षसः तदधिकृत्य कृतो ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्)। पड़ा है। प्रथम अंक के अन्त में राक्षस की सहायता के आरोप में शकटदास को फाँसी एवं चन्दनदास को सपरिवार कारावास की सजा हो जाती है।

प्रथम अंक में जहाँ चाणक्य की राजनीतिक कुशलता हमारे सम्मुख आती है वहीं द्वितीय अंक में राक्षस की कूटनीतिक विशारदता हमारे सम्मुख आती है। प्रारम्भ में राक्षस का गुप्तचर जो कि सपेरे के वेष में है मंच पर प्रविष्ट होता है और कुसुमपुर के वृत्तान्त से राक्षस को अवगत कराता है। उसी से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त को मरवाने के लिए राक्षस की समस्त योजनाएँ विफल हो चुकी है और राक्षस के समस्त गुप्तचर भो जो उसने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए नियुक्त किए थे स्वयं अपनी मौत मारे गए है। अब राक्षस के सम्मुख एक ही विकल्प है कि वह किसी प्रकार चाणक्य व चन्द्रगुप्त के मध्य मतभद करा दे। इस हेतु वह चन्द्रगुप्त के वैतालिक को (जो कि राक्षस का गुप्तचर है) चन्द्रगुप्त को जोश दिलाने वाले स्तुतिपाठ सुनाने को कहता है।

तृतीय अंक में चाणक्य की कूटनीतिक कुशलता अपने चरम परिपाक पर है। चाणक्य प्रारम्भ से ही चन्द्रगुप्त को कृत्रिम कलह हेतु समझा देता है। पाटलिपुत्र में 'कौमुदी महोत्सव' को मनाने की चाणक्य द्वारा मनाही है। चन्द्रगुप्त इससे नाराज होकर चााक्य से इसका कारण जानना चाहता है। इस बात पर दोनों में कृत्रिम क्रोधपूर्ण वाद–विवाद होता है। अन्त में चाणक्य अपने शस्त्र फेंक कर चला जाता है और चन्द्रगुप्त उसे मन्त्रिपद से पृथक् कर देता है। इस बनावटी कलह को राक्षस का गुप्तचर एवं चन्द्रगुप्त का वैतालिक सच मानकर चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध उकसाने के प्रयोजन से स्तुतिपाठ प्रारम्भ कर देता है।

चतुर्थ अंक में राक्षस को गुप्तचरों द्वारा ज्ञात होता है कि चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त में अनबन हो गई है एवं चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को मन्त्रिपद से पृथक कर दिया है तब राक्षस समझता है अब चन्द्रगुप्त उसके हाथों में आ गया है।

''सखे शकटदास, हस्ततलगतो मे चन्द्रगुप्तो भविष्यति'' इधर मलयकेतु को भागुरायण (चाणक्य का गुप्तचर) यह विश्वास दिला देता है कि राक्षस का शत्रु चाणक्य है, चन्द्रगुप्त नहीं तो मलयकेतु राक्षस के प्रति अविश्वास करने लगता है। राक्षस एवं मलयकेतु चन्द्रगुप्त पर आक्रमण की योजना बनाते हैं क्षपणक से उसका मुहूर्त पूछते हैं।

पाँचवे अंक में चाणक्य अपनी कूटनीति द्वारा राक्षस एवं मलयकेतु में फूट डालने में समर्थ हो जाता है। चाणक्य के द्वारा प्रथम अंक में लिखवायोद गये। नकली पत्र एवं राक्षस के आभ्षणों के साथ सिद्धार्थक पकड़ा जाता ह एवं मलयकेतु के सम्मुख वह स्वीकार करता है। कि यह पत्र राक्षस ने चन्द्रगुप्त को देने हेतु भजा है इससे मलयकेतु के मन में यह विश्वास हो जाता है कि राक्षस विश्वघाती है। राक्षस पर्वतेश्वर के आभ्षण पहने है (जो उसने द्वितीय अंक में किसी बनिए से खरीदे थे) उन्हें देखकर भो मलयकेतु को यह विश्वास हो जाता है कि राक्षस ने ही उसके पिता पर्वतेश्वर को मरवाया है। इस भाँति चाणक्य की चाल से राक्षस एवं मलयकेतु का भदन हो जाता है।

छठा अंक राक्षस की लम्बी स्वगतोक्ति से प्रारम्भ होता है जिसमें राक्षस अपनी चालों की विफलता एवं भाग्यविपर्यय पर विचार करता है। इसी बीच चाणक्य का एक गुप्तचर आकर गले में रस्सी डालकर मरना चाहता है । राक्षस उसे बचाना चाहता है पर वह बताता है कि उसके मित्र चन्दनदास के वध से दु:खित होकर वह ऐसा कह रहा है। राक्षस अपने मित्र को बचाने के लिए दौड़ पड़ता है।

सातवें अंक में चाणक्य के दो गुप्तचर चाण्डाल बनकर चन्दनदास को वध स्थल पर ले जा रहे हैं चन्दनदास की पत्नी एवं पुत्र विलाप करते है। तभो वहाँ राक्षस आता है एवं चाण्डलों को फटकारता है इसमें वे भाग जाते है तभो चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य आते हैं एवं राक्षस को आत्म समर्पण कर देता है। चाणक्य उसे चन्द्रगुप्त का अमात्य बनने को मजबूर कर देते है। लाचार राक्षस अमात्य बनने को तैयार हो जाता है। इस तरह नाटक का पटाक्षेप होता है।

12.6 नाटक की कथावस्तु का मूलस्रोत

विशाखदत्त ने अपने नाटक का कथानक विष्णु, मत्स्य, वायु, भागवत पुराणों में एवं लोक में प्रचलित चन्द्रगुप्त के विषय म वर्णन है उसी को आधार बनाया है।

शिशुनागवंश का अन्तिम शासक महानन्द का बड़ा पुत्र महापद्म अथवा घनानन्द ही प्रथम नन्द राजा था। महापद्म ने सम्पूर्ण पृथ्वी को एक शासन के अधीन कर लिया था । उसके सुमाल्य इत्यादि आठ पुत्र थे। ये अपने पिता महापद्म के साथ नौ नन्द कहलाए। इन सभो को कौटिल्य ने समूल नष्ट कर दिया एवं चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया।

बृहत्कथा में भो चन्द्रगुप्त को नन्द का पुत्र कहा है जो उसकी मुरा नामक शूद्रा पत्नी से उत्पन्न हुआ है।

शारदातनय ने भावप्रकाश के 8वें अध्याय में नाटक के भद 'भास्वर' में उदाहरण स्वरूप एक नाटक का उल्लेख किया है जिसके पात्र नन्द एवं चाणक्य है।

कुन्दमाला की भ्मिका में भो एक नाटक का उल्लेख है। जिसका नाम ''प्रतिज्ञा चाणक्य'' है।

दशरूपक के टीकाकार मुद्राराक्षस को 'बृहत्कथा मूल कहते हैं – तत्र' 'बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्'। लेकिन यह मत विद्वानों द्वारा अमान्य है। उसने बृहत्कथा के उपलब्ध संस्करण कथा सरित्सागर तथा बृहत्कथामंजरी को ही बृहत्कथा समझकर उदाहरण के रूप में उपन्यस्त किया है। किन्तु वस्तुतः ये मुद्राराक्षस के उपजीव्य नहीं है। यही कारण है कि प्रो. धुव, श्रीराय तथा मुकर्जी आदि विद्वानों ने भो धनिक के कथन को अग्राह्य माना है।

वस्तुतः मुद्राराक्षस का कथानक ऐतिहासिक होने के साथ साथ अत्यन्त प्रसिद्ध था। नाटक की कथावस्तु के कथानक के लिए चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य से सम्बन्धित प्रचलित कूटनीतिक कथाओं, किंवदन्तियों तथा परम्परागत विषयों से ही अधिक प्रेरणा ली है।, कृति विशेष से नहीं।

12.7 पारिभाषिक शब्दावली

मुद्राराक्षस – 'मुद्राराक्षस' अर्थात् मुद्रया परिगृहीतः राक्षसः तदधिकृत्य कृतः ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्।

जीव सिद्धि चाणक्य का ही गुप्तचर है

कौमुदी महोत्सव – प्राचीन भारतीय महोत्सव जो वसन्त के समय आयोजित किया जाता था।

बृहत्कथा – गुणाढ्य कृत संस्कृत वाङ्मय का सबसे प्राचीन कथा स्त्रोत् ।

भरत वाक्य – किसी भी नाटक की सबसे अन्तिम पंक्ति भरत वाक्य कहलाती है।

पंच सन्धि – चाणक्य के अनुसार राजनीति की सन्धि विग्रह यान आसन द्वैधीभाव ये पाँच सन्धियाँ है।

12.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त संक्षेप में दीजिये–

1. विशाखदत्त की प्रमुख कृतियों का नामोल्लेख कीजिये–
   _____
2. विशाखदत्त का काल बताइये?
   _____
3. विशाखदत्त के पिता एवं पितामह का नामोल्लेख कीजिये?
   _____
4. नाटक के नामकरण की व्युत्पत्ति कीजिए?
   _____
5. विशाखदत्त के अर्थशास्त्रीय ज्ञान के परिचायक पाँच शब्दों का उल्लेख कीजिए?
   _____
6. नाटक के नायक एवं प्रतिनायक का नामोल्लेख?
   _____
7. राक्षस के तीन विश्वासपात्रों का नाम लिखिए?
   _____
8. चाणक्य द्वारा किस महोत्सव को मनाने की मनाही की गई थी?
   _____

विस्तृत प्रश्न

1. विशाखदत्त के शास्त्रीय ज्ञान पर लेख लिखिये?
   .....
   .....
2. विशाखदत्त का काल निर्धारित कीजिये?
   .....
   .....
3. मुद्राराक्षस नाटक के मूलस्रोत का उल्लेख कीजिये?
   .....
   .....
4. मुद्राराक्षस की कथावस्तु पर संक्षिप्त लेख लिखिये?
   .....
   .....
5. नाटक के नामकरण पर टिप्पणी लिखिये?
   .....
   .....

उत्तर

1. देवीचन्द्रगुप्तम्, अभिसारिकावञ्चितम्, मुद्राराक्षसम्।
2. चतुर्थ शताब्दी का अन्त अथवा पंचम शताब्दी का पूर्वार्द्ध।
3. पिता महाराज पृथु तथा पितामह सामन्तवटेश्वरदत्त।
4. मुद्रया परिगृहीतः राक्षसः तदधिकृत्यकृतः ग्रन्थः।
5. कृत्य, सिद्धि, उपाय, षाड्गुण्य, द्रव्य, अद्रव्य.....।
6. नायक चन्द्रगुप्त, प्रतिनायक राक्षस।
7. चन्दनदास, शंकरदास, क्षपणक जीवसिद्धि कौमुदी महोत्सव।

अभ्यासों के उत्तर

1. देखें – 12.2
2. देखें – 12.3
3. देखें – 12.6
4. देखें – 12.7
5. देखें – 12.4

12.9 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने का ज्ञान प्राप्त किया । यह जाना कि कूटनीतिक षड़्यन्त्रों से परिपूर्ण, इस कथा का उद्‌गम किस प्रकार हुआ ।संस्कृत साहित्य के यथार्थवादी एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि के अद्वितोय नाटक मुद्राराक्षस की सम्पूर्ण कथा का परिचय भी विशद से प्राप्त हुआ ।

12.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नाट्यशास्त्र,पं. बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2005.
2. साहित्य दर्पण,(विश्वनाथ कृत) आचार्य लोकमणि दाहाल, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नईदिल्ली,२०१५.
3. नाट्य दर्पण,रामचन्द्र गुणचन्द्र, ओरियण्टल संस्कृत सीरीज, गायकवाड, १६२८.
4. काव्यानुशासनम्,हेमचन्द्र,निर्णयसागरप्रेस, बम्बई,१६३४.
5. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन वाराणसी,1953.
6. संस्कृत कविदर्शन– भोलाशंकर व्यास– चौखम्बा विद्याभवन,2003.
7. मुद्राराक्षसम् – डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ, 2000.
8. हिन्दी दशरूपकम्,डॉ. भोला शंकर व्यास, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2003.

इकाई 13

नाटककार विशाखदत्त : भाषा शैली, नाटकीय विशेषतायें नाटक की शास्त्रीय विशेषतायें

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 नाटक की शैली

13.3 नाटक की भाषा

13.4 नाटक की नाटकीय विशेषतायें

13.5 नाटक की शास्त्रीय विशेषतायें–कथावस्तु का विभाजन

13.6 शास्त्रीय विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन

13.7 मुद्राराक्षसनाटक में पञ्चसंधियों का विनिवेश

13.8 पारिभाषिक शब्दावली

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.10 सारांश

13.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.0 उद्देश्य

एम. ए. पूर्वार्द्ध संस्कृत के प्रश्नपत्र द्वितीय की इकाई 12 के अन्तर्गत आप नाटककार विशाखदत्त की भाषा शैली, मुद्राराक्षस नाटक की नाटकीय एवं शास्त्रीय विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन के उपरान्त आप–

1. नाटककार विशाखदत्त की भाषा एवं शैली को समझ सकेंगे।
2. कथानक की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में अनुपम नाटक मुद्राराक्षस के वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।
3. नाटक का निर्माण कैसे करना चाहिए, उसमें किन–किन तत्त्वों का सन्निवेशः होना चाहिए वे तत्त्व क्या है? उनका स्वरूप क्या है इत्यादि शंकाओं का समाधान कर सकेंगे।
4. मुद्राराक्षस नाटक में इन तत्त्वों का अनुशीलन किस प्रकार से किया गया है इसको भो आप जान सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

एम. ए. पूर्वार्द्ध संस्कृत प्रश्न–पत्र द्वितीय ललित साहित्य एवं नाटक के अन्तर्गत आप संस्कृत साहित्य के विश्वविख्यात नाटकों में का परिचय प्राप्त कर रहे हैं। इसी क्रम में ग्यारहवीं ईकाई में आप संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य नाटककार विशाखदत्त के विश्वविख्यात नाटक मुद्राराक्षस की कथावस्तु को जान चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में आप मुद्राराक्षस नाटक की विशेषताओं, नाट्यशास्त्रीय विशेषताओं एवं कवि विशाखदत्त की भाषा एवं शैली का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

मुद्राराक्षस का कथानक संस्कृत नाटकों के परम्परागत ढर्रे पर नहीं चलता है। संस्कृत नाटकों की रोमानी परम्परा एवं प्रणय–चित्रण को छोड़कर राजनीतिक घटनाक्रम का चित्रण ही मुद्राराक्षस की अद्वितीयता है। यह राजनीतिक षड़यन्त्र का, कूटनीतिक दाँव–पेच का

नाटक है। नाटक का व्यापार सतत क्रियाशील है। नाटक का समस्त कुतूहल दोनों पक्षों की चाल और अपने मोहरे को बचाकर दूसरी चाल चलने की चतुरता में है। नाटक की शैली गम्भोर, सशक्त तथा स्पष्ट है। इससे नाटक में बोझिल नीरस न होकर सर्वत्र नाटकीय व्यापार को गत्यात्मकता मिलती है। मुद्राराक्षस नाटक की शैली विषयानुरूप है। इसमें कवि ने सर्वत्र औचित्य का ध्यान रखा है।

घटनाक्रम की गत्यात्मकता, नाटकीय कुतूहल, दृश्यों का स्वभाविक विनियोग और सामाजिक प्रभाव नाटक के इन समस्त स्वाभाविक गुणों का मुद्राराक्षस नाटक में पूर्ण ध्यान रखा गया है। कहीं भो कविता ने नाटकीयता को क्षुण्ण नहीं बनाया है। यही इस नाटक सफलता है।

13.2 नाटक की शैली

नाटककार विशाखदत्त की शैली सुस्पष्ट, प्रभावशाली तथा प्रवाह के औचित्य से परिपूर्ण है। नाटक में प्रसाद, माधुर्य एवं ओज तीनों ही गुणों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है किन्तु फिर भो उसमें प्रसाद गुण की प्रधानता दिखाई देती है। उसमें स्थान–स्थान पर गंभोरता, सशक्तता एवं प्रभावोत्पादकता के दर्शन होते हैं। कथावस्तु का निर्वाह कलात्मक दृष्टि के अनुरूप हुआ है। उनकी शैली उनके विषय के अनुरूप है। नाटकीय प्रवाह एवं प्रभाव को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए वे निरर्थक कलापक्ष में नहीं उलझे है। अपनी इस शैली के वे स्वयं ही निर्माता तथा निर्वाहकर्ता हैं। ''राजनीतिक धोखा किस भांति दिया जाना उचित कहा जा सकता है ''इसका सूक्ष्म एवं यथार्थ विश्लेषण ही उनकी कला की प्रमुख विशेषता है।

सामान्यतः मुद्राराक्षस का नाट्यविधान द्वन्द्वात्मक है कुछ विद्वानों ने प्रथम अंक में वर्णित चाणक्य की स्वगतोक्ति तथा षष्ठ अंक में वर्णित राक्षस की स्वगतोक्ति को नाटकीय दृष्टि से दोष युक्त माना है किन्तु वस्तुतः विशाखदत्त ने उनका प्रयोग पात्रों के व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए ही किया है। चाणक्य की स्वगतोक्ति से चाणक्य की राजनीति का विशद विवेचन प्राप्त होता है तथा राक्षस की स्वगतोक्ति से उसकी मानवीय प्रकृति का, उसकी कोमलता भावुकता का ज्ञान होता है।

विशाखदत्त की शैली की एक प्रमुख विशेषता है उनका 'श्लेष'। श्लेष का प्रयोग अधिकांश रूप में व्यंग्यार्थ की दृष्टि से किया है। सभो पताका स्थानक इसी श्लेष पर आश्रित है। जैसे प्रथम अंक का छठा श्लोक इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है

क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रम् सम्पूर्णमण्डलमिदानीम्।

अभिभवितुमिच्छति बलात्....

आः क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिमवितुमिच्छति बलान् ?

नेपथ्ये रक्षत्येनं तु बुधयोगः।। **मु. रा. 1/6**

अलंकार सम्बन्धी नाटककार की दूसरी विशेषता है बिम्बप्रतिबिम्ब भाव पर आश्रित उपमा प्रयोग। ''भग्यन्तरकथन'' उनकी शैली की एक अन्य विशेषता है। इसका तात्पर्य है नाटककार जिस बात का वर्णन पहले गद्य में करता है, उसी का वर्णन उसके पश्चात् पद्य में भो कर देता है यथा–

आहितुण्डिकः (स्वगतं संस्कृतमाश्रित्य) अहो आश्चर्यम् ! चाणक्यमति परिगृहीतं चन्द्रगुप्रमवलोक्य विफलामिव राक्षसप्रयत्नमवगच्छामि। राक्षसमति परिगृहीतं मलयकेतुमवलोक्य चलितमिवाधिराज्याच्चन्द्रगुप्रमवगच्छामि। कुतः

कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्तिं
मन्ये स्थिरां मौर्यनृपस्य लक्ष्मीम्।
उपायहस्तैरपि राक्षसेन
निष्कृष्यामाणामिव लक्षयामि।। 2/2

इस भाँति नाटककार विशाखदत्त की शैली ओजस्विनी एवं प्रवाह युक्त है। यहाँ अलंकारो का भो सीमित प्रयोग हुआ है। प्रधान अंगी रस वीर है। यह चाणक्य की उक्तियों में विशेष रूप से उपलब्ध होता है।

13.3 नाटक की भाषा

नाटककार विशाखदत्त ने नाटक में गद्य एवं पद्य दोनों में ही कोमल, सरस एवं औचित्यपूर्ण पदावली का प्रयोग किया है। भावों अनुकूल ही भाषा का प्रयोग हुआ है। नाट्य प्रवाह को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए उन्होंने पद्यों का बहुत अधिक प्रयोग नहीं किया है। संस्कृत के अतिरिक्त शौरसेनी, महाराष्ट्री तथा मागधी प्राकृत का प्रयोग भो नाटक में किया गया है।

इनके वाक्य छोटे–छोटे किन्तु सुसंगठित है।

चाणक्य – शाङ्र्गरव! शाङ्र्गरव।

शिष्यः – उपाध्याय! आज्ञापय

चाणक्य – वत्स! मसीभाजनं पत्रं च उपानय।

शिष्यः – यदाज्ञापयति। उपध्याय। इदं मसीभाजनं पत्रं च।

चाणक्यः – किमत्र लिखामि? अनेन खलु लेखेन राक्षसो जेतव्यः।

सशक्त एवं प्रभावोत्पादक शब्द विन्यास है। संवादों में स्वाभाविकता है। कभो–कभो तो एक ही शब्द के प्रयोग से नाटककार अधिक से अधिक अभिप्राय को प्रकट करने में समर्थ होता है। यथा राक्षस का निम्न कथन–

''सत्यं नगरान्निष्क्रामतो मम हस्ताद् ब्राह्मण्या उत्कण्ठा विनोदार्थं गृहीता।''

यहाँ 'ब्राह्मण्या' शब्द राक्षस के हृदयगत भावो की घनीभ्त वेदना को अभिव्यक्त कर रहा है।

कवि ने वैदर्भा का प्रयोग कर भाषा में गत्यात्मकता एवं प्रवाह लाने का प्रयत्न किया है।

विशाखदत्त का गद्य ओज से समन्वित है। उनके पद्यों में भो लालित्यपूर्ण प्रवाह का दर्शन होता है यथा

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य
जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्। 1/8

इस नाटक का विषय बौद्धिक स्तर का है फलतः इसमें जटिल एवं नीरस गद्य का प्रयोग है पर काव्योचित उदात्तता का अभाव नहीं है।

विशाखदत्त ही वह नाटककार है जिन्होंने नाटक की वास्तविकता को समझकर नाटक लिखा है और उसे काव्यात्मक दोष से बचाया है। इसमें माधुर्य एवं ओज गुणों की प्रचुरता है राजनीति, नीति एवं आचार शिक्षा के वर्णनों में वैदर्भा रीति ही प्रमुख है।

समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास प्रस्तुत प्रशंसा का सुन्दर प्रयोग है।

विशाखदत्त ने अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। किन्तु उनका ध्यान शार्दूलविक्रीडित तथा स्रग्धरा की ओर अधिक है जो कि नाटक के गम्भोर विषय के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करने में सहायक बन पड़े है। वे लाक्षणिक संवादों के विलक्षण शिल्पी है।

पताकास्थानक की सटीक योजना ने मुद्राराक्षस के संवादों मे चमत्कार ला दिया है।

चाणक्य – (आत्मगतम्) अपि नाम दुरात्मा राक्षसो गृह्येत?

सिद्धार्थ – आर्य गृहीतः।

चाणक्य – (सहर्षमात्मगतम्) हन्त, गृहीतो राक्षसः (प्रकाशम्) भद्र। कोऽयं गृहीतः?

सिद्धार्थ – गृहीतः आर्यसन्देशः

छठे अंक में श्मशान के वर्जन में उन्होंने मालोपमा, अमूर्त उपमान तथा उत्प्रेक्षा की मनोहर लड़ी दी है। यह समग्र वर्जन राक्षस की विवादग्रस्त मनोदशा का चित्रण करता है।

13.4 मुद्राराक्षस की नाटकीय विशेषतायें

कथावस्तु, शैली एवं टेकनीक की दृष्टि से मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है। यह नाटक विशुद्ध कूटनीति से परिपूर्ण राजनीति प्रधान नाटक है। इसका संविधान संस्कृत नाटको के परम्परागत ढर्रे पर नहीं चलता। इसमें ऐसी निजी मौलिकता है जो इसे अन्य संस्कृत नाटको से पृथ्क करती है।

(1) किसी नायिका का न होना इस नाटक की प्रमुख विशेषता है। सम्पूर्ण नाटक में केवल एक स्त्री पात्र (चन्दनदास की पत्नी) मंच पर प्रवेश करता है किन्तु कथावस्तु के विकास में उसका कोई योगदान नहीं है।

(2) नाटक के वातावरण को स्निग्ध एवं ललित बनाने वाले विदूषक का भो इस नाटक में अभाव है। घटनाओं की गति शीलता के कारण इसका अभाव खटकता नहीं है।

(3) मुद्राराक्षस राजनीति षड़यन्त्र का कूटनीति के दाँव पेंच का नाटक है। वीररस प्रधान इस नाटक में वीररस को उद्दीप्त करने हेतु न तो दुन्दुभि की गड़गड़ाहट। मुद्राराक्षस की लड़ाई चाणक्य एवं राक्षस की नहीं अपितु उनकी मन्त्रशक्तियों की लड़ाई है, नाटक का सारा कुतुहल दोनों की चाल और अपने मोहरे को बचा कर दूसरी चाल चलने की चतुरता में है।

इसमें न तों कोई रक्तपात होता है और न ही कोई सैनिक हताहत होता है फिर भो विजय एवं पराजय का परिणाम सामने आ जाता है। श्रृंगार एवं हास्य रस का नाटक में अभाव है। नाममात्र की भो हिंसा रक्तपात के बिना नाटक में वीररस का वर्णन है।

(4) नाटक का व्यापार पूर्णतया गत्यात्मक है। प्रारम्भ से अन्त तक कहीं भो घटनाओं में असम्बद्धता अथवा विरूपता नहीं आती है।

(5) इस नाटक में किसी भो धर्म अथवा सम्प्रदाय के प्रति विशिष्ट आस्था नहीं दिखती है। ''कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि'' का अक्षरशः पालन हुआ है।

(6) चरित्र–चित्रण भो इस नाटक की प्रमुख विशेषता है। इसमें अधिकांश पात्रों का चित्रण युगल रूप में हुआ है यथा–

(अ) कूटनीति प्रधान राजनीति में चतुर चाणक्य एवं राक्षस

(ब) परस्पर विरोधी गुणों से युक्त एक दूसरे के विरोधी राजा चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु

(स) भागुरायण एवं सिद्धार्थक

(7) अंकों का पृथक्–पृथक् दृश्यों के साथ विभाजन करना भो इस नाटक की अपनी एक पृथक् विशेषता है। यह नाटककार की मौलिकता की प्रतीक है। इस नाटक में विलक्षण कथावस्तु की योजना तथा सुव्यस्थित दृश्य विधान का अपना एक विशिष्ट स्थान है।

(8) इस नाटक का कथानक इतना पेचीदा तथा गहरा है कि न तो दर्शक की जिज्ञासा शान्त होती है और न ही कौतूहल का कहीं अवसान होता है। सम्पूर्ण नाटक में चाणक्य तथा राक्षस एक दूसरे को कूटनीति से परास्त करने के उद्देश्य से इतनी घटनाओं का विन्यास कर देते है कि वे सब विच्छिन्न एवं विशृंखल सी जान पड़ती है अन्त में जब जाल खींचा जाता है तो समग्र घटनाओं का संघटित फल एक साथ ही उद्‌बुद्ध हो दर्शकों के सम्मुख आ जाता है।

इस प्रकार से सुघटित कथा वस्तु की योजना में, वैवक्तिकता से मण्डित पात्रों के चित्रण में, ओजस्वी वायुमण्डल की अवतारणा में तथा वीररस की अभिव्यंजना में मुद्राराक्षस संस्कृत साहित्य का एक सफल नाटक है।

13.5 नाटक की शास्त्रीय समीक्षा कथावस्तु का विभाजन

भरतमुनि तथा उत्तरवर्ती नाट्यशास्त्रकारों ने रूपक के दस भद स्वीकार किए है। इनमें से नाटक में ही सभो तत्त्वों (वस्तु, नेता और रस) तथा तत्सम्बन्धी सभो अंगों का समावेश होने से इसे ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

कथावस्तु के दो भद करते हुए दशरूपककार का कथन है।

''वस्तु च द्विधा। तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्ग प्रासंङ्गिक विदुः अधिकारिक मुख्य कथावस्तु है जैसे मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त, चाणक्य तथा राक्षस की कथा मुख्य की अभ्त कथावस्तु प्रासकि कहलाती है जैसे मुद्राराक्षस में भागुरायण, मलयकेतु, चन्दनदास इत्यादि की कथा।

द्वेधा विभागः कतव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।

सूच्यमेव भवेद् किञ्चिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्, द.रु. 1/56

अभिनय की दृष्टि से समस्त कथावस्तु दो भागों में विभक्त होनी चाहिए कुछ तो सूच्य हो एंव दूसरी श्रव्य तथा दृश्य

नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः।

दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः। द.रु. 1/57

कथावस्तु का जो भाग नीरस हो, अनुचित (मृत्यु, युद्धादि) हो लेकिन कथावस्तु को अक्षुण्ण बनाने के लिए आवश्यक हो उसकी सूचना दे देनी चाहिए। किन्तु जो भाग चित्ताकषक, उदात्त रस एवं भाव से पूर्ण हो उसे रङ्गमंच पर दिखाना चाहिए (दृश्य)

सूच्य कथावस्तु को पाँच अर्थोपक्षकों द्वारा सूचित किया जाता है।

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत्।

विष्कम्भकचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः। द.रु. 1/58

ये है विष्कम्भक, चूलिका, अङ्कास्य, अङ्कावतार एवं प्रवेशक

इनमें से नाटककार विशाखदत्त द्वारा चूलिका, अंकावतार (7) एवं प्रवेशक का ही प्रयोग किया गया है। (6–7 अंक में) नाट्यधर्म की दृष्टि से कथावस्तु के फिर तीन भद है

नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते

सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेवच।

सर्व श्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम्

द्विधाऽन्यन्नाट्यधर्मः स्याज् जनान्तमपवारितम्।।

जो कथावस्तु सबके सुनने योग्य वह सर्वश्राव्य (प्रकाश) कहलाती है। जो मञ्च पर स्थित अन्य पात्रों को सुनाने के लिए नहीं अपितु केवल दर्शकों को सूचित की जाती है वह अश्राव्य अथवा स्वगत कथन कहलाती है और जो कथा मञ्च पर स्थित कुछ ही पात्रों को सूचित करने के लिए होती है वह नियत श्राव्य कहलाती है। इसके भो दो भद है जनान्तिक एवं अपवारित। आकाशभाषित भो एक अन्य भद है।

मुद्राराक्षस नाटक में कथावस्तु में से जनान्तिक, आकाशभाषित, चूलिका, अङ्कावतार (सातवां अंक) प्रवेशक (6–7 के मध्य) पताका स्थानक, प्रकरी, बहुतायत में प्राप्त होते हैं।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से कथावस्तु के विभाजन को तीन प्रकार से समझा जा सकता है।

(1) **कथावस्तु**

आधिकारिक	प्रासङ्गिक	
पताका	प्रकरी	
प्रख्यात	उत्पाद्य	मिश्र

अभिनय की दृष्टि से कथावस्तु का विभाजन

(2) कथावस्तु

सूच्य	दृश्य, श्रव्य		
अर्थोपक्षेपक			
विष्कम्भक	चूलिका अंकास्य	अंकावतार	प्रवेशक

नाट्यधर्म की दृष्टि से कथावस्तु

(3) कथावस्तु

सर्वश्राव्य	नियत श्राव्य	अश्राव्य (स्वगतकथन)

(प्रकाश)
जनान्तिक अपवारित

13.6 शास्त्रीय विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन

नाट्यशास्त्रियों द्वारा नाटक की कथावस्तु के सुगुम्फन हेतु नाटक में अर्थप्रकृति, अवस्थापंचक एवं पाँच संधियों का होना आवश्यक माना गया है।

नाट्यं ख्यातवृत्तम् स्यात् पञ्चसंधिसमन्वितम्

भट्टनारायण के वेणीसंहार नामक नाटक में इन तत्त्वों के समग्र परिपालन के कारण एक शास्त्रीय वातावरण देखा जा सकता है लेकिन इससे रसबोध में कहीं बाधा भो होती है। इसीलिए विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस नामक नाटक में प्रतिपल अभिनय एवं रसबोध को दृष्टिगत रखते हुए इन तत्त्वों का अनुशीलन किया है। इसीलिए दृश्यकाव्य की कसौटी पर अन्य नाटको की परख करते हुए मुद्राराक्षस को सर्वप्रथम गिना जा सकता है। स्वयं नाटककार विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के पाँचवे अंक के तृतीय श्लोक मुहुर्लक्ष्योद्भदा..... में पाँचों संधियों के विषय में बताया है। साथ चतुर्थ अंक के तृतीय श्लोक कायोपक्षेपमादौ तनुमपि..... में भो नाटक में इन संधियों के विनिवेश के समय नाटककार को होने वाले क्लेश का उल्लेख किया गया है।

इन शास्त्रीय तत्त्वों को मुद्राराक्षस में परखने से पूर्व हम इनकी संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।

''इतिवृत्तं तु नाट्यस्य शरीरं परिकीर्तितः'' ना. शा. 19/1

नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने कथावस्तु को नाटक का शरीर कहा है। दशरूपककार नाट्य का प्रयोजन त्रिवर्ग की प्राप्ति कहते है।

''कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च'' द.रू. 1/16

अर्थ प्रकृति –

नाटकीय संदर्भों में इन उद्देश्यों की प्राप्ति के निमित्त जो कार्य या उपाय किये जाते हैं उन्हे 'अर्थ प्रकृति' कहते हैं। अर्थप्रकृतयः प्रयोजन सिद्धिहेतवः। यहा अर्थ शब्द फल या प्रयोजन का वाचक है और प्रकृति है हेतु या कारण 'इस प्रकार फल की सिद्धि के उपाय ही अर्थप्रकृतियाँ है।

इसके पाँच प्रकार है बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य–

बीजबिन्दुपताकाप्रकरीकार्यलक्षणः।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः।। द. रू. 1/18

बीज –

नाटक म जिस कथा का प्रारम्भ में सूक्ष्म रूप से संकेत होता है तथा बाद में अनेक प्रकार से विस्तार ही बीज है।

बिन्दु –

विच्छिन्न कथावस्तु को जिस कथावस्तु द्वारा आगे बढ़ाया जाता है वह बिन्दु है।

पताका एवं प्रकरी –

इन दोनों अर्थप्रकृतियों के आधार पर प्रासंगिक कथावस्तु के द्वारा मुख्य कथानक का उपकार किया जाता है।

कार्य –

जिस फल प्राप्ति के निमित्त सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित की जाती है उसे कार्य कहते है।

अवस्था पञ्चकम् –

फल प्राप्ति के इच्छुक पात्रों द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्य की पाँच अवस्थायें होती है आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम–

अवस्था पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।। द.रू. 1/19

आरम्भ – प्रचुर फल प्रप्ति के लिए उत्सुकता मात्र होना ही आरम्भ है यहाँ प्रयत्न नहीं होता।

यत्न – फल प्राप्ति के लिए अत्यन्त वेगपूर्वक जो व्यापार किया जाता है

वह यत्न है।

प्राप्त्याशा – जहाँ फल प्राप्ति की आशा उपाय तथा अपाय ;विघ्नादिद्ध की आशंकाओं से घिरी रहती है फिर भो प्राप्ति की संभावना रहा करती है वही प्राप्त्याशा है।

नियताप्ति – विघ्न हट जाने पर फल प्राप्ति का नितान्त निश्चय ही नियताप्ति है।

फलागम – अभोष्ट वस्तु का पूर्णरूप से मिल जाना फलागम है।

पञ्चसंधियाँ –

रूपकों के संदभ में संधि से तात्पर्य है किसी रूपक की कथावस्तु की सुव्यवस्थित योजना अर्थात कथानक को विभक्त करके ठीक रूप से संगठित करना।

ये संधियाँ पाँच है। मुख, प्रतिमुख, गभ, विमर्श, निर्वहण

अन्तरैकार्यसम्बन्धे सन्धिरेकान्वये सति।
मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।। द.रू. 1/23

इनका संक्षिप्त विवरण है–

बीज	+	आरम्भ	=	मुख संधि
बिन्दु	+	प्रयत्न	=	प्रतिमुख संधि
पताका	+	प्राप्त्याशा	=	गभ संधि
प्रकरी	+	नियताप्ति	=	विमर्श संधि
कार्य	+	फलागम	=	निर्वहण संधि

निष्कर्षतः मुख से कार्य प्रारम्भ होता ह, प्रतिमुख में वह वृद्धि को प्राप्त होता है, गभ में वह उत्कष को प्राप्त करता है, विमर्श में वह फल की ओर झुकता है तथा निर्वहण में वह पूर्ण सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

नाट्यशास्त्रीय इन तत्त्वों के संक्षिप्त विवेचन के उपरान्त मुद्राराक्षस में पाँच संधियों का निर्वहण किस प्रकार से हुआ है इस पर चर्चा करेंगें।

13.7 मुद्राराक्षसनाटक में पञ्चसंधियों का विनिवेश

मुखसंधि –

मुखं बीज समुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा

रूपक के जितने कथांश में फल–प्राप्ति के मुख्य उपाय बीज की सम्यक् उत्पत्ति हो जाती है तथा प्रारम्भ नाम की कार्यावस्था पूर्ण हो जाती है वह मुखसंधि है। वह प्रसंगानुसार रस निष्पत्ति का हेतु हुआ करती है।

मुख संधि में बीज अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक अवस्था का संयोग होता है। मुद्राराक्षस नाटक के प्रथम अंक में (ततः प्रविशति मुक्तां शिखां परामृशंश्चाणक्यः) कथय क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति। चाणक्य के इस कथन से मुख संधि का निबन्धन किया गया है। यहाँ राक्षस को वश में करना कार्य है तथा चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी को स्थिर करना उस कार्य का फल है।

अथवा अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य, किं वा स्थैर्यं मुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः

अनुकूल भाग्य हेतु है और चाणक्य की नीति का प्रयोग बीज है। उस बीज की आरम्भावस्था चाणक्य की उत्सुकता है और चाणक्य की उत्सुकता है कि कौन मेरे रहते हुए भो मेरे पुरुषार्थ को कुछ न समझकर मौर्य लक्ष्मी का हरण करना चाहता है। अतः अत्यन्त वीर, दण्डनीति में निष्णात तथा स्वामी नन्द के कार्य–भार को वहन करने में समर्थ राक्षस को अवश्य वश में करना चाहिए।

चाणक्य –

अतएवास्माकं त्वत्संग्रहे प्रयत्नः, कथमसौ
वृषलस्य साचिव्यग्रहणेन सानुग्रहः स्यादिति। प्रथम अंक

भागुरायण का कुसुमपुर से भागना एवं मलयकेतु की सेवा में जाना भो बीज न्यास है।

सम्पूर्ण यमपटचर का कथानक, अपने पक्ष में अनुरक्त तथा विरक्त व्यक्तियों को जानने की इच्छा मुद्रा प्राप्ति इस अवान्तर प्रयोजन को प्रतिपादन करने के लिए है।

प्रतिमुख संधि –

बिन्दु अर्थ प्रकृति तथा प्रयत्नावस्था का संयोग प्रतिमुख संधि होती है।

''लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदातस्य प्रतिमुखं भवेत्'' द.रू.

जहाँ उस बीज का कुछ लक्ष्य रूप में तथा कुछ अलक्ष्य रूप में उद्भद होता है वहाँ प्रतिमुख संधि होती है। यहाँ नायक व्यापार की प्रयत्नावस्था का वर्णन होता है। मुद्राराक्षस नाट्क के प्रथम अंक में चाणक्य एक बार पुनः राक्षस को अपने वश में करने के लिए नवीन प्रयत्न प्रारम्भ कर देता है। मुद्राप्राप्ति के उपरान्त कूटलेख लिखने का प्रयत्न करता है।

चाणक्यः (पत्रं गृहीत्वा स्वगतम्) किमत्र लिखामि। अनेन खलु लेखेन राक्षसो जेतव्यः।

प्रथम अंक में ही पूर्वयोजनानुसार जब वधभ्मि से सिद्धार्थ शंकटदास को ले भागता है तब स. चाणक्य का कहना कृतः कार्यारम्भः यह भो बिन्दु है। चाणक्य के समस्त प्रयत्नों का उल्लेख प्रथम अंक के अन्तिम श्लोक में देखा जा सकता है।

स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वल..... मु. रा. 1/27

राक्षस को वश में करने की चाणक्य की समस्त योजनायें प्रथम अंक में प्रारम्भ हो चुकी है।

गर्भ संधि –

गर्भस्तु दृष्ट नष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः ।

जहाँ दिखलाई देकर खोए गए बीज का बार–बार अन्वेषण किया जाता है वह गभसन्धि है। इसमें पताका नामक अर्थप्रकृति एवं प्राप्त्याशा नामक अवस्था होती है।

गभसंधि में बीज अन्तर्निविष्ट सा रहता है वह कभो प्रकट हो जाता है कभो छिप जाता है। अतः उसका बार–बार अन्वेषण किया जाया करता है। इस प्रकार का बीज प्राप्त्याशा का प्रदर्शक होता है। तेजव्यः।

मुद्राराक्षस नाटक में यह गभसन्धि द्वितीय अंक से प्रारम्भ होकर चतुर्थ अंक तक चलती है। यहाँ

गभसन्धि का अभ्ताहरण नामक अंग है जिसका कि लक्षण दशरूपक में अभ्ज़ा हरणं छद्म अर्थात् छलपूर्ण कार्य ही अभ्ता हरण बताया है। आहितुण्डक का सम्पूर्ण प्राकृत वचन अभ्ताहरण है।

विरूद्धयोभशमिह मन्त्रिमुख्ययो..... (मु.रा. 2/3) श्लोक में चन्द्रगुप्त को राजलक्ष्मी की प्राप्ति होगी अथवा नहीं यह अनिश्चय होने के कारण प्राप्त्याशा नामक अवस्था है।

द्वितीय अंक में ही राक्षस तथा विराधगुप्त के मध्य संवाद जिसमें वह कुसुमपुर के वृत्तान्त का वर्णन करता है पताका नामक अर्थप्रकृति है।

राक्षस के उपाय रूपी बीज कुछ सफल होते हैं कुछ असफल। चाणक्य की भो नवीन उपायों की बीजगर्भिता यहाँ देखी जा सकती है। जबकि सिद्धार्थक को दिए जाते है और वह उनको राक्षस पास ही भज देता है।

यहीं पर दारु वर्मा का चन्द्रगुप्त को मारने के लिए तोरण बनाना राक्षस का प्रयत्न है एवं चाणक्य द्वारा उसे निष्फल कर देना उसका नष्ट होना है।

'अन्वेषणं मुहुः' को अभयदत्तादियों के प्रयत्न में देखा जा सकता है। द्वितीय अंक में सर्वत्र राक्षस की प्राप्त्याशा विद्यमान है और इसी कारण राक्षस पुनः राजनीति में प्रवृत्त होता है।

विमर्श सन्धि –

गर्भसन्धौ प्रसिद्धस्य बीजस्यावमर्शनम्।
हेतुना येन केनापि विमर्शसन्धिरूच्यते।।

गभ सन्धि में फल–प्राप्ति की सम्भावना रहती है, बीज का उद्भद हो जाता है किन्तु फिर क्रोध, व्यसन, विलोभन या शाप आदि के कारण विघ्न उपस्थित हो जाने से नायक फल–प्राप्ति के विषय में विमर्श (ऊहा–पोह) करने लगता है। तत्पश्चात् विघ्न हट जाने पर फल–प्राप्ति का निश्चय (नियत अपि) हुआ करता है। इस प्रकार जहाँ नियताप्ति कार्यावस्था

से समन्वित होकर बीज गभ सन्धि की अपेक्षा और अधिक प्रकट हो जाता है वह प्रधानवृत्त का भाग विमर्शसंधि है।

मुद्राराक्षस नाटक के तृतीय अंक में नियताप्ति अवस्था तथा चतुर्थ अंक में प्रकरी अर्थ प्रकृति का वर्णन होने से दोनों अंकों में विमर्श संधि है।

नाटक के तृतीय अंक के 13 वें श्लोक में चाणक्य द्वारा अपने कार्यों का विमर्श करते हुए सफलता के प्रति आशवस्त होना भो नियताप्ति है

मद्भृत्यैः किल सोऽपि पर्वतसुतो व्याप्तः प्रविष्टान्तरै
रूद्युक्ताः स्वनियोगसाधनविधौ सिद्धार्थकाद्याः स्पशाः।
कृत्वा संप्रति कैतवेन कलहं मौर्येन्दुना राक्षसं
भेत्स्यामि स्वमतेन भेदकुशलस्त्वेष प्रतीपं द्विषः।।

शत्रु राक्षस को अपनी बुद्धि के अनुसार पृथ्क कर दूंगा यहाँ चाणक्य को फलप्राप्ति का निश्चय है अतः नियताप्तिकार्यावस्था है।

विमर्श संधि का राक्षस के पक्ष में सर्वथा अभाव है। वह फल प्राप्ति के लिए सदा शंकित है। चतुर्थ अंक में भागुरायण द्वारा मलयकेतु को राक्षस के विरूद्ध संदेह मे डालने वाला वृत्तान्त भो चाणक्य को विजय को संकेतित करने के कारण नियताप्ति है।

भागुरायण–किन्त्वमात्यराक्षसश्चाणक्ये बद्धवैरो न चन्द्रगुप्ते। तद्यपि कदाचित्..... चामात्यराक्षसश्चन्द्रगुप्तेन सह संदधीत। चन्द्रगुप्तोऽपि.....संधिनुमन्येत। एवं सत्यस्मासु कुमारो न विश्वसेदित्यर्थमैषां वाक्यार्थः।।

(चतुर्थ अंक)

निर्वहण संधि –

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।। **द. रु. 1/48**

जहाँ बीज से सम्बन्ध रखने वाले मुख संधि आदि में अपने–अपने स्थान पर बिखरे हुए अर्थों का एक प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखलाते हुए उपसंहार किया जात है वह निर्वहण संधि कहलाती है। मुद्राराक्षस नाटक में अमात्य राक्षस को वश में करने का प्रधान कार्य एवं चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी को स्थिर करने हेतु प्रथम अंक से जिन कार्यों का प्रारम्भ किया गया था उनका निर्वहण नाटक में षष्ठ एवं सप्तम अंक में किया गया है।

अंक के आरम्भ में सिद्धार्थक की यह उक्ति कार्य को बताती है–

बुद्धिजलनिर्झरैः सिच्यमाना देशकालकलशैः।
दर्शयिष्यति कार्यफलं गुरुकं चाणक्यनीतिलता।।

सप्तम अंक में जीर्णोद्यान में स्थित राक्षस के पा स;चाणक्य की नीति के तहतद्ध आत्म हत्या करने वाली व्यक्ति पहुँचता है परिणामतः अपने मित्र चन्दनदास की मुक्ति के लिए राक्षस आत्मसमर्पण कर देता है। सप्तम अंक के पाँचवें श्लोक

''दुष्कालेऽपि कलावसज्जनरुचौ..... शत्रुत्वमेषोऽस्मि सः''

में राक्षस का समर्पण दर्शाया है जिसकी सूचना कपटवेशधारी चाण्डालों द्वारा चाणक्य को दी जाती है।

चाण्डाल – एष आर्यनीतिसंयमितबुद्धि परिसरो गृहीतोऽमात्यराक्षस इति।

राक्षस को वश में करने का कार्य सप्तम अंक के 14 वें श्लोक तक हो गया है अब राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाने का कार्य भो चाणक्य द्वारा निष्पादित किया जा रहा है।

चाणक्य – अमात्य राक्षस, अगृहीतशस्त्रेण भवतानुगृह्यते वृषल इत्यतः सन्देहः। तद्यदि चन्दनदासस्य जीवितमिच्छसि ततो गृह्यतामिदं शस्त्रं।

राक्षस –

विष्णु गुप्त, नमः सर्वकार्य प्रतिपत्ति हेतवे सुहृत्स्नेहाय। कः गतिः। एष प्रऽस्मि।

चाणक्य –

वृषल! वृषल! अमात्यराक्षसेनेदानीमनुगृहीतोऽस्मि।

इस प्रकार नाटक के अन्त में प्रथम अंक जो मुक्ततां शिखां परामृशन्.....कहकर जो बीज न्यास किया गया था

उसका निर्वहण नाटक के अन्त में इस श्लोक द्वारा किया गया है–

विना वाहनहस्तिभ्यां मुच्यतां सर्वबन्धनम्।
मया पूर्ण प्रतिज्ञेन भया केवलं बध्यते शिखा।। **7/17**

नाटक के अन्त में भरतवाक्य का उल्लेख कर निर्वहण संधि के 'प्रशस्ति–शुभशंसनम्' नामक संध्यङ्ग का निर्वाह किया है।

इस भाँति मुद्राराक्षस नामक नाटक में नाट्यशास्त्र, साहित्य दर्पण, नाट्य दर्पण, प्रतापरूद्रीय इत्यादि नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उल्लिखित समस्त शास्त्रीय तत्त्वों का परिपालन किया गया है। शास्त्रीय विशेषताओं की दृष्टि से भो दृश्यकाव्यों मे मुद्रराक्षस नाटक सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है।

घटनाओं की परस्पर अन्विति, क्रम और उनकी तार्किक परिणितियों का पूर्ण ध्यान रखा गया है। कथावस्तु की संरचना की दृष्टि से मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य में बेजोड़ है।

13.8 पारिभाषिक शब्दावली

कथावस्तु – कथावस्तु के दो भेद करते हुए दशरूपककार का कथन है।

''वस्तु च द्विधा। तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्ग प्रासंङ्गिक विदुः अधिकारिक मुख्य कथावस्तु है जैसे मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त, चाणक्य तथा राक्षस की कथा मुख्य की अभूत कथावस्तु प्रासकि कहलाती है जैसे मुद्राराक्षस में भागुरायण, मलयकेतु, चन्दनदास इत्यादि की कथा।

सर्वश्राव्य – (प्रकाश) कथावस्तु सबके सुनने योग्य वह सर्वश्राव्य (प्रकाश) कहलाती है।

अश्राव्य अथवा स्वगत कथन –जो मञ्च पर स्थित अन्य पात्रों को सुनाने के लिए नहीं अपितु केवल दर्शकों को सूचित की जाती है वह अश्राव्य अथवा स्वगत कथन कहलाती है ।

नियत श्राव्य – जो कथा मञ्च पर स्थित कुछ ही पात्रों को सूचित करने के लिए होती है वह नियत श्राव्य कहलाती है। इसके भी दो भेद है जनान्तिक एवं अपवारित। आकाशभाषित भी एक अन्य भेद है।

अर्थ प्रकृति – नाटकीय संदर्भों में इन उद्देश्यो की प्राप्ति के निमित्त जो कार्य या उपाय किये जाते हैं उन्हे 'अर्थ प्रकृति' कहते हैं। अर्थप्रकृतयः प्रयोजन सिद्धिहेतवः। यहाँ अर्थ शब्द फल या प्रयोजन का वाचक है और प्रकृति है हेतु या कारण 'इस प्रकार फल की सिद्धि के उपाय ही अर्थप्रकृतियाँ है।

इसके पाँच प्रकार है बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य

अवस्था – अवस्था फल प्राप्ति के इच्छुक पात्रों द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्य की पाँच अवस्थायें होती है आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम ।

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मुद्राराक्षस नाटक की दो प्रमुख नाटकीय विशेषतायें लिखिये?
   _____
2. मुद्राराक्षस नाटक में कितने प्रकार की प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है नामोल्लेख कीजिये?
   _____
3. विशाखदत्त की शैली की प्रमुख दो विशेषताएँ बताइये?
   _____
4. मुद्राराक्षस में प्रयुक्त छन्दों का नामोल्लेख करें?
   _____
5. पाँच अर्थप्रकृतियों का नामोल्लेख करे?
   _____
6. अवस्थापञ्चकम् बताइये?
   _____
7. गर्भ संधि में प्रयुक्त अवस्था एवं अर्थप्रकृति को बताइये?
   _____

8. संधिपञ्चक बताइये?

_____

9. मुद्राराक्षस में मुख संधि एवं विमर्श संधि किन अंको में प्रयुक्त है।

_____

10. निर्वहण संधि में प्रयुक्त अवस्था एवं अर्थ प्रकृति का नामोल्लेख कीजिये?

_____

विस्तृत प्रश्न

1. नाट्यशास्त्रीय संययानुसार कथावस्तु को विभाजित कीजिए?

.....

.....

2. मुद्राराक्षस नाटक की विशेषताओं पर संक्षिप्त लेख लिखे?

.....

.....

3. नाटक की शास्त्रीय विशेषताओं पर निबन्ध लिखे?

.....

.....

4. विशाखदत्त की भाषा शैली का संक्षिप्त विवेचन करें?

.....

.....

5. मुद्राराक्षस नाटक की शास्त्रीय विशेषताओं के निर्वहण पर अपने विचार प्रस्तुत करें?

.....

.....

अभ्यास के उत्तर

1. नाटक में स्त्री पात्रों एवं विदूषक का अभाव।
2. शौरसेनी, महाराष्ट्री एवं मागधी प्राकृत।
3. 'श्लेष' एवं 'भंग्यन्तरकथन'
4. स्रग्धरा एवं शार्दूलविक्रीडितम्।
5. बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य।
6. आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम।
7. पताका अर्थ प्रकृति एवं प्राप्त्याशा अवस्था अर्थ प्रकृति।
8. मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण संधि।
9. मुख संधि प्रथम अंक एवं निर्वहण संधि षष्ठ एवं सप्तम अंक में।
10. कार्य नामक अर्थप्रकृति एवं फलागम नामक अवस्था का संयोग ही निर्वहण संधि है।

विस्तृत प्रश्नों के उत्तर

1. देखें – 13.5
2. देखें – 13.4
3. देखें – 13.6
4. देखें – 13.2,3
5. देखें – 13.7

13.10 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने विशाखादत्त की भाषा शैली का अध्ययन किया । नाट्यशास्त्र के प्रमुख उपागमों जैसे वस्तु नेता रस इत्यादि का समायोजन विशाखादत्त ने किस प्रकार किया है इसका भी अवबोध हुआ है । मुद्राराक्षस में पंचसन्धि अवस्था इत्यादि का सम्यक प्रयोग विशाखादत्त ने किया है ।

13.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नाट्यशास्त्र,पं. बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2005.
2. साहित्य दर्पण,(विश्वनाथ कृत) आचार्य लोकमणि दाहाल, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नईदिल्ली,२०१५.
3. नाट्य दर्पण,रामचन्द्र गुणचन्द्र, ओरियण्टल संस्कृत सीरीज, गायकवाड, १६२८.
4. काव्यानुशासनम्,हेमचन्द्र,निर्णयसागरप्रेस, बम्बई,१६३४.
5. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन वाराणसी, 1953.
6. संस्कृत कविदर्शन– भोलाशंकर व्यास– चौखम्बा विद्याभवन, 2003.
7. मुद्राराक्षसम् – डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ, 2000.
8. हिन्दी दशरूपकम्,डॉ. भोला शंकर व्यास, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2003.

इकाई – 14

मुद्राराक्षस नाटक, विशाखदत्त का परिचय, मुद्राराक्षस की प्रमुख व्याख्यायें (प्रथम से तीन अंक तक)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 विशाखदत्त का परिचय
  14.2.1 विशाखदत्त का समय
  14.2.2 विशाखदत्त की रचनायें
14.3 मुद्राराक्षस का नामकरण
14.4 नाटक की सामान्य विशेषतायें
14.5 नाटक का मुख्य रस,
14.6 मुद्राराक्षस नाटक की नाट्यकला
14.7 प्रथम से तृतीय अंक तक की व्याख्यायें
  14.7.1 प्रथम अंक का सारांश तथा प्रमुख व्याख्यायें
  14.7.2 द्वितीय अंक का सारांश तथा प्रमुख व्याख्यायें
  14.7.3 तृतीय अंक का सारांश तथा प्रमुख व्याख्यायें
14.8 पारिभाषिक शब्दावली
14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.10 सारांश
14.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे कि विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस का संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह नाटक अन्य नाटकों से भिन्न है तथा पूर्णतः राजनीति पर आधारित है। इसमें नाटककार विशाखदत्त के परिचय के साथ–साथ नाटकीय तत्त्वों के आधार पर विशाखदत्त की सामान्य विशेषताओं, प्रमुख रस तथा प्रमुख पात्रों के चरित्र के विषय में भो ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई में विशाखदत्त के सामान्य परिचय, उसके स्थितिकाल तथा उनके द्वारा रचित मुद्राराक्षस नाटक की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन किया जायेगा। इस नाटक में चाणक्य का कूटनीति के आधार पर नंदवंश के विनाश के बाद राक्षस को वश में करना ही इसका प्रमुख ध्येय है। इसमें चाणक्य सफल होता है। अन्य नाटकों से भिन्न इस नाटक में न तो स्त्री पात्र है, न ही इसमें विदूषक पात्र है अतः प्रेम व कोमल भावों के लिए इसमें स्थान नहीं है। चाणक्य की राजनैतिक योजनायें व षडयन्त्रों पर आधारित ये नाटक अपने आप में मौलिक है। प्रमुख पात्रों के परिचय तथा महत्त्वपूर्ण व्याख्याओं का अध्ययन भो इस इकाई में कर सकेंगे।

14.2 विशाखदत्त का परिचय

मुद्राराक्षस नाटक के रचियता विशाखदत्त है विशाखदत्त का विस्तृत जीवन परिचय हमें प्राप्त नहीं होता। नाटक की प्रस्तावना में ''आज्ञापितोऽस्मि परिषदा यथाद्य त्वया

सामन्तवटेश्वदत्तपौत्रस्य महाराजभास्करदत्तसूनोः कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिरभिनवं मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यमिति'' इस कथन से प्रतीत होता है कि लेखक विशाखदत्त सामन्त बटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज भास्करदत्त के पुत्र है। इससे ज्ञात होता है कि विशाखदत्त का सम्बंध राजकुल से था । अतः मुद्राराक्षस नाटक उनकी राजनैतिक कुशलता का ही परिचायक है।

14.2.1 विशाखदत्त का समय

संस्कृत के अन्य कवियों के समान ही विशाखदत्त का भो निश्चित समय हमें प्राप्त नहीं होता। मुद्राराक्षस के भरत वाक्य में 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' पार्थिवोऽवन्ति वर्मा, पार्थिवोदन्ति वर्मा और पार्थिवरन्ति वर्मा चार भिन्न–भिन्न पाठ मिलते है। कुछ विद्वानों ने पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः पाठ को सही मानते हुए इन्हें गुप्त साम्राज्य के चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन ;375–413 ई.द्ध और कालिदास का समकालीन स्वीकार किया है।

कुछ विद्वान् 'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा' पाठ को प्रमाणिक मानते है। भारतीय इतिहास में दो अवन्ति वर्मा राजाओं का उल्लेख मिलता है। एक तो कन्नौज के मौखरि राजा अवन्ति वर्मा है जो सातवीं शती में हुए जिनके पुत्र ग्रह वर्मा का विवाह हर्षवर्धन की बहिन राज्य श्री से हुआ और दूसरे कश्मीर के राजा अवन्ति वर्मा जिन्होंने नवम शताब्दी के मध्य ;855–883 ई. तकद्ध राज्य किया। कश्मीर नरेश अवन्ति वर्मा के साथ कवि के स्थितिकाल की संगति बैठाने के लिए या कोबी महोदय ने ज्योतिष के आधार पर बताया है कि मुद्राराक्षस में जिस चन्द्रग्रहण का वर्णन है, वह 2 दिसम्बर 860 ई. की घटना है। परन्तु प्रमाणों के अभाव में याकोबी महोदय के मत को विद्वान्–स्वीकार नहीं करते। तैलंग महोदय ने विशाखदत्त को मौखरि वंश के राजा अवन्ति वर्मा का समकालीन स्वीकार किया है। कन्नौज के इसी राजा अवन्ति वर्मा ने परवर्ती मौर्य राजाओं के साथ मिलकर हूणों के विरूद्ध युद्ध किये होंगे अतः तैलंग महोदय विशाखदत्त का समय सातवीं शतीं में या आठवीं शती के पूर्वार्द्ध में स्वीकारत है।

प्रो. ध्रुव के अनुसार कन्नौज के मौखरि राजा अवन्ति वर्मा ने थानेश्वर के राजा प्रभाकर वर्मा की सहायता से हूणों को 582 ई. में हराया था अतः विशाखदत्त का काल ईसा की छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध होना चाहिये।

अन्तः साक्ष्यों के आधार पर विशाखदत्त के समय बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा थी अतः मुद्राराक्षस बौद्ध धर्म के पतन से पूर्व की रचना है। 'दशरूपक' तथा 'सरस्वती कण्ठाभरण' में मुद्राराक्षस के अवतरण मिलते है। इन दोनों पुस्तकों का रचनाकाल ईसा की दसवीं या ग्यारहवीं सदी है। निस्सन्देह मुद्राराक्षस नवीं शती से पूर्व की रचना है क्योंकि दशम शती में मिलने वाले ग्रन्थों से पता चलता है कि उस समय मुद्राराक्षस नाटक पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुका था। अतः प्रो. ध्रुव का यह मत अधिक संगत प्रतीत होता है कि विशाखदत्त ने छठीं शती के अन्तिम चरण में मुद्राराक्षस की रचना कन्नौज के मौखरि राजा अवन्ति वर्मा की हूणों पर विजय के उपलक्ष्य में की थी। प्रो. हरिदत्त शास्त्री भो विशाखदत्त का समय छठीं शती का उत्तरार्द्ध स्वीकार करते हैं।

14.2.2 विशाखदत्त की रचनायें

विशाखदत्त की जिन रचनाओं का उल्लेख मिलता है। वे इस प्रकार है–

देवी चन्द्रगुप्त – इस नाटक में चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा उसके अयोग्य भाई रामगुप्त को मारने तथा ध्रुव देवी को शकों से बचाने तथा उसके साथ विवाह करने का वर्णन है।

अभिसारिकावञ्चितक – भोज और अभिनवगुप्त ने इसे विशाखदेव के नाटक के रूप में उद्धृत किया है। इसमें वत्सराज और उसकी पत्नी पद्मावती के जीवन में घटित घटना का वर्णन है। यह नाटक भो अनुपलब्ध है।

राघवानन्द नाटक – यह भो प्राप्त नहीं है किंतु इसके उद्धरण सुभाषित ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।

मुद्राराक्षस – विशाखदत्त का प्रसिद्ध नाटक है तथा सात अंकों में विभाजित इस नाटक में चाणक्य की कुटिल राजनीति की चर्चा है। यह रचना आपके पाठ्यक्रम में है।

14.3 मुदाराक्षस नाटक का नामकरण

मुद्राराक्षस भाव प्रधान व रसप्रधान न होकर घटनाप्रधान है। नाटक के नामकरण का विवेचन करते समय जब मुद्रा शब्द पर दृष्टि डालते है तो संस्कृत में मुद्रा शब्द मुद्रण, सीमा तथा मौनावलम्बन अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः मुद्राराक्षस नाटक के नामकरण के सदभ में निम्न बिंदु सामने आते है–

1. इस नाटक की प्रमुख घटना है राक्षस का ग्रहण चाणक्य को अपने दूत द्वारा राक्षस की मुद्रा (मोहर) प्राप्त होती है। शंकटदास से एक कूटलेख लिखवाकर चाणक्य उसे मुद्रा से अंकित कर देता है तथा यही राक्षस की पराजय का मुख्य कारण बनती है। अतः 'मुद्रया गृहीतो राक्षसः मुद्राराक्षसः, तदधिकृतं नाटकं मुद्राराक्षसमिति।' यही मुद्राराक्षस के नामकरण का प्रमुख आधार है।

2. 'मुद्रा' का अर्थ परिस्थिति भो है। मुद्रा (परिस्थिति) के द्वारा राक्षस का ग्रहण वस्तुतः राक्षस परिस्थितियों से घिरा हुआ है अतः चाणक्य के सामने आत्मसमर्पण करने के अलावा उसके पास कोई रास्ता नहीं है।

3. डॉ. हरिदत्त शास्त्री ने 'मुद्रा–मौनमुद्रा राक्षसस्य यस्मिन्नाटके तत्' मुद्रा शब्द की इस व्युत्पत्ति को स्वीकार किया है। अपनी मुद्रा अंकित लेख देखने पर राक्षस का स्तब्ध, चकित और विवश हो जाना तथा चन्द्रगुप्त का मंत्रित्व पद स्वीकार कर लेना इससे ध्वनित होता है।

इस प्रकार 'मुद्राराक्षस' का नामकरण राक्षस की मुद्रा से अंकित लेख के द्वारा राक्षस को मंत्री पद के लिए विवश कर देने की घटना पर आधारित है। इस प्रकार नाटक का नामकरण नाटक की मुख्य घटना को ही केन्द्र में रखकर किया गया है।

14.4 मुद्राराक्षस नाटक की सामान्य विशेषताऐं –

विशाखदत्त की प्रसिद्ध नाट्य रचना मुद्राराक्षस है। यह सात अङ्कों का नाटक है तथा इसमें कूटनीतिक राजनीति को आधार बनाया गया है। संस्कृत में उपलब्ध समस्त नाटकों में यह अपनी तरह का एक अद्वितीय नाटक है। इसमें चाणक्य की कूटनीति से नन्दवंश को समाप्त करने का उसके उपरान्त राक्षस को वश में करने का वर्णन है।

इस विषय में चाणक्य ने स्पष्ट रूप से चर्चा की है कि ''अथवा अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः'' अर्थात् राक्षस को बिना वश में किये नन्दवंश के विनाश व चन्द्रगुप्त की राज्य लक्ष्मी की स्थिरता का कोई महत्त्व नहीं है।

1. मुद्राराक्षस की प्रमुख विशेषता इसमें किसी नायिका का न होना है। नायिका के न होने से प्रेम आदि भावनाओं का सर्वथा अभाव है। प्रति हारी शोणोत्तरा, विजया तथा चन्दनदास की पत्नी, छोटे–छोटे स्त्री पात्र है जो मंच पर थोड़ी देर के लिए आते है।
2. नायिका के समान इस नाटक में विदूषक नामक पात्र का भो अभाव है। संस्कृत नाटकों में हंसाने के लिए 'विदूषक' का होना आवश्यक है तथा इसके बिना नाटक अधूरा है किंतु मुद्राराक्षस राजनीतिज्ञों की कूटनीति पर आधारित है, अतः इसमें प्रेम व हसी मजाक के लिए अवकाश ही नहीं है।
3. चन्द्रगुप्त के मंत्री और अर्थशास्त्र के रचयिाता चाणक्य के गुणों पर आधारित इस नाटक में राजनीति षड्यन्त्र और युद्ध की चर्चा है। मुद्राराक्षस की लड़ाई चाणक्य

और राक्षस की वास्तविक लड़ाई नहीं वरन् उनकी मन्त्र शक्तियों की लड़ाई है। दो राजनीतिज्ञों का द्वन्द्व पूरे नाटक में दिखाई देता है।

4. नाटक की प्रमुख विशेषता अपने उद्देश्य में नाटक पूर्णतः सफल है। सभो पात्र अपने उद्देश्य के प्रति सजग है, सभो घटनाओं का मुख्य उद्देश्य राक्षस को वश में करना है। मुद्राराक्षस नाटक की कथावस्तु चाणक्य की कूटनीति के समान संश्लिष्ट है।

5. नाटक की एक प्रमुख विशेषता कि राजनीति पर आधारित होने के कारण इसमें नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है। किसी भो धर्म के प्रति कोई आस्था नहीं है तथा सदाचार का मापदण्ड योग्यता है। राजनीतिक प्रयोग की सफलता ही मुख्य उद्देश्य है।

6. नाटक की महत्त्वपूर्ण सफलता उसके पात्रों का चरित्र–चित्रण है। सभो पात्र जोड़े के रूप में आते है तथा दोनों पात्रों का विरोध और संघर्ष दिखाया गया है। कूटनीति में निपुण चाणक्य व राक्षस, विरोधी गुणों वाले चन्द्रगुप्त व मलयकेतु, भागुरायण और सिद्धार्थक इस तरह दो विरोधी गुणों वाले पात्र एक दूसरे के प्रति संघर्षरत है। राक्षस में नंद वंश के प्रति भक्ति उतनी ही दृढ़ है जितनी चाणक्य की नंदवंश के प्रति घृणा। इस चरित्र–चित्रण की दृष्टि से विशाखदत्त के पात्रों ने पूर्ण नाटकीयता का निर्वाह किया है।

7. संस्कृत का यह एक ऐसा नाटक है जिसमें दृश्यों का निर्माण किया गया है। दृश्यविधान व पात्र संरचना की दृष्टि से यह नाटक संस्कृत साहित्य का एक अद्वितीय नाटक है। पाश्चात्य समालोचकों के द्वारा नाटक के निर्धारित मानदण्डों पर यह एक ऐसा नाटक है जो पूर्ण रूप से खरा उतरता है।

14.5 मुद्राराक्षस नाटक का मुख्य रस

मुद्राराक्षस का अङ्गी या प्रमुख रस वीर रस है। श्रृंगार रस का अभाव होने के कारण तथा विषय के बौद्धिक स्तर के होने के कारण मुद्राराक्षस कुछ नीरस अवश्य है परन्तु इसमें काव्योचित उदात्तता का अभाव नहीं है। चाणक्य की राजनीति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वीर–रस प्रधान होते हुए भो कहीं भो रक्त पात का दृश्य नहीं है। तलवारों की झनझनाहट भो नहीं है सिर्फ शब्दों के माध्यम से ही वीर रस का चित्र उपस्थित हो जाता है–

आस्वादितद्विरदशोणित शोणशोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।
जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्।। (1.8)

वह कौन व्यक्ति है, जो जँभाई के कारण खुले हुए मुख की उस दाड़ को बलपूर्वक उखाड़ लेना चाहता है जो हाथी के खून का स्वाद लेने के कारण लाल वर्ण की कांति से युक्त ठीक उसी प्रकार की लग रही है जिस प्रकार संध्या कालीन चन्द्रमा की लाल कान्ति प्रतीत होती है।

इस श्लोक में चाणक्य का उद्दाम उत्साह प्रतीत हो रहा है। मुद्राराक्षस का वीर रस वस्तुतः युद्ध स्थल का वीर रस नहीं है परन्तु बिना किसी स्वार्थ भावना के जन कल्याण की भावना से चाणक्य नूतन चन्द्रगुप्त साम्राज्य की स्थापना करता है अतः चाणक्य की उक्तियों से सर्वत्र वीर रस छलक रहा है।

चाणक्य ही नहीं राक्षस व मलयकेतु के वार्तालाप में भो वीर रस देखा जा सकता है। कहीं–कहीं सेनाओं की दौड़–धूप तथा युद्ध के वीर–रस के चित्र भो मिलते है–

गौडीनां लोध्रधूलीपरिमल वहलान् धूम्रयन्तः कपोलान्
क्लिश्नन्तः कृष्णिमानं भ्रमरकुलरुचः कुञ्चितस्यालकस्य।
पांशुस्तम्बा बलानां तुरगखुरपुटक्षोदलब्धात्मलाभाः
शत्रूणामुत्तमाङ्गे गजमदमलिनच्छिन्नमूलाः पतन्तुः। (5/23)

''सेना के घोड़ों के खुरपुटों से चूर्णित रणभूमि से उठ कर पुष्ट हुई धूल, गौड़ देश की स्त्रियों के
लोध्रधूलि से सुगन्धित कपोलों को धूमिल बनाती हुई, उनके भौंरे जैसे काले, धुंधराले बालों को ओर
अधिक मलिन बनाती हुई, हाथियों के मदजल से मलिन कीचड़ को उछालती हुई, शत्रुओं के मस्तक पर जाकर गिरे।''

इस प्रकार मुद्राराक्षस में स्थान–स्थान पर वीररस के चित्र गौरव गंभोर वातावरण को उत्पन्न करते है। शृंगार व हास्य रस का अभाव है। नाटक में भयानक व विभत्स रस भो नहीं है। सांतवें अंक में करूण रस अवश्य अभिव्यक्त हुआ है। चन्दनदास की पत्नी व पुत्र का मार्मिक रुदन करूण रस की सृष्टि करता है। वीर रस की प्रधानता के होते हुए भो विशाखदत्त की काव्यशैली सशक्त, गंभोर व प्रवाहमय है, उसमें परवर्ती कवियों की श्रमसाध्य कृत्रिम शली नहीं है।

14.6 मुद्राराक्षस नाट्क की नाट्यकला

मुद्राराक्षस नाटक में विशाखदत्त की नाट्यकला का श्रेष्ठ रूप दिखायी देता है। संस्कृत साहित्य में नाटक के लिए रूपक शब्द का प्रयोग हुआ है तथा रूपक के 10 भद स्वीकार किये गये हैं। विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस रूपक के 10 भदों में से 'नाटक' की कोटि में आता है। इस नाटक में नाट्य शास्त्र के नियमों का अक्षरशः पालन नहीं किया गया है अतः विशाखदत्त कृत यह नाटक अपनी नवीन व मौतिक विशेषताओं के साथ पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

नाटक का प्रमुख उद्देश्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाना है यहो नाटक का 'बीज' है। राक्षस की मुद्रा 'बिन्दु' का कार्य करती है। राक्षस द्वारा मन्त्रित्व स्वीकार करना है 'कार्य' है। नाटक की वस्तु योजना पूर्णतः सुगठित है। सभो घटनायें परस्पर सम्बद्ध है तथा छोटी से छोटी घटना तथा छोटे से छोटा पात्र मूल कथानक के विकास में ही सहायक है। इस नाटक में घटनाओं की संख्या अधिक है, बिना घटनाओं की जानकारी के नाटक को समझना कठिन है अतः नाटककार ने चाणक्य की उक्तियों के माध्यम से पाठक को आने वाली और हो चुकी अनेक घटनाओं की सूचना दी है। चाणक्य द्वारा नन्दवंश का नाश हो चुका है, पर्वतक की हत्या विषकन्या द्वारा करवा दी गयी है, यह सूचना कथावस्तु के स्वाभाविक विकास के लिए सहयोगी सिद्ध हुई है।

विशाखदत्त की नाट्यकला की प्रमुख विशेषता है कि पाठकों की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। प्रारम्भ में लिखा गया लेख मैंने इस लेख के साथ जो प्रेषित किया है, स्वीकार किया जाये और अत्यन्त विश्वास पात्र सिद्धार्थक से मौखिक भो सुन लिया जाये। इसमें कौन सी वस्तु भजी जा रही है तथा सिद्धार्थक का मौखिक सन्देश क्या हो सकता है? इसे लेकर पञ्चम अंक तक उत्सुकता बनी रहती है अन्ततः चाणक्य अपनी योजनाओं में सफल होता है तथा राक्षस पराजित होता है। प्रथम अंक में चाणक्य द्वारा लिखा कूटनीतिक पत्र, उस पर मुद्रा अंकित करना, क्षपणक जीव सिद्धिका निर्वासन शकटदास का वध 'बीज' के विस्तार में सहायक घटनायें है। द्वितीय अंक में सपेरे के वेश में आने वाला विराध गुप्त राक्षस को उसकी योजनाओं की असफलता की सूचना देता है। तृतीय अंक में चाणक्य चन्द्रगुप्त का कृत्रिम क्लेश। चतुर्थ अंक में चाणक्य व चन्द्रगुप्त की लड़ाई सभो सूचना करभक द्वारा राक्षस को सुनाना। यह 'प्रकरी' नामक अर्थप्रकृति है। पांचवी अर्थप्रकृति 'कार्य'

है नाटक का मुख्य उद्देश्य कार्य है। चाणक्य मुद्राराक्षस नाटक में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है कि राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बना लेने का कार्य सिद्ध हो जाता है।

आचार्यों ने 'कार्य' की पाँच अवस्थायें मानी हैं। ये पाँच अवस्थायें प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति व फलागम है। प्रथम अंक में चाणक्य की फलप्राप्ति की उत्सुकता कथानक का प्रारम्भ है। फलप्राप्ति के लिए प्रयत्न करना और फलप्राप्ति की आशा बनने लगना प्राप्त्याशा कहलाती है। चन्द्रगुप्त व चाणक्य का कृत्रिम कलह, राक्षस के प्रति मलयकेतु का शंकित होना 'प्राप्त्याशा' के अन्तर्गत आते है। फल प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं का निराकरण 'नियताप्ति' है। इसमें फल प्राप्ति की निश्चितता हो जाती है। छठें अंक में राक्षस का वध स्थल की ओर जाना 'नियताप्ति' है क्योंकि निश्चित है कि अब राक्षस के पास कोई रास्ता नहीं वह चाणक्य के सम्मुख समर्पण करेगा। सातवें अंक में राक्षस का चन्द्रगुप्त का मंत्रीत्व पद संभालना 'फलागम' है। इस प्रकार पाँचों अवस्थाओं तथा नाट्य सन्धियों का पूर्णरूपेण निर्वाह मुद्राराक्षस में किया गया है।

इस नाटक में नायिका का पूर्ण अभाव है। नाटक रस प्रधान न होकर घटना प्रधान है तथापि 'वीररस' का परिपाक भली प्रकार हुआ है। इस प्रकार मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत में लिखे गये अन्य नाटकों से भिन्न तथा अद्वितीय नाटक है।

14.7 प्रथम अंक से तृतीय अंक तक की प्रमुख व्याख्यायें –

14.7.1 प्रथम अंक का सारांश तथा प्रमुख व्याख्यायें

प्रथम अंक में चाणक्य गर्जना करता है कि मेरे जीवित रहते चन्द्रगुप्त पर आक्रमण की बात कोई कैसे सोच सकता है? राक्षस को आधीन बनाकर चन्दगुप्त का मंत्री बनाना उसका लक्ष्य हैं निपुणक को राक्षस नामाङ्गित मुद्रा प्राप्त होती है तब वह शकटदास से पत्र लिखवाता और उसे राक्षस की मुद्रा से अंकित कर देता है। राजद्रोह के अपराध में शकटदास को फांसी देने लगे तब चाणक्य की योजना के अनुसार सिद्धार्थक शकटदास को वध–स्थल से छुड़ाकर भगा ले जाता है। राक्षस का परिवार चन्दनदास के यहाँ है यह जानकर चाणक्य बहुत प्रसन्न है क्योंकि अब राक्षस को वश में करना मुश्किल नहीं है। चाणक्य मन ही मन प्रसन्न है कि सब उसके संकेत पर अपने–अपने कार्य में लगे हुए हैं। इस प्रकार प्रथम अंक समाप्त होता है।

प्रथम अंक की व्याख्यायें –

व्याख्या –

आस्वादितद्विरदशोणितशोण शोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।
जृम्भाविदारित मुखस्य मुखात् स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्।। श्लोक 1/8

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त विरचित नाटक 'मुद्राराक्षसम्' से उद्धृत किया गया है।

संदर्भ – इस श्लोक में चाणक्य प्रस्तावना के पश्चात् मञ्च पर यह सिंहनाद करता है कि चाणक्य के रहते हुए ऐसा कौन है जो चन्द्रगुप्त को तिरस्कृत करना चाहता है?

अन्वय – कः जृम्भाविदारितमुखस्य हरेः मुखात् आस्वादित द्विरदशोणित शोणशोभां शाशलाञ्छनस्य सन्ध्यारूणां कलामिव स्फरन्ती ;हरेःद्ध दष्ट्रां परिभ्य हर्तुमिच्छति।

व्याख्या – कौन व्यक्ति ऐसा है जो जंभाई लेने के कारण खोले हुए मुख वाले शेर के मुँह से पान किये हुए हाथी के खून से लाल शोभा वाली चन्द्रमा की सन्ध्याकालीन लाल वर्ण की कला के समान चमकती हुई दाढ़ को निरादर करके अपहरण करना चाहता है। अर्थात् ऐसा कौन है जो सिंह के समान अत्यन्त क्रूर चाणक्य को तिरस्कृत कर मौर्य लक्ष्मी को छीनना चाहता है। अभिप्राय स्पष्ट है कि चाणक्य के रहते हुए मौर्यलक्ष्मी का कोई बाल भो

बांका नहीं कर सकता। चाणक्य के रहते चन्द्रगुप्त को जीतना राक्षस के लिए उतना ही कठिन है जितना शेर के मुख से दाढ़ निकालना।

विशेष –

1 द्विरद–द्वौ रदौ–दन्तौ अस्येति द्विरदः।

2. जृम्भाविदारितमुखस्य–यहाँ चाणक्य की जागरूकता व्यक्त होती है। शेर ने जंभाई ली है अभो उठा नहीं है।

3. द्रंष्ट्राम् – ष्ट्रन् प्रत्यय। मौर्यलक्ष्मी का कठिनता से उखाड़ना प्रतीत होता है।

4. इसमें 'संध्यारूणामिह' में उपमालंकार है तथा

5. वसन्ततिलका छंद है। (उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौः गः)

व्याख्या –

श्यामीकृत्याननेन्दूनरियुवतिदिशां संततैःशोकघूमैः
कामं मन्त्रिद्रुमेभ्योनयपवनहृतं मोहभस्म प्रकीर्य्य।
दग्ध्वा सम्भ्रान्तपौरद्विजगणरहितान् नंदवंशप्ररोहान्
दाह्याभावान्न खेदाज्ज्वलन इव वने शाम्यति क्रोध वह्निः।। श्लोक 1/11

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक अद्वितीय नाटककार विशाखदत्त रचित 'मुद्राराक्षसम्' के प्रथम अंक से उद्धृत किया गया है।

संदर्भ – यहाँ नन्दवंश को समाप्त कर चाणक्य ने यह सूचित किया है कि उसकी क्रोधाग्नि शांत हो रही है परन्तु राक्षस यदि मलयकेतु के साथ मिलकर उन पर आक्रमण करता है तो चाणक्य की क्रोध अग्नि फिर भड़क सकती है।

अन्वय – अरियुवतिदिशां आननेन्दून् संततैः शोकधूमैः श्यामीकृत्य, मन्त्रिद्रुमेभ्यः नयपवनहृतं कामं मोहभस्म प्रकीर्य। संभान्ततपौरद्विजगणरहितान् नंदवंशप्ररोहान् दग्ध्वा, वने ज्वलन इव क्रोधवहिनः दाह्यभावात् शाम्यति खेदात् न।

अर्थ – शत्रुओं की स्त्री रूपी दिशाओं के मुखरूपी चन्द्रमा को हमेशा शोकरूपी अग्नि से मलिन बनाकर मन्त्री रूपी वृक्षों के लिये नीतिरूपी वायु से उड़ाई जाती हुई मोह रूपी भस्म तथा मान्य नगर जनों रूपी पक्षियों से रहित नन्दरूपी वेणु के अंकुरों को जलाकर वन में लगने वाली दावाग्नि के समान मेरी क्रोध रूपी अग्नि अब शांत हो रही है क्योंकि अब जलाने योग्य अन्य सामग्री नहीं है।

कवि इसमें चाणक्य के सामर्थ्य की ओर संकेत कर रहे है कि शत्रुओं के विनाश होने पर तथा शत्रुस्त्रियों के रोने से सभो दिशायें मलिन हो गयी है। चाणक्य की नीति से नन्दवंश के सभो मंत्रीगण मोहित हो गये हैं अतः उसका विरोध करने में समर्थ नहीं है तथा जिस प्रकार आग लगने से वन में पक्षीगण उड़ जाते हैं उसी प्रकार सभो नागरिक गण छोड़कर चले गये है अतः किसी अन्य के विरोध में न होने के कारण अब चाणक्य का क्रोध शांत हो रहा है। यथा–

विशेष –

1. इस श्लोक में रूपक अलंकार का प्रयोग है। यथा– क्रोधवह्निः शोकधूमः, मंत्रिद्रुमेभ्यः मोहभस्य, संभान्त पौरद्विजगणरहितान् आदि।

2. श्यामीकृत्य अश्यामान् श्यामान् कृत्वा इति च्वि प्रत्यय

3. प्रकीर्य – प्र+कृ+ल्यप्

4. स्रग्धरा छंद है–भम्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

व्याख्या –

समुत्खाता नन्दा नव हृदयरोगा इव भुवः
कृता मौर्य्ये लक्ष्मीः सरसि नलिनीव स्थिरपदा।
द्वयोः सारं तुल्यं द्वितयमभियुक्तेन मनसा
फलं कोप–प्रीत्योर्द्विषति च विभक्तं सुहृदि च।। 1/13

प्रसंग – यह श्लोक विशाखदत्त द्वारा रचित मुद्राराक्षसम् से उद्धृत किया गया है।

संदर्भ – इस श्लोक में चाणक्य कहते है कि नन्दवंश को जीत कर अब मैंने प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है लेकिन फिर भो मैं चन्द्रगुप्त के मंत्रीपद को स्वीकार किये हुए हूँ।

अन्वय – भवः हृदयरोगा इव नव नन्दाः समुत्खाताः, सरसि नलिनीव मौर्ये लक्ष्मी स्थिरपदा कृता। कोपप्रीत्योः द्वयोः सारं द्वितयं फलम् अभियुक्तेन मनसा द्विषति च सुहृदि च तुल्यं विभक्तम्।

अर्थ – चाणक्य कहते है कि नन्दवंश को समाप्त करके मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी है क्योंकि मैंने पृथ्वी के हृदय में विद्यमान रोग के समान नौ नन्दों को समाप्त कर दिया है। सरोवर में कमलिनी के समान चन्द्रगुप्त में राज्यलक्ष्मी को स्थिर पैर वाली बना दिया है। क्रोध एवं प्रीति दोनों के सार को ;फल कोद्ध निग्रह व अनुग्रह तत्पर मन से मैंने दोनों को नन्द व चन्द्रगुप्त में समान रूप से बांट दिया है।

विशेष –

1. हृदयरोगाइव– उत्प्रेक्षालंकार है। नंद प्रजाओं में प्रिय नहीं था अतः उसे हृदयरोग के समान कहा हैं। नलिनीव में उपकालंकार है।
2. द्वितयम्–द्वौ अवयवौ यस्य इति द्वि+तयम्।
3. फलं कोपप्रीत्योः–कोप का फल शत्रु में तथा प्रीति का फल मित्र में युगपत् विभक्त कर दिया गया है।
4. शिखरणी छंद है (रसै रूद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।)

व्याख्या –

अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद्भक्तियुक्तेन कः
प्रज्ञाविक्रम शालिनोऽपि हिभवेत्किं भक्तिहीनात्फलम्।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च।। 1/15

प्रसंग – प्रथम श्लोक के प्रसंगानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में भत्य अर्थात् सेवक के गुणों का वर्णन किया गया है।

अन्वय – भक्तियुक्तेन अप्राज्ञेन च कातरेण च कः गुणः स्यात्, प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि भक्तिहीनात् हि फलं स्यात्। येषां प्रज्ञाविक्रमभक्तय समुदिताः गुणाः, ते भत्या नृपतेः भृतये, इतरे सम्पत्सु चापत्सु च कलत्रम्।

अर्थ – चाणक्य कहते है कि भक्ति व सेवाभाव से युक्त किंतु बुद्धरहित व पराक्रम रहित सेवक से स्वामी का क्या लाभ? अर्थात कोई लाभ नहीं है। जिस सेवक में बुद्धि, पराक्रम व सेवाभाव तीनों, गुण हो वही सेवक राजा के कल्याण के लिए हो सकता है। इन तीनों गुणों से शून्य सेवक ऐश्वर्य के समय एवं विपत्ति के समय में स्त्रीतुल्य है।

विशेष – इसमें बुद्धि, पराक्रम व सेवा भाव सेवक के लिए तीनों गुण अनिवार्य हैं।

2. कलत्रम् – कलं दुर्बलं त्रायते कलत्रं कलयति वा। न वै पत्युःकामाय प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय। इसमें यह बताया गया है कि स्त्रियाँ स्वार्थसिद्धि के लिए पति की

सेवा करती हैं तथा पति को स्त्री की रक्षा व भरण पोषण करना पड़ता है। इससे स्वामी की किसी प्रकार की सिद्धि नहीं होती। यहाँ तत्कालीन नारी की स्थिति व भार रूपता का पता चलता हैं

3. शार्दूलविक्रीडितं छंद है ;सूर्याश्वैर्यदि मसजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितंद्ध

व्याख्या –

स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वलदानशक्ति–
मुत्सेकिना मदबलेन विगाहमानम्।
बद्धया निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियाया–
मारण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि।। 1/27

प्रसंग – प्रथम श्लोक के प्रसंगानुसार

संदर्भ – इसमें चाणक्य को अपनी बुद्धि पर पूर्ण विश्वास है। वह कहता है कि अपने बुद्धिबल से मैं मदजल से पूर्ण हाथी के समान राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री अवश्य बना दूंगा।

अन्वय – उज्जवलदानशक्तिम् एकचरं स्वच्छन्दम् उत्सेकिना मदजलेन विगाहमानम् आरण्यकं गजमिव बुद्धया निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियायां प्रगुणीकरोमि।

अर्थ – प्रस्तुत श्लोक के दो अर्थ है एक राक्षस के पक्ष में तथा दूसरा अर्थ हाथी के पक्ष में है। चाणक्य कहते है कि मैं प्रशस्त दान शक्ति वाले (गजपक्ष में) प्रशस्त मद को प्रवाहित करने की शक्ति वाले, आत्मीय जनों को छोड़कर अकेले विचरण करने वाले स्वच्छंद (गजपक्ष में) निरंकुश, दुरभिमानी दर्प के प्रभाव से (गजपक्ष में) मदजल के प्रभाव से हमारे अपकार की चेष्टा करने वाले, भमण करते हुए जंगली हाथी के समान (राक्षस को) अपनी बुद्धि से पकड़ कर चन्द्रगुप्त के लिए अमात्य कम में (गजपक्ष में) परिवहन करने के कम में लगाता हूँ।

विशेष –

1. स्वच्छंदम् निरंकुश। अपने पक्ष को छोड़कर विजातीय पक्ष में विचरण करने वाले, जिस पर कोई नियन्त्रण न हो।
2. उत्सेकिना उत्सेकः अस्ति अस्य। (दूरभिमानी)
3. विगाहमानम्–वि+गाह्+शानच्
4. श्लोक में राक्षस व गजपक्ष में अर्थ होने के कारण श्लेषमूलक उपमा है।
5. वसन्ततिलका छंद है। (उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगो गः)

14.7.2 द्वितीय अंक का सारांश तथा प्रमुख व्याख्यायें

द्वितीय अंक में राक्षस की कूटनीति का परिचय मिलता है। आहितुण्डिक का वास्तविक नाम विराधगुप्त है तथा वह सपेरे के वेष में राक्षस का गुप्तचर है। राक्षस उससे कुसुमपुर के वास्तविक समाचार जानते है। वह बताता है कि विषकन्या द्वारा पर्वतेश्वर की मृत्यु हो गयी है तथा कुमार मलयकेतु भो कुसुमपुर छोड़कर भाग गये है। चाणक्य ने पर्वतक के भाई वैरोचक को आधा राज्य दे देने का विश्वास दिला दिया है तथा नन्द भवन में प्रवेश करते समय आपके गुप्तचर दारूवर्मा ने वैरोचक को चन्द्रगुप्त समझते हुए मार दिया है। इसके पश्चात् सेना ने पत्थर मार–मार कर दारूवर्मा को मार दिया है। 'राक्षस द्वारा प्रयुक्त विषकन्या से पर्वतेश्वर मारा गया' इस अपराध की घोषणा करके चाणक्य ने क्षपणक जीवसिद्धि को नगर से बाहर निकलवा दिया है तथा शकटदास ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए दारूवर्मा को नियुक्त किया था इस अपराध के लिए शकटदास को प्राण दण्ड की सजा तथा उसकी पत्नी व पुत्र को जेल में डाल दिया है।

इसी बीच शकटदास को फाँसी से सिद्धार्थक बचा लाता है तथा राक्षस अपने मित्र की जान बचाने के कारण सिद्धार्थक को पारितोषिक देता है तथा अपनी मुद्रा उसके पास देखकर उसे आश्चर्य होता है। मुद्रा राक्षस को देकर सिद्धार्थक चाणक्य के भय से राक्षस के पास ही नौकरी कर लेता है। राक्षस अहितुण्डिक के वेश में विराधगुप्त को पुनः कुसुमपुर भज देता है कि चन्द्रगुप्त व चाणक्य के बीच विरोध भड़काने का प्रयत्न करना। राक्षस को विश्वास है कि चाणक्य व चन्द्रगुप्त के बीच भदनीति से वह पुनः राज्य प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार द्वितीय अंक राक्षस की नीति पर प्रकाश डालता है।

द्वितीय अंक की व्याख्यायें

व्याख्या –

नेदं विस्मृतभक्तिना न विषयव्यासङ्गमूढात्त्मना
प्राणप्रच्युतिभीरुणा न च मया नात्म प्रतिष्ठार्थिना।
अत्यथ परदास्यमेत्य निपुणं नीतौ मनो दीयते
देवः स्वर्गगतोऽपि शात्रववधेनाराधितः स्यादिति।। श्लोक 2/5

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस नाटक के द्वितीय अंक से उद्धृत है।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस बताता है कि वह अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर राजनीति में मन नहीं लगा रहा परन्तु उसका उद्देश्य अपने स्वामी नन्द के शत्रुओं से बदला लेना है।

अन्वय – परदास्यमेव्य नीतौ मनः अत्यर्थं निपुणं दीयते, इदं विस्मृतभक्तिना न, विषयव्यासङ्गमूढात्मना न, प्राणच्युतिभोरूणा न, न च मया आत्मप्रतिष्ठार्धिना, स्वर्गगतः अपि देवः शात्रवधेन आराधितः स्यात् इति ;नीतौ मनोदीयतेद्ध।

अर्थ – दूसरों अर्थात् मलयकेतु की पराधीनता को स्वीकार करके राजनीति में मेरे मन लगाने से अभिप्राय यह नहीं है कि मैं स्वामिभक्ति भूल गया हूँ। विषयों की भोग की आसक्ति से भो मैं राजनीति में मन नहीं लगा रहा हूँ। न प्राणनाश के भय से और न ही अपनी प्रतिष्ठा की कामना से राजनीति में मन लगा रहा हूँ अपितु स्वर्ग गये हुए महाराज नन्द शत्रुओं के विनाश से सेवा किये जा सके अर्थात् मैं अपने स्वामी की मृत्यु का बदला शत्रुओं से ले सकूँ इसलिए राजनीति में मेरे द्वारा मन लगाया जा रहा है।

अभिप्राय स्पष्ट है राक्षस यह बताना चाहता है कि मैं अपने किसी निजी स्वार्थ धन, पद व प्राण मोह के कारण राजनीति में मन नहीं लगा रहा परन्तु नंदवंश के प्रति पूर्णसमर्पित राक्षस नंदवंश के विनाश का बदला लेना चाहता है। राक्षस की यह स्वामिभक्ति धन्य है।

विशेष – इसमें परिसंख्यालंकार व शार्दूलविक्रिडितम् छंद है।

व्याख्या –

कर्णेनेव विषानैङ्गकपुरूषव्यापादिनी रक्षिता
हन्तुं शक्तिरिवार्जुनं बलवती या चन्द्रगुप्तं मया।
सा विष्णोरिव विष्णुगुप्तहतकस्यात्यन्तिकश्रेयसे
हैडिम्बेयमिवेत्य पर्वतनृपं तद्वध्यतेवावधीत्।। श्लोक 2/15

प्रसंग – व्याख्या संख्या एक के अनुसार

संदर्भ – इस श्लोक में राक्षस चाणक्य द्वारा अपनी राजनैतिक योजनाओं के असफल कर देने पर चाणक्य की तुलना श्रीकृष्ण से करता है।

अर्थ – कण को जिस प्रकार इन्द्र ने एक शक्ति प्रदान की थी जो एक ही पुरूष को मार सकेगी। कण ने उस शक्ति को अर्जुन के मारने के लिए बचाकर रखा था, उसी प्रकार मैंने (राक्षस ने) एक विषकन्या रखी हुई थी परन्तु श्रीकृष्ण के समान चाणक्य ने अत्यधिक

कल्याण के लिए श्रीकृष्ण के द्वारा वध्य हिडिम्बापुत्र (घटोत्कच) के समान और चाणक्य द्वारा वध्य पर्वतेश्वर राजा को ही प्राप्त करके मार दिया।

विशेष – इस श्लोक में पात्रों का साम्य इस प्रकार है–

कण राक्षस, अर्जुन चन्द्रगुप्त। शक्ति विषागंमा ;दोनों एक पुरूष को मारने के बाद बलहीन हो जाती है। श्रीकृष्ण चाणक्य (दोनों राजनीतिज्ञ है) घटोत्कच–पर्वतक।

हैडिम्बेयम्–हिडिम्बा राक्षसी थी, भोमसेन से विवाह के बाद इससे घटोत्कच पुत्र पैदा हुआ था।

हिडिम्बाया–अपत्यं पुमान् इति हिडिम्बा + ठक् (प्रत्यय) उपमालंकार व शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति।। श्लोक 2/17

प्रसंग – प्रथम व्याख्या के प्रसंगानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस अपने द्वारा प्रस्तुत योजनाओं की असफलता पर चिन्तित है। वह विराधगुप्त से कहता है कि बीज तो मैं बोता हूँ परन्तु फल चन्द्रगुप्त प्राप्त करता है। यह मेरा दुर्भाग्य है तथा शत्रुओं का सौभाग्य। तब विरोध गुप्त राक्षस से कहता है कि–

अन्वय – विघ्नमयेन नीचैः न खलु प्रारभ्यते, मध्याः प्रारम्य विघ्नविहता विरमन्ति। उत्तमगुणाः विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारब्धं न परित्यजन्ति।

अर्थ – विघ्नों के भय से नीच पुरूष कोई कार्य प्रारम्भ नहीं करते। मध्यम कोटि के पुरूष कार्य प्रारम्भ तो कर देते है परन्तु विघ्नों से नष्ट किये जाते हुए बीच में ही कार्य छोड़ देते है तथा उत्तम गुणों से युक्त पुरूष विघ्नों से बार–बार पीड़ित किये जाते हुए भो कार्य को अधूरा नहीं छोड़ते। इसमें उत्तम, मध्यम व निम्न कोटि के मनुष्यों की कार्य के प्रति प्रतिबद्धता को प्रकट करता है।

विशेष – यह श्लोक भतृहरि के नीति शतक में प्राप्त होता है। धनञ्जयकृत दशरूपक में भो यह भतृहरि के श्लोक के नाम से उद्धृत है। इसमें अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार व वसन्ततिलका छंद है।

व्याख्या

किं शेषस्य भरव्यथा वपुषि? क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्।
किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेः। आस्ते न यन्निश्चलः।
किन्त्वङ्गीकृतमुत्सृजन्–कृपणवच्छ्लाध्यो जनो लज्जते
निर्वाहः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धिगोत्रव्रतम्।। 2/18

प्रसंग – प्रथम व्याख्या के प्रसंगानुसार

संदर्भ – अपनी नीति की असफलताओं पर दुःखी राक्षस जब विराधगुप्त से बात करता है तो विराधगप्त राक्षस का मनोबल बढ़ाते हुए कहता है किः–

अन्वय – शेषस्य वपुषि किम् भार व्यथा न यत् क्ष्मां एषः न क्षिपति वा किम् दिनपतेः परिश्रमः नास्ति यत् निश्चलः न आस्ते। किन्तु श्लाध्यो जनः अङ्गीकृतम् कृपणवत् उत्सृजन् लज्जते हि प्रतिपन्नवस्तुषु निर्व्यूढम् एतत् सताम् गोत्रव्रतम्।

अर्थ– शेषनाग के शरीर में पृथ्वी को धारण करने पर क्या पीड़ा नहीं होती परन्तु वह पृथ्वी को सिर से नहीं फेंक देता। अथवा क्या सूर्य को थकान का अनुभव नहीं होता परन्तु वह गति शून्य होकर बैठ नहीं जाता। प्रशंसनीय मनुष्य स्वीकार किये हुए कार्य को कायर मनुष्य के समान छोड़ता हआ लज्जित होता है क्योंकि स्वीकार किये हुए कार्य का निर्वाह करना, सज्जनों का कुलधर्म है।

विशेष –

1. शेषस्य – शेषनाग पाताल में रहने वाले सर्पों का राजा है। पौराणिक कथा है कि पृथ्वी शेषनाग के सिर पर टिकी है।
2. उत्सृजन् – उत्+सज्+शतृ।
3. निर्व्यूढम् – निर्+वि+वह्+क्त प्रत्यय।
4. समर्थन द्वारा बात प्रमाणित करने पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है।
5. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या –

मौर्यस्तेजसि सर्वभूतलभुजामाज्ञापको वर्तते
चाणक्योऽपि मदाश्रयादयमभूद्राजेति जातस्मयः।
राज्यप्राप्तिकृतार्थमेकमपरं तीणप्रतिज्ञार्णवं
सौहार्दात्कृतकृत्यतैव नियतं लब्धान्तरा भेत्स्यति।। 2/23

प्रसंग – प्रथम व्याख्या के प्रसंगानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस चन्द्रगुप्त व चाणक्य के बीच फूट डालना चाहता है तथा उसे विश्वास है कि भदनीति से वह पुनः विजय प्राप्त कर लेगा।

अन्वय – मौर्यः सर्वभ्तलभजाम् आज्ञापकः तेजसि वर्तते चाणक्योऽपि मदाश्रयात् अयम् राजा अभ्त् इति जातस्मयः। राज्यप्राप्तिकृतार्थम् एकम् तीर्णप्रतिज्ञार्णवम् अपरम् (च) लब्धान्तरा कृतकृत्यता एव नियतम् सौहार्दात्भत्स्यति।

अर्थ– राक्षस सोचता है कि चन्द्रगुप्त सभो राजाओं को आज्ञा देने वाला तेजस्वी राजा है तथा चाणक्य भो यह (चन्द्रगुप्त) मेरे प्रयासों से राजा बना है, इस प्रकार उत्पन्न गर्व वाला है। राज्यप्राप्ति के कारण सफल एक को और प्रतिज्ञा रूपी समुद्र को पार कर लेने वाले दूसरे को अवसर पाकर निरपेक्षता निश्चित रूप से एक दूसरे के मैत्री भाव को समाप्त कर देगी।

विशेष –

1. सौहार्दात् – शोभनं ह्रदयमस्य इति सुह्रत् तस्य भावः इति सुह्रत्+अण्।
2. कृतकृत्यता – निरपेक्षता ;चन्द्रगुप्त व चाणक्य को अब एक दूसरे की आवश्यकता नहीं है क्योंकि दोनों अभोष्ट सिद्धि प्राप्त कर चुके है।
3. प्रतिज्ञार्णवं – उपमालंकार है

   कृतकृत्यता – यथासंख्यालंकार है।
4. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

14.7.3 तृतीय अंक का सारांश तथा प्रमुख व्याख्यायें

तृतीय अंक में चाणक्य व चन्द्रगुप्त का कृतक कलह ;बनावटी झगड़ाद्ध वर्णित है। प्रथम अंक में लिखे कूट पत्र के समान यह भो चाणक्य नीति का प्रमुख आधार है। यह अंक तीन दृश्यों में विभाजित है।

इस अंक में कञ्चुकी का प्रवेश होता है तथा वह सूचना देता ह कि कौमुदी महोत्सव मनाने की घोषणा कर दी गयी है तथा सारे नगर को सुसज्जित कर नागरिक उत्सव को उत्साहपूर्वक मनाये। परन्तु चाणक्य कौमुदी महोत्सव मनाने का निषेध कर देता है।

चाणक्य का आदेश है कि कौमुदी महोत्सव को आधार बनाकर ही चन्द्रगुप्त चाणक्य से कृतक कलह करके स्वतंत्र रुप से राज्य करें।

चन्द्रगुप्त चाणक्य के प्रतिबन्ध को स्वीकार करने से मना कर देता है तथा चाणक्य के त्याग पत्र को स्वीकार कर लेता है। चन्द्रगुप्त घोषणा करता है कि आज से चाणक्य को मंत्री पद से हटाकर चन्द्रगुप्त स्वयं ही राज्य करेगा। कृतक कलह इतना वास्तविक है कि इसे कञ्चुको भो सही समझ लेता है इसी के साथ तृतीय अंक समाप्त होता है।

तृतीय अंक की व्याख्यायें

व्याख्या

सुविश्रब्धैरङ्गै पथिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुयो यास्य गुरुणा।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो
मनस्वी दम्यत्वात्स्खलति च न दुःखं वहति च।। श्लोक 3/3

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस के तृतीय अंक से उद्धृत है।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में कौमुदी महोत्सव पर राज प्रसाद को सजाने का आदेश दिये जाने पर चन्द्रगुप्त के आने की सूचना मिलते ही चन्द्रगुप्त की प्रशंसा तथा उसकी वृषभ से तुलना की गयी है।

अन्वय – सुविश्रब्धैः अङ्गै विषमेषु पथिषु अपि अचलता धुर्येण अस्य गुरूणा या भवः गुरूरपि चिरम् ऊढा। ताम एव उच्चैः धुरम् नववयसि वोढुं व्यवसितः मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न च दुःखं वहति च।

अर्थ – अपने विश्वस्त अङ्गो (राजनीति के स्वामी, अमात्य, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और सुहृत् सात अंगों) के बल पर विषम पथ (राक्षस द्वारा अनेक विघ्नों से युक्त राजनीति के) पर अविचल भाव से चलते हुए उनके गुरूओं (पूर्वजों) में जिस राज्यभार को ढोया था, उसी भार को ढोने में उद्यत नई उम्र के कारण महामनस्वी स्खलित तो होता है, पर दुःखी नहीं होता है। दूसरी तरफ यह सभो विशेषण वृषभ पर घटित होते है कि नयी उम्र का बैल अपने सुपुष्ट ओ से विषम राह पर चलता हुआ भार ढोने से पृथक नहीं होता है।

विशेष – यह श्लोक द्वयर्थक (दो अर्थोवाला) है। इसमें निम्न शब्दों के चन्द्रगुप्त व बैल के अर्थ में दो अर्थ है–

1. सुविश्रब्धैः अङ्गै – विश्वस्त राजनीति के सात अंगों द्वारा सुपुष्ट अङ्गों द्वारा।
2. विषमेषु पथिषु – राजनीति के विषम पथ पर। उबड़ खाबड़ रास्ते पर।
3. धुर्येण – राज्यभार निर्वहण में समर्थ। भार ढोने में समर्थ।
4. स्खलति – कुछ दुःखी होता है। कुछ थकान महसूस करना।
5. व्यवसितः – वि+अव+सो+क्त प्रत्यय।
6. मनस्वी – प्रशस्त मनः अस्य इति मनस् विनि (प्रत्यय)
7. दम्यत्वात् – अधिक प्रौढ़ न होने से, जिसकी शिक्षा अभो समाप्त नहीं हुई है।
8. समासोक्ति अलंकार
9. शिखरणी छंद है।

व्याख्या

परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता
परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः।
परार्थश्चेतस्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्
परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः।। श्लोक 3/4

प्रसंग – प्रथम व्याख्या के प्रसंगानुसार

संदर्भ – इस श्लोक में स्वयं चन्द्रगुप्त मन ही मन राजा के कठोर उत्तरदायित्व के विषय में सोच रहा है कि राजा किसी भो कार्य के लिए स्वतन्त्र नहीं है उस पर प्रजा के हित का पूरा दायित्व है। वह अपने कत्तव्य के विषय में परतन्त्र है।

अन्वय – परार्थानुष्ठाने स्वार्थपरता नृपं रहयति परित्यक्तस्वार्थः नियतम–अयथार्थः क्षितिपतिः। चेत् परार्थः स्वार्थात् अभिमततरः हन्त परवान् परायत्तः पुरुषः प्रीतेः रसम् कथमिव वेत्ति।

अर्थ – दूसरों के प्रयोजन को सिद्ध करने में स्वार्थपरता अर्थात् स्वच्छंदता (विषयों का उपभोग) राजा को छोड़ देता है और जो अपने स्वार्थ को छोड़ देता है वह निश्चित रूप से अवास्तविक राजा है। जब परार्थ स्वार्थ से अधिक बलवान हो जाता तो निश्चित रूप से राजा परतन्त्र है और पराधीन मनुष्य प्रीति के रस का आनन्द कैसे पा सकता है।

विशेष –

1. राजा विषयभोगों के लिए स्वतन्त्र नहीं है। राजा प्रजाहित के कार्य करने के लिए परातन्त्र है तथा पराधीन व्यक्ति सुखों का उपभोग कैसे कर सकता है?
2. काव्यलिङ्ग अलंकार है।
3. शिखरिणी छंद है।
4. नीचे की पंक्ति सूक्ति है। सच ही है पराधीन व्यक्ति सुखों का उपभोग नहीं कर सकता (पराधीन सपनेहु सुख नाहि)

व्याख्या

तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न संतिष्ठते
मूर्खं द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि।
शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरून हो
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम्।। श्लोक 3/5

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – राज्यलक्ष्मी प्राप्त होने पर उसकी रक्षा करना कठिन है। राज्यलक्ष्मी की तुलना वेश्या से की गयी है, क्योंकि वेश्या के समान यह किसी भो राजा के पास बहुत ही प्रयत्न के उपरान्त ठहरती है।

अन्वय – तीक्ष्णात् उद्विजते, मृदौ परिभवत्रासात् न संतिष्ठते, मूर्खं द्वेष्टि, अत्यन्तविद्वत्स्वपि प्रणयितां न गच्छति। शूरेभ्योऽतयधिकं विभति, एकान्तभोरूनउपहसति, अहो लब्धप्रसंग वेशवनिता इव श्री भशं दुःखोपचर्या।

अर्थ – राज्यलक्ष्मी अत्यधिक दुःख से सेवा योग्य होती है। तीक्ष्ण दंड देने वाले राजा से उद्विग्न हो जाती है। कोमल चित्त वाले राजाओं के साथ तिरस्कार के भय से नहीं टिकती है। मूर्ख राजाओं ऐसे द्वेष करती है। अत्यन्त विद्वान् राजाओं से भो प्रेम नहीं करती। शूरवीरों से भय खाती है तथा एकान्त भोरू का उपहास करती है इस प्रकार यह राज्यलक्ष्मी प्रगल्भा वेश्या की तरह दुःखपूर्वक उपचार करने योग्य है।

विशेष –

1. सन्तिष्ठते – सम् उपसर्ग स्था धातु आत्मनेपदी।
2. अधिक कोमल व अतितीक्ष्ण दोनों प्रकार के राजाओं के पास लक्ष्मी नहीं ठहरती। इसके लिए राजाओं को विशेष रुप से प्रयत्न शील रहना पड़ता है।
3. एक ही लक्ष्मी की अनेक क्रियाये होने कारण दीपक अलंकार है।
4. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या

भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
मार्गे कथं चिदवतार्य तनूभवन्तीम्।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गङ्गा शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम्। 3/9

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राजा चन्द्रगुप्त शरत्कालीन शोभा का वर्णन करता ह। इसके श्लोक में एक अर्थ शरत् ऋतु को लेकर गंगा के पक्ष में है तथा दूसरा अर्थ नायिका के पक्ष में है।

अन्वय – शरत् रतिकथा चतुरा दूती इव तथा कलुषिताम् तनू भवन्तीम् सर्वात्मना प्रसन्नाम् गङ्गाम्–बहुवल्लभस्य भर्तुः मार्गे कथंचित् अवतार्य सिन्धुपतिं नयति।

अर्थ – 1. गंगा पक्ष में – शरद् ऋतु प्रणय की कथाओं में चतुर दूती के समान वर्षाकाल में कीचड़ के कारण कलुषित तथा अब शरत्काल में कृश प्रवाह होती हुई पूर्णरुप से स्वच्छ जल वाली स्वच्छ गंगा को अनेक पत्नियों वाले समुद्र के मार्ग में येन केन प्रकारेण उतारकर सागर के पास जा रही ह।

2. नायिकापक्ष में – शरत् नामक स्त्री प्रणय की कथाओं में चतुर दूती के समान उस प्रकार से ईर्ष्या वाली, वियोग के कारण कृश होती हुई गङ्गा नाम की नायिका को प्रसन्न मुखी करके पत्नियों वाले स्वामी के अभिसरण मार्ग में करके सिंधु नामक पति के पास ले जा रही है।

विशेष –

1. अवतार्य – अव+तृ+णिच्+ल्यप्।
2. तनूभवन्तीम् – अतनुः तनुः भवन्ती इति तनु+च्वि+भ्+शतृ 'च्वौ च' से दीर्घ तनूभवन्तीम्
3. सिन्धुपतिम् – सिन्धूनां पति – समुद्र।

   सिन्धुनामा पति, तम् सिन्धुपतिम्।
4. श्लेषानुप्राणित उपमालंकार।
5. वसन्ततिलका छंद।

व्याख्या

उपलशकलमेतद्भेदकं गोमयानां
बटुभि रुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि–
र्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्।। 3/15

प्रसंग – प्रथम व्याख्या के प्रसंगानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में कञ्चुकी सम्राट् चन्द्रगुप्त के मंत्री चाणक्य की कुटिया का वर्णन कर रहा है। राजनीति कुशल तथा अपने बुद्धिबल से नंदवंश को समाप्त कर देने वाले चाणक्य के स्वयं का घर कितना सादा है। अतः वह देखकर कहता है कि राजाधि राज के मंत्री की विभ्ति देखिये।

अन्वय – गोमयानां भदकम् एतत् उपलशकलम्, बहुभिः उपह्रतानाम–बर्हिषाम् एतत् स्तूपम्। शुष्यमाणाभिः आभिः समिद्भिः विनमितपटलान्तं जीर्णकुड्यं शरणम् अपि दृश्यते।

अर्थ – उपलो को तोड़ने वाला यह पत्थर का टुकड़ा है, शिष्यों द्वारा लाये हुये कुशाओं का यह ढेर है। सूखती हुई समिधाओं से ढके हुए छत के प्रान्तभाग वाला जीर्ण दीवारों वाला घर भो दिखायी दे रहा है।

विशेष – इस श्लोक में चाणक्य से सादगीपूर्ण जीवन का चित्रण है।

1. गोमयानाम् – गो+मयट्
2. बटुभिरूपह्रतानाम् से चाणक्य आचार्य होने का पता चलता है।
3. स्वाभावोक्ति अलंकार
4. मालिनीछंद है।

व्याख्या

आकाशं काशपुष्पच्छविमभिभवता भस्मना शुक्लयन्ती
शीतांशोरंशुजालैजलधरमलिनां क्लिश्नती कृत्तिमैभीम् ।
कापालीमुद्वहन्ती स्रजमिव धवलां कौमुदी मित्यपूर्वा
हासश्रीराजहंसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्वः।। 3/20

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में वैतालिक स्तुति पाठ करते है तथा इस श्लोक में दो अर्थ है एक शिव के पक्ष में तथा दूसरा शरद् ऋतु के पक्ष में। इसमें शिवस्तुति के माध्यम से चन्द्रगुप्त के क्लेश दूर करने की कामना की गयी है।

अन्वय – काशपुष्पच्छविम् अभिभवता भस्मना आकाशं शुक्लयन्ती शीतांशोः अंशुजालैः जलधरमलिनाम् ऐभों कृति क्लिश्नती। कौमुदीमिव धवलां कापालीं स्रजम् उद्वहन्ती हास्यश्रीराजहंसा अपूर्वा शरद् इव ऐशी तनुः वः क्लेशं हरतु।

अर्थ – 1. शिवजी के पक्ष में – काशपुष्प की कांति को तिरस्कृत करने वाली ;ध्वलद्ध भस्म से आकाश को शुभ करता हुआ, चन्द्रमा की किरणों के समूह से मेध के समान मलिन वर्ण वाली हाथी की खाल को विवर्ण बनाता हुआ चन्द्रिका के समान शुभ नरमुण्ड माला को धारण किया हुआ राजहंस की शोभा के समान अट्टहास की शोभा वाला अद्भत शरद् ऋतु के समान शिव सम्बधी शरीर आपके क्लेशों को दूर करें।

2. शरद् पक्ष में – भस्म को तिरस्कृत करने वाली का शपुष्प की कांति से आकाश को शुभ बनाती हुई, चन्द्रमा की किरणों के समूह से गजसम्बंधी चर्म के समान मेघों की मलिनता को नष्ट करती हुई, हास्य की शोभा के समान राजहंस वाली, लोकोत्तर गुणों से रमणीय शिवजी के शरीर के समान आपके क्लेश को दूर करें।

विशेष –

1. यह श्लोक द्वयर्थक है अतः एक अर्थ शिवजी के पक्ष में तथा दूसरा शरद् ऋतु के पक्ष में है।
2. शुक्लयन्ती – शुक्ल णिच्+शतृप्रत्यय

3. ऐभोकृतिम्–गजचर्म है जिसे ताण्डव नृत्य के समय शिवजी धारण करते है।

4. उपमालंकार है।

5. स्रग्धरा छंद है। म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि यतियुता स्रधरा कीर्तितेयम्।

व्याख्या

गृध्रैराबद्धचक्रं वियति विचलितैर्दीर्घनिष्ठकम्पपक्षै –
र्धूमैर्ध्वस्तार्कभासां सघनमिव दिशां मण्डलं दर्शयन्तः।
नन्दैरानन्दयन्तः पितृवननिलयान्प्राणिनः पश्य चैता –
न्निर्वान्त्यद्यापि नैते स्रुतबहलवसावाहिनो हव्यवाहाः।। श्लोक 3/28

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में जब चन्द्रगुप्त में चाणक्य में कौमुदी महोत्सव का विरोध कर दिये जाने पर कृतक कलह हो रहा है तो चन्द्रगुप्त जब राक्षस की प्रशंसा करता है तो चाणक्य कहता है कि नन्दवश की समाप्ति करने वाला क्रोध अभो भो शांत नहीं हुआ है।

अन्वय – वियति आबचक्रं विचलितैः दीर्घनिष्कम्पपक्षैः गृध्रैः धूमैः ध्वस्तार्कभासां दिशा मण्डलं सघनं इव दर्शयन्तः। नन्दैः च पितृवननिलयान् एतान् प्राणिन आनन्दयन्तः एते स्रुतबहलवसावाहिनः हव्यवाहाः अद्यापि न निर्वान्ति पश्य।

अर्थ – आकाश में मण्डल बनाकर उड़ते हुए दीर्घ और निश्चल पंखों वाले गृद्ध रूपी धुयें से छिपा दिया है सूर्य का तेज जिसने ऐसी दिशाओं के समूह को मेघों से व्याप्त दिखलाती हुई और नन्दों से श्मशान में दिखायी देने वाली पिघली हुई अत्यधिक चर्बी को प्रवाहित करने वालो चिता की अग्नियाँ अभो शांत नहीं हुई है। अभिप्राय यह है कि चाणक्य बताना चाहते है कि अभो भो उनका क्रोध शांत नहीं हुआ है तथा वह किसी के विनाश की प्रतिज्ञा ले सकते है।

विशेष –

1. गृधैरेव धूमैः –रूपक अलंकार है। अग्नि प्रज्जवतित है अतः धूम के अभाव में गिद्धों का धूमरुप में वर्णन है।

2. हव्यवाहाः – हव्यं वहन्ति इति हव्य+वह+अ

3. स्रग्धरा छंद है।

14.8 पारिभाषिक शब्दावली

1. मुद्राराक्षसम् – मुद्रया परिगृहीतः राक्षसौऽत्रेति मुद्राराक्षसम्

2. नाटकम् – रुपक के दस भेदों में पहला भेद ।

3. नाद्यन्ते – नान्दी के अन्त में।

   नान्दी पाठ मंगलाचरण को कहते हैं। नाटक के प्रारम्भ में विघ्नविनाश के लिए नान्दी पाठ की परम्परा है।

4. सूत्रधार – नाटकीय कथा का प्रस्तुतकर्ता

   (सूत्रं धारयति इति सूत्रधारः)

5. प्रस्तावना – प्रस्तूयते उद्भाव्यते इतिवृत्तम् अनया इति।

   सूत्रधार स्वयं प्रस्तावना का निर्माण करता है।

   प्रस्तावना का उद्देश्य नाटककार और नाटक से परिचित कराना।

6. वृषल – इन्द्र सदृश प्रतापी या शूद्रपुत्र (सम्पूर्ण नाटक में चाणक्य चन्द्रगुप्त के लिए प्रयुक्त करता है।)

7. नटी – सूत्रधार की पत्नी

8. मुद्रा – मोहर, मौनमुद्रा, अंगूठी

9. यमपट – ऐसा पट जिस पर शुभ व अशुभ कार्यों की सूचना के चित्र बने होते हैं ।

10. चरः – गुप्तचर

11. सैन्धवः – सिन्धु ;आधुनिक सिन्धद्ध 7वीं व 8 वीं शती का समृद्ध राज्य

12. कौलूतः – कुलूत का राजा ;आधुनिक कुल्लूद्ध

14. नेपथ्य – नटों के वेषविन्यास का स्थान

14. संगीतकम् – गीत वाद्य व नृत्य तीनों संगीतक कहलाते हैं ।

15. कञ्चुकी – अन्तःपुट में द्वार रक्षक

16. कौमुदीमहोत्सव – अश्विन व कार्तिक की पूर्णिमा की चाँदनी को कौमुदी कहते है।

17. आकाशे – आकाशभाषित है। एक नाटकीय सम्वाद प्रकार है। पात्रों की संख्या कम करने की विधि है।

18. जीर्णविषः – सपेरे का नाम। इस पर विष का कोई प्रभाव नहीं हो सकता।

19. नन्दानाम् – नन्द व उसके आठ पुत्र अतः बहुवचन का प्रयोग।

20. जनान्तिकम् – मंच पर बात करने का प्रकार जिससे बात अपने व्यक्ति के कान में कही जाये कि पास वाला न सुन पावे। इसमें पात्र दूसरे पात्र से 'त्रिपताकाकर' की मुद्रा बनाकर संवाद बोलता है।

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1. विशाखदत्त का समय स्वीकार किया गया है–

(अ) प्रथम शती का उत्तरार्द्ध (ब) छठीं शती का उत्तरार्द्ध

(स) चतुर्थ शती का पूर्वार्द्ध (द) पांचवी शती का उत्तरार्द्ध

प्र.2 मुद्राराक्षस में अंक है–

(अ) 7 (ब) 5

(स) 9 (द) 8

प्र.3 मुद्राराक्षस का नामकरण का आधार है–

उ. ——————————————————————————————

प्र.4 विशाखदत्त की प्रमुख रचनायें लिखें –

उ. ——————————————————————————————

बोध प्रश्न –

प्र.5 मुद्राराक्षस में नायिका है–

(अ) शकुन्तला (ब) वासवदत्ता

(स) कोई नहीं (द) पद्मावती

प्र.6 मुद्राराक्षस का मुख्य रस कौन सा है–

(अ) वीर (ब) अद्भुत

(स) भयानक (द) श्रृंगार

प्र.7 मुद्राराक्षस नाटक की सामान्य विशेषतायें लिखे।

———————————————————————————————

प्र.8 विशाखदत्त की नाट्यकला पर संक्षिप्त लेख लिखिये।

———————————————————————————————

प्र. 5 निम्न श्लोकों की व्याख्या कीजिये–

(अ) आस्वादितद्विरदशोणितशोण शोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।
जृम्भाविदारित मुखस्य मुखात् स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्।। श्लोक 1/8

(ब) भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
मार्गे कथं चिदवताय तनूभवन्तीम्।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गङ्गा शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम्। 3/9

प्रश्नों के उत्तर –

1. ब
2. अ
3. देखिये भाग 14.3
4. देखिये भाग 14.2.2
5. स
6. अ
7. देखिये भाग 14.4
8. देखिये भाग 14.6
9. (अ) देखिये भाग 14.7.1
   (ब) देखिये भाग 14.7.3

14.10 सारांश

इस इकाई में आपने जाना कि महाकवि विशाखदत्त लिखित मुद्राराक्षस संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है इस नाटक में कवि ने चाणक्य कि कूटनीति के आधार पर नन्द वंश के विनाश और राक्षस को वश में करने का नाटकीय ढंग से वर्णन किया है। इसमें कवि विशाखदत्त के परिचय के साथ–साथ आपने उनके अन्तः साक्ष्यों व बाह्य साक्ष्यों के आधार पर उनका स्थितिकाल जो छटीं शती का उतरार्द्ध सि होता है, यह जाना। मुद्राराक्षस नाटक के नामकरण, उसकी सामान्य विशेषताओं तथा नाट्यकला की आधार पर इसकी समीक्षा की गई।

मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत के अन्य नाटकों से भिन्न है। इसमें नायिका का अभाव है तथा बीच–बीच में हंसाने वाले विदूषक पात्र भी नहीं है। अतः इस नाटक में श्रृंगार एवं कोमल भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। नाटक के बीच–बीच में दृश्य विधान इस नाटक की प्रमुख विशेषता है। इस नाटक का प्रमुख रस वीर रस है। इसमें चाणक्य की कुटिल चालों एवं विशुद्ध राजनीति का वर्णन है। इस इकाई में प्रथम से तृतीय अंक तक की मुख्य व्याख्यायें भी दी गई है। प्रमुख श्लोंको में कवि की गौरव गरिमापूर्ण वाणी एवं उनकी गंभीर शैली के दर्शन होते है। संपूर्ण संस्कृत साहित्य में यह अपनी तरह का एक अनूठा नाटक है।

14.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुद्राराक्षसम् – डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ, 2000.
2. मुद्राराक्षसम्, श्री निरञ्जन मिश्र, हंसा प्रकाशन जयपुर, 1999.
3. संस्कृत कविदर्शन डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा, वाराणसी, 2003.
4. संस्कृत महाकवि और काव्य, रामजी उपाध्याय, रामगोपाल मिश्र, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहबाद, 1958.
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1953.

इकाई – 15

मुद्राराक्षस नाटक (अङ्क 4 से अङ्क 7 तक) की प्रमुख व्याख्यायें

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 चतुर्थ अंक का सारांश, व्याख्यायें

15.3 पञ्चम अंक का सारांश, व्याख्यायें

15.4 षष्ठ अंक का सारांश, व्याख्यायें

15.5 सप्तम अंक का सारांश, व्याख्यायें

15.6 पारिभाषिक शब्दावली

15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.8 सारांश

15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप विशाखदत्तकृत नाटक 'मुद्राराक्षसम्' के विषय में जान सकेंगे। पिछली इकाई में आप 'मुद्राराक्षसम् नाटक के रचयिता विशाखदत्त का संक्षिप्त परिचय तथा उनके स्थिति काल, अङ्गी रस तथा प्रमुख पात्रों के चरित्र–चित्रण के साथ प्रथम, द्वितीय व तृतीय अंक का सारांश तथा महत्त्वपूर्ण व्याख्यायें पढ़ चुके है। इस इकाई में चतुर्थ, अंक से लेकर सप्तम अंक तक का संक्षिप्त सारांश तथा महत्त्वपूर्ण व्याख्यायों के विषय में जान सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में चतुर्थ अंक से सप्तम अंक तक सभो अंकों के संक्षिप्त सारांश के माध्यम से आप 'मुद्राराक्षस' नाटक की कथावस्तु को जान सकेंगे तथा प्रमुख–प्रमुख श्लोकों की व्याख्याओं के साथ उनका प्रसंग, संदभ तथा अर्थ दिया गया हैं साथ ही विशेष टिप्पणी, व्याकरण संबंधी कुछ विशेष शब्दों के निर्देश तथा श्लोकों में अलंकार व छंदो का निर्देश किया गया है। अन्त में कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या भो दी गई है।

15.2 चतुर्थ अंक का सारांश, व्याख्यायें

चतुर्थ अंक में यह घोषणा होती है कि राक्षस शिरोवेदना से पीड़ित है तथा मलयकेतु राक्षस से मिलने जा रहा है। भागुरायण मलयकेतु के मन में यह बात बैठा देता है कि राक्षस चाणक्य के विरोध में है चन्द्रगुप्त के विरोध में नहीं है। शयनकक्ष में शकटदास, राक्षस व करभक बात कर रहे हैं और भागुरायण व मलयकेतु छिपकर उनकी बातचीत सुनते हैं ।

भागुरायण राक्षस की बात को अन्यथा करके मलयकेतु को समझता है। जब करभक ने राक्षस को सूचना दी कि चन्द्रगुप्त व चाणक्य में झगड़ा हो गया है तथा उसने चाणक्य को मंत्री पद से हटा दिया है। भागुरायण मलयकेतु को समझाता है कि राक्षस मंत्री पद की प्राप्ति चाहता है तथा चन्दनदासादि से छुटकारा। चाणक्य व चन्द्रगुप्त में लड़ाई से राक्षस

का मंत्रीपद सुरक्षित हो गया है। इस प्रकार भागुरायण ने मलयकेतु के हृदय में संदेह के बीज बो दिये है।

मलयकेतु राक्षस से पूछता है कि अब कितने दिनों तक युद्ध की प्रतीक्षा करनी होगी। राक्षस कहता है कि चन्द्रगुप्त व चाणक्य में अलगाव होने से युद्ध का अभो सही समय है क्योंकि चन्द्रगुप्त सचिवायत्तसिद्धि राजा है अतः वह बिना चाणक्य के हमारा विरोध नहीं कर सकता। इस प्रकार संदेह व युद्ध का उन्माद लिये मलयकेतु चला जाता है।

चतुर्थ अंक के महत्त्वपूर्ण व्याख्या स्थल

व्याख्या

मम विमृशतः कार्यारम्भे विधेरविधेयता–
मपि च कुटिलां कौटिल्यस्य प्रचिन्तयतो मतिम्।
अपि च विहिते मत्कृत्यानां निकाममुपग्रहे
कथमिदमिहेत्युन्निद्रस्य प्रयात्यनिशं निशा।। श्लोक 4/2

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त प्रणीत 'मुद्राराक्षस' के चतुर्थ अंक से उद्धृत है।

संदभ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस शिरोवेदना से पीड़ित है क्योंकि एक तो भाग्य विपरित होने से उसकी नीतियाँ असफल हो रही है, दूसरा चाणक्य की कुटिल नीतियों से वह परेशान है अतः वह मन ही मन कहता है कि–

अन्वय – कार्यारम्भ विधेः अविधेयतां विमृशतः, अपि च कौटिल्यस्य कुटिलां मति प्रचिन्तयतः। अपि च मत् कृत्यानां निकामम् उपग्रहे विहिते इह इदं कथम् इति उन्निद्रस्य मम अनिशं निशा प्रयाति।

अर्थ – कार्य के प्रारम्भ से लेकर भाग्य की प्रतिकूलता के विषय में सोचते हुए तथा चाणक्य की कुटिल बुद्धि के विषय में सोचते हुए तथा मेरे कार्यों का पूर्णतः निरोध हो जाने पर, कार्य की असफलता किस प्रकार हुई इस प्रकार जागते हुए निरन्तर रात्रि व्यतीत होती है।

विशेष –

1. विधेरविधेयताम् –वि+धा+यत् कमणि विधेयः संसार में सभो कुछ भाग्य के आधीन है।
2. उपग्रहे – निरोध।
3. अनिशम् अविद्यमाना निशा यस्मिन् कमणि तत् यथा तथा
4. समुच्चयालंकार है
5. हरिणी छंद है। नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

व्याख्या

कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयस्तस्य विस्तारमिच्छ–
न्बीजानां गर्भितानां फलमति गहनं गूढमुद्भेदयंश्च।
कुर्वन्बुद्ध्या विमर्शं–प्रसृतमपि पुनः संहरन्कार्यजातं
कर्ता वा नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा।। श्लोक 4/3

प्रसंग – प्रथम श्लोक के प्रसंगानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में नाटककार विशाखदत्त ने नाटक निर्माण में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन किया है तथा श्लेषालंकार के माध्यम से राक्षस के द्वारा राजनीतिज्ञ के मन का दुःख वर्णित किया है।

अन्वय – आदौ तनुमपि कार्योपक्षेपं रचयन् तस्य विस्तारं इच्छन् गर्भितानां च बीजानाम् अतिगहनं गूढं फलं उद्भदयन्। बुद्ध्या विमर्शं कुर्वन्, प्रसृतम् अपि कार्यजातं पुनः संहरन्

नाटकानां कर्ता ;पक्षान्तरेद्ध वा आदौ तनुमपि कार्येपक्षेपं रचयन्, तस्य विस्तारम् इच्छन्, गर्भितानां च बीजानाम–अतिगहनं गूढं फलं उद्भदयन्, बुद्धया विमर्शं कुर्वन्, प्रसृतं अपि कार्यजातं पुनः संहरन् अस्मद्विधः वा इमं क्लेशम् अनुभवति।

अर्थ – नाटककार के पक्ष में – सर्वप्रथम मुखसन्धि में अपने कार्य का स्वल्प रूप स्थापित कर (प्रतिमुखसन्धि में) कार्य के विस्तार को चाहता हुआ, बीज के गभ में स्थित गूढ़ फल को (गभ सन्धि में) खोजता हुआ और उस बीज का (विमर्शसंधि में) अनुसंधान करता हुआ, यत्र तत्र फैले हुए कार्य समूह को (निर्वहण संधि में) प्रयोजन के लिए इकठ्ठा करता हुआ नाटकों का निर्माण करने वाला ।

2. राजनीतिकार के पक्ष में – प्रारम्भ में थोड़े भो अभोष्ट कार्य के उपाय (सामादि) को करता हुआ (बीच बीच में) इस प्रारम्भ किये गये कार्य के विस्तार को चाहता हुआ, गुप्त अत्यन्त गहन साध्य को प्रकट करता हुआ बुद्धि के द्वारा विस्तार करता हुआ, विस्तार से फैले कार्यों को पुनः समेटता हुआ राजनीतिज्ञ रात्रि जागरण के दुःख को अनुभव करता है।

विशेष –

1. इस श्लोक में श्लेष द्वारा एक अर्थ में नाटककार द्वारा संधि नियमों के आधार पर नाटक का निर्माण तथा दूसरे अर्थ में राजनीतिज्ञ द्वारा सामादि उपायों से राजनीति के कार्यव्यापार की चर्चा है।
2. कार्योपक्षेपम् – कार्य का उपक्षेप। चाणक्य का कार्योपक्षेप प्रथम अंक में तथा राक्षस का कार्योपक्षेप द्वितीय अंक में किया गया है।
3. इस में बीज–बिंदु–पताका–प्रकरी और कार्य पाँच अर्थप्रकृतियों तथा प्रारम्भ – प्रयत्न आप्त्याशा नियताप्ति व फलागम इन पाँच अवस्थाओं के संयोग से मुख प्रतिमुख, गभ,अविमर्श, निर्वहण पाँच संधियों का वर्णन है।
4. श्लेष व दीपक अलंकार है।
5. स्रग्धरा छंद है।

व्याख्या

राज्ञां चूड़ामणीन्दु द्युतिखचितशिखे मूर्ध्नि विन्यस्तपादः
स्वैरेवोत्पाद्यमानं किमिति विषहते मौर्य आज्ञाविघातम्।
कौटिल्यः कोपनोऽपि स्वयमभिचरणज्ञातदुःखप्रतिज्ञो
दैवात्तीर्णप्रतिज्ञः पुनरपि न करोत्यायतिग्लानिभीतः।। 4/12

प्रसंग – प्रथम श्लोक के प्रसंगानुसार

संदभ – चतुर्थ अंक में शकटदास, मलयकेतु, भागुरायण व राक्षस का परस्पर वार्तालाप हो रहा है तथ शकटदास इस श्लोक में कहता है कि चन्द्रगुप्त अपनी आज्ञा का उल्लंघन करने वाले को सहन नहीं करेगा तथा चाणक्य पुनः प्रतिज्ञा नहीं करेगा।

अन्वय – चूड़ामणीन्दुद्युतिखचितशिखे राज्ञां मूर्ध्नि विन्यस्तपादः मौर्यः स्वैः एव उत्पाद्यमानम् आज्ञाविघातं किमिति विषहते। स्वयम् अभिचरणज्ञातदुःखप्रतिज्ञः दैवात् तीर्णप्रतिज्ञः कोपनः अपि कौटिल्यः आयतिग्लानिभोतः पुनः अपि न करोति।

अर्थ – राजाओं की चन्द्रोपम चूड़ामणियों की कांति से परिपूर्ण शिखा वाले शिर पर पैर रखने वाला वह चन्द्रगुप्त मौर्य अपने लोगों द्वारा आज्ञा के उल्लंघन को कैसे सहन कर सकता है? दूसरी और क्रोधी चाणक्य जिसने प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए महान कष्ट देखा है, संयोग वश जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी है, भविष्य में प्रतिज्ञा के पूर्ण न होने के भय से पुनः प्रतिज्ञा नहीं कर सकता।

विशेष – अभिचरण – शत्रु के विनाश के लिए मंत्रों तंत्रों का प्रयोग करना।

प्रस्तुत श्लोक में स्रधरा छंद है।

व्याख्या

आविर्भूतानुरागाः क्षणमुदयगिरेरुज्जिहानस्य भानोः
पर्णच्छायैः पुरस्तादुपवनतरवो दूरपाश्वेव गत्वा।
एते तस्मिन्निवृत्ताः पुनरपरगिरिप्रान्तपर्यस्तबिम्बे,
प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः। श्लोक 4/21

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस अस्त होते हुए सूर्य को देखकर कहता है कि अनुचर अभ्युदय वाले स्वामी का तो अनुगमन करता है परन्तु अवनति होने पर उसे छोड़ देता है।

अन्वय – क्षणम् आविभ्तानुरागाः एते उपवनतरवः उदयगिरेः उज्जिहानस्य भानोः पुरस्तात् पर्णच्छायैः आशु एव दूरं गत्वा पुनः अपरगिरि प्रान्तपर्यस्तबिम्बे तस्मिन् निवृत्ताः, प्रायः सेवामानाः भत्या प्रचलितविभवं स्वामिनं त्यजन्ति।

अर्थ – क्षण भर के लिए उत्पन्न अनुराग वाले आश्रम के वृक्ष उदयाचल से उदय होते हुए सूर्य के सम्मुख पल्लवों की छाया से शीघ्र ही दूर जाकर पुनः अस्ताचल के प्रान्त भाग पर (सूर्य) बिम्ब के लटकते हुए हो लौट जाते हैं। प्रायः अपने सेवनीय स्वामी के भो वैभवहीन हो जाने पर सेवक उन्हें छोड़ दिया करते हैं।

विशेष –

1. उज्जिहानस्य उद्+हा+शानच् (प्रत्यय)
2. उत्प्रेक्षालंकार है।
3. अन्तिमपंक्ति में विशेष का सामान्य द्वारा समर्थन में अर्थान्तरन्यास अलंकार हैं
4. स्रग्धरा छंद है।

15.3 पञ्चम अंक का सारांश, व्याख्यायें

पञ्चम अंक में राक्षस व मलयकेतु के बीच फूट के जो बीज बोये गये थे वह फूट इस अंक में पूर्ण हो गयी है। चाणक्य की नीति को प्रकट रूप से उद्देश्य की ओर ले जाने वाले एक अंक को 6 भागों में विभक्त किया गया है।

इसमें प्रवेशक से पूर्व व भविष्य की सभो सूचनायें प्राप्त होती है। राक्षस व मलयकेतु में फूट डल चुकी है तथा मलयकेतु को विश्वास हो गया है उसके पिता पर्वतेश्वर को राक्षस ने विषकन्या से मरवाया है। कुसुमपुर के पास शिविर में सिद्धार्थक बिना आज्ञापत्र के है, उसके पास एक पत्र है, यह वही पत्र है जो चाणक्य ने प्रथम अङ्क में शकटदास से लिखवाया था और राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर दिया था। लेख के विषय में न बताने पर पीटे जाने पर सिद्धार्थक की बगल से आभ्षणों की पेटी गिर जाती है। पेटी में वह आभ्षण है जो मलयकेतु ने कञ्चुकी के हाथ राक्षस के पास भजे थे। सिद्धार्थक बताता है कि यह पत्र लेकर राक्षस ने उसे चन्द्रगुप्त के पास भजा है। मलयकेतु राक्षस को विश्वासघाती समझता है तथा राक्षस के किसी स्पष्टी करण को मानता। राक्षस समझ जाता है कि चाणक्य ने उसके प्रति बहुत बड़ा षड्यन्त्र रचा है तथा मलयकेतु यह निष्कष निकालता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त से मिलकर उसके प्रति षड्यन्त्र रच रहा है। भागुरायण मलयकेतु को कुसुमपुर पर आक्रमण करने का सुझाव देता है तथा राक्षस पूर्णतः एकाकी व निराश हो जाता है आर अन्त में अपने एक मात्र प्रिय मित्र चन्दनदास को मृत्यु के मुख से छुड़ाने की योजना बनाता है।

पञ्चम अंक की महत्त्वपूर्ण व्याख्यायें

व्याख्या

मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगमाभावगहना
मुहुः सम्पूणाङ्गी मुहुरतिकृशा कार्यवशतः।
मुहुर्नश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफले–
त्यहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविदः।।5/3

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस के पञ्चम अंक से लिया गया है।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस व मलयकेतु के मध्य फूट पड़ जाने के बाद भागुरायण कौटिल्य की नीति की प्रशंसा करते हुए कहता है कि चाणक्य की नीति की विचित्रता आश्चर्य जनक है।

अन्वय – मुहुः लक्ष्योद्भदा, मुहुः अधिगमाभावगहना मुहुः कार्यवशतः अतिकृशा मुहुः नश्यद्बीजा मुहुः सम्पूणाङ्गी मुहुरपि बहुप्रापितफला नयविदः नीतिः नियतिरिव चित्राकारा इत्यहो।

अर्थ – नितिज्ञ चाणक्य कि नीति नियति के समान अति विचित्र है। कभो लगता है कि इसका लक्ष्य स्पष्ट है, कभो वास्तविक लक्ष्य का ज्ञान न होने के कारण अत्यधिक गूढ़, कभो कार्यवशात् अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है। कभो सम्पूर्ण अंगों वाली कभो मूल लक्ष्य से भष्ट हो गयी, कभो सम्पूर्ण परिणामों को सफलतापूर्वक प्राप्त कराने वाली चाणक्य की नीति सचमुच नियति के समान विचित्र है।

विशेष – इस श्लोक में नाटककार विशाखदत्त ने नाट्यशास्त्र की पाँच सन्धियों का वर्णन किया है यथा–

1. (1) मुहुर्लक्ष्योद्भदा – मुखसन्धि (2) मुहुरधिगभाभावगहना – मुहुरतिकृशा कालवशात् –

   प्रतिमुखसन्धि, (3) मुहूर्तनश्यद्बीजा–गभसन्धि, (4) मुहु सम्पूणाङ्गी–विमर्शसंधि (5) मुहुरपि बहुप्रापित काले –निर्वहण संधि।
2. अप्रस्तुत प्रशंसालंकार
3. शार्दूलविक्रीडितम् छंद ।

व्याख्या

भक्त्या नन्दकुलानुरागदृढया नन्दान्वयालम्बिना
किं चाणक्यनिराकृतेनकृतिना मौर्येण संधास्यते।
स्थैर्यं भक्तिगुणस्य वाधिगणयन्किं सत्यसन्धो भवे–
दित्यारूढकुलालचक्रमिव मे चेतश्चिरं भ्राम्यति।। 5/5

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में मलयकेतु को राक्षस के प्रति सन्देह हो जाता है तथा राक्षस के प्रति संकल्प विकल्प से युक्त उसकी बुद्धि कुछ भो निर्णय करवाने में असमर्थ है।

अन्वय – नन्दान्वयालम्बिना चाणक्यनिराकृतेन कृतिना मौर्येण नन्दकुलानुरागदृढया भवत्या किं
सन्धास्यते। किं वा भक्तिगुणस्य स्थैर्यम् अधिगणयन् सत्यसन्धो भवेत् इति आरूढ कुलालचक्रम् इव मे चेतः चिरं भाम्यति।

अर्थ – नन्दवंश में अनुराग युक्त दृढ़ भक्ति के कारण नंद वंश से सम्बंध रखने वाले, चाणक्य को अपने सचिव पद से हटाने वाले कृतज्ञ उस चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ संधि कर लेगा या मेरी भक्ति की स्थिरता को देखकर अपने वचन (चन्द्रगुप्त के स्थान पर मुझे राजा

बनाना) को सिद्ध करेगा। यह सोचकर मेरा चित्त कुलाल के चक्के पर चढे हुए पात्र की तरह चक्कर लगा रहा है।

विशेष – आरूढकुलचकम् इव में उत्प्रेक्षालंकार । शार्दूलविक्रीडितम् छंद ।

व्याख्या

साध्ये निश्चितमन्वयेन घटितं बिभ्रत् सपक्षे स्थितिं
व्यावृत्तञ्च विपक्षतो भवति यत्, तत् साधनं सिद्धये।
यत् साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयोः पक्षे विरुद्धञ्च यत्
तस्याङ्गीकरणेन वादिन इव स्यात् स्वामिनो निग्रहः।। श्लोक 5/0

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदभं – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस अपनी सेना के विषय में सोच रहा है कि हमारी सेना में शत्रु के गुप्तचर आदि भरे है अतः हमारा पराभव निश्चित है। इस श्लोक के दो अर्थ है एक वादी पक्ष में दूसरा स्वामी के पक्ष में।

अन्वय – यत् साध्ये निश्चितम् अन्वयेन घटितम्, सपक्षे स्थिति विभत्, विपक्षतः च व्यावृत्तं भवतितत्
साधनं सिद्धये। यत् स्वयमेव साध्यम् उभयोः तुल्यम्, यत् च पक्षे विरूद्ध तस्य अङ्गीकरणेन स्वामिनः इव वादिनः निग्रहः स्यात्।

अर्थ – 1. (वादी पक्ष में) जो साध्य (वह्नि में) निश्चित रुप से है। अन्वय व्याप्ति से विशिष्ट है। सपक्ष (महानसादि) में अपनी स्थिति रखता है। विपक्ष (जलाशय आदि) से बिल्कुल विपरीत होता है वह
साधन (घूमादि) अनुमान की सिद्धि में सहायक होता है। जो साधन स्वयं साध्य हो, सपक्ष और विपक्ष में समान रूप से रहता हो, पक्ष में विरुद्ध हो ऐसे साधन (हेत्वाभास) का ग्रहण करने से स्वामी की तरह वादी का पराभव निश्चित है।

2. स्वामी पक्ष में – वह सेना विजय में सहायक होती है, जो शत्रु को जीतने के कार्य में तत्पर हो, अपने पक्ष के लोगों के साथ विश्वास रखती हो, अपने पक्ष व शत्रु पक्ष के लोगों के साथ समान व्यवहार रखती हो। अपने स्वामी से विरोध रखती हो, ऐसी सेना को साथ रखने वाले स्वामी की वादी की तरह पराजय निश्चित है।

विशेष – उपर्युक्त श्लोक में राक्षस ने अनुमान प्रमाण को सिद्ध करते हुए सेना की सफलता की चर्चा की है। यह नाटककार विशाखदत्त को न्याय शास्त्र सम्बंधी ज्ञान को प्रकट करता है। यहाँ सभो शब्द द्वयर्थक है–

1. साध्ये–पक्ष में, शत्रुओं पर विजय प्राप्ति के कम में साध् धातु + ण्यत् प्रत्यय।
2. अन्वयेन – अन्वय–व्याप्ति पक्ष में, कुल परम्परा से।
   अनु+इ+अत्र अन्वय
3. सपक्षे – सपक्ष में (महानसादि में) राजा के पक्ष में।
4. विपक्षतः – विपक्ष से (जलाशय से), शत्रु से
5. साधनम् – हेतु, सेना।
6. सिद्धये–सिद्धि के लिए (अनुमिति के लिए) कार्य की सिद्धि के लिए
7. इसमें श्लेषानुप्राणित उपमा है।
8. शार्दूलविक्रीडितम् छन्द है।

व्याख्या

किं गच्छामि तपोवनं न तपसा शाम्येत्सवैरं मनः
किं भर्तृननुयामि जीवति रिपौ स्त्रीणामियं योग्यता।
किं वा खड्गसखः पताम्यरिबले नैतच्च युक्तं भवे–
त्त्वेतश्चन्दनदासमोक्षरभसं रुन्ध्यात्कृतघ्नं न चेत्।। श्लोक, 5/24

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – इस श्लोक में राक्षस अपनी कूटनीति के विफल हो जाने तथा सभो मित्रों को मृत्यु को प्राप्त हो जाने से बहुत दुःखी है अतः राक्षस कहता है कि –

अन्वय – किं तपोवनं गच्छामि, तपसा सवैरं मनः न शाम्मेत् रिपौ जीवति किं भर्तृन् अनुयामि, इयं स्त्रीणां योग्यता। वा खड्गसखः किम् अरिबले पतामि, एतत् च युक्तं न, चन्दनदास मोक्षरभसंचेतः रुन्ध्यात्, चेत् न कृतध्नं भवेत्।

अर्थ – क्या मैं तपोवन चला जाऊँ? तपस्या से वैरयुक्त मन शान्त नहीं होगा। शत्रु के जीवित रहने पर क्या स्वामी (नन्द) का अनुसरण करूँ? यह स्त्रियों की योग्यता है अर्थात् स्त्रियाँ ही पति का अनुसरण करती है। अथवा तलवार है सहायक जिसकी ऐसा मैं शत्रु सेना पर गिरूँ, यह ठीक नहीं है। चन्दनदास को छुड़ाने के लिए शीघ्रता वाला मेरा मन रोक रहा है यदि न रोके तो कृतध्न होगा। इस प्रकार इतने विकल्पों के बाद अपने प्रिय मित्र चन्दनदास को छुड़ाना ही राक्षस का एक मात्र कत्तव्य कम शेष रहा है।

विशेष :

1. इसमें राक्षस की निराश मनः स्थिति का वर्णन है।
2. प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है।
3. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

15.4 षष्ठ अंक का सारांश

इस अंक में चाणक्य ने शत्रु सेना पर अधिकार कर लिया है। मलयकेतु ने राक्षस को शिविर से निकाल दिया है। राक्षस पुनः पाटलिपुत्र आ गया है। इस अंक में एक पुरूष फाँसी लगाने जा रहा है वह बताता है कि उसका मित्र विष्णुदास जल कर आत्म हत्या करने जा रहा है क्योंकि उसके मित्र चन्दनदास को फाँसी दी जा रही है। चन्दनदास को फाँसी अपने मित्र राक्षस के परिवार को छिपाने के लिए दी जा रही है। वह शस्त्र लेकर जल्लादों के सामने जाने के लिए राक्षस को मन करता क्योंकि शस्त्र देखकर जल्लाद चन्दनदास को शीघ्र मौत के घाट उतार देगे। राक्षस चाणक्य की कूटनीति के विषय में सोचता है कि शकटदास का उसके पास आना शत्रु की किस योजना का अङ्ग है? उसने मेरे विरोध में कूटपत्र क्यों लिखा? इसी उहापोह में राक्षस को कोई रास्ता नज़र नहीं आता और वह अपने प्रिय मित्र चन्दनदास को बचाने के लिए आत्मसमर्पण के लिए तैयार हो जाता है। इस प्रकार छठा अंक समाप्त हो जाता है।

षष्ठ अंक की महत्त्वपूर्ण व्याख्यायें

व्याख्या

यो नष्टानपि बीजनाशमधुना शुश्रूषते स्वामिन–
स्तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ संधास्यते राक्षसः।
एताबद्धि विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन नालोचितं
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति।। 6/8

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त लिखित मुद्राराक्षस नाटक से लिया गया है।

संदर्भ – राक्षस भाग्य के विपरित होने का परिणाम ही मानता है कि मलयकेतु राक्षस की वफादारी पर संदेह करता है।

अन्वय – यः अधुना अपि बीजनाशं नष्टान् स्वामिनः शुश्रूषते असौ राक्षसः अक्षतः तेषाम् वैरिभिः कथं सन्धास्यते। हि एतावत् विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन न आलोचितं अथवा दैवेन उपहतस्य सर्वा बुद्धिः विपर्यस्यति।

अर्थ – मलयकेतु के द्वारा संदेह किये जाने पर राक्षस सोचता है कि उसने यह भो नहीं सोचा कि राक्षस समूल नष्ट अपने आश्रयदाता की मृत्यु के बाद भो उसकी सेवा में लगा हुआ है, वह राक्षस क्या अपने शत्रुओं के साथ, स्वस्थ रहते हुए संधि कर लेगा? इसपर उस विवेक शून्य मलेच्छ ने थोड़ा भो विचार नहीं किया अथवा भाग्य के द्वारा मारे गये व्यक्ति की बुद्धि पहले ही पलट जाती है।

विशेष :

1. म्लेच्छ – भाषान्तरं भाषते इति म्लेच्छः। जिसकी भाषा भिन्न हो।
2. बीजनाशं नष्टान् – बीज भो नष्ट हो जाना, समूलनाश।

   बीजानि इव नष्टा इति बीज + नश् + 0मुल्।
3. विपर्यस्यति – वि+परि+अस्+लट् (तिप्)
4. अंतिम पंक्ति सूक्ति है। राक्षस भाग्य पर विश्वास करता है तथा कहता है कि भाग्य विपरीत होता है तो व्यक्ति की बुद्धि पहले ही विपरीत हो जाती है।
5. अर्थान्तरन्यासालंकार और
6. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या

विपर्यस्तं सौधं कुलमिव महारम्भरचलं
सरः शुष्कं साधोर्हृदयमिवनाशेन सुहृदाम्।
फलैर्हीना वृक्षा विगुणनृपयोगादिव नया–
स्तृणैश्छन्ना भूमिर्मतिरिव कुनीतैरविदुषः।। 5/11

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदभं – पराजय के बाद राक्षस बहुत ही निराश है तथा निराशा व सभो अपने द्वारा साथ छोड़ दिये जाने पर सोचता है अब कहाँ जाये? नन्दवंश के विनाश के बाद उसे सारा वातावरण ही अरमणीय लगता है।

अन्वय – महारम्भस्वलं सौधं महारम्भरचलं कुलं इव विपर्यस्तम्, सरः सुहृदां नाशेन साधोः हृदयम् इव शुष्कम्। वृक्षाः विगुणनृपयोगात् नयाः इव फलैः हीनाः, भ्मिं कुनीतेः अविदुषः तृणैः छन्ना।

अर्थ – वास्तुकला के अनुरूप विशाल यह उद्यान वैसे ही नष्ट हो गया है जैसे (महारम्भस्वलं) धर्मादि संस्कार युक्त कुल संस्कारहीन हो जाने पर अस्त–व्यस्त हो जाता है तालाब प्रिय मित्र के विनाश होने पर सज्जनों के हृदय की तरह सूख गया है। वृक्ष फल रहित हो गये हैं जैसे गुणहीन राजाओं की नीति फलविहीन हो जाती है। तृणों से व्याप्त यह भ्मि वैसी दिखायी दे रही ह जैसे कुनीति का आचरण करने से विद्वानों की बुद्धि हो जाती है।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में जीर्ण उपवन की तुलना राजा ने नष्ट हुए नंदवंश से की है।

1. महारम्भरचनम्–यह सौधम् व कुलम् दोनों का विशेषण है।
2. शुष्कम् – शुष + कः प्रत्यय

3. कुनीतेः – कुत्सिता अस्य नीति रिति तस्य।

   नी+क्त (प्रत्यय) भागुरायणादि के कपट निर्देशों द्वारा।

4. मालोपमालंकार

5. शिखरणी छंद

व्याख्या

पितॄन्पुत्राः पुत्रान्परवदभिहिंसन्ति पितरो
यदर्थं सोहार्दं सुहृदि च विमुञ्चन्ति सुहृदः।
प्रियं भोक्तुं तद्यो व्यसनमिव सद्यो व्यवसितः
कृताथोऽयं सोऽर्थस्तव सति वणिक्त्वेऽपि वणिजः।। 6/17

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में धन की महत्ता बताते हुए राक्षस कहता है कि धन के लिए व्यक्ति कुछ भो कर लेता है। धन की महत्ता के आगे लोग रिश्तों की परवाह नहीं करते परन्तु विष्णुदास अपने मित्र चन्दनदास के लिए सारा धन दांव पर लगा देता ह।

अन्वय – यदभः पुत्राः पितॄन्–, पितरः पुत्रान् परवत् अधिहिंसन्ति, यदर्थः च सुहृदः सुहृदि सौहार्दं विमुञ्चन्ति। तत् श्रियं यः व्यसनमिव सद्यः भोक्तं व्यवसितः, सः अयम–अर्थः वणिजः तव वणिक्त्वे सति अपि कृतार्थः।

अर्थ – राक्षस कहते है कि अर्थ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अर्थ के लिए पुत्र पिताओं को, पिता पुत्रों को शत्रु के समान मार डालते है। धन के लिए मित्र मित्रता को छोड़ देते है परन्तु हे विष्णुदास तुम प्रिय धन को अपने मित्र के लिए व्यसन के समान छोड़ने को तैयार हो गये हो अतः तुम्हारा यह धन तुम्हारे वणिक् होने पर भो सफल हो गया है।

विशेष

1. उपर्युक्त श्लोक में धन का महत्व तथा समाज में यह धारणा कि बनिया धन नहीं खर्च करता की ओर इंगित किया है।

2. सौहार्दम् – सुहृदः भावः सौहार्दम्। सुहृद्+अण्

3. वणित्वेऽपि – अनादर में सप्तमी विभक्ति।

4. विरोधालंकार है

5. शिखरिणी छंद।

व्याख्या

यदि च शकटो नीतः शत्रोर्मतेन ममान्तिकं
किमिति निहतः क्रोधावेशाद्वधाधिकृतो जनः।
अथ न कृतकं तादृक्कष्टं कथं नु विभावये –
दिति मम मतिस्तर्कारूढा न पश्यति निश्चयम्।। 6/20

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदभं – प्रस्तुत श्लोक में चाणक्य की दुर्गम नीति को समझने में असमर्थ राक्षस के मन में तरह–तरह क भाव आ रहे है। वह शकटदास के विषय में सोच रहा है कि उसने पत्र क्यों लिखा? किस की अनुमति से उसे मिलने आया तथा वध करने वाले व्यक्ति को उसने क्यों मारा? यह सभो प्रश्न राक्षस के मन में शकटदास के लिए उठ रहे है।

अन्वय – यदि शत्रोः मतेन शकटः मम अन्तिकं नीतः क्रोधावेगात् वधाधिकृतः जनः किमिति निहतः। अथ कृतकं न, तादृक् कष्टं कथं नु विभावयेद् इति तर्कारूढ़ा मम मतिः निश्चयं न पश्यति।

अर्थ – राक्षस सोच रहा है कि यदि शकटदास शत्रु ;चाणक्यद्ध के कहने पर मेरे पास लाया गया तो पुनः वध के लिए नियुक्त जल्लादों को क्रोध के आवेश में उसने क्यों मारा? यदि शकटदास का मेरे पास पहुँचना छल नहीं था तो उसने वह कपट लेख लिखकर मुझे कष्ट में क्यों डाला? इस प्रकार मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा। मेरी बुद्धि तर्क पर चढ़ी हुई है, कुछ निश्चय कर पाने में असमर्थ है।

विशेष – राक्षस की बुद्धि विविध विकल्पों के कारण कुछ भो निश्चय कर पाने में असमर्थ है।
काव्यलिंग अलंकार व हरिणी छंद है

व्याख्या

नायं निस्त्रिंशकालः प्रथममिह कृते घातकानां विघाते
नीतिः कालान्तरेण प्रकटयति फलं किं तया कार्यमत्र।
औदासीन्यं न युक्तं प्रियसुहृदि गते मत्कृतामेव धीरां
व्यापत्तिं ज्ञातमस्य अहम् इमां निष्क्रयं कल्पयामि। श्लोक 6/21

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस राजनीति के विविध पहलुओं पर विचार करते हुए कहता है कि यदि वह शत्रुओं से विरोध करता है तो उसका मित्र चन्दनदास मार दिया जायेगा अतः यह समय विरोध का नहीं है।

अन्वय – इह प्रथमं घातकानां विधाते कृते अयं निस्त्रिंशकालः न, नीतिः कालान्तरेण फलं प्रकटयति तया अत्र किं कार्यम्। प्रिय सुहृदि मत्कृताम् एवं घोरां व्यापत्तिं गते औदासीन्यं न युक्तं ज्ञातम् अहम् स्वतनुम–अस्य निष्क्रयं कल्पयामि।

अर्थ – चन्दनदास के मारने वालों का विरोध करने पर वह पहले ही मार दिया जायेगा। इस समय राजनीति प्रयोग भो उचित नहीं है क्योंकि राजनीति कालान्तर में फल देती है अतः समय की प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। मेरा मित्र मेरे कारण विपत्ति में फंसा है अतः यहाँ उदासीन नहीं हुआ जा सकता। अतः चन्दनदास को बचाने के लिए मैं अपने शरीर को ही मूल्य रुप में समझता हूँ। इस प्रकार अपने मित्र के लिए राक्षस स्वयं का समर्पण कर देता है।

विशेष :

1. कालान्तरेण – अपवर्गेतृतीया इति तृतीया।
2. निष्क्रयम् – निस+क्री+अच् करणे निष्क्रयः तम्।
3. काव्यलिंग अलंकार।
4. स्रग्धरा छंद।

15.5 सप्तम अंक का सारांश, व्याख्यायें

प्रथम अंक में चाणक्य की राजनीति का बीजन्यास हुआ था उसका इस अक में समाहार है। प्रथम अंक में राक्षस का परिवार नहीं सौंपने के कारण चन्द्रगुप्त ने चन्दनदास को फांसी की आज्ञा दी थी। जब चन्दनदास को फाँसी दी जा रही होती है तो राक्षस मञ्च पर उपस्थित होता है।

मञ्च पर राक्षस को देख चाणक्य कहता है कि यह महात्मा राक्षस है जिसने चन्द्रगुप्त व मुझे परेशान कर रखा था चाणक्य का राक्षस के प्रति सम्मान है तथा वह बताता है कि सिद्धार्थक द्वारा शकटदास से अनजाने में वह कूट पत्र उसने लिखवाया था, उसे इस विषय में कुछ नहीं पता। चाणक्य संक्षेप में अपनी राजनीति का वर्णन करता है। चन्द्रगुप्त राक्षस को देखने आता ह परन्तु वह इस बात के लिए लज्जित है कि चाणक्य ने उसे बिना युद्ध का मौका दिये शत्रुओं को जीत लिया है। अंत में चाणक्य राक्षस से कहता है कि तुम चन्दनदास का जीवन चाहते हो तो 'अमात्य पद' को स्वीकार करो। राक्षस अमात्य पद को ग्रहण कर लेता है तथा चन्दनदास को नगर श्रेष्ठी बना दिया जाता है। इस प्रकार नन्दवंश के नाश तथा राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाने की जो प्रतिज्ञा चाणक्य ने की थी वह पूर्ण होती है तथा भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

सप्तम अंक की महत्त्वपूर्ण व्याख्यायें

व्याख्या

दुष्कालेऽपिकलावसज्जनरुचौ प्राणैः परं रक्षता
नीतं येन यशस्विनाऽतिलघुतामौशीनरीयं यशः।
बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना
पूजार्होऽपि स यत्कृते तव गतोवध्यत्वभेषोऽस्मि सः।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्तप्रणीत मुद्राराक्षस नाटक के सप्तम अंक से उद्धृत है।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस अपने मित्र चन्दनदास की प्रशंसा करता है कि कलयुग में चन्दनदास जैसा व्यक्ति मिलना कठिन है जो अपने मित्र की रक्षा के लिए अपने प्राणों की भो परवाह न करें।

अन्वय – असज्जनरुचौ दुष्काले कलौ अपि प्राणैः परै रक्षता यशस्विना येन औशीनरीयं यशः अतिलघुतां क्लिष्टम् पूजार्हः अपि सः यत्कृते तव शत्रुत्वं गतः, सः एषः अस्मि।

अर्थ – राक्षस कहता है कि असत् लोक प्रवृत्ति वाले पापी कलियुग में भो प्राणों से दूसरों की रक्षा करते हुए यशस्वी जिस चन्दनदास ने राजा शिवि सम्बंधी यश को भो अत्यन्त तुच्छ बना दिया है। विशुद्ध आत्मा वाले इस चन्दनदास ने बुद्धों के चरित्र को श्रेष्ठ आचरणों से तिरस्कृत कर दिया है। पूजा के योग्य यह (चन्दनदास) जिस कारण से तुम्हारी शत्रुता को प्राप्त हुआ है, वह मैं (राक्षस) उपस्थित हूँ।

विशेष –

1. औशीनरीयं यशः – इसमें सतयुग में उत्पन्न उशीनर पुत्र राजा शिवी का उल्लेख है जिसने कबूतर की जान बचाने के लिए अपने शरीर का दान कर दिया था। उशीनर + अञ् प्रत्यय (अपत्यर्थ में)
2. बुद्धानामपि चेष्टितं क्लिष्टम् – उस समय भारत में बौद्ध धर्म के अनुनायियों का अत्यन्त आदर था।
3. एषोऽस्मि सः – अपने मित्र के राक्षस का आत्मसमर्पण है।
4. क्लिष्ट – क्लिष्+क्त।
5. व्यतिरेक व दीपकालंकार तथा
6. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या

केनोत्तुङ्गशिखाकलापकपिलो बङ्गः पटान्ते शिखी?
पाशैः केन सदागतेरगतिता सद्यः समासादिता।

केनानेकपदानवासितसटः सिंहोऽर्पितः पञ्जरै?
भीमः केन चलैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णोर्णवः।। श्लोक 7/6

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में चाणक्य यह बताना चाहता है कि राक्षस को वश में करना अत्यन्त कठिन था। किसने महाशूर साहसी, विपुल बुद्धि वाले राक्षस को वश में किया है। कम में विश्वास रखने वाला चाणक्य यह स्वीकार करता है कि भाग्य का साथ दिये बिना राक्षस के वश में करना कठिन था।

अन्वय – उतुङ्गशिखाकलापकपिलः शिखी केन पटान्ते बद्धः, केन पाशैः सदागतेः अगतिता सद्यः समासादिता। केन अनेकपदानवासितसटः सिंहः पञ्जरे अर्पितः नैकनक्रमकरो च भोमः अर्णवः केन दोर्भ्यां प्रतीर्णः।

अर्थ – राक्षस को वश में करना कठिन कार्य था अतः चाणक्य कहता है कि किसने उठती ज्वालाओं से कपिश वर्ण की अग्नि को अपने कपड़े में बांध रखा है? किसने रस्सी से बांधकर सदागति (हवा) की गति को रोक दिया है? किसने हाथियों के मदजल से सुगन्धित अयाल (सटा) वाले सिंह को पिञ्जरे में बंद कर रखा है? तथा किसने चञ्चल मगरमच्छ, घड़ियाल आदि से भरे विशाल समुद्र को बाहुओं के बल पर पार करने का दुष्कर कम किया है।

विशेष –

1. राक्षस को वश में करना चाणक्य समुद्र पार करने जैसा दुष्कर कम मानते है।
2. दीपक अलंकार है।
3. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या

विगुणीकृतकार्मुकोऽपि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव।
स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः।। श्लोक 7/11

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदभं – प्रस्तुत श्लोक में बिना युद्ध से जीतने का श्रेय चन्द्रगुप्त अपने गुरु चाणक्य को देते है।

अन्वय – स्वपतोऽपि मम इव यस्य तन्त्रे कार्य जागरूकाः गुरवः जाग्रति, असौ विगुणीकृतकार्मुकः अपि भवि जेतव्यं जेतुं समर्थ एव।

अर्थ – इस श्लोक में चन्द्रगुप्त मन ही मन सोचता है कि सोते हुए भो (राज्यचिन्ता से विमुख) मेरे समान जिस राजा के राज्य में राजकार्य में सतत सावधान गुरु (चाणक्य के समान मंत्री) निरन्तर जागरूक रहते है, वह प्रत्यञ्चा से रहित धनुष वाला होता हुआ भो संसार के जीतने के योग्य शत्रु को भो जीतने में समर्थ होता है।

विशेष –

1. विगुणीकृतकार्मुकः – धनुष का प्रत्यञ्चा रहित होना।
2. जेतव्यं – जि+तव्यत् प्रत्यय
3. जेतुं ' जि+तुमुन् प्रत्यय।
4. गुरवो जाग्रति – चाणक्य नीति कुशल गुरु है जो हमेशा जागरूक रहते है।
5. कारणाभावे कार्योत्पत्ति अतः विभावनालंकार है।

व्याख्या

द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनोऽपि
नेतुर्यशस्विनि पदे नियतं प्रतिष्ठा।
अद्रव्यमेव भुवि शुद्धनयोऽपि मन्त्री
शीर्णाश्रयः पतति कूलज वृक्षवृत्त्या।। 7/14

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – चन्द्रगुप्त द्वारा राक्षस के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार करने पर राक्षस सोचता है कि यह चन्द्रगुप्त की विनम्रता है तथा इस विषय में चाणक्य यशस्वी है क्योंकि–

अन्वय – द्रव्यं जिगीषुम् अधिगभ्य जडात्मनः अपि नेतुः यशस्विनि पदे प्रतिष्ठा नियतम्। अद्रव्यम् एत्य शुद्धनयः अपि मन्त्री शीर्णाश्रयः इलजवृक्षवृत्या भवि पतति।

अर्थ – जीतने की इच्छा वाले राजा को पाकर जडात्मा नेता भो यश पाता है, यह निश्चित है। अकुशल राजा को पाकर नीतिकुशल मंत्री भो उस तरह पतित होता है, जैसे नदी के किनारे का वृक्ष जलाघात से आश्रयविहीन होकर पतित हो जाता है।

विशेष –

1. द्रव्यम्–श्रेय प्राप्ति वाला (यहाँ चन्द्रगुप्त की ओर संकेत है।)
2. अद्रव्यम् – यहाँ मलयकेतु की ओर संकेत है।
3. शुद्धनय – शुद्धनीति वाला राक्षस का स्वयं की ओर संकेत है।
4. शीर्णाश्रयः पतति – नदी के किनारे वाले वृक्ष जिस प्रकार गिर पड़ते हैं वैसे कमजोर राजा वाला अमात्य गिर जाता है।
5. अर्थान्तरन्यास अलंकार
6. वसन्ततिलका छंद है।

व्याख्या

नन्दस्नेहगुणाः स्पृशन्ति हृदयंभृत्योऽस्मि तद्विद्विषां
ये सिक्ताः स्वयमेव वृद्धिमगमंश्छिन्नास्त एव द्रुमाः।
शस्त्रं मित्रशरीररक्षणकृते व्यापारणीयं मया
कार्याणां गतयो विधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वं चिरात्। श्लोक 7/16

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस मन ही मन विचार करता है कि वह अपने विरोधी चाणक्य का अमात्य पद स्वीकार करने जा रहा है परन्तु उसके पास अपने मित्र की जान बचाने के लिए कोई रास्ता नहीं है।

अन्वय – नन्दस्नेहगुणाः हृदयं स्पृशन्ति, तद्विद्विषां भत्योऽस्मि, ये द्रुमाः स्वयं सिक्ताः एव वृद्धिम् अगमन् ते छिन्ना एव। मित्रशरीररक्षणकृते मया शरत्रं व्यापारणीयम्, कार्याणां गतयः चिरात् विधेरपि आज्ञाकरत्वं न यान्ति।

अर्थ – महाराज नन्द का स्नेह मेरे हृदय का स्पर्श कर रहा है और मैं उनके शत्रुओं का नौकर बन रहा हूँ जिन वृक्षों को अपने हाथों से सींचकर बढ़ाया है, उसी का उच्छेदन करना है। मित्र की रक्षा के लिए मुझे शस्त्र (मंत्रित्व पद) स्वीकार करना है। पूर्व जन्म के कर्मों की गतियाँ चिरकाल से विधाता की आज्ञाकारिता को प्राप्त नहीं होती है। अर्थात् विधाता भो कार्य की गति को नहीं समझ पाता फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है।

विशेष –

1. प्रस्तुत श्लोक की अंतिम पंक्ति सूक्ति है। कार्य की गति को विधाता स्वयं नहीं जानता अतः मनुष्य कैसे जान सकता है?
2. अर्थान्तरन्यासालंकार है।
3. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

15.6 पारिभाषिक शब्दावली

1. कञ्चुकी–राजा का विश्वास प्राप्त, रंगमहल का द्वारपाल।
2. वैतालिकौ – स्तुतिगान करने वाले, वैतालिक हमेशा दो होते हैं।

   वि‌ताल + ठक् प्रत्यय।
3. प्रकाशम् – सर्वश्राव्यं प्रकाशम् (मंच पर जो बात सबको) सुनाने के लिए कही जावें।
4. परिषद् – सामाजिक, दर्शक।
5. ऐभीं कृत्तिम् – गजासुर का चर्म है जिसे शिवजी ने ताण्डव नृत्य के समयधारण किया था।
6. प्रवेशक–भूत व भविष्य की सूचना देने वाला।
7. सचिवायत्तसिद्धि राजा – जो सचिव के प्रयत्न से राजा बनता है। चन्द्रगुप्त सचिवायत्तसिद्धि राजा है।
8. उज्जिहानस्य – उद्+हा (गतौ) + शानच् (कतरि) प्रयोग किया जाता है।
9. दुर्गपालः – जेलर। मंत्री मण्डल में सुरक्षा मंत्री था। कैदियों को मुक्त करना इसका दायित्व था।
10. भरतवाक्य – नाटक की समाप्ति पर भरत वाक्य का प्रयोग किया जाता है। भरत का अर्थ नट है और नट द्वारा सभी की समृद्धि की कामना की जाती है।
11. परिकल्पना – हाथी की पीठ पर प्रयुक्त होने वालो गद्दी।
12. विगुणीकृतकार्मुकः – धनुष का प्रत्यञ्चा से रहित होना।
13. अधोमुखानाम् – बाण जब तूणीर में रखे जाते है तो उनका मुख नीचे की ओर होता है।
14. परिवारः, परितार्यते अनेन इति परि+वृ+धञ् करणे। जो चारों ओर से घेरते हैं अर्थात् सेवक वर्ग।
15. जवनिका – यवनिका पर्दे को कहते है। उसका प्राकृत जवनिका है।
16. कुटुम्बिन्या – पुत्रवती गृहस्थिता नारी कुटुम्बिनी कहलाती है।
17. निस्त्रिंशः – तलवार जो नाप में तीन अंगुलियों से अधिक हो।

15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

1. मलयकेतु के मन में संशय के बीज बोने में सफल रहा–

   (अ) भागुरायण (ब) शकटदास

   (स) चाणक्य (द) सिद्धार्थक ( )

2. मलयकेतु को विश्वास हो गया है कि पर्वतेश्वर की मृत्यु करायी–

(अ) चाणक्य (ब) राक्षस

(स) चन्द्रगुप्त (द) कञ्चुकी ( )

3. विष्णुदास किस दुःख के कारण फांसी लगाने जा रहा है–

(अ) चन्दनदास को फांसी दिये जाने पर (ब) राक्षस को पकड़े जाने पर

(स) चाणक्य के भय से (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )

4. प्रथम अंक मे जो कूट पत्र लिखा गया था वह खुलासा होता है–

(अ) तृतीय अंक में (ब) चतुर्थ अंक में

(स) पञ्चम अंक में (द) सप्तम अंक में ( )

5. निम्न श्लोकों की व्याख्या कीजिये –

(अ) मम विमृशतः कार्यारम्भे विधेरविधेयता–
मपि च कुटिलां कौटिल्यस्य प्रचिन्तयतो मतिम्।
अपि च विहिते मत्कृत्यानां निकाममुपग्रहे
कथमिदमिहेत्युन्निद्रस्य प्रयात्यनिशं निशा।। श्लोक 4/2

(ब) साध्ये निश्चितमन्वयेन घटितं बिभ्रत् सपक्षे स्थिति
व्यावृत्तञ्च विपक्षतो भवति यत्, तत् साधनं सिद्धये।
यत् साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयोः पक्षे विरुद्धञ्च यत्
तस्याङ्गीकरणेन वादिन इव स्यात् स्वामिनो निग्रहः ।। श्लोक 5/0

6. राक्षस आत्म समर्पण के लिए तैयार हो जाता है–

(अ) विष्णुदास को बचाने के लिए (ब) चाणक्य के भय से

(स) चन्दनदास को बचाने के लिए (द) मंत्री बनने के लोभ से ( )

7. भरतवाक्य पढ़ा जाता है–

(अ) नाटक के प्रारम्भ में (ब) बीच में

(स) दृश्य विधान के अनुसार (द) नाटक की समाप्ति पर ( )

8. संस्कृत नाटकों से भिन्न मुद्राराक्षस की विशेषता है–

(अ) अंक विभाजन (ब) नांदी पाठ

(स) भरत वाक्य (द) दृश्य विधान ( )

9. निम्न श्लोकों की व्याख्या कीजिये–

(अ) विपर्यस्तं सौधं कुलमिव महारम्भस्वलं
सरः शुष्कं साधोर्हृदयमिवनाशेन सुहृदाम्।
फलैर्हीना वृक्षा विगुणनृपयोगादिव नया–
स्तृणैश्छन्ना भूमिर्मतिरिव कुनीतैरविदुषः।। 5/11

(ब) द्रव्यं जिगीषुमधिगभ्य जडात्मनोऽपि
नेतुर्यशस्विनि पदे नियतं प्रतिष्ठा।
अद्रव्यमेव भुवि शुनयोऽपि मन्त्री
शोर्णाश्रयः पतति कूलज वृक्षवृत्या।। 7/14

प्रश्नों के उत्तर –

1. (अ)
2. (ब)
3. (अ)
4. (स)
5. (अ) देखिये भाग सं. 15.2.1

   (ब) देखिये भाग सं. 15.3.3
6. (स)
7. (द)
8. (द)
9. (अ) देखिय भाग सं. 15.4.2 (ब) देखिये भाग 15.5.4

15.8 सारांश

इस इकाई में आपने मुद्राराक्षस के चतुर्थ अंक से सप्तम अंक तक का संक्षिप्त सारांश तथा कुछ महत्त्वपूर्ण व्याख्यायें पढ़ी। आपने पिछली इकाई में पढ़ा था कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य में कृतक कलह होने के बाद भागुरायण मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति संदेह उत्पन्न कर देता है मलयकेतु समझता है कि राक्षस ने ही उसके पिता पर्वतेश्वर को मरवाया है तथा राक्षस स्वयं चन्द्रगुप्त का मंत्री बनना चाहता है। मलयकेतु भागुरायण की बातों पर विश्वास कर कुसुमपुर पर आक्रमण कर देता है। चाणक्य शत्रु सेना पर अधिकार कर लेता है और चन्दनदास को राजद्रोह के अपराध में फांसी की सजा दी जाती है। राक्षस अपने को नितान्त अकेला व निराश समझकर अपने मित्र को फांसी से बचाने के लिये आत्म समर्पण करने को तैयार हो जाता है। इस प्रकार अन्त में चाणक्य संक्षेप में अपनी कूटनीति का वर्णन करता है और बिना युद्ध किये वह राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाने में सफल हो जाता है।

इकाई के अन्त में कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या की गयी है। सूक्तियाँ भाषा को गति व प्रौढ़ता प्रदान करती है। वह जीवन के शाश्वत सत्य को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करती है। कवि अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल है। विशाखदत्त कृत यह नाटक घटनाओं पर आधारित होने के कारण घटना प्रधान नाटक है तथा संस्कृत नाटकों में अपनी शैली का यह एक अद्वितीय नाटक है।

15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुद्राराक्षसम् – डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ, 2000.
2. मुद्राराक्षसम्, श्री निरञ्जन मिश्र, हंसा प्रकाशन जयपुर, 1999.
3. संस्कृत कविदर्शन डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा, वाराणसी, 2003.
4. संस्कृत महाकवि और काव्य, रामजी उपाध्याय, रामगोपाल मिश्र, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहबाद, 1958.
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1953.

इकाई –16

मुद्राराक्षसम् नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण तथा नायकत्व का निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 नाटकीय पात्रों का चरित्र–चित्रण

16.2.1. चाणक्य का चरित्र–चित्रण

16.2.2. कौटिल्य अथवा कौटल्य – विचार – चर्चा

16.2.3 चाणक्य और उसकी राजनीति

16.2.4 राक्षस का चरित्र –चित्रण

16.2.5. अन्य पात्रों की दृष्टि में राक्षस

16.2.6. राक्षस और उसकी राजनीति

16.2.7 नाटक का प्रतिनायक राक्षस

16.2.8. चाणक्य और राक्षस का तुलनात्मक चरित्र

16.2.8.1 चरित्रों में साधर्म्य

16.2.8.2 चरित्रों में वैधर्म्य

16.2.9. चन्द्रगुप्त का चरित्र–चित्रण

16.2.10. मलयकेतु का चरित्र–चित्रण

16.2.10.1 मलयकेतु की विवेकशून्यता

16.2.11. चन्द्रगुप्त और मलयकेतु का तुलनात्मक चरित्र

16.2.12. अन्य पात्र

16.2.12.1 भागुरायण और सिद्धार्थक

16.2.12.2 विराधगुप्त और शकटदास

16.2.12.3 चन्दनदास

16.2.12.4. निपुणक

16.2.12.5. करभक

16.2.13. मुद्राराक्षस नाटक का नायक चाणक्य

16.3 पारिभाषिक शब्दावली

16.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.5 सारांश

16.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

16.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप सभो यह जान सकेंगे कि महाकवि विशाखदत्त द्वारा रचित मुद्राराक्षस नामक नाटक में सभो नाटकीय पात्रों का चरित्र चित्रण किस मनोवैज्ञानिक तरह से हुआ है।

इन पात्रों की विशषताएँ क्या–क्या हैं तथा ये नाटक को किस प्रकार प्रभावित करते हैं । और उसकी कथावस्तु के निर्वाह में ये अपनी भ्मिका का निर्वाह कैसे करते हैं । इन सभो बातों का ज्ञान इस इकाई को पढने से होगा । इन पात्रो के चरित्रगत गुण क्या हैं । तथा वे कैसे यथार्थ होते हुए भो आर्दश के रूप में स्थापित हो गये हैं इसका भो छात्रों को ज्ञान होगा ।

16.1 प्रस्तावना : –

विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस एक विलक्षण कोटि का नाटक है । इस नाटक की प्रथम विशेषता तो यह है। कि इसमें नायिका का अभाव है । साथ ही विदूषक नामक पात्र का भो सर्वथा अभाव है । इस नाटक की एक अन्य विशेषता है इसका चरित्र चित्रण । कवि ने चरित्रों के विकास को एक नए ढ़ंग से चित्रित करने का प्रयास किया है । और उसमें वह पूर्ण सफल रहा है यदि नाटक के अन्दर कोई अन्य विशेषता ना होती, केवल चरित्र चित्रण ही होता तब भो यह नाटक ग्राह्य और उपादेय होता । इसके साथ ही यह विशुद्ध राजनीति पर आधारित घटना प्रधान नाटक है इस नाटक में Unity of action का जैसा सुन्दर निर्वाह हुआ है ।

वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । इसमें छोटे से छोटे पात्र से लेकर बड़े से बड़े पात्र तक सभो की अपनी
गतिविधि का लक्ष्य और आदि से अन्त तक घटित होने वाली समस्त घटनाओं का उद्देश्य केवल मात्र राक्षस को वश में करना है । नाटक की एक अन्य विशेषता है कि इसमें किसी भो धर्म के प्रति कोई आस्था नही है । राजनैतिक नाटक होने के कारण नैतिकता का यहाँ कोई मूल्य नही है। विशाखदत्त ने अंको का दृश्यों में विभाजन कर एक नवीन मौलिकता का श्री गणेश किया है ।

16.2. नाटकीय पात्रों का चरित्र–चित्रण

16.2.1 चाणक्य : –

किसी भो व्यक्ति के चरित्र का यदि पता करना हो कि इस व्यक्ति का चरित्र कैसा है , तो इसको पता करने के 3 प्रकार हैं । उस व्यक्ति ने पात्र रूप में आत्माभिव्यक्ति कैसी की है । इस प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति दृश्य काव्यों में 'स्वगतम्' के द्वारा होती है ।

2. उस पात्र के विषय में दूसरे पात्रों की क्या सम्मति है तथा

3. नाटक के अन्दर नाटककार के स्थान – स्थान पर आए हुए अपने विचार । इन्ही तीन प्रकारों से हम किसी व्यक्ति के चरित्र का अवगाहन कर सकते हैं और उसके चरित्र के विषय में किसी निर्धारित निष्कष पर पहुँच सकते हैं।

मुद्राराक्षस नाटक के अन्दर हम प्रत्यक्ष रूप से रङ्गमञ्च पर चाणक्य को तीन अंको में देखते हैं । प्रथम अंक में जिसमें सर्वात्मना चाणक्य की राजनीति का बीजान्यास हुआ है ।

तृतीय अंक में जिसमें राक्षस को धोखा देने के लिए चन्द्रगुप्त के साथ कृतक्–कलह का आयोजन किया है और अन्तिम सप्तम अंक में जहाँ राक्षस के आत्मसमर्पण के उपरान्त वह राक्षस को सम्राट चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार करवाता है ।

इस प्रकार हम देखतें हैं कि चाणक्य के अन्दर कार्य करने की शक्ति और क्षमता अनन्त है। वह किसी प्रकार की क्लान्ति का अनुभव नही करता है। प्रथम अंक की समाप्ति पर वह कहता है कि मेरा सर्वस्व चला जाए किन्तु सैकडो सेनाओं को अपने कौशल से परास्त करने वाली एकमात्र मेरी बुद्धि न जावे –

एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका ।
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ।। 1/26

उसको अपनी बुद्धि और नीति पर भरोसा है । उसने अपनी बुद्धि से ही मलयकेतु की सेनाओं को जीत लिया है। उसने अपनी अद्भद् बुद्धि की प्रखरता से नन्दवंश के वध रूपी दुस्तर प्रतिज्ञार्णव को पार किया है। वह दृढ़ प्रतिज्ञ, कूटनीतिक विशारद एवं महान राजनीतिज्ञ है। वह चन्द्रगुप्त का गुरू, मन्त्रि और पथ प्रदर्शक सभो कुछ है। एकमात्र उसी की कृपा से वृषल चन्द्रगुप्त नन्द के सिंहासन पर बैठ सका है। तभो तो राक्षस दूसरे अंक में कहता है कि चाणक्य को इस पर गर्व है कि

''चाणक्योऽपि मदाश्रयादयमभूद्राजेति जातस्मयः '' 2/23

अर्थात् यह चन्द्रगुप्त मेरी ही सहायता से राजा हुआ है। इस तरह के उत्पन्न गर्व वाला है।

मौर्य साम्राज्य के मन्त्रित्व का उपयोग करते हुए भो चाणक्य राजसी भोग–विलास के केन्द्र राज भवन से दूर नगर से बाहर एक सामान्य सी कुटी में रहता है। इस सामान्य सी कुटी को भो चन्द्रगुप्त के कञ्चुकी ने एक असाधारण विभ्ति के रूप में देखा है । वह कहता है – अहो राजाधिराजमन्त्रिणो विभ्तिः । तथाहि – 3/15

उपलकलशमेतदभेदकं गोमयानां बटुभिरुह्यतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्
शरणमपि समिद्भि शुष्यमाणाभिराभिर्विनर्मितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ।। 3/1(5)

अर्थात् – अरे ! राजाओं के भो राजा के मन्त्रि का ऐश्वर्य ।

क्योंकि–उपलों को तोड़ने वाला यह पत्थर का टुकड़ा है, शिष्यों द्वारा लाए हुए कुशाओं का यह ढ़ेर है। ,धूप में सूखती हुई समिधाओं के भार से ढ़के हुए छत के प्रान्तभाग वाला जीर्ण दीवारों वाला घर भो दिखाई दे रहा है ।

कहाँ राजाधिराज चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व और कहाँ यह साधारण रहन –सहन । इस प्रकार का चित्रण करके विशाखदत्त ने आजकल के राजनैतिक नेताओं को यह सन्देश दिया है कि राज्यों का निर्माण, संचालन और उत्थान केवल बिजली के बल्बों से प्रकाशित बडी–बडी अट्टालिकाओं में रहकर ही नही होता है अपितु एक सामान्य से स्थान में रहकर भो हो सकता है। दैव के ऊपर विश्वास करना तो चाणक्य जानता ही नही है। उसे अपने पुरूषार्थ पर अटल विश्वास है । वह यह मानने के लिए तैयार ही नही है कि कार्यों का फल भाग्यायत्त है । उसकी सम्मति में मूर्ख व्यक्ति ही भाग्य में विश्वास करते है –

''दैवम् विद्वांसः प्रमाणयन्ति '' (3/पृष्ठ 200) ।

चाणक्य का स्वभाव क्रोधी है –

''कौटिल्यः कोपनोऽपि '' 4/1(2) ।

किन्तु उसको क्रोध तब आता है जब उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँती है ।

अथवा उसकी किसी योजना को असफल बनाने की चेष्टा की जाती है । चाणक्य की क्रोध–मुद्रा का गम्भोर वर्णन उसके स्वभाव का परिचायक है यथा –

शिखां मोक्तुं बद्धामपि पुनरयं धावति करः
प्रतिज्ञामारोढुं पुनरपि चलत्येष चरणः ।

प्रंणाशान्नंदानां प्रशममुपयातं त्वमधुना
परीतः कालेन ज्वलयसि मम क्रोधदहनम् ।।

और राजा चन्द्रगुप्त इस क्रोध को देखकर कह उठता है कि

''अये, कथं सत्यमेवार्यः कुपितः ।

यह तो उस क्रोध का वर्णन है जो कृत्रिम है । इसी से उसके वास्तविक क्रोध के रूप का भो का पता लगाया जा सकता है । चाणक्य को विलम्ब एक मिनट का भो सहन नही।

इसी विलम्ब के कारण वह अपने शिष्य शाङ्.र्गरव पर भो झुंझला उठता है । परन्तु साथ ही कहता है कि–

'वत्स, कार्याभिनियोग एवास्मानाकुलयति
न पुनरुपाध्यायसहभूः शिष्यजने दुःशीलता ।

वह इस बात को भली भाँति जानता है कि अध्यापकों का यह स्वभाव होता है कि वे अपने शिष्यों पर यदा–कदा झुंझलाया करते हैं। वह लोकोत्तर चरित्र है । अर्थ –शास्त्र के प्रणेता और मुद्राराक्षस के नायक व सर्वेसर्वा चाणक्य में हम एक आश्चर्य–जनक भिन्नता देखते हैं । अर्थशास्त्र का चाणक्य मुद्राराक्षस में निःस्वार्थ, निरीह एवं लोकभावना के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है –

''निरीहाणामीशस्तृणमिवं तिरस्कारविषयः ''

ऐसा कहकर कञ्चुकी ने चाणक्य के प्रति एक महान सम्मान प्रकट किया है। इससे बढकर और अलौकिकता क्या होगी । वह आत्मविश्वासी है। नन्दवंश को समूल नष्ट करने वाला वह अपने को मानता है, देव को नही, मनोविज्ञान का वह अद्वितीय वेत्ता है , वह ब्राह्मण है । ब्रह्मवंश में उत्पन्न हुआ है। असाधारण मेधा सम्पन्न है साथ ही धूर्तता में भो अग्रणी है। राक्षस के गणों को जितना वह समझता और सम्मान करता है। अतः एवास्मांकं त्वत्संग्रहे यत्नः, (प्रथम अंक)

उतना सम्भवतः राक्षस स्वंय भो अपने गुणों को नही जानता।

चाणक्य ने अपने पुरुषार्थ से सम्पूर्ण नन्दवंश को ध्वस्त करके चन्द्रगुप्त को राज्य सिंहासन पर बैठा दिया और स्वंय ''कमलपत्रमिवाम्भसा'', निर्लिप्त रहा है। उसका अपने इस महान कार्य के ऊपर गर्व है, उसको अपार हर्ष है, पर वह मदान्ध नही है । एक नवीन साम्राज्य का प्रतिष्ठापक मदान्ध कैसे हो सकता है। वह सतत् जागरूक है–

''जागर्ति खलु कौटिल्यः'' ।

कौमुदी महोत्सव की रंगरेलियाँ एक नवीन प्रौढ़ अवस्था के राजा को तो आकृष्ट कर सकती है परन्तु भविष्य पर निरन्तर दृष्टि रखने वाले व्यक्ति को इन भोगलिप्साओं से क्या है। वह तो स्पष्ट कहता है कि –

सोऽयं व्यायामकालो नोत्सवकाल इति
दुर्गसंस्कारे प्रारब्धव्ये किं कौमुदीमहोत्सवेति।

वह अपने शत्रुओं को एक क्षण के लिए भो पसन्द नही करता, उनकी चर्चा भो उसको अच्छी नही लगती है । उनके नाम की चर्चा आते ही वह क्रोध से तिलमिला उठता है। इसके साथ ही वह शत्रुओं की निन्दा मात्र करने में अपने बहुमूल्य समय को नष्ट करना भो नही चाहता है। वह शत्रुओ के प्रति यमराज के समान क्रूर होता हुआ भो राक्षस के गुणों की प्रशंसा करता है, जिसको वह बुद्धिमान ,योग्यतम व्यक्ति ,साहसिक योद्धा और योग्य अमात्य समझता है। चाणक्य अविश्वासी है, अविश्वास का पुतला है। उसको न अपने गुप्तचरों पर भरोसा है और न ही चन्द्रगुप्त पर । क्योकि हम सम्पूर्ण नाटक में देखते हैं, कि चाणक्य की योजनाओ का स्रोत वह स्वयं ही है । किसी अन्य व्यक्ति के साथ किसी भो योजना पर मन्त्रणा करते हुए हम उसको नही पाते हैं । यदि किसी पर उसको विश्वास है तो उसके स्वयं के ऊपर और अपनी बुद्धि पर। उसका यही अविश्वास उसको हृदय की भावनाओं से दूर कर देता है। चाणक्य के हृदय में भावुकता नाम की वस्तु का सवथा अभाव है और यही अभाव उसकी विजय का कारण है। मनुष्यों पर अविश्वास के समान उसको सिद्वान्तों पर भो विश्वास नही है। चाणक्य का एकमात्र उद्देश्य है राक्षस को वश में करना । वह चाहता है कि राक्षस कि भक्ति चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रति हो जावे। चाणक्य का पर्याप्त संगठन है ।

उसकी कूटनीति की यह विशेषता है कि उसके गुप्तचर अपने आप में एक दूसरे को नहीं पहिचानते हैं कि वे एक ही उद्देश्य को लेकर कार्य करने वाले चाणक्य के व्यक्ति है । वह अपने अनुयायियों में प्रेरणा फूँकने में समर्थ है , जो उसकी दक्षता , कठोरता ,जागरूकता और लक्ष्य से प्रभावित ह । उसके जितने भो सहायक हैं , ऐसा मालूम पडता है कि उनकी कोई अभिलाषा नहीं उच्चाकाँक्षा नही और स्वार्थसिद्धि नही । चाणक्य की महत्वाकाँक्षा ही उनकी महत्वाकाँक्षा है । चाणक्य की कार्यसिद्धि नही उनकी कार्यसिद्धि है । चाणक्य के अन्दर वह शक्ति है कि वह अस्त और उदय युगपत् कर सके और इसीलिये वह

'' धाम्नातिशाययति धाम सहस्रधाम्नः'' है ।

चाणक्य प्रतिहिंसा और प्रतिशोध का अवतार है ।वह ही इसी नाटक के घटनाक्रम का एकमात्र नियन्ता है । वह जो कुछ करता है । अपने लिये नही अपने स्वार्थ भाव से नही अपितु चन्द्रगुप्त के लिये और मौर्य साम्राज्य को बद्धमूल करने के लिये करता है । इसको अपने यश की, अपने नाम की चिन्ता नही है । चाणक्य अमात्यराक्षस की प्रज्ञा पराक्रम शक्ति और राजभक्ति की महत्ता को स्वीकार करता हुआ भो उसको अपना प्रतिस्पर्धी मानने के लिये तैयार नही । वह कहता है कि –

चाणक्यस्त्वमपि च नैव केवलं ते साधर्म्य मदनुकृतेः प्रधानवैरम् ''

चाणक्य के अपने व्यक्तित्व की चरम परिणति ही इसमें है कि वह अपनी दूरदर्शिनी बुद्धि के द्वारा अपने शत्रु राक्षस को अपना मित्र और अपने आदर्शों का पालक बना लेता है ।

16.2.2 कौटिल्य अथवा कौटल्य – विचार – चर्चा

मुद्राराक्षस नाटक के ऐतिहासिक पात्रों में प्रमुखतम पात्र चाणक्य है । यह चणक का पुत्र है। उसके पूर्ववर्तियों में एक 'कुटिल' हुआ था , जिसके आधार पर उसका नाम कौटिल्य हुआ ऐसी कुछ विद्वानों के द्वारा व्याख्या की जा सकती है । ऐसा प्रतीत होता है कि चाणक्य की कुटिल नीति के कारण और नन्दवंश के बडी क्रूरता से समूल विनष्ट करने के कारण विद्वानों के उसके नाम की व्याख्या कुटिल से कौटिल्य की है । वस्तुतः उसका यथार्थ नाम कौटल्य था । उसके पिता का नाम कुटिल न होकर कुटल था।

अर्थात् जो कुटं–कुटपूर्ण धान्यं लाति गृहमिति इति कुटलः अर्थात कुट का अर्थ है घडा अर्थात् जो घटपरिमित धान्य का संग्रह करता है । अथवा कुट का अर्थ परिवार भो होता है । इस परिवार के अर्थ में ग्वेद मे कूट शब्द का प्रयोग हुआ है । अर्थात् जो केवल अपने परिवार की आजीविका चलाने मात्र धन का संचय करता है इस प्रकार की व्याख्या करने पर चाणक्य के पिता की त्याग भावना व्यक्त होती है ।

अतः उसके पिता का नाम कुटल हुआ है अपत्य अर्थ में कौटल्य बना । कौटल्य ही कौटिल्य मे परिणत हो गया है । इस प्रकार चाणक्य और कौटल्य उसके पैतृक नाम है । उसका वास्तविक नाम विष्णुगुप्त है । वह यज्ञ म की जाने वाली बलिदान सम्बन्धी क्रियाओं के रहस्यों के ज्ञान में परम प्रवीण था । यथा–

यस्याभिचारवज्रेण ज्वलन्प्रोज्ज्वलतेजसः।
पपात मूलतः श्रीमान् सुपर्वा नन्दपर्वतः। कामन्दकीय नीतिसार 1–4

अथवा

कौटिल्यः कोपनोपि स्वयमभिचरणज्ञातदुःखप्रतिज्ञो।
दैवात्तीर्णप्रतिज्ञः पुनरपि न करोत्वायतिग्लानिभीतः।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चाणक्य स्पष्ट मस्तिष्क वाला, आत्मविश्वासी, कूटनीतिज्ञ, षड्यन्त्र करने वाला कठोर राजनीतिज्ञ, अपनी इच्छा की पूर्ति को सर्वात्मना दृढ निश्चय के साथ पूर्ण करने वाला और अपनी कूटनीतिक योजनाओं का अन्त तक निर्वाह करने वाला चित्रित किया गया है ।

अन्य पात्रों की दृष्टि में चाणक्य :– भागुरायण को चाणक्य की राजनीति नियति की तरह चित्र विचित्र रूप वाली दिखाई देती है ।

मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगमाभावगहना
मुहुः सम्पूर्णांगी मुहुरतिकृशा कार्यवशतः।
मुहुर्नश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफले
त्यहो चित्राकारा नियतिरिव नोतिर्नयविदः।। 5/3

चाणक्य के सम्बन्ध में चन्दनदास की यह उक्ति कि –

'फलेन विसंवादितमस्य विकत्थितम्' (प्रथम अंक, पृष्ठ 67)

उसके व्यक्तित्व की महत्ता को और भो अधिक अभिव्यक्ति करती है । चाणक्य की राजनीति इतनी संश्लिष्ट है कि राक्षस के लिए भो उसको समझ पाना एक कठिन कार्य है । षष्ठ अंक में सिद्धार्थक कहता है कि –

जयति जयनकार्यं यावत्कृत्वा च सर्वं ।
प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः ।। 6/1

यही बात वह अपने मित्र समिद्धार्थक से कहता है कि जिस आर्य चाणक्य की नीति का अवगाहन राक्षस भो नहीं कर सका, उसी को तुम जानना चाहते हो ।

'अतिमुग्धोऽसीदानीं त्वं यतोऽमात्यराक्षसेनाप्यनवगाहितपूर्वमार्यचाणक्यस्य चरितमवगाहितुमिच्छसि' (पृष्ठ 346)

राक्षस ने चाणक्य को देखकर अपनी भावना इन शब्दों में व्यक्त की है –

' अयं दुरात्मा अथवा महात्मा कौटिल्य :' –
आकरः सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागरः ।
गुणैर्न परितुष्यामो यस्य मत्सरिणो वयम् ।। 7/7

और इस प्रकार हम देखते है कि नाटककार विशाखदत्त ने उसको स्वंय 'महात्मा' कहकर अपनी उसके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है ।

16.2.3. चाणक्य और राजनीति–

यदि चाणक्य की राजनीति को हम एक शब्द में कहना चाहें तो वह कह सकते हैं कि –

''दैव की गति के समान चाणक्य की नीति भी अश्रुत –गति है ।''

किन्तु जहाँ चाणक्य की कूटनीति इस प्रकार की है वहाँ यह भो स्पष्ट है कि उसकी नीति कुछ अधिक उच्च नैतिक गुणों पर आधारित नहीं है सामान्य से सामान्य धोखा देने से लेकर जालसाजी और हत्या करने तक प्रत्येक योजना चाणक्य के उस निश्चय की पूण करने में योग देती प्रतीत होती है, जिस लक्ष्य का निर्धारण चाणक्य ने स्वयं किया है । चाणक्य की यह अन्तिम इच्छा है कि वह अपने आश्रित चन्द्रगुप्त को गद्दी पर स्थित कर दे और राक्षस को पुनः लाकर उसकी सेवा में नियुक्त कर दे, जिसकी नन्दों के प्रति भक्ति विख्यात है । चाणक्य समझता है कि बिना राक्षस के चन्द्रगुप्त के पक्ष में किये मौर्य साम्राज्य स्थिर नहीं हो सकता है।

यदि साध्य, साधन के भले या बुरे का निर्णायक है ,तो उसका निर्णय इस स्थान पर किया जा सकता है । साथ ही यहाँ यह भो ध्यान में रखना चाहिये कि कूटनीति और राजनीति का खेल कम या अधिक संदिग्ध नैतिकता का खेल होता है । राजनीति में नैतिक मापदण्ड़ सामाजिक या धार्मिक मापदण्ड़ से सर्वथा भिन्न होते है । महान् राजनीजिज्ञ चाणक्य मौर्य साम्राज्य का प्रिंस बिस्मार्क कहलाता है ।

साध्य साधन की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करता है और साध्य यहाँ पर सुन्दर और महान है । चाणक्य ने कोई काम बुरा नहीं किया । उसको तो राजनीतिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार करना पडा। जनता के लिए अभिशाप के रूप में थे। अतः जनता विप्लव करने के लिए तैयार थी । इस जनता का उद्धारक चन्द्रगुप्त था और इसकी सहायता करने में। चाणक्य एक उचित व्यक्ति की सहायता कर रहा था। राक्षस नन्दों का अग्रणी था । उनका सहायक था।

यदि चाणक्य उसको अपने मार्ग पर चलने देता तो यह निश्चय था कि जनता में एक क्रान्ति, एक विद्रोह एवं एक विप्लव खड़ा हो जाता । जिससे देश के अन्दर रक्त की नदियाँ बह जाती। इस प्रकार चाणक्य को प्रजा में होने वाली रक्तपात परिपूर्ण क्रान्ति और चन्द्रगुप्त इन दोनों बुराइयों में से किसी एक को चुना चुनना था । चाणक्य ने इनमें से कम बुराई को चुना और आचारशास्त्र के नियमों को थोड़ा हटकर उसने धोखा ,कपट और हत्या का आश्रय लिया । इस अवस्था में इसको एक बार के लिये क्षस्य माना जा सकता है क्योंकि उद्देश्य महान् और सुन्दर था । प्रर्वतक सर्वार्थसिद्धि और मलयकेतु के 5 म्लेच्छ राजाओं की हत्या राजनीतिक आवश्यकतायें थीं । इसके विपरीत मलयकेतु को कैद करके केवल छोड़ ही नहीं दिया अपितु उसको उसका राज्य भो वापिस कर दिया।

शकटदास और चन्दनदास को फाँसी की सजा से भयभोत करना वास्तविकता की अपेक्षा '' राजनैतिक बहाना मात्र'' था चाणक्य की राजनीति की सबसे अधिक घनिष्ट मित्र समझता झणपक जीवसिद्धि है, जिसको राक्षस अपना सबसे अधिक घनिष्ट है । राक्षस ने इसके द्वारा चन्द्रगुप्त पर विषकन्या का प्रयोग किया था । दूसरा पात्र , जो चाणक्य की कूटनीति को क्रियात्मक रूप देने वाला है , भागुरायण है। जिस भद में राक्षस असफल हो गया उसी भद को करने में चाणक्य सफल हो गया है।

चाणक्य की कूटनीति का केन्द्रबिन्दु वह कपट–पत्र है, जिससे उसने राक्षस और मलयकेतु में भद डाला है। जिस पत्र के परिणामस्वरूप राक्षस के 5 परम विश्वस्त–म्लेच्छ राजागण मृत्यु के घाट उतार दिये गये । राक्षस का निश्शस्त्र वध्यस्थान पर भजने वाला । वह विष्णुदास का कपट मित्र चाणक्य की कूटनीति का अन्तिम प्रयोग है । चाणक्य ने अपनी कूटनीति को राक्षस के सामने इस प्रकार व्यक्त किया है –

भृत्या भद्रभटादयः स च तथा लेखः स सिद्धार्थकः
तच्चालड़.करणत्रयं स भवतो मित्रं भदन्त : किल ।

जीर्णोद्यानगत : स चापि पुरुषः क्लेशः स च श्रेष्ठिनः
सर्वं मे वृषलस्य वीर भवता संयोगमिच्छोर्नयः ।। 7/9

अर्थशास्त्र के लेखक कामन्दक ने चाणक्य को अपने आध्यात्मिक गुरू के रूप में देखा है । उसने उसको प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् और अर्थशास्त्र के प्रणेता के रूप में वर्णित किया है । आर्यशूर की जातकमाला कौटिल्य को अर्थशास्त्र का प्रणेता मानती है । यह महान् राजनीतिक विचारक अपने साधारण और सुन्दर उपदेश देने वाले नीतिवाक्यों के लिये भो प्रसिद्ध है। क्रियात्मक रूप से उसकी राजनीतिक सफलता का रहस्य उसकी उस नीति का यथार्थ रूप रूप से पालन करना था , जिसके विषय में उसकी अपनी मान्यता सर्वसिद्ध थी।

सुकृत्यं विष्णुगुप्तस्य मित्राप्तिर्भार्गवस्य च ।
बृहस्पतेरविश्वासो नीतिसन्धिस्त्रिधा मतः ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनैतिक क्षेत्र में कौटिल्य की प्रामाणिकता सर्वोपरि है । उसकी प्रसिद्धि प्रमुखरूप से अर्थशास्त्र पर प्रतिष्ठित है ।

16.2.4 राक्षस –

सम्पूर्ण नाटक विरोधी चरित्रों के मध्य विकसित हुआ है । चाणक्य और राक्षस परस्पर विरोधी रूप में चित्रित हैं। एक के चरित्र को हृदयंगम करने के लिये सारे के चरित्र की पृष्टभ्मि अत्यन्त आवश्यक हैं । यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि चरित्रों का विकास भो अंकों में क्रमशः हुआ है । प्रथम अंक में चाणक्य ,द्वितीय अंक में राक्षस ,तृतीय अंक में चन्द्रगुप्त और चतुर्थ अंक में मलयकेतु के चरित्र का विकास हुआ हैं ।

इस नाटक के अन्दर हम प्रथम और तृतीय अंक को छोडकर सभो अंकों में राक्षस को रंगमन्च पर उपस्थित पाते हैं । द्वितीय अंक में राक्षस के चरित्र का विकास राजनीति की पृष्ठभ्मि में हुआ हैं । चतुर्थ अंक में राक्षस को चाणक्य के विरोध में कुटनीति योजनाओ के निर्माण में और चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने की तैयारी में व्यस्त देखते है।

पंचम अंक के अन्दर राक्षस एक अभियुक्त के रूप में हमारे सम्मुख आता हैं । षष्ठ अंक में राक्षस अपने मित्रों और सहायको से दूर ,उद्देश्य के प्रति सर्वथा निराश, अतीतकाल की स्मृतियों में डूबा हुआ कुसुमपुर के एक जीर्णोद्यान में दिखाई देता है और अन्तिम अंक में राक्षस के भाग्य का सहसा परिवर्तन होता हैं । और उसे हम मौर्य साम्राज्य के सम्राट् चन्द्रगुप्त के अमात्यपद पर प्रतिष्ठित देखते हैं । इस प्रकार नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु राक्षस के दुर्भाग्य की कहानी हैं । इसके चरित्र में जो आशा –निराशा ,घात–प्रतिघात आदि द्वन्द्वो का चित्र खींचा गया है, उससे मानव–जीवन की अस्थिरता का सहज ही ज्ञान हो जाता है ।

राक्षस के चरित्र में कुछ ऐसे गुण विद्यमान हैं जो उसको राजनीतिक बुद्धि की कठोरता की भ्मि से पृथक् हृदय के कोमल तल पर खड़ा कर देते हैं । उसके हृदय के कोने में छिपकर बैठी हुई भावुकता ही उसकी पराजय का कारण हैं । यह ब्राह्मण वंश का भ्षण, नन्दों का प्रमुख अमात्य है। नन्द साम्राज्य का संचालन करने वाले हैं । इसकी नन्दवंश के प्रति अनन्य भक्ति हैं । नाटककार ने राक्षस को अपने स्वामी नन्द राजाओ के प्रति प्रगाढ़ भक्ति भावना से ओत–प्रोत चित्रित किया हैं । इसकी इस भक्ति को देखकर ही चाणक्य कहता है कि–

"अहो राक्षस्य नन्द–वंशे निरतिशयो भक्तिगुणः। स खलु कस्मिश्चिँदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते। तदभियोगं प्रति निरुद्योगःकथं शक्यः अवस्थापयितुमस्मामिः" (पृष्ठ 31/32)

नन्दभक्ति और राक्षस की महत्वाकांक्षा इन दोनो को एक ही माना जा सकता हैं । कूटनीति का मर्मज्ञ हैं, मेघावी हैं । राक्षस शस्त्रविद्या में निपुण है, सैन्य का संचालन करने की योग्यता रखता है । राक्षस की शूरवीरता इस प्रकार प्रकट हुई है –

यत्रैषा मेघनीला चरित गजघटा राक्षसस्त्र यायात् ।
एतत्पारिप्लवाम्भःप्लुतितुरगबलं वार्यतां राक्षसेन ।

पत्तीनां राक्षसोऽन्तं नयतु बलमिति प्रेषयन्मह्यमाज्ञा
मज्ञासीः प्रीतियोगात्स्थितमिव नगरे राक्षसानां सहस्त्रम् ।। (2/14)

इसी प्रकार चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने के लिये जिस व्यूह की रचना की हैं, उसमें अपने आपको उसने अग्रणी रखा हैं –

प्रस्थातव्यंपुरस्तात्खशमगधगणैर्मामनुव्यूह्य सैन्यैः ।। (5/11)

खड्ग उसका प्रिय सुहृत् और प्रधानतम शस्त्र हैं । वह अपने मित्र चन्दनदास को फाँसी के तख्ते से छुड़ा लाने के लिये अपनी तलवार पर विश्वास रखता हैं । यथा –

निस्त्रिंनशोऽयं सजलजलदव्योमसंकाशमूर्ति –
र्युद्धश्रद्धापुलकित इव प्राप्तसख्यः करेण।

सत्त्वोत्कषात्समरनिकर्यो दृष्टसारः परैषे
मित्रस्नेहाद्विवशमधुना साहसे मां नियुड्क्ते ।। (6/19)

नाटक के अन्दर जहाँ राक्षस के गुणो का विकास हुआ हैं, वहाँ उसकी मैत्री, भावना, मित्र के प्रति कर्त्तव्य भावना प्रखररूप से हमारे सामने आती हैं ।

मित्र के प्राणो की रक्षा वह अपने आपको बन्धन में डालकर भो करता है । सचमुच वह सच्चा मित्र हैं । राक्षस में जिस मैत्री भावना का कवि ने चित्रण किया हैं वह भारतीय संस्कृति की अपूर्व देन हैं । वह अपने मित्र के लिये आत्मसमर्पण में संकोच नही करता है । चन्दनदास उसका मित्र हैं। सामान्य मित्र नहीं , अपितु चाणक्य के गुप्तचर निपुणक की सम्मति में ''द्वितीयमिव ह्रदयम् '' (पृष्ठ47) है ।

चाणक्य भो इस बात की पुष्टि इन शब्दों में करता है –

''नूनं सुह्रत्तमः । न ह्यानात्मसदृशेषु राक्षसः कलत्रं न्यासीकरिष्यति''

(प्रथम अंक पृष्ठ 47) । और अन्त में कहता है –

त्यजत्यप्रियवत्प्राणान्यथा तस्यायमापदि ।
तथैवास्यापदि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रियाः ।। (1/25)

दूसरे अंक में राक्षस स्वंय अपनी मित्रता के विषय में विराधगुप्त से कहता है कि –

'' तत्किं परितुष्टः कथयसि अपवाहितं राक्षसकलत्रमिति ।
ननु वक्तव्यं संयमितः सपुत्रकलत्रो राक्षस इति '' (पृष्ठ 128)।

राक्षस अपने में और चन्दनदास में कोई भद नहीं देखता है । एक प्राण दो शरीर है । इसलिए अपने मित्र के लिए, मित्र की मैत्री को अमर बनाने के लिए सप्तम अंक में चन्दनदास सें कहता है कि तुम्हारे प्राणो की रक्षा के लिए अपना समर्पण करके मैने –

''स्वार्थ एवानुष्ठितः'' (पृष्ठ 400)

अर्थात् अपना स्वार्थ ही सिद्व किया हैं । चाणक्य से कहता हैं ।

''विष्णुगुप्त ,नमो सर्वकार्यप्रतिपत्तिहेतवे सुह्रत्स्नेहाय'' (पृष्ठ 416)

और अपने मित्र के प्राणों की रक्षा के लिए अपने उद्देश्य को, जिसके लिए उसने जीवन पर्यन्त संघर्ष किया – तिलाज्जलि देकर आत्मसमर्पण कर देता ह। और सचमुच इस कसौटी पर राक्षस महान् है । वस्तुतः राक्षस की पराजय का एक प्रमुख कारण चन्दनदास के स्नेह का निर्वाह भो है । वह सिद्धार्थक को भो अपना हितैषी और मित्र समझता है । शकटदास पर उसे सर्वात्मना विश्वास है और इसी विश्वास के कारण वह कहता है कि यदि –

शकटदासेन् लिखितस्ततो मयैव'' (पृष्ठ 318)

उसको उसकी मैत्रीभक्ति और नन्द के प्रति स्वामिभक्ति का पता है परन्तु जब उसके प्रति राक्षस के ह्रदय में सन्देह का अंकुर उत्पत्र होता है तो यह कहकर –

स्मृतं स्यात्पुत्रदारस्य विस्मृतस्वामिभक्तिना ।
चलेष्वर्थेषु लुब्धेन न यशः स्वनपायिषु ।। (5/14)

अपना समाधान कर लेता है ।

राक्षस का स्वभाव है सब पर विश्वास कर लेना । इसे चारित्रिक दोष और गुण किसी भो रूप में देखा जा सकता है । इसी अपने विश्वास कर लेने वाले स्वभाव के कारण वह किसी भो अनजान नवीन व्यक्ति पर विश्वास कर लेता है, यथा – सिद्धार्थक । उसमें जीवसिद्ध और सिद्धार्थक – इन दो ऐसे प्राणियों पर विश्वास किया है , जो घटनाचक्र को बदल देने की सामर्थ्य रखते हैं । इन्होंने केवल घटनाचक्र को ही प्रभावित नहीं किया अपितु

राक्षस के भाग्य के साथ भो खिलवाड़ किया है । यह प्रत्येक पर विश्वास कर लेना भो उसके पतन का एक कारण है । राक्षस का अपना कोई स्वार्थ नहीं है , वह निःस्वार्थ है । उसकी एकमात्र प्रबल इच्छा है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त से अपने स्वामी नन्दों का बदला ले सके और इसलिये उसने मलयकेतु का आश्रय लिया है , इसलिये वह राजनीति में सतत प्रयत्नशील है। वह कहता है कि –

नेदं विस्मृतभक्तिना न विषयव्यासंगमूढात्मना,
प्राणप्रच्युतिभीरुणा न च मया नात्मप्रतिष्ठार्थिना ।

अत्यर्थं परदास्यमेत्यनिपुणं नीतौ मनो दीयते ,
देवः स्वर्गगतोऽपि शात्रववधेनाराधितः स्यादिति ।। 2/5

उसको अहर्निश एकमात्र यही चिन्ता सताये रखती थी कि नन्दवंश की पुनः राज्य पर प्रतिष्ठा कैसे हो ? इसी चिन्ता मे उसने अपने शरीर की स्वाभाविक साज–सज्जा भो छोड़ दी थी ।

राक्षस शत्रुओ पर विश्वास करता है ।

''वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा '' (पृष्ठ 10) ।

वह सर्पदर्शन और क्षपणक के दर्शन – दोनो को अपशकुन का प्रतीक समझता है –

''कथं प्रथममेव सर्पदर्शनम् '' (पृष्ठ 100)

उसे ज्योतिषियों पर विश्वास हैं । आक्रमण के अवसर पर शुभ दिन की उसको प्रतीक्षा है । वह पूछता है –

'' निरूप्यतां तावदस्मत्प्रस्थानदिवसः '' (पृष्ठ258) ।

भाग्य पर उसको अटल विश्वास हैं । सम्पूर्ण नाटक में उसकी भाग्यबत्ता प्रकट होती है । वह तो नन्दवंश का शत्रु ही दैव को मानता हैं , चाणक्य को नहीं ।

''दैवं हि नन्दकुलशत्रुरसौ न विप्रः'' (6/8)

यदा कदा भविष्यत्काल की घटना को सूचित करने वाली दैवीय वाणिक्यों पर भो विश्वास करता है –

''दुरात्मा चाणक्यवटुर्जयत्वतिसंधातुं शक्यः स्यादमात्य इति
वागीश्वरी वामक्षिस्पन्दनेन प्रस्तावगता प्रतिपादयति'' (चतुर्थ अंक पृष्ठ 220) ।

राक्षस के अन्दर उतावलापन भो अधिक है । अतीतकाल की घटना को सुनते सुनते वर्तमान काल में आ जाता है । उसे आत्माविस्मृति हो जाती है और वह कह उठता है कि –

प्राकारं परितः शरासनधरैः क्षिप्रं परिक्रम्यतां
द्वारेषु द्विरदैः प्रतिद्विपघटाभेदक्षमैः स्थीयताम् ।

त्यक्त्वा मृत्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले
ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामभोष्टं यशः ।। (1/13)

राक्षस को अपने ऊपर विश्वास नहीं हैं । उसमें इच्छाशक्ति की कमी हैं और पराजय की भावना से भरा हुआ हैं।

राक्षस पहले अपने एक निश्चित लक्ष्य को निर्धारित कर लेता हैं और फिर बाद में उसके प्रति अपनी नैतिक भावना को विकसित करता हैं । ऐसा व्यक्ति अपनी सफलता या असफलता को अपने जीवन में अपने उद्देश्य से आंकता हैं । असफलता को वह सहन नहीं कर सकता हैं और इसलिये वह साधनों क प्रति उदासीन हो जाता हैं । चाणक्य को समान इसने भो कूटनीतिक षड्यन्त्री का सहारा लिया हैं । विषकन्या , विष शस्त्र इत्यादि

के द्वारा शत्रु की हत्या करने का प्रयत्न किया हैं। यद्यपि उसे इसमें सफलता नहीं मिली हैं । राक्षस अपने उद्देश्य की प्राप्ति में इतना डूब जाता हैं कि वह अज्ञान में ही षड्यन्त्र करने वाला सिद्ध हो जाता हैं । वह यह अनुभव करने लगता हैं कि अब उसके लिये चाणक्य के जाल से बाहर निकलना कठिन की नहीं ,अपितु असम्भव हैं वह मलयकेतु के व्यवहार के कारण निराश हो जाता हैं और मलयकेतु इतना मूर्ख हैं कि वह समझने लगता हैं कि राक्षस ने चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि कर ली है जबकि इसके विपरीत राक्षस की यह विचारधारा है कि –

''इदानीमपि तावदरातिहस्तगतो विनश्येन्न
तु राक्षसश्चन्द्रगुप्तेन सह संदधीत''(पृष्ठ 359) ।

मलयकेतु के इस विश्वास का कारण वह पत्र है , जो चाणक्य प्रथम अंक में सिद्धार्थक के द्वारा शकटदास से लिखवाया है और जिस पर राक्षस की मुद्रा अंकित है और हम देखते है कि नाटक की समाप्ति में आकर राक्षस निःसहाय और निराश्रित हो जाता है । उसकी अतीत और वर्तमानकाल की अवस्था की एक साथ सूचना देने वाला यह श्लोक कितना सुन्दर है –

पौरैरंङ्गुलिभिर्नवेन्दुवदहं निर्दिश्यमानः शनैः
यो राजेव पुरा पुरान्निरगमं राज्ञां सहस्रैर्वृतः ।

भूयः सम्प्रति सोऽहमेव नगरे तत्रैव बन्ध्यश्रमो
जीर्णोद्यानकमेष तस्कर इव त्रासाद्विशामि द्रुतम् ।। 6/10

पृष्ठ अंक में राक्षस के लम्बे स्वागत भाषण में हम इसके चरित्र का समीप से अध्ययन कर सकते है ,जिसमें उसका मानसिक ऊहापोहा का,संघर्ष का चित्र हमारे सामने आता हैं ।यहाँ पर वह अपने जीवन के प्रमुख उद्देश्य को महती निराश में छोड़ देता है । इस प्रकार हम देखते है कि राक्षस शूरवीर योद्धा, परन्तु भ्ल करने वाला ,भावना प्रधान अनुभ्ति के साथ राजनीतिज्ञ के रूप में चित्रित किया गया है ।

16.2.5 अन्य पात्रों की दृष्टि में राक्षस

(1) चाणक्य राक्षस के गुणो की प्रशंसा करता हुआ कहता है –

ऐश्वर्यादनपेतमीश्वरमयं लोकोऽर्थतः सेवते
तं गच्छन्त्यनु ये विपत्तिषु पुनस्ते तत्प्रतिष्ठाशया ।

भर्तुर्ये प्रलयेऽपि पूर्वसुकृतासङ्गेन निःसङ्गया
भक्त्या कार्यधुरं वहन्ति बहवस्ते दुर्लभास्त्वादृशाः ।। (1/14)

राक्षस का अपना व्यक्तित्व , अपनी महत्ता कितनी है इसका पता उससे अधिक चाणक्य को है। तभो तो वह राक्षस को जीवित पकडना चाहता है , उसको मरवाना नही चाहता है । भागुरायण को चाणक्य का स्पष्ट निर्देश है कि राक्षस के प्राणो की रक्षा करनी है –

'रक्षणीया राक्षसस्य प्राणा इत्यार्यादेशः (पंचम अंक पृष्ठ 292) ।

चाणक्य भो सोचता है –

बुद्ध्या निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियायाम्
आरण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि। 2/27

(2) तीसरे अंक में चन्द्रगुप्त ने चाणक्य से प्रश्न किया है कि तुमने राक्षस को कैद क्यों नही कर लिया तो चाणक्य कहता है कि –

स हि भृशमभियुक्तो यद्युपेयाद्विनाशं
ननु वृषल वियोगस्तादृशेनापि पुंसा ।। 3/ 25

चाणक्य किसी भो प्रकार से राक्षस को अपने हाथ जाने नही देना चाहता है । वह यह भो नही चाहता कि राक्षस जीवित रहता हुआ चन्द्रगुप्त के विनाश की योजना बनावे । वह यह भो नही चाहता कि राक्षस मारा जावे । यह है राक्षस का व्यक्तित्व । चाणक्य इस व्यक्त्वि को समझता है और इसलिए कहता है कि– ''अत एवास्माकं त्वत्संग्रहे यत्नः '' (पृष्ठ 31) और अन्त में राक्षस को देखकर चाणक्य कहता है कि –'' येन महात्मना –

गुरुभिः कल्पनाक्लेशैर्दीर्घजागरहेतुभिः
चिरमायासिता सेना वृषलस्य मतिश्च मे।। 7/8

3. शकटदास राक्षस को देखकर कहता है –

अक्षीणभक्तिः क्षोणऽपि नन्दे स्वाम्यर्थमुद्वहन्।

पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमे स्थितः।। 2/22

16.2.6 राक्षस और राजनीति –

इस नाटक में राक्षस की राजनीति का कुछ इस – प्रकार प्रयोग हुआ है कि जिसमें वह अपने शस्त्र के प्रयोग से स्वंय ही पराजित हुआ है । राक्षस कुसुमपुर में अपने पीछे अपने परिवार को यह सोचकर छोड आया है कि इस प्रकार कुसुमपुर में रहने वाले उसके अनुयायियों का उत्साह क्षीण होगा।

परन्तु पाटलिपुत्र में उनकी पत्नी की उपस्थिति अभिन्न मित्र चन्दनदास के लिये आपत्ति का कारण हुई है । इसी कारण उसे कुछ क्षणों के लिये मृत्यु की घडियों का भो दर्शन होता है। साथ ही उसकी पत्नी का पटलिपुत्र में रहना ही निपुणक को राक्षस की उस मुद्रा की प्राप्ति करा देता है, जिससे चाणक्य ने एक कूटलेख लिखा है और जिसका प्रयोग उसने राक्षस और मलयकेतु में भद डालने के लिये किया है । चाणक्य इससें सफल होता है । और यह राक्षस की मुद्रा ही उसके पराजय का कारण बनती है। चन्द्रगुप्त को मारने के लिये बडी सभाल कर रखी हुई विषकन्या से चन्द्रगुप्त तो नही मरता , परन्तु उस पर्वतक की मृत्यु हो जाती है जो चन्द्रगुप्त के आधे राज्य का अधिकारी है। राक्षस ने अपने जिन गुप्तचरो को विष और शस्त्रों के द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने के लिये नियुक्त किया था, वे उसके गुप्तचर चाणक्य की चतुराई और सतत जागरूकता के कारण उन्ही विष और शस्त्रो से मारे गये । यथा –

कन्या तस्य वधाय या विषमयी गूढं प्रयुक्ता मया
दैवात्पर्वतकस्तया स निहतो यस्तस्य राज्यार्द्धहृत् ।

ये शास्त्रेषु रसेषु च प्रणिहितास्तैरेव ते घातिताः
मौर्यस्यैव फलन्ति पश्य विविधश्रेयांसि मन्नीतयः ।। 2/ 16

मलयकेतु ने जो आभ्षण कञ्चुकी के द्वारा राक्षस को पहनने के लिये भिजवाये थे , राक्षस उसमें से एक आभ्षण चन्द्रगुप्त के गुप्तचर सिद्धार्थक को शकटदास के प्राण बचाने के बदले में पारितोषिक के रूप में दे देता है। इसी प्रकार पर्वतेश्वर के आभ्षण उसी की आज्ञा से शकटदास खरीदता है, जिनका प्रयोग चाणक्य ने बडी निपुणता से अपने कूटपत्र में राक्षस के विरोध में किया है। राक्षस न अपने गुप्तचर वैतालिकवेषधारी स्तनकलश से चन्द्रगुप्त और चाणक्य में भद डालने का प्रयास किया है, परन्तु वह इसमें सर्वथा असफल होता है। वह देखता है कि भद्रभट, भागुरायणादि से उसकी सेना सर्वथा घिरी हुई है। वह यह भो समझता है कि ये सभो चाणक्य के गुप्तचर हैं, परन्तु वह किकर्त्तव्यविमूढ है क्योंकि उसके पास इनके विरोध में कोई ठोस प्रमाण नही है और अन्त में हम देखते हैं कि मलयकेतु अपने इन्ही मित्रों से कैद कर लिया जाता है। राक्षस के मुख से चाणक्य के लिये अनायास निकल जाता है कि–

एकमपि नीतिबीजं बहुफलतामेति यस्य तव ।। 1/13।।

और चरम निराशा की स्थिति में अपने लिये कहता है–

मौर्यस्यैव फलन्ति पश्य विविधश्रेयांसि मन्त्रीतयः ।।1/13।।

पाँच म्लेच्छ राजाओं की मृत्यु के समय पञ्चम अंक में राक्षस कहता है –

'' तत्कथं सुहृद्विनाशाय राक्षसश्चेष्टते न रिपुविनाशाय ।

राक्षस की सबसे बडी निर्बलता यह है कि उसकी योजनायें इतनी विशाल है कि उसको यह स्मरण ही नहीं रहता है कि उसने किस गुप्तचर को किस कार्य के लिए नियुक्त किया हुआ है। वह उन गुप्तचरों के नाम भो भ्ल जाता है

'कस्मिन् प्रयोजने ममायं प्रहित इति प्रयोजनानां बाहुल्यान्न खलु अवधारयामि' (चतुर्थ अंक पृष्ठ 221)।

ओर अन्त में हम देखते हैं कि राक्षस अपने ही कूटनीतिक षड्यन्त्रों के परिणामस्वरूप सर्वथा एकाकी, निराश्रित और निराशाजनक स्थिति में पुनः कुसुमपुर लौटता है । इस बार वह किसी राजनीतिक योजना के निर्माण के लिये नहीं , अपितु अपने मित्र चन्दनदास के प्राणों की रक्षा के निमित्त लौटता है । इस प्रकार राजनीति में निष्णात होते हुये भो राक्षस की पराजय हुई किन्तु पराजित राक्षस भो हमारे सामने महान् है ।

16.2.7 नाटक का प्रतिनायक राक्षस –

राक्षस चाणक्य का प्रतिपक्षी है और इसीलिये प्रतिनायक है । राक्षस के अन्दर सभो गुण विद्यमान हैं जो किसी एक प्रतिनायक में होने चाहियें । दशरूपककार ने प्रतिनायक का लक्षण इस प्रकार किया है –

लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद् व्यसनी रिपु : –।। प्रकाश

यह लक्षण सर्वात्मना घटित नहीं होता है क्योंकि राक्षस लोभो न होकर निःस्वार्थ है । पुनरपि शत्रु होने के कारण उसका प्रतिनायकत्व अखण्ड़त है –

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार ने राक्षस को मौर्य साम्राज्य के शत्रु और नन्द साम्राज्य के पुनरुद्धारक के रूप में चित्रित किया है । सप्तम अंक में जाकर सहसा राक्षस के भाग्य में परिवर्तन हो जाता है और वह मौर्य साम्राज्य के प्रधान मन्त्री के रूप में रंगमञ्च से विदा लेता है । उसकी दुःखद महत्ता सभो सामाजिकों के आकषण का केन्द्र बनाती है ।

16.2.8 चाणक्य और राक्षस का तुलनात्मक चरित्र –

पात्रों के चरित्र–चित्रण के विधान में विशाखदत्त विरोधी का मूल्य खूब अच्छी प्रकार समझते और अनुभव करते हैं । उन्होंने पात्रों को दो–दो के समूह में रखा है और उसका चरित्र –चित्रण तुलना और विरोध के विधान के द्वारा किया है । उनके चरित्र चित्रण की यह महती विशेषता है कि प्रायः उनके पात्रों का चरित्र विरोध की पृष्ठभ्मि में प्रभाव–पूर्ण ढंग से चित्रित हुआ है । पात्रों की विरोधात्मक प्रवृत्तियों में कहीं पर भो ऐसा अनुभव नहीं होता है कि उनकी विरोध प्रवृति नाटक – कार की अपनी बनाई हुई मूर्तिमात्र है । उनका विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है। वे अपने चरित्र का निर्माण करने वाले स्वयं हैं ।

16.2.8.1 (क) चरित्रों में साधर्म्य –

चाणक्य और राक्षस दोनें ही साहसी योजनाओं के निर्माता हैं , जो कभो साधनों की चिन्ता नही करते । दोनों ही निःस्वार्थ हैं कुशल –राजनीतिज्ञ हैं , साहसी हैं और बहुविध साधनों से सम्पन्न हैं । दोनें ही पहले भिन्न–भिन्न उद्देशयों के प्रति अविचल भाव से संलग्न हैं । दोनों ही अपने उद्देशय की पूर्ति करने में तुच्छ से तुच्छ या जघन्य से जघन्य काम करने के लिये तैयार हैं ।

उनकी दृष्टि में साधन का मूल्य नहीं है , साध्य की सफलता है । दोनों का लक्ष्य है कि किसी भो साधन से –अच्छे या बुरे –अपने साध्य का ,अपने लक्ष्य को पूरा किया जाये दोनों ही एक –दूसरे को पराजित करने में प्रशंसा के पात्र हैं । दोनों ने ही अपनी राजनीतिक आकांक्षा को प्राप्त करने के लिए धोखा और हत्या को शस्त्र के रूप प्रयोग किया है । दोनो राजनीतिज्ञों ने एक 'दूसरे को जीतने के लिये एक ही प्रकार की भदनीति का आश्रय लिया है । तथापि जहाँ चाणक्य सफल हो गया है, वहाँ राक्षस को एक दुःखदायी पराजय का मुख दखना पडा है । इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीति के क्षेत्र में, कूटनीतिक षड्यन्त्रों में , साधन की अपरिमितता में और साध्य को ही सर्वात्मना सिद्ध करने में साधन की अपेक्षा करने में दोनों ही समान हैं ।

16.2.8.2 (ख) चरित्रों में वैधर्म्य –

चाणक्य विचारशील है, राक्षस भावुक है। चाणक्य निर्विकार बुद्धिजीवी है राक्षस भावावेश में बह जाता है और यही राक्षस की सबसे बडी दुर्बलता है । चाणक्य दूरदर्शी है और जिस किसी भो कार्य को करता हैं पूरी लगन के साथ करता है । चाणक्य अपने विचार में स्पष्ट है , आत्म–विश्वासी है और अपने कार्य के प्रति सतत जागरूक है । इसके विपरीत राक्षस कोमल प्रकृति का है किन्तु साथ ही पग–पग पर गलती करने वाला है । चाणक्य अपने गुप्त रहस्यों को छिपाने में समर्थ है। यहाँ तक कि कोई भो दो गुप्तचर परस्पर यह नहीं जानते कि वे दोनो चाणक्य के गुप्तचर हैं । किसी पर भो विश्वास न करने वाला है , फलतः उसकी नीति गुप्त है। इसके विपरीत राक्षस खुले हृदय का है , मित्रता रखने वाला और उदार है। चाणक्य का व्यक्तित्व इतना कठोर तथा गम्भोर है कि उसके अपने साथ काम करने वाले उसके मित्र तथा अनुयायी उससे ड़रते हैं , जबकि राक्षस अपने मित्रों और अनुयायियों से प्रेम किया जाने वाला है । चाणक्य अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में इतना व्यग्र ओर रत है कि उसकी चन्द्रगुप्त के प्रति किसी प्रकार की कोई कोमल भावना दृष्टिगोचार नही होती है क्योंकि उसके मस्तिष्क में कोमल भावनाओं के लिये कोई स्थान नही है। चाणक्य हृदय की अनुभतियों से दर और परे है। उसके लिये हृदय नाम की कोई वस्तु है ही नही। इसके विपरीत राक्षस ने एक कोमल, सहानुभतिमय मानवीय हृदय पाया है । वह महान् कतव्य की भावना से प्रेरित है । उसकी नन्दों के प्रति अविचल भक्ति है । उसके गुणों से आकृष्ट होकर उसके शत्रु भो उसकी प्रशंसा करते है। यह राक्षस के गुणों का ही प्रभाव है कि चाणक्य को राक्षस को जीतने के लिये अपनी योजनाओं को इतना लम्बा रूप देना पडा और यही उसके गुणों की विशेषता आगे चलकर उसकी पराजय का कारण बनी है । राक्षस अपने गुणों के कारण ही चाणक्य के हाथों में पड गया । राक्षस के सुकोमल गुणों के कारण ही नाटक में करूण रस का परिपाक हो सका है । निःसन्देह राक्षस ने षडयन्त्रों की योजना और उनका संचालन किया है चाणक्य की कूटनीतिक योजना को भग करने के लिये कूटनीतिक चालें भो चली हैं , परन्तु वह केवल षड्यन्त्रों के मध्य ही निवास नही करता है । इसके विपरीत चाणक्य षड्यन्त्रों का पुतला है । षड्यन्त्र उसकी प्रकृति का एक अविभाज्य अंग है । वह षड्यन्त्रों के मध्य रहता है और उसी जगत् में उठता बैठता है ।

राजनीति के अतिरिक्त उसे कुछ सूझता ही नहीं । जहाँ तक युद्ध के कौशल का सम्बन्ध है, चाणक्य शून्य है। राक्षस में यद्ध कौशल कूट–कूट कर भरा हुआ है। चाणक्य राक्षस के इस युद्ध–कौशल को भली–भाँति समझता और जानता है। वह राक्षस की संग्राम और सैन्य शक्ति संचालन के कारण ही उसके साथ युद्ध करने से कतराता है और इसीलिये कूटनीतिक प्रयोगों से वह उसको वश में करने का प्रयत्न करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारी सहानुभति राक्षस की पूर्ण पराजय के कारण उसके साथ होती है। उसकी आशाओं की समाप्ति में, उसके प्रयत्नों की निष्फलता में हमारा करूणाविगलित हृदय उसकी ओर उमड़ता है । उसकी अपने मित्र चन्दनदास के प्रति उच्च त्यागमयी भावना हमको उसके सम्मुख नतमस्तक कर देती है , हम श्रद्धा से उसकी ओर झुक जाते हैं किन्तु साथ ही उसकी परवशता पर हमकों दुःख भो होता है। चाणक्य की विजय सामाजिक के

हृदय को प्रभावित करती है, परन्तु राक्षस की महान् तपस्विता, त्याग और नियति अथवा चाणक्य के गुप्तचर द्वारा डाली गई विषम परिस्थिति एक साथ उसके प्रति सम्मान और करूणा के मिश्रत भाव को उत्पन्न करती है। चाणक्य को यदि अपनी बुद्धि पर भरोसा है तो राक्षस को अपनी तलवार पर । एक बुद्धि प्रधान है तो दूसरा पराक्रम प्रधान। चाणक्य धीर प्रकृति का है और राक्षस अधीर प्रकृति का और विस्मरणशील है । चाणक्य की नन्दों के प्रति घोर घृणा है, राक्षस की उनमें अगाध भक्ति है । एक कठोर और किसी के सामने न झुकने वाला है, जबकि दूसरा स्वभाव से कोमल और सज्जन है । चाणक्य दैव पर विश्वास नही करता, वह कट्टर पुरूषार्थवादी है जबकि राक्षस दैव पर आश्रित है, भाग्यवादी है।

जहाँ चाणक्य अपने चतुर गुप्तचर भागुरायण के कपट भद के द्वारा राक्षस और मलयकेतु के मध्य आन्तरिक फूट डालने में सफल हो जाता है , वहाँ राक्षस का प्रयत्न उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसी साधन के प्रयोग–अर्थात् चाणक्य और चन्द्रगुप्त में भद ड़ालने में –सर्वात्मना असफल हो जाता है। राक्षस का आत्मसमर्पण महान् है । चन्दनदास की मित्रता को अमर बनाने के लिए वह आत्मसमर्पण को भो अपने कर्तव्य के रूप में स्वीकार कर लेता है। राक्षस राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करना चाहता है, अतः उसके प्राप्त न होने पर निराशा का अनुभव करता है । चाणक्य राज्यलक्ष्मी के प्रति उदासीन है, अतःउसके लिये उसका कोई मूल्य नहीं है । राक्षस शीघ्र निराश हो जाता है, चाणक्य के पास निराशा फटकती भो नही । राक्षस अपनी सफलता के लिए अपने सहायकों पर आश्रित है, चाणक्य केवल अपनी बुद्धि पर आश्रित है। इस प्रकार हम देखतें है कि एक ही राजनीतिक धरातल पर रहकर विचरण करने वाले इन दोनों राजनीतिज्ञों में महान् अन्तर है और इस अन्तर को यदि चाणक्य के शब्दों में कहना चाहे तो वह कह सकते हैं कि –

चाणक्यस्त्वमपि च नैव केवलं ते साधर्म्यं मदनुकृतेः प्रधानवैरम् ।। 3/12

अर्थात् वह कहता है कि तुममें और मुझमें अन्तर है। परन्तु हाँ , मेरे साथ तुम्हारी केवल एक बात में समानता है और वह समानता है – प्रमुख राजा के साथ बैर करना। बुद्धिप्रकर्षादि में तो कोई समानता नहीं है। इस प्रकार चाणक्य और राक्षस में जो अन्तर है, वही अन्तर उन दोनों के सहायकों में भो है ।

16.2.9 (4) चन्द्रगुप्त –

मुद्राराक्षस नाटक के अन्दर चन्द्रगुप्त के चरित्र का विकास उस रूप में नहीं हुआ है , जिस रूप में एक मौर्य सम्राट् का होना चाहिए । सम्भवतः इसका कारण विशाखदत्त की यह दृष्टि रही हो कि वह सर्वात्मना अपने इस नाटक के नायक चाणक्य के चरित्र को ही सबके सामने लाना चाहता था । चन्द्रगुप्त तो केवल मात्र चाणक्य के हाथ की कठपुतली है ।

(''चाणक्यमतिपरिगृहीतं चन्द्रगुप्तमवलोक्य .....''द्वितीय अंक पृष्ठ 9),

अतः उसके चरित्र का विकास भो उसी रूप में हुआ है । हम देखते है कि सम्पूर्ण नाटक के अन्दर चन्द्रगुप्त का प्रभाव नगण्य सा है । उसे इस बात का दुःख है कि आर्य चाणक्य की कुटिल नीति के परिणाम स्वरूप उसको अपने पौरूष को दिखाने का अवसर ही नही मिला है। वह सप्तम अंक में कहता है कि –

विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति लज्जित एवास्मि ।।
मम हि – फलयोगमवाप्य सायकानां विधियोगेन विपक्षतां गतानाम् ।
न शुचेव भवत्यधोमुखानां निजतूणीशयनव्रतं प्रतुष्टयै।।

चन्द्रगुप्त नाटक के अन्दर हमारे सामने प्रमुख रूप से तृतीय अंक में आता है । सप्तम अंक में भो आता है किन्तु यहाँ केवल नाटक के पटाक्षेप के समय ही आया है।

चन्द्रगुप्त एक योग्य और विचारशील शासक है । उसमें विचारो की प्रौढ़ता और यौवन की अवस्था का उत्साह है। कञ्चुकी ने चन्द्रगुप्त का वर्णन इस प्रकार किया है –

सुविश्रब्धैरङ्गैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो यास्य गुरूणा ।

धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो ।
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न च दुःखं वहति च ।। 3/3

अर्थात् वह मनस्वी है, दम्य है । राज्य के भार को वहन करने के लिए तत्पर है । उसकी नवीन अवस्था है । यह सब कुछ होते हुये भो वह किसी प्रकार के दुःख का अनुभव नहीं करता है। वह लोकव्यवहार को जानने वाला है –

अभिज्ञः खल्वसि लोकव्यवहाराणाम् (प्रथम अ़ङ्क पृष्ठ 52) ।

उसके राज्य में किसी प्रकार के छल के लिए अवसर नहीं है । वह विद्रोहियों के प्रति कठोर है । उनको कठोर से कठोर दण्ड देने वाला है –

'' एवमपथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो राजा '' (प्रथम अङ्क ,पृष्ठ 73) ।

वह प्रकृतिप्रेमी है , तभो तो कौमुदीमहोत्सव के अवसर पर दिशाओं के सौन्दर्य को देखकर उसके हृदय में उल्लास की एक लहर उठ गई । वह व्यतमानावलेप है ।

शिष्य चन्द्रगुप्त का अपने गुरू चाणक्य में विश्वास पूर्ण और सर्वात्मना है । सारे नाटक के अन्दर चन्द्रगुप्त के लिये '' वृषल'' शब्द का प्रयोग हुआ है , जिसके आधार पर कतिपय विद्वानों ने उसे शूद्रकुलोत्पन्न माना है । राक्षस भो उसको कुछ इसी प्रकार समझता है क्योंकि वह कहता है कि –

पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चैरभिजनं
गता छिद्रेण श्रीर्वृषलमविनीतेव वृषली । 6/7

यह भो सम्भव हो सकता है कि राक्षस का चन्द्रगुप्त को ऐसा कहना केवल मात्र आक्रोश हो । वृषल का अर्थ '' राज्ञां वृषः वृषल : –राजराजेश्वरः '' – ऐसा भो होता है । चाणक्य अपने प्रिय शिष्य , युवक राजा चन्द्रगुप्त को अपने प्रिय नाम 'वृषल' कहकर ही बुलाता है – जिसका अर्थ होता है प्रौढ़ बैल । हम देखते हैं कि सम्पूर्ण नाटक में चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को ''वृषल'' शब्द से ही अभिहित किया है । सम्भवतः इसलिये कञ्चुकी कहता है कि चाणक्य का इसको वृषल कहना सर्वथा उचित है

'' तत्स्थाने खल्वस्य वृषलोऽद्यश्चन्द्रगुप्त इति '' (तृतीय अंक , पृष्ठ 169)

केवल नाटक की समाप्ति पर सप्तम अंक में पृष्ठ 420 पर चाणक्य ने वृषल न कहकर '' भो राजन् चन्द्रगुप्त '' ऐसा 'राजन् ' कहकर सम्बोधन किया है । चन्द्रगुप्त का चाणक्य के प्रति अटूट विश्वास है और इसीलिये वह स्तनकलश के समान किसी भो गुप्तचर से ठगा या धोखा नहीं खा सका । चन्द्रगुप्त पूर्णरूप से अपने गुरू के संरक्षण में है। वह राज्य के उत्तरदायित्व को भो लेने के लिये तैयार नहीं है। वह चाणक्य पर इतना अधिक निभर है कि वह किसी भो कार्य को स्वतन्त्र रूप से करने में सर्वथा असमर्थ है। चन्द्रगुप्त के विषय मे राक्षस की धारणा है कि किसी और राजा के लिए तो अमात्यव्यसन नही हो सकता है किन्तु चन्द्रगुप्त के लिये तो अमात्यव्यसन सबसे बड़ा व्यसन है क्योकि वह सचिवायत्तसिद्धि है । राक्षस को तो यह भो विश्वास है कि चन्द्रगुप्त तो स्वयं ही राज्य कार्य सम्भाल कर हमारी सेना के आक्रमण का प्रतिकार कर सकता है और न ही किसी दूसरे पर अपने राज्य भार को ड़ाल सकता है । उसका तो कहना है कि –

''चन्द्रगुप्तस्तु दुरात्मा नित्यं सचिवायत्तसिद्धावेव स्थितश्चक्षुर्विकल
इवाप्रत्यक्षलोकव्यवहार : कथमिव स्वयं प्रतिविधातुं समर्थ : स्यात् ''(पृष्ट 246) ।

राक्षस की दृष्टि में वह '' अदृष्टलोकव्यवहारमन्दधी :'' है ।

नृपोऽपकष्टः सचिवात्तर्दणः स्तनन्धयोऽत्यन्तशिशु : स्तनादिव ।
अदृष्टलोकव्यवहारमन्दधीर्मुहूर्तमप्युत्सहते न वर्तितुम् ।। 4/14

क्योंकि उसके लिए राज्य भोगविलास के लिए है, कर्तव्य पालने के लिए नही । चाणक्य स्वयं इस बात की पुष्टि करता है कि वह सचिवायत्तसिद्धि है । चन्द्रगुप्त पूछता है कि मै यह जानना चाहता हूँ कि आपने ''कौमुदी–महोत्सव '' का मनाया जाना क्यों रोक दिया ? चाणक्य उत्तर देता है कि –

''सचिवायत्तसिद्धेस्तव किं प्रयोजनान्वेषणेन'' (तृतीय अंक पृष्ठ 1, 6)

अर्थात् तुमको इससे क्या तात्पर्य ? इस विषय में हम ही जानेंगे । यह हमारे अधिकार क्षेत्र की बात है । एक स्थल पर चाणक्य कहता है –

'' वृषल एव केवलं प्रधानप्रकृतिरस्मास्वारोपितराज्यतन्त्रभार : सततमुदास्ते '' (प्रथम अंक, 35 पृष्ठ)।

चन्द्रगुप्त चाणक्य पर सब कुछ छोड़कर निश्चिन्त है । किन्तु वह क्यों निश्चिन्त है इसका उत्तर उसने सप्तम अंक में दिया है –

जगतः किं न विजितं मयति प्रविचिन्त्यताम्
गुरौ षाड्गुण्यचिन्तायामार्ये चार्ये च जाग्रति ।। 7 /13

और ठीक भो है, जिसके गुरू निरन्तर जागरूक है, वह निश्चिन्त होकर राज्य का उपभोग क्यों न करे ? चन्द्रगुप्त की सम्मत्ति है –

विगुणीकृतकार्मुकोऽपि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव ।
स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूका :।।7/ 11

यही वे कारण है जिनसे वह स्वभाविक रूप से नाटक की पृष्टभ्मि में पड़ जाता है और इसलिए उसको नाटक का नायक स्वीकार नही किया जा सकता । चन्द्रगुप्त के चरित्र पर प्रकाश डालने वाली उसकी यह स्वगत उक्ति है –

इह विरचयन् साध्वीं शिष्यः क्रियां न निवार्यते ।
त्यजति तु यदा मार्गं मोहात्तदा गुरुरंकुश :

विनयरुचयस्तस्मात्सन्त : सदैव निरंकुशा :
परतरमत : स्वातन्त्रेभ्यो वयं हि पराङ्मुखा : 6/ 7

इससे मालूम पड़ता है कि वह एक सुयोग्य गुरू, सुयोग्य शिष्य है । वह गुरू के नियंत्रण में रहना चाहता है इस नियंत्रण में रहते हए वह प्रत्येक कार्य को सहर्ष स्वीकार कर सकता है–

''अथवा शश्वदार्योपदेशसंस्क्रियमाणमतय : सदैव स्वतन्त्रः वयम् '' (तृतीया अंक पृष्ठ 152)

वह अपने व्यक्तित्व को उभारने वाली स्वतन्त्रता नहीं चाहता । आर्य चाणक्य के कृतक–कलह के आदेश को उसने पाप के समान स्वीकार किया है ।

चन्द्रगुप्त एक क्षण के लिये भो चाणक्य को क्रोध की मुद्रा में नही देखना चाहता । चाणक्य का क्रोध उसको शिव के ताण्ड़व नृत्य का स्मरण दिला देता है । उसका बनावटी क्रोध भो उसको वास्तविक प्रतीत होता है –

'' अये , कथं सत्यमेवार्य : कुपित '' (तृतीय अंक पृष्ठ 202) ।

चाणक्य ने निम्न श्लोक में नन्द से चन्द्रगुप्त की तुलना करते हुये कहा है कि –

उत्सिक्तः कुसचिवदृष्टराज्यभारो
नन्दोऽसौ न भवति चन्द्रगुप्त एष : ।। 2 / 12

अर्थात् नन्द के समान चन्द्रगुप्त न तो उत्सिक्ति है ओर न ही कुसचिवदृष्टराज्यभार है। वह नन्द के समान धन का लोभो नहीं है प्रजा, का अनुरञ्जन ही उसका एकमात्र लक्ष्य है। क्योंकि

'' चन्द्रगुप्तराज्यमिदं न नन्दराज्यम् । नन्दस्यैवार्थरुचेरर्थसम्बधः प्रीतिमुत्पादयति । चन्द्रगुप्तस्य तु भवतामपरिक्लेश एव ''(प्रथम अंक पृष्ठ 63) ।

राज्य के विषय में चन्द्रगुप्त के विचार – राज्य के विषय में चन्द्रगुप्त का विचार है कि –

'' राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम् '' (तृतीय अंक पृष्ठ 150)

अर्थात् यदि कोई राजा राज्यधर्मों का पालन करना चाहता है तो राज्य उसके लिए सुख के स्थान पर दुःख की सृष्टि करने वाला है । क्योंकि –

परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता
परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थो क्षितिपतिः।

परार्थश्चेत्स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्ः।
परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः।।3/4।।

चन्द्रगुप्त की दृष्टि में राज्यलक्ष्मी दुराध्या है –

''दुराराध्या हि राज्यलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि राजभिः'' (तृतीय अंक,पृष्ठ 151)।

और यही कारण है कि वह इतना अधिक चाणक्य पर निभर करता है कि उसके स्वतन्त्र चरित्र का विकास नाटक के अन्दर कहीं भो देखने में नही आता है। कृतक–कलह के अनन्तर कुछ काल तक उसने स्वतन्त्र रुप से राज्यकार्य का सञ्चालन किया है, किन्तु उस समय में भो चाणक्य का निर्देशन अवश्य रहा होगा – ऐसा सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है ।

नाटक की समाप्ति पर चन्द्रगुप्त को देखकर राक्षस के मुख से अनायास निकल पडता है – अये, अयं चन्द्रगुप्तः। य एष –

बाल एव हि लोकेऽस्मिन् संभावितमहोदयः।
क्रमेणारूढवान् राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः ।।7/12।।

सिंहासन पर अधिष्ठित चन्द्रगुप्त को देखकर चाणक्य की यह अनुभ्ति है –

नन्दैर्वियुक्तमनपेक्षितराजराजै –
रध्यासितं च वृषलेन वृषेण राज्ञाम् ।

सिंहासनं सदृशपार्थिवसंगतं च
प्रीतिं परां प्रगुणयन्ति गुणा ममैते ।। 3/18 ।।

अर्थात् नन्द से वियुक्त ,चन्द्रगुप्त से अध्यासित और योग्य राजा से युक्त – ये सभो गुण मिलकर चाणक्य के हृदय में एक अनुपम आह्लाद और संतोष को उत्पन्न कर रहे हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य सम्राट् के रूप में और अपनी प्रभशक्ति को अपने प्रधानमन्त्री की मन्त्रशक्ति की संरक्षकता में छोड़कर निश्चिन्त होकर रहने वाले के रूप में चित्रित किया गया है । चाणक्य के प्रति उसकी अगाध श्रद्वा,भक्ति और विश्वास है । नाटक की समाप्ति पर राक्षस के साथ मैत्री हो जाने पर वह अत्यन्त प्रसन्न है । चाणक्य चन्द्रगुप्त को पाकर गर्वित है और चन्द्रगुप्त चाणक्य को पाकर निश्चिन्त है।

16.2.10 मलयकेतु –

मलयकेतु एक पर्वतीय राजकुमार है । इसके पिता का नाम पर्वतक है। इसके पिता की मृत्य विष कन्या के द्वारा हुई थी। मलयकेतु को यह मालूम है कि उसके पिता की मृत्यु में

चाणक्य का हाथ है और राक्षस ने यही सोचकर इस मलयकेतु का आश्रय लिया है कि यह अपने पिता की मृत्यु का बदला अवश्य लेगा । इस प्रकार मलयकेतु का आश्रय लेने से राक्षस के प्रयोजन सिद्धि होते है 1. नन्दवंश के समूल विनाश का बदला और 2. अपने पिता की मृत्यु से कुपित मलयकेतु को नन्द राज्य पर प्रतिष्ठित करना । यह पराक्रमी है, विजिगीषु भो है परन्तु राजनीति के ज्ञान से सर्वथा शून्य है । यह विवेक – शून्य है, अविवेकी है, परिणाम के विषय में बिना सोचे विचार काम करने वाला है, अतः असमीक्ष्यकारी है । ऐसा मालूम पड़ता है कि बुद्धि का उपयोग करना जानता ही नही है । किसी पर भो सन्देह नही करता है हृदय का गम्भोर नही है । उद्धत, अशान्त और धीरोद्धत प्रकृति का है । प्रतिष्ठा करने में कृपण है । यह मनुष्यों को पहिचानने में असमर्थ, अपरिपक्क बुद्धि वाला है । अयोग्य और अहंकारी युवक है।

16.2.10.1 मलयकेतु की विवेकशून्यता –

पंचक अंक के अन्दर मलयकेतु पीछे जाकर भागुरायण की आंखो को बंद कर लेना चाहता है। इससे बढ़कर उसकी और क्या मूर्खता होगी कि उसने अपने नीचे काम करने वाले व्यक्ति को अनुचित महत्त्व दे रखा है इसी बात को यदि दूसरे शब्दों में कह सकते है कि मलयकेतु सर्वथा भागुरायण के वश में हो गया है और भागुरायण के वश में होने का यही परिणाम है कि जैसे–जैसे भागुरायण उसकों राक्षस के विरोध में समझता जाता है , वैसे ही मलयकतु समझता जाता है वह अपनी बुद्धि का प्रयोग बिल्कुल भो नही करता है। मलयकेतु को इस बात पर गर्व व सन्तोष है कि –

''दिष्ट्या न सचिवायत्ततन्त्रोऽस्मि '' (4 अंक पृष्ठ 240)

किन्तु उसकी यह विचारधारा ही उसकी सबसे बड़ी मूर्खता है। उसकी मूर्खता का ही यह परिणाम है कि वह भागुरायण के बहकाने में आ गया है। राक्षस पर अविश्वास करता है और छिपकर वह उसकी बात को सुन लेना चाहता है , जिस बात को वह नही बतायेगा। उससे छिपा लेगा। क्योंकि उसकी विचारधारा है –

सत्वभङ्गभयाद्राज्ञां कथयन्त्यन्यथा पुरः।
अन्यथा विवृतार्थेषु स्वैरालापेषु मन्त्रिणः।। 4/8

राक्षस की सामान्य बात को भो भागुरायण ने अन्यथा करके समझाया है और मयलकेतु इतना मूर्ख है कि वह इस बात को समाझता ही नहीं है । भागुरायण ने मलयकेतु के हृदय मे एक संशय उत्पन्न कर दिया है और इसी का यह परिणाम है कि यह अमात्यराक्षस की अपेक्षा भागुरायण पर अधिक विश्वास करने लगा है ।

यह अयोग्य मलयकेतु एक समय तो अपने पिता के मित्र राक्षस पर विश्वास करता है, किन्तु उसी समय वह अपने शत्रु चाणक्य के गुप्तचर भागुरायण पर विश्वास करता है। राक्षस यद्यपि गुणी है , किन्तु इस विषय में वह बड़ा ही दुभाग्यशाली है कि उसने अपने भाग्य को कुमार मयलकेतु के साथ जोड़ा है । उसका विश्वास राक्षस के प्रति आधे हृदय से है । इसी अविश्वास के कारण हृदय में राक्षस के प्रति दो विकल्प उठ खड़े हुए है – 1. क्या यह मौर्य चन्द्रगुप्त के साथ संधि कर लेगा अथवा 2. मेरे प्रति सत्प्रतिज्ञ होगा । किन्तु इस मलयकेतु की विचार धारा के विपरीत राक्षस की तो यह मान्यता है कि –

यो नष्टानपि बीजनाशमधुना श्शुश्रूषते स्वामिन –
स्तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ संधास्यते राक्षसः ।

एतावद्भि विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन नालोचितं
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति ।। 6 / 8

हृदय का गम्भोर न होने के कारण ही वह भागुरायण जैसे चाणक्य के गुप्तचर से ठगा गया है । इसका विश्वास और अविश्वास समान रूप से गलत स्थानों पर है । राक्षस पर पंचम अंक में अभियोग चल रहा है । अभियोग है मलयकेतु के प्रति विश्वास घात और चन्दगुप्त

के साथ सन्धि की चर्चा । इस अभियोग की चरम परिणति उस समय होती है , जबकि पत्र के लेख को मिलाने के लिये शकटदास को न बुलाकर भागुरायण के कहने से केवल मात्र उसके लेख की प्रतिलिपि मंगाई जाती है और मूर्ख मलयकेतु भागुरायण के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है

यदि उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया होता, तो नाटक का अन्त और मलयकेतु का भाग्य कुछ दूसरा ही होता।

पर वह तो भागुरायण के द्वारा राक्षस के विरोध मे इतना भर दिया गया है कि अब उसे राक्षस की प्रत्येक गतिविधि के विरोध में किया जाने वाला षड़यन्त्र दिखाई देता है। मलयकेतु राक्षस की भर्त्सना करता है। उसे भला बुरा कहता है और मलयकेतु की बुद्धि पर आश्चर्य तो तब होता है, जबकि वह क्षपणक कि इस बात पर विश्वास कर लेता है कि चाणक्य ने तो विष कन्या का नाम भो नहीं सुना ? मलयकेतु के राक्षस के प्रति आक्रोश की चरम परिणति इस रूप में व्यक्त हुई है

मित्रं ममेदमिति निर्वृतचितचित्तवृतिं
विश्रम्भतस्त्वयि निवेशितसर्वकार्यम् ।

तातं निपात्यं सह बन्धुजनाश्रुतोयै –
रन्वर्थतोऽपि ननु राक्षस राक्षसोऽसि ।। 5 /6

तुम केवल नाम्ना ही राक्षस नहीं हो अपितु कमणा भो राक्षस हो । इस प्रकार मलयकेतु चाणक्य के गुप्तचरों के जाल में फँस कर राक्षस का घोर अपमान करता है । जिसे अनुभव करके षष्ठ अंक में राक्षस कह उठता है –

'' अहो विवेकशून्यता म्लेच्छस्य '' पृष्ठ357 ।

मलयकेतु राक्षस के इतने ही तिरस्कार से शान्त नही होता अपितु वह तो कहता है कि–

चन्द्रगुप्तस्य विक्रेतुरधिकं लाभमिच्छत : ।
कल्पिता मूल्यमेतेषां क्रूरेण भवता वयम् ।। 5/17

अन्त मे मलयकेतु अपने हृदय की वास्तविक अनुभ्ति को इस रूप में प्रकट करता है–

कन्यां तीव्रविषप्रयोगविषमां कृत्वा कृतघ्न त्वया
विश्रम्भप्रवणः पुरा मम पिता नीतः कथाशेषताम् ।

सम्प्रत्याहितगौरवेण भवता मन्त्राधिकारे रिपौ
प्रारब्धा : प्रलयाय मांसवदहो विक्रेतुमेते वयम् । 5 / 21

राक्षस के लिये इससे बड़ा आघात क्या होगा ? उसके मुख से केवल इतना ही निकला है कि –

''शान्तं पापं शान्तं पापं । नाहं पर्वतेश्वरे विषकन्यां प्रयुक्तवान् ''पंचम अंक पृष्ठ 667

इस प्रकार हम देखते हैं कि चतुर्थ और पंचम अंक में मलयकेतु के चरित्र के वर्णन के साथ साथ मलयकेतु की विवेक शून्यता का भो वर्णन है , जिसने अपने अविवेकिता से राक्षस को तिरस्कार और अपमान ही नही किया अपितु राक्षस के अत्यन्त विश्वासी उन पाँच मलेच्छ राजाओं को भो मृत्यु के घाट उतार दिया जो राक्षस की सेना के केन्द्र बिन्दु थे । इस विवेक शून्यता का भयंकर परिणाम उसकी पराजय में देखा जा सकता है । जिन भागुरायणदि को उसने अपना समझा, अपने निकट किया, उन्होंने उसको कैद कर चाणक्य की सेवा में उपस्थित कर दिया

जो मलयकेतु सुगाड.ग़ प्रासाद में स्थित सिंहासन पर बैठने की अभिलाषा रखता था, जो मौर्य चन्द्रगुप्त को हराकर स्वयं सम्राट् बनना चाहता था , जिस मलयकेतु की यह प्रतिज्ञा थी कि –

वक्षस्ताडनभिन्नरत्नवलयं भ्रष्टोत्तरीयांशुकं
हाहेत्युच्चरितार्तनादकरुणं भूरेणुरूक्षालकम् ।

तादृड़.मातृजनस्य श्शोकजनितं सम्प्रत्यवस्थान्तरं
त्रुटिषु मया विधाय गुरवे देयो निवापाञ्जलिः ।। 4/5

जिसकी आज्ञा को अनुयायी राजागण समुद्र की मर्यादा के समान पालन करते थे , जो आभिरामिक गुणों से युक्त था, जिसकी उत्कृष्टतम सेना थी और जिसको आधार बनाकर राक्षस ने नन्दवंश के विनाश का बदला लेने का स्वप्न देखा था, वही मलयकेतु अपनी अविवेकता से , अपने अस्थिर स्वभाव से राक्षस का केवल अपमान ही नही करता अपितु स्वयं ही शत्रुओं के हाथ से पराजित हो जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चतुर्थ और पंचम अंक में मयलकेतु के जिस प्रकार के चरित्र का विकास हुआ है , वह राक्षस के आश्रय का उचित पात्र नहीं था । क्रोध से अन्धा होकर वह राक्षस से कहता है कि –

विष्णुगुप्तं च मौर्य च सममप्यागतौ त्वया ।
उन्मूलयितुमीशोऽहं त्रिवर्गमिव दुर्नय : ।। 5 / 22

इस प्रकार अनजाने में ही उसने अपनी तुलना 'दुर्नीति' से की है । संक्षेप में वह कृतघी और कृतवेदी नही है। पुरूषों को वह पहिचानने में सर्वथा असमर्थ है ।

16.2.11(6) चन्द्रगुप्त और मलयकेतु का तुलनात्मक चरित्र –

पात्रों का चरित्र –चित्रण युगलरूप में किया गया है । जिस प्रकार का चरित्रों में विरोध चाणक्य और राक्षस में दिखाई देता है, वैसा ही विरोधात्मक चरित्र चन्द्रगुप्त और मलयकेतु के मध्य दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि ये दोनों ही क्रमशः चाणक्य और राक्षस के राजनीतिक शतरञ्ज के मोहरें है, तथापि ऐसा कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त सर्वात्मना चाणक्य के आश्रित है, वह कठपुतली मात्र है , इसके विपरीत मलयकेतु ने अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को राक्षस के हाथों में सर्वात्मना नहीं सौंपा है । वह अपने व्यक्तित्व की रक्षा करना चाहता हुआ भो चाणक्य के गुप्तचरों से घिरा हुआ कर नहीं पाता है । इससे यह निष्कर्ष भो निकाला जा सकता है कि चन्द्रगुप्त को चाणक्य पर पूर्ण विश्वास है और मलयकेतु की वैसी दृढ़ आस्था राक्षस के प्रति नही है । उसका विश्वास आधे हृदय से है । मलयकेतु का राक्षस के प्रति यही अविश्वास उसके पतन और पराजय का मूल कारण है । उसका विश्वास और अविश्वास दोनों ही समान रूप से अनुचित स्थान पर हैं,

यथा – राक्षस के प्रति अविश्वास और भागुरायण के प्रति विश्वास । चन्द्रगुप्त नीच जाति से उत्पन्न होता हुआ भो महत्वाकाँक्षी है , उसका चरित्र उज्ज्वल है ,सुशिक्षित है और योग्य है। इसके विपरीत पर्वत निवासी मलयकेतु अयोग्य है, दुरभिमानी है, कमजोर चरित्र का और मिथ्या हठी है । राक्षस का उसके प्रति प्रेम पुत्र के समान है । इस नाटक के पात्र केवल मात्र कल्पना प्रसूत नहीं हैं , और चरित्र की दृष्टि से भो सर्वथा निष्कलंक नहीं है और ऐसा भो नही कहा जा सकता है कि पूर्ण आदर्श चरित्र मूर्ति हैं । चन्द्रगुप्त और मलयकेतु दोनों ही नाटक में अधिक शक्तिशाली पात्र नहीं हैं । चन्द्रगुप्त तो एक प्रकार से निष्क्रिय और कठपुतली मात्र है। उसके अन्दर एक बार के लिए भो अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को प्रकट करने की इच्छा नहीं होती है ।

इसके विपरीत मलयकेतु राक्षस पर आश्रित भो है और उससे भिन्न अपने अस्तित्व को रखने वाला भो राक्षस उसके लिए केवल मात्र मार्गदृष्टा है ,निर्देशक है । उसका अपना मन्त्री तो

भागुरायण है और इसीलिए वह उसके वश में है । चन्द्रगुप्त आदर्श शिष्य है, जो अपने आचार्य चाणक्य की आज्ञा को बिना किसी ननुनच के स्वीकार कर लेता है । प्रभशक्ति के साथ मन्त्रशक्ति की उपयोगिता को अच्छी प्रकार समझता है । मलयकेतु चन्द्रगुप्त से विपरीत चरित्र वाला है । चन्द्रगुप्त शान्त और गम्भोर है , मलयकेतु अशान्त, उद्धत और उजड्ड़ है ।

चन्द्रगुप्त गुरुभक्त, प्रजानुरञ्जक और दृढ़ पराक्रमी नृपति है , यद्यपि उसका पराक्रम देखा नहीं गया है। इसके सामने अपने उपकारी को न पहिचानने वाला मलयकेतु एक सामान्य अनुभवहीन युवक मात्र है । चन्द्रगुप्त योग्य और विचारशील शासक है, मलयकेतु बुद्धिहीन, अयोग्य और अपरिपक्व बुद्धिवाला है।

यह यौवन की प्रचण्ड़ता से युक्त , स्थितियों के विश्लेषण में असमर्थ ,शीघ्रकारी आर विवेकशून्य है । एक सुशिक्षित है और दूसरा अशिक्षित । चाणक्य को चन्द्रगुप्त की देखभाल करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु राक्षस को मलयकेतु पर अपनी दृष्टि रखती पड़ती है । संक्षेप में, चन्द्रगुप्त द्रव्य है और मलेच्छ मलयकेतु अद्रव्य है । अपने उद्देश्य में निराश राक्षस चन्द्रगुप्त और मलयकेतु के चरित्र का विश्लेषण करता हुआ मन कहता है कि

द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनोऽपि
नेतुः यशस्विनि पदे नियतं प्रतिष्ठा ।

अद्रव्यमेत्य भुवि शुद्धनयोऽपि मन्त्री
शीर्णाश्रयः पतति कूलजवृक्षवृत्त्या ।। 7/14

अर्थात् द्रव्य प्राप्ति प्रतिष्ठा कराती है और अद्रव्य प्राप्ति पतन कराती है और इसीलिये हम देखते है कि चन्द्रगुप्त को पाकर चाणक्य को सफलता मिलती है और मलयकेतु का आश्रम लेकर राक्षस अपमानित और तिरस्कृत ही नही होता अपितु एकाँकी, अपने सहायकों से परित्यक्त, अतीत की स्मृतियों में अपने दुःख को भ्ल जाने का प्रयत्न करता हुआ दिखाई देता है । चन्द्रगुप्त कृतवेदी है और मलयकेतु उपकार करने वाले व्यक्ति को भो नहीं पहिचान पाता है । इस प्रकार दोनों के चरित्रों में महान् अन्तर है । दोनों ही चरित्र की दृष्टि से एक–दूसरे के प्रति 36 के अंग के समान है । विशाखदत्त ने इस प्रकार के युगल पात्रों का निर्माण करके अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित किया है । इस प्रकार के चरित्रों के चित्रण में वे एक सफल चित्रकार है ।

16.2.12अन्य पात्र –

चाणक्य ,राक्षस , चन्द्रगुप्त और मलयकेतु के अतिरिक्त इस नाटक के अन्दर अन्य गौण किन्तु प्रमुख भ्मिका करने वाले पात्रों का भो चित्रण हुआ है । इनमें से कोई भो निरूद्देश्य चित्रित किया हुआ नहीं दिखाई देता है । प्रत्येक पात्र अपने आप में पूर्ण है और नाटक की दृष्टि से उसके चरित्र का जितना विकास अपेक्षित है , हुआ है। सभो पात्र अच्छे और बुरे का मिश्रण है। विशाखदत्त के ये छोटे पात्र भो सशक्त है । नाटक के चित्रकार की तूलिका ने इनमें भो जीवन रस भरा है । सभो पात्र अपने आप में स्पष्ट और यथार्थ है । नाटक के इन पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कोई भो पात्र किसी दूसरे पात्र के कार्य को नहीं कर सकता है । सभो अपने–अपने क्षेत्र में महान् हैं । अपने–अपने कार्य में कुशल और निष्णात ह ।

16.2.12.1 भागुरायण और सिद्धार्थक –

इस नाटक में भागुरायण का नाम हमारे कानों में सबसे पूर्व प्रथम अंग की समाप्ति पर आता है, जहाँ चाणक्य का शिष्य शाङ्गरव सूचना देता है कि भागुरायण भाग गया है।

4 इसी ने मलयकेतु को यह कहकर कि तुम्हारे पिता को चाणक्य ने मरवाया है, कुसुमपुर से भगा दिया है । इसी प्रकार प्रथम अंग के अन्दर ही हमको चाणक्य के स्वागत से इस बात की सूचना मिलती है कि चाणक्य ने सिद्धार्थक को शकटदास का कपट मित्र बनाकर

उसकी गतिविधि को जानने के लिए नियुक्त किया हुआ है । साथ ही इसके विषय में यह भो सूचना मिलती है कि वध्यस्थल से शकटदास को छुडाकर भाग गया है । भागुरायण सेनापति सिंहबल का छोटा भाई है । यह मलयकेतु के पास जाकर उसका अमात्य बन गया है । इसके पश्चात् भागुरायण चतुर्थ और पंचम अंग में हमारे सामने रंगमच पर आता है । सिद्धार्थक शकटदास के प्राणों की रक्षा के कारण राक्षस की नौकरी कर लेता है और पंचम अंक में अपने पूर्ण चरित्र के साथ दिखाई देता है । चाणक्य के कार्य का निर्वाह करने में इनकी अपनी इच्छाशक्ति उतना काम नहीं करती,जितना कि चाणक्य का भय और उसकी आज्ञा का पालन । इन दोनों के व्यक्तित्व को इस प्रकार पृथक्– पृथक् देखा जा सकता है । इनमें से एक भागुरायण अपने कार्य से घृणा करता है और एकान्त में उनका प्रायश्चित करता है और दूसरे सिद्धार्थक का अन्तः करण अपने आप को परिस्थिति के अनुसार ढाल लेने की प्रकृति वाला है । भागुरायण यद्यपिम मलयकेतु का मित्र बनाकर उसे धोखा देना उचित नहीं समझता, तथापि सेवक होने के कारण उसे इच्छा या बुरे का विचार करने का अधिकार ही नहीं है । उसे दुःख है कि उसने धन के लिए अपने शरीर को बेच दिया है , अपनी अन्तःकरण की भावना को कुचल दिया है । वह सोचता है –

'' कष्टमेवमप्यस्मासु स्नेहवान्कुमारो मलयकेतुरतिसंधातव्य इत्यहो दुष्करम् ''।

अथवा–

कुले लज्जायां च स्वयशसि च माने च विमुखः,
शरीरं विक्रीय क्षणिकमपि लोभाद्धनवति।

तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना
विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति।। 5/4

राजवंश का होने के कारण उसको अपने स्वाभिमान का सदैव ध्यान रहता है , तथापि चाणक्य की महत्वाकांक्षा को अपना सर्वस्व मानते हुये वह अपनी भावनाओं का हनन करके भो उसकी कार्यसिद्धि करता है । भागुरायण और सिद्धार्थक दोनों ही अपने लक्ष्य को ईमानदारी और विश्वास के साथ निबाहते है । भागुरायण जिस समय अपने कार्य को सम्पन्न कर रहा होता है, पश्चताप का अनुभव करता है क्योकि उसके मन, बुद्वि और हृदय गम्भोर विश्वासघात के प्रति घृणा करते है ,उस विश्वासघात के प्रति जिसको वह मलयकेतु से करता है । परन्तु दूसरा, सिद्धार्थक अपने अनुकूल कर लेने वाले अन्तःकरण से, अपने स्वामी के आदेश के गुणावगुणों की ओर से सर्वथा अपनी आँखेंबन्द कर लेता है । वह षष्ठ अंक में अपने मित्र सिद्धार्थक से कहता है

''वयस्य,को जीवलोके जीवितुकाम आर्यचाणक्यस्याज्ञप्तिं प्रतिकूलयति। तदेहि। चाण्डालवेषधारिणो भूत्वा चन्दनदासं वध्यस्थानं नयावः'' (पृष्ठ 350) ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही अपने कार्य में निपुण हैं न भागुरायण के कार्य को सिद्धार्थक कर सकता है और न ही सिद्धार्थक के काम को भागुरायण ।

16.2.12.2 विराधगुप्त और शकटदास –

विराधगुप्त के दर्शन हमको दूसरे अंक में होते हैं, जहाँ उसने राक्षस को विस्तारपूर्वक कुसुमपुर के समाचार सुनाये हैं । इसके बाद हमकों इसका कुछ पता नहीं चलता है। शकटदास के नाम की चर्चा प्रथम अंक में आती है , जबकि उसको चाणक्य की योजना से सिद्धार्थक वध्यस्थान से भगाकर ले गया है । यहाँ से भागकर हम उसको राक्षस के पास भागकर दूसरे अंक में देखते है इसके नाम की चर्चा पंचम अंक में भो आती है, परन्तु भागुरायण की चालाकी से वह घटनास्थल पर उपस्थित नहीं होता है । इसके प्रति राक्षस के हृदय में उत्पन्न होने वाला सन्देह सप्तम अंक में चाणक्य के इस वाक्य से –

'शकटदासोऽपि तपस्वी तं तादृशं लेखमजानन्नेव कपटलेखं मया लेखित इति'। (पृष्ठ 406)

दूर होता है और वह संतोष का अनुभव करता हुआ मन ही मन कहता है कि

'' दिष्ट्या शकटदासं प्रत्यपनीतो विकल्पः'' (पृष्ठ 406) ।

विराधगुप्त और शकटदास दोनों ही राक्षस के प्रति गहरी प्रेम भावना के कारण अपने कार्य में प्रवृत्त होते है और उनकी यह आन्तरिक अभिलाषा है कि राक्षस के लिए कुछ काम करें । विराधगुप्त का निर्व्याज कार्य सुन्दर है । शकटदास की सत्यता अनुकरणीय है। विराधगुप्त का गुप्तचरत्व और शकटदास की ईमानदारी अनुभव करने की वस्तु है। राक्षस के सहायक उसकी सहायता अवश्य करते हैं और वह सहायता पूरे ह्दय से भो करते हैं किन्तु उनमें वह कतव्यनिष्ठा और महत्वाकाँक्षा नहीं जो हम चाणक्य के सहायकों में पाते हैं । विराधगुप्त राक्षस का विश्वासपात्र गुप्तचर है किन्तु उसके मन में चाणक्य की विजय और राक्षस की विजय का सन्देह निरन्तर बना रहता है । वह कहता हैः –

कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्ति
मन्ये स्थिरां मौर्यनृपस्य लक्ष्मीम् ।

उपायहस्तैरपि राक्षसेन
निकृष्यमाणामिव लक्षयामि ।।2/2 ।।

'' तदेवमनयोर्बुद्धिशालिनो सुसचिवयोर्विरोधे संशयितेव नन्दकुललक्ष्मीः ''

(द्वितीय अंग. पृष्ठ 88) ।

शकटदास राक्षस का परम विश्वासपात्र लेखाध्यक्ष है किन्तु वह एक ऐसी गलती कर देता है जिससे राक्षस की सारी योजना मिट्टी में मिल जाती है अर्थात् वह सिद्धार्थक के जाल में फंसकर चाणक्य के लिए उस कूटपत्र को लिख देता है।

16.2.12.3 चन्दनदास –

इस नाटक का सबसे अधिक हदय स्पर्श करने वाला यदि किसी का चरित्र है तो वह चन्दनदास है। यह हमारे सामने प्रथम अंक के मध्य में और सप्तम अंक के प्रारम्भ में आता है। यह मणिकार श्रेष्ठी है, जौहरियों का नेता है, और वैश्य जाति का है, इसका राक्षस के प्रति आकर्षण और प्रेम उतना ही गम्भोर और अटल है जितना इन्दुशर्मन का चाणक्य के प्रति। परन्तु प्रणय की ज्वाला रत्नों के व्यापारी , जौहरियों के नेता चन्दन दास के ह्रदय में अपने पूर्ण प्रकाश और कंलक रहित प्रज्वलित होती हैं, जबकि कपट बौद्ध संन्यासी क्षपणक जीवसिद्धि में धोखा और कपट व्यवहार से यह गन्दी और धुंधली दिखाई देती है यह अपने मित्र राक्षस के लिये बडी प्रसन्नता के साथ मृत्यु को अपने गले लगाने के लिए तैयार हो जाता है। इसी एकमात्र राक्षस की कमजोरी का लाभ उठाकर चाणक्य ने उसके द्वारा राक्षस को अपने वश में किया है । चाणक्य यह अनुभव करता है कि राक्षस का यह चन्दनदास श्रेष्ठ मित्र होगा । क्योकि

''न ह्यनात्मसदृशेषु राक्षसः कलत्रं न्यासीकरिष्यति ।'' (पृष्ठ 45)

और इसी मित्रता से चाणक्य ने यह अनुमान लगाया है कि जिस प्रकार यह राक्षस के लिए अपने प्राणों को तृणवत् छोडने के लिए तैयार है,उसी प्रकार राक्षस भो इसके लिए अपने प्राणों छोड देगा।

चाणक्यः– (सहर्षम्) हन्त , लब्ध इदानीं राक्षसः। कुतः ।
त्यजत्यप्रियवत्प्राणान्यथा तस्यायमापदि ।

तथैवास्यापदि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रियाः । 1/25
चाणक्य के इस अनुमान की पुष्टि राक्षस के इन शब्दों से भो है

''ननुं वक्तव्यं संयमितः सपुत्रकलत्रो राक्षस इति'' (द्वितीय अंक पृष्ठ 127) ।

राक्षस का अत्यन्त अभिन्न मित्र चन्दनदास अपने और अपने परिवार के जीवन को संकट मे डालकर भो इस बात में दृढ है कि वह राक्षस के परिवार को चाणक्य के सुपुर्द नही करेगा। वह चाणक्य से कहता है कि –

'' आर्य किं मे भयं दर्शयसि । सन्तमपि गेहे अमात्यराक्षसस्य गृहजनं न समर्पयामि,कि पुनरसन्तम्'' (प्रथम अङ्क पृष्ठ 71) । चाणक्य के तीक्ष्ण दण्ड को वह सहर्ष स्वीकार कर लेता है वह कहता है – **'' सज्जोऽस्मि । अनुतिष्ठतु आर्यः आत्मनोऽधिकार सदृशम् '' प्रथम अङ्क (पृष्ठ 73)** । उसे इस बात का गर्व है कि उसकी मृत्यु उसके अपने मित्र के लिए हो रही है, किसी सामान्य पुरूष के अपराध के कारण नही । इस प्रकार उसको प्राणदण्ड के लिए तैयार किन्तु राक्षस परिवार को न लौटाने के लिए दृढ़ देखकर चाणक्य ने उसकी तुलना शिवि से की है–

सुलभेष्वर्थलाभेषु परसम्वेदने जने ।
क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिविना विना ।। 1/24 ।।

चन्दनदास की मित्रभक्ति इस कलियुग में दुष्प्राय है । फांसी के तख्ते पर जाता हुआ अपनी पत्नी से कहता है कि –

'' आर्ये,अयं मित्रकार्येण मे विनाशो न पुनः पुरुषदोषेण । तदलं विषादेन''(सप्तम अंक पृष्ठ 395)। चन्दनदास ने आत्मगत का एक सुन्दर उदाहरण रखा है । तभो आत्मसमर्पण करते हुए राक्षस कहता है –

दुष्कालेऽपि कलावसज्जनरूचौ प्राणैः परं रक्षता ।
नीतं येन यशस्विनातिलघुतामौशीनरीयं यशः ।

बुद्धानापि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना
पूजार्होऽपि यत्कृते तव गतः शत्रुत्वमेषोऽस्मि सः । 7/5

चन्दनदास की महानुभावता और उसकी पत्नि की हार्दिक उच्चता मन में एक उच्चता का आधान करती है। चन्दनदास की पत्नि पति–परायणा है, सहृदया है और सती साध्वी स्त्रियों में आभ्षण तुल्य है, स्वार्थत्यागिनी, कर्तव्य पालने में तत्परा और स्त्रियों के लिए आदर्शभ्त है । चन्दनदास की पत्नि की अपनी विचार –धारा है कि –

''भर्तुश्चरणावनुगच्छन्त्या आत्मानुग्रहो भवति इति' (सप्तम अंक पृष्ठ 365),

और इसीलिये वह लौटना नही चाहती है । उसका पति परलोक जा रहा है , विदेश को नही ।

अतः वह अपना एकमात्र कर्त्तव्य समझती है कि अपने पति के साथ ही अपने प्राणों की भो आहुति दे दे । चन्दनदास के पुत्र के चरित्र की अभिव्यक्ति विशाखदत्त की अपनी कृति है ।

16.2.12.4 निपुणक–

राक्षस की मुद्रा को लाने वाला निपुर्णक यथार्थनामा है । यह हमारे सामने प्रथम अंक में यमपटचर के रूप में आता है । मुद्रिका प्राप्ति में इसका कौशल सराहनीय है ।

16.2.12.5 करभक–

यह राक्षस का गुप्तचर है। प्रथम अंक की समाप्ति पर राक्षस के कहने से हमको पता लगता है कि राक्षस ने इसको कुसुमपुर के समाचार लाने के लिए स्तन–कलश के पास भजा है कि चतुर्थ अंक में यह समाचार लेकर लौटता है । इसी ने आकर यह समाचार दिया है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त में लडाई हो गई है, जिसको आधार बनाकर राक्षस अपनी भावी योजना का निर्माण करता है ।

16.2.13 नाटक का नायक चाणक्य : –

संस्कृत नाटक साहित्य में विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस की अपनी स्वतन्त्र सत्ता हैं । इस नाटक की प्राण शक्ति इतनी प्रबल है कि संस्कृत नाटकों में सबसे अलग रहते हए भो यह आज तक गौरव के साथ जीवित है । नाटक की अंतरंग कथा के मूल स्रोत हैं –

चाणक्य की कूटनीति और मृतस्वामी नन्द के नाश का प्रतिशोध लेने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील अमात्य राक्षस के कार्य । चाणक्य और राक्षस इन दोनो महान राजनीति विशारदों का बौद्धिक संग्राम ही मुद्राराक्षस की आत्मा हैं।

संस्कृत के समस्त नाटकों को नाम के आधार पर हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं । प्रथम कोटि में वे नाटक आते हैं । जिनका नाम नायका से सम्बन्धित है। द्वितीय श्रेणी में वे नाटक आते हैं जिनका नाम नायिका से जुड़ा हुआ हैं । तीसरा प्रकार उन नाटकों का हैं । जिनका नाम नायक अथवा नायिका के जीवन में घटी किसी ऐसी घटना की ओर इंगित करता दिखाई देता है जो नाटक का केन्द्र बिन्दु होती है इन तीन प्रकारों के अतिरिक्त कुछ नाटक ऐसे भो हैं जिनका नाम नायक–नायिका दोनो से सम्बन्धित है। किन्तु ऐसे नाटक अत्यल्प हैं। अब प्रश्न उठता हैं कि मुद्राराक्षस किस प्रकार का नाटक है । इस प्रश्न के उत्तर के लिए सबसे पहले नाटक के नाम पर ध्यान देना होगा । नाटक का नायक कौन है। इस समस्या के समाधान हेतु नायक के रूप में 3 पात्र हमारे सामने आते हैं।

1. चन्द्रगुप्त 2. चाणक्य 3.राक्षस । विद्वत् समाज म से कुछ विद्वान चन्द्रगुप्त को नायक मानते हैं । संस्कृत नाट्यशास्त्र की परम्परा भो सम्भवतः चन्द्रगुप्त को ही नायक मानना चाहती है । किन्तु कुछ विद्वान चन्द्रगुप्त और चाणक्य दोनों को ही नायक न मानकर नन्दवंश के अमात्य राक्षस को नाटक के नायक पद पर प्रतिष्ठित करते है। इन विद्वानो में राजस्थान विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग के प्रो. बसन्त जैटली जी प्रमुख हैं । इन्होने अपने विद्वतापूर्ण लेख ''मुद्राराक्षस का नायक एक पुनर्विचार में संस्कृत लक्षण ग्रन्थों की तमाम परम्पराओं और नियमों को किनारे करते हुए राक्षस को नाटक के नायक पद पर अभिषिक्त किया है । इन्होंने राक्षस के नायकत्व के पक्ष में ऐसे अद्भद् और अकाट्य तर्क अपनी प्रतिभा से प्रस्तुत किए हैं कि विद्वान भो इस विषय पर फिर से सोचने के लिए मजबूर हो जाते हैं और यही इस लेख का और इसके लेखक डा. जैटली जी का महत्त्व है किन्तु अधिकांशतः विद्वान चाणक्य को ही नाटक का नायक स्वीकारते हैं इसमें कोई सन्देह भो नही है । कि इस सम्पूर्ण नाटक में चाणक्य एक प्रमुख और असाधारण पात्र है। नाटक के रचयिता विशाखदत्त स्वंय भो चाणक्य के पक्ष में प्रतीत होते हैं। चाणक्य के नायकत्व को सिद्ध करने से पहले हमें नाटक के नामकरण पर भो एक दृष्टीपात् कर लेना चाहिए । विद्वान मुद्राराक्षस की व्युत्पत्ति इस प्रकार निकालते हैं– ''मुद्रयाः ग्रहीतः राक्षसः यस्मिन् तत् मुद्राराक्षसम्'' अर्थात् मुद्रा द्वारा राक्षस को पकड़ने का वर्णन जिस ग्रन्थ में हुआ हैं वह ग्रन्थ मुद्राराक्षसम् है एक अन्य व्युत्पत्ति इस प्रकार भो निकाली गई है – ''मुद्रया ग्रहीतः राक्षसः यस्मिन तत् मुद्राराक्षसम्'' अर्थात् मुद्रा द्वारा पकड़े गये राक्षस को लेकर जिस ग्रन्थ की रचना की गई है वह ग्रन्थ मुद्राराक्षस है । इस प्रकार ये दोनों व्युत्त्पत्तियाँ भो चाणक्य को ही नाटक का नायक मानने के पक्ष में हैं ।

भारतीय नाटयशास्त्र के अनुसार '' वस्तुनेता रसस्तेषां भदकः '' अर्थात वस्तु, नेता और रस ये तीन तत्त्व रूपक में प्रमुख माने गए हैं । और इन्ही के आधार पर किसी भो रूपक की विद्वानों द्वारा पर्यालोचना की जाती हैं। नाटक के नायक के विषय में भो भारतीय आचार्यों द्वारा विस्तार से विचार किया गया हैं । आचार्य धनञ्जय ने अपने ग्रन्थ दशरूपक में नायक के भद–प्रभदों का पर्याप्त विवेचन किया है ।

आचार्य धनञ्जय ने अपने ग्रन्थ दशरूपक में नायक की निम्न परिभाषा दी हैं ।

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।

बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।

अर्थात् नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगो को खुश करने वाला, पवित्र मन वाला, बातचीत करने में कुशल ,कुलीन वंश में उत्पन्न ,मन आदि से स्थिर, युवावस्था वाला होता है । वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा ,कला , तथा मान से युक्त होता है। शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होता है।

चाणक्य वार्तालाप में कुशल है, कुलीन वंश में उत्पन्न है। तथा मन आदि से स्थिर प्रकृति वाला भो हैं । बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान का भो उसमें अभाव नही हैं । वह दृढ़ तेजस्वी है तथा शास्त्रों का तो महान ज्ञाता है

किन्तु केवल उपरोक्त गुणों से चाणक्य का नायकत्व सिद्ध नही होता हैं । अपितु इस विवेचन से हम चाणक्य के नायकत्व को सिद्व करने की दिशा में कुछ कदम ही आगे बढ़ पाते हैं ।

क्योंकि इनमें से अधिकांश गुण राक्षस में भो विद्यमान हैं । अतः चाणक्य के नायकत्व की सिद्धि हेतु विस्तृत और गंभोर विवेचन आवश्यक है ।

आचार्य धनञ्जय ने अपने दशरूपक में नायक के भदों का वर्णन करते हुए उसे चार प्रकार का बताया है ।

1.धीर ललित 2. धीरशान्त 3. धीरोद्धात्त 4.धीरोद्धत्त ।

इनमें से प्रथम दो के आधार पर चाणक्य का नायकत्व सिद्व नही हो सकता हैं । अतः अन्तिम दो पर संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है।

आचार्य धनञ्जय ने दशरूपक के धीरोदात्त नायक की परिभाषा निम्न प्रकार दी हैं ।

महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दढव्रतः ।। द्वितीय प्रकाश/(4)

अर्थात् धीरोदात्त नायक महासत्व, अत्यन्त गम्भोर, क्षमाशील, अविकत्थन ,स्थिर , निगूढ, अहंकार वाला तथा दृढ़व्रत् होता है ।

उपरोक्त गुणों में से चाणक्य महासत्व है, उसका अन्तःकरण कभो उद्विग्न नही होता है। वह अत्यन्त गम्भोर भो है । वह स्थिर प्रकृति वाला है । साथ ही जिस संकल्प को कर लेता है । उसे अवश्यमेव पूरा करता ही है । नन्द वंश का विनाश कर देना उसके दृढ़व्रति होने का परिचायक ही है ।

कुछ विद्वान चाणक्य पर विकत्थन (प्रशंसा या आत्म–श्लाघा) का दोष मण्ड़ित करते हैं । वे कहते हैं कि चाणक्य ने नाटक में स्थान–स्थान पर अपनी स्वंय की अनेक बार प्रशंसा की है। यथा–

आस्वादित द्विरदशोणित शोणशोभां
संध्यारुणामिवकलां शशलाञ्छनस्य ।।

जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्ङ्खुरन्ती
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूयः दंष्ट्राम् ।। (1/8)

अर्थात् कौन है जो सोकर उठे, जंभाई लेते शेर को दबाकर उसके मुख से उन चमकती दाड़ो को उखाड़ लेना चाहता है। जिनमें मार कर पिये गए गजराज के रक्त की लाली झलक रही है और जो संध्या की लाली से लाल चन्द्रकला सी दिखाई दे रही हैं ।

किन्तु चाणक्य पर विकत्थन का दोष मण्डित करने से पूर्व हमें मुद्राराक्षस नाटक की प्रकृति पर भो विचार कर लेना चाहिए । मुद्राराक्षस एक वीर रस प्रधान नाटक है । ऐसे में चाणक्य की ये दर्पोक्तियाँ उसके लिए दूषण नही अपितु भ्षण का ही कार्य करती हैं ।

साथ ही चाणक्य क्षमाशील भो है । वह बिना वजह किसी के प्राण हरण में विश्वास नही करता है। इसी कारण वह नाटक के अन्त में राक्षस के परम मित्र चन्दनदास को छोड़ देता है ।

ये तो है – धीरोदात्त की चर्चा, अब धीरोद्धत्त पर भो दृष्टि निक्षेप करते हैं

धनञ्जय धीरोद्धत्त नायक का परिचय निम्न श्लोक में देते है ।

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः ।।

अर्थात् धीरोद्धत नायक घमण्ड और ईर्ष्या से भरा हुआ, माया और कपट से युक्त घमण्ड़ी, चन्चल, क्रोधी तथा आत्मश्लाघी होता है । प्रो. जैटली जी ने अपने लेख में चाणक्य को घमण्डी और उन्मत्त बताया है और अपने मत के समर्थन में वे कहते हैं कि चाणक्य चन्द्रगुप्त को वृषल शब्द से संबोधित करता है जो कि अमात्य की अपने राजा के प्रति अशिष्टता है । किन्तु चाणक्य चन्द्रगुप्त का अमात्य होने से पहले उसका गुरू भो था या यों कहें कि वह चन्द्रगुप्त का सर्वस्व था । उसने पत्थर के टुकडें को तराश कर हीरा बनाया था। अगर चन्द्रगुप्त को चाणक्य का साथ नही मिलता तो राजा बनना तो दूर उसका अस्तित्व भो इतिहास में शेष नही रहता। अतः एक समर्थ गुरू अपने शिष्य को कैसे भो संबोधित कर सकता है ।

द्वितीय वृषल शब्द का शाब्दिक अर्थ है – 'सांड' अथवा 'बैल' । जो कि भारतीय संस्कृति में प्रारम्भ से ही शक्ति का प्रतीक रहा है । अतः वृषल शब्द चन्द्रगुप्त की शक्ति को उजागर करता है न कि इस शब्द से उसका अपमान होता है ।

तृतीय प्रो.जेटली जी व कुछ अन्य विद्वान चाणक्य पर विकत्थन का दोषारोपण करते हैं। इनका कहना है कि वह सम्पूर्ण नाटक में आत्मश्लाघा में लगा रहा है व अपनी स्वंय की प्रशंसा स्वंय हो करता रहा है ।

ये याताः किमपि प्रधार्य्य हृदये पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठन्ति भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यमाः।

एका केवलमर्थसाधनविधौ सेना शतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ।। 1/16

किन्तु यदि वह अपनी बुद्धि की प्रशंसा करता है । तो इसमें कुछ गलत भो नही है क्योकि एक ऐसा व्यक्ति जो शक्ल और सूरत से कुरूप था, जिसके पास कोई सेना आदि नही थी । उस व्यक्ति ने केवल अपनी बुद्धि से उस नन्द वंश को जड सहित नष्ट कर दिया जिसकी सेना के ड़र से विश्व विजेता सिकन्दर की सेना ने भो गंगा नदी पार करने से मना कर दिया था । तथ्य यह भो है कि वह समय कोई राम या कृष्ण का तो था नही और ना ही वह कोई सतयुग था कि नायक अपनी प्रशंसा नही करे।

फिर नन्द भो धर्मात्मा और प्रजापालक नही थे। वे खुद आडम्बर पसन्द और विलासी शासक थे यदि चाणक्य उनको नष्ट करने वाली अपनी बुद्धि को सराहता है तो यह कोई बुराई नही है और ना यह विकत्थन ही है ।

चतुर्थ यदि चाणक्य ने नन्दों और राक्षस के साथ मायावी और कपटपूर्ण व्यवहार किया तो इसमें भो कुछ गलत नही था । प्रथम तो वह युग राजनीति प्रधान था और प्रत्येक व्यक्ति येन केन प्रकारेण अपना अस्तित्व बचाए रखना चाहता था चाहे वह राजा हो अथवा सामान्य व्यक्ति । द्वितीय नन्द कोई संत व महापुरूष नही थे कि वे खुद तो माया और कपट का

सहारा लें और अन्य व्यक्ति उनसे उचित आचरण करे । तृतीय राक्षस स्वंय भो चाणक्य और चन्द्रगुप्त में कपटपूर्वक कलह करवाना चाहता था । यह अलग बात है कि चाणक्य ने उसकी योजना को पहले से ही भाप कर उसे उल्टा अपने ही जाल में फँसा लिया और वह अपनी योजना में सफल नहीं हो पाया । अगर चाणक्य कपट और माया का सहारा नही लेता तो राक्षस उसे माया और कपट से समाप्त करवा देता।

अतः उसका यह आचरण निन्दनीय नही कहा जायेगा । फिर राजनोति में तो कपट और मायावी आचरण राजनीति का एक प्रमुख स्तम्भ है ।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है । कि चाणक्य में धीरोदात्त और धीरोद्धत दोनो नायकों के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

अतः वह एक विलक्षण कोटि का नायक है। नाटककार भो स्वंय चाणक्य को ही नायक मानने के पक्ष में प्रतीत होता है नाटक में स्थान–स्थान पर ऐसे संकेत मिलते हैं जो चाणक्य को नायक मानने के पक्ष को पुष्ट करते हैं ।

जैसे–

जयति जयनकार्यं यावत्कृत्वा च सर्वं
प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः'' (6/1)

यद्यपि राक्षस को वश में कर लेने से चन्द्रगुप्त को अमात्य लाभ हुआ है किन्तु चाणक्य को भो फलागम का विशेष लाभ हुआ है । वस्तुतः चाणक्य की वास्तविक प्रतिज्ञापूर्ति तो इसी स्थान पर आकर होती है उसका लक्ष्य था चन्द्रगुप्त के लिए निष्कण्टक राज्य की स्थापना और राक्षस को मन्त्री बनाना । वह अपने इस उद्देश मे सर्वात्मना सफल भो हुआ है । विशाखदत्त ने किसी प्रख्यात वंश में उत्पन्न व्यक्ति अथवा सम्राट को प्राचीन नाट्य परम्परा के अनुसार नाटक का नायक ना बनाकर राजनीति में अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि, अर्थशास्त्र के महारथी तथा सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरू चाणक्य को अपनी रचना का नाम बनाकर एक दिव्य प्रतिभा का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

''मुद्रया गृहीतो राक्षसो यस्मिन् तन्मुद्राराक्षसं नाम नाट्कम्''

इस मुद्रा से अपनी राजनीति का प्रवर्तन करने वाला चाणक्य ही है, अतः उसी का नायकत्व उचित प्रतीत होता है । इससे बढ़कर चाणक्य के नायकत्व को सिद्ध करने वाला और क्या प्रमाण होगा कि नाटक की समाप्ति पर चाणक्य स्वंय आदेश देता है ।

बिना वाहन हस्तिभ्यो मुच्यतां सर्वबन्धनम्।
माया पूर्ण प्रतिज्ञेन केवलं बध्यते शिखा।।

अर्थात् घोडों और हाथियों को छोडकर सभो के बन्धन खोल दो पूर्ण प्रतिज्ञा वाले मेरे द्वारा केवल अपनी शिखा बांधी जाती है ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि नाटककार ने चाणक्य को नन्द साम्राज्य के संहारक और मौर्य सम्राज्य के प्रतिष्ठापक के रूप में चित्रित किया है । उसने चाणक्य के चरित्र का जो चित्रण किया हैं। वह उसकी नाट्य साहित्य को एक बहुत बडी देन है ।

16.3 पारिभाषिक शब्दावली

मुद्राराक्षस – नाटक के ऐतिहासिक पात्रों में प्रमुखतम पात्र चाणक्य है ।यह चणक का पुत्र है। उसके पूर्ववर्तियों में एक 'कुटिल' हुआ था , जिसके आधार पर उसका नाम कौटिल्य हुआ ऐसी कुछ विद्वानों के द्वारा व्याख्या की जा सकती है ।

अर्थात् जो कुटं–कुटपूर्ण धान्यं लाति गृहमिति इति कुटलः अर्थात कुट का अर्थ है घडा अर्थात जो घटपरिमित धान्य का संग्रह करता है । अथवा कुट का अर्थ परिवार भी होता है । इस परिवार के अर्थ में ग्वेद मे कूट शब्द का प्रयोग हुआ है । अर्थात् जो केवल अपने परिवार की आजीविका चलाने मात्र धन का संचय करता है इस प्रकार की व्याख्या करने पर चाणक्य के पिता की त्याग भावना व्यक्त होती है ।

दशरूपककार – ने प्रतिनायक का लक्षण इस प्रकार किया है –

लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद् व्यसनी रिपु : –।। प्रकाश

यह लक्षण सर्वात्मना घटित नहीं होता है क्योंकि राक्षस लोभी न होकर निःस्वार्थ है ।

मलयकेतु – एक पर्वतीय राजकुमार है । इसके पिता का नाम पर्वतक है। इसके पिता की मृत्य विष कन्या के द्वारा हुई थी।

नायक – अर्थात् नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगो को खुश करने वाला, पवित्र मन वाला, बातचीत करने में कुशल ,कुलीन वंश में उत्पन्न ,मन आदि से स्थिर, युवावस्था वाला होता है । वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा ,कला , तथा मान से युक्त होता है। शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होता है।

धीरोदात्त – अर्थात् धीरोदात्त नायक महासत्व, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, अविकत्थन ,स्थिर , निगूढ, अहंकार वाला तथा दृढव्रत् होता है ।

16.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पठित ईकाई के आधार पर चाणक्य का चरित्र चित्रण कीजिए ।
2. राक्षस का चरित्र चित्रण कीजिए ।
3. पठित अंशो के आधार पर चन्द्रगुप्त का चरित्र चित्रण कीजिए ।
4. चाणक्य और उसकी राजनीति पर प्रकाश डालिए ।
5. नन्दवंश के विनाशक चाणक्य को नाटक का नायक सिद्ध करते हुए उसके पक्ष में तर्क दीजिए।
6. राक्षस नन्दवंश का परम हितैषी, एक श्रेष्ठ मित्र तथा एक श्रेष्ठ शत्रु था तर्कों द्वारा स्पष्ट करो।
7. मलयकेतु का चरित्र चित्रण कीजिए ।
8. चन्द्रगुप्त और मलयकेतु का तुलनात्मक चरित्र चित्रण कीजिए ।
9. चाणक्य और राक्षस का तुलनात्मक चरित्र चित्रण कीजिए ।
10. भागुरायण और सिद्धार्थक के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
11. विराधगुप्त और शकटदास के चरित्र का वर्णन करो ।
12. चन्द्रनदास का चरित्र चित्रण कीजिए ।

प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.1 का अध्ययन करें ।
2. इस प्रश्न के उत्तर क लिये इकाई 16.2.4 का अध्ययन करें ।
3. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.9 का अध्ययन करें ।
4. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.3 का अध्ययन करें ।
5. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.13 का अध्ययन करें ।
6. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.4 का अध्ययन करें ।
7. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.10 का अध्ययन करें ।
8. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.11 का अध्ययन करें ।
9. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.8 का अध्ययन करें ।
10. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.12.1 का अध्ययन करें ।
11. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.12.2 का अध्ययन करें ।
12. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.12.3 का अध्ययन करें ।

16.5 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त इकाई का अध्ययन करने के पश्चात हमें यह ज्ञात हो जाता हैं कि मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य जगत में अपने चरित्र चित्रण के कारण अद्वितीय है । इसके पात्रों को हम युगल रूप में पाते हैं । दो पात्रों के पारस्परिक विरोध और संघर्ष में प्रत्येक पात्र के चरित्र का विकास हुआ है । युग्म रूप में पात्र इस प्रकार चित्रित हैं ।

1. कूटनीति में निपुण चाणक्य और राक्षस 2. एक दूसरे से विरोधि गुणों वाले एक दूसरे के शत्रु राजा चन्द्रगुप्त और मलयकेतु तथा 3. भागुरायण और सिद्धार्थक । चाणक्य को

नन्दवंशीय राजाओं के प्रति एक प्रबल हिंसावृत्ति से परिपूर्ण दिखाया गया है । उनके प्रति उसकी घृणा स्पष्ट है । इसके विपरीत राक्षस नन्दवंश के पक्ष में है । उसकी नन्द वंश की प्रति भक्ति उतनी ही दृढ और अविचल है जितनी चाणक्य की नन्दवंश के प्रति घृणा में है। हम देखते हैं कि नाटकार ने ऐसे चरित्रों की उद्‌भावना की है जो साधारण होते हुए भी असाधरण हैं देश काल से परिछिन्न होते हुए भी अपरिछिन्न हैं, नाटकीय होते हुए भी वास्तविक हैं और यथार्थ होते हुए भी आदर्श हैं ं चाणक्य के समान नायक और राक्षस के समान प्रतिनायक कामिनी और कान्चन के लिए आपस में नही झगड़ते हैं अपितु उनका झगड़ा तो महान आदर्शों के लिए होता है। चाणक्य का आदर्श हैं –

बुद्धया निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियाया –
मारण्यकं गजमिव प्रगुणी करोमि ।।

अर्थात जंगली हाथी के समान राक्षस को बुद्धि से वश में करके चन्द्रगुप्त के लिए अमात्य कार्य में नियुक्त करता हूँ ।

और राक्षस का आदर्श है '' देवः ' स्वर्गगतोऽपि शास्त्रवधेनाराधितः स्यादिति '' दोनो ही निष्काम और निरीह है । दोनो के लिए जय–पराजय का महत्त्व उतना नही है जितना कि कर्त्तव्य निर्वाह का है । इस प्रकार हम देखते हैं कि विशाखदत्त का चरित्र चित्रण इस नाटक की केन्द्र बिन्दु का दृढ आधार है । सभी प्रकार के नाटकीय पात्रों ने अभिनय का निर्वाह सफलतापूर्वक किया हैं ।

16.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुद्राराक्षसम् – डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ, 2000.
2. मुद्राराक्षसम्, श्री निरञ्जन मिश्र, हंसा प्रकाशन जयपुर, 1999.
3. संस्कृत कविदर्शन डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा, वाराणसी, 2003.
4. संस्कृत महाकवि और काव्य, रामजी उपाध्याय, रामगोपाल मिश्र, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहबाद, 1958.
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1953.

इकाई – 17

मुद्राराक्षस की प्रमुख सूक्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 प्रथम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ
17.2.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या
17.3 द्वितीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ
17.3.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या
17.4 तृतीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ
17.4.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या
17.5 चतुर्थ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ
17.5.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या
17.6 पंचम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ
17.6.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या
17.7 षष्ठ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ
17.7.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या
17.8 सप्तम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ
17.8.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या
17.9 पारिभाषिक शब्दावली
17.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
17.11 सारांश
17.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे कि महाकवि विशाखादत्त प्रणीत नाटक मुद्राराक्षस में जनकल्याणार्थ सूक्तियों का प्रयोग किस प्रकार किया गया है।

17.1 प्रस्तावना

महाकवि विशाखादत्त विरचित मुद्राराक्षस नामक नाटक वीर रस प्रधान नाटक है। इस नाटक में स्थान–स्थान पर उपयोगी सूक्तियाँ वर्णित है। छोटे से कथन में कवि ने गागर में सागर भर दिया है।

17.2 प्रथम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. अत्यादरः शङ्कनीयः।
2. अनुभ्यतां चिरं विचित्रो राजप्रसादः
3. अनुचितः उपचारो हृदयस्य परिभवादपि दुःखं–उत्पादयति।
4. कीदृशस्तृणानामग्निना सहविरोधः।
5. दिष्ट्या मित्रकार्येण मे विनाशो न पुरुष दोषेण।
6. प्रज्ञा विक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भृतये।
   ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे सम्पत्सु आपत्सु च।।
7. न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम्।

8. शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः।

9. श्रोत्रियाक्षराणि प्रयत्नलिखितानि अपिनियतमस्फुटानि भवन्ति।

17.2.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

प्रस्तुत सूक्ति महाकवि विशाखादत्त विरचित सुप्रसिद्ध नाटक ''मुद्राराक्षस'' के प्रथम अंक से उद्धृत हैं। संस्कृत साहित्य के नाटकों में वीर रस प्रधान नाटक अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होते। वीर रस प्रधान नाटकों में युद्ध का वर्णन भो आवश्यक रूप से होता है। परन्तु मुद्राराक्षस एक ऐसा नाटक है जो वीर रस प्रधान होते हुए भो युद्धरहित है। प्रस्तुत नाटक में मूलरूप से चाणक्य की कूटनीति वर्णित की गई है।

1. अत्यादरः शङ्कनीयः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य मणिकार श्रेष्ठी (सेठ) चन्दनदास को देखना चाहता है तब चाणक्य का शिष्य चन्दनदास को चाणक्य के समीप ले जाता है। उस समय चन्दनदास मन ही मन में सोचता है कि यदि किसी को सहसा प्रधानमन्त्री द्वारा बुला लिया जाए तो वह डर जाता है, मुझ तो और भो डर लग रहा है क्योंकि मैंने तो अपने घर में ही राक्षस परिवार को शरण दे रखी है। इस प्रकार वह सोचता हुआ चाणक्य के पास पहुंचता है। पहुंचने पर चाणक्य उसका उचित आसनादि प्रदान कर स्वागत करता है। चाणक्य के सद्व्यवहार को देखकर चन्दरदास पुनः मन में सोचता ह कि अत्यधिक उपचार (आदर) शंकनीय होता है। अतएव महाकवि विशाखादत्त का कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि – ''अत्यादरो शंकनीयः''

इस सूक्ष्म वाक्य में महाकवि विशाखादत्त की अर्थगौरवक्षमता स्पष्ट रूप से सिद्ध हो रही है। उनकी दृष्टि चन्दनदास की मानसिक स्थिति के प्रति पूर्णतः सुस्पष्ट है।

2. अनुभूयतां चिरं विचित्रो राजप्रसादः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य मणिकार श्रेष्ठी (सेठ) चन्दनदास को बुलवाता है। चाणक्य एवं चन्दनदास में परस्पर वार्तालाप होता है। चाणक्य चन्दनदास पर आरोप लगाता है कि तुमने अपने घर राक्षस के परिवार को छिपा रखा ह। अतः तुम उस परिवार को हमारे सुपुर्द कर दो। चन्दनदास स्पष्ट शब्दों में कहता है कि मेरे घर में राक्षस परिवार है ही नहीं, अतः मैं कैसे उसे आपको सौंप दूं। उसी समय नेपथ्य में कोलाहल होता है कि राजद्रोही क्षपणक जीवसिद्धि को राजद्रोही होने के कारण तिरस्कार के साथ देश स निर्वासित किया जा रहा है। ऐसा सुनकर चाणक्य पुनः चन्दनदास से कहता है कि श्रेष्ठी चन्दनदास, यह राज चन्द्रगुप्त विरोधियों को अति कठोर दण्ड देता है। अतः तुम हितकारी मित्र की बात (मेरी बात) को मानते हुए राक्षस के परिवार को सौंप दो तथा अपना शेष जीवन आराम से व्यतीत करो। अतः सत्य ही कहा गया है कि– अनुभ्यतां चिरं विचित्रो राजप्रसादः

इस प्रकार चाणक्य द्वारा चन्दनदास का प्रलोभन दिया गया है। प्रस्तुत सूक्ति में कवि ने चाणक्य की कूटनीति को अत्यधिक सूक्ष्म शब्दों में वर्णित किया है।

3. अनुचितः उपचारो हृदयस्य परिभवादपि दुःखमुत्पादयति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य मणिकार श्रेष्ठी (सेठ) चन्दनदास को बुलवाता है। जब चाणक्य का शिष्य चन्दनदास को राक्षस के समीप लाता है। उस समय वह अपने मन में सोचता है कि यदि अचानक प्रधानमंत्री बुलाए तभो भय लगता है फिर मैंने तो अपने मित्र राक्षस को अपने घर छिपा रखा ह। अतः मुझे अत्यधिक भय लग रहा है। ऐसा सोचता हुआ वह चाणक्य के समीप पहुंचता है तब चाणक्य उसे आसन पर बैठने का कहता है। ऐसा होने पर चन्दनदास निवेदन करता है कि मैं तो भूमि पर ही बैठ जाउंगा क्योंकि अनुपयुक्त सम्मान तो अपमान से भो अधिक हृदय में दुःख को ही उत्पन्न करता है।

अतः चन्दनदास द्वारा यह सत्य कथन ही कहा गया है कि– ''अनुचितः उपचारो हृदयस्य परिभवादपि दुःखमुत्पादयति।''

प्रस्तुत वाक्य में कवि ने चन्दनदास की मनःस्थिति का रोचक व शिक्षाप्रद वर्णन किया है।

4. कीदृशस्तृणानामग्निना सह विरोधः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य मणिकार नगर सेठ चन्दनदास को बुलवाता है। चाणक्य का शिष्य उसे अपने साथ लाकर चाणक्य के समक्ष ले जाता है। चाणक्य उसे आसनादि प्रदान कर उसका स्वागत करता है। अपना आदर होता देखकर चन्दनदास मन ही मन शंकित हो जाता है। चाणक्य व चन्दनदास परस्पर वार्तालाप करते हैं। वार्तालाप में ही जब चाणक्य द्वारा यह कहा जाता है कि यदि प्रजावर्ग राजा चन्द्रगुप्त से प्रसन्न है तो राजा भो बदले में प्रिय की आशा करता हैं वह यह भो चाहते हैं कि आप जैसे प्रजाजन को किसी प्रकार का क्लेश न हो। अतएव आपको ऐसा व्यवहार करना चाहिए जो राजा के अनुकूल प्रवृत्तियों से युक्त हो। ऐसा सुनने पर चन्दनदास कहता है कि कौन दुर्भाग्यशाली राजा के विरूद्ध है। चाणक्य ने प्रत्युत्तर में कहा कि प्रथमतः तो आप ही हैं। ऐसा सुनने के उपरान्त चंदनदास अपने कानों पर हाथ रखते हुए कहता है कि पाप शान्त हो क्योंकि तिनकों का अग्नि के साथ कैसा विरोध? ''कीदृशस्तृणानमग्निना सह विरोधः''

सत्य ही कहा गया है क्योंकि तिनका उसी समय तक सुरक्षित है जब तक उसका साथ अग्नि के साथ नहीं होता। यदि तिनका अग्नि के सम्पर्क में आएगा तो भस्म ही हो जाएगा। अतः राजा चन्द्रगुप्त के साथ मैं विरोध कैसे रख सकता हूँ।

प्रस्तुत सूक्ष्म वाक्य में महाकवि विशाखादत्त की लेखनी का चमत्कार एवं अर्थगौरव क्षमता दर्शनीय है।

5. दिष्ट्या मित्रकार्येण मे विनाशो न पुरुषदोषेण

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य राक्षस के मित्र मणिकार चन्दनदास से मिलना चाहता है। अतः अपने भत्य द्वारा उसे बुलवाता है। चन्दनदास के चाणक्य के समीप पहुंचने पर सामान्य अभिवादनादि के उपरान्त दोनों में परस्पर वार्तालाप होता है। चाणक्य चन्दनदास पर आरोप लगाता है कि तुमने अपने घर राक्षस परिवार को छिपा रखा है। अतः उस परिवार को हमें सौंप दो। चन्दनदास अत्यधिक दृढ़ता से कहता है कि पहले तो मेरे घर राक्षस परिवार है ही नहीं अतः सौंपने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता और यदि होता तो भो उसे मैं आपको नहीं सौंपता। चाणक्य पुनः चन्दनदास को चेतावनी देता हुआ कहता है हे श्रेष्ठिन चन्दनदास, राजा विरोधियों के प्रति अति कठोर है। अतः अब भो समय है, तुम राक्षस परिवार को सौंप दो तथा शेष जीवन आराम से व्यतीत करो। जब चन्दनदास किसी भो अवस्था में राक्षस परिवार को सौंपने को तैयार नहीं होता तो क्रोध में आकर चाणक्य अपने शिष्य से कहता है कि जाओ विजयपालक से कहो कि इसकी संपूर्ण समपत्ति जब्त करके परिवार सहित कारागार में डाल दें। मत्यु की सजा तो स्वयं महाराज चन्द्रगुप्त देंगे। चन्दनदास शिष्य के साथ कारागार की ओर जाते हुए मन में सोचता है कि ''सौभाग्य से मित्र के कार्य से मेरा विनाश हो रहा है पुरुष के दोष से नहीं।''– दिष्ट्या मित्रकार्येण मे विनाशो न पुरुषदोषेण।''

चन्दनदास ने सत्य ही कहा है क्योंकि कलियुग में मित्र भक्ति का अनूठी उदाहरण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

6. प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणाभ्तये।
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सुचापत्सु च।।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य स्वामिभक्त राक्षस की भक्ति से अत्यधिक प्रभावित होकर मन ही मन यह इच्छा करने लगा कि किस उपसा से इतना श्रेष्ठ व्यक्ति चन्द्रगुप्त का मन्त्री पद ग्रहण कर ले। ऐसा सोचते हुए चाणक्य कहता है कि यदि

किसी राजा का सेवक (मन्त्री) भक्ति से युक्त परन्तु विवेक से रहित एवं पराक्रमविहीन, भोरू प्रवृत्ति का हो तो उससे राजा को क्या लाभ मिल सकेगा। अर्थात् कुछ भो नहीं। यदि बुद्धि तथा पराक्रमयुक्त परन्तु भक्ति से रहित सेवक है तो भो राजा को किसी प्रकार का लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। अतः सत्य ही कहा गया है कि जिन सेवकों के पास उचित और अनुचित करने की बुद्धि होने के साथ–साथ पराक्रम एवं स्वामिभक्ति ये तीनों ही गुण विद्यमान होते हैं तो ऐसे सेवक राजा का हर दृष्टि से कल्याण ही करते हैं। इन गुणों (प्रज्ञादि) से विरहित सेवक ऐश्वर्य के समय और आपत्ति के समय में राजा के लिए स्त्री के समान कोमल एवं पोषण करने योग्य ही हुआ करते हैंः–

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतयो
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सुचापत्सु च।।

भाव यह है कि प्रज्ञादि गुणों से रहित सेवक से राजा का किसी भो प्रकार का हित नहीं होता अपितु एक सुकोमल नारी का पोषण और रक्षण करने की भाँति उन सेवकों के पालन एवं पोषण का भार भो राजा के ऊपर ही आ जाता है।

7. न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य अपने पक्ष और राक्षस के पक्ष के व्यक्तियों का पता लगाने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति करता है। गुप्तचर आकर सूचना देता है कि राक्षस के तीन परम मित्र हैं। प्रथम क्षपणक जीवसिद्धि, द्वितीय शकटदास तथा तृतीय मणिकार चन्दनदास। चाणक्य निश्चिन्त होकर कहता है कि क्षपणक को अपना ही व्यक्ति है तथा शकटदास तो लेखक (कायस्थ) है वह भो हमारा क्या बिगाड़ लेगा। ऐसा कहकर कुछ विचार करके पुनः चाणक्य कहता हे कि छुद्र शत्रु की भो उपेक्षा नहीं करनी चाहिए– ''न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम्''

उपर्युक्त कथन सत्य ही जान पड़ता है क्योंकि कभो–कभो छोटे से छोटा शत्रु भो बड़े से बड़ा अहित कर सकता है। कहा भो गया है– ''अल्पीयसोऽप्यरेवृर्द्धिमहानर्थायरोवदिति।''

8. शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य चन्दनदास (राक्षस का मित्र एवं विश्वासपात्र) से मिलना चाहता है। अपने शिष्य से उसको बुलवाने का आदेश देता है। जब चन्दनदास चाणक्य के समीप आता है तथा स्वागत की सामान्य औपचारिकताओं के उपरान्त दोनों के मध्य परस्पर वार्तालाप होता है। चाणक्य चन्दनदास से कहता है कि तुम्हें राजा चन्द्रगुप्त से विरोध नहीं रखना चाहिए। चन्दनदास कहता है कि मैं राजा के साथ क्यों विरोध रखूंगा। इस पर चाणक्य ने कहा कि विरोध तो तुम कर ही रहे हो। इसी कारण तुमने राजा का अहित करने वाले अमात्य राक्षस का परिवार अपने घर लाकर रखा है। चन्दन दास प्रत्युत्तर देता है कि आर्य, किसी अनभिज्ञ न आपको मिथ्या सूचना दी है। पुनः चाणक्य कहता है तुम छल का आश्रय मत लो क्योंकि चन्द्रगुप्त के राज्य में छल का आश्रय अनुचित है। अतः तुम राक्षस परिवार को सौंप दो। वह कहता है कि मैं नहीं जानता कि इस समय वह परिवार कहाँ है। चाणक्य पुनः कहता है कि तुम्हारे सिर पर भय है फिर भो तुम उसको दूर नहीं करना चाहते हो। तुम्हारे भय का प्रतिकार अतिदूर है अतः सत्य बोलो अन्यथा व्यर्थ ही मेरे कोप का भाजन बन जाओगे। अतएव यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है– ''शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः''

9. श्रोत्रियाक्षराणि प्रयत्नलिखितान्यपि नियतमस्फुटानि भवन्ति।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य स्वपक्ष के और विरोधियों के पक्ष के व्यक्तियों को पता लगाने के लिए तथा राक्षस के मित्रों की गुप्त गतिविधियों पर दृष्टि रखने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति करता है। चाणक्य का मित्र इन्दुशर्मा क्षपणक जीवसिद्धि के

रूप में राक्षस का परम विश्वस्त मित्र बन गया है। गुप्तचरों द्वारा चाणक्य को राक्षस के तीन विश्वासपात्र मित्रों का पता चलता है–

1. राक्षस की प्रेरणा से पर्वतक को मारने के लिए विषकन्या का प्रयोग करने वाला क्षपणक जीवसिद्धि।

2. राक्षस के परिवार को अपने घर में छिपाकर रखने वाला चन्दनदास।

3. राक्षस का परम विश्वासपात्र लेखाध्यक्ष।

गुप्तचर चाणक्य को चन्दनदास के घर से ही राक्षस के नाम की मुद्रा भो प्रदान करता है। चाणक्य ने एक कूट लेख लिखकर उसकी प्रतिलिपि शकटदास से करवाई क्योंकि वह तर्क देता है कि श्रोत्रिय (ब्राह्मण) के अक्षर प्रयत्नपूर्वक लिखे हुए होने पर भो निश्चित रूप से अपठनीय होते हैं।

17.3 द्वितीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येषयत्
   किं नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः।।
   किन्त्वंगीकृतमुत्सृजन् कृपणवच्छलाघ्यो जनोलज्ज्ते।
   निर्व्यूढं प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम्।।

2. प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्त चपला।
   पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।।

3. पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमेस्थितः

4. भव्यं रक्षति भवितव्यता

5. नन्वयुक्ततरः सुहृद्द्रोहः

6. सौहार्दात्कृतकृत्यतैव नियतं लब्धान्तराभत्स्यति

17.3.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येषयत्
किं नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः।।
किन्त्वंगीकृतमुत्सृजन् कृपणवच्छलाघ्यो जनोलज्ज्ते।
निर्व्यूढं प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम्।।

जब राक्षस निरन्तर चन्द्रगुप्त मौर्य के विनाश हेतु उपाय करता है तथा वे सभो उपाय प्रायः असफल हो जाते हैं। इस घटना से राक्षस अत्यधिक निराश हो जाता है तब उसका विश्वासपात्र गुप्तचर विराधगुप्त उसे समझाते हुए कह रहा है कि प्रारम्भ किए हुए कार्य को उस समय तक नहीं छोड़ना चाहिए जब तक कि वह कार्य पूर्ण नहीं हो जाए क्योंकि शेषनाग के शरीर में क्या पृथ्वी के भार को वहन करने से पीड़ा उत्पन्न नहीं होती। परन्तु क्या वह पृथ्वी को फेंक देता है। अथवा निरन्तर चलायमान होने से क्या सूर्य गतिशून्य होकर बैठ जाता है अर्थात् नहीं। क्योंकि शेषनाग एवं सूर्य दोनों ही अपने–अपने कार्यों में समग्र रूप से संलग्न रहते हैं। थककर अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होते। ठीक इसी प्रकार प्रशंसनीय पुरुष भो स्वीकार किए हुए कार्य का कायर पुरुष की भाँति मध्य में नहीं छोडता अपितु उन कार्यों का पूर्णतः निर्वाह करता है। क्योंकि यह सज्जनों का धर्म है– ''सतामेतद्धिगोत्रव्रतम्''

2. प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला।
पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।।

जब राक्षस अपने स्वामी नन्द के सपरिवार विनष्ट हो जाने पर अत्यधिक दुखी रहता है तब राजलक्ष्मी को उलाहना देता हुआ कहता है कि नन्द के समान गुणशाली पति को छोड़कर गुणों को न जानने वाले परपुरूष (चन्द्रगुप्त) का आश्रय लेना तुम्हारे लिए अनुचित है। क्योंकि असत्पुरुष के आश्रय लेने की अपेक्षा मर जाना श्रेष्ठ है। परन्तु हे पापशीले ! तूने तो कुलहीन मौर्य को पति के रूप में वरण किया है। अथवा यह सत्य ही कहा गया है कि– ''स्त्रियों की काश से उत्पन्न होने वाले पुष्प के अग्रभाग के समान चंचल बुद्धि स्वभाव के कारण पुरुषों के गुणों को पहचानने म विमुख होती है।''

भाव यह है कि स्त्रियाँ जिसका आश्रय लेती हैं या जिसको छोड़ देती है उन दोनों में से किसी के भो गुणों को नहीं जानती हैं। वे गुणशाली को तो छोड़ देती है तथा गुणहीन को स्वीकार कर लेती हैं।

3. पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमेस्थितः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब राक्षस विराधगुप्त से कुसुमपुर का वृतान्त सुन रहा है। विराधगुप्त बता रहा है कि शकटदास को फांसी की सजा सुनाई गई। ऐसा सुनकर राक्षस दुखी हो जाता है उसी समय उसका एक विश्वस्त व्यक्ति आकर सूचना देता है कि शकटदास सुरक्षित है। कुछ देर बाद सिद्धार्थक के साथ स्वयं शकटदास भो उपस्थित हो जाता है। शकटदास मन में सोचता है कि जो कुछ भो मैने देखा और सुना उसे देखकर मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ, उसका मूल कारण यह था कि मैंने इससे भो अधिक दुःखों को सहा है। अतः मेरा हृदय कठोर हो चुका है। यह सब सोचते हुए जब वह राक्षस के सम्मुख आता है तो उसे देखकर प्रसन्नता के साथ कहता है अपने स्वामी नन्द के मर जाने पर भो अक्षीण भक्ति वाला, स्वामी नन्द के कार्य को धारण करता हुआ पृथ्वी पर स्वामिभक्तों में अनुपम दृष्टान्त के रूप में अमात्य राक्षस स्थित है।

उपर्युक्त कथन सत्य ही है यदि स्वामिभक्तों की श्रेणी में गणना की जाए तो आज भो महाराज नन्द के प्रधानामात्य राक्षस की गणना प्रथम स्थान पर स्थित है अतः महाकवि विशाखादत्त का कथन पूर्णत उचित ही है– ''पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमेस्थितः''

4. भव्यं रक्षति भवितव्यता

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब विराधगुप्त राक्षस को बता रहा है कि उसके (राक्षस के) मित्र शकटदास को सूली पर चढ़ाया जा रहा है तब राक्षस अत्यन्त दुखी होता है। इसके बाद वह अपने अन्य मित्र चन्दनदास का समाचार भो पछता है। शकटदास को शूली पर चढ़ाने के लिए पकड़े जाने के समाचार को सुनने के बाद चन्दनदास ने आपके परिवार को अन्यत्र भज दिया। इस प्रकार उसने स्वयं को मित्रद्रोह से बचा लिया। चाणक्य के बार–बार कहने पर भो जब उसने (चन्दनदास ने) आपके परिवार के विषय में कुछ नहीं बताया तब उसने (चाणक्य ने) चन्दनदास को पत्नी एवं पुत्र सहित कारागार में डाल दिया। यह सुनकर राक्षस और अधिक दुखी हो गया। ठीक उसी समय एक व्यक्ति आकर यह सूचना देता है कि शकटदास सुरक्षित है। यह सुनकर वह आश्चर्यचकित हो जाता है तथा पुनः पूछता है कि क्या यह सत्य है तब वह व्यक्ति राक्षस से कहता है कि क्या मैं आपसे असत्य निवेदन करूंगा। इस शुभ समाचार को सुनकर विराधगुप्त कहता है कि सौभाग्यशाली की भाग्य सदैव रक्षा करता है। अतः यह कथन पूर्णतः सत्य है कि– ''भव्यं रक्षति भवितव्यता''

5. नन्वयुक्ततरः सुहृद्द्रोहः

प्रस्तुत सूक्ति में उस घटना का वणन है जब विराधगुप्त राक्षस को कुसुमपुर के वृतान्त बताते हुए बताता है कि शकटदास को फांसी पर चढ़ाया जा रहा है। साथ ही वह राक्षस के अन्य मित्र चन्दनदास का भो समाचार बता रहा है कि जब चन्दनदास ने शकटदास की फांसी सम्बन्धी सजा का वृतान्त सुना तब उसने भो सुरक्षा की दृष्टि से आपको, परिवार को अपने घर से किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया। चाणक्य द्वारा बार–बार पूछने पर भो

उसने आपके परिवार की जानकारी नहीं दी। चाणक्य का कोपभाजन होकर वह सजा भगतने को तैयार हो गया। परन्तु मित्रद्रोह नहीं किया। ऐसा सुनकर राक्षस अत्यन्त भावुक हो जाता है। धन्य है ऐसे मित्र अतः उपर्युक्त कथन सर्वथा उपर्युक्त प्रतीत होता है कि– ''नन्वयुक्ततरः सुहृद्द्रोहः'' अर्थात् मित्रद्रोह तो पूर्णतः अनुचित होता है।

6. सौहार्दात्कृतकृत्यतैव नियतं लब्धान्तराभेत्स्यति।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राक्षस चन्द्रगुप्त को विफल करने के उपाय में असफल होता है तब वह कूटनीति का प्रयोग करना चाहता है। इसलिए वह चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के मध्य मतभद उपस्थित करना चाहता है। इस हेतु वह करभक को कुसुमपुर भजना चाहता है। जिससे वह वहाँ के समस्त समाचार जानकर राक्षस को बता सके जिसके आधार पर उन दोनो मतभद कराया जा सके। अपनी योजना को सफल होता हुआ समझते हुए राक्षस कहता है कि– एक ओर तो चन्द्रगुप्त है जो अपने राज तेज के कारण समस्त राजाओं का अधिपति बन बैठा है दूसरी ओर चाणक्य है जो चन्द्रगुप्त को राजा बनाने के कारण गर्वीला हो गया है। राज्य प्राप्ति होने से चन्द्रगुप्त तो कृतार्थ हो रहा है तथा चाणक्य प्रतिज्ञा रूपी सागर (नन्दवंश का समूल विनाश रूपी प्रतिज्ञा) को पार करने से कृतकृत्य हो चुका है। अतः यही उचित अवसर है क्योंकि कृतकृत्यता स्वयं ही निश्चित रूप से उनके सुहृद भाव को पृथक् कर सकेगी अतः कवि से सत्य ही कहा है– ''सौहार्दात्कृतकृत्यतैव नियतं लब्धान्तराभत्स्यति।''

भाव यह है कि जब दोनों ही (चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त) अपना–अपना कार्य पूर्ण कर लेने के उपरान्त यह समझने लगेंगे कि हमें अभोष्ट की सिद्धि हो चुकी है। अतएव अब हमें एक दूसरे की क्या आवश्यकता है। उनके ऐसा समझते ही दोनों में स्वतः ही पार्थक्य हो जाएगा।

17.4 तृतीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. दैवम् अविद्वांसः प्रमाणयन्ति
2. दुराराध्या हि राजलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि राजानिः
3. न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभ्भिराहूयन्ते।
4. निरीहाराणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः
5. परायतः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः
6. राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्
7. श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्याभशम्
8. सेवालाघवकारिणी कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिंविदुः

17.4.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. दैवम् अविद्वांसः प्रमाणयन्ति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य सुनियोजित योजना के अनुरूप चन्द्रगुप्त से कृत्रिम कलह करता है। इसी मध्य चन्द्रगुप्त चाणक्य से कहता है कि आप मुझे प्रत्येक स्थान पर रोकते रहते हैं। इस पर चाणक्य ने कहा यदि तुम्हें प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं है तो अपना काम स्वयं करो। क्रोधावेश में चन्द्रगुप्त चाणक्य का त्यागपत्र भो स्वीकार कर लेता है। चन्द्रगुप्त पुनः पूछता है कि आपने कौमुदी महोत्सव पर क्यों रोक लगाई। साथ आपने मलयकेतु के भागने की क्यों उपक्षा की। आपने तो राक्षस को भो भागने का अवसर दे दिया। चन्द्रगुप्त तो राक्षस को ही बुद्धिमान, वीर व साहसी भो समझने लगता है। इस पर चाणक्य ने कहा कि नन्द वंश का विनाश मेरे ही कारण हुआ है। परन्तु चन्द्रगुप्त कहता हे कि यह कार्य तो दूसरे ने ही किया है चाणक्य पूछता है कौन तो वह उत्तर देता है

प्रतिकूल भाग्य। चाणक्य पुनः स्पष्ट करता है कि मूर्ख लोग ही भाग्य को प्रमाण मानते हैं– ''दैवम् अविद्वांसः प्रमाणयन्ति''

सत्य ही कहा गया है क्योंकि भाग्य पर आधीन रहकर व्यक्ति पुरूषार्थहीन हो जाता है। व्यक्ति को तो सदैव कम करना पड़ता है तभो वह विजयी हो जाता है अन्यथा वहीं कहा भो गया है– ''दैव दैव आलसी पुकारा।''

2. दुराराध्या हि राजलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चन्द्रगुप्त राजधर्म का पालन करने में आने वाली कठिनाई के बारे में मन में सोचता है कि राजधर्म का पालन अत्यधिक कठिन है। प्रजा का हित चिंतन ही उसका परम कतव्य है। इस लिए वह स्वयं को पराधीन मानने लगता है तथा कहता है कि– ''दुराराध्या हि राजलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि'', अर्थात् समाहित चित्त वाले लोगों के लिए राज्यलक्ष्मी कठिनता से आराधना की जाने वाली है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रजापालन करते हुए राजा न तो अधिक कठोर हो सकता है और न ही मृदु। इन दोनों ही स्थितियों में उसके समीप लक्ष्मी स्थिर करने के प्रयास में राजा को सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।

3. न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभुमिराहूयन्ते।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चन्द्रगुप्त और चाणक्य में कलह (कृत्रिम कलह) होता है। जिसके फलस्वरूप चन्द्रगुप्त चाणक्य को उसके मन्त्री पद से हटाकर स्वयं कार्यभार संभाल लेता है। चाणक्य जिस समय राजभवन में पहुंचता है, उस समय चन्द्रगुप्त अपने सिंहासन पर बैठा दिखाई पड़ता है। चाणक्य को देखकर वह उसे प्रणाम करता है तो चाणक्य उसको सार्वभोम सम्राट होने का आशीर्वाद देता है तथा पूछता है कि आपने हमें क्यों बुलाया है। इसका उत्तर देते हुए चन्द्रगुप्त कहता है कि आपके दर्शन से स्वयं को अनुगृहीत करने हेतु। ऐसा सुनकर चाणक्य ने कहा कि– ''न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभमिराहूयन्ते।'' अर्थात् राजाओं के द्वारा अधिकारीगण बिना प्रयोजन के नहीं बुलाए जाते हैं।

4. निरीहासणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चन्द्रगुप्त कंचुकी को आदेश देता है कि आचार्य चाणक्य को बुलाओ। वह चाणक्य की कुटिया पर जाता है वहाँ की चाणक्य का सादगीपूर्ण जीवन देखकर वह कहता है कि– ''निरीहाराणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः'' अर्थात् निरभिलाष व्यक्तियों के लिए राजा भो तिनके समान तिरस्कार का विषय होता है।

सत्य ही कहा गया है क्योंकि सामान्य व्यक्ति तो तृष्णा के कारण सदैव राजा की स्तुति करते रहते हैं। परन्तु जितेन्द्रिय महात्माओं के लिए ये सब (राज्य, पद, इत्यादि) तृणवत् त्याज्य हैं। किसी ने कहा भो है– ''आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः।।''

5. परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राजा चन्द्रगुप्त राजधर्म की कठिनता का विचार करते हुए अपने मन में सोचता है कि दूसरों के प्रयोजन को सिद्ध करने में (प्रजा का निरन्तर पालन करने में) अपने स्वार्थ को छोड़ने के कारण निश्चित रूप से राजा के लिए स्वसुख की अपेक्षा परकार्य (प्रजा का सुख) ही अपेक्षित है। अतः राजा को पराधीन हैं। इसीलिए सत्य ही है कि ''परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः'' अर्थात् पराधीन मनुष्य सुख के आनन्द को किस प्रकार से जान सकता है।

कहने का भाव यह है कि राजा स्वविषयोपभोग के लिए स्वतन्त्र नहीं है, उसका प्रमुख कतव्य तो प्रजापालन करना है। अतः वह स्वयं तो पराधीन सा अनुभव करने लगता है।

6. राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राजा चन्द्रगुप्त राज्य के विषय में विचार करता हुआ राजधर्म की कठिनता के विषय में कहता है कि– ''राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्'' अर्थात् राज्य राजा के कतव्यों के पालन करने में तत्पर राजा के लिए महान दःख का स्थान है।

उपर्युक्त कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि क्योंकि राजधर्म का पालन अत्यधिक कठिन है। प्रजा का हित चिंतन ही उसका परम कतव्य है। प्रजापालन करते हुए राजा अपने विषयोपभोग के लिए स्वतन्त्र नहीं है।

7. श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्याभृशम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है कि जब राजा चन्द्रगुप्त राजा के कतव्यों को सोचता हुआ अपने मन में विचार करता है कि राजधर्म का पालन अति कठिन है। इसी कारण राज्यलक्ष्मी को स्थिर करने के नाना उपाय भो करने पड़ते हैं। राजा न तो अधिक दण्ड दे सकता है क्योंकि ऐसा करने से प्रजा में विद्रोह हो सकता है। इसी प्रकार अधिक कोमल स्वभाव वाला भो नहीं हो सकता क्योंकि ऐसा करने से प्रजा तिरस्कार भो कर सकती है इसी कारण कवि विशाखदत्त का कथन पूर्णतः सतय प्रतीत होता है कि– ''श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्याभशम्'' अर्थात् प्रगल्भता को प्राप्त वेश्या के समान राज्य लक्ष्मी भो दुःख से सेवा के योग्य है।

कहने का भाव यह है कि राज्यलक्ष्मी भो चतुर वेश्या के समान मूर्ख से द्वेष करती है, अत्यन्त विद्वान् राजाओं से भो प्रीति नहीं करती, शूरवीरों से डरती है तथा कायरों का उपहास करती है। इसीलिए राज्यलक्ष्मी को स्थिर करने हेतु राजा को सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए।

8. सेवालाघवकारिणी कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिंविदुः

प्रस्तुत सूक्ति में उस घटना का वर्णन है जब चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त की मिथ्या लड़ाई को कंचुकी सत्य मानकर सेवा धर्म के विषय में अपना निर्वेद प्रकट करता है। वह कहता है कि '' सेवालाघवकारिणी कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिंविदुः'' अर्थात् सेवा को विद्वान् उचित ही श्ववृत्ति कहते हैं।

भाव यह है कि सेवा बडी कष्टकारक है क्योंकि सेवक को तो राजा और मन्त्री इन दोनों को ही प्रसन्न करना पड़ता है। स्थिति यह है दोनों (चन्द्रगुप्त और चाणक्य) विरोधी उद्देश्य लेकर काम कर रहे हैं। यदि इनम एक को प्रसन्न किया जाता है तो दूसरा नाराज हो जाता है। इसीलिए कवि ने सेवा और कुक्कुरवृत्ति को समान बताया है क्योंकि दोनों ही अपने स्वामी के प्रति समान आचरण करते हैं। किसी भो स्थिति में स्वामी को नाराज नहीं करते हैं।

17.5 चतुर्थ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. येनात्मनः पक्षमुझित्वा परपक्षः प्रमाणीक्रियते
2. प्रायो भत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः

17.5.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. येनात्मनः पक्षमुझित्वा परपक्षः प्रमाणीक्रियते

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राक्षस बौद्ध संन्यासी (भदन्त) क्षपणक से चन्द्रगुप्त के विरूद्ध विजययात्रा हेतु शुभ मुहूर्त के विषय में पूछता है, तब क्षपणक उसे पूर्णिमा का दिन शुभ बताता है। इस बात पर राक्षस कहता है कि पूर्णिमा का दिन तो अपने आप में ही ठीक नहीं है तो फिर नक्षत्र और लग्न के विषय में विचार करने से क्य लाभ?

इस अवस्था में अभियान कैसे हो सकता है। इस शंका का निवारण करते हुए जीवसिद्धि कहता है कि यद्यपि लग्न अशुभ है तथापि बुध से अधिष्ठित होने से शुभ हो जाती है और चन्द्रमा की शक्ति से जाते हुए तुम पूर्ण सफलता को प्राप्त करोगे। ऐसा कहने पर राक्षस कहता है कि आप अन्य ज्योतिषियों के साथ विचार कर लीजिए। ऐसा कहने पर राक्षस कहता है कि आप क्रोधित तो नहीं हुए। क्षपणक उत्तर देता है मैं क्रोधित नहीं हूँ। क्रोधित तो भगवान ज्योतिष या काल ही होगा क्योंकि तुम मुझे छोड़कर दूसरे व्यक्ति पर विश्वास करने जा रहे हो वे तो तुमको मिथ्या मार्ग ही बताएंगे जिसके कारण तुम्हारा विनाश हो जाएगा। अतः यह कथन सत्य ही है– ''येनात्मनः पक्षमुझित्वा परपक्षः प्रमाणीक्रियते।''

2. प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गय है जब क्षपणक से चन्द्रगुप्त के विरूद्ध विजय यात्रा हेतु शुभ मुहूर्त पूछकर राक्षस प्रियंवदक स पूछता है कि पता करो कि क्या समय है, प्रियंवदक कहता है कि सूर्यास्त होने वाला है। राक्षस स्वयं उठकर सूर्यास्त के समय को देखकर कहता है कि–

उदय होते और अस्त होते हुए सूर्य उस अधिकारी की भाँति प्रतीत होता है जिसके आने पर तो समस्त अनुचर वर्ग स्वागत करता है तथा जाने पर विदाई देता है। जब वह अधिकारी आता है सभो अनुचर उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए आगे रहते हैं परन्तु जाने पर पीछे रहते हैं। यहाँ यह कल्पना की गई है कि उद्यान के वृक्षों की छाया प्रातःकाल पश्चिम की ओर पड़ती है जहाँ सूर्य जाता है। अतः यह कल्पना की गई ह कि वे स्वामिभक्त अनुचर हैं। सायंकाल सूर्य पश्चिम की ओर जा रहा होता है तब वृक्षों की छाया पूर्व की ओर पड़ती है अतः यह कल्पना की गई वे वृक्ष सूर्य को विपत्ति में छोड़कर अलग हो रहे हैं अतः यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि ''प्रायो भत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः'' अर्थात् प्रायः सेवा करते हुए भत्य क्षीण ऐश्वर्य वाले स्वामी को छोड़ देते हैं।

17.6 पंचम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापि पुरुषस्य महदाशंकास्थानम्
2. अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः
3. गतिः सोच्छ्रायाणां पतनमनुकूलं कलयति।
4. तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना
   विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति।
5. मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि।
6. स्वार्थे कस्मिन्समीहापुनरधिकतरे त्वामनार्यं करोति।

17.6.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापि पुरुषस्य महदाशंकास्थानम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब मलयकेतु राक्षस से मिलना चाहता है। राक्षस सेवक से कहता है कि बिना अलंकारों (आभ्षणों) के कुमार से मिलना उचित नहीं अतः मुझे आभ्षण लाकर दो। आभ्षण पहनकर जब राक्षस चलने लगता है तो मन में कहता है कि– ''अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापिपुरुषस्य महदाशंकास्थानम्'' अर्थात् अधिकार इस नाम से कहा जाने वाला पद निर्दोष व्यक्ति के लिए भो अधिक भय का स्थान होता है।

उपर्युक्त विचार सत्य ही ज्ञात होता है क्योंकि यदि किसी को उच्च पद पर आसीन कर दिया जाए तो प्रजावर्ग (सामान्य जनता) को द्वेष होने लगता है, राजा से वह अधिकारी भो डरता है। अतः अधिकार भो निर्दोष व्यक्ति को डरा देता है।

2. अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गय है जब मलयकेतु राक्षस को विश्वासघाती समझने लगता है तथा उस पर कई आरोप लगाता है तथा कहता है तुम नाम्ना ही राक्षस नहीं हो अपितु कमणा भो राक्षस हो। तुमने ही पिता द्वारा धारण किए गए आभ्षणों को धूर्तता से निकलवाकर चन्द्रगुप्त के साथ सन्धिकर के मेरे विरूद्ध षडयन्त्र किया है। साथ ही तुमने मेरे पिता पर्वतश्वर को विषकन्या द्वारा मरवाया। इतना सब कुछ सुनकर राक्षस अत्यधिक दुखी होकर अपने मन में सोचता है– ''अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः'' अर्थात् यह तो मर्म स्थान के व्रण के ऊपर दूसरा व्रण है।

कहने का तात्पर्य यह है पहले से ही राक्षस मलयकेतु के अभियोग लगाने से अत्यधिक दुखी था पर्वतेश्वर की हत्या के आरोप ने तो उसे और अधिक आहत कर दिया।

3. गतिः सोच्छ्रायाणां पतनमनुकूलं कलयति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब मलयकेतु राक्षस से मिलना चाहता है तब राक्षस आभ्षणादि पहन कर उसके समीप जाते हुए अपने मन में विचार करते हुए कहता है कि अधिकार, पद, निर्दोष व्यक्ति के हृदय में भो भय उत्पन्न करता है क्योंकि सर्वप्रथम भय तो सेवनीय (राजा) से सेवक को चारों ओर से प्राप्त होता है, उसके बाद राजा के समीप रहने के कारण उस व्यक्ति (अधिकारी) के हृदय में रहता है, इसी कारण उच्चपद प्राणिमात्र में द्वेष उत्पन्न करने वाला होता है। अतः यह सत्य ही है कि ''गति सोच्छ्रायाणां पतनमनुकूलं कलयति''।

अर्थात् उन्नत व्यक्तियों की अवस्था भो उचित पतन को करती है। भाव यह है कि बुद्धिमान व्यक्ति को सदैव अपनी उन्नति से डरते हुए संभावित पतन को भो सोचना चाहिए।

4. तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना
विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति।

जब चाणक्य की योजनानुसार भागुरायण कुसुमपुर से बाहर आते हैं तथा मलयकेतु की सेवा में उनको भज दिया जाता है। मलयकेतु भागुरायण को अपना मन्त्री बना देता है। भागुरायण को मन ही मन में बुरा लगता है कि किसो का विश्वस्त बनकर उसे धोखा दिया जाए। परन्तु अब तो सोचने का समय समाप्त हो गया है क्योंकि वह तो स्वयं पराधीन है। अतः अब कर्तव्य और अकर्तव्य, हानि और लाभ के विषय में सोचना ही व्यर्थ है। अतः इस समय तो मुझे चन्द्रगुप्त की आज्ञा का पालन करते हुए विचारों को त्याग ही देना चाहिए। क्योंकि मुझे जैसे पराधीन व्यक्ति के लिए यह अनुचित है कि वह यह हितकारी है या अहितकारी ऐसा सोचे।

5. मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब सिद्धार्थक चाणक्य द्वारा छलपूर्वक शकटदास से लिखवाया हुआ व राक्षस की मुद्रा से मुद्रित लख व राक्षस की मुद्रिका से मुद्रित आभ्षणों की पेटिका लेकर मिथ्या रूप में पाटलिपुत्र जाता है। उसी समय उसे क्षपणक दिखाई पड़ता जाता है। क्षपणक का दर्शन अशुभ माना गया है। सिद्धार्थक को क्षपणक प्रणाम करता है तथा पूछता है कि कहीं जाने की तैयारी है। वह कहता है हा मैं विदेश जा रहा हूँ। आप बताइए कि आज का दिन कैसा है। इस बात पर क्षपणक हंसकर कहता है कि ''मुण्डित सिर वाले तुम नक्षत्रों को पूछते हो''– ''मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि''।

कहने का भाव यह है कि शुभमुहूर्त, नक्षत्रादि के विषय में तो तुम को यात्रा करने के पूर्व ही पूछना चाहिए था अब पूछने से क्या लाभ ?

6. स्वार्थे कस्मिन्समीहापुनरधिकतरे त्वामनार्यं करोति।

चाणक्य की सुनियोजित योजनानुसार मलयकेतु राक्षस को अपना विश्वासघाती समझने लगता है तथा पूछता है कि– स्वार्थे कस्मिन्समीहापुनरधिकतरे त्वामनार्यं करोति। अर्थात् ऐसा कौन सा स्वार्थ है जिसकी इच्छा ने तुमको अनार्य बना दिया है।

भाव यह है कि यदि तुम चन्द्रगुप्त की दासता स्वीकारते हो तो वह तुम्हें धन देगा, मन्त्री पद भो देगा। यदि मेरे समीप रहते हो तो तुम इच्छा से धन देते हो अर्थात् चन्द्रगुप्त के पास मन्त्रीपद दासता है तथा मेरे पास तुम स्वामी हो। इस प्रकार मौर्य की सेवा से भो बढ़कर मेरे पास रहने पर तुम्हारी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहती है। फिर किस स्वार्थ के कारण तुम अनार्य हो रहे हो ?

17.7 षष्ठ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. अलक्षितनिपाताः पुरुषाणां समविषमदशापरिणतयो भवन्ति।
2. अभ्मिः खल्वेषोऽविनयस्य
3. कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तव सति वणिक्त्वेऽपि वणिजः
4. दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति।

17.7.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. अलक्षितनिपाताः पुरुषाणां समविषमदशापरिणतयो भवन्ति।

जब राक्षस अपनी योजना में पूर्णतः विफल हो जाता है तथा चाणक्य की कूटनीति सफल होती है तब वह जीर्ण उपवन में प्रविष्ट होकर चन्दनदास के समाचार को जानने का प्रयास करता है उस समय वह सोचता है कि मनुष्यों के अनुकूल और प्रतिकूल अवस्थाओं के परिणाम बिना किसी कल्पना के ही आने वाले होते हैं। क्योंकि जो (नन्द के जीवित रहने पर) सैकड़ों राजाओं से घिरा हुआ राजा के ही समान नागरिकों द्वारा अंगुलियों के द्वारा चन्द्रमा के समान निर्दिष्ट किया जाता हुआ शनैः शनैः नगर से निकला करता था वही मैं आज असफल होता हुआ पुनः उसी नगर में चोर की भाँति शीघ्रता से प्रवेश करता हूँ।

अतएव उपर्युक्त कथन पूर्णतः सत्य है– 'अलक्षितनिपाताः पुरुषाणां समविषमदशापरिणतयो भवन्ति।''

2. अभूमिः खल्वेषोऽविनयस्य

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राक्षस चन्दनदास का पता लगाने के लिए पाटलिपुत्र के जीर्णोद्यान में आता है। वहाँ पर वह देखता है कि एक पुरुष आत्महत्या करने का प्रयास कर रहा है। राक्षस उसे रोकते हुए उसके पूछता है कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो। ऐसा पूछने पर वह बताता है कि मेरा मित्र विष्णुदास अग्नि में प्रवेश करने जा रहा है, मैं उसका वियोग नहीं सह सकता अतः स्वयं को नष्ट करने जा रहा हूँ। राक्षस पूछता है कि विष्णुदास क्यों जलकर मरना चाहता है क्या उसे कोई असाध्य रोग है, अथवा राजकोप, वह पुरुष कहता है कि चन्द्रगुप्त के राज्य में निर्दय प्रवृत्ति नहीं है। राक्षस पुनः पूछता है कि क्या दुष्प्राप्य स्त्री में अनुरक्त हो गया है। वह पुरुष कहता है कि इस भ्मि पर अविनय का कोई स्थान नहीं है– ''अभ्मिः खल्वेषोऽविनयस्य''

3. कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तवसति वणिक्त्वेऽपि वणिजः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राक्षस चन्दनदास का पता लगाने के लिए पाटलिपुत्र के जीर्णोद्यान में आता है। वहाँ पर उसे एक पुरूष दिखाई देता है जो आत्महत्या करने का प्रयास कर रहा है। जब राक्षस उससे पूछता है कि ऐसा क्यों कर रहे हो तब वह पुरुष बताता है कि पाटलिपुत्र में विष्णुदास नामक मणिकार श्रेष्ठी है जो मेरा मित्र है वह अपनी संपूर्ण संपति का दान करके अग्नि में जलकर मरने हेतु नगर से बाहर चला गया है। राक्षस पूछता है कि वह (विष्णुदास) ऐसा क्यों कर रहा है। वह अपने मित्र चन्दनदास के

वियोग में स्वयं को समाप्त करना चाहता है। उसने आज चन्द्रगुप्त के पास जाकर कहा भो था कि आप मेरी सम्पूर्ण धन सम्पत्ति ले लीजिए तथा इसके बदले में मेरे मित्र चन्दनदास को मुक्त कर दीजिए। ऐसा सुनते ही राक्षस भावुक होकर कहता है कि जिस धन के लोभ से पिता और पुत्र में विरोध उत्पन्न हो जाता है, जिस धन के लिए मित्र भो मित्रता छोड़ देते हैं। उस धन को तुम अपने मित्र की रक्षार्थ छोड़ रहे हो इसलिए तुम धन्य हो क्योंकि तुम्हारा धन तुम्हारे वणिक् होने पर भो सफल हो गया। अतः सत्य ही कहा गया है कि– कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तवसपि वणिक्त्वेऽवि वणिजः।''

4. दैवेनोपहतस्य बद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति

राक्षस अपने मित्र चन्दनदास का पता लगाने के लिए जब जीर्णोधान में आता है तब वह अत्यधिक भावुक होकर सोचता है कि मैं निश्चित रूप से नन्द वंश का शत्रु है क्योंकि नन्द के स्वर्गलोक चले जाने पर मैंने पर्वतक का आश्रय लिया, पर्वतक के भो मर जाने पर उनके पुत्र मलयकेतु का आश्रयमानकर नन्द के शत्रु के बदला लेने का प्रयास किया परन्तु असफल रहा। ऐसा विलाप करते हुए वह पुनः कहता है कि इस समय भो जो राक्षस अपने स्वामियों की सेवा कर रहा है वह स्वामियों के शत्रु से सन्धि किस प्रकार कर सकता है। मलय केतु ने ऐसा विचार कैसे कर लिया। अथवा सत्य ही है कि भाग्य से मारे हुए व्यक्ति की सम्पूर्ण बुद्धि विपरीत हो जाती है।

17.8 सप्तम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. कार्याणां गतयोविधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वं चिरात्
2. स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्य जागरूकाः।

17.8.1. सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. ''कार्याणां गतयो विधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वंचिरात्''

अपनी कूटनीति का सफल प्रयोग करते हुए अपनी कूटनीति का सफल प्रयोग करते हुए जब चाणक्य राक्षस से पूछता है कि क्या तु अपने मित्र चन्दनदास का जीवन चाहते हो। इस बात के उत्तर में राक्षस ने कहा कि निस्सन्देह मैं यही चाहता हूँ। तब चाणक्य ने कहा फिर आप चन्द्रगुप्त के अमात्य होने को स्वीकार कीजिए। जब तक आप ऐसा नहीं करते तब तक आपका अनुग्रह निराधार है। ऐसा सुनकर राक्षस मन में सोचता है कि– ''कार्याणा गतयो विधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वंचिरात्'' अर्थात् पूर्व जन्म के कर्मों की गतियाँ चिरकाल से ब्रह्मा की भो आज्ञाकारिता को प्राप्त नहीं होती है।

भाव यह है कि सर्वात्मना समर्थ होता हुआ भो ब्रह्म कम की विचित्र गति के कारण उन गतियों का अनुचर हो जाता है। अतः मैं भो कम की गति के कारण विवश हूँ। मित्र के प्राणों की रक्षा हेतु मुझ नन्द के शत्रु चन्द्रगुप्त की रक्षा हेतु नन्द के शत्रु चन्द्रगुप्त का भत्य बनना पड़ रहा है।

2. स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्य जागरूकाः

जब चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त के समस्त शत्रु बिना युद्ध के ही विनट हो जाते हैं तब चन्द्रगुप्त मन ही लज्जा की अनुभति करता है। क्योंकि शत्रुओं को परास्त करने के लिए उसे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर ही नहीं मिला अथवा यह कहा जा सकता है कि राज्य चिन्ता से विमुख मेरे समान जिस राजा के राज्य में सतत सावधान आचार्य चाणक्य के सदृश मन्त्री जागरूक रहा करते हैं वह राजा प्रत्यंचा रहित धनुष वाला होता हुआ भो पथ्वी को जीतने के योग्य शत्रु को जीतने में समर्थ है। अतः यह कथन पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है कि– स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्य जागरूकाः। अर्थात् मैं तो सोता हूँ (निश्चिन्त रहता हूँ) तथा मेरे गुरू मेरे कार्यों को देखते हुए निरंतर जागरूक रहते हैं।

17.9 पारिभाषिक शब्दावली

उपचारः	सम्मान / शिष्टाचार
दिष्ट्या	सौभाग्य से
प्राकृत	सामान्य
श्रोत्रिय	वैदिक ब्राह्मण
परिभव	अपमान
निर्व्यूढ	निर्वाह किया हुआ
दुराध्या	कठिनता से आराध्य
लाघवकारिणी	तुच्छ करने वाली
निरीह	निरभिलाष
कलयति	करती है (घटाती है)
समीहा	इच्छा
स्वपतः	सोते हुए
विगुणीकृत	प्रत्यंचा रहित
कार्मुकः	धनुष

17.10अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या कीजिए–

1. अत्यादरो शंकनीयः ।
2. शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः।
3. भव्यं रक्षति भवितव्यता।
4. परायत्तः प्रीते कथमिव रसंवेत्तिं पुरुषः।
5. सेवालाघव कारिणी कृतधियः स्थाने श्ववृलिविदुः
6. अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापि पुरुषस्य महदाशंकास्थानम्
7. अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः
8. दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति।
9. कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तव वणिक्त्वेऽपि वणिजः।
10. कार्याणां गतयोविधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वंचिरात्।

बोध प्रश्नोत्तर

1. इकाई 17.2.2 में देखिए
2. इकाई 17.2.2 में देखिए
3. इकाई 17.3.2 में देखिए
4. इकाई 17.4.2 में देखिए
5. इकाई 17.4.2 में देखिए
6. इकाई 17.6.2 में देखिए
7. इकाई 17.6.2 में देखिए
8. इकाई 17.7.2 में देखिए
9. इकाई 17.7.2 में देखिए
10. इकाई 17.8.2 में देखिए

17.11 सारांश

इस इकाई में हमने विशाखादत्त प्रणीत "मुंडराक्षसम नाटक" जनकल्याणर्थ सूक्तियों का ज्ञान प्राप्त किया । ये सूक्तियाँ सामाजिक, आर्थिक – राजनैतिक – सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से लाभकारी है । ये सूक्तियां संखा व्यक्ति का मार्गदर्शन करती रहेगी ।

17.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुद्राराक्षसम्– डॉ0 निरूपण विद्यालंकार (व्याख्याकार), साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ, 2000.।
2. मुद्राराक्षस नाटकम्– डॉ0 सत्यव्रत सिंह (व्याख्याकार) कृष्णदास अकादमी वाराणसी, 1968.।

इकाई 18

शूद्रक– व्यक्तिनिर्धारण, काल, मृच्छकटिकम् की कथावस्तु एवं समीक्षा

इकाई की रूपरेखा –

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 शूद्रक – व्यक्ति निर्धारण

18.2.1 शूद्रक कौन था ? राजा था अथवा नहीं ?

18.2.2 ब्राह्मण था, क्षत्रिय था या शूद्र था ?

18.3 शूद्रक का काल

18.3.1 ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी से ई.पूर्व प्रथम शताब्दी

18.3.2 300 ई. से 700 ई. मध्य

18.3.3 उपसंहार

18.4 मृच्छकटिकम् की कथावस्तु

18.4.1 अंकानुसार कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण

18.5 कथावस्तु की समीक्षा

18.6 पारिभाषिक शब्दावली

18.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.8 सारांश

18.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

18.0 उद्देश्य

एम.ए. संस्कृत पूर्वार्द्ध के द्वितीय प्रश्न पत्र के पाठ्यक्रम में शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' रखा गया हैं। इस इकाई के अन्तर्गत शूद्रक का परिचय दिया गया है। उसका काल निर्धारण करने का प्रयास किया गया है। साथ ही शूद्रक द्वारा विरचित प्रसिद्ध कृति मृच्छकटिकम् की कथावस्तु को प्रस्तुत कर उसकी विस्तृत समीक्षा की गई है। इस इकाई को पढने के बाद आप

1) शूद्रक के विषय में विस्तार से जान सकेंगे।

2) उसके व्यक्तित्त्व के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3) उसके स्थितिकाल के विषय में जान सकेंगे।

4) उसके द्वारा विरचित –मृच्छकटिकम् नामक प्रकरण को कथावस्तु के विस्तार से जान सकेंगे।

5) नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से कथावस्तु के गुण व दोषों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना –

संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि जो रचना या कृति जितनी प्रसिद्ध हुई है उतनी ही नहीं अपितु उससे अधिक समस्यायें व संशय उसके कर्तृत्व के विषय में हमें यहाँ देखने को मिलते हैं। 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' को संस्कृत–नाट्य

साहित्य में न केवल भारतीय विद्वानों व मनीषियों द्वारा श्रेष्ठ माना गया है, अपितु पाश्चात्य विद्वानों ने भो नाटक की भ्रि–भ्रि प्रशंसा की है। परन्तु नाटक के रचयिता के विषय में नाम के अतिरिक्त कुछ भो ज्ञात नहीं है। परन्तु 'मृच्छकटिकम्' के कतृत्व के विषय में जब विचार करते हैं तब उसकी स्थिति तो ओर भो संशयात्मक प्रतीत होती है, क्योंकि वहाँ पर तो लेखक के नाम को लेकर भो विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इस प्रकरण की अन्तर्योजना जितनी मनोरंजक एवं पिटी – पिटाई लकीर से पृथक् है उतना ही जटिल एवं विवादग्रस्त उसके रचयिता का प्रश्न रहा है। एक तरह शूद्रक को 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता माना है, तो दूसरी ओर इस स्थापना का प्रवीण युक्तियों से प्रत्याख्यान भो किया गया है, इसी तरह एक ओर उसे काल्पनिक व्यक्ति माना गया है तो दूसरी ओर उसे ऐतिहासिक नरेश भो सिद्ध किया गया है।

इन सबके मूल में कारण आलोच्य प्रकरण की प्रस्तावना है। प्रस्तावना में इसको प्रकरण बतलाया गया है तथा रचयिता का नाम शूद्रक कहा गया है। प्रस्तावना में शूद्रक का कुछ परिचय भो है जो इस प्रकार है –

''गजराज के समान गतिवाले, चकोर के समान नेत्र वाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले, सुन्दर शरीर वाले, द्विजों में मुख्यतम, अगाध शक्ति वाले शूद्रक नाम के विख्यात कवि हुये। उन्होंने ऋग्वेद, सामवेद, गणित, ललितकलाओं तथा गज विद्या को शिव की कृपा से सीखकर तिमिर रहित नेत्रों को प्राप्त कर पुत्र को राजा के रूप में देखकर महान् उद्योग से अश्वमेघ यज्ञ कर और दस दिन सहित सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर अग्नि में प्रवेश किया।''

18.2 शुद्रक – व्यक्ति – निर्धारण

प्रकरण की उक्त प्रस्तावना ने कई समस्याओं को जन्म दिया है। इन समस्याओं में सर्वप्रथम यह है कि प्रस्तावना में जिस 'शूद्रक' का उल्लेख है, वह कौन है ? ऐतिहासिक व्यक्ति है अथवा कोई काल्पनिक पुरूष है ? इस विषय में प्रायः दोनों ही प्रकार के मत हमें देखने को मिलते हैं। एक ओर डॉ कीथ, तैलंग, करमरकर आदि विद्वान् इसे काल्पनिक पुरूष मानते हैं तो दूसरी ओर डॉ भागव, डॉ भाट, डॉ सालेटोर, चन्द्रबली पाण्डे आदि विद्वान् उसे ऐतिहासिक राजा के रूप में मानते हैं।

डॉ. कीथ का मत है कि शूद्रक स्पष्टतया काल्पनिक पुरुष है क्योंकि प्रस्तावना में यह कहा गया है कि उसने अग्नि में प्रवेश किया और इस बात पर कोई भो विश्वास नहीं कर सकता कि उसे अपनी मृत्यु का इतना ठीक ज्ञान पहले ही हो गया हो। कीथ के उक्त कथन से स्पष्ट है कि वह शूद्रक को वास्तविक पुरूष नहीं मानता। इसी सन्दभ में उन्होंने यह भो शंका उठाई है कि ''शूद्रक नाम किसी राजा के लिए, किसी ऐसे राजा के लिए जो द्विजों की श्रेणी को सुशोभित कर सके, कछ विचित्र सा ध्वनित होता है, यदि उस राजा ने शूद्रक की उपाधि उपनाम के रूप में भो ग्रहण की तो भो कुतूहल बना रह जाता है उसने अपने सम्पूर्ण पाण्डित्य के बावजूद, ऐसी संज्ञा क्यों अपनाई जो किसी भो प्रकार हीनता की व्यंजना से गर्भित हो ?''

परन्तु डॉ. कीथ की उक्त धारणा उचित प्रतीत नहीं होती। किसी भो सिद्धान्त को प्रतिपादित करने से पूर्व उसकी पुष्टि में जो आधार बनाये जायें उनको सम्यक् प्रकारेण देख लेना एक आलोचक के लिए आवश्यक है। 'शूद्रक काल्पनिक है क्योंकि उसका नाम अटपटा है। कोई ऐसा प्रामाणिक व अकाट्य तथ्य नहीं है जिसके आधार पर कोथ की उक्त धारणा को सत्य माना जाये। किसी भो व्यक्ति का मूल्यांकन उसके नाम व उसकी उपाधि से किया जाय, यह कहाँ तक उस व्यक्ति के साथ न्याय की बात होगी, यदि वह राजा काल्पनिक ही होता तो नाम शूद्रक क्यों रखा जाता? काल्पनिक व्यक्ति का नाम तो अच्छी से अच्छी कल्पना करके सुन्दर नाम रखना चाहिए। इस दृष्टि से प्रस्तुत नाम तो काल्पनिक की अपेक्षा वास्तविक का अधिक समर्थक हैं।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान में जितनी भी खोजें शूद्रक के सन्दभ में की गई हैं उनका निष्कष यही निकलता है कि शूद्रक एक ऐतिहासिक राजा था। यहाँ पर हम उन सभी मतों को प्रस्तुत करेंगे जो इस सन्दभ में समय समय पर विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। जहाँ तक ऐतिहासिकता का सम्बन्ध है, अधिकांश ने उसे ऐतिहासिक राजा माना है परन्तु उसे इतिहास में पकडने के प्रयास में विभिन्न कल्पनायें अवश्य की गई हैं –

1. बाण भट्ट द्वारा विरचित 'हर्षचरित' में शूद्रक का उल्लेख प्राप्त होता है। 'हर्षचरित' एक ऐतिहासिक काव्य है तथा विद्वानों द्वारा वह सर्वथा मान्य भी है। वहाँ हमें शूद्रक के विषय में इस प्रकार उल्लेख मिलता है – 'चकोर नामक देश के राजा चन्द्रकेतु ने किसी पूर्व अवसर पर द्वारपाल के द्वारा राजा शूद्रक का अपमान कराया था जिसके प्रतिशोध में शूद्रक के दूत ने छल द्वारा चन्द्रकेतु के प्राण हर लिये।'' यह उल्लेख उस प्रसंग में उपलब्ध है जबकि सेनापति स्कन्दगुप्त ने महाराज हर्षवर्धन के समीप राजवर्धन की हत्या का प्रतिशोध लेने के निमित्त प्रस्तावित आक्रमण के विषय में संभाव्य संकटों का वर्णन करते हुयें पूर्ववर्ती नरेशों के दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं। हर्षचरित का विषय ऐतिहासिक है और पुराने राजाओं से सम्बन्धित दृष्टान्तों के प्रकरण में जिस ढंग से शूद्रक का उल्लेख हुआ है, उससे यह अनायास मान लेने की प्रेरणा होती है कि 'शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं।'

2. दण्डी की रचना 'अवन्ती–सुन्दरी कथा' में शूद्रक का उल्लेख मिलता है। वहाँ जो ... इतिवृत्त दिया गया है उसमें उसे उज्जयिनी का एक ब्राह्मण राजा और महान् कवि बतलाया गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि शूद्रक ने आन्ध्रवंश के स्वाति नामक राजा को पराजित किया था। इतिहास के अनुसार 'स्वाति' ने 56 ईस्वी पूर्व तक राज्य किया। महाराजा विक्रमादित्य का भी यही समय है अतः कुछ विद्वानों ने इस साम्य के आधार पर विक्रमादित्य और शूद्रक को अभिन्न सिद्ध करने का प्रयास किया है।

3. कल्हण द्वारा विरचित 'राजतरंगिणी' एक ऐतिहासिक रचना है। इसकी विभिन्न तरंगों में यहाँ पर हुये प्रसिद्ध राजाओं के उल्लेख देखने को मिलते हैं। शूद्रक का उल्लेख भी एक दो बार इस रचना में किया गया है। कल्हण द्वारा किये गये इन उल्लेखों से शूद्रक का ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व प्रतिभासित होता है। डॉ. तिवारी के शब्दों में एक बार वह परमवीर राजा तथा दूसरी बार राजभक्त नीतिज्ञ बताया गया है।

4. वामन के एक टीकाकार लिखते हैं कि शूद्रक दक्षिणापथ का सम्राट् था।

5. सोमदेव के 'कथासरित्सागर' में किसी शूद्रक नामक भारतीय राजा का उल्लेख हुआ है।

6. राजशेखर विरचित 'काव्यमीमांसा' में भी शूद्रक का उल्लेख हमें देखने को मिलता है। इस ग्रन्थ में राजशेखर ने राजा के क्या कतव्य होते हैं – इसका विस्तार से विवेचन किया है। अपने उक्त विवेचन में आपने लिखा है – ''सभा मण्डप में सूखपूर्वक आसीन राजा काव्य गोष्ठी का प्रारम्भ कराये और वासुदेव, सातवाहन शूद्रक, साहसांक इत्यादि पूर्वकालीन नृपति–गण जिस प्रकार अपनी सभाओं में गुणीजनों को दान–मान से सम्मानित करते थे, उसी प्रकार वह भी कवियों को पुरस्कारादि से सत्कृत करे।''

   काव्यमीमांसा के उल्लेख से शूद्रक कल्पना लोक का प्राणी न होकर वास्तविक संसार का प्रसिद्ध व्यक्ति, वह भी एक राजा के रूप में प्रतीत होता है।

7. प्रो. स्टेनकोनो के मतानुसार ' मृच्छकटिकम्' का रचयिता शूद्रक आभोर राजा शिवदत्त से अभिन्न है।

8. स्कन्दपुराण के कुमारिका खण्ड में भो हमें शूद्रक सम्बन्धी उल्लेख देखने को मिलता है। उस उल्लेख में कहा गया है कि शूद्रक नाम का एक महान् राजा कलि सम्वत् 3290 वें वर्ष में राज्य करेगा। नवीन गणना करके विद्वानों ने उक्त वर्ष ईस्वी सम्वत् का 190 वाँ वर्ष बताया है। कनल विल्फोर्ड ने सर्वप्रथम स्कन्दपुराण के उक्त उल्लेख के आधार पर आन्ध्रवंश के प्रवर्तक सिमुक से शूद्रक की अभिन्नता बतलाई।

9. भागवत् पुराण में प्रथम आन्ध्रशासक को 'वृषल' अथवा शूद्र' कहा गया है। अतः यह सम्भावना हो सकती है कि वह 'शूद्रक' पुकारा जाता हो।

10. 'सिमुक' के विभिन्न ग्रन्थों में क्रमशः अन्य नाम सिन्धुक, शिशुक, सिसुक तथा सिमुक एवं शिप्रक प्राप्त होते हैं। यहाँ इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि प्रारम्भ में यह सिमुक ही 'शूद्रक' रहा हो।

11. कनल विल्फोर्ड के अतिरिक्त विल्सन ने भो स्कन्दपुराण के शूद्रक को आन्ध्रवंश के 'सिमुक' से अभिन्न ठहराते हुये उसे 'मृच्छकटिकम्' का कर्ता भो माना है। विल्फार्ड एवं विल्सन के अतिरिक्त एम.आर.काले ने भो इस मत का समर्थन किया है।

12. पुराणों के अध्ययन के आधार पर ही डॉ. पुरूषोत्तम लाल भार्गव ने भो सात वाहन वंश के संस्थापक 'शिशुक' को 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता माना है। इस राजा का नाम नानाघाट अभिलेख के अनुसार सिमुक था परन्तु पुराणों में इसके नाम के शिशुक, सिन्धुक, शिप्रक और शूद्रक रूप मिलते हैं। पुराणों के अनुसार इसके नाम के जो विविध रूप ऊपर दिये गये हैं उनमें अन्तिम से ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत साहित्य में शूद्रक नाम के जिस प्रसिद्ध राजा की चर्चा मिलती है, वह यही था। केवल नाम ही नहीं शूद्रक के विषय में जो अन्य बातें संस्कृत साहित्य में कही गई हैं, वे भो इस राजा पर लागू होती हैं। उदाहरण के लिये – कादम्बरी के अनुसार शूद्रक की राजधानी विदिशा थी। इस राजा का भो विदिशा पर अधिकार था और सम्भव है कि वह इस नगर में अपना पूरा नहीं कुछ समय व्यतीत करता हो। 'मृच्छकटिकम्' में शूद्रक ' द्विजमुख्यतमः' अर्थात् ब्राह्मणों में श्रेष्ठ कहा गया है। यह राजा भो ब्राह्मण था । उक्त सभो विवरणोपरान्त डॉ. भार्गव का कथन है कि 'बहुत सम्भव है कि इस राजा की कीर्ति ने ही शूद्रक की कथाओं को जन्म दिया हो।'

13. शूद्रक की ऐतिहासिक पहचान का व्यवस्थित एवं विस्तृत प्रयास डॉ. सालेटोर ने भो किया है। आपके मत का आधार वामन विरचित 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' है जिसका कि समय ईसा की आठवी शती है । वामन द्वारा विरचित उक्त ग्रथ में 'मृच्छकटिकम्' के उदाहरण को देखकर डॉ. सालेटोर ने यह माना है कि वह शूद्रक वामन का समसामयिक नहीं तो पूर्ववर्ती अवश्य होगा। इस तथ्य से प्रेरणा ग्रहण कर बडे ही मनोयोग व परिश्रम के साथ प्रकरण की प्रस्तावना में प्राप्त कवि–परिचय के आधार पर शूद्रक को इतिहास में ढूढंने का प्रयास किया। इस प्रयास के फलस्वरूप दक्षिण के प्राचीन गंगाराजवंश के राजा शिवमार प्रथम से शूद्रक को अभिन्न ठहराया है। आपने 'मृच्छकटिकम्' को दो व्यक्तियों की रचना बतलाई है। इसमें पहला भाग गंगावंश के राजा शिवमार प्रथम द्वारा रचित है, तथा दूसरा भाग शूद्रक, शिवमार प्रथम के प्रपौत्र शिवमार द्वितीय (797–815 ई) द्वारा रचित हैं।

14. शूद्रक के सन्दभ में किये गये प्रयासों में अन्तिम प्रयास स्व. पं. चन्द्रबली पाण्डे द्वारा किया गया है। आपने आन्ध्रवंशीय वासिष्ठीपुत्र श्री पुलुमावि के रूप में शूद्रक की पहचान की है। आपकी स्थापना का आधार 'अवन्ति सुन्दरी कथासार' का वह श्लोक है जिसमें अश्मक देश निवासी इन्द्राणिगुप्त नामक ब्राह्मण को पण्डितों द्वारा शूद्रक कहा गया है। पाण्डे जी के अनुसार पुलुमावि ही इन्द्राणिगुप्त है, अतः पुलुमावि ही शूद्रक है। शूद्रक आपके शकों में पुलुमावि का उपनाम है आपके तर्क का मूलाधार पुलुमावि और इन्द्राणिगुप्त की अभिन्नता है। परन्तु इन दोनों की अभिन्नता को सिद्ध

करने में आपने अनुमान की श्रृंखला सी जोड दी है जिसमें आपका प्रयास यथार्थ को स्पर्श नहीं कर सका है।

परन्तु एक महत्त्वपूर्ण कथन अवश्य हमें आपकी पुस्तक में मिलता है, जिसके अनुसार ''शूद्रक को कल्पना लोक का प्राणी मानना अतीत को धोखा देना होगा, उसकी आँखों में धूल झोंकना होगा।'' आपका यह कथन मात्र इस बात का साक्षी है कि शूद्रक का व्यक्तित्त्व काल्पनिक न होकर ऐतिहासिक था।

15. डॉ. जीके भाट ने भो अपनी पुस्तक 'दी फिफश टू दी मृच्छकटिकम्' में विभिन्न मतों को संकलित कर उनका मूल्यांकन करते हुये अन्त में शूद्रक को एक ऐतिहासिक राजा के रूप में ही माना है।

उक्त मतों के अतिरिक्त अन्य भो जो इस सन्दभ में प्रयास किये गये हैं वे प्रायः सभो इस निष्कष पर पहुँचे हैं कि शूद्रक एक ऐतिहासिक राजा था। ऐसी स्थिति में आज कीथ व अन्य एक दो विद्वानों के काल्पनिक मतों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता।

उक्त सम्पूण मतों को व्यवस्थित करने के बाद हम यह कह सकते हैं कि वह शूद्रक सम्भवतः सातवाहन वंश का संस्थापक सिमुक ही था। पुराणों में प्राप्त उसके विभिन्न नामों में सिमुक के साथ–साथ शूद्रक नाम भो हमें यही मानने को प्रेरित करता है।

इस प्रकार शूद्रक की ऐतिहासिकता सिद्ध हो जाने पर द्वितीय प्रश्न जो उत्पन्न होता है कि वह यह कि संस्कृत साहित्य में प्राप्त 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण का रचयिता उक्त शूद्रक ही है या अन्य कोई व्यक्ति है ? इस विषय में विभिन्न मत दिखाई देते हैं :–

(क) सर्वप्रथम कुछ विद्वान् ऐसे हैं जो प्रस्तावना में कुछ कहा है, उस पर विश्वास नहीं करते। वे शूद्रक को कल्पित पुरूष मानते हैं। उनके मतानुसार 'मृच्छकटिकम्' के कर्ता कोई अन्य कवि थे। इस मत के समर्थकों में कीथ, सिलवां लेवी, पिशैल, कान्तानाथ शास्त्री तैलंग, प्रो करमरकर आदि प्रमुख हैं।

परन्तु उक्त विद्वानों के द्वारा जो प्रमाण व तर्क दिये गये ह वे इतने सबल व अकाट्य नहीं हैं कि उन्हें सत्य माना जाये।

(ख) द्वितीय मत जिसको कि अधिकांश भारतीय विद्वानों का समर्थन प्राप्त है, शूद्रक को 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता मानने से समबन्धित है। इस मत के समर्थकों में डॉ. कुन्हन राजा, डॉ. रामजी उपाध्याय, डॉ. चन्द्रबली पाण्डे, कान्तिकिशोर भरतिया, डॉ. सुधीर कुमार गुप्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इन मतों के अतिरिक्त स्वयं प्रकरण की प्रस्तावतना भो शूद्रक को ही मृच्छकटिकम् का रचयिता प्रमाणित करती है। परन्तु प्रस्तावना की लेखन शैली को लेकर अनेक शंकायें उत्पन्न हो जाती हैं। सर्व प्रथम जो शंका उत्पन्न होती है, वह यह कि क्या ये आमुख के श्लोक भो शूद्रक के लिखे हुये हैं या किसी ने बाद में लिख दिये हैं? इस सम्बन्ध में हमारी मान्यता है कि ये श्लोक स्वयं रचयिता द्वारा विरचित न होकर किसी प्रशंसक या अन्य कवि द्वारा बाद में जोड दिये गये से प्रतीत होते हैं। आधुनिक जितने भो प्रयास शूद्रक के सम्बन्ध में किये गये हैं उन सभो विद्वानों ने प्रायः ऐसा ही निष्कष निकाला है।'

डॉ. कुन्हन राजा, डॉ हरिदत्त शास्त्री, डॉ रमा शंकर तिवारी आदि विद्वान् 'मृच्छकटिकम्' को शूद्रक की कृति मानते हैं परन्तु प्रस्तावना के श्लोक शूद्रक द्वारा लिखे हुये नहीं मानते।

उक्त सम्पूर्ण मतों पर विचारोपरान्त निष्कष रूप से हम यह कह सकते हैं कि भारतीय परम्परा 'मृच्छकटिकम्' को शूद्रक की कृति मानती है। यहाँ यह भो उल्लेखनीय है कि 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता शूद्रक से भिन्न सिद्व करने वाले सभो प्रयास अभो विफल ही रहे हैं और जब तक पुष्ट प्रमाणों के आधार पर प्रचलित परम्परा का खण्डन नहीं हो जाता, तब तक यही मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि 'मृच्छकटिकम्' का कर्ता शूद्रक हैं।

18.2.1 शुद्रक कौन था ? राजा था अथवा नहीं ?

इस प्रकार 'मृच्छकटिकम्' के कर्ता शूद्रक ही हैं यह सिद्ध हो जाने पर भो एक प्रश्न जो आर उत्पन्न होता है वह यह कि शूद्रक सामान्य कवि था या राजा ? क्या उसने स्वयं ने ही यह लिखा या उसकी सभा के किसी कवि ने यह नाटक लिखकर उसके नाम से प्रसिद्ध कर दिया? यह प्रश्न इसलिए उत्पन्न होता है कि भारत में उक्त दोनों ही प्रकार के राजा हुये हैं। एक ओर ऐसे राजा हुये हैं जिन्होंने स्वयं काव्य की रचना करके साहित्य की अभिवृद्धि की है तथा दूसरी ओर ऐसे भो राजा हुये हैं जो कि स्वयं कवि न होकर मात्र कवियों के आश्रयदाता रहे हैं।

विद्वानों ने इस सन्दभ में गम्भोरता से अध्ययन किया है। अध्ययनोपरान्त दोनों ही प्रकार की सम्भावनाओं में कुछ तथ्य दृष्टिगोचर होता है परन्तु अधिक प्रमाण इस विषय में मिलते हैं कि वह स्वयं राजा भो था तथा कवि भो। 'मृच्छकटिकम्' का अध्ययन तथा उसमें प्राप्त कवि सम्बधी विवेचन भो इस बात की पुष्टि करता है कि उसका कर्ता स्वयं कवि तथा राजा था। सातवाहन संस्थापक सिमुक भो राजा तथा कवि दोनों ही था।

18.2.2 शूद्रक ब्राह्मण था, क्षत्रिय था या शूद्र था ?

शूद्रक एक राजा था, यदि वह राजा था तो उसकी जाति क्या थी ? वह ब्राह्मण था या क्षत्रिय था या शूद्र था ? यह प्रश्न भो विद्वानों में विवाद का विषय रहा है। शूद्रक की जाति को लेकर आज तक विद्वानों की मान्यता है, उसके अनुसार तीन मुख्य मत हैं। एक और अल्पसंख्यक विद्वानों ने शूद्रक को शूद्र माना है तो दूसरे कुछ विद्वानों ने उसे ब्राह्मण माना है। अधिकांश विद्वानों ने प्रस्तावना में प्रयुक्त उसके गुणों को प्रधानता देते हुये उसे क्षत्रिय माना है।

प्रथम मत के समर्थको में जो प्रबल समर्थक के रूप में सामने आते हैं, वे हैं डॉ. शेखर। डॉ. शेखर ने यह मत व्यक्त किया है कि शूद्रक क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण कदापि नहीं रहा होगा क्योंकि उसने 'मृच्छकटिकम्' में ऐसे चित्र अंकित किये हैं जो आभिजात्य के विरोधी हैं, उसने संस्कृत की तुलना में प्राकृत को प्रामुख्य प्रदान किया है और उसके द्वारा ब्राह्मण पोषित परम्पराओं का तिरस्कार किया गया है। डॉ. शेखर की तर्कना में आर्य बनाम अनार्य की मनोदृष्टि कार्यशील रही है जो उनकी सम्पूर्ण पुस्तक में आद्योपान्त दृष्टव्य है। इसो आधार पर डॉ. शेखर का यह भो कहना है कि कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्रम् में भास, कविपुत्र व सौमिलक के साथ शूद्रक का भो तिरस्कार कर दिया। डॉ. शेखर का उपर्युक्त तर्क प्रामाणिक व विश्वसनीय नहीं है। अतः अधिकांश विद्वानों ने इसे स्वीकार नहीं किया।

'शूद्र' के अतिरिक्त द्वितीय मत जो शूद्रक की जाति के सम्बन्ध में प्राप्त होता है, वह उसके क्षत्रिय होने के पक्ष में है। इस मत के समर्थक अपने मत की पुष्टी में जो प्रमाण या तर्क देते हैं, उनके अनुसार प्रस्तावना में जिन विशेषणों क्रमशः समर व्यसनी, अगाध सत्व, हस्तिकला में प्रवीण इत्यादि का प्रयोग क्षत्रिय के सम्बन्ध में ही सम्भव है। वास्तव में इन विशेषणों के आधार पर यह सोचना गलत तो नहीं कि वह क्षत्रिय होगा, पर किसी भो विषय या व्यक्ति पर विचार करने से पूर्व उसके दोनों पक्षों पर सोच लेना आवश्यक है।

प्रस्तावना में 'द्विजमुख्यतमः' विशेषण भो प्रयुक्त हुआ है जो उसे 'ब्राह्मण' मानने को प्रेरित करता है। यदि केवल 'द्विज' शब्द का प्रयोग होता, तब तो उसे क्षत्रिय माना जा सकता था क्योंकि 'द्विर्जायते इति द्विजः' अर्थात् जिसका दो बार जन्म होता है, वही 'द्विज' है। परन्तु यहाँ पर चूँकि 'द्विज' शब्द के आगे 'मुख्यतमः' इन चार अक्षरों का प्रयोग किया गया है जो कि निरर्थक नहीं हैं। व्याकरण की दृष्टि से भो 'तमप्' प्रत्यय का प्रयोग श्रेष्ठता को द्योतित करने के लिए ही किया जाता है। अतएवं यहाँ पर 'द्विज'के साथ 'मुख्यतमः' का प्रयोग करने का तात्पर्य ही यह द्योतित करता है कि वह द्विजों में मुख्यतम अर्थात् श्रेष्ठ बाह्मण था। यह कहना कि प्रस्तावना में दिये गये कवि सम्बन्धी गुण क्षत्रिय राजा में ही सम्भव है,

उचित नहीं है क्योंकि ब्राह्मण राजा के लिए भो ये गुण तथा विशेषण नियोजनीय होंगे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहाँ पर ऐसे अनेक ब्राह्मण राजा हुये हैं जो कि प्रस्तावना में प्रयुक्त गुणों से गुणान्वित थे। इतिहास में प्रसिद्ध सातवाहन शासक या आन्ध्रवंश के राजा भो ब्राह्मण ही थे। डॉ. भार्गव, भण्डारकर व अन्य इतिहासवेत्ताओं ने उन्हें ' ब्राह्मण जाति का' ही बतलाया है। अपने मत की पुष्टि में डॉ. भार्गव ने लिखा है कि इस वंश के प्रसिद्ध राजा गौतमीपुत्र ने अपने को ब्राह्मण कहा है।

यह तो हुई बाह्य प्रमाणों की बात। इसके अतिरिक्त यदि आन्तरिक प्रमाणों पर भो दृष्टि डाली जाये तो यह स्पष्ट है कि शूद्रक एक ब्राह्मण नरेश ही था। प्रकरण के नवें अंक में ज्येातिष तथा मनुस्मृति इत्यादि धर्मशास्त्रों के उ)रण इस बात के प्रमाण हैं कि वह ब्राह्मण था तथा ज्योतिष व धर्मशास्त्रों का काफी अध्ययन कर रखा था। ब्राह्मण शर्विलक को राज्य विप्लव का नायक बनाने तथा दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त को प्रकरण का नायक बनाने तथा उसके चरित्र का उदारता एवं क्षमाशीलता के पूर्णतया आलोक से उद्भासित करने के तथ्य की सफाई राजा शूद्रक के इसी जीवन रहस्य में है कि वह ब्राह्मण था। ब्राह्मणों के सम्बन्ध में दरिद्रता का आदर्शीकरण तथा नैतिक स्लखन के बावजूद उसके अन्तर्निहित सत्व को उत्तेजित करना – ये सभो तथ्य अपने आप में कुछ महत्त्व रखते हैं तथा इनमें कुछ सार है।

ऐसी स्थिति में विद्वानों का यह संदेह उठाना कि यदि शूद्रक ब्राह्मण राजा होता तो उसने निम्न स्तरीय चरित्रों को प्रमुखता देकर आभित्याज विरोधी भावनायें प्रदर्शित नहीं की होती, मूलतः गलत है। इस संबंध में हमारा यह कथन है कि शूद्रक एक क्रान्तिकारी राजा था तथा उसे हर क्षेत्र में, जिनमें एक साहित्य का भो क्षेत्र आ जाता है, प्राचीन समय से चली आ रही परम्परा अभिप्रेत नहीं थी, वह लकीर का फकीर नहीं बनना चाहता था। यही कारण था कि उसने पिटी–पिटाई लकीर से अलग होकर आभिजात्य वर्ग तथा राजसी व देवयोनि के पात्रों को अपने प्रकरण में प्रधानता न देकर एक लौकिक वास्तविक जीवन का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया। यही कारण है कि आज 'मृच्छकटिकम्' का न केवल संस्कृत साहित्य में अपितु विश्व के साहित्य में भो महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके साथ ही शूद्रक का रोमान्टिक व्यक्तित्त्व जिसके निर्माण में उसके जीवन के अपने व्यक्तिगत अनभव होंगे, ऐसे चरित्रों की अवतारणा के लिए उत्तरदायी रहा होगा। 'राजश्री' प्राप्त करने के संदभ में भो उसे क्षत्रीय सत्ता के साथ संघर्ष करना पड़ा था क्योंकि वही सातवाहन वंश का प्रथम शासक था जैसा कि डॉ. भार्गव व अन्य इतिहासकारों ने माना है। अतएव बिलकुल स्वाभाविक ढग से शूद्रक ने प्रस्तुत नाटक में स्थिर स्वार्थों को स्थान न देकर निम्नवर्गीय पात्रों के चरित्रों का उत्कष चित्रित किया है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि 'मृच्छकटिकम्' का कर्ता शूद्रक ब्राह्मण राजा ही था, क्षत्रिय या शूद्र नहीं। प्रस्तावना में प्रयुक्त 'द्विजमुख्यतमः' शब्द का तात्पर्य भो उक्त कथन की ही पुष्टि करता है। 'द्विजमुख्यतमः' की व्याख्या हमारे मतानुसार इस प्रकार करना उचित होगा –

''ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–द्विजेषु ब्राह्मणस्यैव वेदादिषु श्रेष्ठत्वकथनादत्र मुख्यतः ब्राह्मण एवेति वाच्यम्।''

इस प्रकार मृच्छकटिकम् के कर्ता शूद्रक का ब्राह्मण होना हमारी इस धारणा को ओर भो दृढ करता है वह सिमुक ही था, क्योंकि सिमुक भो एक ब्राह्मण राजा ही था।

सिमुक व शूद्रक में प्राप्त समानताओं में एक महत्वपूर्ण समानता उसका दाक्षिणात्य होना भो है। कतृत्व व काल के विषय में मतमतान्तर होते हुये भो रचयिता के निवास स्थान के सन्दभ में प्रायः मतैक्य है। अधिकांश विद्वानों ने मृच्छकटिक के रचयिता का निवास स्थान दक्षिण का कोई प्रदेश ही निश्चित किया है। प्रदेश विशेष को लेकर मतमतान्तर किंचित् मात्रा में हो सकता है परन्तु इस विषय में प्रायः सब एक मत हैं कि वह दाक्षिणात्य था।

18.3 शूद्रक का काल –

जिस प्रकार 'मृच्छकटिम्' के रचयिता को इतिहास में खोजना विद्वानों के लिए एक समस्या रही है उसी प्रकार उसकी रचना का समय निर्धारण करना भो बहुत कठिन प्रमाणित हुआ है। वास्तव में देखा जाय तो दोनों प्रश्न ही अन्योन्याश्रित हैं, एक का पता लगने पर दूसरे का अपने आप ही लग सकता है। इतिहास में शूद्रक को ढूंढने के जो प्रयास किये गये उनका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। यहाँ पर काल निर्णय सम्बन्धी मतों को प्रस्तुत करेंगे।

किसी भो रचना अथवा रचयिता का काल निर्णय करने के लिये प्रायः दो मार्ग अपनाये जाते हैं। प्रथम आभ्यन्तर प्रमाण का सहारा लिया जाता है तथा द्वितीय बाह्य प्रमाणों के आधार पर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकर्ता का काल निश्चित किया जाता है। 'शूद्रक' के काल निर्णय हेतु दोनों ही दृष्टियों से विचार किये गये हैं तथा निष्कर्ष भो निकालने के प्रयास किये गये हैं। इस समबन्ध में आज तक जो कार्य हुआ ह उसके अनुसार इसका समय तृतीय शताब्दी ईस्वी पूर्व से लेकर अष्टम शताब्दी तक दोलायमान है। विद्वानों द्वारा इस लम्बी अवधि में विभिन्न तिथि सम्बन्धी मत रखे गये हैं जो सप्रमाणिक होते हुये भो पूर्णरूपेण अकाट्य नहीं कहे जा सकते।

18.3.1 ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी से ई. पूर्व प्रथम शताब्दी –

स्कन्दपुराण में शूद्रक विषयक उल्लेख प्राप्ति के आधार पर मृच्छकटिकम् के 'कर्ता' शूद्रक को आन्ध्रवंश के आदिम राजा से अभिन्न मानने का प्रयास विद्वानों द्वारा समय समय पर किया गया है। इस सन्दभ में ई.पू. द्वितीय शताब्दी तथा ईसापूर्व प्रथम शताब्दी शूद्रक का काल निर्धारित किया गया है। इस मत के प्रमुख समर्थकों में कनल विल्फोर्ड विल्सन, डॉ. भण्डारकर, एम.आर.काले, डॉ. भार्गव, एवं डॉ. हरिदत्त शास्त्री आदि हैं। सभो विद्वानों ने अन्तः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य के आधार पर उक्त काल की पुष्टि का प्रयास किया है।

(1) डॉ. भण्डारकर का कथन है कि सातवाहन नरेशों का शासन काल 'वृहत्कथा' तथा 'गाथासप्तशती' जैसे काव्य ग्रन्थों के प्रणयन से सौरभित था और ये ग्रन्थ उनके प्राकृत प्रेम के परिचायक समझे जायेंगे। पुनः सातवाहनों के काल में बौद्धधर्म की यथेष्ठ उन्नति हुई थी और उसे राज्य की ओर से प्रचुर प्रोत्साहन भो मिला था। श्री काले एवं विल्सन दोनों ने डॉ. भण्डारकर के उक्त विषयों को उदृत करते हुये अपने पृथक्–पृथक् मत व्यक्त किये हैं। विल्सन महोदय का कथन है कि 'मृच्छकटिकम्' में प्राकृत भाषा का अत्यधिक प्रयोग हुआ है और संवाहक भिक्षु के प्रति प्रदर्शित व्यवहार से बौद्ध धर्म की उन्नत एवं सम्मानपूर्ण अवस्था का अर्थ ग्रहण किया है। इन्हीं व अन्य आधारों पर आपने 'मृच्छकटिकम्' को सातवाहनकाल की रचना माना हैं। इस सम्बन्ध में आपने दो अन्य तर्क भो दिये हैं – पहला तर्क शकार द्वारा प्रस्तुत किये गये उल्टे – सीधे उद्धरणों से सम्बन्धित ह। विल्सन का कथन है कि 'उसके सम्पूर्ण उद्धरण रामायण तथा महाभारत से लिये गये हैं और पौराणिक कथाओं से प्राप्त ध्रुव, दक्ष, प्रहलाद प्रभति पात्रों की कोई चर्चा उनमें उपलब्ध नहीं है। इससे जान पडता है कि 'मृच्छकटिकम्' की रचना पुराणों के पूर्व हुई होगी क्योंकि नाटककार उनकी कथाओं से परिचित नहीं जान पड़ता। आपका दूसरा तर्क यह है कि ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या वसन्तसेना में जो वैध दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित हो गया है, उससे भो लक्षित होता है कि नाटक उस समय के पूर्व रच गया होगा जब ब्राह्मण एवं शूद्र में वैवाहिक सम्बन्ध निषिद्ध ठहराया गया।

(2) विल्सन के अतिरिक्त डॉ. काले ने भो अन्तः साक्ष्यों को आधार मानते हुये इस प्रकार अपना मत प्रस्तुत किया हैः–

(क) यह नाटक ऐसे समय की ओर संकेत करता है जब बौद्धधर्म उन्नत अवस्था में था। बौद्ध भिक्षुओं का जनता में सम्मान था, वे भिक्षु के धर्म का सावधानी से पालन करते

थे। ई सम्वत् के प्रारम्भ काल में बौद्ध धर्म ह्रास की ओर अग्रसर हो गया था, अतः इस नाटक की रचना इससे पूर्व ही माननी चाहिए।

(ख) वैशिकी कला 1–(4) का उल्लेख तथा किसी वेश्या के नायिका होने की कल्पना वात्स्यायन के कामसूत्र की रचना के समकालीन है। वात्स्यायन क कामसूत्र का समय 100 ई.पू. से पश्चात् नहीं हो सकता, अतः 'मृच्छकटिकम्' का समय भो इसके ही निकट है।

(ग) बाद में प्रचलित नाट्यकला के अनेक नियमों से 'मृच्छकटिकम्' का कर्ता परिचित नहीं है, जैसे किसी रस विशेष की प्रधानता अथवा किसी पात्र विशेष के लिए किसी प्राकृत विशेष की योजना। साथ ही नाटक की सरल किन्तु चित्रपूर्ण शैली न तो कालिदास के समान कोमलकान्त पदावलि में है और न ही भट्टनारायण एवं भवभूति के समान कृत्रिम एवं कलापूर्ण है। इससे प्रकट होता है कि 'मृच्छकटिकम्' संस्कृत नाटक के प्रारम्भिक काल की रचना है।

(घ) नवम अंक में अधिकरणिक द्वारा कथित 'अंगारक–विरूद्धस्य' इत्यादि श्लोक में मंगल को बृहस्पति का शत्रु ग्रह बतलाया गया है। यह मान्यता वराहमिहिर के विपरीत पड़ती है और उनके पूर्ववर्ती ज्योतिषाचार्यों द्वारा यह मान्य थी जिनका कि उल्लेख उसने 'वृहज्जातक' में किया है। डॉ. काले का इस सन्दभ में कथन है कि वराहमिहिर का समय 500 ई. के लगभग निर्धारित किया गया है। अतः 'मृच्छकटिकम्' की रचना उसके अनेक शताब्दी पूर्व होनी चाहिए।

3. प्रसिद्ध इतिहासकार श्री डे ने भो 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता शूद्रक को स्वीकार करते हुये नाटक में प्रयुक्त शकार तथा विट के रूप साक्ष्य तथा कामसूत्र के अनुसार वसन्तसेना के चित्रण के कारण नाटक का रचनाकाल ई.पू. प्रथम तथा ई. की प्रथम सदी के मध्य माना हैं।

4. डॉ. हरिदत्त शास्त्री एवं डॉ. देवस्थली आदि कतिपय विद्वानों ने नवम अंक में 'प्राप्त' 'अयं हि पातकी विप्रो' इत्यादि श्लोक के आधार पर 'मृच्छकटिकम्'`को मनुस्मृति के आसपास की रचना माना है। डॉ. शास्त्री ने बूलर के मत को प्रमाण स्वरुप रखकर मनुस्मृति का समय 200 ई.पूर्व और 200 ई. के बीच माना है। 'मृच्छकटिकम्' में मनुस्मृति के नियम को क्योंकि माना नहीं गया है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'मृच्छकटिकम्' का समय मनुस्मृति के रचनाकाल के आस पास ही होगा जब मनु के नियम अधिक प्रचलित नहीं हुये होंगे। आपने 'मृच्छकटिकम्' के रचनाकाल सम्बन्धी निष्कर्षों में लिखा है कि 'यद्यापि हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह रचना द्वितीय शताब्दी ई.पूर्व. की है। सम्भव है आन्ध्रमृत्यवंश के राजा सिमुक ही 'शूद्रक' हो जिनकी यह रचना हो।

5. शूद्रक के समय के स्थिरीकरण के विषय में एक अन्य महत्त्वपूर्ण कसौटी कालिदास का आविर्भाव काल है। इस विषय में भो दोनों पक्ष विद्यमान हैं – कुछ विद्वानों ने कालिदास को पूर्ववर्ती व कुछ ने उसे पूर्ववर्ती माना है। 'शूद्रक' कालिदास से पूर्ववर्ती नहीं था इसके लिए विद्वानों के पास मुख्य प्रमाण 'मालविकाग्निमित्रम्' की प्रस्तावना में भास, सौमिलक आदि के साथ शूद्रक के नाम का न होना है। डॉ. रमाशंकर तिवारी ने कालिदास द्वारा नामोल्लेख न करने के सन्दभ में कई प्रश्नों को उठाकर उनका

समाधान करते हुये निष्कष यही निकाला है कि ''कालिदास ने 'मृच्छकटिकम्' तथा उसके रचयिता शूद्रक की किन्हीं साहित्येतर कारणों से उपेक्षा की, यह मानने में हम असमर्थता का अनुभव करते हैं। हमारी विविक्षा यह है कि शूद्रक कालिदास का परवर्ती है। इसी प्रकार जागीरदार व अन्य भो अनेक विद्वानों ने शूद्रक को कालिदास का परवर्ती कवि माना है।

दूसरी ओर कालिदास के नाटकों को 'मृच्छकटिकम्' की नाट्यकला व उसके प्रभावों से प्रभावित जानकर विद्वानों ने शूद्रक को कालिदास से पूर्ववर्ती स्वीकार किया है। डॉ. शान्तिकुमार नानूराम व्यास ने कालिदास को शूद्रक का परवर्ती कवि माना है। आपने अपने मत की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये हैंः–

(क) कालिदास के नाटकों में 'मृच्छकटिकम्' की कुछ छाप दिखाई पडती है। कालिदास का समय लगभग 100 ई.पू. है, अतः 'मृच्छकटिकम्' की रचना इससे कुछ पूर्व अवश्य हो चुकी होगी। प्रश्न होता है कि फिर कालिदास शूद्रक के प्रति मौन क्यों हैं ? जब उन्होंने अपने पूववर्ती भास का उल्लेख किया है। कारण यह है कि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति अशान्तिमय होने के कारण कविगण प्रायः किसी उपलब्ध नाटक के परिष्कार एवं परिवर्धन में अपना कौशल प्रदर्शन करतें थे। किसी समय समकालीन या पूर्वकालीन राजनीतिक क्रान्ति के आधार पर वे मूल रचना में दर्शकों की रूचि के अनुसार परिवर्तन करते थे। कालिदास को सम्भवतः यह पता रहा होगा कि 'मृच्छकटिकम्' न कोई मौलिक रचना है और न शूद्रक ही उसके लेखक हैं। कालिदास के अनुसार 'मृच्छकटिकम्' के रचयिता रामिल और सौमिल रहे होगें क्योंकि इन्हीं का उलेख उन्होंने मालविकाग्निमित्रम् में किया है।

(ख) मृच्छकटिकम् में ' राष्ट्रिय' शब्द का प्रयोग वस्तुतः एक पुलिस के अधिकारी के अर्थ में हुआ है। किन्तु परवर्ती साहित्य में राष्ट्रिय शब्द का प्रयोग ''राजा के साले'' के अर्थ में हुआ है। कालिदास ने राष्ट्रिय शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। अतः 'मृच्छकटिकम्' कालिदास के पूर्व की रचना है।

6. डॉ सुधीर कुमार गुप्त भो 'मृच्छकटिकम्' को कालिदास से पूर्व की रचना मानते हैं। आपने कालिदास द्वारा शूद्रक का नामोल्लेख न करने के सन्दभ में एक दो सम्भावनाएँ की हैं। आपने लिखा है हो सकता है कि 'मृच्छकटिकम्' का उल्लेख कालिदास के विक्रमोर्वशीय के 'पूर्ववर्ती कवीनाम्' के अन्तर्गत आ गया हो। द्वितीय सम्भावना आपने कालिदास को शूद्रक के सभाकवि के रूप में मानकर की है। उसके अनुसार ''यदि कृष्णचरित्र के अनुसार शूद्रक वस्तुतः 'मृच्छकटिकम्' के रचयिता थे, तो कालिदास उनके सभाकवि होने के कारण स्पष्ट शब्दों में शूद्रक का नाम निर्देश करते हुये अपने नाटक की प्रशंसा नहीं कर सकते थे। यह भो सम्भव है कि शूद्रक का नाटक कालिदास के नाटकों से पहले अभिनीत न हुआ हो। राजा ने अपने अवकाश काल मे शान्ति स्थापित होने के उपरान्त ही इसे लिखा होगा। उस समय तक कालिदास का मालविकाग्निमित्रम् लिखा जा चुका हो। अतः शेष दो नाटकों में किसी भो कवि का नामतः निर्देश न किया जाना महत्त्वपूर्ण है। निष्कष के रूप में आपने लिखा है कि भास, कालिदास और शूद्रक आस पास हो रहे होंगे।''

7. डॉ. रामजी उपाध्याय भो डॉ. गुप्त व व्यास के मत से सहमति रखते हैं। आपने भो स्पष्ट लिखा है – ''मृच्छकटिकम्'' की नाट्यकला और भाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि इसकी रचना अवश्य ही कालिदास के नाटकों के पहले हुई।''

8. डॉ. परांजपे भो 'मृच्छकटिकम्' को कालिदास के पूर्व की रचना मानते हैं। इसके लिए आपने प्रकरण में प्रयुक्त कायस्थ तथा राष्ट्रिय आदि शब्दों के अर्थ तथा प्रयोग क्रम का विवेचन किया है। 'मृच्छकटिकम्' में राष्ट्रिय शब्द का प्रयोग एक पुलिस के अधिकारी के रूप में हुआ है, जो कि उसके शाब्दिक अर्थ के अधिक उपयुक्त है, जबकि कालिदास ने इस शब्द को रूढि करके राजा के साले के स्थान पर प्रयुक्त किया है। कायस्थों को आप एक विदेशी जाति मानते हैं तथा पल्लवों के वंशगत समूह से सम्बन्ध स्वीकारते हैं। द्वितीय, चूंकि भारतीयों ने यूनानियों तथा रोमनों से नक्षत्र विद्या अपनाई, अतः 'मृच्छकटिकम् के छठे अंक में प्राप्त ज्योतिष–विषयक उल्लेख ईसा की पहली अथवा दूसरी शताब्दी में स्वाभाविक समझे जा सकते हैं। ''

उक्त सभो मतों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि 'मृच्छकटिकम्' संस्कृत साहित्य की एक प्राचीन रचना है। भारतीय परम्परा के अनुसार कालिदास का समय ईसा पूर्व 56 के लगभग है। अतः शूद्रक का समय इससे पूर्व या समीपवर्ती होना चाहिए।

18.3.2 300 से 700 ई. मध्य –

विद्वानों का दूसरा समूह उक्त उक्तियों के स्वीकृति प्रदान नहीं करता। उनके मतानुसार चूँकि 'मृच्छकटिकम् ' 'चारुदत्त' का परिवर्द्धित संस्करण है। अतः शूद्रक का समय इतने पूर्व का स्वीकृत नहीं किया जा सकता। इन विद्वानों ने बाह्य प्रमाणों को अपने मत का मूलाधार बनाया है। उदाहरणार्थ –

1. आचार्य वामन ने अपनी कृति 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में (शूद्रकविरचितेषु प्रबन्धेषु') शूद्रक विरचित प्रबन्ध का उल्लेख किया है तथा 'द्यूतं हि नाम पुरुषस्य असिंहासनम् राज्यम्' 'मृच्छकटिकम्' के इस द्यूत प्रंशसा परक वाक्य को उद्धृत भो किया है, जिससे प्रमाणित होता है कि 'मृच्छकटिकम्' की रचना 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' (आठवीं शताब्दी) के पूर्व हो गई होगी।

   वामन के पूववर्ती आचार्य दण्डी ने भो अपने 'काव्यादर्श' में 'मृच्छकटिकम्' के 'लिम्पतीवतमोऽंगानि पद्यांश को अलंकार निरुपण करते समय उद्धृत किया है। उक्त प्रमाणों के आधार पर आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन है कि कि 'मृच्छकटिकम्' की रचना सप्तम शताब्दी के पहले ही हुई होगी। वे शूद्रक व 'मृच्छकटिकम्' की रचना पञ्चम् शतक में मानते हैं।

2. उपाध्याय जी के अतिरिक्त प्रो आर.वी. जागीरदार ने भो 'मृच्छकटिकम्' का रचना काल ईसवी के पञ्चम शतक तथा षष्ठ शतक के मध्य माना है। आपने 'मृच्छकटिकम्' के भाषा पक्ष तथा वस्तुतत्व का समीक्षण करते हुये यह निष्कष निकाला है कि 'मृच्छकटिकम्' की रचना उस समय हुई जबकि समाज में भाग्यवादिता बढी जा रही थी, बौद्धधर्म का पुनरूत्थान हो रहा था तथा प्राकृत के अतिरिक्त अपभश भो प्रायः बोलचाल में प्रयुक्त होती थी। ऐसी परिस्थितियाँ गुप्तों के पतन तथा हर्ष के राज्यकाल के मध्य में समग्र रूप से दीख पडती है। इसी सन्दभ में जागीरदार ने मृच्छकटिकम् पर कालिदास का प्रभाव खोजकर अपने मत का समर्थन किया है।

3. डॉ. भोलाशंकर व्यास ने भो गुप्ता साम्राज्य के पतन के बाद की अराजकता तथा गुप्तकालीन समाज की पृष्ठभ्मि पर विस्तार से दिग्दर्शन कराते हुये धर्म, संस्कृति, राजनीति से सम्बन्धित अनेक अन्तरंग प्रमाणों के आधार पर यही निष्कष निकाला है कि 'मृच्छकटिकम्' का रचना काल ईसा की पांचवी सदी के उत्तरार्द्ध या छठी सदी के पूर्वार्द्ध में माना जा सकता है।

4. डॉ. सालेटोर 'मृच्छकटिकम्' की रचना का काल सप्तम शताब्दी का मध्य व अष्टम शताब्दी का अन्तिम चतुर्थांश मानते हैं। आपका कथन है कि नाटक का पूर्वार्द्ध (शिवमार प्रथम द्वारा) ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य के लगभग तथा उत्तरार्द्ध (शिवमार द्वितीय) द्वारा आठवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में रचा होगा और सौ–सवा सौ वर्षों के इस अन्तराल के बावजूद जो दोनों अंशों की शैली में अन्तर नहीं पडा उसका कारण था शिवमार द्वितीय की निराली काव्य–प्रतिभा।''

   सालेटोर की उक्त स्थापना व्यवस्थित होते हुये भो विश्वसनीय नहीं है। युग्म कर्तृत्व की स्थापना अपने आप में अन्यन्त्र कमजोर है, साथ ही नाटक की रचना शैली व टेकनीक भो इतने बाद का समय मानने को प्रेरित नहीं करती।

5. डॉ. जौल्ली भो 'मृच्छकटिकम्' में प्राप्त प्रमाणों के आधार पर उसका रचना काल पञ्चम शताब्दी के लगभग मानते हैं। आपके मत का प्रमुख आधार प्रकरण का नवम अंक है। प्राणदण्ड के कार्यान्वयन हेतु विष खिलाकर मार डालने, जल में डुबोने, यन्त्र पर चढाने तथा अग्नि में प्रविष्ट कराने, चाण्डालों द्वारा शरीर पर आरा चलाये जाने के अतिरिक्त, चार विकल्पों के कथन को, न्याय कार्य में श्रेष्ठिन्, की उपस्थिति को न्यायाधीश के इस कथन को कि 'हम लोग यानी न्यायाधीश निर्णय के अधिकारी हैं, शेष बात यानी निर्णय के कार्यान्वयन की बात राजा जाने तथ अन्य सम्बद्ध तथ्यों को प्रमाण रुप में प्रस्तुत कर जौल्ली ने यह प्रतिपादन किया है कि 'मृच्छकटिकम्' में इनका सन्निवेश सूचित करता है कि नारद तथा बृहस्पति के बाद वाले समय में ही नाटक का प्रणयन हुआ।' डॉ. रमाशंकर तिवारी ने जौल्ली के उक्त मत को अपने मत की पुष्टि में रखते हुये नारद तथा बृहस्पति का समय सन् 100 ईस्वी और 400 ईस्वी के बीच का माना है तथा इन आधारों पर 'मृच्छकटिकम्' को पञ्चम शताब्दी की रचना माना है।

6. डॉ. रमाशंकर तिवारी भो अपने निष्कर्षों में ईसा की षष्ठ शताब्दी का अन्तराल ही 'मृच्छकटिकम्' का प्रणयन काल बतलाते हैं। आपने लिखा है –''मृच्छकटिकम्' के रचयिता शूद्रक ने दक्षिण भारत में राजसत्ता का उपभोग उस अवधि में किया होगा जो गुप्त साम्राज्य के पतन (500 ईस्वी) से प्रारम्भ होती है और थानेश्वर के महाराजा हर्षवर्धन के उदयकाल (606 ईस्वी) में समाप्त होती है। वह युग भारतीय इतिहास में विकेन्द्रीकरण का काल रहा है, जब देश अनेक छोटे–छोटे स्वाधीन राज्यों में बंटा हुआ था जिनमें हूणों द्वारा संस्थापित राज्य भो था जो विदेशी आक्रान्ता थे। शूद्रक ऐसे ही छोटे–छोटे नरेशों में था जिसको या तो सत्ता प्राप्ति के लिये स्वयं कोई छोटा–मोटा संघर्ष करना पडा था या फिर किसी सत्ताहरण वाले काण्ड में उसकी गहरी दिलचस्पी थी।''

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'मृच्छकटिकम्' व उसके रचयिता का समय ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी से लेकर 800 ईसवी तक दोलायमान है। इनमें भो (ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी) सात वाहन काल तथा उत्तर गुप्ता काल दोनों पर अधिक जोर दिया गया है। जहाँ तक उत्तरगुप्तकाल या ईसा की पांचवी तथा छठी शताब्दी का समय 'मृच्छकटिकम्' का प्रणयन काल मानने का विद्वानों का मत है वह मात्र इस आधार पर आधारित है कि 'चारुदत्त' भास की रचना है तथा 'मृच्छकटिकम्' उसके बाद लिखा गया, उसका परिवर्द्धित संस्करण है, अतः वह ईसा पूर्व की रचना नहीं हो सकता। द्वितीय जो उनका आधार हमने समझा है वह कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' में 'शूद्रक' के नाम का न होना है। उक्त दो धारणाओं ने ही मूल रूप से शूद्रक व 'मृच्छकटिकम्' को बाद की रचना मानने हेतु विद्वानों को प्रेरित किया है। यह इस बात से स्पष्ट है कि जब तक भास नाटक चक्र की खोज न हुई थी तब तक 'मृच्छकटिकम्' एक पुरानी कृति के रूप में माना जाता था। परन्तु ज्यों ही गणपति शास्त्री ने तेरह नाटकों को भास के नाम से विख्यात किया त्योंही 'मृच्छकटिकम्' व उसके रचयिता का काल पीछे हटता गया और आज स्थिति आठवीं शताब्दी तक पहुँच चुकी है। परन्तु यह दुःख का विषय है कि जिन विद्वानों ने ईसा की पांचवी व छठी शताब्दी 'मृच्छकटिक' का रचनाकाल प्रमाणित किया उनमें से अधिकांश ने उसके रचयिता को इतिहास में ढूंढने का कोई प्रयास नहीं किया तथा यदि किया भो तो वे प्रायः असफल रहे।

18.3.3 उपसंहार –

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि 'मृच्छकटिकम्' व उसके रचयिता का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मानना अधिक समुचित होगा। इसका रचयिता सातवाहन वंश का प्रथम नरेश 'सिमुक' ही है जिसके कि पुराणों में अनेक नाम प्राप्त होते हैं। न केवल रचयिता विषयक साम्य हमें उक्त समय को मानने हेतु प्रेरित करता है अपितु 'मृच्छकटिकम्'

में चित्रित समाज व्यवस्था, तत्कालीन धार्मिक स्थिति व प्रकरण की रचना शैली भो उक्त समय का पूर्ण समर्थन करती है। प्रो. काले, विल्सन, डॉ. भण्डारकर आदि के तर्क जिनको पहले प्रस्तुत किया जा चुका है– उक्त मत का पूर्ण समर्थन करते हैं। जहाँ तक द्वितीय शताब्दी आन्ध्र शासकों का समय था, शूद्रक का समय मानने का प्रश्न है वह स्कन्दपुराण के कथन के आधार पर माना गया है जो कि प्रायः इतिहास वेत्ताओं द्वारा गलत प्रमाणित हो चुका है। डॉ. राय चौधरी, डॉ. भार्गव व डॉ. भण्डारकर ने आन्ध्रवंश की स्थापना का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ही माना हैं।

18.4 'मृच्छकटिकम् की कथावस्तु –

'मृच्छकटिकम् दस अंकों का एक प्रकरण है, प्रस्तुत प्रकरण की कथावस्तु जनश्रुति अथवा लोककथा पर आधारित प्रतीत होती है। इसमें दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या वसन्तसेना के प्रणय की कथा विभिन्न सामाजिक मोडों के साथ वर्णित हुई है। भारतीय नाट्य परम्परा के अनुसार प्रस्तुत प्रकरण का प्रारम्भ भो नान्दीपाठ से है जिसमें स्रग्धरा तथा अनुष्टुप् छन्दों में रचित दो श्लोक हैं। प्रथम श्लोक में भगवान् शिव की प्रलयोन्मुख परमात्मा में लीन निर्विकल्प समाधि तथा दूसरे में पार्वती की भजलताओं से सुशोभित शंकर के नीले कण्ठ से सामाजिकों के मंगल की याचना की गई है।

नान्दी पाठ के बाद प्रस्तावना प्रारम्भ होती है। प्रारम्भ में कुछैक श्लोकों में रचयिता व रचना के विषय में परिचय दिया गया है। नाटककार ने अपनी प्रतिभा से सम्पूर्ण नाटक की कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय प्रस्तावना में ही सूत्रधार द्वारा प्रस्तुत कर दिया है। उसके अनुसार ''उज्जयिनी में (पहले) ब्राह्मण व्यापारी किन्तु (बाद में) दरिद्र युवक चारुदत्त (रहता था) और वसन्त (ऋतु) की सुन्दरता जैसी (रमणीय) वसन्तसेना नामक वेश्या (चारुदत्त के) गुणों के कारण (उससे) प्रेम करती थी। इस 'मृच्छकटिकम्' प्रकरण में उन दोनों के श्रेष्ठ आनन्दोत्सव पर आश्रित, नीति का आचरण, विवाद, विचार (व्यवहार) की दोषपूर्णता, दुष्टों के स्वभाव तथा होनहार – इन सबका राजा शूद्रक ने ग्रंथन किया है।''

18.4.1 अंकानुसार कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण –

प्रस्तुत प्रकरण में दस अंक हैं। कथावस्तु के अनुसार प्रत्येक अंक का नामकरण किया गया है। प्रथम अंक का नाम' अलंकार न्यास' है। इस अंक की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है:–

रचयिता व रचना के विषय में परिचय देने के बाद सूत्रधार अपने घर में असाधारण तैयारी देखकर चकित होता है। पूछने पर नटी से उसे मालूम होता है कि वह तैयारी 'अभिरुपपति' नामक व्रत के निमित्त की गई है। इस पर प्रारम्भ में वह कुछ झुंझलाता है परन्तु नटी के समझाने पर शान्त हो जाता है। नटी उसे किसी बाह्मण को निमन्त्रित करने के लिए कहती है। वह ब्राह्मण की तलाश में निकलता है। मार्ग में उसे चारुदत्त का मित्र मैत्रेय दृष्टिगोचर होता है। सूत्रधार उसे भोजन के निमित्त निमन्त्रण देता है। परन्तु मैत्रेय निमंत्रण को अस्वीकार कर देता है। तब सूत्रधार किसी अन्य ब्राह्मण की खोज में चला जाता है। यहीं प्रस्तावना समाप्त होती है।

प्रस्तावना के बाद प्रथम दृश्य में प्रारम्भ मे हम मंच पर मैत्रेय को देखते हैं। मैत्रेय के कथन से ज्ञात होता है कि आर्य चारुदत्त के प्रिय मित्र चूर्णवृद्ध ने चमेली के फूलों से सुगन्धित उत्तरीय को देवकार्य सम्पादित करने वाले चारुदत्त के पास ले जाने का उसे निर्देश दिया है। उसी समय चारुदत्त व मदनिका का मंच पर प्रवेश होता है।

चारुदत्त के प्रथम परिचय में हमें उसकी निर्धनता के विषय में ज्ञान होता है। वह अपने भ्त व वर्तमान की स्थितियों को देखकर अपने भाग्य विपर्यय पर चिन्ता व्यक्त करता है। उसी समय अपने सर्वकालमित्र मैत्रेय को देखकर प्रसन्न होता है तथा उसका स्वागत करता है। मैत्रेय उसे चूर्णवृद्ध प्रदत्त दुपट्टा देता है। तदुपरान्त दोनों में दरिद्रता को लेकर वार्ता होती

है। चारुदत्त दरिद्रता से अत्यन्त दुःखी है तथा दरिद्रता व मृत्यु दोनों में मृत्यु को अधिक पसन्द करता है – ''दारिद्र्यात् मरणात्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।'' विदूषक मित्र होने के नाते उसे समझाता है तथा सान्त्वना प्रदान करता है।

इसके बाद चारुदत्त मैत्रेय को मातृदेवियों को बलि अर्पण करने के लिए चौराहे पर जाने को कहता है। विदूषक उस समय राजपथ पर जाने में भय व्यक्त करता है। चारुदत्त उसे ठहरने को कहकर समाधि पूजा इत्यादि करने लगता है।

प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य मे शकार, विट और चेट वसन्तसेना का पीछा करते हुये दिखाई देते हैं। यह भयभोत होकर आगे–आगे भाग रही है तथा तीनों उसे पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। शकार राजा का साला है जो कि कामासक्त है। वह वसन्तसेना को किसी भो तरह से अपने वश में करना चाहता है। वह उसे मारने तक की धमकी दे डालता है। परन्तु वह इन सबकी परवाह न करते हुये भागी जाती है। वह एक स्थल पर शकार को डाट भो देती है। इसी बीच शकार के ही वाक्यों से वसन्तसेना को ज्ञात हो जाता है कि 'कामदेवायतनोद्यान' में जिस चारुदत्त पर वह आसक्त हुई थी, उसी के घर के समीप पहुँच गई है। वसन्तसेना शकार के कथन को सुनकर चारुदत्त के घर में अपने बचाव के लिये प्रवेश करती है। उधर बाहर निकलते ही शकार वसन्तसेना समझकर अंधेरे में रदनिका को पकड लेता है। वह प्रतिवाद करती है। इतने में विदूषक दीप लेकर घर से बाहर निकलता है तथा .रदनिका के प्रति अन्यायपूर्ण अभद्र आचरण देखकर शकार को डांट–फटकार कर बाहर निकाल देता है। विट विदूषक को पहचान लेता है तथा क्षमा याचना करके उससे यह अनुरोध करता है कि उस घटना के सम्बन्ध में आर्य चारुदत्त से कोई चर्चा न करे।

उधर चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझकर बालक रोहसेन को अन्दर ले जाने के लिए कहता है। वह उसे ओढ़ाने के लिए दुपट्टा भो उस पर फैकता है। उस दुपट्टे की सुगन्ध से प्रसन्न होकर वसन्तसेना अनुमान लगाती है कि अभो चारुदत्त का यौवन निर्धनता के कारण उदासीन नहीं बन पाया है। वसन्तसेना बिना कोई उत्तर दिये चुपचाप खडी रहती है। इसी बीच विदूषक और रदनिका अन्दर आते हैं तब मैत्रेय वस्तुस्थिति बतलाता है। तब चारुदत्त वसन्तसेना को पहचानता है तथा उससे क्षमा–याचना करता है। विदूषक रदनिका के अपमान की घटना को छोडकर शेष सारा वृतान्त चारुदत्त को बता देता है। इसके बाद वसन्तसेना अपने आभ्षणों को धरोहर के रूप में रखने का प्रस्ताव रखती है। थोडी सी हिचकिचाहट के बाद चारुदत्त अलंकारों को रख लेना स्वीकार कर लेता है। चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना को उसके घर पहुँचा आते हैं। चारुदत्त आभ्षणों की रक्षा का भार दिन में वर्धमानक को और रात में विदूषक को सौंपता है। यही प्रथम अंक समाप्त हो जाता है। आभ्षणों की धरोहर के कारण यह अंक 'अलंकार न्यास' की संज्ञा से प्रसिद्ध है।

द्वितीय अंक –

द्वितीय अंक की अभिधा ''द्यूतकर–संवाहक'' अंक अर्थात् जुआरी संवाहक अंक है। इस अंक में एक नये प्रमुख पात्र संवाहक की अवतारणा कराई गई है, जिसने नाटकीय वस्तु–संघर्ष के समाधान में महत्त्व की भ्मिका सम्पन की है।

इस अंक में तीन दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में वसन्तसेना और रदनिका का मंच पर प्रवेश दिखलाया गया है। वसन्तसेना चारुदत्त के विषय में चिन्तामग्न दिखाई गई है। मदनिका विस्वस्त दासी होने के नाते उससे उदासी व उद्विग्नता का कारण पूछती है। वसन्तसेना चारुदत्त के
सम्बन्ध में अपना प्रेम व्यक्त करती है। मदनिका चारुदत्त की निर्धनता की ओर उसका ध्यान आकर्षित करती है। परन्तु वसन्तसेना का कथन है कि 'वह यह जानते हुये कि वह अत्यन्त दरिद्र है, उसे प्यार करती है क्योंकि दरिद्र व्यक्ति से प्रम करने वाली गणिका की दुनिया निन्दा नहीं करती।'' द्वितीय दृश्य में हम रंगमंच पर संवाहक, द्यूताध्यक्ष, माथुर तथा एक जुआरी को एक साथ देखते हैं। उनके वार्तालाप से यह ज्ञात होता है कि संवाहक जुए में माथुर से पराजित हो गया है और उसे माथुर को दस सुवर्ण देने हैं। द्यतकार और माथुर

उसे पकड़ने के लिए उसका पीछा करते हैं। पहले तो वह एक देवी के मन्दिर में छिप जाता है। किन्तु अपने द्यूतप्रिय स्वभाव के कारण उन दोनों के वहीं खिलने पर स्वयं ही प्रकट हो जाता है। वे दोनों ही उसे मारते हैं। संवाहक त्रस्त होकर रक्षा की पुकार मचाता है। इसी बीच दर्दुरक वहाँ आता है। वह संवाहक को छुड़ाता है। माथुर और दर्दुरक में झगड़ा होता है। अवसर पाकर दर्दुरक माथुर की आंख में धूल झोंक देता है। माथुर आंखें मलने लगता है। दर्दुरक और संवाहक भाग जाते हैं।

संवाहक वहाँ से भागकर वसन्तसेना के घर में शरण लेता है। वसन्तसेना को अपना परिचय देता है, परिचय के अन्तर्गत चारुदत्त का प्रसंग भो आता है जिसे सुनकर वसन्तसेना बड़ी प्रसन्न होती है। वह संवाहक से उसके भय का कारण पूछती है और रूपयों के बदले अपना कंकण चेटी द्वारा माथुर व द्यूतकार के पास पहुंचा देती है। वे दोनों संतुष्ट होकर चले जाते हैं।

अंक के अन्तिम भाग में कणपूरक वसन्तसेना को उसके मतवाले हाथी के उत्पात और परिव्राजक को बचाने के लिए अपने पराक्रम का वृत्तांत सुनाता है। साथ ही वह यह भो सूचना देता है कि उसके अद्‌भत साहस से मुग्ध होकर किसी व्यक्ति ने पुरस्कार के रूप में अपना उत्तरीय दिया है। वसन्तसेना उस पर 'चारुदत्त' का नाम देखकर प्रसन्न होती है तथा उसे ओढ़ लेती है। वह कणपूरक को अपने एक आभ्षण से पुरस्कृत करती है। इसके बाद वसन्तसेना तथा चेटी दोनों द्वार पर के आलिन्द से चढ़कर घर जाते हुए चारुदत्त को देखने लगती हैं। यहीं पर अंक की समाप्ति हो जाती है।

तृतीय अंक –

प्रस्तुत अंक में वसन्तसेना की दासी मदनिका का प्रेमी शर्विलक उसे दासता से मुक्त कराने के लिए चारुदत्त के यहाँ सेंध लगाता है। अतः इस अंक का नामकरण संधिविच्छेद किया गया है।

अंक के प्रारंभ में चारुदत्त का चेट मंच पर आता है। मध्यरात्रि का समय है। अभो तक चारुदत्त घर नहीं लौटा है। अतः चेट चिन्तित है। इसी समय चारुदत्त और विदूषक मंच पर आते हैं। वे रेमिल के घर से गीत सुनकर लौटते हैं। ऐसा उनके वार्तालाप से ज्ञात होता है। घर पहुँचकर विदूषक चेट को पुकारता है। चेट के दरवाजा खोलने पर दोनों घर में प्रवेश करते हैं। रात को सुवर्ण भाण्ड की रक्षा का भार विदूषक पर होने के कारण चेट विदूषक को यह कहते हुए देता है कि ''मैंने दिन भर इस आभ्षण भाण्ड की रक्षा की है अब रात को आपकी बारी है। इसके बाद चारुदत्त सो जाता है। विदूषक भो सुवर्ण भाण्ड हाथ में लिए हुए सो जाता है।

अंक के द्वितीय दृश्य में शर्विलक द्वारा सेंध लगाये जाने का वर्णन है। सेंध लगाने से पूर्व जो विभिन्न प्रकार की सेंधों तथा उन्हें तोड़ने की विभिन्न विधियों का वर्णन उसके सेंध संबंधी विस्तृत ज्ञान को द्योतित करता है। जनेऊ से नापकर वह सेंध फोड़ता है तथा भोतर प्रवेश करता है। प्रवेश करके घर के भोतर की स्थिति देखकर वह निराश होता है तथा वहाँ से जाने का विचार करता है। इसी बीच विदूषक स्वप्न देखता है कि घर में चोर ने सेंध लगाई है। अतः वह भयभोत होकर स्वप्न में ही चारुदत्त को पुकार कर स्वर्ण भाण्ड देता है। चारुदत्त गहरो निद्रा में है, अतः उसे इस बात का बिलकुल भो आभास नहीं होता। शर्विलक आगे बढ़कर उसके हाथ से आभ्षण ले लेता है तथा बड़ी सावधानी से घर से बाहर निकल जाता है।

प्रातःकाल होने पर जब चारुदत्त को चोरी होने का पता लगता है तो वह सेंध को देखकर उसके आकार की प्रशंसा करता है। उसे इस बात की प्रसन्नता है कि चोर उसके घर से निराश नहीं गया। परन्तु उसे इस बात की भो चिन्ता है कि लोग चोरी के वृत्तान्त पर विश्वास न करके उसे ही बदनाम करेंगे। इसी बीच चारुदत्त की भार्या धूता को यह वृत्तान्त ज्ञात होता है। वह मैत्रेय को बुलाकर अपने नैहर की बची एक बहुमूल्य रत्नावली उसे देती

है और स्पष्ट न कहते हुए यह संकेत देती है कि चारुदत्त उस रत्नावली का यथोचित उपयोग करे। चारुदत्त पत्नी के उस उदारतापूर्ण त्याग से अभिभ्त हो जाता है। वह अपने मित्र मैत्रेय को आदेश देता है कि वह वसन्तसेना के घर जाकर वह रत्नावली उसे दे आये तथा यह कह दे कि चारूदत्त भमवश उसके सुवर्णालंकार को जुए में हार गया है। अतः वह यह रत्नावली बदले में स्वीकार करे। इसके बाद वह वर्धमान को सेंध बन्द करने का आदेश देकर स्वयं सन्ध्योपासना करने चला जाता है।

चतुर्थ अंक –

इस अंक का शीर्षक ''मदनिका–शर्विलक'' है। इसमें दोनों के प्रणय का चित्रण हुआ है। शर्विलक चुराये गये आभ्षणों को मदनिका को देता है। मदनिका उन आभ्षणों को चतुराई से वसन्तसेना को दिला देती है। परन्तु वसन्तसेना सम्पूर्ण रहस्य को समझ जाती है। वह अतीव उदारतापूर्ण भाव से शर्विलक से अनुरोध करती है कि वह मदनिका को पत्नी भाव से ग्रहण करें क्योंकि आर्य चारुदत्त का निर्देश है कि जो कोई उस आभ्षण को लाकर दे उसे मदनिका समर्पित कर दी जाए। अन्ततः वह दोनों को अपनी गाड़ी में बैठाकर विदा करती है।

अंक के अन्तिम दृश्य में विदूषक मैत्रेय का वसन्तसेना के यहाँ पहुँचना व उसके भव्य प्रासाद को देखकर आश्चर्यान्वित होना प्रस्तुत किया गया है। तदुपरान्त वसन्तसेना विदूषक का स्वागत करती है। सामान्य कुशल प्रश्न के बाद विदूषक चारुदत्त द्वारा कहे गये सुवर्ण भाण्ड के जुए में हारने संबंधित संदेश सुनाता है तथा उसके बदले में भजी गई रत्नावली उसे प्रदान करता है। वसन्तसेना उसे लेकर मैत्रेय को चारुदत्त से मिलने संबंधित संदेश के साथ विदा करती है।

पंचम अंक –

इस अंक का शीर्षक ''दुर्दिन'' है। इस अंक में वर्षा का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। धनान्धकार एवं वर्षा के वातावरण में वसन्तसेना चारुदत्त के घर पहुंचती है। चारुदत्त वसन्तसेना का स्वागत करता है तथा वस्त्रों के भोग जाने से उसके लिए अन्य वस्त्रों की व्यवस्था करवाता है। विदूषक वसन्तसेना से आगमन का कारण पूछता है। वसन्तसेना की चेटी कहती है ''हमारी मालकिन यह पूछने आई है कि आपकी रत्नावली का मूल्य क्या है? वह उसे अपनी समझ कर जुए में हार गई है।'' यह कह कर वह स्वर्ण भाण्ड प्रदान करती है। चारुदत्त और विदूषक उसे देखकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं। बाद में चेटी सुवर्ण भाण्ड की प्राप्ति का सम्पूर्ण वृत्तान्त विदूषक को कान में कह देती है। विदूषक चारुदत्त को सब बता देता है। समस्त वातावरण हर्ष एवं आमोद–प्रमोद से पूर्ण हो जाता है। विदूषक प्रेमी–प्रेमिका से थोड़ा विनोद करता है तथा वर्षा को देखते हुए उन्हें घर के भोतर चले जाने का संकेत प्रदान करता है। चारुदत्त मौसम की उद्दीपकता का कथन करता है जिस पर वसन्तसेना श्रृंगार भाव से उसका आलिंगन करती है। चारुदत्त के प्रस्ताव पर वसन्तसेना उसके साथ घर में प्रवेश करती है तथा सम्पूर्ण रात्रि वहीं व्यतीत करती है। बाहर धारासार वृष्टि होती रहती है।

उक्त अंक में चूंकि वसन्तसेना ने चारुदत्त के घर पर प्रतिकूल भोतिक प्राकृतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत भो अभिसार किया है, इस कारण अंक की 'दुर्दिन' संज्ञा पड़ी है।

षष्ठ अंक –

इस अंक का नामकरण 'प्रहरण–विपर्यय' रखा गया है। इस अंक में वसन्तसेना भ्ल से चारुदत्त की गाड़ी में न बैठकर शकार की गाड़ी में बैठ जाती है। उधर कारागार से भागा हुआ आर्यक घूमता हुआ वहाँ आता है। वह वसन्तसेना के द्वार पर खड़ी हुई चारुदत्त की गाड़ी में बैठ जाता है। वर्धमानक बेड़ियों की झंकार से समझता है कि वसन्तसेना बैठ गई है और गाड़ी को हांक देता है।

इसी अंक में इस प्रकरण के शीर्षक रहस्य भो सन्निहित है। चारुदत्त का पुत्र रोहसेन पड़ौसी बच्चे के पास स्वर्ण निर्मित गाड़ी देखकर उसके लिए आग्रह करता है। वसन्तसेना को जब इसका पता चलता है तो वात्सल्य भाव से प्रेरित होकर वह रोहसेन की मिट्टी की गाड़ी को अपने सोने के आभ्षणों से भर देती है तथा उनसे स्वर्ण शकटिका बनाने के लिए कहती है। इसे बाद बालक को लेकर मदनिका चली जाती है।

प्रस्तुत अंक में शुरू से लेकर अंत तक गाड़ियों की अदला–बदली का वर्णन है। अतः इस अंक का नामकरण लेखक ने 'प्रवहण – विपर्यय' किया है।

सप्तम अंक –

अंक के प्रारंभ में चारुदत्त और विदूषक जीर्णोद्यान की शोभा का अवलोकन करते दिखाई पड़ते हैं। चारुदत्त वसन्तसेना के आगमन मे विलम्ब हो जाने से कुछ चिन्तित सा दिखाई दे रहा है। उसी समय वर्धमानक गाड़ी को लेकर पहुंचता है। गाड़ी को देखकर दोनों प्रसन्न होते हैं। चारुदत्त के अनुरोध पर वसन्तसेना को उतारने के लिए विदूषक पर्दा हटाकर देखता है तो कह उठता है – ''यहाँ तो वसन्तसेना नहीं, वसन्तसेन है।'' चारुदत्त इस कथन पर विश्वास न करके एक हंसी मात्र समझता है तथा स्वयं गाड़ी में देखता है। आर्यक देखते ही करबद्ध प्रार्थना करता हुआ कहता है कि ''मैं गोपाल शरणागत हूँ, मैं गोपालपुत्र आर्यक हूँ।'' चारुदत्त अपने स्वभावानुसार उसे अभयदान देता है। उसके आदेश से वधमानक आर्यक के पैरों की लोह शृंखलाऐं काटता है। आर्यक उसकी गाड़ी पर चढ़कर आने के लिए क्षमा–याचना चाहता है। परन्तु चारुदत्त इसे अपना सौभाग्य समझता है तथा परामर्श देता है कि वह गाड़ी पर चढ़कर ही भागे जाए क्योंकि उस मार्ग पर राजपुरूष प्रायः भमण किया करते हैं। चारुदत्त और विदूषक भो उसे विदा करके राजभय से शीघ्र वहाँ से चले जाते हैं।

चूँकि अंक में आर्यक सुरक्षित चारुदत्त के पास जीर्णोद्यान में पहुंच जाता है, अतः इसकी संज्ञा 'आर्यकोपहरण' पड़ी है।

अष्टम अंक –

षष्ठ अंक में घटित प्रवहण–विपर्यय के परिणामों में से एक सप्तम अक में घटित हुआ और दूसरा अष्टम अंक में।

इस अंक का शीर्षक 'वसन्तसेना मोटन' है। वसन्तसेना शकार की गाड़ी में भ्ल से बैठ गई थी, अतः वह चारुदत्त के स्थान पर शकार के समीप पहुंचत जाती है। वहां शकार उसके समक्ष प्रणय प्रस्ताव रखता है। वसन्तसेना उस प्रस्ताव को ठुकरा देती है तब वह बलात् उसका गला घोंटकर पत्तों में छिपा देता है। इस बात का जब विट को पता चलता है तो वह बहुत दुःखी होता है। वह शकार को उस उज्जयिनी की लक्ष्मी की हत्या करने के लिए भ्रिशः धिक्कारता है। शकार विट को स्वर्ण इत्यादि का लालच देकर वसन्तसेना की हत्या का आरोप किसी अन्य पर प्रमाणित करवाना चाहता है। विट इससे स्पष्ट इंकार कर देता है। इस पर शकार उस हत्या का आरोप उसी पर मढ़ता है तथा राजा के सामने प्रस्तुत होने की धमकी देता है। विट शकार का साथ छोड़कर तथा उसे डरा–धमकाकर शर्विलक आदि से मिलने चला जाता है।

अंक के अंतिम दश्य में भिक्षु प्रवेश करता है। वह अपना चीवर फैलाने के लिए स्थान ढूंढता है। इतने में वसन्तसेना हाथ दिखलाती है। भिक्षु पत्ते हटाकर वसन्तसेना को पहचानता है। वसन्तसेना लता का सहारा लेकर उठ खड़ी होती है। भिक्षु वसन्तसेना को विश्राम कराने के लिए विहार ले जाता है।

नवम अंक –

इस अंक का नामकरण 'व्यवहार' रखा गया है। इसमें न्यायालय का दृश्य है जिसमें शकार चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग लगाता है। शकार अधिकरण मण्डप में प्रवेश

कर यह सूचना देता है कि पुष्पकरण्डक उद्यान में किसी ने धन के लोभ में वसन्तसेना को बाहुपाश–बलात्कार से मार डाला है। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि उसे कैसे जान पड़ा कि धन के लिए उसकी हत्या की गई है। शकार उत्तर देता है ''आभ्षण विहीन होने से, गले में हार सूत्रावली नहीं होने से तथा प्रत्येक स्थल का गहना उतरा होने से।'' इस पर यह जानने के लिए कि वसन्तसेना कहाँ व किसके साथ गई थी? अधिकरणिक वसन्तसेना की माँ को बुलवाते हैं। वसन्तसेना की माँ आकर कहती है कि वह आर्य चारुदत्त के पास अपने यौवन का सुख प्राप्त करने गई है।

इस पर चारुदत्त को न्यायालय में बुलाया जाता है। न्यायाधीश प्रथम दृष्ट्या मन में विचार करता है कि ऐसे भव्य स्वरूप वाला व्यक्ति ऐसे जघन्य कृत्य का अपराधी नहीं हो सकता। वह उससे प्रश्न करता है कि क्या वसन्तसेना उसकी प्रेमिका है? चारूदत्त सर्वप्रथम कुछ लज्जित सा अनुभव करता है तथा परोक्ष रीति से स्वीकार करते हुए उत्तर देता है कि ''इस विषय में केवल यौवन अपराधी है चरित्र नहीं।'' न्यायाधीश स्पष्टरूपेण कहने को बाध्य करता है। ऐसी स्थिति में शकार को भो कुछ बोलने का अवसर मिलता है तथा वह चारुदत्त को हत्यारा आदि कहकर संबोधित करता है। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि अब वसन्तसेना कहाँ है? चारुदत्त बताता है कि वह अपने घर गई है। परन्तु वह बतलान में अपनी असमर्थता प्रकट करता है कि वह पैदल गई या गाड़ी में। शकार न्यायाधीश पर यह आरोप लगाता है कि वह चारुदत्त का पक्ष ले रहा है। इस पर न्यायाधीश उसकी यह कहते हुए भर्त्सना करता है कि चारुदत्त जैसे दानशील व्यक्ति पर उसने असत्य अभियोग लगाया है।

धीरे–धीरे अभियोग की सुनवाई का क्रम आगे बढ़ता है तथा दैव दुर्विपाक से सभो साक्ष्य चारुदत्त के विपक्ष में जाते हुए दिखाई देते हैं और न्यायाधीशों के समझ अभियोग सिद्धि के अलावा कोई मार्ग नहीं दिखाई देता। परिणामस्वरूप चारुदत्त को मृत्युदण्ड देने का निर्देश राजा द्वारा दिया जाता है। चारुदत्त पालक की इस आज्ञा की भर्त्सना करता हुआ मैत्रेय से अनुरोध करता है कि वह घर जाकर उसकी माता को उसका अभिवादन सुना दे तथा रोहसेन को भो मिला दे।

चारुदत्त पर अभियोग लगाये जाने के कारण प्रस्तुत अंक की अभिधा 'व्यवहार' पड़ी है। ''व्यवहार का अर्थ है अभियोग या मुकदमा।''

दशम अंक –

अन्तिम अंक ''संहार'' में परिस्थितियाँ एकदम परिवर्तित होती हैं। अंक के प्रारंभ में चारूदत्त को वध स्थान ले जाते हुए चाण्डाल दिखाई देते हैं। चारुदत्त के सारे शरीर पर लाल चन्दन से छापे मारे गये हैं तथा तिल, चावल एवं कुंकुम का लेप लगा है जिससे वह वध्यपुरूष तुल्य लगता है। श्मशान में ले जाते हुए उसे सम्पूर्ण उज्जयिनी नगर के लोग विशेषतः स्त्रियाँ देख–देखकर रोती हैं। विदूषक चारुदत्त पुत्र रोहसेन को लेकर वहाँ आता है। विदूषक व रोहसेन चाण्डालों से चारुदत्त को छोड़ने की प्रार्थना करते हैं तथा चारुदत्त के स्थान पर अपना वध करने का अनुरोध करते हैं। चाण्डाल बालक के पितृ–प्रेम की सराहना करते हैं। कुछ देर बाद वे दूसरे घोषणा स्थल पर पहुंचते हैं तथा घोषणा दुहराते हैं। घोषणा को सुनकर शकार के महल में बंधा स्थावरक चिल्लाकर कहता है कि वसन्तसेना को चारुदत्त ने नहीं शकार ने मारा है। परन्तु उसकी बात किसी के कान तक नहीं पहुंचती।

तीसरे घोषणा स्थल पर शकार के निर्देश पर चाण्डाल पीटने का भय दिखाकर चारुदत्त से यह घोषणा कराते हैं – ''हे नगरवासियो! मैंने ही वसन्तसेना को मारा है।'' एक चाण्डाल कहता है कि ''वध्यपुरूष को सहसा मारना ठीक नहीं क्योंकि अनेक दशाओं में उनके प्राण बच जाते हैं और इन अवस्थाओं में एक अवस्था राज्य परिवर्तन की भो होती है जब सभो बंदी मुक्त कर दिये जाते हैं। राज्य परिवर्तन की बात सुनकर शकार घबराता है तथा चाण्डालों से चारुदत्त को शीघ्र मारने के लिए कहता है।

इसके बाद अकस्मात् परिस्थितियाँ परिवर्तित होती हैं। जब चाण्डाल चारुदत्त पर प्रहार करने ही वाले थे उसी समय बौद्ध भिक्षु वसन्तसेना के साथ वहाँ उपस्थित हो जाता है। उसे जीवित देखकर वे उसे मुक्त कर देते हैं। उसी समय उधर से राज्य सत्ता का परिवर्तन होता है। पालक को मारकर आर्यक राजा बनता है। चारुदत्त के स्थान पर शकार को फांसी की सजा का आदेश होता है। इसी समय कुछ लोग शकार को पकड़ कर वहाँ लाते हैं। शकार चारुदत्त के चरणों में गिर कर प्राण रक्षा की भोख मांगता है। चारुदत्त उसे अभयदान देता है।

अंक का अन्तिम दृश्य धूता के चितारोहण तथा वसन्तसेना के साथ उसके मिलन से संबंध रखता है। उक्त प्रसंग अधिकांश विद्वान् प्रक्षिप्त बतलाते हैं। शर्विलक इस आनन्दमय अवसर पर वसन्तसेना को आर्यक के नाम पर वधू रूप में चारुदत्त को सौंपता है तथा उसका घूंघट खींच देता है। वसन्तसेना इस अनुग्रह से अपने को कृतार्थ समझती है। चारुदत्त की इच्छानुसार भिक्षु संवाहक पृथ्वी पर सब विहारों का कुलपति बना दिया जाता है। दोनों चाण्डाल सब चाण्डालों के अधिपति बना दिये जाते हैं। चन्दनक को पृथ्वी दण्डपालक का पद दिया जाता है। शकार का भो अधिकार अस्थायी रूप से पूर्ववत् बना रहने दिया जाता है। इसी सानन्द वातावरण में नाटक भरत वाक्य के साथ समाप्त हो जाता है।

18.5 कथावस्तु–समीक्षा –

शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' सम्पूर्ण नाट्य–साहित्य में एक अद्वितीय प्रकरण है। यह न केवल कथानक की दृष्टि से अपितु चरित्र–चित्रण, कथोपथन, भाषा–शैली एवं रस–योजना की दृष्टि से भो संस्कृत 'नाट्य–परम्परा' में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। सभो भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने एक स्वर से इस प्रकरण की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। उनके मतानुसार यह अखिल संस्कृत नाट्य साहित्य में अपने सदृश अकेला है।

1. संस्कृत नाट्य शास्त्र के विधान के अनुरूप प्रकरण श्रेणी का रुपक होने से इसकी कथावस्तु उत्पाद्य एवं कवि कल्पित है। प्रकरण का प्रारंभ शूद्रक ने नान्दी पाठ से ही किया है। यह नान्दी पाठ स्त्रग्धरा तथा अनुष्टुप् छन्दों में रचित दो श्लोकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। नान्दी पाठ प्रायः तीन प्रकार का होता है – आशीर्वादात्मक, नमस्क्रियात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक। प्रस्तुत नाटक की नान्दी का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि उक्त प्रकरण की नान्दी वस्तुनिर्देशात्मक है। प्रस्तुत नान्दी के नीलकण्ठ (शंकर) और गौरी (पार्वती) नाटक के नायक (चारुदत्त) व नायिका (वसन्तसेना) के सूचक हैं। उन दोनों के मिलन का संकेत हमें नान्दी पाठ के दूसर श्लोक में प्राप्त होता है। श्लोक में प्रयुक्त बादल (श्यामाम्बुद) तथा बिजली (विद्युल्लेखा)। पांचवें अंक में वर्णित दुर्दिन के सूचक कहे गये हैं। श्यामल तथा गौर–वर्ण क्रमशः दुष्टों तथा सज्जनों द्वारा अपनाई गई जीवन पद्धतियों के व्यंजक माने गये हैं। प्रकरण में शकार दुष्टों का अगगण्य व चारुदत्त सज्जनों के मुखिया के रूप में हैं।

2. शास्त्रीय विधानानुसार 'नान्दी' के बाद प्रस्तावना या आमुख का विधान है। तद्नुकूल ही 'मृच्छकटिकम्' में भो शूद्रक ने प्रस्तावना रखी है। प्रस्तावना के द्वारा दर्शकों को नाटक के रचयिता व कृति के विषय में संक्षिप्त में परिचय प्रदान किया जाता है। नाटक में आने वाले पात्रों व घटनाओं का भो कभो–कभो संक्षिप्त वर्णन किया जाता है। 'मृच्छकटिकम्' की प्रस्तावना भो इस दृष्टि से सार्थक हैं, क्योंकि वहाँ पर न केवल लेखक का परिचय ही दिया गया है अपितु मुख्य कथानक तथा उससे संबंधित अन्य उप–कथाओं का भो हमें संकेत मिल जाता है। चारुदत्त व वसन्तसेना अर्थात् नायक व नायिका की प्रेम कहानी का जिस विधि से परिचय दिया गया है वह आधुनिक चलचित्रों की विधि से अत्यधिक साम्य रखती है।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में प्रस्तावना के पांच भद किये हैं। यथा–उद्घातक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक तथा अवगलित। 'मृच्छकटिकम्' की प्रस्तावना को कुछ पण्डितों ने 'प्रवर्तक' जाति का बताया है तथा अपने मत की पुष्टि हेतु 'उत्तररामचरित' की प्रस्तावना को दृष्टान्त रूप में रखा है। परन्तु इस मत से अन्य अनेक विद्वान् सहमत नहीं हैं। उन्होंने 'मृच्छकटिकम्' को प्रस्तावना को 'प्रयोगातिशय' जाति का माना है। आचार्य धनञ्जय ने 'दशरूपक' में जो प्रयोगातिशय प्रस्तावना का लक्षण किया है तथा जिसके आधार पर उन्होंने 'शाकुन्तलम्' की प्रस्तावना को 'प्रयोगातिशय' माना है। वैसा ही प्रयोग आलोच्य प्रकरण 'मृच्छकटिकम्' में भो सूत्रधार द्वारा मैत्रेय की सूचना देते समय किया है।

अमेरिकन आलोचक हेनरी वेल्स ने अपनी पुस्तक में संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना पर विचार किया है तथा उनके महत्त्व पर प्रकाश डाला है। उन्होंने संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना का एक प्रमुख उद्देश्य यह बताते हुए कि प्रस्तावना लौकिक संसार से हमारी चेतना का रंगमचीय संसार में प्रवर्तित कर देने में सहयोग देती है 'मृच्छकटिकम्' की प्रस्तावना की प्रशंसा की है। उनका कथन है कि ''प्रस्तुत नाटक के नाना रूप एवं पार्श्व हैं जैसे उसके चरित्र नाना एवं नाना जाति के हैं। धर्म एवं लोक, आदर्श एवं यथार्थ, गांभोर्य एवं परिहास इन समस्त परस्पर विरोधी तत्त्वों का मिलन इसमें सम्पन्न हुआ है। प्रस्तावना में नाटक की इस नाना रूपिणी आत्मा का सुन्दर प्रतिफलन दृष्टिगोचर होता है।''

3. संस्कृत नाट्य–सहित्य में प्रायः अधिकांश नाटकों की कथावस्तु राज्य परिवार एवं उच्च स्तरीय परिवारों से संबंध रखने वाली है। परन्तु आलोच्य प्रकरण की कथावस्तु मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग से संबंधित है। यह एक यथार्थवादी प्रकरण है। दरिद्रता का जैसा सामाजिक चित्रण इस प्रकरण में किया गया है वैसा अन्यत्र दुष्प्राप्य है। दरिद्रता के संदभ में चारूदत्त का यह कथन मर्मान्तक है –

''दारिद्रयात्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।

अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्।''

4. 'मृच्छकटिकम्' की कथावस्तु की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता उसमे पाये जाने वाला घटना वैविध्य है। यह घटना वैविध्य अद्भत एवं अन्यत्र दुष्प्राप्य है। घटनाओं की विविधता का ज्ञान प्रकरण के दस अंकों के शीर्षकों से ज्ञात हो जाता है। इसमें एक ओर द्यूतकारों का सजीव चित्रण है तो दूसरी ओर संधिविच्छेदन का यथार्थ वर्णन है। एक और गाड़ियों की अदला–बदली का दृश्य है तो दूसरी ओर वसन्तसेना का मोटन एवं न्यायालय का दृश्य है। इस प्रकरण का प्रत्येक अंक भिन्न–भिन्न घटनाओं से युक्त है। घटनायें भो इस प्रकार की है जो दैनिक जीवन से संबंधित हैं। डॉ. राइडर का कथन यहां उल्लेखनीय है –

"From farce to tragedy, from satire to pathos runs the story with a breadth Truly Shakesperian."

5. डॉ. राइडर ने नाटक के वस्तु संघटन तथा संविधान शिल्प की समीक्षा करते हुए एक दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं। सर्वप्रथम आपत्ति जो की गई है वह यह है कि ''नाटक बहुत लम्बा हो गया है जिससे वस्तु निर्माण में शैथिल्य आ गया है।'' इसमें कोई संदेह नहीं कि नाटक की लम्बाई अवश्य अधिक है परन्तु प्रकरण होने से यह अधिक खटकती नहीं क्योंकि उसमें नानाविध चित्रों तथा पटलों का समावेश होना नियोजित था। इसके अतिरिक्त कथानक की यथार्थता एवं सामाजिकता और राजनीतिक कथानक का उसके साथ सम्मिश्रण सभो उसे विस्तृत बनाने में सहयोग देते हैं। जहाँ तक वस्तु निर्माण में शैथिल्य का संबंध है, सभो जगह ऐसी स्थिति नहीं है, अपितु जहाँ पर पुनरुक्तियों से विस्तार अनाहूत एवं अनावश्यक हो गया है वहाँ पर ही शिथिलता आ गई है।

यदि यह कहा जाये कि एक बैठक में इसका अभिनय समाप्त नहीं हो सकता तथा दो बैठकें आवश्यक होंगी तो कोई नवीन बात नहीं क्योंकि विश्व की विभिन्न भाषाओं में स्थित अधिकतर नाटकों की भो ऐसी ही स्थिति है। प्रायः अधिकतर नाटक जिन्हें कि रंगमंच पर प्रदर्शित करना होता है, उनमें कांट–छांट कर उन्हें उसके योग्य बनाया जाता है, वैसा यदि हम 'मृच्छकटिकम्' में भो करें तो इसका भो एक ही बैठक में सफल प्रदर्शन किया जा सकता है।

डॉ. राइडर ने वस्तु निर्माण में शैथिल्य के साथ–साथ द्वितीय टिप्पणी यह भो की है कि ''दूसरे से पांचवें अंक तक नाटक का मुख्य कार्य रुकता चला जाता है और हम लगभग यह भ्ल से जाते हैं कि चारुदत्त एवं वसन्तसेना का प्रणय ही मूल कथानक है। ..... यद्यपि दूसरा अंक चातुर्यपूर्ण है, तथापि मुख्य कथा अथवा आभ्षणों वाली कहानी से इसका कोई वास्तवित संबंध नहीं है।''

डॉ. राइडर की उक्त आपत्ति हमारी दृष्टि में उचित प्रतीत नहीं होती। द्वितीय से पंचम अंक तक की कथावस्तु ने न केवल नाटक में यथार्थता व तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को हमारे सम्मुख रखा है अपितु नायक व नायिका के प्रेम की श्रृंखला को ओर भो मजबूत बनाने का कार्य किया है। उदाहरणार्थ–द्वितीय अंक की घटना ने न केवल जुआरियों के दुर्व्यसन का सजीव चित्र अंकित करके नाटक की यथार्थवादी भ्मिका की आधारशिला रखी है अपितु वसन्तसेना को चारुदत्त से प्रणय करने हेतु कटिबद्ध भो करने का कार्य किया है। अतः डॉ. राइडर व डॉ. भाट द्वारा उठाई गई आपत्तियां उचित प्रतीत नहीं होती।

डॉ. राइडर की तृतीय टिप्पणी यह है कि 'मृच्छकटिकम्' में दो नाटकों की सामग्री सन्निविष्ट है। पहले अंक का अधिकांश भाग छठवें से दसवें अंक तक मिलाकर एक संगत एवं चातुरीपूर्ण कथानक बन सकता है जबकि पहले अंक के शेषांक को तीसरे से पांचवे अंक तक के साथ मिलाकर एक हल्के ढंग से मनोरंजक सुखान्तकी की रचना की जा सकती है। इस प्रकार राइडर ने एक ओर शकार के कारण उत्पन्न होने वाली उलझनों को मिलाकर जटिल व संघर्षमय नाटक बनाने का तथा दूसरी ओर चारुदत्त व वसन्तसेना के प्रणय तथा मिलनोपयोग से संबंधित एक मनोरंजक नाटक की रचना का प्रस्ताव प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य दृष्टि से राइडर का उक्त सुझाव संगत जान पडता है तथा इससे उनके द्वारा उठाई गई ठहराव संबंधित पहली आपत्ति का भो निराकरण हो जाता है परन्तु नाटक में वह उतार–चढ़ाव तथा असमंजस की स्थिति जो समग्र रूप में है विभाजित करने पर कदापि नहीं रह सकती। इसके अतिरिक्त नाटककार का जो प्रमुख प्रयोजन एक वेश्या को कुलवधू का स्थान दिलाना तथा शकार की दुष्टतापूर्ण प्रतिस्पर्धा को चरम–बिन्दु तक पहुंचाकर चारुदत्त तथा वसन्तसेना के प्रणय परिपाक को शारीरिक धरातल से उठाकर गहरे भावात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करना जहाँ वसन्तसेना केवल पूर्णकामा प्रेयसी न रहे, अपितु वैध वधू का पद प्राप्त करले। पांचवें अंक तक उभार में नहीं आ सकता था। शकार के संघर्ष के बिना चारुदत्त व वसन्तसेना के प्रेम में वह निखार नहीं आ पाता जो उसके रहते आ पाया है।

जहाँ तक दो नाटकों की सामग्री के सन्निविष्ट होने का संबंध है वह नाटक की लम्बाई को देखते हुए ठीक माना जा सकता है जैसा कि एक अन्य अमेरिकन आलोचक हेनरी वेल्स ने भो माना है :–

(a) "Histroically speaking, it comes extremely close to being two plays."

(b) To be sure, it is very long. In fact it is the length of two plays and was presumably compounded of two."

परन्तु विभाजन की स्थिति को नकारते हुए आपने ठीक ही लिखा है –

''सम्पूर्ण नाटक अपने घटक अवयवों के योगफल से अधिक एवं सुसंगतिपूर्ण रचना है। तब यद्यपि पहला भाग दूसरे भाग की निरपेक्षता में भो रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। नाटक में उत्पन्न होने वाला प्रभाव पृथक्शः नहीं समग्रतः विभिन्न दृश्यों के संयोग रूप में परिणभित होता है। अतः इन दोनों भागों का संबंध किसी प्रतिमा और उसके आधार का नहीं है, अपितु यह क्रमशः विकसित होने वाले किसी जीव पिण्ड का संबंध है। तने से शाखाएँ उगी हैं, और उनमें फिर पत्तियों का प्रचुर प्रादुर्भाव हो गया है जो अपनी समृद्धि में इसे विस्मय में डाल देता है।''

इस प्रकार स्थापत्यकला व वस्तु विधान पर विभिन्न मत देखने को मिलते हैं। परन्तु इन मतों की विभिन्नता के मूल में प्रमुख कारण दोनों देशों की नााट्य कला के आदर्श हैं। पाश्चात्य नाट्यकला में त्रिविध अन्वितियों को प्रमुख महत्व दिया गया है तथा वहाँ के नाटक यूनानी नाट्यकला की त्रिविध अन्वितियों के आधार पर निर्मित एवं सुगठित एवं सुविन्यस्त रचना है, इसके विपरीत संस्कृत नाटक काव्य का अंग होने के कारण उसमें प्रगीतात्मक सौन्दर्य, प्रकृति–चित्रण व शिल्प शैली के लालित्य आदि के चित्रण स्वभावतः ही किये जाते हैं जिससे कथानक में विस्तार आ जाता है। इसके साथ यह भो स्मरणीय है कि 'मृच्छकटिकम्' का कथानक केवल एक विषय के प्रतिपादनार्थ नियोजित नहीं हुआ है। उसका प्रतिपाद्य बहुतवचनात्मक है। जैसा कि प्रस्तावना में स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। अतएव डॉ. तिवारी का सुझाव है कि इसी संकुल बहुवचनात्मक प्रयोजन की पृष्ठभ्मि में उसके स्थापत्य कला को परीक्षा होनी चाहिए और तब 'मृच्छकटिकम्' का वस्तु विधान प्रभावकारी सिद्ध होगा। परन्तु डॉ. राइडर ने पाश्चात्य नाट्यकला के आदर्श से प्रभावित होकर उसकी समीक्षा की जिसके अनुसार उसकी टिप्पणी उचित कही जा सकती हैं।

18.6 पारिभाषिक शब्दावली

शूद्रक – इस प्रकार 'मृच्छकटिकम्' के कर्ता शूद्रक ही हैं यह सिद्ध हो जाने पर भी एक प्रश्न जो और उत्पन्न होता है वह यह कि शूद्रक सामान्य कवि था या राजा ? क्या उसने स्वयं ने ही यह लिखा या उसकी सभा के किसी कवि ने यह नाटक लिखकर उसके नाम से प्रसिद्ध कर दिया? यह प्रश्न इसलिए उत्पन्न होता है कि भारत में उक्त दोनों ही प्रकार के राजा हुये हैं। एक ओर ऐसे राजा हुये हैं जिन्होंने स्वयं काव्य की रचना करके साहित्य की अभिवृद्धि की है तथा दूसरी ओर ऐसे भी राजा हुये हैं जो कि स्वयं कवि न होकर मात्र कवियों के आश्रयदाता रहे हैं।

'मृच्छकटिकम् – दस अंकों का एक प्रकरण है, प्रस्तुत प्रकरण की कथावस्तु जनश्रुति अथवा लोककथा पर आधारित प्रतीत होती है। इसमें दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या वसन्तसेना के प्रणय की कथा विभिन्न सामाजिक मोडों के साथ वर्णित हुई है।

''द्यूतकर–संवाहक'' – द्वितीय अंक की अभिधा ''द्यूतकर–संवाहक'' अंक अर्थात् जुआरी संवाहक अंक है। इस अंक में एक नये प्रमुख पात्र संवाहक की अवतारणा कराई गई है, जिसने नाटकीय वस्तु–संघर्ष के समाधान में महत्त्व की भूमिका सम्पन की है।

''दुर्दिन'' – इस अंक का शीर्षक ''दुर्दिन'' है। इस अंक में वर्षा का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

'व्यवहार' – इस अंक का नामकरण 'व्यवहार' रखा गया है। इसमें न्यायालय का दृश्य है जिसमें शकार चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग लगाता है।

18.7अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता आप किसे मानते हैं? क्या वह शूद्रक था? (उत्तर सीमा–200 शब्द)
2. शूद्रक कौन था? राजा था अथवा कवि, ब्राह्मण था या क्षत्रिय था या शूद्र था? (उत्तर सीमा–400 शब्द)
3. शूद्रक के स्थितिकाल पर एक लेख लिखिये । (उत्तर सीमा–500 शब्द)
4. 'मच्छकटिकम्' की कथावस्तु अंकानुसार संक्षेप में लिखिये। (उत्तर सीमा–500 शब्द)
5. 'मृच्छकटिकम्' की कथावस्तु की समीक्षा कीजिये । (उत्तर सीमा–500 शब्द)

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिये उपभाग 18.2, 18.2.1
2. देखिये उपभाग 18.2.1, 18.2.2
3. देखिये उपभाग 18.3, 18.3.1, 18.3.2, 18.3.3
4. देखिये उपभाग 18.4, 18.4.1
5. देखिये उपभाग 18.5.1

18.8 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने मृच्छकटिकम की सामान्य जानकारी प्राप्त की । शुदक में व्यक्तित्व के विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त की । शुदक का का काल एवं व्यक्ति निर्धारण पर विशद चर्चा का ज्ञान प्राप्त हुआ । मृच्छकटिकम की कथावस्तु एवं नादशास्त्रीय तत्वों का समावेश संबंधी ज्ञान का अवबोध भी उक्त इकाई में हुआ है।

18.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृच्छकटिकम् – डॉ जयशंकर लाल त्रिपाटी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 1993.
2. मृच्छकटिकम् – डॉ श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ,1995.
3. शुद्रक का मृच्छकटिकम् – डॉ विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1998.
4. मृच्छकटिकम् – शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन – डॉ शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1998.

इकाई– 19

मृच्छकटिकम् – अंक 1 से 5 (प्रमुख अंशों की सप्रसंग व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा –

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 अंकानुसार व्याख्या

19.3 पारिभाषिक शब्दावली

19.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.5 सारांश

19.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

19.0 उद्देश्य

एम. ए. संस्कृत विषय के स्नातकोत्तर पूर्वार्द्ध प्रश्नपत्र द्वितीय से सम्बन्धित इस इकाई में महाकवि शुद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नाटक के प्रथम अंक से पञ्चम अंक तक के प्रमुख अंशों की संप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत की गई है । इस इकाई को पढने के बाद आप मृच्छकटिकम् के प्रथम अंक से लेकर पंचम अंक तक के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या प्रसंग सहित कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

संस्कृत के स्नातकोत्तर पूर्वार्द्ध प्रश्नपत्र द्वितीय के अन्तर्गत महाकवि शूद्रक कृत मृच्छकटिकम् नाटक का अध्ययन निर्धारित है । इस इकाई में मृच्छकटिकम् के प्रथम अंक से लेकर पंचम अंक तक के प्रमुख अंशों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। व्याख्या के साथ में प्रस्तुत श्लोक का प्रसंग भो लिखा गया है। विषय की स्पष्टता के लिए आवश्यकतानुसार व्याख्या और अधिक स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक श्लोक में छन्द, अलंकार, प्रकृति–प्रत्यय आदि भो बतलाये गए है। श्लोक का अन्वय तथा आवश्यकतानुसार विशेष टिप्पणियों का समाहरण भो किया गया है।

19.2 अंकानुसार व्याख्या

अंक 1

1. **पर्यङ्कः–ग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानो–,**
रन्तः प्राणावरोधव्युपरत सकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य।
आत्मन्यात्मानमेव व्यपगतकरणं पश्यतस्तत्त्वदृष्ट्या,
शम्भोर्वः पातु शून्येक्षणघटितलय–ब्रह्मलग्नः समाधिः।।1।।

अन्वय – पर्यङ्क–ग्रन्थि–बन्ध–द्विगुणित–भजगाश्लेष–संवीत–जानोः, अन्तः प्राणावरोध व्युपरत–सकल–ज्ञान–रुद्धेन्द्रियस्य, तत्वदृष्ट्या आत्मनि, आत्मानम् एव व्यपगतकरणम् पश्यतः, शम्भोः शून्येक्षणघटितलय–ब्रह्मलग्नः समाधिः वः पातु।।1।।

कठिन शब्दार्थ – पर्यङ्क–ग्रन्थि–बन्ध–द्विगुणित–भजगाश्लेष–संवीत–जानोः (योगासन की) पर्यंक नामक ग्रन्थि (गांठ–पलथी) को बांधने के लिये, दोहरे किये गये, सर्प के लपेटने से बँधी हुयी जंघाओं वाले, अन्तः प्राणावरोध–व्युपरत–सकल–ज्ञान–रुद्धेन्द्रियस्य – (यौगिक प्रक्रिया के अर्न्तगत शरीर के) अन्दर ही प्राण आदि वायुओं के रोक देने के कारण, विषय

ज्ञान शून्य इन्द्रियों वाले, तत्वदृष्ट्या–सम्यक् दर्शन से, आत्मानम् – अपने को, परमात्मा को, व्यपगतकरणम् – व्यापार रहित रूप से, पश्यतः – देखते हुये, अनुभव करने वाले, शम्भोः – भगवान शिव की, शून्येक्षण घटितलयब्रह्मलग्नः – शून्य सृष्टिविमुख दृष्टि से किये गये प्रलय के समय ब्रह्म में लगी हुई, समाधिः – चित्त की एकाग्रता, वः – आप सामजिकों की, पातु – रक्षा करें।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नामक प्रकरण के प्रथम अंक से उद्धृत है। यह श्लोक कवि द्वारा अपनी कृति के प्रारंभ में विघ्न शान्ति के लिए मंगलाचरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाट्यशास्त्रीय भाषा में इसे नान्दी कहते हैं। इस श्लोक में अपने आराध्य भगवान् शिव से प्रार्थना की गई है कि समाधिलीन वे भगवान् शिव सभो सामाजिकों की (दर्शकों की) रक्षा करें –

व्याख्या – (योगासन की) पर्यंक नामक ग्रन्थि (आसन विशेष) को बांधने के लिये दोहराये गये सर्प के लपेटने से बंधी हुई जंघाओं वाले, (यौगिक प्रक्रिया से शरीर के) भोतर ही प्राण आदि पांच वायुओं को रोक देने से विषय ज्ञान शून्य इन्द्रियों वाले, यथार्थ ज्ञान से अपने में परमात्मा का ही व्यापार (क्रिया–कलाप) शून्य रूप से अथवा कारण शून्य रूप से अनुभव करने वाले, (योगिराज भगवान्) शिव की निराकार का दर्शन अनुभव करने से होने वाली तल्लीनता के कारण ब्रह्म में लगी हुई समाधि–चित्त की एकाग्रता आप सभो सामाजिकों की रक्षा करे।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में आशीर्वादात्मक मंगलाचरण का विधान किया गया है।

(2) पर्यङ्क ग्रन्थि : इस शब्द के अनेक अर्थ किये गये हैं। वस्तुतः यह एक आसन विशेष है। जिसमें एक पैर की जांघ के उपर दूसरे पैर को रखकर दोनो को बांध दिया जाता है।

(3) प्राण : से तात्पर्य प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान पांच वायुओं से हैं।

(4) इस पद्य में स्रग्धरा छन्द है जिसका लक्षण है – म्रभ्मैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

2. अवन्तिपुर्य्यां द्विजसार्थवाहो, युवादरिद्रः किल चारुदत्तः,
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना।।6।।

अन्वय – अवन्तिपुर्याम्, द्विजसार्थवाहः, दरिद्रः युवा चारुदत्तः (आसीत्) च, यस्य गुणनुरक्ता वसन्तशोभा इव वसन्तसेना (आसीत्) ।।6।।

कठिन शब्दार्थ – द्विजसार्थवाहः – ब्राह्मण व्यापारी अथवा ब्राह्मण श्रेष्ठ। गुणानुरक्ताः – गुणों के कारण प्रेम करने वाली । वसन्तशोभव – वसन्त ऋतु की सुन्दरता के समान।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्यपुस्तक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण से उद्धृत है। इस श्लोक में कवि ने सूत्राधर के माध्यम से ग्रन्थ की विषयवस्तु का वर्णन किया है। सूत्राधार का कथन है कि शूद्रक की इस कृति में–

व्याख्या – उज्जयिनी नगरी में व्यापारी ब्राह्मण (जो पहले धनाढ्य था परन्तु दानी होने के कारण बाद में) निर्धन, युवक चारुदत्त (रहा करता था) और जिसके (दया दाक्षिण्यादि) गुणों के कारण प्रेम करने वाली, वसन्त ऋतु की शोभा के समान (शोभा वाली) वसन्तसेना नामक गणिका (भो वहाँ रहती थी) ।

विशेष –

(1) अवन्तिपुर्य्याम् – प्राचीन काल में अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काची आदि सात पवित्र नगरियों में अवन्ती भो एक थी। इसी का नाम उज्जयिनी था। यह शिप्रा नदी के तट पर स्थित है। वर्तमान में जो उज्जैन नगर है, वह प्राचीन अवन्ती नगरी के स्थान से लगभग एक मील दूर है।

(2) द्विजसार्थवाहः – इस शब्द के अर्थ को लेकर विद्वानो में मतैक्य नहीं हैं। 'सार्थ' शब्द वणिक् समुदाय तथा समुदाय मात्रा दोनों अर्थों का वाचक है। इस आधर पर अलग–अलग अर्थों की कल्पना की गई है। 1. सार्थवाह – व्यापारी, द्वीज – ब्राह्मण, अर्थात् ब्राह्मण व्यापारी। 2. द्विजानाम् – ब्राह्मणानां सार्थम् – समूहम् वहति – अन्नदानादिना पालयति इति द्विज सार्थवाहः – ब्राह्मणपालन कर्ता। अनेक व्याख्याकारों ने चारुदत्त को व्यापारी ब्राह्मण माना है। डॉ. जयशंकर लाल त्रिपाठी की मान्यता है कि 'प्रस्तुत प्रकरण में उसके चरित्र की जो उदारता प्रदर्शित की गई है वह व्यापारी चारुदत्त में संभव नहीं है। अतः द्विजसार्थवाह का अर्थ ब्राह्मण समुदाय का नेता – 'द्विजश्रेष्ठ' यही मानना उचित है।

(3) वसन्तशोभेव वसन्तसेना :– वसन्तसेना की उपमा कवि ने वसन्त ऋतु की शोभा से की है। इससे वसन्तसेना की पुष्पों के समान प्रियता एवं कमनीयता व्यक्त की है।

(4) गुणानुरक्ता :– यह पद अति महत्त्वपूर्ण है। अधिकांश वेश्या अर्थ लोलुप होती हैं। परन्तु गणिका वसन्तसेना चारुदत्त के निर्धन होने पर भो उसके व्यक्तित्व में जो अतुलनोय गुण हैं उनके कारण उससे प्रेम करती है। यह उसके चरित्र से प्रेम करती है। निर्धनता उसके प्रेम में बाध्क नहीं है।

(5) प्रस्तुत श्लोक में 'उपमा' अलंकार तथा 'उपेन्द्रवज्रा' छन्द है।

3. शून्यमपुत्रस्य गृहं, चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्राम्।
मूर्खस्य दिशः शून्याः, सर्वं शून्यं दरिद्रस्य ।। 8।।

अन्वय – अपुत्रस्य गृहम् शून्यम्, यस्य सन्मित्रम् न अस्ति, (तस्य) चिरशून्यम् (अस्ति), मूर्खस्य दिशः शून्याः (सन्ति), दरिद्रस्य सर्वम् शून्यम् (भवति) ।।

कठिन शब्दार्थ – अपुत्रस्य – पुत्रविहीन का। सन्मित्राम् – अच्छा मित्र । चिरशून्यम् – चिरकाल अभिमत कार्य से रहित होता है। दरिद्रस्य – निर्धन का।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण के प्रथम अंक से अवतरित है। सूत्रधर संगीतशाला को शून्य देखकर अपने विचार व्यक्त कर रहा है। उसके इस कथन में मानव जीवन में पुत्र, एवं श्रेष्ठ मित्र का महत्त्व व्यक्त हुआ है, साथ ही दरिद्रता को सबसे अधिक निन्दनीय बताया है।

व्याख्या – पुत्रहीन (सन्तानहीन) का घर सूना (होता है) जिसका (कोई भो) अच्छा मित्र नहीं होता है, उसका चिरकाल शून्य रहता है अर्थात् सर्वत्र उसके कार्यों में बाध पड़ती है, उसका कोई भो अभोष्ट कार्य नहीं, हो पाता है। मूर्ख की सभो दिशायें शून्य रहती हैं अर्थात् सब कुछ होने पर भो मूर्ख उसका उपयोग नहीं कर पाता है, अतः उसे सर्वत्र रिक्तता दिखाई देती है। इन सबकी तुलना में निर्धन की स्थिति सबसे अधिक दयनीय होती है, क्योंकि सारा संसार ही उसके लिए नहीं के समान होता है। कोई भो व्यक्ति न उसकी सुनता है, न उसका काय करता है, न उसका साथ देता है। अतः गरीब होना सबसे बड़ा अभिशाप है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में दरिद्रता की निन्दा करते हुये आगे निरूपित होने वाली चारुदत्त की दरिद्रता की भ्मिका प्रस्तुत की गई है।

(2) इस पद्य में 'आर्या' छन्द है।

4. सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां
धृतः शरीरेण मृतः स जीवति।।10।।

अन्वय – घनान्धकारेषु, दीपदर्शनम्, इव दुःखानि अनुभ्य (पुरुषस्य) सुखम् हि, शोभते, तु, यः, नरः सुखात् दरिद्रतां याति, सः शरीरेण धृतः अपि, मृतः (सन्) जीवति।।10।।

कठिन–शब्दार्थ – घनान्धकारेषु – घोर अन्धकार में, दीपदर्शनम् – दीपक के दर्शन। अनुभ्यः – अनुभव करके। शोभते – शोभित होता है। दरिद्रताम् – निर्धनता को। याति – प्राप्त करता है। धृतः – धरण किया हुआ। मृतः – मरा हुआ।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में चारुदत्त वर्तमान कालीन दरिद्रता के विषय में विचार कर अत्यन्त दुःखी हो रहा है। क्योकि पूर्व में उसने अत्यधिक दुखों का उपभोग किया है। वह अपने मित्र मैत्रेय से कहता है –

व्याख्या – गहन अन्धकार में दीपक के प्रकाश के समान दुःखों के अनुभव के बाद (मनुष्य के लिए) सुख शोभित होता है, सुख को अनुभ्ति अच्छी लगती है, परन्तु जो मनुष्य सुखों का उपभोग करके निर्धनता को प्राप्त होता है, वह शरीर द्वारा धरण किया गया भो मरे हुये के समान जीवित रहता है। निर्धन व्यक्ति जीवित होने पर भो मृत तुल्य होता है, उसका जीवन व्यर्थ होता है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में चारुदत्त अपनी वर्तमान दरिद्रता के विषय में विचार कर अत्यन्त दुःखी हो रहा है तथा शरीर धरण करने पर भो मरणतुल्य कष्ट का अनुभव करता है।

(2) इस पद्य में वंशस्थ छन्द है।

(3) यहाँ अप्रस्तुत व्यक्ति सामान्य के कथन से प्रस्तुत चारुदत्त रूप व्यक्ति विशेष का ज्ञान होता है, अतः अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। 'घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्' यहाँ उपमा अलंकार है। 'मृतःस जीवति' यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

5. एतत्तु मां दहति यद् गृहमस्मदीयं
क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः
कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम्।।12।।

अन्वय – कालात्यये करिणः संशुष्कसान्द्रमदलेखम्, कपोलम् भमन्तः मधुकराः, इव अतिथयः, क्षीणार्थम्, इति, अस्मदीयम्, गृहम्, यत् परिवर्जयन्ति, एतत् तु माम् दहति ।।12।।

कठिन – शब्दार्थ – कालात्यये (मद जल प्रवाहित होने का) समय बीत जाने पर, करिणः – हाथी के, संशुष्कसान्द्रमदलेखम् – सुखी गाढी मद धारा वाले, कपोलम् – गण्डस्थल को। मधुकराः – भौंरे। क्षीणार्थम् – धन से रहित, अस्मदीयम् – मेरे (चारुदत्त के) परिवर्जयन्ति – छोड़ देते हैं। दहति – जला रहा है, कष्ट दे रहा है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के प्रथम अंक से अवतरित है। चारुदत्त व उसके मित्र मैत्रेय के मध्य निर्धनता को लेकर वार्तालाप चल रहा है। चारुदत्त मैत्रेय से कहता है कि उसे धन नष्ट हो जाने का कोई कष्ट नहीं है। परन्तु धन के नष्ट होने पर जो लोगो के व्यवहार में अन्तर आ गया है, वह अधिक कष्ट पहुँचा रहा है।

व्याख्या – (मद जल बहने का) समय व्यतीत हो जाने पर हाथी की सूखी हुई गाढी मदजल धरा वाले गण्डस्थल को (पूर्व काल में उस पर) मँडराने वाले भौंरों के समान अतिथि लोग 'धनहीन है' ऐसा विचार कर मेरे घर को छोड़ देते हैं। (उसमें नहीं आते हैं) वही मुझे अत्यध्कि कष्ट दे रहा है, मेरे हृदय को जला रहा है। भाव यह है कि जिस प्रकार हाथी के सूखे मदजल रहित गण्डस्थल को छोडकर भौंरे अन्यन्त्र चले जाते हैं उसी प्रकार धनहीन मेरे घर को छोडकर अतिथि लोग भो दूसरे लोगों के पास चले जाते हैं। यह अतिथियों द्वारा मेरे घर को छोड जाना मुझे जलने के समान अत्यधिक पीडित कर रहा है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में 'उपमा' अलंकार तथा 'वसन्ततिलका' छन्द है।

6. सत्यं न मे विभवनाशकृतास्ति चिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।
एतत्तु मां दहति, नष्टधनाश्रयस्य
यत् सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति।।13।।

अन्वय – विभवनाशकृता चिन्ता मे, न, आस्ति, (इति) सत्यम्, हि, धनानि भाग्यक्रमेण भवन्ति, यान्ति (च) जनाः नष्टधनाश्रयस्य, सौहृदाद्, अपि, यत्, शिथिलीभवन्ति, एतत् तु, माम् दहति।

कठिन–शब्दार्थ – विभवनाशकृता – धन के विनाश से उत्पन्न। भाग्यक्रमेण – भाग्य चक्र के अनुसार। यान्ति – चले जाते हैं। नष्टधनाश्रयस्य – धन के आश्रय से हीन अर्थात् निर्धन। सौहृदात् – मित्रता से। शिथिलीभवन्ति – ढीले पडने लगते हैं, विमुख होने लगे हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक प्रकरण के प्रथम अंक से है। चारुदत्त अपनी निर्धनता एवं उससे प्राप्त होने वाले लोगों के व्यवहार में आने वाले अन्तर से अत्यन्त सन्तप्त है। वह अपनी मनोव्यथा मित्र मैत्रेय को व्यक्त कर रहा है–

व्याख्या – धन के विनाश से होने वाली चिन्ता मुझे नहीं है, यह सच है, क्योंकि धन तो भाग्य के क्रम से आता–जाता रहता है। परन्तु लोग धन रूपी आश्रय से हीन अर्थात् निर्धन मेरी मित्रता से भो जो मुंह मोडने लगे हैं अर्थात् मैत्री में जो अन्तर आ रहा है वह मुझे अत्यधिक सन्तप्त कर रहा है।

विशेष –

(1) सत्यम् – संसार में सामान्यतया लोग धन हानि के कारण चिन्तित एवं परेशान होने लगते हैं। चारुदत्त अपने विषय में उसका खण्डन करते हुये कहता है कि मुझे धन विनष्ट होने की चिन्ता नहीं है क्योंकि धनी होना या निर्धन हो जाना यह सब तो भाग्य का खेल है। मेरी चिन्ता का कारण तो यह है कि जब मेरे पास धन था तो लोग मेरे मित्र बनकर मेरे साथ–साथ रहा करते थे आज धनविहीन होने पर वे लोग मित्रता से भो मुँह मोडने लगे हैं। उनका मैत्री से मुंह मोडना मुझे चिन्तित कर रहा है।

(2) इसमें काव्यलिंग अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

7. दारिद्र्याद्ध्रियमेति, ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो
निस्तेजाः परिभूयते, परिभवान्निर्वेदमापद्यते।।
निर्विण्णः शुचमेति, शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते।
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम्।।14।।

अन्वय – (मनुष्यः) दारिद्र्यात्, ह्रियम् एति, ह्रीपरिगतः तेजसः प्रभश्यते, निस्तेजाः परिभ्यते, परिभवात्, निर्वेदम् आपद्यते। निर्विण्णः शुचम् एति, शोकपिहितः बुद्ध्या परित्यज्यते, निर्बुद्धिः क्षयम् एति, अहो, निधनता सर्वापदाम् आस्पदम्।।

कठिन–शब्दार्थ – ह्रियम् – लज्जा को। एति – प्राप्त होता है। ह्रीपरिगतः – लज्जित व्यक्ति। प्रभश्यते – भष्ट हो जाता है। निस्तेजाः – तेज शून्य। परिभ्यते – अपमानित होता है। निर्वेदम् – ग्लानि को। आपद्यते – प्राप्त होता है। निर्विण्ण – ग्लानियुक्त व्यक्ति। शुचम् – शोक को। परित्यज्यते – त्याग दिया जाता है। निर्बुद्धि – बुद्धिविहीन, अविवेकी । सर्वापदाम् – समस्त विपत्तियों का। अपस्पदम् – स्थान, मूल कारण है।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में प्रकरण का नायक चारुदत्त निर्धनता से अत्यन्त दुःखी होकर उससे होने वाले परिणामों को व्यक्त कर रहा है, उसकी दृष्टि में गरीबी सभो विपत्तियों का मूल कारण है।

व्याख्या – दरिद्रता के कारण (मनुष्य) लज्जा को प्राप्त करता है। अर्थात् अनेक स्थानों पर उसे लज्जित होना पड़ता है। लज्जित व्यक्ति तेज से भष्ट हो जाता है। अर्थात् वह निस्तेज हो जाता है। तेजहीन व्यक्ति अपमानित होता है, अपमान से वह ग्लानि को प्राप्त करता है।

ग्लानि युक्त शोक को प्राप्त करता है, शोकाकुल व्यक्ति बुद्धि द्वारा त्याग दिया जाता है अर्थात् विवेकहीन हो जाता है। विवेकहीन होने पर विनाश को प्राप्त करता है। आश्चर्य है, दरिद्रता समस्त विपत्तियों का स्थान है, मूल कारण है।

विशेष –

(1) निर्बुद्धिः क्षयमेति – इसका आधर भगवद्गीता का यह वचन है ''बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'' किसी कवि ने भो कहा है– ''जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।''

(2) प्रस्तुत श्लोक में उत्तर–उत्तर वाक्यार्थ के प्रति पूर्व–पूर्व वाक्यार्थ के हेतु बन जाने से कारणमाला अलंकार है।

(3) प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

8. निवासश्चिन्तायाः पर परिभवो वैरमपरं
जुगुप्सा मित्राणां स्वजन विद्वेषकरणम्।
वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात् परिभवो
हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति सन्तापयति च ।।15।।

अन्वय – (दारिद्यं हि पुरूषस्य) चिन्तायाः निवासः, परपरिभवः, अपरम् वैरम्, मित्राणां जुगुप्सा, स्वजन–जनविषकरणम्, कलत्रात् परिभवः भवति (अतः) वनम् गन्तुम् बुद्धिः च भवति। हृदिस्थः शोकाग्निः न दहति, सन्तापयति च ।।15।।

कठिन–शब्दार्थ – परपरिभवः – दूसरों के द्वारा किया जाने वाला अनादर, जुगुप्सा – घृणा। कलत्रात् – स्त्री से । परिभवः – तिरस्कार। बुद्धिः – ज्ञान, विचार। हृदिस्थः – हृदय में रहने वाली। सन्तापयति – सन्ताप देती है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में चारुदत्त दरिद्रता के विषय में अपने अनुभवों के आधर पर विचार व्यक्त कर रहा है। वह कहता है –

व्याख्या – (निर्धनता पुरूषों की) चिन्ता का घर (निवास स्थान) है, अर्थात् जहाँ निर्धनता है, वहाँ चिन्ता सदैव बनी रहती है। दूसरों के द्वारा किया जाने वाला अनादर अथवा महान् अपमान है, निर्धन व्यक्ति को हर कोई अपमानित कर देता है। यह दूसरी विलक्षण शत्रुता है, मित्रों की घृणा की जननी है अर्थात् निर्धन से मित्र भो घृणा करते हैं। अपने बन्धु–बान्धवों तथा अन्य लोगों के विद्वेष का कारण है। पत्नी से होने वाला तिरस्कार है अर्थात् पली भो बार–बार तिरस्कृत करती है। परिणामस्वरूप मनुष्य की बार–बार घर छोड़कर वन में जाने की इच्छा होती है। यह निर्धनता वस्तुतः हृदय में स्थित शोक रूपी अग्नि है जो पूरी तरह जला नहीं डालती है, अपितु तपाती रहती है। भाव यह है कि धीरे–धीरे तपा तपा कर मनुष्य को मृत तुल्य कर देती है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में दरिद्रता के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है।

(2) एक दारिद्य का विभिन्न रूपों से उल्लेख होने से उल्लेख अलंकार है। 'शोकाग्निः' में रूपक अलंकार है। अग्नि रूप कारण के रहने पर भो दाह रूप कार्य के न होने से विशेषोक्ति है। इन सबका परस्पर अंगागिभाव होने से सङ्कर अलंकार है।

(3) इस पद्य में शिखरिणी छन्द है।

9. तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो
विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरम्
सममुपचर भद्रे! सुप्रियं चाप्रियञ्च।।31।।

अन्वय – वेशवासः तरुणजनसहायः, चिन्त्यताम्, विगणय मार्गजाता लता इव, त्वम्, गणिका असि, हि पण्यभ्तं धनहार्यम् शरीरम् वहसि, भद्रे! सुप्रियम् च अप्रियम् च समम् उपचर।।31।।

कठिन–शब्दार्थ – वेशवासः – वेश्यालय का निवास। तरूणजनसहायः – युवकों की सहायता पर आश्रित। मार्गजाता – राह में उत्पन्न होने वाली, पण्यभ्तम् – बेची जाने वाली वस्तु के समान। धनहार्यम् – धन खरीदने योग्य। उपचार – सेवा करो, व्यवहार करो।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक 'मृच्छकटिकम्' के प्रथम अंक से अवतरित है। रात्रि का समय है। शकार व विट वेश्या वसन्तसेना का पीछा कर रहे हैं। दोनों उसे अनेक प्रकार के विशेषणों से सम्बोधित करते हुये उसे रोकने का प्रयास कर रहे हैं। प्रस्तुत कथन विट का है। वह वसन्तसेना द्वारा 'शान्त' रहो ऐसा कहने पर उसे 'श्रान्त' समझ लेता है तथा इस प्रकार अपने विचार व्यक्त करता है –

व्याख्या – (हे वसन्तसेने!) वेश्यालय का निवास युवक जनों की सहायता पर आश्रित रहने वाला होता है, यह तुम्हे समझ लेना चाहिए। अतः युवक शकार की तुम्हें अवहेलना नहीं करनी चाहिए। तुम विचार करो, मार्ग (सड़क) पर उत्पन्न लता के समान (सभो द्वारा उपभोग्या) तुम वेश्या हो। क्योंकि विक्रय योग्य वस्तु के समान ध्न से खरीदने योग्य शरीर को तुम धारण कर रही हो। अतः हे भद्रे! सुप्रिय अथवा अप्रिय दोनों के साथ तुम समान रूप से व्यवहार करो।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में उपमा एवं काव्यलिंग अलंकार है।

(2) इसमें मालिनी छन्द है।

10. वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः,
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्राविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे,
त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज।।32।।

अन्वय – विचक्षण, द्विजवरः मूर्खः वर्णाधमः अपि (एकस्यामेव) वाप्याम् स्नाति। या बर्हिणा नामिता फुल्लाम् (तामेव) लताम् वायसः अपि नाम्यति। हि, यथा, नावा ब्रह्मक्षत्रविशः तरन्ति, तया एव इतरे च (तरन्ति)। त्वं वेश्या असि, अतः वापी इव, लता इव, नौ इव, सर्वम् जनं भज।।32।।

कठिन–शब्दार्थ – विचक्षणः – अतिशय विद्वान्, द्विजवरः – ब्राह्मण श्रेष्ठ, वर्णाधमः – नीच जाति वाला शूद्र, वाप्याम् – बावड़ी में, बर्हिणा – मोर द्वारा, नामिता – झुकाई गई थी, फुल्लाम् – फूली हुई, प्रफुल्लित । वायसः – कौआ, नाम्यति – झुकाता है। नौः – नौका। भज – सेवा करो।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के प्रथम अंक से अवतरित है। विट वसन्तसेना की तुलना बावडी, लता एवं नौका से करते हुये उसे सभो लोगों की समान भाव से सेवा करने की प्रेरणा देता है–

व्याख्या – अतिशय विद्वान् ब्राह्मण तथा मूर्ख वर्णाधम शूद्रादि एक ही बावड़ी में स्नान करता है। जो लता मोर द्वारा झुकाई गई थी, उसी प्रफुल्लित लता पर कौआ बैठकर उसे झुकाता है। जिस नाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य (गंगादि नदियां) पार करते हैं, उसी से शूद्र भो पार करते हैं। हे वसन्तसेना। तुम वेश्या हो, अतः बावड़ी के समान, लता के समान और नौका के समान सभो लोगों की समान भाव से सेवा करो अर्थात् जैसे ये तीनों बिना किसी भदभाव के सब के साथ समान व्यवहार करती हैं, वैसे ही वेश्या होने से तुम्हें भो भदभाव नहीं करना चाहिए।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुत पदार्थ द्विजवर और वर्णाधम का स्नानरूप एक क्रिया के साथ

सम्बन्ध है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का तथा इतर शूद्र का तरण रूप एक क्रिया के साथ सम्बन्ध है। अतः दोनो में तुल्ययोगिता अलंकार है।

(2) वेश्या रूपी एक उपमेय का तीन(वापी, लता, नौका) उपमानों के साथ सादृश्य वर्णित होने से मालोपमा है।

(3) 'सर्वंभज' इस वाक्यार्थ के प्रति 'त्वं वेश्यासि' यह वाक्यार्थ हेतु है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

(4) इन तीनों का परस्पर अंगांगिभाव होने से संकर अलंकार है।

(5) इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

11. लिम्पतीव तमोऽङ्गनि वर्षतीवाजनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विपफलतां गता।।34।।

अन्वय – तमः अङ्गानि लिम्पति इव, नभः अञ्जनम् वर्षति इव, असत्पुरूष सेवा इव दृष्टिः विपफलतां गता ।।34।।

कठिन–शब्दार्थ – तमः – अन्धकार। लिम्पति इव – लीप सा रहा है। अंजनम् – काजल। वर्षति इव – वर्षा सा कर रहा है। दृष्टिः – नेत्रा ज्योति। गता – प्राप्त हो गई है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में रात्रिकालीन घोर अन्धकार का वर्णन किया गया ह। विट अन्धकार का वर्णन करते हुये कर रहा है।

व्याख्या – अन्धकार शरीर के अंगों को मानो व्याप्त सा कर रहा है, आकाश मानो काजल की वर्षा सी कर रहा है। दुष्ट पुरुष की सेवा के समान मेरी दृष्टि व्यर्थ हो गई है अर्थात् कुछ भो दिखाई नहीं दे रहा है।

विशेष –

(1) श्लोक के पूवार्द्ध में दोनो वाक्यों में क्रिया के साथ 'इव' का प्रयोग होने से 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है। उत्तरार्द्ध में उपमा अलंकार है। इस प्रकार उत्प्रेक्षा व उपमा की संसृष्टि है।

(2) इसमें अनुष्टुप् छन्द है।

12. दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते,
सुस्निग्धः विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फारीभवन्त्यापदः।
सत्यं ह्रासमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते,
पापं कम च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ।।36।।

अन्वय – दारिद्र्यात् बान्धवजनः पुरुषस्य वाक्ये न सन्तिष्ठते, सुस्निग्धाः सुहृदः विमुखीभवन्ति, आपदः स्फारी भवन्ति, सत्वम् ह्रासं उपैति, शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते। परैः अपि च यत् पापम् कम कृतम् तत् तस्य संभाव्यते।।36।।

कठिन – शब्दार्थ – सन्तिष्ठन्ते – रहते हैं, मानते हैं। सुस्निग्धाः – अत्यन्त स्नेही। सुहृदः – मित्र । विमुखीभवन्ति – विमुख हो जाते हैं, मुंह फेर लेते हैं। स्फारीभवन्ति – वृद्धि को प्राप्त होती हैं। सत्वम् – बल। ह्रासम् – न्यूनता को। उपैति – प्राप्त करता है। शीलशशिनः – आचरण रूपी चन्द्रमा की। परिम्लायते – मलिन होने लगती है। संभाव्यते – मान लिया जाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में निर्धनता के दुष्परिणामों को बतलाया गया है। चारुदत्त अपनी निर्धनता से अत्यन्त दुःखी है। वह कहता है –

व्याख्या – निर्धनता के कारण बन्धुबान्धव लोग उस निर्धन व्यक्ति के वचनों पर विश्वास नहीं करते हैं। अत्यधिक घनिष्ठ मित्र भो विमुख हो जाते हैं। दिन प्रतिदिन आपत्तियाँ बढने लगती हैं। शक्ति क्षीण होने लगती है। चरित्रारूपी चन्द्रमा की कान्ति फीकी पड़ने लगती

हैं। दूसरो के द्वारा भो जो पाप कम किया जाता है, वह (पाप कम) उस गरीब का ही मान लिया जाता है।

विशेष –

(1) विदूषक चारुदत्त का घनिष्ठ मित्र है परन्तु इस समय वह भो अपने मित्र की आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है। इसका कारण चारुदत्त अपनी निर्धनता को मानता है तथा तीन श्लोकों में निरूत्तर अपनी व्यथा व्यक्त करता है।

(2) 'शीलशशिनः' में रूपक अलंकार है। इसमें 'शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

13. सङ्गं नैव हि कश्चिदस्य कुरुते, संभाषते नादरात्,
सम्प्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोक्यते।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया,
मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम्।।37।।

अन्वय – हि, कश्चित् अस्य सङ्गम् नैव कुरुते, (अतः) आदरात् न संभाषते, उत्सवेषु धनिनाम्, गृहम् सम्प्राप्तः, सावज्ञम्, अवलोक्यते, अल्पच्छदः (निर्धनः) लज्जया, महाजनस्य, दूरात् एवं विहरति, (अतः अहम् इदम्) मन्ये, निर्ध्नता अपरम् प्रकामम् षष्ठम् महापातकम् ।।37।।

कठिन–शब्दार्थ – संभाषते – बोलता है। सावज्ञम – अपमान के साथ। अवलोक्यते – देखा जाता है। अल्पच्छदः – अपर्याप्त वस्त्र धरण करने वाला। विहरति – चलता है। प्रकामम् – बड़ा प्रबल। महापातकम् – महापातक, बड़ा पाप (है)।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में चारुदत्त ने निर्धनता को पांच महापातकों से भिन्न छठा महापातक बतलाया है–

व्याख्या – कोई भो व्यक्ति निर्धन की संगति नहीं करता है, उसके साथ रहना पसन्द नहीं करता है, कोई भो (इससे) आदरपूर्वक नहीं बोलता है। उत्सवों में, धनवानों के घर पहुंचने वाला निर्धन पुरुष अपमान के साथ देखा जाता है। अपर्याप्त वस्त्रों वाला निर्धन व्यक्ति लज्जा के कारण बड़े लोगो से दूर–दूर ही चलता है, रहता है। अतः (मै चारुदत्त यही) मानता हूं कि निर्धनता (पांच महापातकों से) भिन्न छठा प्रबल महापातक है।

विशेष –

(1) षष्ठं महापातकम् – मनु आदि महर्षियों ने पांच महापातक माने हैं (क) ब्रह्म हत्या (ख) सुरापान (ग) चोरी (घ) गुरुपली–गमन (ड) इनमें से किसी भो पातकी के साथ वर्ष भर रहना। चारुदत्त की दृष्टि में 'निर्धनता' इन्हीं की कोटि में छठा महापातक है।

(2) 'मन्ये' के कारण इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है। 'शार्दूलविक्रिडित' छन्द है।

14. दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणपफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी,
आदर्शः शिक्षितानां, सुचरितनिकषः शीलवेला–समुद्रः।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो,
ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यध्किगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये।।48।।

अन्वय – दीनानाम् स्वगुणपफलनतः कल्पवृक्षः, सज्जनानाम् कुटुम्बी, शिक्षितानाम् आदर्शः, सुचरित निकषः, शीलवेला समुद्रः, सत्कर्ता न अवमन्ता, पुरुषगुणनिधिः, दक्षिणोदार सत्त्वः, श्लाघ्यः च सः एकः हि अधिकगुणतया, जीवति अन्ये च उच्छ्वसन्ति इव।।48।।

कठिन–शब्दार्थ – स्वगुणफलनतः – अपने गुण रूपी फलों के भार से झुका हुआ। सुचरितनिकषः – सदाचार की कसौटी । शीलवेला – समुद्रः – सत्स्वभाव रूपी तटों का समुद्र। सत्कर्ता – सत्कार करने वाले। न अवमन्ता – पुरुषगुणनिधिः – पौरुषेय गुणों का कोष (किसी का) अपमान न करने वाले। दक्षिणोदारसत्त्वः – सरल एवं उदार स्वभाव वाले।

श्लाघ्यः – प्रशंसनीय। उच्छ्वसन्ति इव – सांस सी ले रहे हैं अर्थात् उनका जीवित रहना, न जीवित रहने के बराबर है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण के प्रथम अंक से अवतरित है। इसमें विट चारुदत्त के महान् व्यक्तित्व का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या – (आर्य चारुदत्त) दीनों के (मनोरथों को पूर्ण करने वाले) अपने गुण रूपी पफलों के भार से झुके हुये कल्पवृक्ष हैं। सज्जनों के अपने कुटुम्बी (घर वाले) हैं, शिक्षित लोगो के लिए आदर्श रूप में हैं, सदाचार की कसौटी, सत्स्वभावरूपी मर्यादा के समुद्र, सभो का सत्कार करने वाले, (किसी का) अपमान न करने वाले, पुरूष में रहने वाले गुणों के खजाने, सरल एवं उदार स्वभाव वाले तथा श्लाघनीय वे अकेले (चारुदत्त ही) अधिक गुण वाले होने से इस संसार में जीवित हैं अन्य लोग तो केवल सांस सी ले रहे हैं अर्थात् उनका जीवन कोई जीवन नहीं है।

विशेष :

(1) प्रस्तुत पद्य में एक चारुदत्त का ही अनेक रूपों से उल्लेख होने के कारण उल्लेख अलंकार है।

(2) 'स्वगुणफलनतः' 'शीलवेलासमुद्रः' आदि में रूपक है तथा 'उच्छ्वसन्ति इव' में क्रियोत्प्रेक्षा है। इन सबकी संसृष्टि है।

(3) इसमें स्रग्धरा छन्द है।

15. अन्धस्य दृष्टिरिव पुष्टिरिवातुरस्य
मूर्खस्य बुद्विरिव सिद्धिरिवालसस्य।
स्वल्पस्मृतेत्यसनिनः परमेव विद्या
त्वां प्राप्य सा रतिरिवारिजने प्रनष्टा।।49।।

अन्वय – अन्धस्य दृष्टिः इव, आतुरस्य पुष्टिः इव, मूर्खस्य बुद्धिः इव, अलसस्य सिद्धिः इव, स्वल्पस्मृतेः व्यसनिनः परमा विद्या इव, अरिजने रतिः इव सा त्वाम् प्राप्य विनष्टा।।

कठिन–शब्दार्थ – आतुरस्य – रोगी की। पुष्टिः – शक्ति। अलसस्य – आलसी की। सिद्धिः – सफलता। स्वल्पस्मृतेः – मन्द बुद्धिवाले। अरिजने – शत्रुजन में। रतिः – प्रेम। प्रनष्टा – अदृश्य हो गई।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य 'मृच्छकटिकम्' के प्रथम अंक से लिया गया है। इसमें वसन्तसेना के अकस्मात् अदृश्य हो जाने का वर्णन विट द्वारा किया गया है। वह शकार से कह रहा है–

व्याख्या – अन्धे की नेत्र ज्योति के समान, रोगी की शक्ति के समान, मूर्ख की बुधि के समान, आलसी की सफलता के समान, मन्द बुद्धिवाले व्यसनी की परम विद्या (उत्कृष्ट विद्या) के समान, शत्रुजन में प्रेम के समान, वह वसन्तसेना तुम्हें पाकर अदृश्य हो गई।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में दृष्टि, पुष्टि, बुद्धिः, सिद्धि, विद्या, रति इन अनेक उपमानों से उपमेयभ्त वसन्तसेना का उल्लेख करने के कारण मालोपमा अलंकार है। मालोपमा का लक्षण हैः–

''मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते।''

(2) इसमें वसन्ततिलका छन्द है। जिसका लक्षण है

'' उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।''

16. यदा तु भाग्यक्षयपीडितां दशां
नरः कतान्तोपहितां प्रपद्यते।
तदाऽस्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रातां
चिरानुरक्तोऽपि विरज्यते जनः।।53।।

अन्वय – यदा नरः कृतान्तोपहिताम् भाग्यक्षयपीडिताम् दशाम् प्रपद्यते, तदा तु अस्य मित्राणि अपि अमित्रताम् यान्ति, चिरानुरक्तः अपि जनः विरज्यते।।

कठिन–शब्दार्थ – कृतान्तोपहिताम् – प्रतिकूल भाग्य द्वारा उपस्थापित। भाग्यक्षय पीडिताम् – भाग्यनाश के कारण पीडित। प्रपद्यते – प्राप्त करता है। अमित्राताम् – शत्रुता को। यान्ति – प्राप्त कर लेते हैं। चिरानुरक्तः – बहुत समय से प्रेम करने वाला। विरज्यते – विरक्त हो जाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिक के प्रथम अंक से अवतरित है। अवसर पाकर वसन्तसेना चारुदत्त के घर में प्रवेश कर जाती है। चारुदत्त उसे रदनिका समझता है तथा बार बार रोहसेन को भोतर ले जाने के लिए कहता है। वह कुछ जवाब नहीं देती है। तब चारुदत्त दुःखी होकर अपनी प्रतिक्रिया इस प्राकर व्यक्त करता है–

व्याख्या – जब मनुष्य दुर्भाग्य द्वारा उपस्थापित, भाग्य विनाश के कारण दलित दुर्दशा को प्राप्त हो जाता है, तब इस (निर्धन) के मित्र भो शत्रुता को प्राप्त हो जाते हैं तथा दीर्घकाल से प्रेम रखने वाला व्यक्ति भो विरक्त (प्रेम रहित) हो जाता है। वह भो प्रेमपूर्वक बात नहीं करता है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार तथा वंशस्थ छन्द है।

17. उदयति हि शशाङ्कः कामिनीगण्डपाण्डु
ग्रहगण–परिवारो राजमार्गप्रदीपः।
तिमिर–निकरमध्ये रश्मयो यस्य गौराः
स्रुतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति।।57।।

अन्वय – कामिनीगण्डपाण्डुः ग्रहगण परिवारः, राजमार्ग प्रदीपः, शशांङ्कः उदयति, हि, यस्य गौराः रश्मयः स्त्रुतजले पंके क्षीरधाराः इव तिमिरनिकर मध्ये पतन्ति।।57।।

कठिन–शब्दार्थ – कामिनीगण्डपाण्डुः – सुन्दर युवती के गालों के समान। ग्रहगण परिवारः – ग्रह–नक्षत्र रूपी परिवार वाला। राजमार्ग प्रदीपः – राज मार्ग पर प्रकाश करने वाला दीपक। शशांङ्कः – चन्द्रमा। गौराः – गौर वर्ण वाली, रश्मयः – किरणें। स्त्रुतजले – निकले हुये अर्थात् सूखे जल वाले। पङ्के – कीचड़ में। क्षीरधाराः इव – दूध की धराओं के समान। तिमिरनिकर मध्ये – अन्धकार समूह के मध्य में।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में रात्री के समय चन्द्रमा के उदय होने का वर्णन किया गया है।

व्याख्या – सुन्दर युवती के गालों के समान उज्ज्वल, ग्रह–नक्षत्र रूपी परिवार वाला तथा राजमार्ग का प्रकाशक चन्द्रमा निश्चित ही उदित हो रहा है। जिस चन्द्रमा की श्वेत किरणें, सूखे हुये जल वाले (काले) कीचड़ में दूध की धराओं के समान, अन्धकार के मध्य में गिर रही हैं।

विशेष –

(1) कामिनीगण्डपाण्डुः में सादृश्यवाचक का लोप होने से लुप्तोपमा अलंकार है। क्षीरधारा इव में भो उपमा अलंकार है।

(2) ग्रहगण–परिवारः – तारागण रूपी परिवार वाला, यहां रूपक अलंकार है।

(3) इस पद्य में मालिनी छन्द है, जिसका लक्षण है–
'न–न–म–य–य–युतेयं मालिनी भोगिलोकैः'।

18. राजमार्गो हि शून्योऽयं रक्षिणः संचरन्ति च।
वंचना परिहर्त्तव्या बहुदोषा हि शर्वरी।।58।।

अन्वय – हि अयम्, राजमार्गः, शून्यः, रक्षिणः च संचरन्ति, वंचना परिहर्त्तव्या, हि शर्वरी बहुदोषा।।58।।

कठिन–शब्दार्थ – राजमार्गः – प्रमुख रास्ता। रक्षिणः – सिपाही लोग। संचरन्ति – गस्त लगा रहे हैं, पहरा दे रहे हैं। वचना – चोरी रूपी ठगाई को। परिहर्त्तव्या – बचाना है। शर्वरी – रात। बहुदोषा – बहुत प्रकार के दोषों से भरी होती है।

प्रसंग – वसन्तसेना के चले जाने के बाद चारुदत्त व विदूषक मैत्रेय दोनों घर शीघ्र चलने के लिए तत्परता दिखा रहे हैं। क्योकि रात्रि का समय है, सडकें यातायात से रहित हो गई हैं।

व्याख्या – निश्चित रूप से, यह राजमार्ग आवागमन से रहित है अर्थात् शून्य हो गया है। राजमार्ग पर राजपुरूष (सिपाही) गस्त लगा रहे हैं। (वसन्तसेना के स्वर्णाभ्षणों की चोरी रूपी) ठगाई को बचाना है। क्योंकि रात्रि बहुत दोषों से परिपूर्ण होती है। अर्थात् रात में ही अनेक अपराध होते हैं।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में काव्यलिंग तथा अर्थान्तरन्यास की अंगांगिभावेन स्थिति होने से संकर अलंकार है।

(2) इसमें पथ्यावक्त्रा छन्द है।

द्वितीय अंक

19. न गणयति पराभवं कुतश्चिद्
हरति ददाति च नित्यमर्थजातम्।
नृपतिरिव निकाममापदर्शी
विभववता समुपास्यते जनेन।।7।।

अन्वय – (द्यूतं कर्तृ) कुतश्चित् (अपि) पराभवम् न गणयति, नित्यम् अर्थजातम् हरति, ददाति च। विभववता (अपि) जनेन निकामम् आयदर्शी राजा इव समुपास्यते।।7।।

कठिन–शब्दार्थ – कुतश्चित् – किसी से। पराभवम् – पराजय अथवा अपमान को। गणयति – गिनता है, मानता है। अर्थजातम् – धन समुदाय। हरति – ले लेता है। विभववता – धनवान्। निकामम् – प्रचुर। आयदर्शी – धन लाभ दिखलाने वाले। समुपास्यते – सेवित होता है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के द्वितीय अंक से अवतरित है। इस अंक में नाटककार ने जुआ खेलने व जुआरियों के मध्य होने वाले कलह का यथार्थ चित्रण किया है। प्रस्तुत पद्य में दर्दुरक द्यूत को राजा के समान बतलाता हुआ कह रहा हैः–

व्याख्या – (यह जुआ) किसी से भो (होने वाले) अपमान की परवाह नहीं करता है अर्थात् जुआरी कभो भो पराजय अथवा अपमान की परवाह नहीं करता है। प्रतिदिन जुए में बहुत धन ले लेता है तथा दे देता है अर्थात् जुए में हार–जीत चलती रहती है। धनवान् व्यक्ति के द्वारा भो नित्य प्रचुर आय दिखने वाले राजा के समान सेवित होता है।

विशेष –

(1) दर्दुरक ने द्यूत को राजा के तुल्य माना है। जैसे एक राजा किसी से हार नहीं मानता है, बार–बार युद्ध करता रहता है। ऐसी ही स्थिति द्यूत में होती है। राजा किसी पर रुष्ट होकर उसका सब कुछ ले लेता है। तथा प्रसन्न होने पर उसे बहुत कुछ दे देता है। उसी प्रकार द्यूत भो कभो कंगाल बना देता है तो कभो मालामाल बना देता है। जो राजा धन लाभ दिलाने वाला होता है, उसकी सेवा में धनी भो और अधिक धन प्राप्ति की इच्छा से लगे रहते हैं उसी प्रकार लोग जुए में भो लगे रहते हैं।

(2) प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार तथा पुष्पिताग्रा छन्द है।

20. अयं पटः सूत्र–दरिद्रतां गतो
ह्ययं पटश्छिद्रशतैरलङ्कृतः।

अयं पटः प्रावरितुं न शक्यते
ह्ययं पटः संवृत एव शोभते।।10।।

अन्वय – अयम् पटः सूत्रा दरिद्रताम् गतः, अयम् पटः छिद्रशतैः अलंकृतः, अयम् पटः प्रावरितुम् न शक्यते, अयम् पटः संवृतः एव शोभते।

कठिन–शब्दार्थ – पटः – वस्त्र, कपड़ा। सूत्र दरिद्रताम् – सूतों की जीर्णता को। गतः – प्राप्त हो चुका है। छिद्रशतैः – सैकड़ों छेदों से। प्रावरितुम् – शरीर ढकने के लिये। संवृतः – लपेटा हुआ। शोभते – अच्छा लगता है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के द्वितीय अंक से अवतरित है। प्रस्तुत पद्य में दर्दुरक ने अपने उत्तरीय वस्त्र की स्थिति का वर्णन किया है। वह पुराने द्यूत–क्रीडाध्यक्ष माथुर को सामने से आता देखकर अपने को उससे छिपाना चाहता है। वह वस्त्र से अपने शरीर को ढकने का प्रयास करता है। परन्तु उस वस्त्र की स्थिति बड़ी दयनीय है:–

व्याख्या – यह कपड़ा (मेरा दुपट्टा) जीण–शीर्ण धगों वाला हो चुका है। यह कपड़ा सैकड़ों छिद्रों से युक्त है। यह कपड़ा (शरीर) ढकने में समर्थ नहीं है। यह कपड़ा निश्चित रूप से लपेटा हुआ (घरी किया हुआ ही) अच्छा लगता है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में उत्तरीय वस्त्र का यथार्थ चित्रण किया गया है।

(2) इसमे वंशस्थ छन्द है।

21. **यः स्तब्धं दिवसान्तमानतशिरा नास्ते समुल्लम्बितो**
यस्योद्घर्षणलोष्टकैरपि सदा पृष्ठे न जातः किणः।
यस्यैतच्च न कुक्कुरैरहरहर्जंघान्तरं चर्व्यते
तस्यात्यायतकोमलस्य सततं द्यूत–प्रसंगेन किम्।।12।।

अन्वय – यः (अहम् इव) समुल्लम्बितः, आनतशिराः (सन्) दिवसान्तम् स्तब्धम् न आस्ते। यस्य पृष्ठे उद्घर्षण लोष्ठकैः अपि किणः सदा न जातः, यस्य च एतत् जंघान्तरम्, कुक्कुरैः अहरहः न चर्व्यते, अत्यायत कोमलस्य तस्य सततम् द्यूतप्रसंगे न किम्।।12।।

कठिन–शब्दार्थ – समुल्लम्बितः – ऊपर लटका हुआ। आनतशिरा – शिर को नीचे झुकाये हुये। दिवसान्तम् – सायंकाल तक। स्तब्धम् – निश्चित रूप से। पृष्ठे – पीठ पर। उद्घर्षणलोष्टकैः – नुकीले ढेलों से। किणः – चिन्ह। जंघान्तरम् – जांघों के भोतरी भाग को। कुक्कुरैः – कुत्ते। अहरहः – प्रतिदिन। चर्व्यते – चबाते हैं। अत्यायतकोमलस्य – बहुत अधिक कोमल।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के द्वितीय अंक से अवतरित है। इसमें द्यूत अध्यक्ष माथुर द्वारा संवाहक को परेशान करते देखकर दर्दुरक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता हुआ कह रहा है–

व्याख्या – (मेरे समान) जो मनुष्य लटका हुआ नीचे शिरवाला होते हुये सायंकाल तक अर्थात् दिनभर निश्चित रूप से नहीं रह सकता है। जिसकी पीठ पर सदैव नुकीले ढेलों (पर घसीटने) से चिन्ह–घट्टे नहीं पड़े हैं। तथा (हारकर या जीतकर भागते समय) जिसकी जांघों के मांस को प्रतिदिन कुत्ते नहीं चबाते हैं– ऐसे अत्यन्त कोमल शरीर वाले व्यक्ति को प्रतिदिन जुआ खेलने से क्या लाभ? दर्दुरक के कहने का भाव यह है कि मेरे समान जो उक्त परिस्थितियों को सहन कर सकता है उसी को जुआ खेलना चाहिए न कि सरल व कोमल शरीर वाले पुरूष को।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

22. उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या
संकेतके चिरयति प्रवरो विनोदः।
संस्थापना प्रियतमा विरहातुराणां
रक्तस्य रागपरिवृद्धिकरः प्रमोदः।।3।।

अन्वय – उत्कण्ठितस्य, हृदयानुगुणा, वयस्या संकेतके चिरयति (सति) प्रवरः विनोदः विरहातुराणाम् प्रियतमा संस्थापना रक्तस्य रागपरिवृद्धकरः प्रमोदः (अस्ति) ।।3।।

कठिन–शब्दार्थ – उत्कण्ठितस्य – वियोग से विकल व्यक्ति की। हृदयानुगुणा – हृदय से चाही गई। वयस्या – प्रिय सखी है। संकेतके – संकेत करने वाले के। चिरयति सति – देर करने पर। प्रवरः – सबसे अच्छा। विरहातुराणाम् – प्रेयसी के वियोग से व्याकुल व्यक्तियों की। संस्थापना – सहानुभ्ति दिखाने वाली है। रक्तस्य – प्रेमी व्यक्ति के। रागपरिवृद्धकरः – परस्पर प्रेम को बढ़ाने वाला। प्रमोदः – मनोरंजन का साध्न है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक 'मृच्छकटिकम्' के तृतीय अंक से अवतरित है। चारुदत्त व विदूषक रेभिल का संगीत सुनकर लौटे है। मार्ग में चारुदत्त वीणा नामक वाद्य की प्रशंसा करते हुये कह रहा है–

व्याख्या – (वीणा नामक वाद्य) विरह से व्याकुल व्यक्ति की मनपसन्द साथी है, किसो निश्चित स्थान एवं समय पर मिलने का संकेत करने वाले प्रेमी के विलम्ब करने पर सबसे अच्छा मनोरंजन का साधन है। प्रियतमा के (मरणादिजन्य) वियोग से पीडित व्यक्ति के प्रति सबसे अधिक सहानुभ्ति दिखाने वाली है। प्रेमी के प्रेम को बढाने वाला प्रमोद का साध्न है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में एक वीणा का अनेक रूपों से उल्लेख है, अतः उल्लेख अलंकार है। विनोद एवं प्रमोद रूपी कार्यों का वीणा रूपी कारण के साथ अभद प्रतिपादित होने से हेतु अलंकार है।

(2) इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

23. रक्तञ्च नाम मथुरञ्च समं स्फुटञ्च
भावान्वितञ्च ललितञ्च मनोहरञ्च।
किं वा प्रशस्तवचनैर्बहुभिर्मदुक्तै
रन्तर्हिता यदि भवेद्वनितेति मन्ये।।4।।

अन्वय – (गीतम्) नाम रक्तम्, च मधुरम् च समम् च स्फुटम् भावान्वितम् च, ललितम् च, मनोहर च (आसीत्) वा मदुक्तैः बहुभिः प्रशस्तवचनैः किम्? यदि वनिता अन्तर्हिता भवेत् इति मन्ये।।4।।

कठिन–शब्दार्थ – रक्तम् – रागपूर्ण। मधुरम् – मीठा। भावान्वितम् – भारवों से युक्त। ललितम् – ललित, सुन्दर। मनोहरम् – मन को अच्छा लगने वाला। मदुक्तैः – मुझ चारुदत्त द्वारा कहे हुये। प्रशस्तवचनैः – प्रशंसायुक्त वचनों से। किम् – क्या लाभ। वनिता – स्त्री। अन्तर्हिता – भोतर छिपी हुई है।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के तृतीय अंक से अवतरित है। इसमें चारुदत्त द्वारा रेभिल के गायन की अनेक प्रकार से प्रशंसा की गई है।

व्याख्या – (वह रेभिल का गायन) रागों से पूर्ण (सुनने में) मीठा लगने वाला, स्वर और लय की समता वाला, स्पष्ट, भावपूर्ण, ललित तथा मन को आकर्षित करने वाला था। अथवा मेरे द्वारा कहे गये बहुत से प्रंशसायुक्त वचनों से क्या लाभ। मुझे तो एसा लगता है कि (उस रेभिल के भोतर) मानों कोई स्त्री छिपी हुई है। चारुदत्त के कहने का भाव यह है कि वह रेभिल बाहर से पुरुष प्रतीत होता है परन्तु उसके गाने से वह स्त्री प्रतीत हो रहा था।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में संगीतशास्त्र के अनेक शब्द प्रयुक्त हैं जैसे –रक्तम्,मधुरम्,स्फुटम्,। नारद शिक्षा के अनुसार वाद्य स्वरों का पूर्णतया मेल होना 'रक्त' कहा जाता है। 'मधुर'–स्वर तथा भाव के अनुकूल ललित पदों तथा वर्णों का प्रयोग 'मधुर' कहलाता है। 'स्फुटम्' – इसका अर्थ है व्याकरण सम्बंधी शुद्धता।

(2) श्लोक में 'मन्ये' तथा 'यदि' का प्रयोग किया गया है, अतः 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है।

(3) इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

24 असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाश
मस्तं व्रजत्युन्नत – कोटिरिन्दुः।
जलावगाढस्य वनद्विपस्य
तीक्ष्णं विषाणाग्रमिवावशिष्टम् ।।3/6।।

अन्वय – हि जलावगाढस्य, वनद्विपस्य, अवशिष्टम्, तीक्ष्णम्, विषाणाग्रम्, इव उन्नतकोटिः असौ इन्दु तिमिरावकाशम् दत्त्वा अस्तम् व्रजति ।।6।।

कठिन शब्दार्थ – जलावगाढस्य–पानी में डूबे हुए। वनद्विपस्य–जंगली हाथी के। अवशिष्टम्–बचे हुये। विषाणाग्रम्–दांत के अग्रभाग। उन्नतकोटिः–उठे हुये(टेढे) किनारों वाला। तिमिरावकाशम्–अन्धकार को स्थान। अस्तम्–अस्ताचल की ओर। याति–जा रहा है।

प्रसंग – यह श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के तृतीय अंक से उद्धृत है। इसमें चन्द्रमा के अस्त होने का वर्णन किया गया है–

व्याख्या – निश्चय ही पानी में डूबे हुये जंगली हाथी के (पानी में डूबने से) बचे हुये तीखे दाँत के अग्रभाग (किनारे) के समान उठे हुए (उन्नत) किनारों वाला यह चन्द्रमा अन्धकार को अवकाश देता हुआ सा अस्त होने जा रहा है। अर्थात् रात्रि समाप्ति की ओर अग्रसर है।

विशेष –

(1) विषाणाग्रम् – विषाण का अर्थ सामान्यतः श्रृंग (सींग) होता है परन्तु यहाँ हाथी के प्रसंग में 'दाँत' अर्थ समझना सार्थक है।

(2) श्लोक में 'इव' का प्रयोग हुआ है, अतः उपमा अलंकार है।

(3) इसमें उपजाति छन्द है।

25. इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी
ललाटदेशादुपसर्पतीव माम् ।
अदृश्य रुपा चपला जरेव या
मनुष्यसत्त्वं परिभूय वर्द्धते ।।8।।

अन्वय – हि, इयम्, निद्रा, ललाटदेशात्, नयनावलम्बिनी (सती) माम् उपसर्पति, इव, चपला, अदृश्यरूपा या जरा इव, मनुष्यसत्वम् परिभ्य वर्द्धते ।।8।।

कठिन–शब्दार्थ – नयनावलम्बिनी – नेत्रों पर छा जाने वाली। उपसर्पति इव – समीप में आ सी रही है। अदृश्यरूपा – न दिखाई देने वाली। जरा इव – वृद्धावस्था के समान। मनुष्यसत्त्वम् – मनुष्य के बल को। परिभ्य – तिरस्कृत करके। वर्द्धते – वृद्धि को प्राप्त होती है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक 'मृच्छकटिकम्' के तृतीय अंक से उद्धृत है। इसमें निद्रा आने का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

व्याख्या – क्योंकि यह नींद ललाट प्रदेश से नीचे आंखों पर छा जाने वाली होती हुई मुझ चारुदत्त के समीप सी आ रही है। चंचल, न दिखाई देने वाली वृावस्था के समान जो नींद मनुष्य की शक्ति को तिरस्कृत करके वृद्धि को प्राप्त होती है। अर्थात् जब नींद आती है तो उसके सामने किसी की शक्ति नहीं चलती है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में निद्रा की अपराजेय शक्ति का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

(2) ललाट से नेत्रों तक नीचे आने की कल्पना के साथ समीपा–गमन की उत्प्रेक्षा की गई है। अतः श्लोक के पूवार्द्ध में 'क्रिया के साथ इव' होने से 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है। श्लोक के उत्तरार्द्ध में सादृश्यार्थक 'इव' होने से 'उपमा' अलंकार है। इस प्रकार उत्प्रेक्षा व उपमा की संसृष्टि है।

(3) इसमें वंशस्थ छन्द है।

26. कामं नीचमिदं वदन्तु पुरुषाः स्वप्ने च यद्वर्द्धते,
विश्वस्तेषु च वचनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत्।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः,
मार्गो ह्येष नरेन्द्र–सौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना।।11।।

अन्वय – स्वप्ने, विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवः चौर्यम् च यत् वर्द्धते, इदम् पुरुषाः, कामम् नीचम् वदन्तु, हि तत् शौर्यम् न (अस्ति) स्वाधीना वचनीयता अपि हि वरम्, बद्धः सेवाञ्जलिः न (वरम्), हि एषः मार्गः पूर्वम् द्रौणिना, नरेन्द्रसौप्तिकवधे कृतः।।11।।

कठिन–शब्दार्थ – विश्वस्तेषु – विश्वास किये हुये लोगो में। वचना – परिभवः – ठगाई के द्वारा अपमान। कामम् – इच्छानुसार। नीचम् – निकृष्ट। वचनीयता – चोरी आदि की निन्दा। बद्धः – बांधी गई। सेवाजलिः – धनिकों की सेवा के लिए अंजलिपुट। द्रौणिना – द्रोणपुत्रा अश्वत्थामा ने। नरेन्द्र सौप्तिकवधे – राजा (युधिष्ठिर) के सोये हुये पुत्रों के वध के लिए।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के तृतीय अंक से लिया गया है। शर्विलक रात्रि के समय चारुदत्त के घर में चोरी करने के उद्देश्य से सेंध लगाता है। वह मन ही मन अपने इस कृत्य के विषय में विचार कर रहा है। उसकी दृष्टि में धनिकों के सामने हाथ फैलाने की अपेक्षा चोरी करना ठीक है क्योंकि यह स्वयं के अधीन किया जाने वाला कार्य है।

व्याख्या – सोये हुये और विश्वस्त लोगो में ठगना रूपी अपमान तथा चोरी जो अधिक होती है, इसे सज्जन लोग भले ही, चाहे जितना नीच कम कहें, क्योंकि यह चोरी करना कोई शूरवीर का कार्य नहीं है। तथापि अपने अधीन रहने वाली इस चोरी करने की निन्दा भो अच्छी है परन्तु धनिकों के सामने नौकरी के लिए हाथ जोड़कर खड़ा होना अच्छा नहीं है।

मैं जो कर रहा हूं यह रास्ता पहले द्रोणाचार्य के पुत्रा अश्वत्थामा ने राजा युधिष्ठिर के सोते हुये सैनिकों अथवा सन्तानों के वध के लिए बनाया था। (वह मन में विचार करता है कि मुझ ब्राह्मण के लिए भो चोरी करना निन्दनीय नहीं है।)

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में शर्विलक का आशय यह है कि जब अश्वत्थामा जैसे ब्राह्मण ने चोरी से वध जैसा दुष्कम कर दिया था तो मुझ ब्राह्मण का भो चोरी करना निन्दनीय नहीं है। धनवानों की सेवा करने की अपेक्षा चोरी करना ठीक है।

(2) प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुप्रशंसा अलंकार है, साथ ही कारण से कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार भो है।

(3) इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

27. पद्मव्याकोशं भास्करं बालचन्द्रं,
वापी, विस्तीर्ण स्वस्तिकं पूर्णकुम्भम्।
तत् कस्मिन् देशे दर्शयाम्यात्मशिल्पं,
दृष्ट्वाश्वो यं यद्विस्मयं यान्ति पौराः।।13।।

अन्वय – पद्मव्याकोशम् भास्करम् बालचन्द्रम्, वापी विस्तीर्णम् स्वस्तिकम्, पूर्णकुम्भम् (एषु सप्त विधेषु सतनु) तत्, कस्मिन् देशे आत्मशिल्पम् दर्शयामि, यत् यम् दृष्ट्वा, श्वः पौराः विस्मयम् यान्ति।।13।।

कठिन–शब्दार्थ – पद्मव्याकोशं – विकसित कमल के समान। बालचन्द्रम् – द्वितीया तिथि के बाल चन्द्रमा के समान। वापी – बावडी। पूर्णकुंभम् – पूर्ण घट के समान। आत्मशिल्पम् – अपनी सेंध लगाने की कला को। पौराः – नगरवासी। विस्मयम् – आश्चर्य को। यान्ति – प्राप्त करेंगे।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में सन्धि (सेंध) के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डाला गया है:–

व्याख्या – खिला हुआ कमल, सूर्य, बालचन्द्र अर्थात् द्वितीया का चन्द्रमा, बावड़ी, विशाल, स्वस्तिक चिह्न वाली, पूर्ण घट के समान ये सात प्रकार की सेंध होती हैं। तो किस स्थान पर अपनी कला का प्रदर्शन करूं, जिससे प्रातःकाल उसको देखकर नगरवासी आश्चर्य करने लग जायें।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में सात प्रकार की सेंधों का उल्लेख किया गया है।

(2) इसमें 'वैश्वदेवी' छन्द है।

28. शिखा प्रदीपस्य सुवर्णपिञ्जरा
महीतले सन्धिमुखेन निर्गता।
विभाति पर्यन्ततमः समावृता
सुवर्णरेखेव कषे निवेशिता ।।17।।

अन्वय – सुवर्णपिञ्जरा, सन्धिमुखेन, महीतले, निर्गता, पर्यन्ततमः समावृता, प्रदीपस्यशिखा, कषे, निवेशिता, रेखा इव विभाति।।17।।

कठिन–शब्दार्थ – सुवर्णपिञ्जरा – सोने के समान पिंगल वर्ण वाली । निर्गता – निकली हुई। पर्यन्ततमसमावृता – चारों ओर से अंधकार से घिरी हुई, प्रदीपस्य – दीपक की । कषे – कसौटी पर। निवेशिता – खींची गई। सुवर्णस्य – सोने की । विभाति – शोभित हो रही है।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य महाकवि शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण के तृतीय अंक से उद्धृत है। शर्विलक रात्रि के समय चारुदत्त के घर में सेंध लगा रहा है। सेंध में से घर में जलने वाले दीपक की रोशनी दिखाई दे रही है, उसकी तुलना सोने की रेखा से की गई है।

व्याख्या – सोने के तुल्य पिंगल वर्ण वाली सेंध के मार्ग से पृथ्वी पर निकलने वाली, चारों ओर
अन्धकार से घिरी हुई दीपक की रोशनी, कसौटी पर खींची गई सोने की रेखा के समान सुशोभित हो रही है।

विशेष

(1) पद्य का भाव यह है कि घर के भोतर जलने वाले दीपक की जो रोशनी सेंध के माध्यम से बाहर पृथ्वी पर पतली रेखा के समान दिखाई दे रही है, उसकी वैसी ही शोभा हो रही है जैसे कसौटी पर खींची गई सोने की रेखा की होती है।

(2) पद्य में शिखा का रेखा साम्य प्रदर्शित किया गया है। अतः उपमा अलंकार है।

(3) इसमें वंशस्थ छन्द है।

29. निःश्वासोऽस्य न शंकितः सुविशदः तुल्यान्तरं वर्तते,
दृष्टिर्गाढनिमीलिता न विकला नाभ्यन्तरे चञ्चला।

गात्रां स्रस्तशरीरसन्धिशिथिलं शयाप्रमाणाधिकं,
दीपञ्चापि न मर्षयेदभिमुखं स्याल्लक्ष्यसुप्तं यदि।।18।।

अन्वय – अस्य निःश्वासः, शंकितः न, (अपितु) सुविशदः तुल्यान्तरम् वर्तते, दृष्टिः गाढनिमीलिता (अस्ति) विकला न अभ्यन्तरे चंचला, न वर्तते, गात्राम्, स्त्रास्तशरीरसन्धि शिथिलं, शय्याप्रमाणाधिकं च (वर्तते), यदि लक्ष्य सुप्तम् स्यात् तदा अभिमुखम् दीपम् च अपि न मर्षयेत्।।18।।

कठिन–शब्दार्थ – निःश्वासः – सांस लेना। शंकितः – शंका युक्त। सुविशदः – साफ, साफ। तुल्यान्तरम् – समान अन्तर वाली। गाढ़निमीलिता – अच्छी प्रकार से बन्द है। विकला – व्याकुल। गात्राम् – शरीर। स्त्रस्तशरीरसन्धिशिथिलम् – शरीर की सन्धियों (जोड़ों) के ढीले होने से शिथिल। शय्याप्रमाणधिकम् – पलंग की लम्बाई–चौडाई से अधिक है। लक्ष्यसुप्तम् – बहाने से सोया हुआ। मर्षयेत् – सहन कर पाता।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक 'मृच्छकटिकम्' के तृतीय अंक से अवतरित है। सेंध लगाकर शर्विलक घर के भोतर प्रविष्ट हो जाता है। वहाँ दो व्यक्तियों को शयन करते हुये देखता है। वह दोनों की परीक्षा लेता है कि क्या वे वास्तव में सो रहे हैं या सोन का बहाना बनाकर सो रहे हैं। वह अन्त में वह इसी निर्णय पर पहुंचता है कि दोनों सो रहे हैं। इस सन्दभ में जो उसने तर्क दिये हैं वे इस श्लोक में प्रस्तुत हैंः–

व्याख्या – दोनों व्यक्तियों का सांस लेना शंका युक्त नहीं है, साफ–साफ है तथा इनमे समान अन्तर है समान अन्तराल से सांस ले रहे हैं। आंखे अच्छी प्रकार से बन्द हैं, न तो व्याकुल हैं और न भोतर चंचल हैं। शरीर के जोड़ों के ढीले हो जाने से शिथिल और शया (पलंग) के परिणाम की अपेक्षा
अधिक अर्थात् पलंग से बाहर शरीर है तथा यदि बहाना बनाकर सोये हुये होते तो सामने जलते हुय दीपक को भो सहन नहीं कर पाते। अतः वास्तव में ही ये सोये हुये हैं।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में सोते हुये व्यक्ति की स्वाभाविक स्थिति का अतीत सुन्दर एवं यथार्थ वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है।

(2) इसमें शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

30. मार्जारः क्रमणे, मृगः प्रसरणे, श्येनो गृहालुञ्चने,
सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्य तुलने श्वा, सर्पणे पन्नगः।
माया रूप–शरीर वेश–रचने, वाग्–देश–भाषान्तरे,
दीपो रात्रिषु, संकटेषु डुडुभो, वाजी स्थले, नौर्जले।।20।।

अन्वय – (यः अहम्) क्रमणे मार्जारः, प्रसरणे मृगः, ग्रहालुञ्चने श्येनः, सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलन, श्वा, सर्पणे पन्नगः, रूपशरीरवेशरचने मायाः, देशभाषान्तरे वाक्, रात्रिषु दीपः, संकटेषु, डुडुभः, स्थले वाजी, जले नौ (अस्मि)।।20।।

कठिन–शब्दार्थ – क्रमणे – उछलने में। मार्जारः – बिलाव। प्रसरणे – शीघ्र गमन करने में। मृगः – हिरण। ग्रहालुञ्चने – पकडने तथा झपटने में। श्येनः – बाज। सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने – सोये हुये अथवा न सोये (जागते हुये) मनुष्य की शक्ति की जानकारी करने में। श्वा – कुत्ता। सर्पणे – सरकने में। पन्नगः – सर्प। रूप–शरीर–वेशरचने – आकार, शरीर और वेशभ्षा, इनको बदलने में। माया – इन्द्रजाल। देशभाषान्तरे – विभिन्न देशों की भाषा बोलने में। वाक् – सरस्वती। संकटेषु – संकट के समय में। डुडुभः – भडिया। स्थले – पृथ्वी पर। वाजी – घोडा। नौः – नाव।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में शर्विलक अपने गुणों एवं शक्ति का वर्णन कर रहा है। जैसे ही वह विदूषक के हाथ से सुवर्ण भाण्ड को लेता है तथा बाहर निकलने को तैयार होता है अचानक पांवों की आहट सुनाई देती है। वह पहरेदार की आशंका करता है तथा कुछ

समय चुपचाप खड़ा रहता है। फिर कहता है कि उसे पहरेदार से क्या भय है? क्योंकि उसमें ये सब विशेषतायें हैं।

व्याख्या – (जो मैं) उछालने म बिलाव, शीघ्र दौडने में हिरन, झपटकर पकडने तथा छीनने में बाज, सोते हुये तथा जागते हुये, दोनों प्रकार के पुरुषों की शक्ति का पता लगाने में कुत्ता, सरकने में सर्प, विभिन्न प्रकार के आकार शरीर और वेशभ्षा बनाने में, इन्द्रजाल–विद्या, भिन्न–भिन्न स्थानों की भाषा बोलने में सरस्वती, रात्रियों में दीपक, संकटों में भडिया, जमीन पर घोडा तथा पानी में नौका हूँ।

विशेष –

(1) शर्विलक ने इस पद्य में अपने सामर्थ्य का वर्णन किया है। जहाँ जैसा बन जाने पर काम हो सकता है वहाँ वैसा बनकर काम चलाना उसके लिए अति सरल है।

(2) प्रस्तुत श्लोक में एक शर्विलक में ही तादात्म्य से मार्जार आदि का आरोप होने से मालारूपक अलंकार है।

(3) इसमें शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

31. उपरितलनिपातितेष्टकोऽयं
शिरसि तनुर्विपुलश्च मध्यदेशे।
असदृशजन सम्प्रयोगभीरो
र्ह्रदयमिव स्फुटितं महागृहस्य ।।22।।

अन्वय – उपरितल–निपातितेष्टकः, शिरसि तनुः, मध्यप्रदेशे च विपुलः अयम् (सन्धिः) असदृशजनसम्प्रयोगभोरोः, महागृहस्य, स्फुटितम् ह्रदयम् इव (दृश्यते) ।।

कठिन–शब्दार्थ – उपरितल–निपातितेष्टकः – उपर से हटा दी गई है ईटें जिससे ऐसी। तनुः – छोटी। विपुलः – चौडी। असदृशजन–सम्प्रयोगभोरोः – अनुचित व्यक्ति चोर आदि के आ जाने से भयभोत। महागृहस्य – विशाल भवन के। स्फुटितम् – फटे हुये।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य मृच्छकटिकम् के तृतीय अंक से अवतरित है। प्रातःकाल विदूषक अपने मित्र को जानकारी देता है कि हे मित्र चारुदत्त! उठिये। हम लोगों के घर में चोर सेंध लगाकर निकल गया। चारुदत्त उस देखकर उसकी प्रशंसा करते हुये कहता है–

व्याख्या – जिसमें ऊपरी ओर ईटें हटाई गयी हैं, जो ऊपर की ओर छोटी तथा बीच में चौड़ी (अर्थात् घड़े के मुख तथा मध्यभाग के समान) यह सेंध, चोर आदि अनुचित व्यक्ति के प्रवेश करने के कारण डरे हुये विशाल भवन के फटे हुये ह्रदय के समान दिखाई पड़ रही है।

विशेष –

(1) इसमें सेंध के आकार–प्रकार का वर्णन किया गया है।

(2) सेंध फटने की तुलना किसी महान् व्यक्ति के ह्रदय के पफटने से की गई है।

(3) यहाँ अचेतन भवन में फोड़ी गई सेंध में विदीर्णवक्ष स्थलत्व की संभावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(4) इसमें पुष्पिताग्रा छन्द है।

32. कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तुलयिष्यति।
शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता।।24।।

अन्वय – कः भ्तार्थम्, श्रद्धास्यति, सर्वःमाम् तुलयिष्यति, हि अस्मिन् लोके निष्प्रतापा दरिद्रता शंकनीया (भवति) ।।24।।

कठिन–शब्दार्थ – भ्तार्थम् – सत्य बात पर। श्रद्धास्यति – विश्वास करेगा। तुलयिष्यति – सन्देह करेंगे। निष्प्रतापा – प्रताप शून्य। शंकनीया – शंका करने योग्य।

प्रसंग – यह प्रकरण के तृतीय अंक से अवतरित है। जब विदूषक अपने मित्र चारुदत्त को बतलाता है कि चोर सुवर्ण भाण्ड को चुराकर ले गया है। तब उसे प्रसन्नता होती है कि वह उसक घर से खाली हाथ नहीं गया। परन्तु जब उसे पता चलता है कि वह धरोहर थी, वह मूर्च्छित हो जाता है। वह अपने मित्र से कहता है–

व्याख्या – कौन बीती हुई सत्य बात पर विश्वास करेगा। सभो मुझ पर सन्देह करेंगे, क्योंकि इस संसार में प्रताप शून्य निर्धनता सन्देह करने योग्य होती है, अर्थात् दरिद्र पर सभो लोग सन्देह करने लग जाते हैं।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में उत्तरार्द्ध के सामान्य कथन से पूवार्द्ध के विशेष कथन का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

(2) इसमें अनुष्टुप् छन्द है।

33. विभवानुगता भार्या सुखदुःखसुहृद् भवान्।
सत्यञ्च न परिभ्रष्टं यद्दरिद्रेषु दुर्लभम्।।28।।

अन्वय – (यस्य मम) स्त्री, विभवानुगता, भवान् सुखदुःखसुहृत्, सत्यं च न परिभष्टम् यत् दरिद्रेषु दुर्लभम्।।28।।

कठिन–शब्दार्थ – विभवानुगता – विभव के अनुसार निर्वाह करने वाली। सुखदुःखसुहृत – सुख और दुःख के मित्र। परिभष्टम् – नष्ट। दुर्लभम् – कष्ट से मिलने वाली।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के तृतीय अंक से अवतरित है। इसमें चारुदत्त अपने को दरिद्र नहीं मानते हुये कह रहा है–

व्याख्या – जिस मेरी पली सम्पत्ति के अनुसार चलने वाली है, तुम्हारे जैसे सुख और दुःख के साथी मित्र हैं तथा सत्य ने साथ नहीं छोड़ा है, ये तीनों वस्तुएँ दरिद्रों में दुर्लभ होती हैं। मेरे पास क्योंकि ये तीनो विद्यमान हैं अतः मैं निर्धन नहीं हूँ।

विशेष –

(1) हर स्थिति में निर्वाह कर लेने वाली पली, हर दशा में साथ निभाने वाला मित्र तथा सत्य वचन की रक्षा, ये तीनों चारुदत्त अपने पास समझ रहा है। अतः वह दरिद्र नहीं है।

(2) इसमें उल्लेख अलंकार तथा पथ्यावक्त्रा छन्द है।

चतुर्थ अंक

34. दत्त्वा निशाया वचनीयदोषं,
निद्राञ्च जित्त्वा नृपतेश्च रक्ष्यान्।
स एष सूर्योदयमन्दरश्मिः
क्षपाक्षयाच्चन्द्र इवास्मि जातः।।4/1।।

अन्वय – निशायाः वचनीयदोषं दत्त्वा, निद्राम् च, नृपतेः रक्ष्यान् च जित्त्वा, सः एषः (अहम्) क्षपाक्षयात् सूर्योदयमन्दरश्मिः चन्द्रः इव जातः अस्मि।।4/1।।

कठिन–शब्दार्थ – निशायाः – रात्रि के। वचनीयदोषम् – निन्दा के दोष को। रक्ष्यान् – राजपुरुषों को। क्षपाक्षयात् – रात्रि के बीत जाने पर। सूर्योदयमन्दरश्मिः – सूर्य के उदित हो जाने के कारण मन्द किरणों वाले। जातः अस्मि – हो गया हूँ।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण के चतुर्थ अंक से अवतरित है। इसमें शर्विलक ने अपनी तुलना सूर्योदय होने पर मन्द किरणों वाले चन्द्रमा से की है–

व्याख्या – रात्रि को निन्दा का दोष देकर अर्थात् चोरी आदि निन्दित कार्य रात्रि में सम्पन्न होते हैं – ऐसा दोष देकर (अपनी) नींद को तथा राजा के सिपाहियों को जीतकर अर्थात्

उनसे बचकर, यह मैं सूर्योदय होने के कारण मन्द किरणों वाले चन्द्रमा के समान (कान्तिविहीन) हो गया हूँ।

विशेष –

(1) वचनीयदोषम् – रात्रि ही सम्पूर्ण अपराधों को कराती है, इस प्रकार की निन्दा को।

(2) प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

35. यः कश्चित्त्वरितगति र्निरीक्षते मां,
सम्भ्रान्तं द्रुतमुपसर्पति स्थितं वा।
तं सर्व तुलयति दूषितोऽन्तरात्मा,
स्वैर्दोषैर्भवति हि शंकितो मनुष्यः।।4/2।।

अन्वय – यः कश्चित् त्वरितगतिः (सन्) सम्भान्तः माम् निरीक्षते, वा स्थितम् (माम्) द्रुतम् उपसर्पति, दूषितः अन्तरात्मा तम् सर्वम्, तुलयति हि मनुष्यः स्वैः दोषैः शंकितः भवति।।

कठिन–शब्दार्थ – त्वरितगतिः – तेजी से चलने वाला । सम्भान्तम् – घबराये हुये। निरीक्षते – देखता हूँ । स्थितम् – छिपकर खड़े हुये। उपसर्पति – समीप आ जाता है। तुलयति – सन्देह की दृष्टि से तोलता है। शंकितः भवति – शंका ग्रस्त होता है।

प्रसंग – यह श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से अवतरित है। इसमें शर्विलक की मनःस्थिति का चित्रण किया गया है–

व्याख्या – जो कोई भो तीव्र गति से चलता हुआ (चोरी करने के कारण) घबराय हुये मुझे (शर्विलक को) देखता है, अथवा (छिपकर) खड़े हुये मेरे पास शीघ्रता से आता है, दोषी मेरा मन उन सबको शंकाग्रस्त होकर विचार करता है, क्योंकि मनुष्य अपने ही दोषों (अपराधों) के कारण शंकालु हो जाता है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है। क्योंकि यहाँ समीप में आने वाले पुरुषों आदि के द्वारा देखे जाने के कारण उत्पन्न हुई, शर्विलक की दशा विशेष का समर्थन चतुर्थ पाद के द्वारा किया गया है।

(2) प्रस्तुत श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है।

36. मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती,
रतिरिव मूर्तिमती विभाति येयम्।
मम हृदयमनङ्गवह्निनप्तं,
भृशमिव चन्दनशीतलं करोति।।4/4।।

अन्वय – या गुणैः मदनम् अपि विशेषयन्ती, मूर्तिमती, रतिः इव विभाति, (सा) इयम् अनंगवनितप्तम्, मम हृदयम् भशम् चन्दनशीतलम् इव करोति ।।4।।

कठिन–शब्दार्थ – मदनमपि – कामदेव को भो। विशेषयन्ती – जीतती हुई। मूर्तिमती – शरीरधरिणी। रतिः – कामदेव की पत्नी। विभाति – शोभित हो रही है। अनंगवनितप्तम् – कामरूपी अग्नि से सन्तप्त। भशम् – अत्यध्कि। चन्दनशीतलम् – चन्दन के समान शीतल।

प्रसंग – यह श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से अवतरित है। इसमें मदनिका को देखकर शर्विलक अपने विचार व्यक्त रहा हैः–

व्याख्या – जो (अपने सौन्दर्यादि) गुणों के द्वारा कामदेव को भो जीतती हुई (अर्थात् उससे भो अधिक सुन्दर) शरीर धरिणी रति के समान सुशोभित हो रही है। वही यह कामाग्नि से सन्तप्त मेरे हृदय को चन्दन के समान अत्यधिक शीतल कर रही है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक के पूवार्द्ध में मदनिका की मूर्तिमती रति के रूप में संभावना के कारण द्रव्योत्प्रेक्षा तथा बिना चन्दन के शीतल होने वाले हृदय में चन्दनशीतलता की संभावना के कारण गुणोत्प्रेक्षा अलंकार है।

(2) इस पद्य में पुष्पिताग्रा छन्द है।

37. नो मुष्णाम्यबलां विभूषणवतीं फुल्लामिवाहं लतां,
विप्रस्वं न हरामि काचनमयो यज्ञार्थमभ्युद्धृतम्।
धात्र्युत्संगगतं हरामि न तथा बालं धनार्थी क्वचित्,
कार्याकार्यविचारिणी मम मतिश्चौर्येऽपि नित्यं स्थिता।।14/6।।

अन्वय – धनार्थी अहम्, फुल्लाम् लताम् इव विभ्षणवतीम्, अबलाम् नो मुष्णामि, विप्रस्वम् अथो यज्ञार्थम् अभ्युद्धृतम् कांचनम् न हरामि, तथा क्वचित् धत्रयुत्संगगतम् बालम् न हरामि, चौर्ये अपि मम मतिः नित्यम् कार्याकार्यविचारिणी (एव) स्थिता।।6।।

कठिन–शब्दार्थ – धनार्थी – धन पाने का इच्छुक। फुल्लाम् – फुली हुई, फूलों के भार से युक्त। विभ्षणवतीम् – आभ्षणों से अलंकृत। मुष्णामि – चुराता हूँ। विप्रस्वम् – ब्राह्मण का धन। अभ्युद्धृतम् – सुरक्षित रखे गये। काचनम् – स्वर्णादि को। धात्र्युत्संगगतम् – धाय को गोद में स्थित। चौर्ये – चोरी में। कार्याकार्यविचारिणी – कतव्य तथा अकतव्य का विचार करने वाली। स्थिता – रहती ह।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से उद्धृत है। चारुदत्त के घर से सुवर्णभाण्ड की चोरी करके शर्विलक मदनिका के पास आ जाता है। चोरी करते समय भो वह कुछ बातें अपने ध्यान में रखता है, उनकी ओर इस श्लोक में संकेत किया गया है–

व्याख्या – धन का इच्छुक मैं फूलों से युक्त लता के समान आभ्षणों से सुसज्जित स्त्री को नहीं चुराता हूँ, उसके आभ्षण नहीं लूटता हूँ। ब्राह्मण के धन को तथा यज्ञादि कार्यों के लिए संचित स्वर्ण को नहीं चुराता हूँ। कहीं भो धय की गोद में स्थित बच्चे को नहीं चुराता हूँ अर्थात् उससे छीनकर नहीं ले जाता हूँ। चोरी में भो मेरी बुद्धि सदैव कतव्य तथा अकतव्य (उचित एवं अनुचित) का विचार करने वाली ही रहती है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में तत्कालीन चोरों की मर्यादाओं की ओर संकेत किया गया है।

(2) इस श्लोक से यह प्रतीत होता है कि शर्विलक ने यद्यपि चोरी तो की है परन्तु सोच समझकर की है। वह अपने किये गये कार्य से सन्तुष्ट है।

(3) इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

38. त्वत्स्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यं,
सद्वृत्तपूर्वपुरुषेऽपि कूले प्रसूतः।
रक्षामि मन्मथविपन्नगुणोऽपि मानं,
मित्रस्य मां व्यपदिशस्यपरञ्च यासि।।4/9।।

अन्वय – सद्वृत्तपूर्वपुरुषे कुले प्रसूतः अपि (अहम्) त्वतस्नेहबहृदयः हि अकार्यम् करोमि, मन्मथविपन्नगुणः अपि मानम् रक्षामि (किन्तु, त्वम्) माम् मित्राम् व्यपदिशसि च अपरम् च यासि।।9।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से अवतरित है। शर्विलक मदनिका से सुवर्ण भाण्ड की चोरी के वृतान्त को सुनाता है। चारुदत्त के घर से वह चुराया गया है, यह जानकर वह दुःखी होती है तथा उसके मन में यह भो आशंका होती है कि उसने किसी को मारा या घायल तो नहीं किया है। जब शर्विलक बतलाता है कि वह भयभोत तथा सोये हुये व्यक्ति पर कभो प्रहार नहीं करता ह। तब मदनिका चैन की सांस लेती है। इस प्रसंग में शर्विलक के मन में ईर्ष्याभाव उत्पन्न हो जाता है तथा वह कहता है–

व्याख्या – सदाचारी पूर्वजों के उच्चकुल (ब्राह्मण वंश) में जन्म लेने वाला भो मैं तुम्हारे प्रेम में आसक्त हृदय वाला होकर चोरी आदि अनुचित कार्य कर रहा हूँ। कामभाव के कारण गुणविहीन होता हुआ भो अपने गौरव की रक्षा करता हूँ। किन्तु तुम मुझे अपना मित्र कह रही हो तथा दूसरे मनुष्य (चारुदत्त) के पास भो जा रही हो।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में शर्विलक का स्वाभिमान व्यक्त हुआ है। वह मदनिका को डाटने लगता है। वह उसे कहता है कि तुम बाहरी प्रेम प्रकट करके मुझे मूर्ख बना रही हो। जब कि हृदय से तुम किसी अन्य पुरूष (चारुदत्त) से प्रेम करती हो। इसीलिये चारुदत्त के अप्रिय की संभावना से तुम मूर्च्छित हो गई तथा उसका अनिष्ट न जानकर 'अच्छा हुआ' कहकर प्रसन्नता व्यक्त कर रही हो।

(2) प्रस्तुत श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

39. एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो
र्विश्वासयन्ति पुरूषं न तु विश्वसन्ति।।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः श्मशान–सुमना इव वर्जनीयाः।।4/14।।

अन्वय – एताः, वित्तहेतोः हसन्ति च रुदन्ति, च पुरुषम् विश्वासयन्ति तु, न, विश्वसन्ति। तस्मात् कुलशीलसमन्वितेन नरेण श्मशानसुमना इव वेश्याः वर्जनीयाः।।14।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से उद्धृत है। प्रस्तुत श्लोक में शर्विलक ने अपने वेश्या सम्बन्धी विचारों को व्यक्त किया है–

व्याख्या – ये (वेश्यायें) धन के निमित्त ही (प्रेमी के प्रति) हंसती तथा रोती हैं। अर्थात् इनका मूल उद्देश्य धन कमाना होता है। पुरुष को (अपने ऊपर) विश्वास दिलाती हैं परन्तु स्वयं पुरुषों पर विश्वास नहीं करती हैं। अतः उत्तम कुल एवं स्वभाव वाले पुरुषों को वेश्याओं का परित्याग श्मशानस्थल पर लगे हुये फूलों के समान कर देना चाहिए।

विशेष –

(1) शर्विलक के कहने का भाव यह है कि उच्च कुलीन व्यक्ति को वेश्याओं के चक्कर में नहीं आना चाहिए। उसकी दृष्टि में वेश्याओं के सारे क्रिया–कलाप धन प्राप्ति के लिये ही होते हैं। अतः इनके हंसने या रोने के चक्कर में नहीं फंसना चाहिए।

(2) 'वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः' यहाँ उपमा अलंकार है।

(3) इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

40. स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः।
पुरुषाणान्तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते।।4/19।।

अन्वय – एताः स्त्रियः हि निसर्गात् एव पण्डिताः खलु, नाम तु पुरुषाणाम् पाण्डित्यम् शास्त्रौः एव उपदिश्यते।।19।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से अवतरित है। शर्विलक एवं मदनिका के बीच वार्तालाप चल रहा है। अन्त में शर्विलक भो यह सहमति व्यक्त करता है कि उसने चोरी करके अच्छा नहीं किया। परन्तु अब क्या करना चाहिये, इस पर दोनो एक दूसरे से पूछते हैं। तब शर्विलक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये कहता है कि स्त्री जाति पुरूषों की तुलना में अधिक चतुर होती हैं।

व्याख्या – ये स्त्रियाँ जन्म से ही अथवा स्वभाव से ही चतुर होती हैं। किन्तु पुरुष की चतुरता तो शास्त्रों के द्वारा ही सिखाई जाती है। भाव यह है कि स्त्रियाँ बिना सिखाये ही चतुर होती हैं परन्तु पुरुष सिखाये जाने के बाद ही चतुर हो पाते हैं।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में पुरुष एवं स्त्री के चातुर्य के विषय में सुन्दर विवेचन किया गया है।

(2) इसमें पथ्यावक्त्रा छन्द है।

41. न खलु मम विषादः साहसेऽस्मिन् भयं वा,
कथयसि हि किमर्थं तस्य साधेर्गुणांस्त्वम्।
जनयति मम वेदं कुत्सितं कम लज्जां,
नृपतिरिह शठानां मादृशां किं नु कुर्यात्।।4/20।।

अन्वय – अस्मिन् साहसे मम विषादः भयं वा न खलु (अस्ति), त्वम् तस्य साधेः गुणान् कथं कथयसि? हि, इदम्, कुत्सितम् कम वा मम लज्जाम् जनयति। इह नृपतिः मादृशाम् शठानाम् किम् नु कुर्यात्।।

कठिन–शब्दार्थ – साहसे – दुस्साहसिक चौर्य कार्य में। कुत्सितम् – निन्दित चोरी का कार्य। जनयति – उत्पन्न करता है। मादृशाम् – हमारे जैसे। शठानाम् – धूर्तों का।

प्रसंग – यह श्लोक मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से उद्धृत है। शर्विलक मदनिका के समक्ष अपनी वस्तुस्थिति व्यक्त करता हुआ कह रहा है–

व्याख्या – इस दुस्साहसिक (चोरी के) कम में, वास्तव में, न तो किसी प्रकार का खेद (पश्चाताप) है और न (राजा के दण्ड का) भय है। इस स्थिति में तुम उन सज्जन चारुदत्त के गुणों का वर्णन क्यों कर रही हो? क्योंकि यह चोरी करना कुत्सित कार्य ही मेरे में लज्जा भाव उत्पन्न कर रहा है। इस विषय में मेरे जैसे धूर्तों का राजा क्या कर सकता है? अर्थात् कुछ भो नहीं कर सकता है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा मालिनी छन्द है।

42. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो,
न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम्।
गुणप्रकर्षादुडुपेन शम्भोर,
रलङ्घ्यमुल्लङ्घितमुत्तमाङ्गम्।।4/23।।

अन्वय – पुरुषेण गुणेषु यत्नः कार्यः गुणानाम् किंचित् अपि अप्राप्यतमम् न (भवति), उडुपेन शम्भोः अलंघ्यम् उत्तमांगम् गुणप्रकर्षात् लंघितम्।।23।।

कठिन–शब्दार्थ – अप्राप्यतमम् – दुर्लभ, प्राप्त करना कठिन। उडुपेन – चन्द्रमा ने। उत्तमांगम् – मस्तक को। गुणप्रकर्षात् – गुणों के प्रकष के कारण। लघितम् – लांघ किया।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से अवतरित है। शर्विलक इसमें चारुदत्त के गुणों की प्रशंसा कर रहा है–

व्याख्या – पुरुष को (दया दाक्षिण्यादि) गुणों के विषय में प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि गुणों को कोई भो वस्तु प्राप्त करना कठिन नहीं है अर्थात् गुणवान् व्यक्ति सब कुछ प्राप्त कर सकता है। चन्द्रमा ने शंकर के अलंघनीय मस्तक को गुणों के आधिक्य के कारण ही लांघ लिया अर्थात् शिवजी के मस्तक पर जाकर स्थित हो गया।

विशेष –

(1) भगवान् शिव सर्वोपरि हैं। उनके अंगो में उनका मस्तक सर्वोपरि है। परन्तु चन्द्रमा उस मस्तक के भो ऊपर विद्यमान है। इसमें चन्द्रमा के गुणों का प्रकष ही कारण है। इस प्रकार गुणीजन की श्रेष्ठता स्पष्ट है।

(2) प्रस्तुत श्लोक में विशेष के द्वारा सामान्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

43. ज्ञातीन् विटान् स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्,
राजापमानकुपितांश्च नरेन्द्रभृत्यान्।
उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय्,
यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः।।4/26।।

अन्वय – उदयनस्य राज्ञः यौगन्धरायणः इव सुहृदःपरिमोक्षणाय (अहम्) ज्ञातीन्, विटान्, स्वभजविक्रमलब्धवर्णान्, राजापमानकुपितान्, नरेन्द्रभत्यान् च उत्तेजयामि।।26।।

कठिन–शब्दार्थ – परिमोक्षणाय – मुक्ति के लिये। ज्ञातीन् – कुल के बन्धुबान्धवों। विटान् – विटों, धूर्तों को। स्वभजविक्रमलब्धवर्णान् – अपनी भजाओं के पराक्रम से यश प्राप्त करने वालों को। राजापमानकुपितान् – राजा द्वारा किये अपमान से क्र। नरेन्द्रभत्यान – राजा के कमचारियों को। उत्तेजयामि – उत्तेजित करता हूँ।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक प्रकरण के चतुर्थ अंक से उद्धृत है। इसमें शर्विलक की अपने मित्र आर्यक के प्रति घनिष्ठ मैत्री व्यक्त हुई है। जब वह सुनता है कि राजा पालक ने प्रिय मित्र आर्यक को जेल में बन्द कर दिया है। तब वह पत्नी को तुलना में मित्र को अधिक महत्त्व देता हुआ कहता है कि इस समय सैकड़ों सुन्दर स्त्रियों से भो मित्र अधिक प्रिय है। इसी क्रम में वह आगे कहता है–

व्याख्या – (मैं इस समय) उदयन (वत्सराज) नामक राजा की (मुक्ति के लिये) उनके महामात्य
यौगन्धरायण के समान मित्र आर्यक को छुड़ाने के लिये (राजा पालक के) बन्धुओं, अपनी भजाओं के पराक्रम से यश प्राप्त करने वालों तथा राजा द्वारा किये गये अपमान से क्रुर कमचारियों को (राजा के विरु) उत्तेजित करता हूँ, उकसाता हूँ।

विशेष –

(1) पुराणों में यह कथा प्राप्त होती है कि वत्सराज उदयन की उज्जयिनी के राजा चन्द्रसन ने कारागार में बन्द कर दिया था। तब उदयन के महामात्य यौगन्धरायण ने अपने बुधिकौशल से प्रजा में विद्रोह उत्पन्न कराकर अपने राजा उदयन को मुक्त कराया था। शर्विलक भो अपने मित्र तथा भविष्य में राजा होने वाले पालक की मुक्ति इसी प्रकार कराना चाहता है।

(2) इसमें उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

44. प्रियसुहृदमकारणे गृहीतं,
रिपुभिरसाधुभराहितात्मशंकैः।
सरभसमभिपत्य मोचयामि,
स्थितमिव राहुमुखे शशांङ्कबिम्बम्।।4/27।।

अन्वय – अकारणे, आहितात्मशंकैः असाधुभिः, रिपुभिः, गृहीतम् राहुमुखे स्थितम्, शशाङ्कबिम्बम्, इव प्रियसुहृदम्, सरभसम् अभिपत्य मोचयामि।।4/27।।

कठिन–शब्दार्थ – अकारेण – कोई कारण न रहने पर भो। आहितात्मशंकैः – अपने में भय बना लेने वाले। गृहीतम् – कारागार मे बन्द किये गये। शशांकबिम्बम् – चन्द्रमण्डल। सरभसम् – वेगपूर्वक। अभिपत्य – आक्रमण करके। मोचयामि – छुड़वाता हूँ, मुक्त करवाता हूँ।

प्रसंग – यह कथन शर्विलक का है। वह अपने मित्र आर्यक को शीघ्र कारागार से मुक्त करवाने की घोषणा इस श्लोक में कर रहा है–

व्याख्या – कोई कारण न रहने पर भो अपने में भय मानने वाले दुष्ट शत्रुओं द्वारा बन्धन में डाले गये, राहु के मुख में विद्यमान चन्द्रमा के समान, अपने प्रिय मित्र को वेगपूर्वक आक्रमण करके कारागार से मुक्त कराता हूँ।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार तथा पुष्पिताग्रा छन्द है।

पंचम अंक

45. आलोकितं गृहशिखण्डिभिरुत्कलापैः
हंसैर्यियासुभि रपाकृतमुन्मनस्कैः।
आकालिकं सपदि दुर्दिनमन्तरिक्ष
मुत्कण्ठितस्य हृदयञ्च समं रुणद्धि।।5/1।।

अन्वय – उत्कलापैः गृहशिखण्डिभिः आलोकितम्, यियासुभिः उन्मनस्कैः हंसैः अपाकृतम्, आकालिकम्, दुर्दिनम्, सपदि अन्तरिक्षम् उत्कण्ठितस्य हृदयम् च समम् रुणा।।1।।

कठिन–शब्दार्थ – उत्कलापैः – पंखों के ऊपर पङ्खैलाये हुये। गृहशिखण्डिभिः – घरेलू पालतू मोरों द्वारा। आलोकितम् – देखा गया। यियासुभिः – (मानसरोवर) जाने के इच्छुक। उन्मनस्कैः – खिन्न मन वाले। अपाकृतम् – तिरस्कृत किया गया। आकालिकम् – असमय में होने वाला। सपदि – शीघ्र ही। उत्कण्ठितस्य – विरहातुर व्यक्ति के। रुणद्धि – आवृत्त कर रहा है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पचम अंक से उद्धृत है। इसमें नायक चारुदत्त ऊपर आकाश की ओर देखकर अपने विचार व्यक्त कर रहा है–

व्याख्या – पंखों के ऊपर फलाये हुये मयूरों द्वारा देखा गया, (मानसरोवर) जाने के इच्छुक उदास हंसों द्वारा तिरस्कृत किया गया, असमय का यह दुर्दिन (बादलों से आच्छादित दिन) शीघ्र ही आकाश तथा विरही व्यक्ति के हृदय को एक साथ आच्छादित कर रहा है।

विशेष –

(1) विरही व्यक्ति की कामवृद्धि में वर्षा का विशेष योग रहता है। प्रस्तुत श्लोक में विरही चारुदत्त दुर्दिन से प्रभावित हो रहा है।

(2) दुर्दिनम् – 'मेघाच्छन्नं तु दुर्दिनम्' कोश के अनुसार बादलों से घिरा हुआ दिन दुर्दिन होता है। परन्तु प्रस्तुत श्लोक में केवल मेघ अर्थ करना चाहिए क्योंकि मेघ ही आकाश तथा चित्त दोनों को आच्छादित करता है।

46. मेघो जलार्द्रमहिषोदरभृङ्ग नीलो,
विद्युत्प्रभा–रचित–पीत–पटोत्तरीयः।
आभाति संहतबलाक–गृहोतशंखः,
एवं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः।।5/2।।

अन्वय – जलार्द्रमहिषोदरभगनीलः विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः संहतबलाकगृहीतशंखः, अपरः केशवः इव एवम् आक्रमितुं प्रवृत्तः मेघः आभाति।।2।।

कठिन–शब्दार्थ – जलार्द्रमहिषोदरभगनीलः – जल से गीले किये गये भसे के पेट तथा भौंरे के समान नीले वर्णवाला। विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः – बिजली की चमक से बने हुये पीले दुपट्टे वाला। संहतबलाकगृहीतशंखः – एक साथ चलने वाले बगुलों की पंक्तिरुपी शंख को लेने वाला। केशवः – श्रीकृष्ण या विष्णु। एवम् – आकाश को। आक्रमितुम् – लांघने के लिये। प्रवृत्तः – सन्न। आभाति – शोभित हो रहा है।

प्रसंग – यह श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नामक प्रकरण के पंचम अंक से अवतरित है। इसमें मेघ का वर्णन वामन रूपधारी विष्णु के समान किया गया है–

व्याख्या – जल से गीले किये गये भसे के पेट तथा भौंरे के समान काला, बिजली की चमक से बने हुये पीले वस्त्र के दुपट्टे को धारण करने वाला (विष्णु पक्ष में – बिजली की कान्ति के समान बने हुये पीताम्बर के दुपट्टे वाले) एकत्रित बगुलों की पंक्तिरूपी शंख वाला (विष्णु पक्ष में – एकत्रित हुये बगुलों की पंक्ति के समान शंख को धारण करने वाले) दूसरे (वामनरूपधरी) विष्णु के तुल्य, आकाश को लांघने के लिये तैयार मेघ शोभित हो रहा है।

विशेष –

(1) पौराणिक कथानुसार वामन रूप में विष्णु ने आकाशपर्यन्त पैर से नाप लिया था।

(2) प्रस्तुत श्लोक में वामनरूपधारी विष्णु के साथ मेघ की सुन्दर उपमा प्रस्तुत की गई है।

(3) इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

47. एतत्तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशं, मेघान्धकारं नभो,
हृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखी।
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वानं गतः कोकिलो,
हंसाः सम्प्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्यां गताः।।5/6।।

अन्वय – मेघान्धकारं एतत् नभः तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशम् (अस्ति), अतिदर्पितबलः शिखी, दुर्योधन वाहृष्टः (सन्) गर्जति, कोकिलः, अक्षद्यूतजितः युधिष्ठिरः इव अध्वानम् गतः, सम्प्रति हंसाः पाण्डवाः इव वनात् अज्ञातचर्याम् गताः।।6।।

कठिन–शब्दार्थ – मेघान्धकारम् – मेघों के कारण अन्धकार युक्त। तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशम् – उस धृतराष्ट्र के मुख के समान। अतिदर्पितबलः – अपने रूप के घमण्डवाला। शिखी – मोर। दुर्योधन पक्ष में – अत्यन्त अभिमान युक्त सेना वाला। हृष्टः – प्रसन्न। गर्जति – गर्जना कर रहा है, शब्द कर रहा है। अक्षद्यूतजितः – पासे के खेल में पराजित। अध्वानम् – मौन, वनमार्ग। अज्ञातचर्याम् – अज्ञातवास को।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। इसमें दुर्योध्न के कुशासन की तुलना वर्षा के साथ की गई है–

व्याख्या – बादलों के कारण अन्धकारयुक्त यह आकाश धृतराष्ट्र (दुर्योधन के पिता) के मुख के समान है। (आंखों से रहित धृतराष्ट्र का मख तथा चन्द्रसूर्य रहित आकाश इन दोनों की तुलना की गई है।) अपने रूप के घमण्ड वाला मोर (दुर्योधन पक्ष में अति–घमण्डी सेना वाला) दुर्योधन के समान प्रसन्न होता हुआ शब्द कर रहा है। कोयल जुए में हारे हुये युधिष्ठिर के समान मौन (युधिष्ठिर पक्ष में–वनमार्ग) को प्राप्त हो गई है। इस वर्षाऋतु में हंस पाण्डवों के समान वन (हंस पक्ष में पानी) से अज्ञातवास को चले गये हैं। (अर्थात् वन से जैसे पाण्डव अज्ञात स्थान पर चले गये थे उसी प्रकार यहाँ से वन–जल को छोड़कर हंस मानसरोवर चले गये हैं।)

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक के प्रारंभ में जन्मान्ध धृतराष्ट्र तथा चन्द्रसूर्यरहित आकाश की सुन्दर उपमा है।

(2) सम्पूर्ण श्लोक में उपमा अलंकार तथा शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

48. वेगं करोति तुरगस्त्वरितं प्रयातुं,
प्राणव्ययान्न चरणास्तु तथा वहन्ति।
सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चलाः स्वभावाः,
खिन्नास्ततो हृदयमेव पुनर्विशन्ति ।।5/8।।

अन्वय – तुरगः त्वरितम् प्रयातुम् वेगम् करोति, तु प्राणव्ययात् तस्य चरणाः तथा न वहन्ति (एवमेव) पुरुषस्य चलाः स्वभावाः सर्वत्रा यान्ति (परन्तु) ततः खिन्नाः पुनः हृदयम् एव विशन्ति।।

कठिन–शब्दार्थ – तुरगः – घोड़ा। त्वरितम् – शीघ्र ही। प्रयातुम् – दौडने के लिये। प्राणव्ययात् – शक्तिक्षीणता के कारण। विशन्ति – प्रवेश कर जाती है, वापस लौट आते हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पचम अंक से उद्धृत है, यह कथन चारुदत्त का है। विदूषक द्वारा यह कहने पर कि आप वेश्यासंसर्ग से अपने को मुक्त कर

लीजिये। वेश्या तो जूते में पड़ी हुई कंकडी के समान बाद में बहुत कष्ट से निकाली जाती है। तब चारुदत्त कहता है– मित्र ! इस समय निन्दा करना व्यर्थ है। निर्धन अवस्था ने ही वेश्या संगति से रोक दिया है। देखो –

व्याख्या – घोडा शीघ्र दौडने के लिये वेग (शक्ति) लगाता है, परन्तु शक्ति क्षीणता के कारण पैर उस प्रकार वेग से नहीं चलते हैं, इसी प्रकार मनुष्य के चंचल स्वभाव (मनोवृत्तियाँ) सभो ओर जाते हैं, परन्तु (कहीं भो सपफल न हो सकने के कारण) निराश होकर पुनः मन में ही वापस लौट आते हैं।

विशेष –

(1) चारुदत्त के कहने का भाव यह है कि हमारी निर्धनता के कारण ही वेश्यासंसर्ग छूट जायेगा, अतः उसकी निन्दा करने का कोई लाभ नहीं है।

(2) इसमें दृष्टान्त अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

49. अपद्मा श्रीरेषा प्रहरणमनङ्गस्य ललितं,
कुलस्त्रीणां शोको मदनवरवृक्षस्य कुसुमम्।
सलीलं गच्छन्ती रतिसमयलज्जा–प्रणयिनी,
रतिक्षेत्रे रंगे प्रियपथिकसार्थैरनुगता।।5/12।।

अन्वय – रतिसमयलज्जाप्रणयिनी, प्रियपथिकसार्थैः अनुगता रंगे (इव) रतिक्षेत्रे सलीलम् गच्छन्ती एषा अपद्मा श्रीः अनंगस्य ललितम् प्रहरणम्, कुलस्त्रीणां शोकः, मदनवरवृक्षस्य कुसुमम् (अस्ति)।।12।।

कठिन–शब्दार्थ – रतिसमयलज्जाप्रणयिनी – संभोग काल में (बनावटी) लज्जा प्रदर्शित करने वाली। प्रियपथिकसार्थैः – प्रिय पथिकों के समूहों के द्वारा। अनुगता – पीछा की गई। रंगे – नाट्य रंगमंच। रतिक्षेत्रो – संकेतित रतिस्थल पर। सलीलम् – हावभाव के साथ। अपद्मा – बिना कमल की। अनंगस्य – कामदेव का। ललितम् – सुन्दर। प्रहरणम् – अस्त्र। मदनवरवृक्षस्य – कामदेव रूपी क्षेष्ठ वृक्ष का।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। इसमें विट वसन्तसेना को लक्षित करके कह रहा है–

व्याख्या – संभोग के समय (बनावटी) लज्जा प्रदर्शित करने वाली, प्रिय पथिकों से पीछा की गई, नाट्य रंगमंच के समान संकेतित रतिस्थल पर हावभाव के साथ जाने वाली यह वसन्तसेना बिना कमल की लक्ष्मी है, कामदेव का सुकुमार अस्त्र है, उच्च कुलोत्पन्न वधुओं के लिए शोक है, कामरूपी सुन्दर वृक्ष का फूल है।

विशेष –

(1) यहाँ विषय का अपनव किये बिना ही एक वसन्तसेना में अनेकों के तादात्म्य का आरोप होने से मालारूपक अलंकार है।

(2) इसमें शिखरिणी छन्द है।

50. पंकक्लिन्नमुखाः पिबन्ति सलिलं धाराहता दर्दुराः,
कण्ठं मुञ्चति बर्हिणः समदनो नीपः प्रदीपायते।
संन्यासः कुलदूषणैरिव जनैर्मेघैर्वृतश्चन्द्रमा,
विद्युन्नीचकुलोद्गतेव युवतिर्नैकत्रा सन्तिष्ठते।।5/14।।

अन्वय – धाराहताः पंकक्लिन्नमुखाः दुर्दराः सलिलम् पिबन्ति, समदनः बर्हिणः कण्ठम् मुंचति, नीपः प्रदीपायते, कुलदूषणैः जनैः सन्यासः इव मेघैः चन्द्रमाः वृतः नीचकुलोद्गता युवतिः इव विद्युत् एकत्रा न सन्तिष्ठते।।14।।

कठिन–शब्दार्थ – धाराहताः – जलधाराओं से ताडित। पंकक्लिन्नमुखाः – कीचड़ में व्याप्त मुख वाले। दर्दुराः – मेढ़क। समदनः – कामातुर। बर्हिणः – मोर। प्रदीपायते –

दीपक के समान प्रतीत हो रहा है। वृतः – ढक दिया गया है। नीचकुलाद्गता – नीच कुल में उत्पन्न होने वाली। सन्तिष्ठते – स्थिर रह रही है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में दुर्दिन के अन्तर्गत प्रकृति का चित्रण किया गया है। विट वसन्तसेना को सम्बोधित करते हुये कह रहा है–

व्याख्या – (हे वसन्तसेने! देखो) जल की धराओं से ताडित, कीचड़ से लिप्त मुखवाले मेढक (वर्षा का) पानी पी रहे हैं। कामातुर मयूर आवाज कर रहा है। कदम्ब का वृक्ष (अपने फूलों से) दीपक के समान प्रतीत हो रहा है। कुल को कलंकित करने वाले लोगों के द्वारा संन्यास के समान बादलों के द्वारा चन्द्रमा को ढक लिया गया है। नीच कुल में पैदा होने वाली स्त्री जैसे एक जगह नहीं ठहरती है उसी प्रकार बिजली एक जगह नहीं ठहर रही है।

विशेष –

(1) इसमें उपमा अलंकार तथा शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

51. गता नाशं तारा उपकृतमसाधविव जने
वियुक्ताः कान्तेन स्त्रिय इव न राजन्ति ककुभः।
प्रकामान्तस्तप्तं त्रिदशपति शस्त्रस्य शिखिना
द्रवीभूतं मन्ये पतति जलरूपेण गगनम्।।5/25।।

अन्वय – असाधौ जने उपकृतम् इव तारा नाशम् गता, कान्तेन वियुक्ताः स्त्रियः इव ककुभः न राजन्ति, त्रिादशपतिशस्त्रस्य शिखिना प्रकामान्तस्तप्तम्, गगनम् द्रवीभ्तम् (सत्) जलरूपेण पतति, मन्ये।।25।।

कठिन–शब्दार्थ – असाधौ – दुष्ट। उपकृतम् इव – उपकार के समान। वियुक्ताः – पतियों से रहित। ककुभः – दिशायें। राजन्ति – शोभित हो रही हैं। त्रिदशपतिशस्त्रस्य – देवराज इन्द्र के शस्त्राभ्त वज्र की। शिखिना – आग से। प्रकामान्तस्तप्तम् – अत्यन्त सन्तप्त। द्रवीभ्तम् – पिघला। पतति – गिर रहा है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। इसमें वसन्तसेना द्वारा रात्रि का वर्णन किया गया है–

व्याख्या – दुर्जन व्यक्ति के विषय में किये गये उपकार के समान तारागण (आकाश से) विलीन हो गये है अर्थात् लुप्त हो गये हैं। पतियों से रहित स्त्रियों के समान दिशायें शोभित नहीं हो रही हैं। देवराज इन्द्र के वज्ररूपी शस्त्र की आग से भोतर अत्यन्त सन्तप्त यह मेघ पिघला हुआ होकर मानो जलरूप में गिर रहा है।

विशेष –

(1) कृतघ्न दुर्जन पुरूष के लिए वस्तुतः कोई उपकार किया जाने पर भो वह उसे नहीं मानता है। वह उस उपकार को भ्ल जाता है। उसी प्रकार आकाश में तारों का समूह है तथापि अत्यधिक अंधकार होने के कारण उनका अस्तित्व समाप्त सा प्रतीत होने लगता है।

(2) इसमें उपमा व उत्प्रेक्षा की संसृष्टि है। शिखरिणी छन्द है।

52. ऐरावतोरसि चलेव सुवर्णरज्जुः
शैलस्य मूर्ध्नि निहितेव सिता पताका।
आखण्डलस्य भवनोदरदीपिकेय
माख्याति ते प्रियतमस्य हि सन्निवेशम्।।5/33।।

अन्वय – हि, ऐरावतोरसि, चला, सुवर्णरज्जुः इव शैलस्य मूर्ध्नि निहिता, सिता पताका इव आखण्डलस्य भवनोदरदीपिका इव (इयम्) ते, प्रियतमस्य, सन्निवेशम्, आख्याति इव।।33।।

कठिन–शब्दार्थ – ऐरावतोरसि – इन्द्र के हाथी ऐरावत के वक्षस्थल पर। सुवर्णरज्जुः – सोने की रस्सी। निहिता – स्थापित की गई। सिता – श्वेत। पताका – ध्वजा।

आखण्डलस्य – इन्द्र के। भवनोदरदीपिका – भवन के मध्य में स्थित दीपिका। सन्निवेशम् – घर को। आख्याति – कह रही है।

प्रसंग – यह श्लोक मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। इसमें विट वसन्तसेना से कह रहा है कि वे बिजली को उपालंभ न दें क्योंकि यह बिजली आपकी उपकारिका है–

व्याख्या – क्योंकि, ऐरावत हाथी के वक्षस्थल पर चंचल सुवर्णमयी रस्सी के समान, पर्वत की चोटी पर स्थापित की गई श्वेत पताका के समान, इन्द्र के भवन के भोतर स्थित दीपिका के समान यह बिजली तुम्हारे प्रियतम चारुदत्त के घर को बतला रही है।

विशेष –

(1) इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

53. सदा प्रदोषो मम याति जाग्रतः
सदा च मे निश्वसतो गता निशा।
त्वया समेतस्य विशाललोचने
ममाद्य शोकान्तकरः प्रदोषकः।।5/37।।

अन्वय – सदा जाग्रतः (एव) मम प्रदोषः याति, सदा निश्वसतः (एव) मे निशाः गताः, हे विशाललोचने! अद्य त्वया समेतस्य मम प्रदोषकः शोकान्तकरः (भवति भविष्यति वा)।।37।।

कठिन–शब्दार्थ – जाग्रतः एव – जागते हुये ही। प्रदोषः – सायंकाल का समय। याति – व्यतीत होता है। निःश्वसतः – निश्वासें, आहें लेते हुये ही। निशाः – रात्रियाँ। गताः – व्यतीत हुई हैं। विशाललोचने – हे विशाल नेत्रों वाली प्रिय वसन्तसेने। समेतस्य – मिले हुये। प्रदोषकः – सायंकाल। शोकान्तकरः – शोक को समाप्त कर देने वाला।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। वसन्तसेना को आई हुई देखकर चारुदत्त प्रसन्न हो उठता है तथा अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त करता है–

व्याख्या – हमेशा जागते हुये ही मेरा प्रदोष (शाम का समय) व्यतीत हुआ है, तथा हमेशा आहें भरते हुये ही रातें व्यतोत हुई हैं। (परन्तु) हे विशाललोचने, वसन्तसेने! आज तुम्हारे साथ मिलने वाले मेरा प्रदोष (सायंकाल) शोकों को समाप्त कर देने वाला हो रहा है, अथवा होगा। अर्थात् आज का प्रदोष तुम्हारे आगमन से सुन्दर बन पड़ा है।

विशेष –

(1) इस श्लोक में अपनी सायंकालीन तथा सम्पूण रात्रिकालीन व्यथा का उल्लेख करके आज उनसे मुक्ति का संकेत चारुदत्त कर रहा है।

(2) इसमें वंशस्य छन्द है।

54. धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके,
किं जीवितेनादित एव तावत्।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्,
कोपप्रसादा विपफलीभवन्ति।।5/40।।

अन्वय – लोके, धनैः वियुक्तस्य नरस्य आदितः एव जीवितेन किम्, तावत् यस्य कोपप्रसादाः प्रतीकारनिरर्थकत्वात् विपफलीभवन्ति।।40।।

कठिन–शब्दार्थ – वियुक्तस्य – रहित। आदितः – प्रारंभ से ही अर्थात् जन्म समय से ही। जीवितेन – जीवित रहने से। कोपप्रसादा – क्रोध एवं प्रसन्नता। प्रतीकारनिरर्थकत्यात् – प्रतीकार में समर्थ न होने के कारण। विपफलीभवन्ति – बेकार हो जाते हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से अवतरित है। चेटी वसन्तसेना द्वारा लाये गये सुवर्णभाण्ड के विषय में चारुदत्त को सूचना देती है। चारुदत्त उसे पुरस्कार के

रूप में अंगूठी देना चाहता है परन्त अंगूठीशून्य हाथ को देखकर लज्जा का अभिनय करता है। वह हाथ की ओट में अपने मित्र से इस प्रकार कहता है–

व्याख्या – संसार में धनविहीन व्यक्ति के जन्म से ही लेकर जीवित रहने का क्या लाभ! अर्थात् कुछ भो लाभ नहीं है। जिसकी प्रसन्नता तथा क्रोध दोनों ही बदला चुकाने में असमर्थ होने के कारण व्यर्थ हो जाते हैं। भाव यह है कि धनहीन व्यक्ति प्रसन्न होकर कुछ दे नहीं सकता है तथा अप्रसन्न या कुद्ध होकर कुछ बिगाड़ नहीं सकता है।

विशेष –

(1) चेटी के मुख से अत्यन्त प्रिय समाचार सुनकर अपनी प्रकृति के अनुसार तत्काल पुरस्कृत करना चाहते हुये भो चारुदत्त जब अपनी निर्धनता को देखता है तो उसे लगता है कि ऐसे जीवन से तो मरना ही अच्छा है। धनहीन जीवन व्यर्थ है।

(2) इसमें उपजाति छन्द है।

55. शून्यैर्गृहैः खलु समाः पुरुषाः दरिद्राः
कूपैश्च तोयरहितैस्तरुभिश्च शीर्णैः।
यद् दृष्टपूर्व–जन–संगम विस्मृताना
मेवं भवन्ति विफलाः परितोषकालाः।।5/42।।

अन्वय – दरिद्रा पुरुषाः शून्यैः गृहैः तोयरहितैः कूपैः च शीर्णैः तरुभिः च समाः खलु, यद् दृष्टपूर्वजन संगमविस्मृतानाम् (दरिद्राणाम्) परितोषकालाः एवम् विफली भवन्ति।।42।।

कठिन–शब्दार्थ – तोयरहितैः – जल रहित। शीर्णैः तरुभिः – सूखे वृक्षों। दृष्टपूर्वजनसंगमविस्मृतानाम् – पूर्व परिचित लोगों के मिलने पर अपनी वर्तमान दरिद्रता को भ्ल जाने वाले। परितोषकालाः – परितोष प्रदान के अवसर। विफलाः – फल शून्य।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है इसमें चारुदत्त निर्धनता सम्बन्धी अपनी मनोव्यथा व्यक्त कर रहा है–

व्याख्या – निर्धन लोग सूने घरों, पानी रहित कुओं तथा सूखे वृक्षों के समान हैं, क्योंकि पूर्व समय के परिचित लोगों के मिलने पर आतुरता के कारण अपनी वर्तमान दरिद्रता को भ्ल जाने वाले दरिद्र लोगों के परितोष काल (पुरस्कार आदि प्रदान करने के अवसर) इसी प्रकार व्यर्थ होते हैं। क्योंकि निर्धन होने के कारण वह पुरस्कार देने में समर्थ नहीं होता है।

विशेष –

(1) श्लोक का भाव यह है कि पहले धनी होकर बाद में जो निर्धन हो जाता है, उसे जब अपने पूर्व परिचित व्यक्ति मिलते हैं तो प्रसन्नता में अपनी वर्तमान गरीबी का ध्यान न रखकर पुरस्कार आदि देने की इच्छा करने लगता है, परन्तु धनाभाव के कारण दे नहीं पाता है। इस प्रकार उस समय की विफलता हो जाती है।

(2) प्रस्तुत श्लोक में मालोपमा एवं अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

(3) इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

56. कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तुलयिष्यति।
शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता।।5/43।।

अन्वय – कः भ्तार्थम् श्रद्धास्यति, सर्वः माम् तुलयिष्यति, हि अस्मिन् लोके निष्प्रतापा दरिद्रता शंकनीया (भवति)।।43।।

कठिन–शब्दार्थ – भ्तार्थम् – सत्य घटना को। श्रद्धास्यति – मानेगा, विश्वास करेगा। तुलयिष्यति – तौलेंगे, मुझ पर सन्देह करेंगे। निष्प्रतापा – प्रताप शून्य। शंकनीया – सन्देह का विषय होती है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। इसमें चारुदत्त वसन्तसेना से कह रहा है–

व्याख्या – सत्य घटी हुई बात पर कौन विश्वास करेगा? सभो मुझे तौलेंगे अर्थात् मुझे बेईमान समझेंग क्योंकि इस संसार में निर्बल निर्धनता शंका का विषय बनती है। सभो लोग निर्धनता के कारण निर्धन व्यक्ति पर बेईमानी की आशंका करते हैं।

विशेष –

(1) इसमें अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

57. तालीषु तारं विटपेषु मन्द्रं
शिलासु रूक्षं सलिलेषु चण्डम्।
संगीतवीणा इव ताड्यमाना
स्तालानुसारेण पतन्ति धाराः।।5/52।।

अन्वय – तालानुसारेण ताड्यमानाः, संगीतवीणाः इव धराः तालीषु तारम्, विटपेषु मन्द्रम्, शिलासु रुक्षम्, सलिलेषु चण्डम् पतन्ति।।52।।

कठिन–शब्दार्थ – तालानुसारेण – लयताल के अनुसार। ताड्यमानाः – बजाई जाती हुई। धाराः – जल धरायें। तालीषु – ताड़ के पत्तों पर। तारम् – ऊंचे स्वर से। विटपेषु – वृक्षों पर। मन्द्रम – गंभोर ध्वनि से। शिलासु – पहाडों की चट्टानों पर। रुक्षम् – ककश। सलिलेषु – जल में। चण्डम् – प्रचण्ड ध्वनि के साथ।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिक के पंचम अंक से अवतरित है। इसमें नाटककार ने वर्षा के समय में बादलों से गिरने वाली जल–धाराओं की भिन्न–भिन्न पदार्थों पर अलग–अलग प्रकार की होने वाली आवाजों का वर्णन किया है :–

व्याख्या – लय व ताल के अनुसार बजायी जाती हुई संगीत की वीणाओं के समान ये पानी की धरायें ताड़ के पत्तों पर ऊंची ध्वनि से, वृक्षों पर गंभोर ध्वनि से, चट्टानों पर ककश ध्वनि से एवं पानी में प्रचण्ड ध्वनि से गिर रही हैं।

विशेष –

(1) जैसे वीणा के तार देखने में एक समान दिखाई देते हैं, परन्तु उनकी ध्वनियाँ अलग–अलग प्रतीत होती हैं, वैसे ही जल की धारायें सभो देखने में एक जैसी होती हैं, परन्तु विभिन्न पदार्थों से सम्पर्क होने पर उनकी ध्वनियां अलग–अलग होती हैं। यही समानता यहाँ व्यक्त की गई है।

(2) यहाँ उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

19.3 पारिभाषिक शब्दावली

द्विजसार्थवाहः – ब्राह्मण व्यापारी अथवा ब्राह्मण श्रेष्ठ। गुणानुरक्ताः – गुणों के कारण प्रेम करने वाली । वसन्तशोभेव – वसन्त ऋतु की सुन्दरता के समान।

सत्यम् – संसार में सामान्यतया लोग धन हानि के कारण चिन्तित एवं परेशान होने लगते हैं। चारुदत्त अपने विषय में उसका खण्डन करते हुये कहता है कि मुझे धन विनष्ट होने की चिन्ता नहीं है क्योंकि धनी होना या निर्धन हो जाना यह सब तो भाग्य का खेल है।

निर्बुद्धिः क्षयमेति – इसका आधर भगवद्गीता का यह वचन है ''बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'' किसी कवि ने भी कहा है– ''जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।''

विचक्षणः – अतिशय विद्वान

षष्ठं महापातकम् – मनु आदि महर्षियों ने पांच महापातक माने हैं (क) ब्रह्म हत्या (ख) सुरापान (ग) चोरी (घ) गुरुपली–गमन (ड) इनमें से किसी भी पातकी के साथ वर्ष भर रहना। चारुदत्त की दृष्टि में 'निर्धनता' इन्हीं की कोटि में छठा महापातक है।

मालोपमा –प्रस्तुत श्लोक में दृष्टि, पुष्टि, बुद्धिः, सिद्धि, विद्या, रति इन अनेक उपमानों से उपमेयभूत वसन्तसेना का उल्लेख करने के कारण मालोपमा अलंकार है। मालोपमा का लक्षण हैः–

''मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते।''

वसन्ततिलका – इसमें वसन्ततिलका छन्द है। जिसका लक्षण है

'' उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।''

19.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

1. सुखं हि ..... स जीवति
2. एतत्तु मां ..... कपोलाम्

3. सत्यं नं ..... भवन्ति
4. दारिद्र्याद ..... सर्वापदामास्पदम्
5. यः स्तब्धं ..... प्रसंगेन किम्
6. कामं नीचमिदः ..... द्रौणिनः
7. मार्जारः क्रमण ..... नौर्जल
8. एता हसन्ति ..... वर्जनोयाः
9. न खलु मम ..... न कुर्याद्
10. एतत्तद्धृतराष्ट्र ..... चर्या गतः

बोध प्रश्नोत्तर

1. प्रश्न एक से चार तक के उत्तर के लिए 19.2 के अंक एक में संबद्ध श्लोक संख्या 10, 12, 13, 14 देखें।
2. प्रश्न पांच के उत्तर के लिए 19.2 के अंक दो में श्लोक 12 देखें।
3. प्रश्न छह व सात के उत्तर के लिए 19.2 के अंक तीन में संबद्ध श्लोक संख्या 11 तथा 20 देखें।
4. प्रश्न आठ तथा नौ के उत्तर के लिए 19.2 के अंक चार में संबद्ध श्लोक 11 व 20 देखें।
5. प्रश्न दस के उत्तर के लिए 19.2 के अंक पांच में संबद्ध श्लोक 6 देखें।

19.5 सारांश

इस इकाई में आपने महाकवि शूद्रक रचित प्रसिद्ध प्रकरण के प्रमुख श्लोकों/अंशों की व्याख्या का अध्ययन किया है। यह श्लोक नाटक की मूल भावना से परिचत कराने के साथ–साथ विभिन्न परिस्थितियों में मानवीय विचार व व्यवहार की सूचना भी देते है । इन श्लोकों को पढ़कर आप शुद्रक की काव्यकला और उनके नाटककार/कवि के रूप में महत्त्व से परिचित हुए होंगे।

19.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृच्छकटिकम् – डॉ जयशंकर लाल त्रिपाटी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 1993.
2. मृच्छकटिकम् – डॉ श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ, 1995.
3. शुद्रक का मृच्छकटिकम् – डॉ विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1998.
4. मृच्छकटिकम् – शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन – डॉ शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1998.

इकाई 20

मृच्छकटिकम् के प्रमुख अंशों की सप्रसंग व्याख्या (5 से 10 अंक तक)

इकाई रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 पात्र–परिचय

20.3 पंचम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

20.4 षष्ठ अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

20.5 षष्ठ अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

20.6 सप्तम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

20.7 सप्तम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

20.8 अष्टम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

20.9 अष्टम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

20.10 नवम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

20.11 नवम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

20.12 दशम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

20.13 दशम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

20.14 पारिभाषिक शब्दावली

20.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

20.16 सारांश

20.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

20.0 उद्देश्य

संस्कृत विषय के स्नातकोत्तर पूर्वार्द्ध प्रश्नपत्र द्वितीय से सम्बन्धित इस इकाई में 'मृच्छकटिकम्' नाटक के पंचम अंक से दशम अंक तक के प्रमुख अंशो की सप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत की गयी है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से लेकर दशम अंक तक के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या प्रसंग सहित कर सकेंगे ।
- मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से लेकर दशम अंक तक की संक्षिप्त कथावस्तु से भो परिचित हो सकेंगे ।

20.1 प्रस्तावना

संस्कृत के स्नातकोत्तर पूर्वार्द्ध प्रश्नपत्र द्वितीय के अन्तर्गत महाकवि शूद्रक कृत मृच्छकटिकम् नाटक का अध्ययन निर्धारित है । इस इकाई से पूर्व आप नाटक के प्रथम अंक से लेकर

चतुर्थ अंक तक का ज्ञान प्राप्त कर चुके होगें । इस इकाई में मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से लेकर दशम अंक तक के प्रमुख–प्रमुख अंशों की व्याख्या प्रस्तुत की है । व्याख्या के साथ में प्रस्तुत श्लोक का प्रसंग भो लिखा गया है । विषय की स्पष्टता के लिए आवश्यकतानुसार व्याख्या को और अधिक स्पष्ट कर दिया गया है । प्रत्येक श्लोक में टिप्पणी भो दी गई है । टिप्पणी के अन्तर्गत छन्द, अलंकार तथा प्रकृति–प्रत्यय आदि बतलाये गए है ।

पंचक अंक से लेकर दशम अंक तक के प्रत्येक अंक की कथावस्तु संक्षिप्त रूप में अंक के प्रारम्भ में प्रस्तुत कर दी गई है ताकि श्लोकों को पढते समय कथावस्तु के बारे में भो विद्यार्थी को ज्ञान रहे ।

20.2 पात्र परिचय

चारुदत्त	–	नायक उज्जयिनी का प्रमुख नायक
वसन्तसेना	–	नायिका, गणिका
मैत्रेय	–	विदूषक, चारुदत्त का मित्र
शकार	–	प्रतिनायक, राजा पालक का श्यालक
विट	–	शकार का सहचर
चेट	–	शकार का सेवक
संवाहक	–	चारुदत्त का भ्तपूर्व सेवक, द्यूतकर होने के पश्चात् बौद्ध भिक्षु
वर्द्धमानक	–	चारुदत्त का यानवाहक
शर्विलक	–	ब्राह्मण, मदनिका का प्रेमी
चेट	–	वसन्तसेना का सहचर
विट	–	वसन्तसेना का सहचर
रोहसेन	–	चारुदत्त का पुत्र
आर्यक	–	गोपालक, राजा पालक का बन्दी, पश्चात् राजा
वीरक	–	नगर रक्षक
शोधनक	–	न्यायालय का सेवक
अधिकरणिक	–	न्यायाधीश
कायस्थ	–	न्यायालय का सेवक
चाण्डाल	–	शूली पर चढ़ाने वाले
पालक	–	अवन्ती का राजा
चेटी	–	वसन्तसेना की दासी
मदनिका	–	वसन्तसेना की प्रियदासी, शर्विलक की प्रियसी
धूता	–	चारुदत्त की पत्नी
रदनिका	–	चारुदत्त की परिचारिका

20.3 पंचम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

'दुर्दिन' नामक इस अंक में वसन्तसेना के अभिसरण का वर्णन है । उत्कंठित चारुदत्त के पास आकर विदूषक उससे कहता है कि वसन्तसेना ने रत्नावली स्वीकार कर ली है और

सायंकाल उससे मिलने के लिये आने वाली है । घोर वर्षा हो रही है, बिजली चमक रही है, मेघ गरज रहे है, ऐसे समय में चेट आकर सूचना देता है कि वसन्तसेना आ रही है विट, चेटी तथा वसन्तसेना चारुदत्त के घर की ओर आ रहे हैं तथा वर्षा ऋतु का सुन्दर वर्णन कर रहे हैं । विदूषक के साथ वसन्तसेना चारुदत्त की गृहवाटिका में प्रवेश करती है । चारुदत्त प्रसन्न होकर उसका स्वागत करता है तथा आगमन का कारण पूछे जाने पर वसन्तसेना की चेटी कहती है कि स्वामिनी उस रत्नावली का मूल्य पूछने आयी है तथा उसके बदले में स्वर्ण–भाण्ड देने आयी हैं । चारुदत्त और विदूषक उस स्वर्णभाण्ड को देखकर आश्यर्च में पड़ जाते है । स्वर्ण–भाण्ड प्राप्ति की कथा को सुनकर विदूषक, चारुदत्त तथा अन्य सभो हर्षित होते है । उसी समय वर्षा होने लगती है । वर्षा के अधिक तेज होने के कारण चारुदत्त तथा वसन्तसेना घर के अन्दर चले जाते है तथा वसन्तसेना रात्रि में वहीं विश्राम करती है । यहां पंचम अंक समाप्त हो जाता है ।

पंचम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

मेघो जलार्द्रमहिषोदरभृङ्गनीलो ।
विद्युत्प्रभारचित पीत पटोत्तरीयः ।
आभाति संहतबलाकगृहीतशङ्.खः
खं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः ।।

अन्वय : जलार्द्र महिषेदरभङ्गनीलः, विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः, सहत बलाकगृहीतशङ्.खः अपरः केशवः इव, खम् आक्रमितुम् प्रवृत्तः मेघः आभाति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में कवि ने मेघ के सौन्दर्य का वर्णन किया है । चारुदत्त इस समय उत्कण्ठित अवस्था में बैठा हुआ तथा बादलों को देखकर कहता है ।

व्याख्या : जल से गीले किये गये भसें के उदर और भौरे के समान नीला, बिजली की प्रभा से निर्मित पीताम्बर के समान उत्तरीय को धारण करने वाला, (विष्णु पक्ष में – बिजली की प्रभा के समान निर्मित उत्तरीय को धारण करने वाले) एकत्रित बगुलों की पंक्तिरूपी शंखवाला (विष्णु पक्ष में – एकत्रित बगुलों की पंक्ति के समान पाञ्चजन्य नामक शंख को धारण करने वाले) दूसरे विष्णु के समान आकाश को व्याप्त करने को उद्यत मेघ शोभित हो रहा है।

इस श्लोक में समान विशेषणों के द्वारा विष्णु के श्याम शरीर से मेघ की समता दिखलाई है । भसे के उदर तथा भमर के समान नीले मेघ जिसने बिजली की कांति से बने पीताम्बर के समान वस्त्र को धारण कर रखा है तथ इकट्ठे हुए बगुलों रूपी शंखवाला मेघ ऐसा शोभित हो रहा है मानो आकाश को लांघने के लिए तैयार है । विष्णु पक्ष में श्याम वर्ण विष्णु बिजली की कांति के समान उत्तरीय को धारण करने वाले इकट्ठे हुए बंगुलों की पंक्ति के समान शंख को धारण करने वाले (वामन रूपधारी विष्णु) मानों आकाश को व्याप्त करने के लिए तैयार शोभायमान हो रहे है ।

टिप्पणी : इसमें रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है । पौराणिक कथानुसार वामनरूप में विष्णु ने आकाशपर्यन्त पैर से नाप लिया था । वसन्ततिलका छन्द है ।

एतत्तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशं मेघान्धकारं नभो,
हृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखो ।
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वानं गतः कोकिलो
हंसाः सम्प्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्यां गताः ।।

अन्वय : मेघान्धकारम् एतत् नभः तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशम् अतिदर्पितबलः, शिखी दुर्योधनः वा हृष्टः गर्जति, कोकिलः, अक्षद्यूतजितः, युधिष्ठिरः, इव अध्वानम् गतः सम्प्रति हंसाः पाण्डवाः इव वनात् अज्ञातचर्याम् गताः।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम् अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में चारुदत्त ने दुर्योधन के कुशासन की तुलना वर्षा के साथ की गयी है –

व्याख्या : बादलों के कारण अन्धकारयुक्त यह आकाश (धृतराष्ट्र के मुख भो के समान है आंखे न होने से अन्धकारपूर्ण था तथा आकाश की भो सूर्य चन्द्रमा रूपी दो आंखे बादलों से नष्ट हो गई थी।) अपने रूप के घमण्ड वाला मोर (दुर्योधन पक्ष में अतिघमण्डी सेना वाला) दुर्योधन के समान प्रसन्न होता हुआ शब्द कर रहा है । पांसे के द्वारा जुए में हारे हुए युधिष्ठिर के समान कोयल मौन (युधिष्ठिर पक्ष में – वनमार्ग) को प्राप्त हो गई है । इस वर्षा ऋतु में हंस पाण्डवों के समान वन (हंस पक्ष में–पानी) से अज्ञातवास को (मानसरोवर) चले गये है ।

यहाँ जन्माध घृतराष्ट्र को तुलना सूर्यचन्द्र रहित आकाश से करते हुए कहा है कि जैसे पाण्डव जुए में हारकर अज्ञातवास को चल गये थे उसी प्रकार वर्षा ऋतु में हंस वन जल को छोड़कर मानसरोवर चले गये ।

टिप्पणी : उपमा अलंकार है तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है । घ्वान – शब्द, न घ्वानम् अघ्वानम् मौन

वेगं करोति तुरगस्त्वरितं प्रयातुं,
प्राणव्ययान्न चरणास्तु तथा वहन्ति ।
सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चलाः स्वभावाः
खिन्नास्ततो हृदयमेव पुनर्विशन्ति ।।

अन्वय : तुरगः त्वरितं प्रयातुं वेगं करोति, तु प्राणव्ययात् तस्य चरणाः तथा न वहन्ति, पुरुषस्य चलाः स्वभावाः सर्वत्र यान्ति, ततः खिन्नाः पुनः हृदयं एव विशन्ति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक श्रेष्ठ कवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के पंचम अंक से लिया गया है। इस श्लोक में चारुदत्त सामर्थ्याभाव के कारण वसन्तसेना को प्राप्त करने की इच्छा रखता हुआ भो प्राप्त नहीं करने के कारण कहता है –

व्याख्या : घोड़ा शीघ्र भागने के लिए ताकत (वेग) लगाता है । किन्तु शक्ति का क्षय होने के कारण पैर उस प्रकार वेग से नहीं चलते है । उसी प्रकार पुरूष की चचल मनोवृत्तियाँ (स्वभाव)सब स्थानों पर जाती है किन्तु (विफलता के कारण) वहाँ से खिन्न होकर पुनः हृदय में प्रविष्ट हो जाती है।

जिस तरह तेज दौड़ने वाला घोड़ा शक्ति क्षीण होने पर चाह कर भो नहीं दौड़ पाता है। उसी तरह असमर्थ मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ भो दौड़कर मन में रह जाती है। चारुदत्त की सामर्थ्याभाव के कारण वसन्तसेना को प्राप्त करने की इच्छा मन में रह जाती है ।

टिप्पणी : दृष्टान्त अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है । प्राण–शक्ति, शक्तिः पराक्रमः प्राणः–अमरकोश

पवन–चपल वेग स्थूलधारा शरौघः
स्तनित–पटह–नादः स्पष्टविद्युत्पताकः ।
हरति करसमूहं खे शशाङ्कस्य मेघो
नृप इव पुरमध्ये मन्दवीर्यस्य शत्रोः ।।

अन्वय : पवन चपलवेगः स्थूलधाराशरौधः स्तनितपटहनादः स्पष्टविद्युत्पताकः, मेघः मन्दवीर्यस्य शत्रोः पुरमध्ये नृपः इव रवे शशाङ्कस्य करसमूहं हरति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उदधृत है । इस श्लोक में कवि ने मेघ तथा विजयी राजा का श्लेषात्मक वर्णन किया है । जब विट तथा वसन्तसेना चारुदत्त के घर जाते है उसी समय विट वसन्तसेना के स्त्री स्वभाव से हठी मेघ का समर्थन करते हुए विट कहता है –

व्याख्या : वायु के कारण चञ्चल वेगवाला, पानी की मोटी धारा रूपी बाणों वाला, गर्जना रूपी नगाड़े की आवाज वाला, स्पष्ट बिजली रूपी पताका वाला मेघ आकाश में चन्द्रमा के किरण समुदाय को उसी प्रकार हरण (आच्छादित) कर रहा है जिस प्रकार मन्द पराक्रम शत्रु के कर (टैक्स) को राजा नगर के बीच में ही हर लेता है । (राजा के पक्ष में) वायु के समान वेग वाला (जल की) मोटी धाराओं के समान बाण समूह वाला, मेघ के गर्जन के सदृश नगाड़ो की आवाजा वाला, चमकती हुई बिजली के समान पताका वाला विजयी राजा कमजोर शत्रु के नगर में उससे कर (टैक्स) लेने लग जाता है । यहाँ मेघ की प्रबलता का कथन विजयी राजा के समान किया गया है ।

टिप्पणी : श्लेष तथा रूपक से पुष्ट उपमा अलंकार है । मालिनी छन्द है ।

गता नाशं तारा उपकृतमसाधाविव जने,
वियुक्ताः कान्तेन स्त्रिय इव न राजन्ति ककुभः।
प्रकामान्तस्तप्तं त्रिदशपतिशस्त्रस्य शिखिना,
द्रवीभूतं मन्ये पतति जलरूपेण गगनम् ।।

अन्वय : असाधौ जने उपकृतम्, इव ताराः नाशं गता कान्तेन वियुक्ताः स्त्रियः इव ककुभः न राजन्ति त्रिदशपतिशस्त्रस्य शिखिना प्रकामान्तस्तप्तं गगनं द्रवीभ्तं जलरूपेण पतति मन्ये ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में वसन्तसेना वर्षा के कारण अन्धकार होने से संसार में व्याप्त निष्क्रियता का वर्णन किया है –

व्याख्या : दुष्ट व्यक्ति पर किये गये उपकार की भांति तारे नाश को प्राप्त हो गये हैं । (आकाश से विलीन हो गये है) पतियों से रहित स्त्रियों के समान दिशायें (सूर्य अथवा चन्द्रमा से वियुक्त होने के कारण) शोभित नहीं हो रहीं है । देवताओं के स्वामी इन्द्र के शस्त्र (वज्र) की अग्नि से अत्यन्त तप्त हुआ आकाश पिघला हुआ होकर जल रूप में गिर रहा है ।

जिस तरह दुर्जन व्यक्ति पर किया गया उपकार जैसे व्यर्थ चला जाता है उसी प्रकार आकाश मे स्थित तारे भो व्यर्थ हो गये हैं । अन्धकारातिशय के कारण उनका अस्तित्व समाप्त सा प्रतीत होने लगता है।

टिप्पणी : उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है । शिखरिणी छन्द है ।

धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीवितेनादित एवं तावत् ।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्कोपप्रसादा विफलीभवन्ति ।।

अन्वय : लोके घनैः वियुक्तस्य नरस्य आदितः एव जीवितेन किं तावत् यस्य कोपप्रसादाः प्रतीकारनिरर्थकत्वात् विफलीभवन्ति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् से उद्धृत है । इस श्लोक में चारुदत्त चेटी के मुख से स्वर्णभाण्ड का सुखद, समाधार सुनकर उसे पुरस्कार देना चाहता है किन्तु अपनी अंगुली अंगूठी हीन देखकर पुरस्कार प्रदान करने में स्वयं को असमर्थ पाकर स्वयं की अवस्था का वर्णन करता है –

व्याख्या : संसार में धनहीन व्यक्ति के जन्म से ही लेकर जीवित रहने से क्या लाभ ? जिसके प्रतिक्रिया करने में असमर्थ होने स क्रोध एवं प्रसन्नता दोनों पहले से ही निष्फल हो जाती है ।

धनहीन व्यक्ति की प्रसन्नता और अप्रसन्नता असमर्थ होने के कारण व्यर्थ हो जाती है क्येंकि वह व्यक्ति खुश होकर भो कुछ नहीं कर सकता और नाराज होकर भो कुछ नहीं बिगाड़ सकता । चारुदत्त चेटी के मुख से स्वर्णभाण्ड का अत्यन्त प्रिय समाचार सुनकर अपने

स्वभाव के अनुसार तत्काल पुरस्कृत करना चाहता हुआ भो जब अपनी निर्धनता को देखता है तो उसे लगता है कि ऐसे जीवन से तो मरना ही अच्छा है ।

टिप्पणी : अप्रस्तुत प्रशंसा तथा काव्यलिङ्ग अलंकार है । उपजाति छन्द है ।

शून्यैर्गृहैः खलु समाः पुरुषा दरिद्राः
कूपैश्च तोयरहितैस्तरुभिश्च शीर्णैः ।
यददृष्टपूर्वजनसंगमविस्मृताना –
मेवं भवन्ति विफलाः परितोषकालाः ।।

अन्वय : दरिद्राः पुरूषाः शून्यैः गृहैः तोयरहितैः कूपैः च शीर्णैः तरूभिः च समाः खलु यद् दृष्टपूर्वजनसंगमविस्मृतानाम् परितोषकालाः एवम् विफलीभवन्ति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के पंचम अंक से उदधृत है । इस श्लोक में चारुदत्त पुरस्कार प्रदान करने की इच्छा करता हुआ भो न दें पाकर पीड़ित होता हुआ कहता है –

व्याख्या : दरिद्र मनुष्य सूने घरों, जलरहित कूपों तथा शुष्क वृक्षों के समान है क्योंकि पूर्वकाल में परिचित लोगों के मिलने पर (आतुरता के कारण) अपनी वर्तमान दरिद्रता को भ्ल जाने वाले निर्धन लोगों के परितोष काल (पुरस्कार प्रदान करने के अवसर) इसी प्रकार व्यर्थ होते है ।

पहले धनी होकर बाद में जो निर्धन हो जाता है उसे जब अपने पुराने परिचित व्यक्ति मिलते हैं तो हर्षातिरेक के कारण अपनी वर्तमान अवस्था का ध्यान नहीं रहता है और वह पुरस्कार आदि देने की इच्छा करने लगता है किन्तु धनाभाव के कारण दे नहीं पाता है ।

टिप्पणी : उपमा तथा अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है वसन्ततिलका छन्द है ।

20.4 षष्ठ अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

प्रवहण विपर्यय' नामक षष्ट अंक कथा के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस अंक में वसन्तसेना के शकार की गाड़ी में चढ़ जाने का तथा आर्यक के चारुदत्त की गाड़ी में चढ़ जाने का वर्णन है । कई दृश्यों में समाप्त होने वाले इस अंक के प्रथम दृश्य में चेटी वसन्तसेना को सूचना देती है कि आर्य चारुदत्त जीर्णोधान गये हैं तथा आपको भो गाड़ी द्वारा वहीं आने की कह गये हैं, यह सुनकर वसन्तसेना अत्यन्त प्रसन्न होती है । तत्पश्चात् वसन्तसेना रत्नावली को धूता के पास भजती है किन्तु वह उसे लेने से इन्कार कर देती है । द्वितीय दृश्य में रदनिका रोहसेन को गोद में लेकर प्रवेश करती है और उसे खेलने के लिए मिट्टी की गाड़ी देती है किन्तु वह सोने की गाड़ी की जिद करता है । (इसी मृत् शकटिका (मिट्टी की गाड़ी) के नाम पर इस नाटक का नाम 'मृच्छकटिकम्' रखा गया है।) इस पर वसन्तसेना द्रवित होकर अपने आभ्षण सोने की गाड़ी बनवाने के लिए रोहसेन की गाड़ी में रख देती है । तृतीय दृश्य में चारुदत्त का सेवक वर्धमानक वसन्तसेना को लेने के लिए गाड़ी लेकर आता है । किन्तु बिछावन भ्ल जाने से गाड़ी सहित लौट जाता है । इसी बीच शकार का सेवक स्थावरक चेट शकार की गाड़ी चारुदत्त के दरवाजे के पास खडो कर देता है तथा स्वयं एक गाड़ीवान की सहायता करने अन्यत्र चला जाता है । इसी समय वसन्तसेना शकार की गाड़ी को चारुदत्त की गाड़ी समझकर बैठ जाती है । इतने में स्थावरक वापस आकर गाड़ी लेकर पुष्पकरण्डक उद्यान की ओर चल देता है । इधर वर्धमानक भो लौटकर चारुदत्त की वाटिका के द्वार पर गाड़ी रोक देता है । बन्धन तोड़कर भागा हुआ आर्यक छिपकर अपनी रक्षा के लिए उस गाड़ी में चढ़ जाता है । आर्यक को वसन्तसेना समझ वर्धमानक गाडी को जीर्णोद्यान की ओर ले जाता है । चतुर्थ दृश्य में – राजा के सेनाधिकारी वीरक तथा चन्दनक वर्धमानक से गाड़ी रोकत है । चन्दनक उसमें आर्यक को देखता है किन्तु आर्यक को अभयदान देने के कारण वीरक को वसन्तसेना बैठी है ऐसा कहता है । वीरक को सन्देह होने पर दोनों लड़ाई करते हैं किन्तु चन्दनक के

संकेत पर वर्धमानक गाड़ी ले जाता है । यहाँ षष्ठ अंक समाप्त हो जाता है । इस अंक की विभिन्न घटनाऐं पाठक के मन कौतूहल पैदा करती है तथा कथा के विकसित में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है ।

20.5 षष्ठ अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

भाग्यानि मे यदि तदा मम कोऽपराधो,
यद्वन्यनाग इव संयमितोऽस्मि तेन ।
दैवी च सिद्धिरपि लङ्घयितुं न शक्या,
गम्यो नृपो बलवता सह को विरोधः ।।

अन्वय : यदि मे भाग्यानि तदा मम कः अपराधः यत् तेन वन्यनागः इव संयमितः अस्मि । दैवी च सिद्धिः अपि लङ्घयितु न शक्या नृपः गम्यः बलवता सह कः विरोधः ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के षष्ठ अंक से लिया गया है । प्रस्तुत श्लोक म आर्यक शर्विलिक की सहायता से जेल से बाहर निकलने पर भाग्य की महिमा का वर्णन करता हुआ कहता है –

व्याख्या : यदि (राज्यप्राप्ति) मेरे भाग्य ही है तब मेरा क्या अपराध जिसके कारण उस राजा पालक ने मुझ जंगली हाथी के समान बन्धन में डलवा दिया था । विधि की शक्ति का उल्लंघन नहीं किया जा सकता । (फिर भो) राजा सेवा करने योग्य है क्योंकि बलवान् के साथ क्या विरोध ।

आर्यक भाग्य के महत्त्व को बतलाते हुए कहता है कि भाग्य में यदि राज्य प्राप्ति है तो वह अवश्य होगी। राजा पालक की आलोचना करता हुआ भो उससे शत्रुता रखने के पक्ष में नहीं है ।

टिप्पणी :– उपमा तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार है वसन्ततिलका छन्द है ।

त्यजति किल तं जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च ।
भवति च सदोपहास्यो यः खलु शरणागतं त्यजति ।।

अन्वय : यः शरणागतं त्यजति तं जयश्रीः खलु त्यजति मित्राणि वन्धुवर्गः च किल जहति सदा च उपहास्यः भवति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक कवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम नाटक के षष्ठ अंक से उदधृत है। इस श्लोक में चन्दनक शरणागत की रक्षा करना सर्वोपरि मानता हुआ कहता है ।

व्याख्या : जो शरणागत का त्याग कर देता है उस व्यक्ति को विजयलक्ष्मी छोड़ देती है । मित्र एवं
बन्धुगण भो छोड़ देते हैं तथा वह सदा उपहास का पात्र होता है ।शरणागत की रक्षा करना सर्वश्रेष्ठ है इस कारण चन्दनक समाज में निन्दा के भय से शरणागत आर्यक की रक्षा करना ही उचित मानता है।

टिप्पणी : समुच्चय अलंकार तथा आर्या छन्द है ।

20.6 सप्तम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

'आर्यकापहरण' नामक सप्तम अंक में आर्यक के अपहरण की घटना का वर्णन किया गया है । चारुदत्त तथा विदूषक वसन्तसेना के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं । उसी समय गाड़ी आती है विदूषक वसन्तसेना को उतारने के लिए पर्दा हटाता है किन्तु वहाँ उसे आर्यक दिखाई देता है वह डर जाता है तब स्वयं चारुदत्त देखता है तत्पश्चात उसे आर्यक जानकर उसको अभयदान देता है । चारुदत्त उसकी बेडियाँ कटवाकर कुएँ में डलवा देता है तथा आर्यक को शीघ्र ही अपनी गाड़ी से घर जाने को कहता है तथा वे दोनों भो घर की ओर चले जाते हैं । इस तरह सप्तम अंक की समाप्ति हो जाती है ।

20.7 सप्तम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रंसंग व्याख्या

किं यात्यस्य पुरः शनैः प्रवहणं तस्यान्तरं मार्गते ।
भग्नेऽक्षे परिवर्तनं प्रकुरुते ? छिन्नोऽथवा प्रग्रहः ?
वर्त्मान्तोज्झित–दारु–वारित–गतिर्मार्गान्तरं याचते ?
स्वैरं प्रेरितगोयुगः किमथवा स्वच्छन्दमागच्छति ?

अन्वय : किम् अस्य पुरः प्रवहणं शनैः याति तस्य अन्तरं मार्गते ? अथवा अक्षे भग्ने परिवर्तनं कुरुते, अथवा प्रग्रहः छिन्नः अथवा वर्त्मान्तोज्झितदारुवारितगतिः मार्गान्तरं याचते अथवा स्वैरं प्रेरितगोयुगः स्वच्छन्दं आगच्छति किम्?

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के सप्तम अंक से उदघृत है । इस श्लोक में चारुदत्त वसन्तसेना के विलम्ब के कारण अनेक शंकायें करता हुआ कहता है –

व्याख्या : क्या उसके (वर्धमानक) आगे धीरे–धीरे कोई दूसरी गाड़ी जा रही है और उससे निकालने का खाली रास्ता ढूँढ रहा है ? अथवा चक्र के टूट जाने से उसे बदल रहा है ? अथवा लगाम की रस्सी टूट गई है अथवा रास्ते के मध्य लकड़ियों के रखने से अवरूद्ध गति वाला अन्य मार्ग ढूँढ रहा है अथवा दोनों बैलों को धीरे–धीरे हांकता हुआ स्वन्छन्दतापूर्वक आ रहा है ।

वसन्तसेना को लेकर वर्धमानक नहीं आ सका इस विषय में चारुदत्त अनेक प्रकार की शंकायें कर रहा है । उसके मन में सन्देह हो रहा है कि कहीं सभो रास्ते बंद न कर दिये गये हो इस कारण वर्धमानक किसी अन्य सुरक्षित रास्ते से जाने की प्रार्थना कर रहा होगा ।

टिप्पणी : सन्देह अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

नरपतिपुरुषाणां दर्शनाद्भीतभीतः,
सनिगडचरणत्वात् सावशेषापसारः ।
अविदितमधिरूढो यामि साधोस्तु याने
परभृत इव नीडे रक्षितो वायसीभिः ।।

अन्वय : नरपतिपुरुषाणां दर्शनाद् भोतभोतः सनिगडचरणत्वात् सावशेषापसारः तु नीडे वायसीभिः रक्षितः परभतः इव साधोः याने अविदितम् अधिरूढ़ः यामि ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के सप्तम अंक से उद्धृत है इस श्लोक में गाड़ी में छिपकर बैठा हुआ आर्यक सोचता है –

व्याख्या : राजपुरूषों को देखने से अत्यन्त भयभोत, पैरों में बेडियाँ होने से भागने में पूर्णतया असमर्थ घोसलें में काक मादाओं द्वारा रक्षित कोयल के समान मैं सत्पुरूष (चारुदत्त) की गाड़ी में अनजाना ही आरूढ़ होकर जा रहा हूँ।

टिप्पणी : उपमा अलंकार तथा मालिनी छन्द है ।

परभतः कोकिल परैः भतः पुष्टः इति । यह प्रसिद्ध है कि कोयल अपना अण्डा कौवा के घोसलें में रख देती है और कौवी भमवश अपना अण्डा समझकर उसकी रक्षा करती हुई पालन–पोषण करती रहती है। आर्यक स्वयं को भो उसी तरह समझ रहा है । क्योंकि वह गाड़ी चारुदत्त की है और स्वतः ही आर्यक की रक्षा होती जा रही है ।

20.8 अष्टम अंक की संक्षिप्त व्याख्या

'वसन्तसेनामोटन' नामक यह अष्टम अंक है । इसमें शकार की वसन्तसेना को मारने का प्रयत्न वर्णित है । प्रथम दृश्य में गीले चीवर के साथ बौद्ध भिक्षुक पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में प्रवेश होता है । शकार उसे पीटने का प्रयत्न करता है किन्तु विट उसे बचा लेता है । द्वितीय दृश्य में स्थावरक चेट गाड़ी लेकर आता है । शकार गाड़ी में वसन्तसेना को देखकर घबड़ा जाता है वह बिट से कहता है कि गाड़ी में राक्षसी बैठी है । तब विट गाड़ी में वसन्तसेना को देखता है । तथा वसन्तसेना विट से अपनी रक्षा की प्रार्थना करती है । अतः विट शकार को पैदल ही चलने को कहता है किन्तु शकार नहीं मानता है । वह वसन्तसेना को फसलाने का प्रयास करता है, उसके पैरों में गिरता है किन्तु वसन्तसेना स्वीकार करने के स्थान पर पैर मार देती है । शकार कुद्ध होकर विट तथा चेट से वसन्तसेना को मारने को कहता है किन्तु वे दोनों ऐसा करने से इन्कार कर देते है । शकार उन दोनों को अलग कर स्वयं वसन्तसेना का गला दबा देता है । वह मूर्च्छित हो जाती है । तृतीय दृश्य में चेट के साथ विट पुनः प्रवेश करता है । विट के वसन्तसेना के बारे में पूछने पर शकार उसका मूर्च्छित शरीर दिखाता है । विट दुःखी होकर विलाप करता है । शकार चेट को पकड़कर अपने घर में बन्दी बना लेता है । वसन्तसेना के शरीर को सूखे पत्तों से ढककर स्वयं चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का आरोप लगाने न्यायालय की ओर जाता है । चतुर्थ दृश्य में शकार के जाते ही बौद्ध भिक्षु का प्रवेश होता है । वह अपने गीले वस्त्र सुखाने के लिए स्थान खोजता है । इसी बीच उसे पत्तों में से किसी के सास लेने की आवाज आती है । वसन्तसेना कुछ होश में आने पर अपना हाथ दिखाती है भिक्षु पत्ते हटाकर देखता है, उसे पहचान लेता है । वसन्तसेना के पानी मांगने पर अपना चीवर निचोड़कर पानी दे देता है तथा सहारा देकर वसन्तसेना को बौद्ध विहार की ओर ले जाता है । अष्टम अंक पूर्ण हो जाता है ।

20.9 अष्टम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

अमी हि वृक्षाः फलपुष्पशोभिताः
कठोर निष्पन्दलतोपवेष्टिताः ।
नृपाज्ञया रक्षिजनेन पालिता,
नराः सदारा इव यान्ति निर्वृतिम् ।।

अन्वय :– फलपुष्पशोभिताः कठोरनिष्पन्दलतोपवेष्टिताः अमी वृक्षाः नृपाज्ञया रक्षिजनेन पालिताः सदाराः नराः इव निर्वृतिम् यान्ति ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के अष्टम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में प्रकृति का मानवीकरण करते हुए विट के द्वारा उद्यान की शोभा का वर्णन किया गया है –

व्याख्या :– फल एवं पुष्पों से शोभायमान निश्चल लताओं से भली भांति आलिङ्गित, ये वृक्ष राजा की आज्ञा से रक्षकों द्वारा संरक्षित सपत्नीक पुरूषों के समान सुख प्राप्त कर रहे है ।

जिस तरह सपत्नीक पुरूष आनन्दित होते हैं उसी तरह लताओं से युक्त वृक्ष भो शोभायमान हो रहे हैं।

टिप्पणी :– उपमा अलंकार तथा वंशस्थ छन्द है ।

छायासु प्रतिमुक्तशष्पकवलं निद्रायते गोकुलं,
तृष्णार्तैश्च निपीयते वनमृगैरुष्णं पयः सारसम् ।
संतापादतिशङ्कितैर्न नगरीमार्गो नरैः सेव्यते,
तप्तां भूमिमपास्य च प्रवहणं मन्ये क्वचित्संस्थितम् ।।

अन्वय : गोकुल छायासु प्रतिमुक्तशष्पकवलं निद्रायते तृष्णार्तैः वनमृगैः च उष्णं सारसं पयः निपीयते । सन्तापात् अतिशङ्कितैः नरैः नगरी मार्गः न सेव्यते मन्ये तप्तां भ्मिं अपास्य प्रवहणं क्वचित् संस्थितम् ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के अष्टम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में विट ग्रीष्मसन्ताप का वर्णन कर रहा है तथा सोच रहा है कि गर्मी के कारण ही बैलगाड़ी आने से विलम्ब हो रहा है –

व्याख्या : गायों का झुण्ड कोमल घास के ग्रास को छोड़कर छाया में नींद ले रहा है । प्यास से व्याकुल जंगली जानवरों द्वारा सरोवर का गर्म जल पिया जा रहा है । गर्मी के कारण अत्यन्त भयभोत होकर मनुष्य नगर की सडक पर नहीं चल रहे हैं । अतः मैं समझता हूँ कि सन्तप्त भ्मि को छोड़कर वह बैलगाड़ी कहीं (शीतल प्रदेश) ठहर गयी है ।

शकार के द्वारा गर्मी के ताप का वर्णन किए जाने पर विट उसका समर्थन करते हुए स्वयं भो ग्रीष्म ऋतु के सन्ताप को वर्णित कर रहा है तथा समझ रहा है कि गर्मी के कारण ही बैलगाड़ी किसी शीतल स्थान पर रूक गयी है ।

टिप्पणी : स्वभावोक्ति अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

पश्यन्ति मां दश दिशो वनदेवताश्च,
चन्द्रश्च दीप्तिकिरणश्च दिवाकरोऽयम् ।
धर्मानिलौ च गगनश्च तथान्तरात्मा,
भूमिस्तथा सुकृति–दुष्कृति–साक्षिभूताः ।।

अन्वय : सुकृतिदुष्कृतसाक्षिभ्ताः दश दिशः वनदेवताः च चन्द्र च दीप्तकिरणः अयं दिवाकरः च धर्मानिलौ च गगनं च तथा अन्तरात्मा च तथा भ्मिः मां पश्यन्ति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के अष्टम अंक से लिया गया है । इस श्लोक में शकार विट से वसन्तसेना को मारने के लिए कहता है किन्तु शकार कहता है कि तुम्हें पाप करते हुए कोई नहीं देखेगा इसके प्रत्युतर में विट का कथन है –

व्याख्या : पुण्य और पाप की साक्षी दश दिशायें, वन के देवता, चन्द्रमा और दीप्त किरणों वाला यह सूर्य, धर्म तथा वायु, आकाश व अन्तरात्मा तथा पथ्वी वे सब मुझे देखती है ।

शकार विट को वसन्तसेना को मारने के लिए कहता है किन्तु विट इस पाप को करने से इन्कार करते हुए तर्क देता है कि उपर्युक्त विद्यमान सभो तत्त्व मेरे पाप के साक्षी होगें । इस कारण वह वसन्तसेना की हत्या करने से मना कर देता है ।

टिप्पणी : तुल्ययोगिता अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है । साक्षिभ्ता साक्षिणीभ्ता, साक्षात् + इन्

अप्येष नाम परिभूतदशो दरिद्रः,
प्रेष्यः परत्र फलमिच्छति नास्य भर्ता ।
तस्मादमी कथमिवाद्य न यान्ति नाशं
ये वर्द्धयन्त्यसदृशं सदृशं त्यजन्ति ।।

अन्वय : परिभ्तदशः दरिद्रः प्रेष्यः अपि एषः परत्र फलं इच्छति नाम अस्य भर्ता न, तस्मात् ये असदृशम् वर्धयन्ति सदृशं त्यजन्ति ते अद्य कथमिव नाशं न यान्ति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक रचित मृच्छकटिकम् के अष्टम अंक से उद्धृत है इस श्लोक मे विट का कथन है कि निर्धन व्यक्ति भो परलोक मे फल की आसक्ति रखता हुआ निकृष्ट कार्य नहीं करता है किन्तु यह शकार अनुचित कार्य करते हुए नष्ट क्यों नहीं होता है ।

व्याख्या : तिरस्कृत अवस्था में विद्यमान निर्धन सेवक भो यह परलोक में फल की इच्छा करता है, किन्तु इसका स्वामी शकार नहीं करता है । अतः जो अनुचित कम की वृद्धि करते हैं तथा उचित कम को छोड़ देते है व आज ही विनाश को प्राप्त क्यों नहीं होते ?

शकार के कार्यों से दुःखी होकर विट कहता है कि अनुचित कार्य करने वाला शकार सुखी तथा सम्पन्न है तथा धर्म का आचरण करने वाला चेट दयनीय अवस्था को प्राप्त है यह महान् आश्चर्य कला कार्य विधि का विधान है । अनुचित कार्य वाले जन इस संसार का विनाश करने के लिए क्यों बने रहते है उनका नाश क्यों नहीं हो जाता ।

टिप्पणी : अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है ।

दाक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता, याता स्वदेशं रतिः,
हा हा अलङ्कृतभूषणे ! सुवदने ! क्रीडारसोद्भासिनि
हा सौजन्यनदि ! प्रहासपुलिने ! हा ! मादृशां आश्रये
हा हा नश्यति मन्मथस्य विपणिः सौभाग्यपण्याकरः ।

अन्वय : दक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता रतिः स्वदेशं याता, हा, हा, अलङ्कृतभ्षणे ! सुवदने ! कीडारसोद्भासिनी । हा प्रहासपुलिने ! सौजन्यनदि । हा ! मादृशां आश्रये हा, हा मन्मथस्य विपणिः, सौभाग्यपण्याकरः नश्यति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के अष्टम अंक से उदधृत है । शकार के मुख से वसन्तसेना के वध को सुनकर आहत हुआ विट उसके गुणों का वर्णन करता हुआ विलाप करता है –

व्याख्या : उदारता रूपी जल की नदी नष्ट हो गयी, कामदेव की पत्नी रति अपने देश (स्वर्ग) चली गयी, हा ! आभ्षणों को अलंकृत करने वाली ! सुन्दर मुख वाली ! (काम) क्रीड़ा के आनन्द को उदभासित करने वाला हा ! हास रूपी बालू के तटों वाली सुजनता रूपी नदी ! हा ! मेरे जैसों की आश्रयभ्त । हाय । कामदेव का बाजार, सौभाग्य रूपी विक्रय पदार्थों की खान नष्ट हो गयी।

वसन्तसेना को विट ने गुणों की खान बतलाया है । उस खान के नष्ट हो जाने पर विट बहुत दुःखी होता है ।

टिप्पणी : रूपक अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है । करुण रस है ।

20.10 नवम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

'व्यवहार' नामक नवम अंक है । इसमें शकार द्वारा चारुदत्त पर लगाये गये अभियोग पर विचार दिखाया गया है । शकार न्यायालय में जाकर सूचना देता है कि पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में वसन्तसेना मृत पड़ी है तथा उसकी हत्या का आरोप चारुदत्त पर लगाता है । न्यायाधिकारी वास्तविक तथ्य को जानने के लिए वसन्तसेना की माता को बुलाते है तो पता चलता है कि वह चारुदत्त से मिलने गई थी । यह सुनकर न्यायाधिकारी चारुदत्त को बुलाते है । चारुदत्त घबड़ाहट तथा दुःख के कारण वसन्तसेना के सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर नहीं दे पाता है । इतने में चन्दनक से अपमानित हुआ वीरक आता है तथा गाड़ी में बैठकर जाती हुयी वसन्तसेना के बारे में कहता है । वीरक को जीर्णोद्यान भजा जाता है वह पता लगाता है कि वहाँ कोई मृत स्त्री पड़ी है । इसी बीच विदूषक भो वसन्तसेना के गहने लेकर न्यायालय में आ जाता है । शकार तथा विदूषक में वाद विवाद होता है तथा मारपीट में आभ्षण भ्मि पर गिर जाते है । शकार कहता है कि ये आभ्षण वसन्तसेना के है और इन्हीं के कारण चारुदत्त ने वसन्तसेना की हत्या की है । चारुदत्त यह स्वीकार करता है कि ये आभ्षण वसन्तसेना के है किन्तु यह स्पष्ट नहीं कर पाता कि ये आभ्षण उसके पास कैसे आये ? इन सभो घटनाओं से चारुदत्त के विरूद्ध अभियोग सिद्ध हो जाता है । न्यायाधिकारी अपना निर्णय राजा पालक के पास भजते है कि चारुदत्त ब्राह्मण है अतः इसे मृत्युदण्ड न देकर धन सहित राज्य से बाहर कर दिया जाए । किन्तु राजा पालक चारुदत्त

को मृत्युदण्ड की आज्ञा देता है । यह सुनकर चारुदत्त अत्यन्त दुःखी होकर अपने पुत्र रोहसेन को याद करता है । नवम अंक यहाँ समाप्त हो जाता है ।

20.11 नवम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

छन्नं कार्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृतं
स्वान् दोषान् कथयन्ति नाधिकरणे रागाभिभूताः स्वयम् ।
तैः पक्षापरपक्षवर्द्धितबलैर्दोषैर्नृपः स्पृश्यते
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः ।।

अन्वय : पुरुषाः न्यायेन दूरीकृतं कार्यं छन्नं उपक्षिपन्ति, स्वयं रागाभिभूताः दोषान् अधिकरणे न कथयन्ति, पक्षापरपक्षवर्द्धितबलैः तैः दोषैः नृपः स्पृश्यते संक्षेपात् द्रष्टुः अपवादः एक सुलभः गुणः दूरतः ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के नवम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में न्यायाधिकारी की समाज में निन्दा के कारणों को कहते है –

व्याख्या : लोग (वादी तथा प्रतिवादी) न्याय से रहित गलत कार्य को दूसरे रूप में उपस्थित करते है। स्वयं आसक्ति से युक्त होकर दोषों को न्यायालय में नहीं कहते हैं । वादी और प्रतिवादी दोनों के द्वारा जिसके सामर्थ्य (अपकीर्तिजन) को बढ़ा दिया गया है ऐसे दोषों से राजा छुआ जाता है (अर्थात् निर्णय की अयथार्थता का दोष राजा पर लगता है) संक्षेप में न्यायाधीश को अपकीर्ति मिलना सुगम है कीर्ति तो दूर की बात है।

वादी तथा प्रतिवादी न्यायाधिकारियों को सत्य बात छिपाकर चालाकी से अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं । न्यायाधिकारी को उन्हीं बातों को सत्य मानकर निर्णय करना पड़ता है । अतः सही निर्णय अत्यन्त मुश्किल हो जाता है और न्यायाधिकारी समाज में निन्दा के पात्र बन जाते है । ऐसा लगता है प्राचीनकाल मे भो न्यायप्रणाली दोषों से रहित नहीं थी ।

टिप्पणी : काव्यलिङ्ग अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

शास्त्रज्ञः, कपटानुसारकुशलो वक्ता न च क्रोधन
स्तुल्यो मित्र–पर–स्वकेषु, चरितं दृष्ट्वै दत्तोत्तरः ।
क्लीबान् पालयिता शठान् व्यथयिता धर्म्यो न लोभान्वितो,
द्वार्भावे परतत्त्वबद्धहृदयो, राज्ञश्च कोपापहः ।।

अन्वय : शास्त्रज्ञः, कपटानुसारकुशलः वक्ता न च क्रोधनः मित्रपरस्वकेषु तुल्यः चरितं दष्ट्वा एव दत्तोत्तरः क्लीवान् पालयिता शठान् व्यथयिता धर्म्यः न लोभान्वितः द्वार्भावे परतत्त्वबद्धहृदयः च राज्ञः कोपावहः च।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के नवम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में न्यायाधीशोचित गुणों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है –

व्याख्या : शास्त्रों का ज्ञाता, कपट को समझने में कुशल, वक्ता तथा क्रोध न करने वाला होता है । मित्र शत्रु तथा स्वजनों में समान भाव रखने वाला (वादी तथा प्रतिवादी) व्यवहार को देखकर निर्णय देने वाला, दुर्बलों का रक्षक, धूर्तों को दण्ड देने वाला, धार्मिक लोभरहित, तथा उपाय के संभव रहने पर दूसरों की यथार्थ बात को जानने में दत्तचित्त एवं राजा के क्रोध को शान्त करने वाला होता है ।

न्यायाधिकारी के बारे में कहा है कि उसे शास्त्रज्ञ, अच्छा वक्ता, समभाव रखने वाला, हाजिर जवाबी,
धार्मिक, लोभ से रहित, अशक्तों का रक्षक, धूर्तों को दण्डित करने वाला, वास्तविकता का पता लगाने वाला तथा वाणी की चतुरता से राजा के क्रोध को शान्त करने वाला होना चाहिए ।

टिप्पणी : शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

द्वाभावे – अवसर या उपाय होने पर ।

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूतोर्मिशङ्खाकुलं,
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागाश्वहिंस्त्राश्रयम्
नानावाशककङ्कपक्षिरचितं कायस्थसर्पास्पदं
नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते ।।

अन्वय : चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूतोर्मिशूड.खाकुलं पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागाश्वहिंस्त्राश्रयं नानावाशककङ्कपक्षिरचितं कायस्थसर्पास्पदं नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के नवम अंक से उद्घृत है । इस श्लोक में कवि ने चारुदत्त के मुख से कहलाया है कि न्यायालय में प्रवेश करना समुद्र के समान दुष्कर है –

व्याख्या : जहाँ चिन्तन में तत्पर तथा निमग्न ही जल के समान है, जो दूत रूपी लहरों और शखों से भरा हुआ है जिसमें इधर–उधर विद्यमान गुप्तचर रूपी घड़ियाल और मगरमच्छ है, जो हाथी और घोड़े रूपी हिंसक जन्तुओं का आश्रय स्थल है, जो बहुत प्रकार के शब्द करने वाले वादी और प्रतिवादी रूपी कंक पक्षियों से व्याप्त है, जो कायस्थ रूपी सर्पों का स्थान है, जिसका नीति रूपी किनारा टूट गया है, ऐसा न्यायालय हिंसक लोगों के कारण समुद्र के समान हो गया है ।

यहाँ न्यायालय को सागर के समान बताया है जिस प्रकार समुद्र में प्रवेश करना हिंसक जन्तुओं के कारण मुश्किल है उसी प्रकार श्रेष्ठ न्याय के लिए न्यायालय में जाना मुश्किलों से भरा हुआ है ।

टिप्पणी : रूपक अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

दूत राजदूत, चार गुप्तचर, वाशक शब्द करने वाले, वादी प्रतिवादी जन,

नीति0 जिस प्रकार नदियों के द्वारा सागर तट काट दिया जाता है इसी प्रकार नीति के द्वारा मर्यादा को तोड़ दिया जाता है ।

कंकपक्षी – समुद्रतट पर विचरण करने वाला पक्षी विशेष ।

कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेषं,
दत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि ।
स श्रेयसां कथमिवैकनिधिर्महात्मा,
पापं करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम् ।।

अन्वय :–येन हि समुद्रं उदकोच्छ्रयमात्रशेषं कृत्वा अनपेक्षितानि धनानि दत्तानि श्रेयसां एकनिधिः सः महात्मा धनार्थं अवैरिजुष्टं पापं कथम् इव करिष्यति ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के नवम अंक से उद्घृत हैं इस श्लोक में न्यायाधिकारी कहता है कि दया–दाक्षिण्यादि से युक्त चारुदत्त के द्वारा वसन्तसेना का वध किसी प्रकार नहीं किया जा सकता –

व्याख्या : जिस चारुदत्त ने (समस्त रत्नों का दान करके) समुद्र को केवल जल की प्रचुरता मात्र है शेष जिसमें ऐसा बनाकर (याचकों द्वारा) बिना मांगे ही धन सम्पतियों का दान कर दिया, कल्याणों का सबसे बड़ा आश्रय वह महात्मा धन के लिए शत्रुओं के द्वारा भो न करने योग्य पाप कैसे करेगा ? अर्थात् नहीं कर सकता है ।

जो चारुदत्त इतनी उदारप्रकृति का है कि जिस तरह समुद्र में से सभो रत्नों तथा बहुमूल्य पदार्थों को हटा देने पर समुद्र का केवल जल मात्र शेष रह जाता है उसी तरह उस चारुदत्त ने भो धन–धान्य इत्यादि का दान करके केवल अपने अस्तित्व मात्र को शेष रखा है वह महात्मा धन के लिए वसन्तसेना को मारेगा, यह कथमपि संभव नहीं है ।

टिप्पणी :– वसन्ततिलका छन्द तथा अतिशयोक्ति अलंकार है ।

विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते मे विचारे,
क्रकचमिह शरीरे वीक्ष्य दातव्यमद्य ।
अथ रिपुवचनात्त्वं ब्राह्मणं मां निहंसि,
पतसि नरकमध्ये पुत्रपौत्रैः समेतः ।।

अन्वय :– विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते मे विचारे, वीक्ष्य अद्य इह शरीरे क्रकचं दातव्यम् अथ रिपुवचनात् वा ब्राह्माणं मां निहंसि, पुत्रपौत्रैः समेतः नरकमध्ये पतसि ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के नवम अंक से उद्धृत है । भावी मृत्यु को निश्चित जान चारुदत्त दिव्य परीक्षा के साधन विष, पानी तुला तथा अग्नि को साक्षी मानकर स्वयं को निरपराध मानता है तथा क्रोधवश मृत्युदण्ड देने वाले को नरकगामी बनाता है –

व्याख्या :– मेरे विचार में विष, पानी, तुला तथा अग्नि से परीक्षा अभोष्ट है, अतः आज ठीक तरह से विचार करके मेरे शरीर पर 'आरा' चलवाना चाहिए । यदि शत्रु शकार के वचनों से ही मुझ ब्राह्मण को मार डालते हो तो पुत्र, पौत्रों के साथ नरक के मध्य गिरोगे ।

टिप्पणी :– काव्यलिंग अलंकार तथा मालिनी छन्द है । प्राचीनकाल में किसी व्यक्ति को निरपराध साबित करने के लिए दिव्य परीक्षा होती थी । जैसा कि याज्ञवल्क्य ऋषि ने बतलाया है – (1) विष खिलाने पर भो विष का प्रभाव न होना (2) पानी में डुबोने पर भो न मरना बराबर का वजन रखने पर भो निरपराधी का पलड़ा ऊपर उठ जाना (4) हाथ पर अभिमत्रित पीपल के सात पत्ते रखकर उसके ऊपर जलता हुआ गोला रखने पर भो न जलना । ये किसी के निर्दोष होने के प्रमाण माने जाते थे । वीक्ष्य – भली–भांति देखकर, वि + ईक्ष्–ल्यप् ब्राह्मण ब्राह्मणः अपत्यम् पुमान् ब्राह्मणः ब्राह्मण् + अण् ।

ऐसा लगता है कि तत्कालीन न्यायप्रणाली तथा आज की न्यायप्रणाली समान है । विचारपूर्वक निर्णय लेना उस समय भो संभव नहीं था ।

20.12 दशम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

'संहार' नामक इस अन्तिम अंक में सभो कथाओं का उपसंहार हो जाता है । एक तरफ तो वसन्तसेना 'वधू' पद से अलकृत होती है दूसरी तरफ राजा पालक को मारकर आर्यक उज्जयिनी के राज्य का स्वामी बन जाता है । प्रथम दृश्य में दो चाण्डाल चारुदत्त को वध स्थान की ओज ले जाते हुए दिखाई देते हैं । चारुदत्त को मृत्युदण्ड की वेशभ्षा पहना दी गई है। उसे देखने अपार भोड़ लगी है सभो अत्यन्त दुःखी हो रहे है । इस समय शकार का सेवक स्थावरक कैदखाने से कूदकर भागा हुआ चाण्डालों के पास आता है तथा कहता है कि वसन्तसेना को शकार ने मारा है । इधर शकार भो स्थावरक को ढूंढता हुआ वहां आ जाता है और स्थावरक को झूठा सिद्ध कर देता है । द्वितीय दृश्य में वसन्तसेना और भिक्षु चारुदत्त के घर की ओर जाते है । किन्तु भोड़ को देखकर वसन्तसेना उस भोड़ का कारण जानना चाहती है । इतने में चारुदत्त वध की चाण्डलों की आखिरी घोषणा सुनाई देती है । अतः वसन्तसेना और भिक्षु शीघ्रता से मृत्यु स्थल की ओर जाते हैं । इधर चाण्डाल चारुदत्त का वध करने के लिए तलवार खींचता है लेकिन तलवार हाथ से गिर जाती है । तब चाण्डाल चारुदत्त को शूली पर चढ़ाने की कहते है । इसी समय वसन्तसेना और भिक्षु वहाँ पहुँच जाते है । वसन्तसेना कहती है कि मैं ही वह अभागिनी हूँ । जिसके कारण आर्य चारुदत्त को मृत्युदण्ड दिया गया है । वसन्तसेना को देखकर चारुदत्त प्रसन्न होता ह । इधर चाण्डाल राजा पालक को वसन्तसेना के जीवित होने की सूचना देने के लिए चले जाते हैं । शकार वसन्तसेना को देखकर घबड़ा जाता है । तृतीय दृश्य में शर्विलक का प्रवेश होता है । वह सूचना देता है कि 'आर्यक' ने राजा 'पालक' का वध कर दिया है । वह अपना और राजा का परिचय देकर चारुदत्त से 'कुशवती' नगरी का राज्य स्वीकार करने की प्रार्थना करता है । तभो शकार को पकड़ कर लोग चारुदत्त के पास लाते है ।

शर्विलक उसे मृत्युदण्ड देना चाहता है किन्तु चारुदत्त के क्षमाकर देता है । चतुर्थ दृश्य में चारुदत्त मृत्युदण्ड से दुःखी उसकी धर्मपत्नी धूता अग्नि में प्रवेश होना चाहती है । तभो चारुदत्त वहाँ आकर बोलता है उसकी आवाज पहचानकर धूता प्रसन्न हो जाती है । वसन्तसेना तथा धूता परस्पर अलिङ्गन करती है । इसी समय शर्विलक वसन्तसेना से कहता है कि आर्यक राजा तुम्हे वधू पद से अलंकृत करते हैं । भरतवाक्य के साथ नाटक का दशम अंक समाप्त हो जाता है ।

20.13 दशम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

मखवशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं मे,
सदसि निविडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात् ।
मम मरणदशायां वर्त्तमानस्य पापै,
स्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम् ।।

अन्वय :– पुरस्तात् मे मखशतपरिपूतं गोत्रं सदसि निविडचैत्यब्रह्मघोषैः उद्भासितं मरणदशायां वर्तमानस्य मम तत् पापैः असदृशमनुष्यैः घोषणायां घुष्यते ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक रचित उनके प्रसिद्ध नाटक मृच्छकटिकम् के दशम अंक उद्धृत है । इस श्लोक में चारुदत्त व्यथित होकर कहता है कि किस तरह पूर्वजों के द्वारा किए गए श्रेष्ठ कर्मों से यश को प्राप्त होने वाला मेरा कुल कलुषित किया जा रहा है –

व्याख्या :– पहले सैकड़ो यज्ञो से पवित्र किया गया मेरा वंश सभास्थलों में लोगों से भरे हुये यज्ञस्थलों पर, वेदों के पाठों से प्रकाशित हुआ था, मरणावस्था में विद्यमान होने पर मेरा वही कुल पापी तथा अयोग्यजनों के द्वारा घोषणा स्थल में घोषित किया जा रहा है या पुकारा जा रहा है ।

चारुदत्त कहता है कि मेरा कुल पूर्वजों के द्वारा आचरित श्रेष्ठ कर्मों के कारण महान् था किन्तु इस समय अपराध घोषणा स्थल पर मेरे अपराध की घोषणा कर किस प्रकार कलुषित किया जा रहा है ।

टिप्पणी :– विषम अलंकार तथा मालिनी छन्द है ।

चैत्य – यज्ञ का स्थान चित्या–अग्नि चि + क्यप् चैत्यम् चित्या + अण्

अमी हि वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः, प्रयान्ति मे दूरतरं वयस्याः ।
परोऽपि बन्धुः सुखसंस्थितस्य मित्रं, न कश्चिदिवषमस्थितस्य ।।

अन्वय :– अमी में वयस्याः वस्तान्तनिरुद्धवक्त्राः दूरतरं प्रयान्ति हि सुखसंस्थितस्य परः अपि बन्धुः विषमस्थितस्य कश्चित् मित्रं न ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक कवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के दशम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में कवि ने चारुदत्त के माध्यम से कहता है दुःख में निमग्न व्यक्ति का कोई भो मित्र नहीं होता है ।

व्याख्या : ये मेरे मित्र वस्त्र के छोर से अपना मुंह ढके हुए दूर जा रहें हैं क्योंकि सुख की अवस्था में अन्य जन भो सम्बन्धी हो जाते है किन्तु आपत्ति में स्थित व्यक्ति का कोई मित्र नहीं होता है ।

चारुदत्त दूर भागते हुए मित्रों को देखकर स्वयं की विपद् अवस्था को देखते हुए विचार करता है कि विपत्ति में कोई भो किसी का सहायक नहीं होता है ।

टिप्पणी :– अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा आर्या छन्द है ।

प्राप्तोऽहं व्यसनकृशां दशामनार्या,
यत्रेदं फलमपि जीवितावसानम् ।

एषा च व्यथयति घोषणा मनो मे,
श्रोतव्यं यदिदमसौ मया हतेति ।।

अन्वय :– अहं व्यसनकृशां अनार्यां दशां प्राप्तः यत्र इदं जीवितावसानं फलं अपि एषा च घोषणा मे मनः व्यथयति यत् इदं श्रोतव्यं असौ मया हता इति ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् दशम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में चारुदत्त विपत्तिग्रस्त स्वयं की शोचनीय दशा से व्यथित हो रहा है ।

व्याख्या :– मैं विपत्ति के कारण हीन एवं गर्हित दशा को प्राप्त हो गया हूँ । जिस दशा का जीवन की समाप्ति फल है और यह घोषणा मेरे मन को पीड़ित कर रही है । जो यह सुनना पड़ रहा है कि इस (वसन्तसेना) को मैंने मारा है ।

चारुदत्त कहता है कि वसन्तसेना मेरी प्राणभृत थी किन्तु विपत्ति के कारण उसे मैने मारा है ऐसा सुनने में असमर्थ होते हुए भो विवशता के कारण सुनना पड़ रहा है ।

टिप्पणी :– प्रहर्षिणी छन्द है ।

रक्तं तदेव वरवस्त्रमियं च माला,
कान्तागमेन हि वरस्य यथा विभाति ।
एते च बध्यपटहध्वनयस्तथैव,
जाता विवाहपटहध्वनिभिः समानाः ।।

अन्वय :– कान्तागमेन तदेव रक्तं वरवस्त्रं इयं माला च वरस्य यथा हि विभति तथैव च एते वध्यपटहध्वनिभिः समानाः जाताः ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के दशम अंक से उद्धृत है । वसन्तसेना के मृत्युस्थल पर अकस्मात् आ जाने से चारुदत्त को वध्यस्थल के चिह्न विवाहस्थल के चिह्न में परिवर्तित से लग रहे हैं–

व्याख्या :– प्रिया के आ जाने से वही लाल वस्त्र दूल्हे के वस्त्र और यह माला वरमाला के समान शोभित हो रही है। तथा उसी तरह वध के लिए बजने वाली नगाड़े की ध्वनियाँ विवाह के बाजों की ध्वनियाँ के समान हो गयी है । अर्थात् अप्रिय वस्तु प्रिय वस्तु के रूप में परिवर्तित हो गई है ।

वसन्तसेना के मृत्युस्थल पर आने पर चारुदत्त को अकस्मात् जीवनदान मिल जाता है ।

टिप्पणी :– उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है ।

दिष्ट्या भो व्यसनमहार्णवादपारा–
दुत्तीर्णं गुणधृतया सुशीलवत्या ।
नावेव प्रियतमया चिरान्निरीक्षे,
ज्योत्स्नाढ्यं शशिनमिवोपरागमुक्तम् ।।

अन्वय : भोः दिष्ट्या गुणधृतया सुशीलवत्या नावा इव प्रियतमया अपारातव्यसन महार्णवात् उत्तीर्ण उपरागमुक्त ज्योत्स्नाढ्यं शशिनमिव चिरात् निरीक्षे ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के दशम अंक से उदधृत है । इस श्लेषात्मक श्लोक में वसन्तसेना की तुलना नौका से करते हुए तथा चारुदत्त को चांद के समान बताते हुए । शर्विलक अत्यन्त प्रसन्न होकर कहता है ।

व्याख्या : हे सज्जनों ! सौभाग्य से गुणों (उदारता, दाक्षिण्य आदि, नाव पक्ष में–रस्सियों से) से आकृष्ट, सुन्दर स्वभाव बाली (पक्ष में – अच्छी बनी हुयी, सुघटित) नौका के समान प्रियतमा वसन्तसेना के द्वारा पार न कर सकने योग्य विपत्ति रूपी महासागर से बचाये गये चारुदत्त को राहुग्रास से मुक्त चान्दनी से युक्त चन्द्रमा के समान मैं बहुत समय में देख रहा हूँ ।

जिस तरह राहु से मुक्त तथा चांदनी से युक्त चन्द्रमा लोगों के लिए आनन्ददायक होता है । उसी तरह विपत्ति से मुक्त और वसन्तसेना से युक्त चारुदत्त का दर्शन शर्विलक के लिए आनन्दकारी बन गया है।

टिप्पणी : रूपक, उपमा, श्लेष अलंकार तथा प्रहर्षिणी छन्द है ।

उपरागः उपरज्यते इति उपरागः,

उप + रञ्ज् + घञ्

कांश्चितुच्छयति प्रपूरयति वा कांश्चिन्नयत्युन्नतिं,
कांश्चित्पातविधौ करोति च पुनः कांश्चिन्नयाकुलान्
अन्योन्यं प्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधय
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः ।।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के दशम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में सुख–दुःख से परिपूर्ण इस जीवन में विधाता के द्वारा खेली गई क्रीड़ाओं का वर्णन चारुदत्त करता है –

अन्वय : कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तः एषः विधिः अन्योऽन्यं प्रतिपक्षसंहतिं इमां लोकस्थितिं बोधयन् क्रीडति, कांश्चित् तुच्छयति, कांश्चित वा प्रपूरयति कांश्चित् उन्नतिं नयति कांश्चित् पातविधौ करोति पुनः कांश्चित् च आकुलान नयति ।

व्याख्या : कुऐं के रहट की बाल्टियों की पद्धति का अनुसरण करने वाला यह भाग्य परस्पर विरोधी

धर्मों की समूह रूप इस लोक स्थिति को बताता हुआ खेलता है । किन्हीं को रिक्त (तुच्छ) करता है किन्ही को पूर्ण करता है । किन्ही को उन्नति की ओर ले जाता है किन्हीं का पतन करता है और किन्हीं को व्याकुल कर देता है ।

चारुदत्त अपने जीवन में विधि के विभिन्न प्रभावों को देखकर कहता है कि कूप के रहट की भांति भाग्य भो सांसारिक जनों की दशा में परिवर्तन करता रहता है कभो किसी को ऊपर लाता है तो किसी को नीचे गिरा देता है । चारुदत्त अपने जीवन में भाग्य की इन विलक्षणता का स्वयं अनुभव कर चुका है। अतः वह इन घटनाओं से अत्यधिक दुःखी या अत्यन्त प्रसन्न नहीं होना चाहता ।

टिप्पणी : निदर्शना अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द तुच्छति हल्का या दरिद्र करता है ।

तुच्छं करोति इति तुच्छ + णिच् (नामधातु)

20.14 पारिभाषिक शब्दावली

संहतबलाकगृहीतशड्.ख–बलाकाएँ मेघो के साथ पंक्तिबद्ध या समूह रूप में चलती है।

वायसीभिः रक्षितः–यह प्रसिद्ध है कि कोयल अपना अण्डा कोवा के घोंसले में रख देती है ।कौवी भ्रमवश अपना अण्डा समझकर उसकी रक्षा करती हुई पालन–पोषण करती रहती है।

पुष्पकरण्डक – एक उद्यान का नाम है जिसका अर्थ है – पुष्पों की डलिया ।

मृच्छकटिकम् – मिट्टी की गाडी ।

मृत्शकटिका की सुवर्णशकटिका पर विजय, दरिद्रता की वैभव पर, प्रकृति की विज्ञान पर होने वाली विजय का अभिव्यञ्जक है ।

मृच्छकटिकम् प्रकरण – मृच्छकटिक को रूपक के एक भेद 'प्रकरण' की कोटि में रखा है । प्रकरण में वृत्त लौकिक तथा कविकल्पित होता है । शृंगार मुख्य रस होता है । ब्राह्मण आदि में से कोई एक नायक होता है । ये सभी लक्षण मृच्छकटिकम् में घटित होते हैं ।

कंकपक्षी – समुद्रतट पर विचरण करने वाला पक्षी विशेष ।

20.15अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1 भविष्यवाणी के माध्यम से किसे राजा घोषित किया गया था –
(क) पालक (ख) आर्यक (ग) चारुदत्त (द) शर्विलक

प्र.2 'मृच्छकटिकम्' का शाब्दिक अर्थ है –
(क) मिट्टी की गाडी (ख) सोने की गाड़ी

(ग) लकड़ी की गाडी (द) उपरोक्त में कोई नहीं

प्र.3 नाटक के अंत में राजा कौन बनता है –

(क) शकार (ख)पालक (ग) वसन्तसेना (द) आर्यक

प्र.4 'कूलवधु' पद से कौन अलंकृत होता है –

(क) मदनिका (ख) द्यूता (ग) वसन्तसेना (द) चेटी

प्र.5 भ्रमवश वसन्तसेना किसकी गाड़ी में बैठ जाती है –

(क) चारुदत्त की(ख) शकार की (ग) शर्विलक की(द) आर्यक की

प्र.6 'वन्यनागः' से यहाँ तात्पर्य है –

(क) जंगली हाथी (ख) जंगली नाग (ग) जंगल का पर्वत (द) जंगली सर्प

प्र.7 'पुष्पकरण्डक' उद्यान में वसन्तसेना के आने में विलम्ब का कारण था –

(क) गाडी बदल जाने से (ख) चक्र टूट जाने से

(ग) लगाम की रस्सी टूटने से (द) वर्धमानक द्वारा विश्राम करने से

प्र.8 'वायसीभिः रक्षितः' के समान था –

(क) चारुदत्त (ख) शकार (ग) आर्यक (द) वसन्तसेना

अभ्यास –

1. प्राचीन काल में दिव्य परीक्षा के कौन–कौन से साधन थे ?
2. मृच्छकटिकम् के पंचम अंक के आधार पर प्रकृति–चित्रण कीजिए ?
3. न्यायाधीश में कौन–कौन से प्रमुख गुण होने चाहिए ?
4. मृच्छकटिकम् के षष्ठ अंक का सार अपने शब्दों में लिखिए ?

बोध प्रश्न एवं अभ्यासों के उत्तर

1. ख
2. क
3. घ
4. ग
5. ख
6. क
7. क
8. ग

अभ्यासों के उत्तर

1. विष, पानी, तुला, अग्नि
2. देखिए पंचम अंक के प्रमुख श्लोक
3. देखिए नवम अंक का श्लोक शास्त्रज्ञ
4. देखिए षष्ठ अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

20.16 सारांश

इस इकाई में आप शूद्रक कृत 'मृच्छकटिकम्' के पंचम अंक से लेकर दशम अंक तक के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या पढ़ चुके हैं । पंचम अंक में वसन्तसेना व चारुदत्त के प्रणय की परिणति प्रस्तुत की गई है। उत्कण्ठित अवस्था में बैठे हुए चारुदत्त को जब वसन्तसेना के आगमन का समाचार मिलता है वह हर्षित हो उठता है । विट के साथ जब वसन्तसेना चारुदत्त के घर जाती है तो दोनों वर्षा का सुन्दर वर्णन करते हैं । शूद्रक के द्वारा प्रकृति चित्रण का मनोहर रूप इस अंक में प्रस्तुत किया है । जब चारुदत्त को यह पता चलता है कि वसन्तसेना स्वर्णभाण्ड लौटाने आयी है तब उसे सुखद आश्चर्य होता है । षष्ठ अंक उस घटना से सम्बन्धित है, जिसने नाटक को शीर्षक प्रदान किया है । चारुदत्त का पुत्र रोहसेन सोने की गाड़ी के लिए जिद करता है । रदनिका द्वारा प्रदत्त मौखिक सान्त्वना से वह सन्तुष्ट नहीं होता है । वसन्तसेना उस दृश्य को देखकर द्रवित हो जाती है और अपने सोने के आभूषण उतार कर मिट्टी की गाडी में रख देती है तथा कहती है कि इन आभूषणों से सोने की गाड़ी बनवा लेना । यह वाक्य ही नाटक के नामकरण का आधार है । इसके अतिरिक्त इस अंक में वसन्तसेना तथा आर्यक की गाडी बदल जाने की घटना का वर्णन है । जो मुख्य अंशों के माध्यम से स्पष्ट है । सप्तम अंक में आर्यक को चारुदत्त द्वारा अभय–दान का वर्णन है ।चारुदत्त वसन्तसेना के स्थान पर आर्यक को देखकर तथा आर्यक की बात सुनकर उसकी रक्षा करने का वचन देता है । अष्टम अंक में शकार द्वारा

वसन्तसेना के वध का वर्णन है । गाड़ी के अदला–बदली के कारण शकार जब गाड़ी में वसन्तसेना को देखता है तो प्रसन्न होकर उसे रमण के लिए प्रार्थना करता है किन्तु वसन्तसेना के द्वारा इन्कार कर दिए जाने पर शकार उसका गला दबा देता है । तथा हत्या का अभियोग चारुदत्त पर लगाने के लिए न्यायालय चला जाता है । नवम अंक में न्यायालय के दृश्य को उपस्थित किया है इस अंक चारुदत्त के ऊपर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग लग जाता है । अपराध घोषित होने पर राजा पालक चारुदत्त को मृत्युदण्ड दे देता है । दशम अंक में चारुदत्त को मारने के लिए शीघ्रता करने पर भी अचानक वसन्तसेना उस स्थान पर आ जाती है । चारुदत्त मृत्युदण्ड पाने से बच जाता है । इधर राजा पालक का भी 'आर्यक' वध कर देता है तथा वसन्तसेना को 'कूलवधू' पद से अलंकृत करता है ।

इस इकाई को पढ़ने के बाद पंचम अंक से लेकर दशम अंक तक की संक्षिप्त कथावस्तु तथा प्रमुख स्थलों की व्याख्या विद्यार्थीगण आसानी से कर सकते हैं ।

20.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृच्छकटिकम् – डॉ जयशंकर लाल त्रिपाटी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 1993
2. मृच्छकटिकम् – डॉ श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ,1995
3. शुद्रक का मृच्छकटिकम् – डॉ विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1998
4. मृच्छकटिकम् – शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन – डॉ शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी1998

इकाई – 21

मृच्छकटिकम् – प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

इकाई रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 चारुदत्त का चरित्र–चित्रण
  21.2.1 व्यक्तित्व
  21.2.2 उदार एवं दयालु
  21.2.3 शरणागत रक्षक
  21.2.4 धर्मपरायण तथा भाग्यवादी
  21.2.5 आदर्शप्रेमी
  21.2.6 प्रतिष्ठा प्रेमी
  21.2.7 कला प्रेमी
  21.2.8 पुत्र स्नेह
21.3 वसन्तसेना का चरित्र–चित्रण
  21.3.1 व्यक्तित्व
  21.3.2 वैभवशालिनी
  21.3.3 उदारहृदया
  21.3.4 अतिप्रतिभाशाली
  21.3.5 चारुदत्त से अटूट प्रेम
  21.3.6 धूता के प्रति आदरभाव
  21.3.7 रोहसेन के प्रति वात्सल्य
21.4 शकार का चरित्र–चित्रण
  21.4.1 संस्थानक अथवा शकार
  21.4.2 अभिमानी तथा जडप्रकृति वाला
  21.4.3 कायर तथा दुराग्रही
  21.4.4 क्रूर एवं निर्दयी
  21.4.5 कामुक
21.5 विदूषक का चरित्र–चित्रण
  21.5.1 व्यक्तित्व
  21.5.2 चारुदत्त से अपार प्रेम
  21.5.3 भोरु तथा क्रोधी प्रकृति
  21.5.4 भोजनप्रिय
21.6 शर्विलक की चारित्रिक विशेषताएँ
21.7 धूता की चारित्रिक विशेषताएँ
21.8 पारिभाषिक शब्दावली
21.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
21.10 सारांश
21.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

21.0 उद्देश्य

स्नातकोत्तर पूर्वार्द्ध के प्रश्न–पत्र (ललितसाहित्य एवं नाटक) से सम्बन्धित इस इकाई में 'मृच्छकटिकम्' के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण प्रस्तुत किया गया है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1 मृच्छकटिकम् के नायक चारुदत्त का चरित्र–चित्रण बता सकेंगे ।

2 मृच्छकटिकम् के नायिका वसन्तसेना का चरित्र–चित्रण बता सकेंगे ।

3 मृच्छकृटिकम् के अन्य प्रमुख पात्र विदूषक, शकार, शर्विलक एवं धूता के चरित्र चित्रण की प्रमुख विशेषताएँ बता सकेंगे ।

21.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप मृच्छकटिकम् के प्रमुख पात्रों के चरित्र–चित्रण का परिचय प्राप्त कर रहे है। इस इकाई से पूर्व 'मृच्छकटिकम्' के मुख्य अंशों की व्याख्या के माध्यम से सम्पूर्ण नाटक का ज्ञान प्राप्त कर चुके है । तथा प्रकरण में आने वाले पात्रों से परिचित भो हो गए होग। इस इकाई के माध्यम से उनकी चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट हो जायेगी ।

भारतीय नाट्यसाहित्य में 'नायक' रूपक का एक तत्त्व माना गया है । नाट्यसाहित्य में उसके सहायकों तथा प्रतिनायक का भो वर्णन किया गया है । साथ ही नायिका का भो विस्तृत विवेचन मिलता है । मृच्छकटिकम् चरित्र चित्रण की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण है । इसकी कथावस्तु मध्यमवर्ग के जीवन के आधार पर कल्पित की गई है । इसमें एक तरफ तो समाज के सभो वर्गों के पात्र मिलते है तो दूसरी ओर चोर, जुआरी, विट चाण्डाल आदि भो मिलते है । एक तरफ धूता जैसी पतिव्रता नारी का चित्रण है तो दूसरी ओर वेश्या और गणिकाओं का भो । इस नाटक की श्रेष्ठता इसके पात्रों से है। इसके पात्र सजीवता की मूर्ति है । वे इसी लोक के जीते जागते प्राणी है । मृच्छकटिक के पात्र किसी वर्ग विशेष के प्रतिनिधि नहीं है, वे अपनी निजी विशेषताएँ रखते है । सभो पात्रों के कार्य और व्यवहार अपनी–अपनी परिस्थिति के अनुसार दिखलाये गए है । मृच्छकटिक की यह विशेषता संस्कृत के अन्य नाटकों में नहीं मिलती । यही कारण है संस्कृत साहित्य में एकमात्र चरित्र प्रधान नाटक मृच्छकटिकम् है । पुरूष एवं स्त्री पात्रों में से पात्रों का विवेचन आगे किया जा रहा है ।

21.2 चारुदत्त का चरित्र चित्रण

मृच्छकटिक प्रकरण का नायक चारुदत्त है । भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार नायक के चार प्रकार माने जाते हैं – धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत । इन चारों प्रकार के नायकों में से चारुदत्त को धीरप्रशान्त नायक कहा जा सकता है । दशरूपक के अनुसार धीरप्रशान्त का लक्षण है – ''सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरप्रशान्तो द्विजादिक'' (2.4) चारुदत्त में सामान्य नायक के प्रायः समस्त गुण विद्यमान हैं ।

21.2.1 व्यक्तित्व :

चारुदत्त जन्मना ब्राह्मण होते हुए भो कमणा श्रेष्ठी है। उज्जयिनी नगरी के अति सम्पन्न वंश में चारुदत्त ने जन्म लिया है । उसके पूर्वजों ने ब्राह्मण होते हुए भो व्यापार के माध्यम से अपार धन सम्पत्ति अर्जित की थी । किन्तु चारुदत्त अपनी अतिशय उदारता और दानशीलता के कारण सारी सम्पत्ति निर्धनों को दे देता है और स्वयं दरिद्र हो जाता है। उसका व्यक्तित्व आकषक है, गुणी है और सुन्दर है । द्वितीय अंक में संवाहक वसन्तसेना को चारुदत्त का परिचय देता हुआ कहता है :–

यस्तादृशः प्रियदर्शनः ..... (द्वि.अं.पृ0162)

इसी तरह सप्तम अंक में आर्यक चारुदत्त की प्रशंसा में कहता है – न केवलं श्रुतिरमणीयो दृष्टिरमणीयोऽपि (पृ0418) अर्थात् न केवल सुनने में ही अच्छे है अपितु देखने में भो अच्छे हैं । वसन्तसेना की हत्या का आरोप चारुदत्त पर लगता है । न्यायालय के न्यायाधिकारी भो उसके सौन्दर्य को देखकर कहते हैं –

घोणोन्नतंमुखमपाङ्गविशालनेत्रम् (9.16)

अर्थात् ऊँची नाकवाला, किनारों तक लम्बे नेत्रोंवाला यह मुख । वसन्तसेना की माता भो चारुदत्त को देखकर कहतो है– ''अयं स चारुदत्तः । सुनिक्षिप्तं खलु दारिकया यौवनम् ।'' (पृ0533)

21.2.2 उदार एवं दयालु :–

चारुदत्त अत्यन्त उदार एवं दयालु हैं । वह किसी को निराश नहीं करना चाहता । जब कोई श्लाघनीय कार्य करता है या उसे कोई शुभ समाचार सुनाता है तो चारुदत्त उसे पुरस्कार के रूप मे कुछ न कुछ देना चाहता है । अतिशय उदारता के कारण ही चोर के द्वारा आभ्षण चुराने पर वह दुःखी नहीं होता है। अपितु प्रसन्न होकर कहता है – यदसौ कृतार्थो गतः ।

कणपूरक जब मत्त हाथी को मार देता है तो उसके पराक्रम से प्रसन्न होकर उसे अंगूठी देना चाहता है किन्तु अंगुली में अंगूठी न होने से वह अपना दुपट्टा ही दे देता है । एकेन शून्यान्याभारणस्थानानि परामृश्य उर्ध्वं निःश्वस्यायं ममोपरि निक्षिप्तः । (पृ0 118) इसी तरह चेट जब वसन्तसेना के आगमन का समाचार देता है तो वह हर्षित होकर अपना दुपट्टा दे देता है – **भद्र! मे कदाचित् प्रियवचनं निष्फलीकतम्, तद्गृह्यतां पारितोषिकम् । (पृ0 318)**

चारुदत्त की यही उदारता, वसन्तसेना के आकर्षण का कारण बनती है । चारुदत्त के मन में प्राणिमात्र के लिए दया है । न तो वह किसी को कभो कष्ट देना चाहता है और न किसी को दुःखी देखना चाहता है । चारुदत्त के लिए चेट कहता है – सुजनः खलु भत्यानुकम्पकः । (3.2) चारुदत्त सेवकों के प्रति भो दयालु है । वह सोई हुई रदनिका को जगाना नहीं चाहता अलं सुप्तजनं प्रबोधयितुम् (पृ0191) इतना ही नहीं पशुपक्षियों के प्रति भो उसकी करूणा इस वाक्य से प्रकट होती है – वयस्य ! उपविश किमनेन, तिष्ठतु दयितासहितस्तपस्वी । (पृ0314)

21.2.3 शरणागतरक्षक

शरणागत की रक्षा जो एक भारतीय संस्कृति की अनुपम धरोहर है, चारुदत्त के चरित्र में विद्यमान है । वह शरणागत की रक्षा के निमित्त अपने प्राणों तक की परवाह भो नहीं करता । आर्यक जब उसकी शरण में आता है तब वह स्पष्ट कहता है – अपि प्राणानहं जह्यां न तु त्वां शरणागतम् । (7.6) (अर्थात् प्राणों को भले ही त्याग दूंगा, किन्तु शरण में आये हुये तुम्हें नहीं त्यागूंगा ।)

शरणागत रक्षक की पराकाष्ठा तब होती है जब षडयन्त्र रचाकर हत्या के अभियोग में चारुदत्त को मृत्युदण्ड दिलाने वाला शकार भो उसकी शरण में आकर प्राणरक्षा की भोख मांगता है । तब चारुदत्त शकार के अपराध को भला कर कहता है अहह । अभयमभयं शरणागतस्य । (पृ0636)

21.2.4 धर्मपरायण तथा भाग्यवादी

चारुदत्त धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति है । मृच्छकटिकम् के प्रारम्भ से ही चारुदत्त एक धर्म–कमनिरत व्यक्ति के रूप में दिखाई देता है । सन्ध्यावन्दनादि नित्य कर्मों का नियमपूर्वक अनुष्ठान करता है । जब मैत्रेय देवताओं के प्रति अश्रद्धा व्यक्त करता है तब वह कहता है – ''वयस्य ! मा मैवम् गृहस्थस्य नित्योऽयं विधिः।'' (पृ052) आगे भो कहता है –''तपसा मनसा वाग्भिः पूजिता बलिकमभिः।'' (1.16)
धार्मिक प्रवृत्ति से युक्त होने के कारण वह भाग्यवादी भो है । उसकी भाग्यवादिता इस वाक्य से परिलक्षित होती है – भाग्यक्रमेणहि धनानि भवन्ति यान्ति। (1.13) इसी प्रकार चारुदत्त आर्यक से कहता है – स्वैभग्यैः परिरक्षितोऽसि (7.7)

भाग्यवादी होने के कारण उसका विश्वास ह कि धन का आना और जाना भाग्य के अनुसार ही होता है । भाग्यवादिता एवं धर्मनिष्ठा का ज्वलन्त प्रमाण हम उसके निम्न कथन के रूप में देख सकते हैं, जब वह यह आह्वान करता है –

प्रभवति यदि धर्मो दूषितस्याऽपि मेऽद्य ।
प्रबलपुरुषवाक्यैर्भाग्यदोषात्कथञ्चित् ।
सुरपतिभवनस्था यत्र तत्र स्थिता वा,
व्यपनयतु कलङ्क स्वस्वभावेन सैव ।। (10.34)

इसी सन्दभ में शकुन और अपशकुन पर उसका दृढ़ विश्वास है । न्यायालय में जाते समय मार्ग होने वाले अपशकुनों को देखकर वह घबड़ा जाता है और अपनी भावी मृत्यु सोचने लगता है। भाग्यवाद में विश्वास की पराकाष्ठा उसका निम्न वक्तव्य है –

कांश्चितुच्छयति प्रपूरयति व कांश्चिन्नयत्पुन्नति
कांश्चित् पातविधौ करोति च पुनः कांश्चिन्नयत्याकुलान्
अन्योन्यं प्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधय
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिका–न्यायप्रसक्तो विधिः । (10.60)

21.2.5 आदर्श प्रेमी

मृच्छकटिकम् में चारुदत्त को एक उच्चकोटि का आदर्श प्रेमी चित्रित किया गया है । एक प्रेमी के रूप में उसका चरित्र चारित्रिक दृढ़ता से युक्त है । वसन्तसेना के प्रति उसका प्रेम अत्यन्त गहरा एवं सुकुमार है । जब तक वसन्तसेना उससे आकर नहीं मिलती है, तब तक वह उसके वियोग में तडपता रहता है । अभियोग प्रकरण में भो वह इन शब्दों में वसन्तसेना को स्मरण करता है –

न च मे वसन्तसेनाविरहितस्य जीवनेन कृत्यम् ।

अंत में जब वह वध स्थान पर अचानक वसन्तसेना को देखता है तब वह हृदय से गद्गद् हो उठता है तथा उसे संजीवनी बूँटी के तुल्य बतलाता है ।

यद्यपि वह एक गणिका से प्रेम करता है किन्तु अपनी पत्नी धूता से प्रेम में लेशमात्र भो कमी नहीं है वह उसे पवित्र मानता हुआ उसका आदर करता है । वेश्या के आभ्षणों को भो अभ्यन्तर प्रवेश के योग्य नहीं समझता है । वह परनारी पर दृष्टि भो नहीं डालना चाहता – ''न युक्तं परकलत्रदर्शनम्'' (पृ058) जब अनजाने में अन्य स्त्री से उसके वस्त्रों का स्पर्श हो जाता है तो वह खिन्न होकर कहता है – ''इयमपरा का अविज्ञातावसक्तेन दूषिता मम वाससा'' (पृ058) अपनी पतिव्रता स्त्री पर गर्व करता है और गर्हस्थ्य धर्म का पूर्णतया पालन करता है ।

21.2.6 प्रतिष्ठा प्रेमी

चारुदत्त को अपनी प्रतिष्ठा और चरित्र की उज्ज्वलता का ध्यान है । वह ऐसा कोई आचरण नहीं करना चाहता है जिससे उसकी अथवा उसके वंश की मान प्रतिष्ठा को धक्का लगता हो। वसन्तसेना के गहनों की चोरी के सम्बन्ध में विदूषक द्वारा झूठ बुलवाये जाने के उत्तर में कहता है – अनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभशकारकम् । (3.26)

अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए ही वह वसन्तसेना की धरोहर को लौटाना आवश्यक समझता है और असत्य बात कहकर बहुमूल्य रत्नमाला बदले में भजता है । यद्यपि वह जानता है कि सत्य बात जानने पर वसन्तसेना रत्नावली नहीं लेगी और समाज के लोग उसकी गरीबी के कारण सच घटना पर विश्वास नहीं करेंगे । इससे चारों ओर बदनामी होगी । वह विदूषक से कहता है – कः श्रद्धास्यति भ्तार्थं, सर्वो मां तुलयिष्यति (3.24) वसन्तसेना की हत्या अपराध सिद्ध होने पर उसे मृत्युदण्ड पाने का भय नहीं है, केवल दुःख है तो प्रतिष्ठा चले जाने का – न भोतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः । (10.27)

21.2.7 कलाप्रेमी

चारुदत्त कला–प्रिय व्यक्ति है । वह हर अच्छी कला का सम्मान करता है । उसमें कवि हृदय भो विद्यमान है । वर्षा–वर्णन जिन शब्दों के उसके द्वारा किया गया है वह प्रशंसनीय है । कवि होने के साथ–साथ वह संगीत का पारखी है । रेमिल के संगीत की ताल–लय तथा मूर्च्छना इत्यादि का विश्लेषण करते हुए सराहना करता है । शर्विलक के द्वारा मकान

में जब सेंध लगाई जाती है तब चोरी की अधिक चिन्ता न करके, सर्वप्रथम सेंध लगाने की कला की प्रशंसा करता है – अहो, दर्शनीयोऽयं सन्धिः । कथमस्मिन्नपि कमणि कुशलता ? (पृ0217)

21.2.8 पुत्र स्नेही :–

भारतीय संस्कृति के अनुकूल चारुदत्त का पुत्र प्रेम भो इस रूपक में दिखाई देता है । चारुदत्त अपने एकमात्र पुत्र रोहसेन से अत्यधिक स्नेह करता है । प्रथम अंक में ही वह सांयकालीन शीतल हवा से बचाने के लिए अपना दुपट्टा देता है । अपनी मृत्यु के पश्चात् अपने समान ही पुत्र से प्रेम करने के लिए विदूषक स आग्रह करता है –

नृणां लोकान्तरस्थानां देहप्रतिकृतिः सुतः ।
मयि यो वै तव स्नेहो रोहसेन स युज्यताम् ।। 9.62 ।।

इसी तरह मृत्युदण्ड के समय चाण्डालों से पुत्र दर्शन की याचना करता है – नापरीक्ष्यकारी दुराचारः पालक इव चाण्डालः, तत्परलोकार्थं पुत्रमुखं द्रष्टुमभ्यर्थये । (पृ0585–86) मृत्यु का समय सोचकर ब्राह्मणों का विभ्षण, देवकार्य तथा पितृकार्य का उपयोगी साधन 'यज्ञोपवीत' पुत्र को देता है तथा पुत्र की आलिङ्गन करता हुआ कहता है –

इदं तत् स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः
अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम् । (10.23)

मृत्युस्थल पर पुत्र को देखकर वह अत्यधिक विचलित हो जाता है । पुत्र को शीघ्र घर जाने के लिये कहता हुआ सावधान करता है –

आश्रमं वत्स गन्तव्यं गृहीत्वाद्यैव मातरम् ।
मा त्वयि पितृदोषेण त्वमप्येवं गमिष्यति ।। (10.32)

इसके अतिरिक्त भो चारुदत्त में सत्यवक्ता, आदर्श मित्र, गुणग्राही, पत्नी के महत्त्व को समझने वाला आदि गुण पाये जाते हैं । नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी रूपक का नायक विनयी, प्रियदर्शन, त्यागी, दक्ष, प्रियभाषी, लोकप्रिय, पवित्र, वाक्–कुशल, उच्चवंशोत्पन्न, स्थिर, युवक तथा वु)–उत्साह–स्मृति–प्रज्ञा–कला और स्वाभिमान से युक्त, शूरवीर दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रानुकूल कार्य करने वाला, तथा धार्मिक होना चाहिये । मृच्छकटिकम् के नायक चारुदत्त में प्रायः यह सभो गुण विद्यमान हैं । मृच्छकटिकम् के प्रथम अंक में चारुदत्त की प्रशंसा में विट कहता है – दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी । आदर्शः शिक्षितानां, सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः । सत्कर्त्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यधि कगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये ।। (1.48)

21.3 वसन्तसेना का चरित्र–चित्रण

साहित्यदर्पणकार के अनुसार प्रकरण में नायिका कहीं कुल–कन्या होती है, कहीं वेश्या होती है और कहीं दोनों होती हैं । मृच्छकटिकम् एक ऐसा प्रकरण है जिसमें कुल स्त्री तथा गणिका दो नायिकाये हैं । इसमें कुल स्त्री धूता तथा गणिका के रूप में वसन्तसेना है । परन्तु धूता प्रस्तुत प्रकरण में नाममात्र के लिए है, वास्तविक नायिका तो वसन्तसेना है ।

21.3.1 व्यक्तित्व :–

वसन्तसेना नवयौवना, परमरूपवती, विलक्षण आचरणवाली तथा आकषक व्यक्तित्व वाली है । यह उसका दुर्भाग्य है कि वह गणिका कुल से उत्पन्न है । फिर भो उसने अपने दृढ़संकल्प तथा प्रयत्नों के फलस्वरूप अपने आपको कुलवधू के योग्य प्रमाणित किया है । घर आयी हुई वसन्तसेना को देखकर चारुदत्त उसकी प्रशंसा करता है – छादिता शरदभण चन्दलेखेव भासते। (1.54)

वसन्तसेना एक सुन्दर तरुणी है और उज्जयिनी नगरी का भ्षण है – बालां स्त्रियं च नगरस्य विभ्षणं च । (8.23) विट कें शब्दों में वसन्तसेना उदारता का स्रोत है, सौन्दर्य में रति है, सुमुखी वह अलंकारों को भो अलंकृत करने वाली है और सौजन्य की सरिता है । (8.38) विट शकार द्वारा उसकी हत्या किये जाने पर भो कहता है – अपापा पापकल्पेन नगरश्रीर्निपातिता । (8.39)

21.3.2 वैभवशालिनी :–

वसन्तसेना उज्जयिनी की एक वैभवशालिनी गणिका है । माता की गणिका वृत्ति के कारण उसे विपुल सम्पत्ति प्राप्त है । उसकी समृद्धि को देखकर विदूषक कह उठता है – किं तावद् गणिकागृहम् अथवा कुवेरस्यभवन–परिच्छेद इति (पृ0 182) उसके पास समस्त वैभव है । उसे धन की लिप्सा नहीं हैं । शकार द्वारा भजी गयी दश सह मुद्राओं के कारण उसकी माता उसे शकार के पास जाने के लिये आदेश देती है तो वह तत्काल अस्वीकार कर देती है – यदि मां जीवन्तीमिच्छसि तदैवं पुनरहं न मात्राऽज्ञापयितव्या । (पृ0 235)। वसन्तसेना धन के स्थान पर गुणों की उपासिका है । विट द्वारा वेश्याओं की समदृष्टि का कथन किये जाने पर वह शान्तभाव से एक ही वाक्य में प्रेम प्रादुर्भाव का कारण बतलाती है –

गुणःखल्वनुरागस्य कारणम् न पुनर्बलात्कारः । (पृ0 80)

अष्टम अंक में गाड़ी बदल जाने के कारण जब वसन्तसेना शकार के उद्यान में पहुंच जाती है तो विट उसे देखकर कहता है – पूर्वं मानादवज्ञाय द्रव्यार्थे जननीवशात् । (8.17)
यह सुनकर वसन्तसेना शीघ्रता से निषेधात्मक सिर हिलाती है ।

21.3.3 उदारहृदया

वसन्तसेना उदारहृदयवाली नारी है । मदनिका एवं संवाहक से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रसंग उसकी– कोमल उदारता से ओत–प्रोत है । जब संवाहक उसकी शरण में आता है तो अपरिचित होने पर भो वह उसे अभयदान देती है । वह उसे ऋणमुक्त कराने के लिये अपना स्वर्णाभ्षण भज देती है । अपनी उदारता के कारण ही वह मदनिका को दासता से मुक्त कर देती है और मदनिका से कहती है – यदि मम छन्दस्तदा विनार्थं सर्वं परिजनमभजिष्यं करिष्यामि । (पृ0 241–42) उसकी उदारता, निर्लोभता ही इस नाटक की आधारशिला है । चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को रोते हुए देखकर वह सवर्ण शकट बनवाने के लिये अपने आभ्षण दे देती है और कहती है – जात ! कास्य सौवर्णशकटिकाम् । (पृ0 37) जब चारुदत्त सुवर्ण भाण्ड के बदले रत्नावली भज देती है तो वह रत्नावली भजने के लिए चारुदत्त को उलाहना देती है । रत्नावली उसकी पत्नी धूता को सौपते हुए कहती है – अहं श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी तदा युष्माकमपि। (पृ0 236)
वास्तव में वसन्तसेना की उदारता निःस्वार्थ भावना से युक्त है तथा वह इस उदारता का कोई प्रतिदान नहीं लेना चाहती है । प्रतिदान तो दूर मुक्ति के श्रेय को भो स्वयं स्वीकार नहीं करना चाहती । उसी की उदारता के कारण मदनिका कुलवधू पद को प्राप्त कर सकी ।

21.3.4 अतिप्रतिभाशाली :

वसन्तसेना एक बुद्धिमती, कला कुशल तथा विदुषी नारी है । वह एक प्रतिभासम्पन्न गणिका है । विविध कलाओं का अच्छा ज्ञान है । वह राजमार्ग पर विट के कथन के गूढ अर्थ को समझ लेती है और आभ्षण उतार लेती है । चारुदत्त के पास गहने धरोहर रखने के लिये भो वह अकाट्य तर्क देती है – पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु (पृ0121) जब चारुदत्त के पास अभिसार के लिए जाती है तो मार्ग में विट द्वारा मेघों का वर्णन सुनकर स्वयं भो उसी स्तर का वर्णन करने लगती है चारुदत्त से अकेले मिलने के लिये बडी चतुरता से छत्रधारिणी को विट के पास ही रहने देती है जिससे विट कहता है ''अनेनोपायेन निपुणं प्रेषितोऽस्मि''। (पृ0 345) इसके अतिरिक्त रदनिका के साथ लाये गये रोहसेन की मार्मिक बातें सुनकर तत्काल उनका आशय समझ कर अपने गहने उतार कर दे देती है ।
पंचम अंक विट ने उसकी कलाभिज्ञता स्पष्ट रूप से कही है – सकलकलाभिज्ञायाः न किंचिदपि उपदेष्टव्यमस्ति । (पृ0 342) वसन्तसेना को संस्कृत भाषा का भो ज्ञान है इसका प्रमाण चतुर्थ अंक में विदूषक के साथ वार्तालाप के अवसर पर मिलता है ।
वसन्तसेना चित्ररचना में भो निपुण है । वह चारुदत्त का चित्र बनाकर मदनिका को दिखाती है।

21.3.5 चारुदत्त से अटूट प्रेम :

वसन्तसेना चारुदत्त को सच्चे हृदय से प्रेम करती है । कामदेवायतन में जब वह चारुदत्त का दर्शन करती है, तभो उसके हृदय में अनुराग उत्पन्न हो जाता है । वह जानती है

चारुदत्त दरिद्र है तो भो वह उससे प्रेम करती है । उसका प्रेम धन के लिये नहीं अपितु प्रशंसनीय प्रेम है – ''दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमनाः खलु गणिका लोकेऽवंचनीया भवति।'' (पृ0 133) चारुदत्त से वह कुछ नहीं चाहती अपितु उसके लिये अपना सर्वस्व त्याग करने को उद्यत है । पुष्पकरण्डक उद्यान में जब शकार उसे मारने के लिये उद्यत हो जाता है तो वह चारुदत्त का नाम लेकर मरने को तैयार हो जाती है किन्तु शकार को स्वीकार नहीं करती।

उत्कट प्रेम के कारण उसे चारुदत्त की प्रत्येक वस्तु से प्रेम हो जाता है । यही कारण है कि कणपूरक को प्राप्त दुपट्टा जब उसे मिलता है और उसमें चारुदत्त का नाम पढ़ती है तो आनन्द से उसे ओढ लेती है । वह चारुदत्त से प्रेम में गुणों को कारण मानती हुई कहती है – गुणः खल्वनुरागस्य कारणम् न पुनर्बलात्कारः । (पृ0 80) इसीलिए अतिसम्पन्न राजश्यालक द्वारा प्रेषित विपुल धनराशि को ठुकरा कर निर्धन होते हुए भो चारुदत्त से विशु) प्रेम करती है ।

आभ्षण न्यास, दुर्दिन में अभिसरण, पुष्पकरण्डक गमन आदि करती हुई वह मरणासन्न हो जाती है । किन्तु सचेत होने पर चारुदत्त को बचाने के लिये वध्यस्थल पर पहुंच जाती है तथा प्रेम के आवेग में उसके हृदय पर गिर जाती है । अंत में 'कुलवधू' पद को प्राप्त कर उसका मनोरथ पूर्ण होता है । आर्ये वसन्तसेने ! परितुष्टो राजा भवतीं वधूशब्देनानुगृह्णाति । (पृ0 647)

21.3.6 धूता के प्रति आदरभाव –

वसन्तसेना का धूता के प्रति हमेशा सम्मान का भाव रहा है । जब सर्वप्रथम वह चारुदत्त के घर पहुंचती है और उन लोगों के द्वारा पहचान ली जाती है तब वह अपराध समझकर क्षमायाचना करने लगती है – एतेनानुचितभ्मिकारोहणेनापरा)ऽयं शीर्षेण प्रणम्य प्रसादयामि । (पृ0 121) चारुदत्त गहनों के चोरी हो जाने पर अपनी पत्नी धूता की रत्नावली वसन्तसेना को लौटाता है तो वसन्तसेना उसी रत्नावली को धूता के पास भजती हुई कहती है – चेटि ! गृहाणैतां रत्नावलीं मम भगिन्या आर्याधूतायै गत्वा समर्पय । वक्तव्यं च अहं श्रीचारुदत्तस्य गुणनिजिता दासी तदा युष्माकमपि । (पृ0 369) इससे धृता के प्रति उसकी अतिशय सम्मान भावना प्रकट होती है । वसन्तसेना अपनी सामाजिक मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखती है । वह यह जानती है कि वह एक गणिका है और चारुदत्त के अन्तःपुर में प्रविष्ट होने की अधिकार नहीं रखती – मन्दभागिनी खल्वहं तवाभ्यन्तरस्य । (पृ0 36)

21.3.7 रोहसेन के प्रति वात्सल्य

वसन्तसेना के विषय में यह एक अद्भत विशेषता है कि प्रथम 'जननी' सुख का अनुभव करती है और बाद में पत्नी । वेश्या होने पर भो उसका हृदय वात्सल्य से ओत–प्रोत है । रदनिका जब रोहसेन को गोद में लेकर वसन्तसेना के पास आती है तो वह रदनिका से पूछती है – रदनिके ! स्वागतं ते, कस्य पुनरयं दारकः अनल–कृतशरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति माम् ।। (पृ0 371)

जब रदनिका उसे चारुदत्त का पुत्र बतलाती है तो उसका स्नेह उमड़ पड़ता है वह हाथ फैलाकर कहती है – एहि मे पुत्रक ! आलिङ्ग । ऐसा कहकर उसे गोद मे उठा लेती है । बालक की भोली–भाली किन्तु मार्मिक बातें सुनकर उसका हृदय द्रवित हो जाता है और कहती है – जात ! मुग्धेन मुखेन मुखेनातिकरुणं मन्त्रयसि । वह तत्काल बालक की इच्छापूर्ति हेतु स्वयं अनलंकृत हो जाती है और कहती है – एषेदानीं ते जननी संवृत्ता । तदगृहणैतमलंकारकं सौवर्णशकटिकं कारस्य । (पृ0373) प्रस्तुत कथन वसन्तसेना के सच्चे मातृ हृदय के द्योतक है।

नाटक के अन्त में वसन्तसेना का चरित्र नितान्त निर्मल किरणों से प्रखर हो उठा है । उसकी समस्त विशेषताएँ – चपलता, विनम्रता, विदग्धता शीलता, उदारता इत्यादि परस्पर रसमय हो गई हैं । कहना न होगा कि गणिका होते हुए भो वसन्तसेना का व्यवहार तथा प्रेम कुलनारी के सदृश है – अवेशसदृशप्रणयोपचाराम् (पृ0302) उसने अपने अनन्य प्रेम, उदात्त चरित्र, अपूर्व त्याग आदि गुणों से गणिका होने की कालिमा को प्रक्षालित करके एक साध्वी नारी के पद को अलङ्.कृत किया है और वह नवजीवन का देवदूत बन गई है ।

21.4 शकार का चरित्र चित्रण

शकार मृच्छकटिककार की विचित्र कल्पना है । समूचे संस्कृत साहित्य में ऐसे चरित्र का मिलना प्रायः असंभव है । वह इस प्रकरण का प्रतिनायक है । दशरूपककार के अनुसार प्रतिनायक लोभो, धीरोद्धत, जड़ प्रकृति वाला पापी और व्यसनी होता है । शकार भो मूर्खता, प्रवचना, पाप क्रूरता और कायरता आदि दुर्गुणों से पूर्ण है ।

21.4.1 संस्थानक अथवा शकार –

शकार राजा पालक की रखैल स्त्री का भाई है । राजश्यालक और संस्थानक भो है । वह शकारी प्राकृत बोलता है । जिसमें सकार के स्थान पर शकार बोला जाता है । जैसे वसन्तसेना को वशन्तसेना कहता है। संभवतः इसी हेतु इसका उपनाम शकार पड़ा । प्रथम अंक में विट एवं 'काणेलीमातः' कहकर बुलाता है । विदूषक भो 'काणेलीपुत्र' कुट्टनीसुत' इत्यादि गर्हित शब्दों से ही बुलाता है । जिसका तात्पर्य भो (रखेली) अविवाहित स्त्री का पुत्र होना है।

21.4.2 अभिमानी तथा जडप्रकृतिवाला

शकार बहुत अभिमानी है । उसे राजा का साला होने का अभिमान है । इसी से वह मनमानी करता है । अपने आपको देव पुरुष या वासुदेव समझता है । वह न्यायधीशों को निकलवाने की धमकी देकर उनसे मनमाना न्याय कराना चाहता है । उनके कथन अज्ञान तथा मूर्खता से भरे पड़े हैं । जैसे – द्रोणपुत्रो जटायुः । न मृता रज्जब इत्यादि । वह मूर्खता पूर्ण भाषणों में रामायण महाभारत आदि महाकाव्यों तथा कथा पुराणों के पात्रों का नियोजना करता है किन्तु उसकी पात्र–नियोजना का पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है । जैसे – किं द्रौपदीव पलायसे रामभोता । (प्र0अं. 25) अथवा मम वशमनुयाता रावणस्येव कुन्ती । (प्र0अं.21)

इस तरह के अन्य उदाहरण भो इस प्रकरण में देखने को मिलते है । वसन्तसेना के लिए उसने दस उपनाम रखे है । ऐसा लगता है जैसे वह इन नामों में इन्द्रजाली प्रभाव का अधिष्ठान मानता है । साथ ही वह शब्द सम्बन्धी अपनी विद्वता भो प्रदर्शित करना चाहता है ।

21.4.3 कायर तथा दुराग्रही –

शकार अस्थिर स्वभाव वाला है । उसके विचार क्षण–क्षण में बदलते रहते है । जीर्णोद्यान में जब स्थावरक गाड़ी लेकर पहुंचता है तब वह उसमें वसन्तसेना को देख कर भयभोत होकर उठता है – मृतोऽसि मृतोऽसि। प्रवहणाधिरूढा राक्षसी चौरो वा प्रतिवसति । (पृ0 292) नाटक के अंत में जब वह वसन्तसेना को जीवित देखता है तो मृत्यु के भय से आर्य चारुदत्त की शरण में आने से भो नहीं झिझकता तथा कहता है

''भो अशरणशरण ! परित्रायस्व ।'' इसी तरह बड़े कातरभाव से वसन्तसेना से प्रार्थना करता है – ''गभदासीपुत्रि ! प्रसीद ! प्रसीद ! न पुनर्मारिष्यामि । तत् परित्रायस्व ।'' वस्तुतः वह कायर ही है शूरता और वीरता का तो उसने नकली बाना पहन रखा है ।

शकार के दुराग्रही होने के कारण उसके साथी विट और चेट को हमेशा शंका रहती है कि न जाने वह क्षण भर में क्या कर बैठे । अष्टम अंक में पहले तो वह विट को गाड़ी में बैठने की कह देता है फिर उसका अपमान करने लगता है । इसी प्रकार स्थावरक (चेट) को दीवार पर से गाड़ी लाने का आदेश दे देता है । प्रथम अंक में विट से कहता है कि मैं वसन्तसेना को लिए बिना नहीं चलूंगा । ये सभो उदाहरण उसके दुराग्रही स्वभाव को प्रमाणित करते है ।

21.4.4 क्रूर एवं निर्दयी :

शकार क्रूर तथा निर्दयी होने के साथ पापी है । तथा पापपूर्ण योजना बनाने में निपुण है । विट और चेट को कपटपूर्वक हटाकर वसन्तसेना का गला दबा देता है । और जब विट इस कुकृत्य की भर्त्सना करता है तो उस पर ही हत्या का आरोप लगा देता है । चेट को बांधकर एक स्थान पर डाल देता है तथा स्वयं चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग चलाता है । जब चेट उसके पापों का खुलासा करता है तो उस पर चोरी का आरोप बडी चतुरता से लगा देता है । चाण्डालों से भो पुत्र सहित चारुदत्त को मारने का

आदेश दे देता है – ''सपुत्रमेवैतं मारय।'' अपने षडयन्त्र को सफल होते देख वह अति हर्षित होता है और अपने सामने चारुदत्त का वध देखना चाहता है – ''तत् प्रेक्षिष्ये, शत्रुविनाशो नाम मम महान् हृदयस्य परितोषो भवति।'' (पृ0 601)

21.4.5 कामुक :

शकार क्रूर होने के साथ–साथ कामवासना से युक्त है । जिस वसन्तसेना को वेश्या समझ एक तच्छप्राणी समझता है यद्यपि उस वसन्तसेना के मन में उसके लिए कोई स्थान नहीं हैं किन्तु शकार येने–केन प्रकारेण उसे अपनी बनाना चाहता है । वह किसी भो कीमत पर कामाग्नि को शान्त करना चाहता है । उसका कथन है –

किं यासि धावसि पलायसे प्रस्खलन्ती
वासु प्रसीद न मरिष्यसि तिष्ठ तावत् ।
कामेन दह्यते खलु मे हृदयं तपस्वि,
अङ्गाराशिपतितमिव मांसखण्डम् ।। (प्र0अं.18)

प्रथम अंक से प्रारम्भ होकर अन्तिम अंक तक उसकी कामवासना ही प्रकट होती है । वह साम, दाम, दण्ड, भद इन चारों नीतियों से वसन्तसेना को वश में करना चाहता है । और जब वह अपने प्रयासों में असफल हो जाता है तो उसे मारने से भो नहीं चूकता है ।

शकार के चरित्र पर विल्सन महोदय की टिप्पणी भो दृष्टव्य है –

'तथापि नाटक की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि राजा का साला संस्थानक है । इतना पूर्णतया घृणास्पद चरित्र शायद साहित्य में कभो अंकित नहीं किया गया है । उसके दुर्गुण भयकर है, वह नितान्त निर्मम एवं दुश्चेष्ट है, तो भो इतना हास्यास्पद है कि हमारा क्रोध बेकार बर्बाद होता है और जब उसके अपराधों के उचित दण्ड की घड़ी आती है तब चारुदत्त के साथ हम भो यह कहने के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं इसे मुक्त करो और छोड दो ।

(विल्सन–दी थियेटर ऑफ दी हिन्दूज) पृ0 57

डॉ0 भाट ने भो शकार को शैक्सपियर के दानव से तुलना की है जिस पर नियन्त्रण रखने वाला मालिक मौजूद नहीं है । अथवा 'पंचतन्त्र' के पृष्ठों में से शायद एक धूर्त लोमड़ी शकार के स्वरूप में जीवित प्रकट हो गयी है ।

शकार के चरित्र में प्राय सभो दुर्गुणों का पुज दृष्टिगोचर होता है । केवल स्त्री लम्पट, मूर्ख और धूर्त ही नहीं अपितु घमण्डी, कायरता, भोरुता, निर्लज्जता, स्वादलोलुपता, कुटिलता आदि अवगुणों की प्रतिमूर्ति है । प्रस्तुत प्रकरण में वह मानव के रूप में दानव विद्यमान है । ग्रंथ में प्रतिनायक के रूप में उसका यथार्थ चित्रण किया गया है ।

21.5 विदूषक का चरित्र–चित्रण

मृच्छकटिकम् का विदूषक मैत्रेय है । 'दशरूपक' के अनुसार नायक का वह सहायक, जो अपने आकार प्रकार तथा कथन आदि से हंसी उत्पन्न करता है विदूषक कहलाता है 'हास्यकृच्च विदूषकः । (दश0 2, 9)

मृच्छकटिक का विदूषक इससे कुछ भिन्न प्रतीत होता है । यद्यपि इसमें भो यह गुण हैं इसमें सन्देह नहीं तथापि उसकी अन्य व्यक्तिगत विशेषताओं का भो चित्रण है ।

21.5.1 व्यक्तित्व

मैत्रेय का जन्म निकृष्ट ब्राह्मण कुल का है । ब्राह्मण होने के कारण वह वैदिक मंत्रों तथा यज्ञादि धार्मिक क्रियाओं का जानकार है । द्वितीय अंक में रात मे पैर धोने के प्रसंग में वह अपना परिचय देता है – 'यथा नागानां मध्ये डुण्डुभः, तथा सर्वब्राह्मणानां मध्येऽहंब्राह्मणः । (पृ0 191)

21.5.2 चारुदत्त से अपार प्रेम :–

विदूषक एक सच्चा मित्र है । वह मित्रता की कसौटी पर सदैव खरा रहता है । इसने कभो कोई ऐसा व्यवहार नहीं किया जिससे उसकी मित्रता पर कोई दोष लगें । सुख और दुःख दोनों अवसरों पर साथ रहना तथा मैत्री निभाना उसके जीवन की एक अनुपम विशेषता है । चारुदत्त के दरिद्र हो जाने पर भो वह उसके साथ उसी निष्ठा व प्रेम से रहता है जैसा कि वह उसके वैभव युक्त दिनों में रहता था । परिस्थितियों से ऊबकर वह चारुदत्त की

आज्ञाओं का उल्लंघन करने के लिये अनुप्राणित अवश्य होता है परन्तु जब यह देखता है कि यह चारुदत्त की आन्तरिक इच्छा है कि वह अपनी भावनाओं को दबाकर अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है ।

सच्चे मित्र की तरह उसे आश्वासन देता है – भो वयस्य तमवार्थकल्यवर्तं स्मृत्वा अलं संतापितेन।

(पृ0 28) वह चारुदत्त को किसी प्रकार भो कष्ट नहीं पहुंचने देना चाहता इसी कारण रदनिका से अपने अपमान की बात चारुदत्त से कहने को मना कर देता है ।

प्रथम अंक में जब सबसे पहले चारुदत्त विदूषक को देखता है तो प्रसन्न होकर कहता है – अये सर्वकालमित्रं मैत्रेयः प्राप्तः । (पृ041) गहनों के चोरी के अवसर पर भो जब चारुदत्त अत्यधिक दुःखी हो जाता है तब धूता अपनी रत्नावली चारुदत्त के पास इसके हाथों से भिजवाती है । तब चारुदत्त कहता है – विभवानुगता भार्या सुख दुःखसुहृद् भवान् । (3.28) विदूषक जानता है कि वेश्या लालची तथा कुटिल होती है इस कारण वह वसन्तसेना को भो इसी दृष्टि से देखता है और सन्मित्र की तरह चारुदत्त से कहता है – निवर्त्यतामात्माऽस्माद् बहुप्रत्यवायाद् गणिकाप्रसङ्गात्। (पृ0 308)

चारुदत्त के प्रति उसका अगाध प्रेम है । जब उसे पता चलता है कि शकार ने चारुदत्त पर मिथ्या अभियोग लगाया है तो वह न्यायालय में शकार से लड़ बैठता है तथा चारुदत्त के मृत्युदण्ड की घोषणा पर स्वयं भो बिना चारुदत्त के जीवित नहीं रहना चाहता । 'भो वयस्य । एवं त्वया ज्ञातं त्वया विनाऽहं प्राणान् धारयिष्यामि? (पृ0 607)

21.5.3 भीरु तथा क्रोधी प्रकृति –

अन्य विदूषकों की भांति मैत्रेय भो भोरु प्रकृति का है । भोरु प्रकृति के कारण अंधेरे में दीप चढ़ाने के लिए अकेले घर से बाहर नहीं जाता है । इस कार्य के लिये रदनिका को साथ लेकर जाता है । वसन्तसेना को रात्रि में घर पहुंचाने के लिए भो इसलिए तैयार नहीं होता कि कहीं कुत्ते के समान बाहर मार न दिया जाये । तृतीय अंक में वसन्तसेना के स्वर्णाभ्षण के भाण्ड रखने से भो डरता है ।

भोरु प्रकृति के साथ–साथ विदूषक क्रोधी भो है । वह शीघ्र ही क्रुद्ध हो जाता है । रदनिका के अपमान को देखकर वह शकार और विट को मारने को उद्यत हो जाता है – (सक्रोध दण्डकाष्ठमुद्यम्य) मा तावत् भो, स्वकेगेहे कुक्कुरोऽपि तावच्चण्डो भवति कि पुनरहं ब्राह्मणः । (पृ0 97) इसी तरह नवम अंक में वह न्यायालय में ही शकार पर क्रुद्ध हो जाता है ।

21.5.4 भोजनप्रिय –

संस्कृत के अन्य नाटकों की भांति मृच्छकटिकम् का विदूषक भोजनप्रिय व पेटू है । नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार यही जानकर उसे भोजन हेतु आमन्त्रित करता है । चतुर्थ अंक में वसन्तसेना के भवन में नाना प्रकार के भोजनों को बनते देखकर विदूषक मन ही मन सोचता है – अपीदानीमिह वर्धित भङ्क्ष्व इति पादोदकं लप्स्ये । (पृ0 282) इसी तरह जब वसन्तसेना बिना खिलाये पिलाये भज देती है तो वह कहता है इसने तो पानी को भो नहीं पूछा । वसन्तसेना की स्थूलकाय माता को देखकर उसके प्रति ईर्ष्या का कारण भोजन ही है । वह कहता है उसे वैसा ही मधुर और स्वादिष्ट भोजन, पेट भर मिलता, चाहे वह भो 'चौथिया' रोग से पीड़ित क्यों न हो जाए?

विदूषक के लिए हम कह सकते है कि वह एक सच्चा मित्र बुद्धिमान साथी और हर परिस्थिति में साथ निभाने वला सहयोगी दिखाई देता है । वह केवल हंसी या मजाक का पात्र नहीं है । मैत्रेय द्वारा न्यायालय में दिये गये भाषण पर टिप्पणी करते हुये डा0 जी0के0भाट ने लिखा है – मैत्रेय के इस उत्स्फूर्त भाषण में न्यायप्रियता, तर्कशुद्धता, विनय, भावनाप्रकष और करुणायुक्त क्रोध आदि अनेक बातों का अभ्तपूर्व मिलन हुआ है ।

21.6 शर्विलक की चारित्रिक विशेषताएँ

शूद्रक ने सभो पात्रों का चरित्र इस प्रकार चित्रित किया है कि उनकी व्यक्तिगत विशेषताऐं स्पष्ट झलकती है । शर्विलक प्रासंगिक कथावस्तु का नेता होने से हम उसे नाटक का अनु–नायक कह सकते हैं । वह जाति से ब्राह्मण है । इसके पूर्वज चारों वेदों के ज्ञाता

और दान न लेने वाले उत्कृष्ट ब्राह्मण थे । उसके चरित्र में एक क्रान्तिकारी और प्रेमी व्यक्ति का समन्वय हुआ है । क्रान्तिकारी के रूप में वह अत्याचारी राजा पालक की हत्या करता है तथा प्रेमी के रूप में मदनिका को दासता से मुक्त कराने के लिये चोरी करना भो बुरा नहीं समझता ।

शर्विलक बुद्धिमान है । चोरी करते समय जब सांप उसकी अंगुली को काट लेता है तब तत्काल अपने जनेऊ का उपयोग करता है और बांध कर विष का प्रभाव रोक लेता है – दष्टस्य कीटभजगैः परिवेष्टञ्च। (3.16)

पुराना दरवाजा खोलने पर आवाज न करें इसके लिए नहीं नीचे पानी छिड़क लेता है । घर में स्वयं घुसने से पहले एक पुतला को प्रवेश कराकर निरापद स्थिति जान लेता है । तब स्वयं प्रवेश करता है।

चोरी के उसके अपने कुछ सिद्धान्त है । वह बलपूर्वक चोरी करना ठीक नहीं मानता । जहाँ केवल स्त्री है, वहाँ चोरी करना या स्त्री पर प्रहार करना अच्छा नहीं समझता है । मदनिका के सामने स्वयं के चौरकार्य के बारे में कहता है – कार्याकायविचारिणी मम मतिश्चौर्येऽपि नित्यं स्थिता । (4.6) चारुदत्त के यहाँ चोरी करने घुसा किन्तु उसकी दयनीय अवस्था को देखकर चोरी का विचार छोड देता है – अथवा न युक्तं तुल्यावस्थं कुलपुत्रजनं पीडयितुम् तद् गच्छामि । (पृ0209)

शर्विलक एक सच्चा मित्र है । मित्रता को उच्चकोटि का मानता है । नयी पत्नी मदनिका को घर ले जाते समय अपने मित्र आर्यक के बन्दी बनाये जाने की सूचना पाकर व्यथित हो जाता है । और आर्यक को छुड़ाने की योजना में चला जाता है । वह प्रणय और मित्रता में से मित्रता को प्रधानता देता है । वह चारुदत्त के प्राणों की रक्षा के साथ–साथ उसको पत्नी की भो पूरी चिन्ता रखता है ।

यद्यपि शर्विलक मदनिका पर आसक्त है, वह उससे प्रणय करना चाहता है तथा उसे मुक्त कराना चाहता है परन्तु अपनी प्रतिष्ठा की हानि उसे सहन नहीं । वस्तुतः यही एक ऐसा तत्त्व है जो उसे नितान्त विलासी एवं निष्क्रिय नहीं होने देता और वह राज्य क्रान्ति का सफल नेतृत्व करता है ।

इस प्रकार यद्यपि परिस्थितिवश चौर्य–कार्य करन पर भो वह अपने चरित्र के गौर व को नहीं भ्ल सका है । वह सच्चा मित्र है, सच्चा प्रणयी है, उपकार के प्रति कृतज्ञ है, वह प्रत्युपकार करने के लिये भो लालायित है । उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वेश्या दासिका से आसक्त होने के वाबजूद कौटुम्बिक एवं गार्हस्थिक मर्यादा के महत्त्व के प्रति सजग है । मदनिका को वधू रूप में प्राप्त कर लेने के वाद वसन्तसेना को भो उसी गौरव से विभ्षित कर देता है ।

21.7 धूता की चारित्रिक विशेषताएँ

धूता चारुदत्त की विवाहिता पत्नी है । इस प्रकरण में वह पतिव्रता पत्नी की तरह उस भारतीय नारी की तरह दिखती है जो अपने अस्तित्व बोध के बिना ही निरपेक्ष रूप से परिवार के लिए अपनी बलि चढ़ा देती है । यद्यपि वह एक सामान्य रूपवाली ही प्रतीत होती है किन्तु इसमें गुणों की कमी नहों है ।

धूता के जीवन का लक्ष्य अपने पति की प्रसन्नता व उन्नति ही है । वह चारुदत्त की छाया की तरह उसके सुख–दुःख, मान–अपमान के विषय में हमेशा सावधान रहती है । वह अपनों की अपकीर्ति से डरती है, इसी हेतु बड़ी चतुराई से रत्नावली विदूषक को दे देती है । 'अहं खलु रत्नषष्ठीमुपोषिता ..... तत् तस्य कृते प्रतीच्छ इमां रत्नमालिकाम् ।' (पृ0 226) चारुदत्त भो उसके इस गुण से अत्यधिक प्रभावित होने से वह स्वयं को दरिद्र नहीं समझता क्योंकि उसने धूता जैसी विभवानुगता सच्ची पतिव्रता पत्नी पाई है ।

धूता को आभ्षणों के प्रति ममता नहीं ह । वह अपनी पति को ही जीवन का सर्वस्व व सबसे बड़ा आभ्षण समझती है । सोने के आभ्षणों से उसे तनिक भो मोह नहीं है । यही कारण है कि जब वसन्तसेना रत्नावली को लौटाती है तो वह यह कहकर अस्वीकार कर

देती है कि – आर्यपुत्र एव ममाभरणविशेष इति । (पृ0 370) सपत्नी के रूप में धूता अत्यन्त उदार है । वह अपनी सपत्नी से ईर्ष्या रखने वाली नारी न होकर उससे प्रेम रखने वाली नारी है । तथा वसन्तसेना से प्रेम करने वाले अपने पति पर भो कोप नहीं करती । वह अपने पति से अत्यधिक प्रेम करती है । उसके वध की बात सुनकर चिता में कूदकर प्राण त्याग कर देना चाहती है तथा अपने प्रिय पुत्र की भो चिन्ता नहीं करती हैं, न पाप से डरती है वरं पापाचरणम् । न पुनरार्यपुत्रस्यामङ्गलाकणनम् ।। (पृ0 643)

यद्यपि वसन्तसेना की तुलना में धूता का चरित्र सम्बन्धी वैशिष्टय इस प्रकारण कम प्रकट हो पाया है। फिर भो स्पष्ट है कि उसका व्यक्तित्व वसन्तसेना से किसी भो तरह कम नहीं है । चरित्र–चित्रण शूद्रक की विशेषता है, उनकी नाट्य कला की प्रवणता के कारण धूता जैसा पात्र भो सजीव हो उठा है । इस ग्रंथ में धूता एक आदर्श सहनशील भारतीय नारी के रूप में चित्रित हुई है ।

21.8 पारिभाषिक शब्दावली

चारुदत्त	–	नायक, उज्जयिनी का एक नागरिक
वसन्तसेना	–	नायिका, गणिका
मैत्रेय	–	विदूषक, चारुदत्त का मित्र
शकार	–	प्रतिनायक, राजा पालक का श्यालक
धूता	–	चारुदत्त की पत्नी
शार्विलक	–	एक साहसी ब्राह्मण, मदनिका का प्रेमी

सांकेतिक शब्द –

अ0	–	अङ्क
प्र0	–	प्रथम
द्वि0	–	द्वितीय
दश0	–	दशरुपक
पृ0	–	पृष्ठ

तृतीय चतुर्थ आदि अंको का भी केवल प्रथम अक्षर लिया गया है ।

21.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1 मृच्छकटिकम् का चारुदत्त किस प्रकार का नायक है ।
(क) धीरोदात्त (ख) धीरललित (ग) धीरप्रशान्त (घ) धीरोद्धत

प्र.2 ''भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति ।'' इस वाक्य से चारुदत्त की कौनसी विशेषता लक्षित होती है ।
(क) शरणागतरक्षक (ख) भाग्यवादी
(ग) आदर्श प्रेमी (घ) पुत्र स्नेही

प्र.3 वसन्तसेना, चारुदत्त पर क्यों आसक्त है –
(क) गुणों के कारण (ख) सौन्दर्य के कारण
(ग) धन के कारण (घ) आदर्श मित्र होने के कारण

प्र.4 'कुलवधू' की संज्ञा से विभूषित किया है –
(क) धूता को (ख) वसन्तसेना को
(ग) मदनिका को (घ) इनमें से कोई नहीं

प्र.5 संस्कृत साहित्य में एकमात्र चरित्र चित्रण प्रधान नाटक है –
(क) मृच्छकटिकम् (ख) अभिज्ञानशाकुन्तलम्
(ग) उत्तररामचरितम् (घ) स्वप्नवासवदत्तम्

प्र.6 नाटक में शकारी प्राकृत बोलने वाला पात्र है –
(क) चारुदत्त (ख) शर्विलक (ग) मैत्रेय (घ) शकार

प्र.7 शर्विलक किस पर आसक्त है –
(क) वसन्तसेना पर (ख) धूता पर
(ग) मदनिका पर (घ) इनमें से कोई नहीं

अभ्यास :–

प्र.1 चारुदत्त की चारित्रिक विशेषताऐं लिखिये ?

प्र.2 वसन्तसेना का चरित्र – चित्रण प्रस्तुत कीजिये ?

प्र.3 निम्नलिखित के चरित्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –

(1) विदूषक .....

(2) शर्विलक .....

(3) धूता.....

(4) शकार .....

बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 ग

प्र.2 ख

प्र.3 क

प्र.4 ख

प्र.5 क

प्र.6 घ

प्र.7 ग

अभ्यास

1. देखिए भाग 21.2
2. देखिए भाग 21.3
3. (1) देखिए 21.5
   (2) देखिए 21.6
   (3) देखिए 21.7
   (4) देखिए 21.4

21.10 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आपने मृच्छकटिकम् के प्रमुख पात्रों का परिचय साम्यक्तया प्राप्त किया है । प्रस्तुत इकाई में चारुदत्त, वसन्तसेना, शकार, विदूषक, धूता, शर्विलक जैसे प्रमुख पात्रों का उनकी विशेषताओं के आधार पर विवेचन किया है । साथ में नाटक से सम्बन्धित अंश लेकर उनकी विशेषतता को प्रमाणित भी किया गया है ।

संस्कृत साहित्य में मृच्छकटिकम् का महत्त्वपूर्ण स्थान है । लोक कथानक पर आधारित होने के कारण इसकी लोकप्रियता प्राचीन काल से है । इस नाटक में समाज के सभी वर्गों के ब्राह्माण युवा को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है जो अपनी उदारता से अत्यन्त निर्धन हो चुहा है । किन्तु उसके स्वभाव में कार्पण्य नहीं है । उसके गुणों से प्रभावित होकर आसक्त होने वाली नवयौवना गणिका उससे कुलस्त्री के समान व्यवहार करती है । इस प्रकरण में चारुदत्त की पत्नी भी अपने व्यक्तित्व का अच्छा प्रदर्शन करती है । प्रतिनायक के रूप में शकार जैसे पात्रों की सर्जना भी शूद्रक की प्रखर प्रतिभा का प्रतिफलन है । वाग्वैदग्ध्य से हास्य उत्पन्न करने में मैत्रेय (विदूषक) का सर्वाधिक महत्त्व है । अनुनायक के रूप में नाटक में शर्विलक भी महत्त्वपूर्ण पात्र है । जिसके चरित्र में एक क्रांतिकारी और प्रेमी के व्यक्तित्व का समन्वय है । किन्तु नाटक मे चोर, जुआरी, धूर्त, राजसेवक, भिक्षु पुलिस, कमचारी गणिका आदि समस्त श्रेणियों के पात्रों का चित्रण है । तथापि इस इकाई में प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण उनकी विशिष्टताओं के आधार पर किया गया है ।

संस्कृत साहित्य में यह एकमात्र चरित्र प्रधान नाटक है । मृच्छकटिकम् के चरित्र–चित्रण की प्रमुख विशेषता है कि इसका प्रत्येक पात्र अपना निजी व्यक्तित्व लेकर सामने आता है । केवल प्रतिनिधि पात्र बनकर नहीं । इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए प्रमुख पात्रों का चारित्रिक विवेचन किया गया है ।

21.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृच्छकटिकम् – डॉ जयशंकर लाल त्रिपाटी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 1993.
2. मृच्छकटिकम् – डॉ श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ, 1995.
3. शुद्रक का मृच्छकटिकम् – डॉ विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1998.
4. मृच्छकटिकम् – शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन – डॉ शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1998.

इकाई–22

मृच्छकटिकम् की प्रमुख सूक्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 प्रथम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

22.2.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

22.3 द्वितीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

22.3.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

22.4 तृतीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

22.4.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

22.5 चतुर्थ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

22.5.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

22.6 षष्ठ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

22.6.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

22.7 सप्तम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

22.7.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

22.8 अष्टम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

22.8.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

22.9 नवम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

22.9.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

22.10 दशम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

22.10.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

22.11 पारिभाषिक शब्दावली

22.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

22.13 सारांश

22.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

22.0 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप महाकवि शूद्रक विरचित सुप्रसिद्ध प्रकरण 'मृच्छकटिकम्' के अन्तर्गत आयी हुई सूक्तियों की व्याख्या का अध्ययन करेंगे।

22.1 प्रस्तावना

मृच्छकटिकम् प्रकरण में तत्कालीन सामाजिक दशा का विस्तृत वृतान्त है। इसमें मुख्य रूप में दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त व गणिका वसन्तसेना का पवित्र प्रेम वर्णित है। इस प्रकरण में स्थान–स्थान पर सुभाषित कथन हैं जो आज के समय में भो शिक्षा प्रदान करते हैं। इस इकाई में आप मृच्छकटिकम् की इन्हीं ''सूक्तियों'' (सुभाषित कथन) की हिन्दी भाषा में व्याख्या पढ़कर लाभान्वित होंगे।

22.2 प्रथम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. शून्यमपुत्रस्य गृहं चिर शून्यं नास्ति सन्मित्रम्।
   मूर्खस्यदिशः शून्याः सर्वं शून्यं दरिद्रस्य।।
2. अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्।
3. भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति च।
4. अहो निधनता सर्वापदामास्पदम्।
5. मुमूर्षुर्यो भवति न स खलु जीवति।
6. रत्न रत्नेन संगच्छते।
7. न युक्तं परकलत्रदर्शनम्
8. स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि नावच्चण्डो भवति।
9. पुरुषेषु न्यासानिक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु।
10. बहुदोषा हि शर्वरी

22.2.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. शून्यमपुत्रस्य गृहं चिर शून्यं नास्ति सन्मित्रम्।
मूर्खस्यदिशः शून्याः सर्वं शून्यं दरिद्रस्य।।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गय है जब सूत्रधार मृच्छकटिकम् नामक प्रकरण मे होने वाली घटनाओं को बताते हुए दरिद्रता की निन्दा करते हुए आगे घटित होने वाली चारुदत्त की दरिद्रता की ओर सकेत करते हुए कहा है कि समस्त वैभव के होते हुए भो यदि गृह प्रागण मे शिशुलीला करने वाला पुत्र नही है वह घर वास्तव मे शून्य (सूना) ही होता है यदि किसी का कोई अच्छा मित्र नही है उसका चिरकाल शून्य ही है क्योकि सहायक (मित्र)न होने के कारण उसके कार्यों मे बाधा पड़ती है। कोई भो अभिमत कार्य नहीं हो पाता। इसी भांति संसार में सब कुछ होते हुए भो मूर्ख उसका उपयोग नहीं कर पाता है। अतः उसके लिए सभो ओर शून्यता ही रहती है। परन्तु दरिद्र व्यक्ति के लिए तो समस्त संसार ही शून्य अर्थात नही के सदृश है क्योंकि न तो कोई उसका साथ देता है, न बात सुनता है, न करता है, न कुछ देता है। अतएव दरिद्र होना तो महाअभिशाप के समान है।

2. अल्पक्लेशं मरणं, दारिद्र्यमन्तकं दुःखम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब चारुदत्त अपनी वर्तमान दरिद्रता को सोच कर मरणतुल्य कष्ट का अनुभव करते हुए कहता है कि दरिद्रता अथवा मृत्यु में से मुझे मरना ही अच्छा लगता है क्योंकि मरना अल्प समय कष्ट देने वाला होता है परन्तु दरिद्रता तो ऐसा कष्ट है जो कभो भो समाप्त नहीं होता– 'अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमन्तकं दुःखम्।''

उपर्युक्त कथन सत्य ही प्रतीत होता है। पूर्व में सुखी जीवन व्यतीत करने के उपरान्त निर्धनता का कष्ट तो मृत्यु से भो निकृष्टतर है क्योंकि मरते समय होने वाला कष्ट तो अन्तिम कष्ट होता है परन्तु दरिद्रता के कारण तो जीवन भर कष्ट उठाना पड़ता है।

3. भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब चारुदत्त अपनी दरिद्रता के विषय में सोच कर विदूषक से कहता है कि धनहीन होने के कारण अतिथि लोग मेरे घर को छोड़ देते हैं तथा अन्यत्र चले जाते हैं। ये बात मुझे अत्यधिक कष्ट दे रही है। विदूषक उसे

समझाते हुए कह रहा है ये धन तो उन्हीं के पास सुरक्षित रहता है जहाँ इसका उपभोग नहीं होता है अतः आप दुखी मत होइए। ऐसा सुनकर पुनः चारुदत्त कहता है मेरा धन विनष्ट हो गया है यह चिन्ता मुझे नहीं सता रही है क्योंकि धन तो भाग्यक्रम से ही प्राप्त होते हैं और चले भो जाते हैं– भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति च।

4. अहो निधनता सर्वापदामास्पदम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चारुदत्त धनहानि होने के कारण होने वाली हानियों का वर्णन करते हुए कहता है कि दरिद्रता के ही कारण व्यक्ति लज्जा को प्राप्त करता है अर्थात् प्रत्येक स्थान पर लज्जित होता है, लज्जित होने के कारण वह तेज से रहित (निस्तेज) जो जाता है, तेजहीन होने से वह अपमानित होकर ग्लानि को प्राप्त करता है, ग्लानि के कारण व्यक्ति शोक को प्राप्त होता है, शोकयुक्त व्यक्ति का बुद्धि द्वारा त्याग कर दिया जाता है। बुद्धिहीन (विवेकरहित) व्यक्ति विनाश को प्राप्त करता है। अतः सत्य ही है कि– अहो निधनता सर्वापदामास्पदम्, अहोः निर्धनता समस्त आपत्तियों का मूल कारण है।

5. मुमूर्षुर्यो भवति न स खलु जीवति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब वसन्तसेना का पीछा करते हुए विट, चेट और शकार का प्रवेश होता है। वसन्तसेना भागती है, ये तीनों उसका पीछा करते हैं। तेज चलने के कारण वह अपने परिजनों से आगे निकल जाती है। उसको अकेला पाकर शकार उससे प्रेम प्रकट करता है, विट व चेट भो उसे समझाते हैं जब वह इनका कहना नहीं मानती है तो शकार क्रोध में आकर कहता है कि मेरी तलवार तेजधार वाली है, तुम्हारा सिर भो मेरी ओर झुका हुआ है, मैं तुम्हारा सिर काट डालूंगा। तुम्हारे भागने से तुम्हें कोई लाभ नहीं मिल सकता है क्योंकि जो मरने वाला होता है। वह निश्चित रूप से जीवित नहीं रहता है– '' मुमूर्षुर्यो भवति न स खलु जीवति।''

सत्य ही कहा गया है मृत्यु जब साक्षात् उपस्थित हो तो जीवन असम्भव हो जाता है। (व्यक्ति मर जाता है)

6. रत्न रत्नेन संगच्छते

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब शकार वसन्तसेना का पीछा करते हुए वसन्तसेना को अकेला पाकर उसे नाना प्रकार का प्रलोभन देते हुए उससे प्रेम करने के लिए विवश करता है, इसके बाद जब वह उसका कहना नहीं मानती है तो गर्वोक्ति द्वारा उसे डराता है, उसे मारने तक की धमकी दे देता है। शकार का साथी विट भो उसे समझाता है कि तुम तो गणिका हो तुम्हें तो सभो लोगों कीसेवा करनी चाहिए। इसके उत्तर में वसन्तसेना कहती है कि गुण के कारण ही प्रेम होता है, बल का उपयोग करने से प्रेम नहीं होता। इसके पश्चात् अपनी कुटिल चाल चलते हुए कहता है कि विट! ये तो दरिद्र चारुदत्त को ही चाहती है। यहाँ से बायी ओर ही उसका घर है कोई ऐसा उपाय करो जिससे वह मेरे और तुम्हारे हाथ से निकल न जाए। विट मन में सोचता है कि शकार वही बात कह रहा है जो नहीं कहनी चाहिए। अन्यथा यह कथन भो ठीक ही प्रतीत होता है कि– ''रत्नं रत्नेन संगच्छते'' अर्थात् रत्न रत्न से ही प्राप्त होता है। भाव यह है कि वसन्तसेना का चारुदत्त से प्रेम उसके (चारुदत्त) गुणों के कारण ही है।

7. न युक्तं परकलत्रदर्शनम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब वसन्तसेना का पीछा करते हुए कहता है कि तुम मेरे साथ रमण करो। वसन्त सेना जब मना करता है तब वह उसे मारने तक की धमकी दे डालता है। शकार की बातों से अत्यधिक भयभोत होकर वसन्तसेना इधर–उधर भागती है। मार्ग में चारुदत्त का घर दिखता है तो वह उसमें प्रविष्ट हो जाती है। चारुदत्त उसे रदनिका समझ लेता है तथा अपने पुत्र के सो जाने पर उसके लिए (पुत्र के लिए) रदनिका को अपना उत्तरीय दे देता है। फिर वह विदूषक से पूछता है यह अन्य

कौन है जिसे मैंने रदनिका समझकर वस्त्र से अपवित्र कर दिया क्योंकि पराई स्त्री को देखना अनुचित है– ''न युक्तं परकलत्रदर्शनम्''

सत्य ही कहा गय है क्योंकि चारुदत्त एक सुशील, सच्चरित्र, श्रेष्ठ ब्राह्मण इस प्रकरण का नायक है। इस दृष्टि से उसका परस्त्री को देखना उचित नहीं है।

8. स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावत् चण्डोभवति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चारुदत्त जप समाप्त करके विदूषक से कहता है कि मातृदोषियों को बलि प्रदान करो। विदूषक कहता है कि मैं नहीं जाउंगा। एसा सुनकर चारुदत्त दुखी हो जाता है। तब विदूषक रदनिका (चारुदत्त की सेविका) के साथ जाने के लिए तैयार हो जाता है। विदूषक जैसे ही द्वार खोलता है तब शकार से भयभोत होकर घर के बाहर खड़ी हुई वसन्तसेना अपने आंचल से दीप बुझा देती है। विदूषक रदनिका से कहता है कि तुम चलों, मैं स्वयं दीप जलाकर आता हूँ। अवसर का लाभ उठाकर वसन्तसेना भोतर आ जाती है। ढूंढते हुए शकारादि वहाँ पहुंचते हैं तथा अंधेरे में खड़ी रदनिका को ही वसन्तसेना समझकर उसके बाल पकड़ लेते हैं। रदनिका इसका प्रतिवाद करती है। विदूषक जब वह सब देखता है तो अपमान का बदला लेने हेतु डण्डा हाथ में लेकर कहता हे कि– स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावत् चण्डोभवति'' अर्थात् अपने घर में तो कुत्ता भो बहादुर बनजाता है।

9. पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझ लेता है और पुत्र रोहसेन को भोतर ले जाने के लिए उससे कहता है। वह पुत्र को ठंड से बचाने के लिए उत्तरीय देता है। उसकी पुष्पगंध को सूंघकर वसन्तसेना प्रसन्न हो जाती है। वह चुपचाप खड़ी रहती है। अपने आदेश का पालन न होते देखकर चारुदत्त पुनः अपनी निर्धनता के लिए दुखी होने लगता है। इतने में विदूषक और रदनिका वहाँ आते हैं। तब चारुदत्त को ज्ञात होता है जिसे वह रदनिका समझता है वह तो वसन्तसेना है। वसन्तसेना चारुदत्त से कहती है कि आप मेरे आभ्षण धरोहर के रूप में रख लीजिए क्योंकि इनके ही कारण शकार व उसके साथ मेरा पीछा कर रहे हैं। ऐसा सुनकर चारुदत्त कहता है कि मेरा घर धरोहर रखने के योग्य नहीं है। यह वसन्त सेना कहती है कि– ''पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु''

अर्थात् धरोहर अधिकारी (उचित) पुरुषां के पास रखी जाती है न कि घरों में। सत्य ही कहा है क्योंकि यदि कोई अपनी धरोहर कहीं रखना चाहता है तो वह इस बात पर ही ध्यान रखेगा कि वह व्यक्ति (जिसके घर पर वह धरोहर रख रहा है) विश्वसनीय है अथवा नहीं।

10. बहुदोषा हि शर्वरी

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन ह जब शकार वसन्तसेना का पीछा करता है वसन्तसेना उसके डर से भागती हुई चारुदत्त के घर में प्रविष्ट हो जाती है। वह चारुदत्त के समीप अपने आभ्षण धरोहर के रूप में रखना चाहती है क्योंकि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि शकार सम्भवतः आभ्षणों के कारण ही उसका पीछा कर रहा ह। जब वह आभ्षणों को चारुदत्त के समीप धरोहर के रूप में रखवा देती है तब रात्रि का समय होने के कारण चारुदत्त व विदूषक उसे उसके घर तक छोड़ने जाते हैं वहाँ से जब लौटते हैं तब रात्रि के अंधेरे को देखकर चारुदत्त कहता है राजमार्ग में आने जाने वाले भो अब नहीं जा आ रहे हैं, राजपुरुष सिपाही) गश्त लगा रहे हैं। वसन्त सेना के आभ्षणों (जो कि चारुदत्त के घर में न्यास रूप में रखे हैं) को भो वंचना (चोरी रूपी ठगाई) से बचाना है क्योंकि रात को अनेक दोषों से परिपूर्ण होती है– 'बहुदोषा हि शर्वरी'' उपर्युक्त कथन सत्य ही प्रतीत होता ह क्योंकि रात में ही अनेक अपराध होते हैं।

22.3 द्वितीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. सुमेरु शिखर – पतनसन्निभ द्यूतम्।
2. अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति।
3. सत्कारधनः, खलु सज्जनः

22.3.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. सुमेरुशिखर – पतनसन्निमं द्यूतम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब संवाहक नामक जुआरी जुए में हार कर भागने लगता है अन्य जुआरी उसका पीछा करते हैं। तब वह एक मन्दिर की मूर्ति के पीछे छिप जाता है। जब संवाहक को अन्य जुआरी नहीं ढूंढ पाते तब थककर कह कहते हैं कि चलो हम दोनों जुआ खेलत हैं। उन दोनों के जुआ खेतले समय कौडियों की ध्वनि से संवाहक को भो जुआ खेलने की इच्छा होती है। वह मन में कहता है कि मेरी स्थिति तो बहुत ही दयनीय है जुए के कारण मैं अत्यधिक कर्जदार हो गया हूँ। यद्यपि कोयल की मधुर ध्वनि के समान कौड़ियों की खनखनाहट मेरे मन को आकृष्ट कर रही है, तथापि मैं अब जुआ नहीं खेलूंगा क्योंकि मुझे ज्ञात है कि कर्जदार होने के कारण मेरी स्थिति उस व्यक्ति के समान है जो सुमेरु पर्वत की चोटी पर चढ़ तो गया परन्तु बाद में गिर जाता है– 'सुमेरु शिखर–पतन सन्निमं द्यूतम्'।

2. अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गय है जब कजदार जुआरी संवाहक भागते हुए वसन्तसेना के भवन में पहुंचता है। वहाँ पहुंचकर बताता है कि वह पाटलिपुत्र के सम्पन्न गृहस्थ का पुत्र हूँ। उर्जयिनी की प्रशंसा सुनकर यहाँ आ गया। यह शरीर की मालिश करने की कला का जानकारी है इसीलिए कुछ दिन उसने चारुदत्त की सेवा की जब अत्यधिक दानादि देने के कारण चारुदत्त निर्धन हो गए वहाँ कार्य छोड़ना पड़ा। इस बात पर वसन्तसेना कहती है कि सद्गुणों एवं धन का एक ही व्यक्ति में मिलना कठिन है। धन तो उसी के समीप रहता है जो कृपण हो अतः सत्य ही कहा गया है कि 'अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति' अर्थात् जिनका पानी पीने योग्य नहीं होता है उन्हीं तालाबों में अधिक पानी रहता है।

3. सत्कारधनः खलु सज्जनः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब वसन्तसेना को यह ज्ञात होता है कि संवाहक चारुदत्त का सेवक है, तब वह उसे अपने घर में शरण दे देती है। इसके उपरान्त चारुदत्त के गुणों की प्रशंसा करते हुए संवाहक कहता हे चारुदत्त वास्तव में धनी है क्योंकि वे तो सदैव दूसरों का सत्कार करते हैं सज्जव व्यक्ति यही धन है– ''सत्कारधनः खलु सज्जनः''

कहने का तात्पर्य यह है कि सज्जन व्यक्ति की धनवत्ता लक्ष्मी से नहीं होती है अपितु दूसरों का सत्कार करने से होती है। क्योंकि सभो का धन तो नष्ट हो जाता है परन्तु सज्जनों की सज्जनता के कारण दूसरों का सम्मान करना अविनाशी धन है। अतः चारुदत्त निर्धन होते हुए भो धनी है।

22.4 तृतीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्करः खलु परिणामादारुणः
2. शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता
3. वीणा हि नाम असमुद्रोत्थितं रत्नम्

22.4.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्करः खलु परिणामदारुणः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चारुदत्त का सेवक वर्धमानक यह बता रहा है कि सज्जनों की सेवा सुखदायक है परन्तु दुष्ट की सेवा करना दुष्कर है। चारुदत्त जो कि दानादि देने के कारण अत्यधिक निर्धन हो गया है परन्तु वह सज्जन है तथा वह सेवकों के प्रति अत्यधिक दयालु है। अतः उसकी सेवा करना श्रेष्ठ है परन्तु धन के गर्व से उद्धत, अन्त में कष्टदायक शकार जैसे दुष्ट स्वामी की सेवा करना अत्यधिक दुःख प्रदान करता है। क्योंकि ऐसे स्वामी को प्रसन्न करना भो अतीक कष्टकारी है।

अतः उपर्युक्त कथन सत्य ही प्रतीत होता है– 'पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्करः खल परिणामदारुणः।'

2. शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चौर्यकला में निपुण शर्विलक सेंध काटकर चारुदत्त के घर में प्रविष्ट होता है, उस समय विदूषक चारुदत्त के घर में रखे हुए वसन्तसेना के आभ्षणों की सुरक्षा की चिंता में परेशान है वह स्वप्न में बड़बडाता है कि हे चारुदत्त, यह स्वर्ण भाण्ड (पात्र) तुम सम्भालो। उस समय शर्विलक उसे मारना चाहता है पर स्त्री समझ कर छोड़ देता है। रदनिका शोर मचाती है, जिसे सुनकर विदूषक और चारुदत्त जग जाते है।। विदूषक से चारुदत्त को पता चलता है कि उसने (विदूषक ने) चौर शर्विलक को चारुदत्त समझकर स्वर्णभाण्ड दे दिया। चारुदत्त को इस बात का सन्तोष है कि चोर परिश्रम करके उसके घर में घुसा तथा खाली हाथ नहीं गया। जब विदूषत उसे स्मरण करवाता है कि वह स्वर्णभाण्ड तो वसन्तसेना की धरोहर है तब चारुदत्त दुखी व चिंतित होकर मूर्च्छित हो जाता है। जैसे ही उसे होश आता है तो सोचता है कि घटना की सत्यता पर कौन विश्वास करेगा, सभो मुझ पर सन्देह करेंगे। क्योंकि इस संसार में प्रतापशून्य निर्धनता सन्देह करने योग्य होती है– ''शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता'। उपर्युक्त कथन सर्वथा सत्य है क्योंकि दरिद्र पर सभो लोक शंका करते हैं।

3. वीणा हि नाम असमुद्रोत्थितं रत्नम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब अर्द्ध रात्रि व्यतीत हो चुकी है तथा चारुदत्त विदूषक के साथ संगीत का आनन्द लेने हेतु नगर में गए हुए हैं वहाँ रेमिल द्वारा गाए गए मधुर गीत की एवं वोणा की मधुर ध्वनि की प्रशंसा करते हुए चारुदत्त कहता हे कि वीणा नामक रत्न ऐसा रत्न है जो समुद्र से नहीं निकला। वीणा तो विरह से व्याकुल प्रेमीजनों की सखी है क्योंकि यदि संकेत स्थल पर समय पर प्रेमी न आ पाए तो वह वीणा मनोरंजन करती है। इसी प्रकार प्रियतमा से वियोग हो जान पर सहानुभ्ति भो दिखाती है। इस प्रकार वीणा नायक नायिका के मध्य प्रेम को बढ़ाने का आमोद–प्रमोद का साधन है। अतः उपर्युक्त कथन सत्य ही है कि ''वीणा हि नाम समुद्रोत्थितं रत्नम्''।

22.5 चतुर्थ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. स्वदोषैभवति हि शंकितो मनुष्यः
2. साहसे श्रीः प्रतिवसति
3. रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति
4. वेश्या श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः
5. न चन्द्रादातपो भवति
6. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यः

22.5.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. स्वदोषैर्भवति हि शंकितो मनुष्यः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब वसन्तसेना क्रीतदासी मदनिका का प्रेमी शर्विलक उसे दासीत्व पद से मुक्त कराना चाहता है। अतः वह उसके लिए मुद्राओं की व्यवस्था करने के कारण चौरकम करता है। वह चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर स्वर्णभाण्ड चुरा लाता है। चोरी करने के उपरान्त वह राजा के सिपाहियों से छुपकर किसी प्रकार भागते हुए वसन्त सेना के घर की ओर आ रहा है तथा कहता है कि चोरी करने वाला सदैव स्वयं के प्रति सशंकित रहता है। इसीलिए शीघ्रता में डरते हुए भागते समय यदि कोई देखता है या छिपकर खड़े ए मेरे समीप आता है तो मेरा दोषी मन उन सभो को शंका की दृष्टि से सोचने लगता है अतः सत्य ही कहा गया है कि– ''स्वदोषैभवति हि शंकितो मनुष्यः'' अर्थात् मनुष्य सदैव अपने ही दोषों के कारण शंकित होता है।

2. साहसे श्रीः प्रतिवसति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब वसन्तसेना की क्रीतदासी मदनिका का प्रेमी उसको दासीत्व पद से मुक्त कराने हेतु चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर स्वर्णभाण्ड चुरा लेता है। स्वर्णभाण्ड लेकर जब वह अपनी प्रेमिका के समीप पहुंचता है तो वह अपने चौरकम की प्रशंसा नाना प्रकार से करने लगता है। तब मदनिका कहती है कि तुमने मेरे लिए यह निन्दनीय कम क्यों किया। वह कहता है कि मैं निर्धनता से पीड़ित था परन्तु तुम्हारे प्रेम के कारण तुम्हें दासी पद से मुक्ति दिलाने के लिए मैंने आज रात साहसिक कार्य (चोरी) किया क्योंकि साहस में लक्ष्मी का निवास होता है– ''साहसे श्रीः प्रतिवसति''

महाकवि शूद्रक का यह कथन पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है क्योंकि जो पुरुष भाग्य का तिरस्कार करके अपनी शक्ति के अनुसार साहस करता है उसकी सहचारिणी लक्ष्मी हो जाती है।

3. रिक्तं पुरुष स्त्रियः परिभवन्ति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब शर्विलक अपनी प्रेमिका मदनिका (वसन्तसेना की क्रीतदासी) को दासी पद से मुक्त कराने के लिए चोरी करता है। वह वसन्तसेना के ही प्रेम चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर चोरी करता है। यह सब कार्य वह मदनिका से अत्यधिक प्रेम करने के कारण करता है। परन्तु मदनिका को उसका चोरी करना अच्छा नही लगता। इस कारण शर्विलक वेश्याओं की बुराई करते हुए कहता है कि स्त्रियों और लक्ष्मी पर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि ये अविश्वसनीय होती हैं ये तो अपने प्रेमी (अनुरागी) को भो अपमानित कर देती हैं। इसलिए जो स्त्री (वेश्या) स्वयं जिस प्रेमी से प्रेम करे उसे से पुरुष को प्रेम करना चाहिए अन्य से नहीं।

4. वेश्या श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब वसन्तसेना की क्रीतदासी मदनिका का प्रेमी उसको दासीत्व कार्य से मुक्ति दिलाने के एिल चोरी करके धन लाता है तथा अपनी प्रेमिका को अपने चौर कम के विषय में बताता है। परन्तु मदनिका को उसका चोरी करना सहीं नहीं लगता। इस बात से रूष्ट होकर वह कहता है वेश्याओं से प्रेम नहीं करना चाहिए क्योंकि वेश्याओं के सारे क्रिया कलपाप धन के लिए होते हैं। ये धन के लिए ही हंसती है और रोती हैं। पुरुष को अपने उपर विश्वास भो दिला देती हैं परन्तु स्वयं पुरुषा पर विश्वास नहीं करती हैं। अतएव उत्तमकुल एवं स्वभाव के व्यक्तियों को वेश्याओं का परित्याग श्मशानस्थल पर लगे हुए पुष्पों के समान कर देना चाहिए अतः सत्य ही कहा गया है कि– ''वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः''

5. न चन्द्रादातपो भवति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब शर्विलक अपने चौर्य व्यवसाय की चर्चा करता हुआ मदनिका को छुड़वाने के लिए वसन्तसेना के घर की ओर चल पड़ता है। उधर वसन्तसेना चारुदत्त का चित्र को अपने शयनकक्ष में रखने के लिए मदनिका को भजती है। इसी समय शर्विलक वहाँ पहुंचता है तथा शंकित होता हुआ चुराए गए आभ्षण मदनिका को दे देता है। आभ्षणों को देखकर मदनिका आश्चर्य में पड़ जाती है। जब वह पूछती है कि ये गहने कहाँ स लाए तब शर्विलक उन गहनों को चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर लाने की बात बताता है। वह उन आभ्षणों को भो पहचान लेती है कि ये आभ्षण तो वसन्तसेना के ही हैं जो उसने चारुदत्त के घर न्यास के रूप में रखे थे। मदनिका शर्विलक से कहती है तुमने यह अनुचित कार्य किया है तुम इन्हें चारुदत्त को ही लौटा दो। तब वह कहता है यदि चारुदत्त मेरी शिकायत न्यायालय में कर दे तब क्या होगा। मदनिका कहती है कि ऐसा हो ही नहीं सकता, चारुदत्त तो अत्यधिक उदार, सज्जन, व दयालु है, जिस प्रकार चन्द्रमा से शीतल किरणें ही निकलती हे तेज धूप नहीं उसी प्रकार चारुदत्त की उदारता ही दिखायेंगे। अतः सत्य ही कहा है कि– ''न चन्द्रातपो भवति''

6. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यः

जब शर्विलक मदनिका को मुक्त कराने के लिए चोरी करके उसके पास आता है तब वह बताता है कि उसने चारुदत्त के घर से गहने चुराए हैं। मदनिका उसके इस कार्य से दुखी हो जातो है। वह कहती है कि इन्हें चारुदत्त को ही लौटा दो वैसे भो ये गहने तो वसन्तसेना ने ही चारुदत्त के घर धरोहर के रूप में रखवाए थे। वह कहता है कि यदि मैं इन्हें लौटा दूंगा तो यह कार्य चोरों की नीतियों के विरूद्ध होगा अतः तुम अन्य उपाय बताओ। वह एक आदर्श प्रेमिका की भांति बताती है कि तुम चारुदत्त का ही सम्बन्धी बनकर इन आभ्षणों को वसन्तसेना को सौंप दो। ऐसा करने से तुम चोर भो नहीं रहोगे, आर्य चारुदत्त भो उण (धरोहर वापस करने वाले) हो जाएंगे तथा वसन्तसेना को भो अपने आभ्षण मिल जाएंगे। ऐसा सुनकर शर्विलक कहता है कि मैंने तुमसे सूझबूझ प्राप्त करती है, मैं वही करूंगा जैसा तुमने कहा है। जब वह वसन्तसेना के समीप पहुंचता है तो सारे आभ्षण सौंप देता है। वसन्तसेना भो वधू के रूप में रूप में मदनिका को सौंपती है। यह सब घटित होने पर शर्विलक म नही मन चारुदत्त के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ होकर कहता ह कि आर्य चारुदत्त तुम धन्य हो। इसीलिए लोगों को सदैव गुणों की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए क्योंकि गुणवान् निर्धन व्यक्ति भो गुणहीन धनी लोगों से श्रेष्ठ होता है। अतएव सदैव पुरूष को गुणों के कारण कोई भो वस्तु अप्राप्य नहीं होती है।

जैसे चन्द्रमा गुणों के प्रकष से ही शिवजी (जो स्वयं सर्वोपरि हैं) के मस्तक पर विराजमान है। अतः महाकवि शूद्रक का कथन उचित एवं श्रेष्ठ है– ''गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यः''।

22.6 षष्ठ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. बलवता सह को विरोधः ?
2. वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न गृहीतस्य बन्धने
3. भोतामभय प्रदानं ददतः परोपकाररसिकस्य।

   यदि भवति, भवतु नाशस्तथापि च लोकगुण एव।।

22.6.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. बलवता सह को विरोधः ?

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब उज्जयिनी नगरी का राजापालक किसी सिद्ध पुरूष की भविष्यवाणी को सुनकर घबरा जाता है। यह भविष्यवाणी इस प्रकार थी कि इस नगरी का राजा गोपालक आर्यक बनेगा। ऐसा सुनकर पालक ने भयभोत होकर आर्यक को बिना किसी अपराध के कारागार में बन्द करवा दिया। उसका मित्र शर्विलक

उसे प्रयास करके जेल से बाहर निकाल लेता है। आर्यक अपने मित्र के प्रति कृतज्ञ होता हुआ कहता है कि यदि मेरे भाग्य में राज्य प्राप्ति है तो इसमें मेरा क्या अपराध है जिसके कारण राजापालक ने मुझे जंगली हाथी के समान बन्धन में डाल दिया। यद्यपि भाग्यवाली सिद्धि (राज्यादिप्राप्ति) टाली नहीं जा सकती फिर भो राजा से वैर करना उचित नहीं है क्योंकि बलशाली के साथ क्या विरोध– "बलवता सह को विरोधः" सत्य ही कहा गया है क्योंकि बलवान् व्यक्ति के साथ विरोध नहीं रखना चाहिए।

2. वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न गृहीतस्य बन्धने

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब कारागार से बन्धन तुड़वाकर भागा हुआ गोपालक आर्यक आत्मरक्षार्थ चारुदत्त की वाटिका में प्रवेश करता है, वर्धमानक चारुदत्त की गाड़ी पक्षद्वार में खड़ी कर देता है। आर्यक उसमें छिपकर बैठ जाता है। वर्धमानक यह समझता है कि चारुदत्त के बुलावे पर उसकी प्रेमिका वसन्तसेना आकर बैठ गई है। अतः वह गाडी लेकर पुष्कररण्डक जीर्णोद्यान की ओर चल पड़ता है। उसी समय राजा के सेनाधिकारी वीरक और चन्दनक वर्धमानक से गाड़ी रोकने को कहते हैं तथा वीरक और चन्दनक में वाद–विवाद होता है। चन्दनक कहता है कि राजा के प्रधान सेनापति एवं राजा के विश्वासपात्र भो हो अतः तुम देखों कि गाड़ी म कौन बैठा है, मैंने इन दोनों बैलों को पकड़ लिया है। वीरक कहता है कि तुम भो राजा के विश्वस्त सेनापति हो अतः तुम्हीं देखों, जब चेट गाड़ी का जुआ उपर उठाता है तब आर्यक मन में कता है कि ये राजा के सिपाही मुझे देखेंगे, मैं तो इस समय बिना शस्त्र के हूं। अतः मैं इस समय भोमसेन के समान बाहु को शस्त्र बनाकर मृत्यु का वरण करूंगा क्योंकि बन्धन में पड़े रहने की अपेक्षा लड़ते हुए मर जाना ही श्रेष्ठ है अतः यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि "वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न गृहीतस्य बन्धने"।

3. भीतामभय प्रदानं ददतः परोपकाररसिकस्य।
यदि भवति भवत् नाशस्तथापि च लोके गुण एव।।

जब राजा के सेनाधिकारी वीरक और चन्दनक वर्धमानक से गाड़ी रोकने को कहते हैं उसका वर्णन प्रस्तुत सूक्ति में करते हुए महाकवि शूद्रक कहते हैं कि परस्पर वाद–विवाद के पश्चात् जब चन्दनक गाड़ी में देखता है तो उसके भोतर कारागृह से भागे हुए आर्यक को देखता है। आर्यक उससे अभयदान मांगता है। चन्दनक उसे अभयदान दे देता है क्योंकि यदि कोई शरणागत की रक्षा न करके अपना स्वार्थ देखता है तो वह समाज में सर्वत्र निन्दित ही होता है। आर्यक को अपनी शरण में लेकर चन्दनक सोचता है कि भयभोत को शरण देने के कारण कभो–कभो अपने से बलशाली और सम्पन्न के साथ शत्रुता हो जाती है। शत्रुता होने पर मृत्यु की भो संभावना हो जाती है। फिर भो वह व्यक्ति संसार में प्रतिष्ठित होता है। अतः परोपकारी व्यक्ति द्वारा भयभोत व्यक्ति को अभय दान देना श्रेष्ठ कार्य है।

22.7 सप्तम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. न कालमपेक्षते स्नेहः
2. स्वात्मापि विस्मर्यते

22.7.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. न कालमपेक्षते स्नेहः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्योंकि चारुदत्त ने अपनी प्रेमिका को मिलने के लिए पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में बुलवाया है। वसन्तसेना को आने में विलम्ब होता देख दोनों परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं जब गाड़ी आ जाती है तब चारुदत्त चाहता है कि वसन्तसेना शीघ्र ही गाड़ी से

उतर कर उसके सम्मुख आ जाए क्योंकि– ''नकालमपेक्षते स्नेहः'' अर्थात् प्रेम समय का विलम्ब नहीं चाहता है। सही ही कहा गय है प्रेमी नायक–नायिका यदि परस्पर मिलना चाहते हैं तो प्रतीक्षा का अल्प समय भो उनको अधिक लगने लगता है।

2. स्वात्मापि विस्मर्यते

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना की गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। गाड़ी के आने पर विदूषक उसमें छिपकर बैठे हुए गोपालक आर्यक को देखता है और डर जाता है। तब चारुदत्त स्वयं चढ़कर देखता है तथा उसमें बैठे हुए सुन्दर रूपवाले हथकड़ी और बेड़ियों से बंधे हुए युवक (आर्यक) को देखकर उसका परिचय पूछता है। अपना परिचय देते हुआ (आर्यक) बताता है कि सिद्ध पुरूष की भविष्यवाणी (भविष्य में आर्यक राजा बनेगा) सुनकर राजा पालक ने उसे बेड़ियों में जकड़कर कारागार में डाल दिया था। मित्र शर्विलक की सहायता से वह कारागार से भाग तो आया पर राजा के सिपाहियों के डर से इस गाड़ी में छिपकर बैठ गया। चारुदत्त उसे अभयदान देते हुए कहता है कि चाहे मेरे प्राण भो चले जाएं परन्तु शरण में आए हुए तुम्हारी मैं जीवनरक्षा अवश्य करूंगा। ऐसा कहकर चारुदत्त उसे गाड़ी से ही जाने को कहता है जिससे कोई भो राजपुरूष उसे पकड़ नहीं पाए। उसकी कुशलता की कामना करता हुआ चारुदत्त कहता है कि आप अपने बन्धुओं के समीप जाइए। वह (आर्यक) कहता है कि मैंने तो अपना बन्धु पा लिया। ऐसा सुनकर चारुदत्त ने कहा कि अन्य प्रसंगों में भो मुझे स्मरण करना। पुनः आर्यक कहता है कि– ''स्वात्मापि विस्मर्यते'' अर्थात् क्या अपनी आत्मा को कोई भ्ला सकता है। भाव यह है कि जिस प्रकार आत्मा के अभाव में शरीर निर्जीव है उसी प्रकार आपको भ्लाकर मेरा भो कोई अस्तित्व नहीं रहेगा।

22.8 अष्टम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्
2. मूखैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा
3. हंसी हंसं परित्यज्य वायसं समुपस्थिता

22.8.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब बौद्ध भिक्षु लोगों को सावधान करता हुआ कहता है कि तुम लोग अपने अज्ञान को दूर करो। संयम रूपी धन को संचय करो। अतः भोजनादि भो उतना लो जितना जीवन जीने के लिए आवश्यक है। ध्यानादि क्रिया से सदैव जागते रहो क्योंकि चंचल इन्द्रियाँ चोर के समान संचित धर्म को भो चुरा लेती हैं। अतएव इन्द्रियनिग्रह पर ध्यान दो। महाकवि शूद्रक ने उचित ही कहा है– ''विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्'' अर्थात् कष्टकारक इन्द्रियरूपी चोर बहुत समय से सचित धर्म को चुरा लेते हैं।

2. मूखैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब बौद्ध भिक्षु उद्यान में नागरिकों को धार्मिक उपदेश देता है, उसी समय राजा पालक का श्याल (साला) शकार एवं विट उपस्थित होते हैं। शकार बौद्ध भिक्षु को डांटता पीटता भो है तथा कहता है कि जिस पुष्करिणी में मैं भो स्नान नहीं करता उसी में तुमने अपने वस्त्र धो डाले। तब विट कहता है कि यह सम्भवतः कुछ दिनों पूर्व ही संन्यासी बना है अतः इसे छोड़ दीजिए। शकार फिर भो क्रोधित ही रहता है तथा कहता है कि यह पानी को गंदा न करे, इसीलिए यह इस प्रकार से कीचड़ को फेंके जिससे पानी गन्दा न हो अथवा पानी को इकट्ठा कर कीचड़ में फेंके। शकार की मूर्खता भरी बातों को सुनकर विट कहता है कि लोकविरूद्ध मनवाले चेष्टाओं से पत्थर के टुकड़े से समान (मोटे या बेकार) शरीर वाले मांसमय पेड़ के रूपी मूर्खों के भार से यह पृथ्वी दबी हुई है। ऐसे व्यक्ति को कितना भो समझा दिया जाये ये समझना ही नहीं चाहते अतः कवि ने सत्य ही कहा है– ''मूखैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा'' यह पृथ्वी मूर्खों के भार से दबी हुई है।

3. हंसी हंसं परित्यज्य वायसं समुपस्थिता

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब शकार पुष्पकरण्डक उद्यान में बैठकर वसन्तसेना को याद करता है तबा अपनी गाड़ी की प्रतीक्षा करता है तभो उसे स्थावरक चेट दिखाई देता है तथा बताता है कि गाडी आ गई है। गाड़ी आ जाने पर वह उस पर चढ़कर वसन्तसेना को देखता है और घबरा जाता है और विट को पकड़ लेता है। विट जब वसन्तसेना को देखता है तब दुखी होकर कहता है कि– हंसी शरत्कालीन चन्द्रमा के समान उज्जवल नदी के किनारे पर लेटे हुए हंस को छोड़कर कौए के समीप आ गई है।

22.9 नवम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति
2. मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम्

22.9.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब शकार वसन्तसेना की हत्या करके अपना अपराध चारुदत्त के उपर लगवाना चाहता है। अपनी इस योजना में वह सफल भो हो जाता है। वह न्यायालय में कहता है कि उसने अपने पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में एक मरी हुई स्त्री का शरीर देखा है। वह स्त्री वसन्तसेना है। किसी ने धन के लोभ में आकर उसकी हत्या कर दी। न्यायाधिकारी यह ज्ञात करने के लिए कि वसन्तसेना किसके पास गई थी, उसके माता को बुलाते हैं। उसकी माता आकर बताती है कि वह अपने मित्र चारुदत्त के घर पर अभिसार करने गई है। यह सुनकर न्यायाधिकारी चारुदत्त को बुलाते हैं। जब न्यायालय के कमचारियों के साथ चारुदत्त आता है तो उसे मार्ग में अनेक अपशकुन दिखाई पड़ते हैं। न्यायालय में पूछे जाने पर वह बताता है कि वसन्तसेना तो अपने घर गई। इसी बीच वीरक आकर बता देता है कि चारुदत्त की गाड़ी में बैठकर वसन्तसेना जीर्णोद्यान की ओर जा रही थी। न्यायाधिकारी उससे कहते हैं कि उद्यान जाकर पता लगाओं कि क्या वहाँ पर कोई स्त्री मरी हुई पड़ी है। वह पता लगाकर बता देता है कि वहाँ एक स्त्री का मरा हुआ शरीर पड़ा है। यह सुनकर चारुदत्त अपने मन में सोचता है कि जिस प्रकार पुष्प के पहले विकास खिलने के समय) के समय में ही उसके रस का पालन करने के लिए भौंरे उस पर टूट पड़ते हैं उसी प्रकार मनुष्य की विपत्ति के समय छोटे–छोटे दोष भो बड़े से बड़ा अनिष्ट कर डालते हैं। अतः सत्य कहा गया है– ''छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।''

2. मूले छिन्ने कुतः पापदस्य पालनम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राजा का साला शकार उद्यान में वसन्तसेना की हत्या कर देता है तथा वह अभियोग चारुदत्त पर लगाकर प्रस्तुत करता है। वह न्यायाधीशों को बताता है कि चारुदत्त ने उद्यान में जाकर वसन्तसेना की हत्या कर दी। जब चारुदत्त से पूछा जाता है तब वह सत्य बोलता है कि वह इस विषय में कुछ नहीं जानता है। परन्तु शकार की धूर्तता के कारण प्रमाण भो चारुदत्त को अपराधी सूचित करते हैं। अतः चारुदत्त को मृत्युदण्ड दिया जाता है। इस पर दुखी होकर वह कहता है कि राजा पालक बिना विचारे ही कार्य करता है। इसीलिए इसके शासन में अनेक लोग अकारण ही मारे जा रहे हैं। इसलिए वह अपने मित्र मैत्रेय को बुलाकर उससे अपने पुत्र रोहसेन के पालन का भार सौंपकर स्वयं वध्यस्थल पर जाता है। मैत्रेय कहता है कि मैं तुम्हारे वचन का पूर्णतः पालन करूंगा परन्तु वृक्ष की मूल (जड़) कट जाने पर उसका किस प्रकार पालन हो सकेगा।

22.10 दशम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्तिंल भते
2. सर्वत्रार्जवं शोभते

22.10.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्तिं लभेते।

जब शकार की धूर्तता के कारण मिथ्यारोपवश चारुदत्त का मृत्युदण्ड मिलता है। तब दो चाण्डाल चारुदत्त को मृत्युदण्ड की वेशभषा पहनाकर वध्यस्थल पर ले जाते हैं उसी समय का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि उस समय चाण्डाल कुल गोत्र का परिचय देते हुए उसके अपराध और मृत्युदण्ड की घोषणा करते हैं जिसे सुनकर चारुदत्त दुखी होता है। उसी समय विदूषक भो चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को लेकर आता है। रोहसेन पिता की अवस्था को देखकर रोता है। तब चारुदत्त भो दुखी होता है। जब चाण्डाल यह पूछता है कि क्या तुम डर रहे हो। तब चारुदत्त ने कहा मैं मृत्यु से नहीं डरता। ऐसा सुनकर चाण्डाल कहता है कि जब आकाश में रहने वाले सूर्य और चन्द्र भो विपत्ति को प्राप्त करते हैं तब मृत्यु से डरने वाले मनुष्यों की क्या बात है। क्योंकि इस संसार में जीव व मरण का क्रम चलता रहता है। अतः हे चारुदत्त तुम शोक मत करो।

2. सर्वत्रार्जवं शोभते

जब राजा पालक को मारकर आर्यक राजा बनता है वह सभो प्रजाजन के प्रति उचित व्यवहार व न्याय करता है। चारुदत्त को क्षमा दान देकर शकार को चारुदत्त पर मिथ्याभियोग लगाने के कारण मृत्युदण्ड का आदेश देता है परन्तु चारुदत्त के कहने पर राजा उसे (शकार को) क्षमा कर देता है। उसी समय शर्विलक स्वयं क द्वारा की चारुदत्त के घर के घर स्वर्णाभषणों की चोरी का स्मरण कर सोचता है कि चारुदत्त तो स्वभाव से अति सरल व उदार है। वे मुझे क्षमा अवश्य कर देंगे क्योंकि– ''सर्वत्रार्जवं शोभते''। जो व्यक्ति स्वभाव से सरल होता है वह सदैव शोभायुक्त होता है।

22.11 पारिभाषिक शब्दावली

आस्पद	निवास स्थान
मुमूर्षु	मरने वाला
कलत्र	स्त्री
न्यास	धरोहर
शर्वरी	रात्रि
पिशुनः	दुष्ट
आर्जवं	सरलता
वरम्	ठीक है
व्यायच्छतः	लड़ते हुए

22.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या कीजिए–

1. भाग्यक्रमेण धनानि भवन्ति यान्ति।
2. बहुदोषा हि शर्वरी।
3. सत्कार धनः खलु सज्जनः।
4. शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता
5. वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न ग्रहीतस्य बन्धने।
6. न कालमपेक्षते स्नेहः
7. विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्
8. मूर्खैभाराक्रान्ता वसुन्धरा
9. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति
10. मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम्।
11. सर्वत्रार्जवं शोभते।
12. साहसे श्रीः प्रतिवसति।

बोध प्रश्नोत्तर

1. इकाई 22.2.2 में देखिए
2. इकाई 22.2.2 में देखिए
3. इकाई 22.3.2 में देखिए

4. इकाई 22.4.2 में देखिए
5. इकाई 22.6.2 में देखिए
6. इकाई 22.7.2 में देखिए
7. इकाई 22.8.2 में देखिए
8. इकाई 22.8.2 में देखिए
9. इकाई 22.9.2 में देखिए
10. इकाई 22.9.2 में देखिए
11. इकाई 22.10.2 में देखिए
12. इकाई 22.5.2 में देखिए

22.13 सारांश

इस इकाई में मृच्छकटिकम नाटक की कल्याणकारग सूक्तियों की व्याख्या की गई है । ये सूक्तियां न केवल सामाजिक अपितु आर्थिक राजनैतिक महत्व की भी है । इस सूक्तियों में निति, धर्म, चरित्र, दरिद्रता आदि का सम्यक समावेश हुआ है।

22.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृच्छकटिकम् – डॉ जयशंकर लाल त्रिपाटी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 1993.
2. मृच्छकटिकम् – डॉ श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ, 1995.
3. शुद्रक का मृच्छकटिकम् – डॉ विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1998.
4. मृच्छकटिकम् – शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन – डॉ शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1998.

इकाई 23

याज्ञवल्क्यस्मृति (व्यवहाराध्याय)

ईकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 याज्ञवल्क्यस्मृति (व्यवहाराध्याय) का सामान्य परिचय
23.3 साधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण
23.3.1 चतुष्पाद व्यवहार
23.4 असाधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण
23.4.1 अविश्वसनीय साक्षी (गवाह)
23.4.2 वादविषयक प्रमाण
23.5 ऋणादानप्रकरण
23.6 उपनिधिप्रकरण
23.7 साक्षिप्रकरण
23.8 लेख्यप्रकरण
23.9 दिव्यप्रकरण
23.9.1 दिव्यमातृका -
23.9.2 घटविधि -
23.9.3 अग्निविधि -
23.9.4 उदक विधि -
23.9.5 विषविधि -
23.9.6 कोशविधि -
23.10 दायविभागप्रकरण
23.10.1 पुत्रों के प्रकार -
23.11 सीमाविवादप्रकरण
23.12 स्वामिपालविवादप्रकरण
23.13 स्वामिविक्रयप्रकरण
23.14 दत्ताप्रदानिकप्रकरण
23.15 क्रीतानुशयप्रकरण
23.16 अभ्युप्रेत्याशुश्रुषाप्रकरण
23.17 संविव्द्यतिक्रमप्रकरण
23.18 वेतनादानप्रकरण
23.19 द्यूतसामाह्वयप्रकरण
23.20 वाक्पारुष्यप्रकरण
23.21 दण्डपारुष्यप्रकरण

23.22 साहसप्रकरण
23.22.1 साहस में प्रासङ्गिक प्रकरण -
23.23 विक्रीयासंप्रदानप्रकरण
23.24 संभूयसमुत्थानप्रकरण
23.25 स्तेयप्रकरण
23.26 स्त्रीसंग्रहणप्रकरण
23.27 प्रकीर्णकप्रकरण
23.28 पारिभाषिक शब्दावली
23.29 अभ्यासार्थ प्रश्न
23.30 सारांश
23.31 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

23.0 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के बाद आप -

- याज्ञवल्क्यस्मृति के अन्तर्गत व्यवहाराध्याय के स्वरूप से परिचित होगें।
- व्यवहाराध्याय के अन्तर्गत वर्णित प्रकरणों का क्रमश: अभिज्ञान कर पायेंगे।
- धर्मशास्त्रान्तर्गत अनेक विवादों के परिप्रेक्ष्य में याज्ञवल्क्य स्मृति का क्या मत है, इसको जान पायेंगे।
- इन विषयों को जानने के बाद तत्कालीन क्रियाकलापों का भी अवबोध कर पायेंगे।

23.1 प्रस्तावना

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये पुरुषार्थ चतुष्टय के अभिधान से जाने जाते हैं। इनमें धर्मपूर्वक अर्थ की प्राप्ति और उस अर्थ से सभी कामनाओं की पूर्ति करने के पश्चात् मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है। वेद द्वारा प्रतिपादित धर्म है और वेदानुसारिणी स्मृतियाँ तन्मूलक होने से तद्वत् प्रमाण हैं। "धर्मशास्त्र तु वै स्मृति:" के मतानुसार स्मृतिग्रन्थ धर्मशास्त्रस्वरूप हैं। स्मृतिग्रन्थों में याज्ञवल्क्य स्मृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है और इसके प्रकरणों के अन्तर्गत विविध भौतिक विषयों को समविष्ट किया गया है। इस स्मृतिग्रन्थ के अन्तर्गत आचाराध्याय (१३ प्रकरण), व्यवहाराध्याय (२५ प्रकरण) और प्रायश्चिताध्याय (६ प्रकरण) तथा १००३ श्लोक हैं। इस स्मृति का संम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद की परम्परा से है। इस पर तीन टीकायें विश्वरूपकृत बालक्रीड़ा (८००-८२५ ई.), अपरार्ककृत याज्ञवल्कीय धर्मशास्त्र निबन्ध (प्राय: १२वीं शती) तथा विज्ञानेश्वरकृत मिताक्षरा (१०७०-११०० ई.) प्रसिद्ध हैं। इस स्मृति का काल प्राय: प्रथम से तृतीय शताब्दी के मध्य माना जाता है। आधुनिक भारतीय न्यायिक प्रणाली में इस स्मृति के व्यवहाराध्याय के प्रमुख विषयों को समाविष्ट किया गया है। इस ग्रन्थ का परिचय और प्रतिपाद्य विषय प्रमुख रूप से निम्नलिखित हैं -

23.2 याज्ञवल्क्यस्मृति (व्यवहाराध्याय) का सामान्य परिचय

महर्षि याज्ञवल्क्य प्रणीत याज्ञवल्क्यस्मृति का धर्मशास्त्र में अनुपम स्थान है । इस धर्मशास्त्रीय स्मृतिग्रन्थ के व्यवहाराध्याय के अन्तर्गत साधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण (१-८ श्लोक), असाधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण (९-३६ श्लोक), ऋणादानप्रकरण (३७-६४ श्लोक), उपनिधिप्रकरण (६५-६७ श्लोक), साक्षिप्रकरण (६८-८३ श्लोक), लेख्यप्रकरण (८४-९४ श्लोक), दिव्यप्रकरण (९५-११३ श्लोक), दायविभागप्रकरण (११४-१४९ श्लोक), सीमाविवादप्रकरण (१५०-१५८ श्लोक), स्वामिपालविवादप्रकरण (१५९-१६७ श्लोक), स्वामिविक्रयप्रकरण (१६८-१७४ श्लोक), दत्ताप्रदानिकप्रकरण (१७५-१७६ श्लोक), क्रीतानुशयप्रकरण (१७७-१८१ श्लोक), अभ्युप्रेत्याशुश्रुषाप्रकरण (१८२-१८४ श्लोक), संविव्द्यतिक्रमप्रकरण (१८५-१९२ श्लोक), वेतनादानप्रकरण (१९३-१९८ श्लोक), द्यूतसामाह्वयप्रकरण (१९९-२०३ श्लोक), वाक्पारुष्यप्रकरण (२०४-२११ श्लोक), दण्डपारुष्यप्रकरण (२१२-२२९ श्लोक), साहसप्रकरण (२३०-२५३ श्लोक), विक्रीयासंप्रदानप्रकरण (२५४-२५८ श्लोक), संभूयसमुत्थानप्रकरण (२५९-२६५ श्लोक), स्तेयप्रकरण (२६६-२८२ श्लोक), स्त्रीसंग्रहणप्रकरण (२८३-२९४ श्लोक), और प्रकीर्णकप्रकरण (२९५-३०७ श्लोक) का वर्णन है । व्यवहाराध्याय में कुल २५ प्रकरण हैं तथा ३०७ श्लोक हैं, जिनमें तत्सम्बन्धी विषयों का उपस्थापन किया गया है ।

23.3 साधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा सामान्य वाद-विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है । तदनुसार राजा को क्रोध और लोभ से रहित होकर विद्वान् ब्राह्मणों के साथ धर्मशास्त्र के अनुसार विवादों का निपटारा करना चाहिये अथवा उन विवादों पर विचार करना चाहिये । राजा को मीमांसा व्याकरणादि तथा वेदाध्ययन से युक्त धर्मशास्त्र के ज्ञाता और सत्य बोलने वाले पुरुषों को सभासद बनाना चाहिये जो शत्रु और मित्र के विवाद में समान निर्णय लेने की क्षमता रखते हों । राजा के कार्य की व्यस्तता अथवा अस्वस्थता होने के कारण विवादों के लिये सभी धर्मों के ज्ञाता ब्राह्मण को विवाद देखने के लिये नियुक्त करे । स्नेह, लाभ, भय के कारण विवाद में धर्मशास्त्र के विरुद्ध आचरण करनेवालों को उस विवाद में पराजय का जितना दण्ड हो, उसका दुगुना दण्ड ऐसा आचरण करनेवाले सभी सभासदों से पृथक्-पृथक् लेना चाहिये । किसी अन्य के द्वारा धर्मशास्त्र तथा आचार के विरुद्ध प्रताड़ित होने पर पीड़ित व्यक्ति राजा से निवेदन करे तो वह वाद का विषय होता है -

स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षित: परै: ।
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या ५

23.3.1चतुष्पाद व्यवहार - (१) जैसा वादी (अर्थी) ने आवेदन किया है वैसा ही प्रतिवादी (प्रत्यर्थी) के सामने वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम और जाति के साथ लिखे । (२) वादी के कथन को सुनने के पश्चात् प्रतिवादी द्वारा सुनाये गये का उत्तर प्रथम आवेदक वादी (अर्थी) के सामने लिखना चाहिये । (३) प्रतिवादी का उत्तर सुनने के बाद वादी शीघ्र ही लगाये गये अभियोग का प्रमाण को लिखवाये । (४) उस प्रमाण के सिद्ध हो जाने पर वादी की विजय होती है और इसके विपरीत प्रमाण के सिद्ध न होने पर वह हार जाता है । इस प्रकार विवादों में यह चतुष्पाद व्यवहार बतलाया गया है ।

23.4 असाधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा असामान्य वादविवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है । तदनुसार अभियोग का निस्तारण किये बिना अभियोक्ता को अभियुक्त नही बनाया जाना चाहिये । किसी अन्य

के द्वारा जिस पर अभियोग लगाया गया हो उस पर अभियोग न करे तथा जो बात अभियोग लगाते समय कही गयी हो उसे लिखते समय परिवर्तित न करे किन्तु कलह (वाक्-पारुष्य) और साहस (विष-शस्त्रादि से प्राणहरणादि) में उलटा अभियोग (प्रत्यभियोग) भी लगाया जा सकता है। दोनों कार्यों के निर्णय में समर्थ उपयुक्त जमानतदार (प्रतिभू) भी अवश्य लेना चाहिये। साहस (विष-शस्त्रादि से प्राणहरणादि), चोरी, गाली, गाय, अभिशाप और स्त्री से सम्बन्धित विवादों का शीघ्र निर्णय करना चाहिये और विषयों के अन्तर्गत इच्छानुसार वादी, प्रतिवादी, सभ्य और सभापति के अनुसार समय से निर्णय करना चाहिये। यदि पण (शर्तबाजी) लगाकर विवाद हो तो धन हारनेवाले से जीतनेवालों को दिलवाना चाहिये और बाजी राजा को दिलवाना चाहिये। बाजी लगाने वाले के हारने पर पण राजा को देय होता है और धन जीतने वाले को दिलाया जाता है। छल को हटाकर राजा को सत्य बात से निर्णय करना चाहिये क्योंकि यदि सत्य बात न कही जाय तो पराजित होना पड़ता है। वादी द्वारा लिखवायी गयी वस्तुओं में से प्रतिवादी यदि अनेक का लेना स्वीकार नहीं करता है और एक भी वस्तु का लेना स्वीकार करता है या करवा लिया जाता है तो राजा के द्वारा सभी वस्तुयें दिलायी जानी चाहिये। वादी भी उन वस्तुओं को न ले जिसके लिये उसने पूर्व में निवेदन नहीं किया है। दो स्मृतियों में विरोध होने पर प्राचीन व्यवहार से निर्णय करना चाहिये। सार्वकालिक नियम यह है कि अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्र बलवान् होता है - **"अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थिति:। व्यवहाराध्याय २१"**। सभी प्रकार के धन के विवादों में बाद के कार्य प्रबल होते हैं किन्तु बन्धन (आधि), दान, और क्रय में पहले के कार्य प्रबल होते हैं। वास्तविक स्वामी के देखने और न बोलने पर दूसरे द्वारा कब्जा की गयी जमीन पर बीस वर्षों बाद वास्तविक स्वामित्व की हानि हो जाती है और धन का दस वर्षों तक बिना प्रतिवाद के उपभोग करने पर स्वामित्व की हानि हो जाती है। आधि (बन्धक), सीमा, उपनिक्षेप (विश्वासपूर्वक किसी के पास रखा गया) तथा मूर्ख और बालक का धन, उपनिधि, राजधन, स्त्रीधन तथा श्रोत्रियधन कभी भी स्वामी के अधिकार से विरहित नहीं होता। बन्धक आदि को चुरानेवाले से धन को धन के स्वामी को दिलवाना चाहिये और उसके बराबर अथवा अपहरणकर्ता की शक्ति के अनुसार दण्ड राजा को दिलवाना चाहिये। बिना पूर्व की तीन पीढ़ी (प्रपितामह, पितामह और पिता) के क्रम के भोग से आगम (लेख) बलवान् होता है किन्तु जहाँ थोड़ा भी कब्जा (भोग) नहीं है, वहाँ आगम में भी कोई बल नहीं होता है। जिस व्यक्ति ने भूम्यादि का लेख किया है, वह अभियोग चलने पर उसे उद्धृत करे। उसका पुत्र और पौत्र उसे प्रस्तुत न करे क्योंकि उनके लिये भोग (कब्जा) ही श्रेष्ठ प्रमाण है। जो व्यक्ति अभियुक्त होने पर अर्थात् अभियोग चलने के बाद मर जाय तो उसका धन जो प्राप्त करे वह उस लेख को प्रस्तुत करे। ऐसी स्थिति में लेख के बिना भोग प्रमाण नहीं है। राजा के द्वारा नियुक्त मनुष्यों के व्यवहार दर्शन के लिये पूग (समूह), श्रेणी तथा कुल इनमें पूर्व-पूर्व को श्रेष्ठ मानना चाहिये। बलपूर्वक एवं उपाधि (भयादि) द्वारा निष्पन्न व्यवहारों तथा स्त्री के साथ रात्रि में, घर में तथा ग्राम के बाहर किये गये व्यवहारों को लौटा देना चाहिये अर्थात् अप्रमाण मानना चाहिये। मत्त (नशायुक्त), उन्मत्त (पागल), आर्त्त (रोगी दु:खी),व्यसनी, बालक, भयभीत पर चलाया गया व्यवहार एवं असम्बद्ध व्यक्ति पर चलाया गया व्यवहार सिद्ध नहीं होता है। नष्ट हुआ धन जो स्थान के रक्षकादि द्वारा प्राप्त हुआ है वह उसके स्वामी राजा को दे। वह धनी यदि चिह्नों के द्वारा उसे प्रमाणित नहीं कर सके तो उसके बराबर दण्ड का पात्र होता है। राजा ऐसा धन प्राप्त कर आधा ब्राह्मण को दे और यदि विद्वान् ब्राह्मण ऐसी निधि प्राप्त करे तो संपूर्ण ले लेवे क्योंकि वह सम्पर्ण विश्व का स्वामी है। अन्य के द्वारा ऐसी निधि प्राप्त

करने पर राजा षष्ठांश लाने अथवा प्राप्त करनेवाले को देवें। ऐसी निधि प्राप्त कर कोई न बतावे तो राजा के ज्ञात होने पर उससे संपूर्ण निधि लेकर उसके शक्ति के अनुसार दण्ड दे। चोरों द्वारा चुरायी गये धन को राजा अपने देश के उस व्यक्ति को जिसका धन उन चोरों ने चुराया है उसे प्रदान करवाये। यदि राजा ऐसा नहीं करता है तो जिसका धन चोरी हुआ है उसका और चुरानेवाले चोर का राजा को पाप लगता है।

23.4.1 अविश्वसनीय साक्षी (गवाह) -

अभियोग और साक्षी में अविश्वसनीय वह होता है, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, ओठ के निचले हिस्से तक को जीभ से चाटता है, जिसके ललाट पे पसीना होता है, मुख विवर्ण हो जाता है, हँसमुख होकर अथवा हकलाकर (स्खलित) बोलती है, परस्पर विरोधी अनेक बातें कहता है और दूसरे की कही बात का उत्तर नहीं देता, आँख नहीं मिलाता और ओठों को टेढ़ा करता है। ये मन, वाणी और कर्म की विकृतियाँ जिसमें स्वभाव से हो, भयादि से नहीं, वही अभियोग और साक्ष्य में अविश्वसनीय (दुष्ट) होता है। ये दोषयुक्त साक्षी के प्रति संभावनायें हैं, निश्चय नहीं। जो व्यक्ति संदिग्ध धन को स्वतंत्रतापूर्वक ग्रहण कर लेता है और धन मांगने पर भाग जाता है और राजा के बुलाये जाने पर नहीं बोलता है, वह हीन और दण्डनीय है। दोनो पक्षों के साक्षी उपस्थित हों तो प्रथम पक्ष के साक्षी से पूछना चाहिये। पूर्वपक्ष के अस्वीकृत हो जाने पर उत्तरपक्ष के साक्षियों को सुनना चाहिये।

23.4.2 वादविषयक प्रमाण -

किसी भी वाद के लिखित, उपभोग और साक्षी ये तीन प्रमाण हैं। इनमें किसी के न होने पर दिव्य प्रमाणों में से कोई प्रमाण का ग्रहण करना चाहिये।

23.5 ऋणादानप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा ऋणसम्बन्धी विषयों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार बन्धक रखे जाने पर प्रत्येक मास उसका अस्सीवां भाग ब्याज होता है किन्तु बन्धक नहीं रखे जाने की स्थिति में वर्णक्रम (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) से दो, तीन, चार और पाँच प्रतिशत वृद्धि होती है। जो ब्याज पर धन लेता है और अधिक कमाने के लिये जंगल में चला जाता है उससे दश प्रतिशत और जो समुद्र गमन करता है उनसे बीस प्रतिशत ब्याज लेना चाहिये अथवा सभी जातियों के लोगो के द्वारा स्वीकृत किये गये ब्याज को ही लेना चाहिये। पशु और स्त्री का ब्याज उसकी सन्तान है। तेल-घृत (रस) आदि का ब्याज स्वीकृत ब्याज से अधिकतम आठगुना हो सकता है और वस्त्र, धान्य और स्वर्ण का अधिकतम ब्याज चौगुना, तिगुना अथवा दुगुना हो सकता है। दिये गये धन को धर्मपूर्वक लेने वाले की शिकायत राजा से नहीं करनी चाहिये। यदि उस धन को लेने का प्रयास करने पर ऋणग्रहीता राजा के समीप जाता है तो राजा ऋणग्रहीता से ऋणदाता के धन को दिलावे और ऋणग्रहीता को दण्ड भी देवे। समान जाति के बहुत ऋण-दाताओं के होने पर जिस क्रम से ऋणग्रहीता ने ऋण लिया है धनियों को उसी क्रम ऋण दिलावे और भिन्न जातीय ऋणदाताओं के होने पर पहले ब्राह्मण का धन दिलाकर उसके बाद क्षत्रिय आदि का धन दिलवाना चाहिये। राजा ऋणी से धन वसूल कर धनी को दिलवाता है तो ऋणी से वास्तविक धन से दश प्रतिशत और प्राप्त करने वाले से पाँच प्रतिशत धन वसूल करे। धनी व्यक्ति अपने से निम्न जाति के ऋणी से यदि वह धन लौटाने में असमर्थ है तो ऋण के लिये उसकी जाति के अनुरूप कर्म करावे। यदि ब्राह्मण लौटाने में असमर्थ हो तो जैसे-जैसे उसके पास धन हो धीरे-धीरे उससे वापस ले। यदि ऋणी द्वारा लौटाये जाने पर धनी सूद के लिये प्रयुक्त अपने धन को न ले तो ऋणी उसे मध्यस्थ के पास स्थापित कर दे

और उसके बाद उसमें ब्याज प्राप्त नहीं होता है । परिवार के निमित्त यदि सम्मिलित परिवार के व्यक्तियों द्वारा या एक-एक व्यक्ति द्वारा कोई ऋण लिया गया है तो उसे परिवार का मुखिया दे और उसके मरने या बाहर चले जाने पर उसके उत्तराधिकारी को देना चाहिये । जो ऋण कुटुम्ब के लिये नहीं लिया गया है ऐसे पति और पुत्र द्वारा लिये ऋण को स्त्री न लौटावे और पुत्र द्वारा लिये गये ऋण को पिता को लौटाने की बाध्यता नहीं है । पति स्त्री द्वारा लिये गये (जो ऋण कुटुम्ब के लिये नहीं लिया गया है) ऐसे ऋण को न दे । सुरापानऋण, वेश्यागमनऋण, द्यूतक्रीडाऋण, दण्डऋण, करऋण, वृथादान आदि पैतृक ऋणो, दण्ड और शुल्कों तथा दानों को पुत्र को नहीं देना चाहिये । ग्वाले, मद्य बनानेवाले, नट, धोबी, बहेलिया (व्याध) की स्त्रियों के लिये ऋण को उनका परि दे क्योंकि उनकी जीविका उनकी स्त्रियों के अधीन है । मरणासन्न अथवा प्रवास में जाते समय पति द्वारा लिया गया या पति के साथ लिया गया अथवा स्वयं लिया गया ऋण पुत्र के न होने पर स्त्री दे और अन्य ऋण को नहीं दे । पिता के परदेश जाने पर, मर जाने पर, विपत्ति अथवा असाध्य रोग से ग्रस्त होने पर पुत्र-पौत्रादि ऋण को लौटावें । यदि वे ऋण को गुप्त रखते हैं तो साक्षियों द्वारा प्रमाणित होने पर ऋण को देना चाहिये । उत्तराधिकार प्राप्त धन को लेनेवाला ऋण को लौटावे, स्त्री लेनेवाला ऋण को लौटावे । जिसका धन एकमात्र पुत्र ने प्राप्त किया है वह पुत्र पिता के ऋण को लौटावे । पुत्रहीन ऋणी का धन का हिस्सा पानेवाला धन को लौटावे । भाईयों, पति-पत्नी और पुत्र का बटवारा नहीं होने पर परस्पर प्रतिभू (जमीन) ऋण और साक्ष्य का विधान स्मृतियों में नहीं है अर्थात् वे सम्मिलित परिवार में परस्पर ऋण आदि नहीं ले सकते हैं । प्रातिभाव्य (जमानतदार ऐसा व्यक्ति जो शर्त या विश्वास दिलाता है) दर्शन (आवश्यकता पड़ने पर उपस्थित करने या दिखाने), विश्वास (कि यह देने लायक है) और दान (न देने पर स्वयं देना) के कार्य में प्रातिभाव्य (जमानतदार) होता है । प्रथम दो दर्शन और प्रत्यय के असत्य होने पर राजा धन उनसे दिलावे और तीसरे के असत्य होने पर उसके पुत्रों से भी धन दिलावे । जहाँ दर्शन और प्रत्यय का प्रतिभू मर जाय वहाँ उसके पुत्र उस ऋण को न लौटावे किन्तु जो देने के लिये प्रतिभू हो उसके पुत्र उस ऋण को दे । यदि दानप्रतिभू के अनेक पुत्र हो तो अपने-अपने हिस्से के अनुसार धन दे । यदि सभी पूरा देने को उद्यत हों तो धनी अपनी रुचि के अनुसार किसी से ले । जिस प्रतिभू से राजा ने ऋणदाता का ऋण सबके सामने दिलाया है उसके ऋण लेनेवाला दूना देवे । प्रतिभू के स्त्री और पशु दिलाने की स्थिति में तो बच्चे सहित स्त्री और पशु दे । धान्य होने पर तीनगुना, वस्त्र होने पर चौगुना और रस (तेल-घृतादि) होने पर आठ गुना दिलावे । यदि धन बढ़कर ब्याज सहित दुगुना हो जाता है तो बन्धक नष्ट हो जाता है और जिसका समय निर्दिष्ट है वह उस समय के बीत जाने पर नष्ट हो जाता है किन्तु जिस वस्तु का फल ऋणदाता को सतत प्राप्त होता रहे जैसे खेत आदि वह नष्ट नहीं होता है । गोप्य बन्धक के उपभोग करने पर ब्याज न दे और उपकारक बैल बन्धक की हानि पर भी ब्याज न दे, दैव या राजोपद्रव के बिना ही बन्धक के नष्ट हो जाने या खो जाने पर बन्धक के समान ही वस्तु को देना चाहिये । योग्य और गोप्य बन्धक की सिद्धि स्वीकार करने से होती है और यदि सावधानीपूर्वक रक्षा किया जाता हुआ बन्धक धन और ब्याज की तुलना में न्यूनता अथवा व्यर्थता को प्राप्त हो तो दूसरा बन्धक रखना चाहिये या धनी का धन लौटा देना चाहिये । चारित्रबन्धक (सदाचार के कारण कम मूल्य की वस्तु बन्धक रखकर अधिक धन देना या अधिक मूल्य की वस्तु देकर कम धन देना) होने पर ब्याज के साथ धन दिलावे । सत्यकार होने पर (यह शर्त होने पर कि द्रव्य के दूना होने पर भी बन्धक का नाश नहीं होगा अपितु वह धन लौटाकर बन्धक वापस लिया जायेगा) दूने द्रव्य को दिलावे । ऋणी के बन्धक छुड़ाने आने पर बन्धक (आधि)

लौटा देना चाहिये अन्यथा बन्धक रखनेवाला चोरवत् दण्ड्य होता है। बन्धक रखने वाले के अनुपस्थित रहने पर बन्धक रखनेवाला देय धन को कुल में समर्पित कर बन्धक प्राप्त करे अथवा उस समय का मूल्य निश्चित कर उसे वहीं रहने दे, उसके बाद उसका ब्याज (वृद्धि) नहीं होगा। यदि धन के दूना होने पर भी ऋणी उपस्थित न हो और बन्धक नाश का समय नहीं है, वहाँ भी ऋणी के उपस्थित न होने पर बिना ऋणी के उपस्थित हुये भी धनी साक्षियों की उपस्थिति में उस बन्धक को बेच दे अथवा ब्याज सहित ऋण वसूल कर ले। भोग्य आधि की स्थिति में यदि धन के दूना होने पर बन्धक रखा जाय तो बन्धक से दूना धन धनी द्वारा वसूल कर लिये जाने पर बन्धक छोड़ देना चाहिये। यदि बन्धक प्रारम्भ में रखा गया है तो दैव या राजा के उपाधि के कारण धन के दुगुना होने की स्थिति तक उपभोग न हुआ (और शर्त रही हो कि धन दूना होने पर बन्धक छोड़ दिया जायेगा वहाँ बन्धक से दुगुना धन वसूल कर बन्धक को छोड़ देना चाहिये।

23.6 उपनिधिप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा उपनिधि सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार जब किसी पात्र में रखकर बिना रूप संख्या आदि को बताये किसी दूसरे के हाथ में द्रव्य रखा जाय तो वह रखी गयी (निक्षेप) वस्तु उपनिधि कहलाती है और उसको उसी रूप में वापस करना पड़ता है। वह उपनिधि यदि राजा अथवा दैव (जल-प्रवाहादि) तथा तस्करों द्वारा चुरा ली जाती है तो उसे नहीं लौटाया जाता है। यदि मांगने पर न लौटाया गया हो और उसके बाद राजा, दैव अथवा तस्कर द्वारा नष्ट हो गया हो तो उसके समान मूल्य को लौटाना होता है और राजा को उसके बराबर दण्ड देना पड़ता है। यदि उस उपनिधि से कोई स्वेच्छा से जीविका चलाता है अर्थात् उपभोग अथवा व्यवहार करता है तो जितनी उससे उसने वृद्धि की है उसके साथ लौटाना पड़ेगा। जो विधि उपनिधि में है याचित (वही माँग कर ली गयी), वाहित (पुनः किसी दूसरे के यहाँ रख दी गयी), न्यास (गृहस्वामी को बिना दिखाये परिवार के किसी दूसरे व्यक्ति को गृहस्वामी को दे देना- यह कहकर रखी गयी वस्तु) तथा निक्षेप (गृहस्वामी के सामने देना) में भी है।

23.7 साक्षिप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा साक्षी (गवाह) सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार तपस्वी, दानशील, कुलीन, सत्यवक्ता, धर्मप्रधान, सरलस्वभाव, पुत्रवान्, धनयुक्त तथा श्रौत-स्मार्त क्रिया में रस कम से कम तीन साक्षी होते हैं। ये जाति तथा वर्ण के अनुसार अथवा सभी जाति और वर्ण के लिये होते हैं -

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः।
धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः॥
त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः श्रौतस्मार्तक्रियापराः।
यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या ६८-६९

स्त्री, बालक, वृद्ध, जुवारी, मद्यप, उन्मत्त, अभिशप्त, रङ्गा-वतारी, पाखण्डी, कपटलेख लिखनेवाला, विकलेन्द्रिय, पतित मित्र, धन देनेवाला, सहायक, शत्रु, चोर, साहसी (बलपूर्वक अपहरण करनेवाला), प्रत्यक्ष असत्य बोलनेवाला, परिवार द्वारा परित्यक्त आदि साक्षी नहीं होते हैं। दोनों पक्षों के स्वीकार करने पर धर्मज्ञ एक व्यक्ति भी साक्षी होता है किन्तु एकान्त स्थान में की गयी चोरी, कठोर वचन तथा हठपूर्वक किये गये कार्य (साहस) में सभी साक्षी हो सकते हैं। वादी और प्रतिवादी के

समीप स्थित सभी साक्षियों को पूर्व में इस प्रकार बताना चाहिये - "जो साक्षी असत्य बोलता है वह पाप करनेवालों के लोक हैं, जो महापाप करनेवालों के लोक (स्थान) है, आग लगानेवालों के जो लोक हैं और स्त्री तथा बालकों की हत्या करनेवालों के जो लोक हैं उन सबको प्राप्त करता है। तुमने जो सैकड़ों जन्म-जन्मान्तरों में पुण्य अर्जित किया है वह उसका समझो जिसे तुम असत्य को पराजित कर रहे हो।" जो व्यक्ति साक्ष्य स्वीकार कर किसी प्रकार न बोले उससे राजा ब्याज सहित सभी धन ऋण देनेवाले को दिलावे और उसका दशमांश दण्ड के रूप में वसूले। ये सभी धन राजा छियालिसवें दिन दिलावे। जो नीच मनुष्य जानते हुये भी साक्ष्य नहीं देता है वह कूटसाक्षियों के पाप का भागी होता है और उन्हीं के तुल्य उसे दण्ड देना चाहिये। साक्षियों के वचनों में मतभेद होने पर अधिक साक्ष्य को ग्रहण करना चाहिये, बराबर साक्ष्य होने पर गुणियों के साक्ष्य को अङ्गीकार करना चाहिये और गुणियों में भी द्वैध होने पर जो सर्वोत्तम गुणी है उनके साक्ष्य को ग्रहण करना चाहिये। जिसके पक्ष को साक्षि सत्य कहे वह विजयी होता है और जिसके पक्ष को साक्षी असत्य कहे वह पराजित होता है। साक्षियों द्वारा साक्ष्य कह देने पर यदि दूसरे श्रेष्ठ गुण वाले या पहले के साक्षियों के दुगुने व्यक्ति उनके साक्ष्य के उलटा कहे तो पहले के साक्षी कूटसाक्षी होते हैं। जो धन दानादि के द्वारा साक्षियों को नियुक्त करे वह कूटकृत् होता है। ऐसा कूटकृत् तथा कूटसाक्षी ये दोनो विवाद के धन से दुगुना दण्ड प्राप्त करते हैं यदि इनमें कोई ब्राह्मण है तो उसे राज्य से निकाल दे। जो साक्षी होना स्वीकार करके शपथ (साक्ष्य) सुनाये जाने पर रागादि के वशीभूत होकर अन्य साक्षियों से छिपाता है अर्थात् यह कहे कि मैं साक्षी नहीं हूँ उसे विवाद के हारने पर जो दण्ड हो उसका आठगुना दण्ड लिया जाय और यदि ब्राह्मण हो तो देश से निकाल दिया जाय। जहाँ सत्य साक्षी से चारो वर्णों में से किसी का वध होता है वहाँ साक्षी अनृत (मिथ्या) बोले। उसकी शुद्धि के लिये ब्राह्मण सारस्वत चरु का निर्वपण करे।

23.8 लेख्यप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा लेख्य सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार यदि कोई विषय धनी और ऋणी के मध्य अपनी इच्छा के अनुसार तय हुयी है तो ब्याज की दर क्या है और उसे कब लौटाना है इसे साक्षियों के समक्ष धनी को लिख देना चाहिये और धनी अर्थात् ऋणदाता का भी नामोल्लेख होना चाहिये। सब विषय लिखे जाने के बाद ऋणी अन्त में अपना नाम हाथ से लिखे और यह भी लिखे कि जो इसमें लिखा है वह अमुक व्यक्ति के पुत्र मुझको सम्मत है। साक्षी भी अपने हाथ से अपने पिता के नामोल्लेख के साथ यह लिखे कि यहाँ अमुक व्यक्ति मैं साक्षी हूँ। वे साक्षी संख्या और गुण में सम होने चाहिये और उसके बाद अन्त में लेखक लिखे दोनों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर अमुक का पुत्र मुझ अमुक व्यक्ति ने इसे लिखा है। यदि वह लेख बलपूर्वक या छल, भय, लोभ, क्रोध, मदादि से न लिखकर अपने हाथ से लिखा गया हो तो साक्षियों के बिना भी प्रमाण माना गया है। लिखा गया ऋण तीन पीढ़ी तक ही देय होता है और बन्धक का तभी तक उपभोग होता है जब तक कि वह ऋण लौटा न दिया जाय। लेखक के देशान्तर में होने पर पढ़ने योग्य न रहने पर, खो जाने पर, मिट जाने पर, चुरा लिये जाने पर, जीर्ण हो जाने पर, जल जाने पर अथवा फट जाने पर दूसरा लेख लिखवाना चाहिये। संदिग्ध लेख की शुद्धि अपने हाथ से लिखे, दूसरे लेख से युक्ति-प्राप्ति (देश, काल और व्यक्तियों का द्रव्य से सम्बन्ध), क्रिया (उसके साक्षी का विधान), चिह्न (जो असामान्य चिह्न हो), संबन्ध (धनी और ऋणी का पारस्परिक सम्बन्ध) और आगम (द्रव्य-प्राप्ति का उपाय) हेतुओं से होती है। ऋण धन को लौटा-लौटा कर लेख के पीछे लिख दिया करे,

धनी भी धन प्राप्त कर अपने हाथ से चिह्नित (हस्ताक्षरयुक्त) प्राप्तिपत्र दे। ऋण लौटाकर लेख को काट दे अथवा यदि लेख नष्ट हो गया हो तो ऋणत्व-निवृत्तिसूचक अन्य लेख लिखवा दे। जो ऋण साक्षियों के सामने लिखा गया हो उन्हें साक्षियों के सामने ही लौटाना चाहिये।

23.9 दिव्यप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दिव्य (चमत्कारिक) विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार तुला, अग्नि, जल, विष, कोष में विशुद्धि (संदेह की निवृत्ति) के लिये पाँच दिव्य प्रयोग किये जाते हैं। इनका प्रयोग महाभियोगों में होता है और तभी होता है जब वादी भी शीर्षकस्थ जय-पराजय का भागी हो। अभियोक्ता और अभियुक्त की रुचि के अनुसार दोनो में किसी के लिये भी किया जाता है अथवा वे दोनों ही जय-पराजय स्वीकार करे। राजद्रोह और ब्रह्महत्यादि पातक में बिना जय-पराजय के भी इसे प्रयुक्त किया जाना चाहिये।

23.9.1 दिव्यमातृका -

दिव्यसाक्ष्य अथवा शपथलेनेवालों को पहले दिन उपवास रखकर दूसरे दिन प्रात: सवस्त्र स्नान कराकर बुलावे तथा राजा एवं ब्राह्मण के सामने सभी दिव्यों को करावे। स्त्री, बालक, वृद्ध, अन्धा, लंगड़ा, ब्राह्मण एवं रोगी के लिये तुला, क्षत्रिय के लिये अग्नि, वैश्य के लिये जल और शूद्र के लिये सात यव के बराबर विष का दिव्य करावे। सहस्रपण से कम के बाद में तप्त फाल, विष या तुला दिव्य न करावे। राजद्रोह तथा महापातक में ये सभी दिव्य सदा पवित्रता के साथ करे।

23.9.2 घटविधि -

तौल में निपुण व्यक्तियों द्वारा अभियुक्त को तुला पर चढ़ावे और उसके वजन के तुल्य मिट्टी आदि वस्तु हो उसके बराबर रेखा बनाकर उसे तुला से उतार ले। उसके बाद दिव्य करनेवाला तुला से इस प्रकार प्रार्थना करे "हे तुले ! तुम सत्य का स्थान हो। पूर्वकाल में देवताओं ने तुम्हारा निर्माण किया है। हे कल्याणि ! अत: तुम सत्य बोलो। मुझे संदेह से मुक्त करो। हे मात : ! यदि मैं पापी हूँ तो नीचे ले जाओ और यदि शुद्ध हूँ तो ऊपर ले जाओ।

23.9.3 अग्निविधि -

अग्नि का दिव्य करनेवाले के दोनो हाथो में ब्रीहि मलवा कर और तिल, व्रणचिह्न आदि स्थानों में अलक्तक का चिह्न लगाकर पीपल के सात पत्तों को सात सूतों से वेष्टित करते हुये इस प्रकार से प्रार्थना करे "हे अग्नि आप सभी प्राणियों के भीतर सञ्चार करते हैं। हे पावक, सर्वज्ञ पुण्य पाप के रूप में सत्य को कहें।" उसके ऐसा कहने पर उसके दोनो हाथो पर पचास पल के बराबर अग्निवर्ण लाल जलता हुआ लौहपिण्ड दोनों हाथों पर रखे। वह उस लौहपिण्ड को लेकर सात मण्डलों पर चले। एक मण्डल सोलह अङ्गुल का होता है और दो मण्डलों के मध्य इतना ही अन्तर होता है। तदनन्तर अग्नि को छोड़कर ब्रीहि को हाथों पर मले। यदि न जला हो तो शुद्धि को प्राप्त करता है। लौहपिण्ड के बीच में गिर जाने पर या सन्देह होने पर दुबारा पिण्ड लेकर चले।

23.9.4 उदक विधि -

हे वरुण ! आप सत्य से मेरी रक्षा करे इस वचन से जल को अभिमन्त्रित कर नाभि तक जल में खड़े व्यक्ति की कमर पकड़कर जल में प्रवेश करे। उसके डुबकी लगाने के साथ ही छोड़े गये बाण को लेने के लिये एक तीव्र गति वाला व्यक्ति जाये। यदि बाण को ले आने के समय तक वह डुबकी लगाये रए तो वह शुद्ध होता है।

23.9.5 विषविधि -

हे विष ! तुम ब्रह्मा के पुत्र तथा सत्य धर्म में स्थित हो। इस अभिशाप से मेरी रक्षा करो और सत्य के द्वारा मेरे लिये अमृत बनो। इस प्रकार कहकर हिमालय पर उत्पन्न शृङ्ग के विष को खा जाय। जो व्यक्ति विष को बिना उसके प्रभाव प्रकट हुये ही पचा जाय वह शुद्ध होता है।

23.9.6 कोशविधि -

दुर्गा, आदित्य उग्र देवों की पूजा कर उनके स्नानोदक को लावे। उसे दूसरे पात्र में रखकर तीन अञ्जलि दिव्यकरनेवाले को पिलावे। इस दिव्य को करनेवाले जिस व्यक्ति पर चौदह दिनों तक राजकृत या दैवकृत घोर विपत्ति नहीं पड़ती वह निस्सन्देह शुद्ध है।

23.10 दायविभागप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दायविभाग सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार यदि संपत्ति का विभाग पिता करे तो वह अपनी इच्छानुसार करे। ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ भाग मझले को मध्यम भाग और छोटे को छोटा भाग देकर विभाजन करे अथवा सभी को बराबर का हिस्सा दे -

विभागं चेत् पिता कुर्याद् इच्छया विभजेत् सुतान्।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या ११४

यदि पिता पुत्रों में समान हिस्सा करे तो उन पत्नियों को समान भाग दे जिनके श्वसुर अथवा पति के द्वारा स्त्री धन नहीं मिला है। यदि पुत्र अर्थार्जन में असमर्थ है और अपना भाग नहीं लेना चाहता तो पिता उसे कुछ हिस्सा देकर विभाग करे। यदि पिता द्वारा किया गया न्यूनाधिक विभाग धर्मशास्त्रानुसार है तो वह अपरिवर्तनीय होता है। यह सामान्य नियम पुत्र के अर्थार्जन में समर्थ और पैतृक दाय में कामना न करने पर ही लागू होता है। पिता के कुपित होकर न देने इत्यादि कारणों पर यह मान्य नहीं है। माता और पिता की मृत्यु के बाद सभी पुत्र पिता की संपत्ति एवं ऋण का बराबर - बराबर विभाग कर ले। माता का धन माता का ऋण चुकाने के बाद पुत्रियाँ बाँट ले और पुत्रियों के न होने पर पुत्र ले। माता और पिता के द्रव्य के बिना विनियोग के जो धन स्वयं कमाया गया धन, मित्र से मिला धन और विवाह में मिले धन का भाइयों में हिस्सा नहीं होता। पितृ परम्परा से प्राप्त धन जो किसी अन्य ने हरण कर लिया हो, वह भी केवल उसे छुड़ानेवाले का होता है। उसे दायादों को न दे और स्वयं की विद्या से अर्जित धन को भी दायादों को न दे। विभाजन से पूर्व भाइयों के एक में रहने पर साधारण धन में कृषि-वाणिज्यादि के द्वारा हुयी वृद्धि में सभी भाइयों का समान भाग होता है। पितामह के धन में पिता के के भाग के अनुसार ही पौत्र के भाग का निर्धारण होता है। जो भूमि पितामह द्वारा अर्जित है और जो कर, चुंगी तथा स्वर्ण-रजतादि पितामह द्वारा अर्जित है उसमें भी पिता के समान अर्थात् अंशानुसार पौत्र का भाग होगा। पुत्रों में संपत्ति का विभाग होने बाद यदि सवर्णा स्त्री से पुत्र होता हो तो वह भी अपने भाग का अधिकारी होता है। पिता की मृत्यु के बाद भाइयों के विभाजन के समय यदि माता के गर्भ का ज्ञान हो तो भी उस पुत्र के उत्पन्न होने पर आय तथा व्यय की राशि पर उस पुत्र का भाग होगा। माता-पिता जिस पुत्र को धर्मानुसार जो धन दे दे वह उसका होता है। पिता की मृत्यु के अनन्तर पुत्रों में विभाजन होने पर माता भी यदि स्त्री धन नहीं मिला है तो समान अंश की अधिकारिणी होती है। पिता की मृत्यु के बाद भाइयों में विभाजन होने पर संस्कृत भाई असंस्कृत भाइयों का संस्कार करावे। यदि बहन का विवाह नही हुआ है तो सभी भाई अपने अंश से चौथाई देकर विवाह करावे। ब्राह्मण की विभन्न वर्णों की स्त्रियों से उत्पन्न पुत्र

क्रमश: चार, तीन, दो और एक भाग के अधिकारी होते हैं। क्षत्रिय की तीन, दो और एक भाग के अधिकारी होते हैं तथा वैश्य के दो और एक भाग के अधिकारी होते हैं। ब्राह्मणादि वर्णों को अपने से नीचे के वर्णों में ही विवाह का अधिकार है, अत: ऐसी पत्नियों से उत्पन्न सन्तानों के विभागों का यहाँ विवरण सम्प्राप्त होता है। विभाग के बाद यदि कुछ धन आपस में छिपाकर रखा दिखायी पड़े तो सभी भाई उसे समान भाग से बाँट ले। यह नियम है। पुत्रहीन व्यक्ति देवर इत्यादि द्वारा दूसरे की स्त्री में नियोग द्वारा उत्पादित पुत्र दोनों की संपत्ति का अधिकारी और पिण्डदाता होता है। शूद्र द्वारा दासी में भी उत्पन्न पुत्र पिता की इच्छा से संपत्ति का भागीदार होता है। पिता के मर जाने पर परिणीता से उत्पन्न हुये जो दासीपुत्र के भाई उसे आधा भाग दे। यदि कन्यायें और उनके पुत्र न हो तो सभी संपत्ति वह प्राप्त करता है किन्तु कन्याओं तथा पुत्र के होने पर वह आधी संपत्ति प्राप्त करेगा। वानप्रस्थ, यति तथा ब्रह्मचारी की संपत्ति के अधिकारी उलटे क्रम से आचार्य, तच्छिष्य तथा एकतीर्थी अर्थात् एकाश्रमी धर्मभ्राता होता है। संसृष्टी अर्थात् पहले विभक्त किन्तु बाद में धन मिलाकर रहनेवाले व्यक्तियों की संपत्ति संसृष्टी ले। सोदर संसृष्टी का धन सोदर संसृष्टी ले। यदि सोदर संसृष्टी के मरन के बाद उसका पुत्र उत्पन्न हो तो संपत्ति ले। मृतक संसृष्टी की सन्तान न होने पर संसृष्टी उसी की संपत्ति ले। यदि दूसरे उदर से उत्पन्न सौतेला भाई संसृष्टी हो तो धन ले, यदि सौतेला भाई संसृष्टी न हो तो धन न ले। यदि एक ही माता से उत्पन्न भाई हो तो असंसृष्टी होने पर भी धन पाता है। मृतक व्यक्ति के सगे भाइयों में भी धन का विभाग होवे। नपुंसक, पतित, पतित से उत्पन्न पुत्र, पङ्गु, पागल, जड, मूर्ख (हिताहित जानने में असमर्थ), अन्धा, न ठीक होनेवाले रोग से ग्रस्त इनका संपत्ति में अधिकार नहीं होता। केवल वे भरण-पोषण के अधिकारी हैं। इन पूर्वोक्त भरण-पोषण के अधिकारियों के औरस या क्षेत्रज पुत्र निर्दोष पहले के दोषों से विरहित है तो संपत्ति के अंश का भागीदार होते हैं। इन यदि इन पूर्वोक्त नपुंसकादि की कन्यायें हों तो उनका भी जब तक वे पतिगृह में चली जाय भरण-पोषण और विवाह-संस्कार करना चाहिये। इन क्लीबादि की अपुत्र स्त्रियाँ भी सदाचारिणी होने पर भरण-पोषण की अधिकारिणी हैं। यदि व्यभिचारिणी तथा प्रतिकूल आचरण करनेवाली हैं तो उन्हें निकाल देना चाहिये। पिता, माता, पति और भाई द्वारा दिया गया धन, विवाह के समय अग्नि के समीप प्राप्त धन तथा दूसरा विवाह करते समय प्रथम पत्नी के परितोषार्थ दिया गया धन इत्यादि स्त्रीधन कहे गये हैं। स्त्री के माता पिता के बन्धुओं द्वारा दिया गया धन, परिणय के शुल्क के रूप में दिया गया धन, विवाह के बाद पति तथा पितृकुल से प्राप्त धन भी स्त्री-धन होता है और ऐसी स्त्रीधनवाली स्त्री के बिना सन्तान के मर जाने पर उसके बन्धु पति आदि उस स्त्रीधन को प्राप्त करते हैं। यदि वाग्दत्ता कन्या विवाह के पूर्व मर जाये तो वर ने जो शुल्क आदि दिया है वह दोनों पक्ष का व्यय कर ले ले। दुर्भिक्ष में, धर्मकार्य में, रोग में और बन्दी होने पर पति जो स्त्रीधन ले ले तो वह पुन: स्त्री को लौटाने का भागी नहीं होता। पति यदि पहली स्त्री के रहते दूसरी स्त्री से विवाह करता है तो दूसरे विवाह में जितना धन व्यय हुआ है उतना पहली स्त्री को दे। यदि पहली स्त्री को स्त्रीधन मिला हो तो दूसरे विवाह में व्यय हुये धन का आधा ही दे। विभाग का हिस्सा छिपाने अर्थात् अस्वीकार करने पर जाति के लोगो, साक्षियों, लेख और अलग किये क्षेत्र और गृह से विभाग जानना चाहिये अर्थात् इनसे विभाग का निर्णय करना चाहिये।

23.10.1 पुत्रों के प्रकार-

सवर्ण पत्नी से उत्पन्न पुत्र औरस होता है। उसी के समान पुत्रिका (भाई विहीन कन्या) का पुत्र होता है। पत्नी में सगोत्र या अन्य से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज होता है। घर में निम्न जाति के पुरुष से प्रच्छन्न रूप

से उत्पन्न पुत्र गूढज माना गया है। कन्यावस्था में अविवाहित होने पर पितृगृह में पुत्र हो तो वह कानीन होता है और मातामह का होता है और यदि कन्या विवाहिता है और पितृगृह में पुत्र को जन्म देती है तो वह पति का होगा ऐसा मनु का तात्पर्य है। अक्षत योनि (बिना किसी पुरुष के संपर्क वाली) अथवा क्षत (पूर्व में पुरुष के संपर्कवाली) स्त्री में (दूसरे विवाहेतर) पुरुष से उत्पन्न पुत्र पौनर्भव होता है। जिसे माता या पिता दे दे वह दत्तक होता है। माता-पिता या उनमें से किसी के द्वारा विक्रय किया गया पुत्र क्रीत होता है। माता-पिता से विहीन पुत्र को स्वयं पुत्र बना लेने पर वह स्वयंकृत पुत्र होता है और जो पुत्र स्वयं को किसी का पुत्र बना ले वह दत्तात्मा पुत्र होता है। जो विवाह के समय ही गर्भ में रहा हो वह सहोढज पुत्र होता है। माता-पिता द्वारा त्यक्त होने पर जो पुत्र स्वीकार किया जाता है वह अपविद्ध पुत्र होता है। इन पुत्रों में पूर्व-पूर्व के अभाव में बाद वाले पिण्ड देनेवाले तथा संपत्ति के भागीदार होते हैं। यह विधि समान जाति के पुत्रों में पूर्व और पर की है। जिस व्यक्ति के पूर्वोक्त बारह पुत्रों में से कोई भी न हो उस दिवंगत व्यक्ति के पुत्र नहीं होने पर पत्नी, पुत्रियाँ, माता-पिता, भाई, भाईयों के पुत्र, गोत्र में उत्पन्न, बन्धु, शिष्य, ब्रह्मचारी में पूर्व-पूर्व के अभाव में बाद के क्रम से उसकी संपत्ति के अधिकारी होते हैं। यह नियम सभी वर्णों के लिये है।

23.11 सीमाविवादप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा सीमा सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार खेत अथवा दो गाँवों के सीमा विवाद में सामन्त चारो ओर के गाँवों के लोग वृद्ध व्यक्ति, गोप, सीमा के किसान, सभी वनचारी, व्याधादि, उन्नत भूमि, राख, धान की भूसी, वट आदि वृक्ष, पुल, वल्मीक, गड्ढा, हड्डियों अथवा पत्थर आदि से पूर्व में निर्दिष्ट सीमा को निश्चित करे। अथवा ये व्यक्ति इन वस्तुओं से सीमा को निर्धारित करे। यदि कोई चिह्न अवशिष्ट न हो तो सामन्त, आस-पास के गावों के चार, आठ, दश की सम संख्या के लोग शिर पर मिट्टी का ढेला रखकर लाल माला और वस्त्र पहन कर सीमा का निर्धारण करे। इन सामन्तादि के असत्य बोलने पर राजा उन्हें मध्यम साहस चालीस पण से अधिक तथा पाँच सौ पण से कम का दण्ड दे। सीमा के जाननेवाले और चिह्नों के अभाव में राजा ही सीमा का निर्णायक होता है। बाग, मकान, ग्राम, पानी का स्थान, उद्यान, घर इनमें भी सीमा निर्धारण की यह विधि है। वर्षा के जल-प्रवाह आदि में भी यही विधि है। मर्यादा सीमा, पेड़ को तोड़ने सीमा को पार करने और खेत के हरण कर लेने पर क्रमश: अधम, उत्तम और मध्यम साहस का दण्ड होता है। थोड़ी बाधा होने पर अल्प भूमि जाने पर कल्याणकारी सेतु की निर्माण को न रोके। दूसरे की भूमि लेकर कूप निर्माण होने पर भूमि तो कम लगती है किन्तु जल अधिक प्राप्त होता है। जो खेत के स्वामी को बिना सूचित किये उसके खेत में सेतु आदि बनाता है ऐसे सेतु के बनने पर खेत का स्वामी ही उसके उपभोग का अधिकारी होता है। उसके न होने पर राजा अधिकारी होता है। जो खेत के स्वामी से खेत लेकर एक बार जोतकर पुन: न तो जोतता है, न दूसरे से जुतवाता है उसे उस जोत का फल देकर खेत को दूसरों को खेती के लिये दे।

23.12 स्वामिपालविवादप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा स्वामिपाल सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार यदि भैंस से खेत की फसल का नुकसान हुआ है तो भैंस के स्वामी से आठ माषा दण्ड ले। गाय के चरने पर उसका आधा अर्थात् चार माष दण्ड ले और बकरा, भेड़ के चरने पर उसका अधा अर्थात् दो माष दण्ड ले। पशु के खेत चरकर खेत में ही बैठने पर इसका दूना दण्ड होता है। बाड़े में प्रवेश करने पर भी पूर्ववत् दण्ड दे। गधे और ऊँट का दण्ड भैंस के समान है। गाय इत्यादि के चरने-

बैठने इत्यादि से जितना अन्न नष्ट हो उतना गाँव के सभ्यों द्वारा गाय के स्वामी से खेत के स्वामी को दिलवाना चाहिये। चरवाहों को पीटना चाहिये। गोमी (गाय के स्वामी) को पूर्वोक्त दण्ड देना चाहिये। मार्ग तथा ग्राम के समीपवर्ती खेत में पशुओं के बाड़े से सटे खेत में बिना चाहे पशुओं के द्वारा चरे जाने पर कोई दोष नहीं होता। जान-बूझकर इनमें चराने वाला चोर के समान दण्डनीय होता है। साड़ (वृषोत्सर्गादिविधान से या देवता के उद्देश्य से छोड़े गये पशु), दश दिन के अन्दर व्याई गाय और अपने समुदाय से भटके पशु को छोड़ देना चाहिये दण्ड के लिये नहीं पकड़ना चाहिये। जिसका कोई स्वामी न हो तथा जो पशु, देव या राजा द्वारा पीड़ित हो ऐसे पशु को खेत चरने पर भी छोड़ देना चाहिये। गोप (चरवाहे) को जितनी संख्या और स्वरूप के पशु प्रात:काल गोस्वामी को चराने के लिये दे चरवाहा उसी रूप में सायंकाल लौटावें। चरवाहों के प्रमाद से मरे या खोये हुये पशुओं का मूल्य चरवाहा वेतन में से लौटावे। चरवाहे के दोष से पशुओं के विनाश होने पर चरवाहे से साढ़े तेरह पण दण्ड स्वामी को दिलवावे। ग्राम के लोगो की इच्छा से, भूमि की अल्पत्व-महत्त्व की अपेक्षा से या राजेच्छा से गोचर भूमि को छोड़ना चाहिये। ब्राह्मण, तृण, इन्धन और पुष्प सभी स्थानों से सदा बिना बाधा के ले। ग्राम के चारों ओर एक सौ धनुष का क्षेत्र खाली छोड़े। खर्वट (प्रचुर कण्टक वाले गाँव) के चारों ओर दो सौ धनुष क्षेत्र छोड़े और नगर के चारों ओर चार सौ धनुष क्षेत्र छोड़े।

23.13 स्वामिविक्रयप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा स्वामी द्वारा विक्रय सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार अपनी वस्तु को किसी के पास अन्य अनधिकारी द्वारा बेची गयी देखे तो ले ले। अप्रकाशित (चोरी से) खरीदने में खरीदनेवाले का दोष होता है। हीन व्यक्ति (अस्वामी) से एकान्त में, कम मूल्य में और असमय (रात्रि आदि में) क्रय करनेवाला तस्कर होता है। अपनी खोयी या चोरी गयी वस्तु को देखकर हर्ता क्रेता को राजाधिकारियों से पकड़वाये। (उनके पकड़वाने में राजाधिकारियों की अनुपस्थिति के कारण) देश और काल की बाधा पड़ने (अर्थात् किसी दूसरे स्थान पर भाग जाने या देर होने की आशंका) पर स्वयं पकड़कर (दण्डाधिकारी) को दे दे। स्वामी आगम (लेख) और उपभोग से नष्ट वस्तु पर अपना स्वामित्व सिद्ध करे। उसके द्वारा अपना अधिकार प्रमाणित न करने पर राजा को उस वस्तु के मूल्य का पञ्चमांश दण्ड दे। जो अपनी चोरी गयी या खोई वस्तु को बिना राजा के सूचित किये ही दूसरे के हाथ से ले लेता है उसे राजा को छियानबे पणों का दण्ड देना होता है। शुल्क लेनेवाले या स्थानपालों द्वारा खोई या चुराई कोई वस्तु राजा को देने पर वस्तु का स्वामी एक वर्ष के भीतर उसे राजा से ले ले। इसके भीतर न लेने पर इसके बाद उसे राजा ले ले। एक खुरवाले (अश्व आदि) के मिलने पर उसका स्वामी राजा को चार पण (रक्षणादि के निमित्त शुल्क रूप में) दे, मनुष्य के मिलने पर पाँच पण दे, भैंस, ऊँट और गाय के मिलने पर दो-दो पण दे और भेड़ मिलने पर एक चौथाई पण दे।

23.14 दत्ताप्रदानिकप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दान-प्रदान सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार दान अपने कुटुम्ब के अविरोध से दे अर्थात् उतना ही दे जिससे उनके भरण-पोषण में बाधा न हो। स्त्री और पुत्र दान में न दे। वंश (पुत्र-पौत्र) होने पर सर्वस्व न दे और जो वस्तु दूसरे के देने की प्रतिज्ञा कर दी है वह फिर दूसरों को न दे -

स्वं कुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुताद् ऋते।
नान्वये सति सर्वस्वं यच् चान्यस्मै प्रतिश्रुतम्॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या १७५

प्रतिग्रह (दान) प्रकास में सबके सामने लेना चाहिये। विशेष रूप से स्थावर (भूमि, वृक्ष) का प्रकाश में लेना चाहिये (जिससे कि आगे स्वामित्व का कोई विवाद न हो) जो वस्तु देने का संकल्प करे वह अवश्य दे और देकर फिर न लौटाये।

23.15 क्रीतानुशयप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा क्रय सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार धान्य का बीज, लोहा, ढोनेवाला बैल आदि पशु, रत्न, स्त्री (दासी), दूध देनेवाले भैंस आदि पशु, और पुरुष (दास) का परीक्षण अच्छा-बुरा होने का क्रमशः दश, एक, पाँच दिन, एक सप्ताह, तीन दिन और एक पखवारा होता है अर्थात् इतने दिनों के भीतर ही परीक्षण में शुद्ध होने पर तत्तत् पदार्थ लौटाये जा सकते हैं। अग्नि में तपाने पर सोना कम नहीं होता, सौ पल रजत में दो पल कम हो जाता है, पीतल सौ पल में आठ पल कम हो जाते हैं, ताम्र में पाँच पल कम हो जाता है और लोहा दस पल कम हो जाता है। ऊन और कपास के मोटे सूत में (कम्बलादि के निर्माण में) सौ पलों में दश पल की वृद्धि होती है, मध्यम श्रेणी के सूत में पाँच पल और पतले (सूक्ष्म) सूत से बने वस्त्र में सौ पल में तीन पल की वृद्धि होती है। जिन वस्त्रों में चक्र, स्वस्तिक आदि की कढ़ाई होती है और जिन चादर आदि में रोयें बाँधे जाते हैं उनमें बार-बार छेद करने आदि से तीसवें भाग की कमी होती है। कौशेय (रेशमी) और वल्कल में न कमी होती है और न वृद्धि। (द्रव्य के नष्ट हो जाने पर या ह्रास होने पर) देश, काल, उपभोग तथा नष्ट हुये द्रव्यों की सारासारता को परीक्षित कर द्रव्य के विषय-विशेषज्ञ जो मूल्य लगावे वह (नाश करनेवाला शिल्पी आदि) दे।

23.16 अभ्युपेत्याशुश्रुषाप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दास सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार बलपूर्वक दास बनाया गया या चोरों द्वारा विक्रय के द्वारा दास बनाया गया दास दासत्व से मुक्त हो जाता है अर्थात् राजा उसे मुक्त करा दे। सभी प्रकार के दास स्वामी के प्राण बचाने पर दासत्व से मुक्त हो जाते हैं -

बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते।
स्वामिप्राणप्रदो भक्तत्यागात् तन्निष्क्रयादपि॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या १८२

(बिना समय की सीमा के जो दास हैं उनकी मुक्ति) खोये हुये द्रव्य को लौटाने पर होती है और ऋण चुकाकर दास बनाये गये या खरीदे गये दासों की मुक्ति उस द्रव्य को लौटाने पर होती है। संन्यास से च्युत व्यक्ति जीवन-पर्यन्त राजा का दास रहता है। दासत्व वर्णों में अनुलोम क्रम से होता है (ब्राह्मण का क्षत्रिय-वैश्यादि क्रम से होता है, प्रतिलोम क्रम से नहीं (क्षत्रिय का ब्राह्मण, वैश्य का क्षत्रिय आदि क्रम से नहीं) अर्थात् उच्च वर्ण का दास निम्न वर्ण वाला नहीं होगा। निम्नवर्णवाले का दास उच्चवर्णवाला नहीं होगा। शिष्य अपने गुरु के यहाँ निवास की अवधि निश्चित होने पर और विद्या उससे पूर्व समाप्त करने पर भी उस शिष्य विद्या का फल गुरु को देते हुये तथा गुरु से भोजन प्राप्त कर वहाँ निवास करे।

23.17 संविव्यतिक्रमप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा धर्म सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार राजा अपने नगर में स्थान (निवासोपयुक्त गृहादि) बनाकर वहाँ ब्राह्मणों को बसावे और उन त्रैविद्य (तीनो वेदों के ज्ञाता) ब्राह्मणों को वृत्ति देकर यह कहें कि आप अपने धर्म का पालन करें। अपने धर्म के अविरुद्ध (अनुकूल) जो सामयिक धर्म हो तथा जो राजा द्वारा निश्चित किया धर्म हो उसकी रक्षा (पालन) करे। जो गण (समूह अथवा समाज) के द्रव्य का हरण करे या (राजा या समाज द्वारा निश्चित) समय (व्यवस्था) का उल्लङ्घन करे, राजा उसके सर्वस्व का हरण कर राज्य से बाहर निकाल दे। जो व्यक्ति समूह (गण) के हित का वचन कहते हैं उनके वचन का सभी को पालन करना चाहिये। जो व्यक्ति उसके विपरीत (समूह के हितवादी के वचन का अव-रोधक) हो उसे (राजा द्वारा) प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिये। समूह के कार्य के लिये आये हुये लोगों का कार्य कर राजा उन्हें दान-मान-सत्कार से सत्कृत कर विदा करे। समूह के कार्य के लिये भेजा गया व्यक्ति जो कुछ (उस कार्य-संपादन के अवसर पर) प्राप्त करे उसे ले आकर (समूह को) समर्पित कर दे। यदि वह स्वयं उस प्राप्त वस्तु को नहीं देता तो उससे ग्यारह गुना दण्ड लेना चाहिये। श्रौत और स्मार्त धर्म के विशेषज्ञ, पवित्र और निर्लोभी व्यक्तियों को समूह के कार्य का विचारक बनाना चाहिये। ऐसे धर्मज्ञ समूह के हित बोलने वाले लोगों के वचन के समूह के सभी व्यक्तियों को मानना चाहिये। श्रेणी (एक शिल्प या व्यापार से जीविका चलानेवाले), नैगम (वेद को आप्त प्रमाण माननेवाले पाशुपतादि), पाखण्डी (वेद का प्रामाण्य न माननेवाले सौगत आदि) और गण (अस्त्र आदि विद्या से जीविका चलानेवाले) के विषय में भी यही नियम है। राजा इनके भेद (पारस्परिक धर्म) की रक्षा करे और इनके पूर्व की वृत्ति की रक्षा करे। जो शास्त्रविरुद्ध पक्ष है उनकी भी तत्तद् रूप से रक्षा होनी चाहिये।

23.18 वेतनादानप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा वेतन सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार वेतन लेकर कर्म का त्याग करनेवाले से वेतन का दुगुना धन दिलाये। यदि वेतन नहीं लिया हो तो उसके बराबर धन दे। नौकर (जिस कार्य में नियुक्त है उस कार्य के सहायक हल फावड़ा इत्यादि) उपस्करों की यत्नपूर्वक रक्षा करे -

गृहीतवेतनः कर्म त्यजन् द्विगुणम् आवहेत्।
अगृहीते समं दाप्यो भृत्यै रक्ष्यः उपस्करः॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या १९३

जो स्वामी (व्यापारी, गोस्वामी अथवा भूपति) भृत्य का बिना वेतन निश्चित किये काम लेता है, राजा को उससे वाणिज्य, पशु और अन्न से हुये लाभ का दसवाँ हिस्सा भृत्य को दिलाना चाहिये। जो भृत्य देश और काल का अतिक्रमण कर लाभ या हानि करावे वहाँ हानि होने पर तो स्वामी की इच्छा है कि (वेतन में उसे काटे या न होने पर) लाभ होने पर अधिक दे। यदि एक ही कार्य दो (अधिक व्यक्तियों) द्वारा किया जा रहा हो और (रोगादि के कारण) संपन्न न हुआ हो तो जितना जिससे कार्य किया है उतना वेतन उसे दिया जाय और कार्य पूर्ण होने पर जैसा वेतन निश्चित किया गया हो उतना दिया जाय (कर्मानुरूप न दिया जाय)। जिस वाहक से बिना राजा और दैव के उपद्रव के भाण्ड नष्ट हो जाय उसे भाण्ड दिलावे। (मङ्गलकार्य के) प्रस्थान में जो विघ्न करे (अर्थात् पहले स्वीकार कर फिर समय पर न जाय) उससे वेतन का दूना धन (दण्ड) दिलावे। प्रस्थान प्रारम्भ होने पर जो स्वीकृत काम छोड़ दे उससे मजदूरी का सातवाँ भाग दण्ड में दिलावे, जो मार्ग में छोड़े उससे चौथा भाग दिलावे,

जो आधे मार्ग में छोड़े उससे पूरी मजदूरी दिलावे और जो उससे काम छुड़वाता है, उस मालिक से भी पूरी मजदूरी भृत्य को दिलवाये।

23.19 द्यूतसामाह्वयप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा द्यूत सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार द्यूत में सभिक को (जुआ खिलानेवाला) सौ प्रतिशत की वृद्धि होने पर धूर्त जुआरी से पाँच प्रतिशत ले और अन्य से दश प्रतिशत ले। वह सभिक (जुआ खिलानेवाला) राजा से सम्यक् रक्षित होने पर राजा को यथोचित भाग दे। जीते हुये धन को हारे हुये धन से निकाल कर जीतनेवाले को दिलावे। स्वयं क्षमाशील होकर अन्य लोगों से सत्य वचन कहे। राजा अपना अंश प्राप्त करने पर ज्ञात जुआरियों के समूह में सभिक के निरीक्षण में जीता हुआ धन जीतनेवाले को दिलावे। अन्यथा (संरक्षित समूह न होने पर) न दिलावे। वे (जुआ खेलनेवाले ही जुये के) नियम द्रष्टा और साक्षी होते हैं। कपटपूर्ण पाशे से खेलनेवाले जुआरी लोगों को राजा चिह्नित कर (दाग कर) राज्य से बाहर निकाल दे। चोरों के पहचान के निमित्त द्यूत को एक प्रधान व्यक्ति (राजा द्वारा) नियुक्त कर खेलना चाहिये। प्राणियों (पहलवानों, भेड़े, भैसा, मुर्गा आदि) आदि के द्यूत में भी यही (शतिक वृद्धि) वाला नियम होता है।

23.20 वाक्पारुष्यप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा वाक्पारुष्य (अपशब्द) सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार जो किसी विकलेन्द्रिय (लंगड़ा, लूला इत्यादि) एवं रोगो की सत्य या असत्य या अन्यथा रूप से आक्षेप करे उससे साढ़े तेरह पण दण्ड लेना चाहिये। तुम्हारी बहन या माँ के पास मैं जाने वाला (जार) हूँ ऐसी गाली देनेवाले को राजा पच्चीस पण दण्ड लगावे। (अपने से) अधम स्त्री को गाली देने में आधा दण्ड ह्होता है और उत्तम स्त्री को गाली देने में दूना दण्ड होता है। राजा को दण्ड का विधान ऊपर और नीचे की जाति और वर्ण के क्रम से दण्ड प्रवर्तित करना चाहिये। वर्णों की प्रतिलोमता अर्थात् नीचे वर्णवाले के द्वारा अपवाद लगाने पर क्रमश: दुगुना और तिगुना दण्ड होता है। अनुलोम अर्थात् ऊँचे द्वारा नीचे को अपवाद लगाने पर उससे आधे, आधे की कमी से दण्ड लगता है। बाँह, गर्दन, नेत्र, कमर तोड़ने की वाचिक धमकी देने पर सौ पण का दण्ड लगता है और पैर, नाक, कान, हाथ आदि की धमकी देने पर उसका आधा अर्थात् पचास पण का दण्ड होता है। यदि दुर्बल व्यक्ति (रोगी आदि) ऐसा वचन कहता है तो उससे दश पण का दण्ड ले और शक्तिशाली ऐसा कहता है तो (उससे पूर्वोक्त सौ पण दण्ड लेकर) उससे (ऐसा न करने के लिये) जमानतदार भी ले। (ब्रह्महत्यादि) पतित करानेवाले आक्षेप लगाने पर मध्यम साहस का दण्ड लगावे और (गोहत्यादि) उपपातक का आक्षेप करने पर प्रथम (अर्थात् अधम) साहस का दण्ड लगावे। तीनो वेदों के विद्वानों, राजा और देवता पर आक्षेप करनेवाले पर उत्तम साहस का दण्ड लगावे। जाति और समूह पर आक्षेप करनेवाले से मध्यम साहस का दण्ड ले और ग्राम और देश पर आक्षेप करनेवाले से अधम साहस का दण्ड ले।

23.21 दण्डपारुष्यप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दण्डपारुष्य सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार यदि कोई बिना साक्षी के (एकान्त में) मारे जाने का आरोप लगावे तो मरने के चिह्नों, युक्तियों और आगम (जनप्रवाद) आदि से व्यवहार (वाद) का निर्णय करना चाहिये क्योंकि (ऐसी स्थिति में) जाली चिह्नों की शंका रहती है-

असाक्षिकहते चिह्नैर्युक्तिभिश्चागमेन च ।
द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृतो भयात् ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या २१२

भस्म, कीचड़ और धूल फेकने पर दश पण का दण्ड होता है। अमेष्य (अश्रु, श्लेष्म, नख, केश, कान की मैल और जूठा) और मुख से निकाले जल का स्पर्श कराने पर दुगुना (बीस पण) का दण्ड होता है। यह नियम समान वर्ण पर है। परस्त्री तथा अपने से उत्तम वर्ण पर ये फेंकने पर दूना दण्ड होता है। अपने से हीन वर्ण पर यह फेंकने पर आधा दण्ड होता है। मोह (चित्तवैक्लव्य) और मद (मदपान में) यह दण्ड नहीं होता। यदि अब्राह्मण ने ब्राह्मण को पीड़ा दी है तो उसके उस अङ्ग को काट देना चाहिये जिससे उसने ब्राह्मण को पीड़ा दी है। (मारने के लिये शस्त्र आदि उठाने पर) प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिये और मारने के लिये (शस्त्रादि) छूने पर उसका आधा दण्ड देना चाहिये। (समान वर्णवाले को मारने के लिये) हाथ-पैर उठाने पर दश और बीस पण दण्ड लगाना चाहिये। शस्त्र उठाने पर मध्यम साहस का दण्ड देना चाहिये। पाद, केश, वस्त्र और हाथ को बलपूर्वक मरोड़ने पर दश पण का दण्ड होता है और पीड़ित करते हुये वस्त्र से बाँध कर पैर से मारने पर सौ पण का दण्ड होता है। बिना रक्त निकाले काष्ठादि से मारकर दु:ख पहुँचाने पर बत्तीस पण दण्ड होता है और रक्त दिखाई देने पर दुगुना दण्ड होता है। हाथ, पैर और दाँत तोड़ने पर, कान और नाक काटने पर, फोड़ा को फोड़ देने पर तथा मार कर मृत तुल्य कर देने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। चेष्टा (सञ्चार), भोजन तथा वाणी रोकने पर, आँख आदि फोड़ने पर, कन्धा, बाहु और जाँघ (कमर) तोड़ने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। यदि एक आदमी को बहुत आदमी मिलकर मारे तो जिस अपराध का जो दण्ड है उसका दुगुना दण्ड देना चाहिये। कलह में छीनी गयी वस्तु को वापस करानी चाहिये तथा उसका दुगुना दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति किसी को मारपीट कर कष्ट पहुँचावे वह उस दु:ख से दवा-पथ्यादि में हुये व्यय को भी दे और जिस कलह में जो दण्ड है उसे भी दे। मुद्गर आदि से दीवार को विदीर्ण करने, छेद करने और गिराने पर पाँच, दश और बीस पण दण्ड देना चाहिये और फेंकने पर मध्यम साहस का दण्ड देना चाहिये। (बकरी, भेड़, हिरन आदि) क्षुद्र पशुओं को मार कर रक्त निकालने तथा निर्जीव अङ्गों (सींग आदि) के काटने पर दो पण, चार पण, छ: पण आदि (अपराध की गुरुता के अनुसार) दण्ड होता है। इन पशुओं के लिङ्ग काटने पर तथा जान से मार देने पर मध्यम साहस का दण्ड तथा इनका मूल्य भी देना पड़ता है। (गाय, बैल, हाथी, घोड़ा आदि) बड़े पशुओं के इन अङ्गों पर चोट पहुँचाने पर या मारने पर दुगुना दण्ड होता है। अङ्कुर (कोपल) से युक्त डालों वाले वट आदि वृक्षों की शाखा, तना या संपूर्ण वृक्ष काटने पर और (आम्र आदि) जीविकोपयोगी वृक्षों के इन भागों को काटने पर क्रमश: बीस, चालीस, अस्सी पण का दण्ड होता है। चैत्य (चतुष्पथ), श्मशान, सीमा, पवित्र-स्थान और देवालय के वृक्षों तथा पीपल आदि प्रख्यात वृक्षों के शाखादि को काटने पर पूर्वोक्त दण्ड का दुगुना दण्ड होता है। पूर्वोक्त स्थानों के गुल्म (मालती आदि छोटी किन्तु घनी लतायें), गुच्छ (टेढी कुरण्ट आदि), क्षुप (करवीर आदि सीधी), लता (दीर्घ विस्तार वाली द्राक्षा आदि), प्रतान (काण्डप्ररोहविहीन सीधी बढ़ने वाली सारिवा आदि), औषधि (फल के पक जाने पर नष्ट होनेवाले धान आदि) वीरूध (काटने पर भी बढ़नेवाले गुडूची आदि) के काटने पर उपर्युक्त दण्ड का आधा दण्ड होता है।

23.22 साहसप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा साहस (वस्तु का बलपूर्वक हरण करना) सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार सामान्य वस्तु के बलपूर्वक हरण को साहस कहते हैं। उसके लिये उस वस्तु के मूल्य का दूना दण्ड होता है और अपराध स्वीकार न करने पर चौगुना दण्ड होता है -

सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात् साहसं स्मृतम्।
तन्मूल्याद् द्रविगणो दण्डो निह्नवे तु चतुर्गण॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या २३०

जो साहस कराता है उसे साहसिक के दण्ड का दूना दण्ड लेना चाहिये और जो यह कर कि तुम करो जो लगेगा उसे मैं दूँगा, साहस कराता है उससे चौगुना दण्ड लेना चाहिये। अर्घ के पात्र (आचार्य, राजा, वर आदि) की निन्दा करनेवाले तथा उनकी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले, भाई की स्त्री पर प्रहार करनेवाले, संदेश को न पहुँचाने वाले (या प्रतिज्ञा किये पदार्थ को न देनेवाले), बन्द घर को खोलने या तोड़नेवाले, सटे हुये घरवाले तथा कुटुम्ब का अपकार करनेवाले - इन सबसे पचास पण का दण्ड लेना चाहिये ऐसा नियम है। स्वेच्छा से (बिना नियोग के) विधवा के साथ व्यभिचार करनेवाला, किसी के आर्तनाद करने पर (शक्ति होते हुये भी) न दौड़ने वाला, बिना कारण के दु:खपूर्ण चिल्लाहट करनेवाला और जो चाण्डाल उत्तम वर्णवालों को स्पर्श करे, शूद्रों और संन्यासियों को पितृश्राद्ध और देवयाग में भोजन करानेवाला, अनुचित शपथ लेनेवाला, अपने वर्ण के अनुपयुक्त कर्म को करनेवाला, बैल एवं बकरा आदि छोटे पशुओं को बन्ध्या करनेवाला, साधारण वस्तु को भी छिपानेवाला, दासी के गर्भ को गिरानेवाला, पिता, पुत्र, भाई, बहन, पति, पत्नी, आचार्य और शिष्य इनके पतित होने पर भी एक दूसरे द्वारा त्याग करनेवाला - ये सभी सौ पण के दण्ड के भागी हैं।

23.22.1 साहस में प्रासङ्गिक प्रकरण -

धोने के लिये दिये गये दूसरे के वस्त्र को पहनने पर धोबी को तीन पण दण्ड लगता है। बेचने, भाड़े पर देने, बन्धक रखने और मँगनी देने पर दश पण का दण्ड लगता है। पिता और पुत्र के कलह को निवारण न कर साक्षी बनने पर तीन पण दण्ड लगता है और जो उनके बीच में पड़े (शर्त सहित विवाद में शर्त रखनेवाला बनकर विवाद बढ़ावे वह आठ गुना दण्ड का पात्र होता है। जो तराजू, शासन, बाटों और सिक्कों में कपट करे वह उत्तम साहस के दण्ड का पात्र होता है। सिक्कों का जो परीक्षक असली सिक्कों को नकली कहता है और नकली सिक्कों को असली कहता है उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। जो वैद्य मिथ्या (बिना ज्ञान के मैं वैद्य हूँ इस प्रकार प्रचारित कर पशु, मनुष्य और राजपुरुषों की) चिकित्सा करता है वह पशुओं की चिकित्सा करने पर प्रथम साहस का, मनुष्य की चिकित्सा करने पर मध्यम साहस का और राजपुरुषों की चिकित्सा करने पर उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है। जो बिना व्यवहार (मुकदमें के निर्णय के ही) अबन्ध को बाँधता है तथा बद्ध (चौरादि) को छोड़ देता है उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। माप या तौल से (छल द्वारा) जो वस्तु का आठवां भाग हरण कर लेता है उसे दो सौ पण दण्ड होता है। हरण किये गये द्रव्य के अधिक या कम होने पर उसी अनुपात में अधिक या कम दण्ड होगा। दवा, (घृतादि) तरल पदार्थ, नमक, गन्ध, धान्य, गुड़ आदि विक्रेय पदार्थों में (लाभार्थ) तुच्छ पदार्थ मिलाने पर सोलह पणों का दण्ड देना चाहिये। मिट्टी, चर्म, मणि, सूत, लोहा, काष्ठ, वल्कल वस्त्र में, अजाति में (उस जाति का न होने पर मिलावट कर ऊँची जाति का) कर देने पर विक्री का आठ गुना दण्ड होता है। पात्र में ढँकी वस्तु के

(हस्तलाघव से) उलट कर (उसके स्थान दूसरी वस्तु देकर तथा सारभाण्ड कस्तूरी आदि) कृत्रिम बनाकर जो बेचता या बन्धक रखता है तो इस प्रकार का दण्ड होता है - एक पण से कम मूल्य होने पर पचास पण, एक पण मूल्य होने पर सौ पण, दो पण मूल्य होने पर दो सौ पण दण्ड होता है और मूल्यवृद्धि के अनुसार दण्ड भी बढ़ता जाता है। (राजा द्वारा निर्दिष्ट) मूल्य की ह्रास और वृद्धि को जानते हुये (व्यवसायी परस्पर) मिलकर (लाभ के लिये स्वत:) मूल्य निर्धारित का कारु (रजक आदि) तथा शिल्पी (चित्रकार आदि) को पीड़ित करे तो उत्तम साहस का दण्ड (एक हजार पण) होता है। जो व्यवसायी परस्पर मिलकर देशान्तर से लायी गयी विक्रेय वस्तु कम मूल्य लगाकर विक्रय से रोक देते हैं या अधिक मूल्य से बेचते हैं उन्हें उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। राजा द्वारा निर्धारित मूल्य है उसी पर क्रय या विक्रय होना चाहिये। जो क्रय और विक्रय से बचता है वही व्यापारियों का लाभ है। अपने देश की वस्तु को तत्काल बेचने पर पाँच प्रतिशत और परदेशी वस्तु को बेचने पर दश प्रतिशत लाभ मिलना चाहिये। परदेश से लाई गयी वस्तु के लाने में हुये खर्च को जोड़कर क्रेता और विक्रेता के हितावह मूल्य को राजा निर्धारित करे।

23.23 विक्रीयासंप्रदानप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा विक्रेता सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार जो विक्रेता मूल्य लेकर भी विक्रेय वस्तु को क्रेता को नहीं देता उससे उस वस्तु को वृद्धि के साथ (जो मूल्य वृद्धि या सूद मूल्य लेने के बाद हुआ है) क्रेता को दिलवाना चाहिये। यदि क्रेता देशान्तर का है तो अपने देश में ले जाकर बेचने से उसे जो लाभ मिलता वह भी दिलवाना चाहिये। यदि खरीदी भी वस्तु को क्रेता न ले तो विक्रेता दूसरे व्यक्ति को बेच दे। क्रेता के न लेन पर (नये क्रेता के लेने के समय के बीच) जो हानी हुई उसे भी पुराने क्रेता से दिलवाये। यदि क्रेता अपनी क्रीत वस्तु माँग रहा हो और विक्रेता विक्रीत वस्तु को न दे रहा हो और इस बीच राजा या दैव के उत्पात से उसमें हानि हो जाय तो यह विक्रेता की ही होती है। यदि विक्रेता एक व्यक्ति को बेचकर वस्तु को दूसरे को बेचता है अथवा दोषपूर्ण वस्तु को दोष छिपाकर अदोषपूर्ण बतलाकर बेचता है तो वस्तु के मूल्य से दुगु ना दण्ड होता है। विक्रेय वस्तु के हानि-लाभ को न जानकर यदि व्यापारी सौदा खरीदता है तो फिर अनुशय अर्थात् लौटाना नहीं चाहिये। ऐसा करने पर षष्ठांश दण्ड का भागी होता है।

23.24 संभूयसमुत्थानप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा लाभ-हानि सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार व्यवसायियों के समूह में लाभार्थ कर्म करने पर लाभ और हानि होने पर जितना जिसने द्रव्य लगाया है या जितना पहले तय हुआ है उसके अनुसार लाभ-हानि होता है। रोके जाने पर बिना आदेश के और प्रमाद द्वारा जिस व्यक्ति ने जितना नुकसान किया है वह उसे दे और जिसने राजा या दैव के उत्पात से रक्षा की है वह रक्षा की हुयी वस्तु का दशमांश का भागी होता है। मूल्य निर्धारित करने के कारण राजा बीसवाँ भाग शुल्क रूप में ले। निषिद्ध वस्तु या राजा के योग्य बेची गयी वस्तु भी राजा के पास जाती है अर्थात् राजा ले ले। शुल्क के बचने के लिये मिथ्या परिमाण बतानेवाला तथा कर देने के स्थान से भागने वाला और विवादास्पद वस्तु खरीदने तथा बेचनेवाले से वस्तु का आठगुना दण्ड लेवे। नौकादि के जल पार करानेवाला यदि स्थल का शुल्क लेता है और जो अपने पड़ोसी ब्राह्मण को (श्राद्धादि में) निमंत्रण देकर (दू के ब्राह्मण को निमन्त्रण देता है) इसे दश पण दण्ड दे। एक साथ व्यापार करनेवालो में से किसी के देशान्तर जाने या मर जाने पर उसके द्रव्य को दामाद, बान्धव या ज्ञातिजन ले या देशान्तर से आने पर सभी व्यापारी ले या उनके न होने पर राजा ले। यदि

साथ के व्यापारियों में कोई कुटिल हो तो उसे बिना लाभ दिये बाहर कर दे यदि अशक्त हो तो दूसरे से करावे। इसी नियम से ऋत्विकों, किसानों और कारीगरों की भी विधि है।

23.25 स्तेयप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा स्तेय (चोरी) सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार ग्राहकों (चोरों को पकड़ने के लिये राजा द्वारा नियुक्त पुरुषों) द्वारा (लोगो द्वारा चोर कहे जाने पर) चोर पकड़ा जाता है, लुप्त वस्तु के चिह्न से पकड़ा जाता है (चोरी गयी वस्तु के स्थान से चोर के पास तक) पदचिह्न से पकड़ा जाता है, पूर्व में चोरी के अपराध से पकड़ा जाता है तथा जिसका वासस्थान निश्चित न हो ऐसा पकड़ा जाता है (अर्थात् राजा द्वारा नियुक्त चोर पकड़ने-वाले अधिकारी चोरी होने पर जिसे लोग चोर कहे उसे पकड़े या जिसके पास चोरी का सामान हो उसे पकड़े या चोरी के स्थान से लेकर चोर तक जिसके पदचिह्न हों उसे पकड़े या जो पूर्व में चोरी का अपराधी हो उसे पकड़े या जिसका निवासस्थान संदिग्ध हो उसे पकड़े)। इसके अतिरिक्त शङ्का होने पर निम्नलिखित लक्षणवाले को पकड़ना चाहिये - जो जाति और नामादि छिपावे, जो भूत, स्त्री और मदपान में आसक्त हो (पूछने पर) जिसका मुख सूख जाय और स्वर बदल जाय, दूसरे के धन तथा घर को पूछने वाले को, जो वेष बदलकर घूमते हैं, जिनकी बिना आय के व्यय होता हो और जो खोई वस्तु को बेचने वाले हों। जो चोरी की शङ्का से पकड़ा गया है वह यदि अपने को शुद्ध अर्थात् निर्दोष न सिद्ध करे तो चुराये गये सामान को उससे दिलाकर चोरों के लिये विहित दण्ड से उसे दण्डित करना चाहिये। चोर से चोरी गयी वस्तु दिलाकर विविध प्रकार के वध (शारीरिक पीड़ा) से दण्डित करे। यदि ब्राह्मण चोर हो तो लालट पर (कुत्ते के पैर का) चिह्न बनाकर उसे राज्य से निकाल दे -

चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद् विविधैर्वधै।
सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद् विप्रवासयेत्॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या २७०

ग्राम के भीतर हत्या या चोरी होने पर यदि ग्राम के बाहर चोर के निकलने का चिह्न न मिले तो दोष ग्रामपाल का होता है। सराय या रुकने के स्थान पर होने पर सराय के स्वामी का होता है और मार्ग में होने पर मार्गपाल या दिक्पाल का दोष होता है। अपने ग्राम में चोरी होने पर ग्राम के लोग दण्ड दे या उस गाँव के लोग दे जहाँ चोर के जाने के चिह्न मिलते हों। यदि एक क्रोश की दूरी पर कई ग्रामों के बीच चोरी हुयी है तो पाँच या दश ग्राम मिलकर चोरी की क्षतिपूर्ति करे। बन्दियों को छुड़ानेवाले, घोड़ा तथा हाथी चुरानेवाले एवं बलपूर्वक हत्या करनेवाले मनुष्यों को शूली पर चढ़ाना चाहिये। वस्त्र आदि चुरानेवालों, गाँठ काटनेवालों के हाथ और संदश से (अङ्गुठा तथा तर्जनी ऊँगली) काटनी चाहिये। द्वितीय अपराध होने पर एक हाथ और एक पैर काट लेना चाहिये। छोटी, मध्यम या बड़ी वस्तु की चोरी में दण्डकार्य में देश, काल, अवस्था और शक्ति का विचार कर वस्तु के मूल्य के अनुसार दण्ड होता है। जो व्यक्ति चोर या हत्यारे को (उसके कर्म या विचार का) ज्ञान रहते हुये भी भोजन, निवासस्थान, अग्नि (शीतापनयन निमित्त), जल, सलाह (भागने या चोरी करने की विधि का), हत्या या चोरी के साधन, मार्ग-व्यय को देता है उसे उत्तम साहस का दण्ड होता है। किसी के शरीर पर मारने के लिये शस्त्रपात करने या गर्भपात करने पर उत्तम साहस का दण्ड दिया जाता है। पुरुष और स्त्री को मारने पर (उनके शील और वृत्त के अनुसार) उत्तम या अधम साहस का दण्ड होता है। (गर्भपातादि के कारण) अत्यन्त दुष्टा, पुरुष की हत्या करनेवाली और पुल को तोड़नेवाली स्त्री को

यदि वह गर्भिणी न हो तो गले में शिला बाँधकर जल में फेंक दे। जहर देनेवाली, आग लगानेवाली तथा पति, गुरु और सन्तान की हत्या करनेवाली स्त्री के कान, हाथ, नाक और ओठ काटकर बैलों से मरवा दे। जिस व्यक्ति की हत्या की गयी है और हत्यारे का पता नहीं है उसके पुत्रों से पता लगाना चाहिये कि उसका किसके साथ झगड़ा था। उससे संबद्ध व्यभिचारिणी स्त्रियों से भी पृथक्-पृथक् पूछना चाहिये। (मृत व्यक्ति के विषय में) पूछना चाहिये कि स्त्री, धन या जीविका किस उद्देश्य से वह गया था और किसके साथ गया था। मृत्यु के स्थान के लोगों से भी विश्वासपूर्वक पूछना चाहिये। किसी के खेत (खेत की फसल), घर, वन (उद्यान इत्यादि), विवीत (सराय या बाड़ा) तथा खलिहान में आग लगानेवाले एवं राजपत्नी के साथ व्यभिचार करनेवाला इनके शरीर में कट (फूस) लपेट कर जला देना चाहिये।

23.26 स्त्रीसंग्रहणप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा स्त्रीसंग्रहण सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार परस्त्री का केश पकड़ने, सद्य: काम-क्रीडा से उत्पन्न चिह्नों (नखक्षतादि) तथा दोनों की स्वीकृति देखकर (व्यभिचारी को) पकड़े -

पुमान् संग्रहणे ग्राह्य: केशाकेशि परस्त्रिया।
सद्यो वा कामजैश्चिह्नै: प्रतिपत्तौ द्वयोस्तथा॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या २८३

नीवी (वस्त्रग्रन्थि), स्तन, आच्छादन, जाँघ और केश का स्पर्श, बिना देश-काल के भाषण और एक आसन पर बैठना - ये व्यभिचारी के लक्षण हैं और इन्हें पकड़ना चाहिये। (पति, पिता, भाई इत्यादि द्वारा) निषिद्ध पुरुष के साथ संभाषण पर स्त्री को सौ पण दण्ड होता है और इनके द्वारा प्रतिषिद्ध होने पर पुरुष द्वारा संभाषणादि करने पर पुरुष को दो सौ पण दण्ड होता है और उन दोनों के प्रतिषिद्ध होने पर संग्रहण (संभोग) में जो वर्णानुसार दण्ड होता है वह लगता है। सजातीय स्त्री से व्यभिचार करने पर उत्तम साहस का दण्ड होता है। अनुलोम वर्ण (अर्थात् अपने से छोटी जाति की) स्त्री से व्यभिचार करने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। प्रतिलोम (अर्थात् अपने से बड़ी) स्त्री से व्यभिचार करने पर वध दण्ड होता है। अपने से हीन वर्ण के साथ व्यभिचाररत स्त्री का कान आदि काट लेना चाहिये (उच्च या सवर्ण के साथ व्यभिचारिणी को दण्ड देना चाहिये)। विवाह के लिये अलंकृत (तैयार) सवर्णा कन्या का अपहरण करनेवाले को उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। दूसरी स्थिति में (अर्थात् जहाँ कन्या का तत्काल विवाह न हो रहा हो) अधम साहस का दण्ड देना चाहिये। अपने से उच्च जाति की कन्या का अपहरण करने पर वध का दण्ड देना चाहिये। कन्या के भी सकामा और अपने से नीच जाति का होने पर (भगाने में) दोष नहीं होता, अन्यथा (कन्या का प्रेम न होने पर उत्तम साहस का) दण्ड होता है। (हीन वर्ण की अकामा कन्या को) नखक्षतादि से दूषित करने पर हाथ काट लेना चाहिये। उत्तम वर्ण की कन्या हो तो वध विहित है। स्त्री (कन्या) के (विद्यमान अपस्मार, क्षय, व्यभिचार आदि) दोषों को उद्घाटित करने पर सौ पण का दण्ड होता है और मिथ्या दोष कहने पर दौ सौ पण का दण्ड होता है। पशु से मैथुन करनेवाले को सौ पण का दण्ड होता है। हीन वर्ण की स्त्री और गौ से मैथुन करनेवाले को मध्यम साहस का दण्ड होता है। दासी तथा भुजिष्या (किसी पुरुष विशेष से परिग्रहवाली) यदि किसी व्यक्ति की सेवा के लिये अवरुद्ध है तो उनके गम्य होने पर भी (उनके विशेष व्यक्ति की सेवा में नियत होने के कारण) उनके संभोग करने पर पुरुष पचास पण दण्ड का भागी होता है। दासी (स्वैर वृत्ति से जीविका चलानेवाली व्यभिचारिणी) से बलपूर्वक (बिना द्रव्य

के) व्यभिचार करनेवाले को दश पण दण्ड बताया गया है। ऐसी स्वैरिणी की कामना न होने पर यदि बहुत लोग बलपूर्वक संभोग करें तो प्रत्येक को चौबीस पण दण्ड होता है। मूल्य लेकर (और स्वस्थ होने पर भी) मूल्य देने वाले पुरुष से संभोग की इच्छा न करनेवाली वेश्या उसे दूना धन लौटावे। यदि धन न ली हो तो (शुल्क तय करने के बाद इन्कार करनेवाली) उतना धन लौटावे। इसी प्रकार दण्ड वेश्या के पास जानेवाले पुरुष पर लगता है (अर्थात् मूल्य तय कर और संभोग कर ने देनेवाला दूना दे और मूल्य तय कर संभोग न करनेवाला निश्चित मूल्य दे)। जो स्त्री की योनि में संभोग न कर अयोनि (मुखादि) में मैथुन करता है या किसी पुरुष के समक्ष मैथुन करता है या संन्यासिनी के साथ मैथन करता है उसे चौबीस पण दण्ड लगता है। चाण्डाली के साथ मैथुन करनेवाले के शरीर पर भग का चिह्न बनाकर (दागकर) राष्ट्र से बाहर निकाल से। (चाण्डाली के साथ संभोग करने पर) चाण्डाल हो जाता है। आर्या (चातुर्वर्ण्य की स्त्री) से संभोग करने पर चाण्डाल का वध ही दण्ड है।

23.27 प्रकीर्णकप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा प्रकीर्णक (व्यवहार सम्बन्धी अन्य विषय) सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार जो राजा के आदेश को अधिक या कम करके लिखता है और परस्त्रीगामी या चोर को (राजा दण्डार्थ न सौंपकर) छोड़ देता है - इन दोनों को उत्तम साहस का दण्ड विहित है। अभक्ष्य पदार्थ से ब्राह्मण को दूषित करनेवाला अर्थात् ऐसे पदार्थों या उनके संपर्क से ब्राह्मण के अन्न को दूषित कर खिलानेवाला उत्तम साहस के दण्ड का पात्र होता है। क्षत्रिय को अभक्ष्य से दूषित करनेवाला मध्यम साहस के दण्ड का भागी होता है। वैश्य को दूषित करनेवाले को प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिये और शूद्र को दूषित करनेवाले को अधम साहस का आधा दण्ड देना चाहिये। नकली सोने का व्यवहार करनेवाले तथा (कुत्ता आदि के) कुत्सित मांस को बेचनेवाले को (नाक, कान और हाथ) तीन अङ्ग काट कर उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। यदि पशु का स्वामी हटो-हटो कह रहा है (और कोई नहीं हटता और पशु से घायल होता है तो) स्वामी का कोई अपराध नहीं होता। (इसी प्रकार हटने का आह्वान करने के बाद भी) काष्ठ, ढेला, बाण, पत्थर, हाथ और (रथादि में) जुते पशुओं से चोट खाने पर भी चलानेवाले और हाँकनेवाले का कोई दोष नहीं होता। गाड़ी में जुते बैल की रस्सी टूटने पर या गाड़ी के जुये आदि के टूटने से या गाड़ी के पीछे से खिसकने से यदि किसी को चोट लगती है तो स्वामी (गाड़ीवान्) का दोष नहीं होता। दाँतवाले (हाथी आदि) तथा सींगवाले (बैल आदि) पशुओं (के किसी पर आक्रमण करने पर) से समर्थ होने पर भी स्वामी यदि किसी को न बचाये तो प्रथम साहस का दण्ड लगता है और यदि चिल्लाने पर भी न छुड़ावे तो इसका दुगुना दण्ड होता है। जार को (स्वकुल के मर्या-दाभङ्ग से) जो चोर-चोर कहता है उसे पाँच सौ पण का दण्ड लगाना चाहिये और जो जार (व्यभिचारी) को द्रव्य लेकर छोड़ देता है उससे जितना लिया है उसका आठ गुना लेना चाहिये। राजा के अनभिमत (शत्रु आदि की स्तुति) को बार-बार कहनेवाले, राजा की निन्दा करनेवाले तथा उसकी गुप्त बातों को प्रकट करनेवाले की जिह्वा काटकर राज्य से निकाल दे। मृतक के अङ्ग में लगे (वस्त्रादि) को बेचनेवाले, गुरु (माता, पिता, आचार्यादि) की ताड़ना करनेवाले तथा राजा की सवारी एवं आसन पर चढ़नेवाले को उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। किसी को दोनों आँखें को फोड़नेवाले, राजा के अनिष्ट (राज्यनाशादि) की घोषणा करनेवाले तथा ब्राह्मण बनकर जीविका चलानेवाले शूद्र को आठ सौ पण का दण्ड लगता है। गलत निर्णय किये गये मुकदमों को राजा पुनः निर्णीत कर सभ्य (निर्णय करने वाले सभासद) तथा जीतनेवाले से विवाद में हारने वाले को दिये गये दण्ड का दुगुना धन दण्ड में ले। जो न्यायपूर्वक

पराजित होने पर भी मैं पराजित नहीं हूँ ऐसा मानता है, उस जेता के विचार से आनेवाले को विधिपूर्वक पुन: पराजित कर दूना दण्ड लगावें। यदि राजा ने (लोभादिवशात्) अन्याय से किसी से दण्ड लिया हो तो उसे तीस गुना करके वरुण को उस धन निवेदन कर ब्राह्मणों को दान कर दे और अन्याय से जिससे जितना दण्ड लिया हो उसे उतना लौटा दे।

23.28 पारिभाषिक शब्दावली

स्मृति - "धर्मशास्त्र तु वै स्मृति:" के मतानुसार स्मृतिग्रन्थ धर्मशास्त्रस्वरूप हैं।

वाद - किसी अन्य के द्वारा धर्मशास्त्र तथा आचार के विरुद्ध प्रताड़ित होने पर पीड़ित व्यक्ति राजा से निवेदन करे तो वह वाद का विषय होता है

प्रमाण -किसी भी वाद के लिखित, उपभोग और साक्षी ये तीन प्रमाण हैं। इनमें किसी के न होने पर दिव्य प्रमाणों में से कोई प्रमाण का ग्रहण करना चाहिये।

साक्षी - तदनुसार तपस्वी, दानशील, कुलीन, सत्यवक्ता, धर्मप्रधान, सरलस्वभाव, पुत्रवान्, धनयुक्त तथा श्रौत-स्मार्त क्रिया में रस कम से कम तीन साक्षी होते हैं।

लेख्य - यदि कोई विषय धनी और ऋणी के मध्य अपनी इच्छा के अनुसार तय हुयी है तो ब्याज की दर क्या है और उसे कब लौटाना है इसे साक्षियों के समक्ष धनी को लिख देना चाहिये यह प्रमाण लेख्य कहलाता है।

दिव्य - तुला, अग्नि, जल, विष, कोष में विशुद्धि (संदेह की निवृत्ति) के लिये पाँच दिव्य प्रयोग किये जाते हैं।

औरस - सवर्ण पत्नी से उत्पन्न पुत्र औरस होता है। उसी के समान पुत्रिका (भाई विहीन कन्या) का पुत्र होता है।

क्षेत्रज - पत्नी में सगोत्र या अन्य से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज होता है।

23.29 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. व्यवहार पद को स्पष्ट करते हुये चतुष्पाद व्यवहार का निरूपण कीजिये ?
2. ऋणादान सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
3. साक्षी (गवाह) सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
4. लेख्य सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
5. दायविभाग सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
6. दत्ताप्रदानिक सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
7. वेतनादान सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
8. द्यूत सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
9. स्तेय (चोरी) सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
10. स्त्रीसंग्रहण सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?

23.30 सारांश

इस प्रकार हमने याज्ञवल्यक स्मृति के व्यवहाराध्याय का अध्ययन किया। यह जाना कि किस प्रकार प्राचीन भारत में न्याय व्यवस्था सुदृढ थी। यह जाना कि किस प्रकार प्रकार न्याय प्रक्रिया चलती है,? किस प्रकार प्रमाणादि का उपयोग किया जाए ? किस प्रकार ब्याज प्रकरण, स्त्री प्रकरण, स्तेय (चोरी प्रकरण) क्रीतानुशय (खरीदी हुई वस्तु सम्बन्धी प्रकरण इत्यादि प्रकरणों का निदान किया जाए ? इस समस्त उपायों का उल्लेख याज्ञवल्यक स्मृति के व्यवहाराध्याय में किया गया है। इन समस्त तथ्यों का अध्ययन हमने इस इकाई में किया है।

23.31 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. याज्ञवल्क्य स्मृति (व्यवहाराध्याय) - व्याख्याकार डॉ, कमलनयन शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, राजस्थान 1995.
2. याज्ञवल्क्यस्मृति - व्याख्याकार थानेशचन्द्र उप्रैती, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1992.
3. याज्ञवल्क्य स्मृति - सम्पादक गणपति शास्त्री, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, वाराणसी 1952.
4. याज्ञवल्क्य स्मृति - जगन्नाथ शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी,1973.